सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१६

(अगस्त १९१९ – जनवरी १९२०)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें अगस्त १९१९ से जनवरी १९२० तककी छः महीनोंकी सामग्री एकत्रित है। इस अवधिमें जो शान्ति रही वह ठीक अर्थोंमें शान्ति नहीं थी, उसके पीछे एक बेचैनी थी, जो बादमें तूफान बनकर उमड़ी और जिसके कारण अनेक आशाएँ निराशामें बदल गईं। गांधीजीने १९१९ के पहले नौ महीनोंका वर्णन करते हुए लिखा है: "इस ओर हिन्दुस्तानमें चारों तरफ निराशा दिखाई देती है। युद्धके अन्तमें हिन्दुस्तानको कुछ ठोस चीजें मिलनेकी आशा थी, लेकिन कुछ भी नहीं मिला। एक तो सुधारोंका दिया जाना ही कठिन है; दिये भी गये तो वे लगभग व्यर्थ ही होंगे। . . . जो हो जाये गनीमत है। पंजाबपर कहर बरपा; निरपराध व्यक्ति मारे गये; . . . अधिकारियों तथा लोगोंके बीच अविश्वासकी खाई और भी चौड़ी हो गई।" (पृष्ठ २६७) गांधीजीके कथनानुसार इस समय "निराशाके गहन बादलों" में अगर कहीं कोई आशाकी किरण थी, तो वह था सत्याग्रहका उदय।

रौलट अधिनियम जो १९ अप्रैलकी उथल-पुथलका कारण था, रद नहीं हुआ था। गांधीजीने इस बातपर दुःखी होकर पूछा: "जनताकी इच्छा सर्वोपरि रहे या सरकारकी?" (पृष्ठ २५) सबसे पहले तो गांधीजीने रौलट अधिनियमको रद करानेके लिए पुरानी पद्धति अर्थात् अनुशासित आन्दोलन और लोगोंमें तथ्योंके प्रचारका सहारा लिया। उन्होंने कांग्रेस और लीग द्वारा दिये गये स्मरणपत्र-जैसी एक सार्वजनिक याचिका की सलाह दी। अखिल भारतीय होमरूल लीगने तदनुसार एक याचिका तैयार की और गांधीजीने जनतासे उसपर हस्ताक्षर करनेकी अपील की। (पृष्ठ ५८) जब यह सुना गया कि श्री मॉण्टेग्यु कहते हैं कि रौलट अधिनियम कभी रद नहीं किया जायेगा, तो गांधीजीने जवाबमें कहा कि ट्रान्सवाल एशियाई अधिनियमके विषयमें जनरल स्मट्स यही कहा करते थे, किन्तु भारतीयोंके सत्याग्रहने उन्हें इस बातपर मजबूर कर दिया कि प्रवासी कानूनमें से रंगभेद हटाया जाये और वह १९१४में हटाया गया। सरकारकी अकड़के कारण गांधीजीने अपना रुख सख्त किया और यह समझ लिया कि सविनय अवज्ञा ही रौलट अधिनियमका उत्तर है, याचिका आदि प्रस्तुत करने जैसी वैधानिक कार्रवाइयोंसे कुछ होना-जाना नहीं है।

इस अवधिमें गांधीजी ज्यादातर पंजाबके मामलेको लेकर व्यस्त रहे। सरकारके दमनके कारण लोगोंको जो कष्ट उठाने पड़े थे उनसे उन्हें बहुत पीड़ा पहुँची थी। इसलिए उन्होंने राहत देनेके लिए स्वयं सक्रिय रूपसे संगठनात्मक कदम उठाये। लोगोंको बिना सोचे-समझे अन्यायपूर्वक जेलकी लम्बी-लम्बी सजाएँ दी गई थीं। उन्होंने अपने पत्रके स्तम्भोंमें इसके खिलाफ बार-बार लिखा: "अपनी वकालतके पूरे अर्सेमें, जो कम नहीं है — मैंने लगातार करीब २० साल वकालत की है — मैंने कभी ऐसे मुकदमे नहीं देखे जिनमें हाफिजाबादके मुकदमेकी तरह इतनी गैर-संजीदगी और इतने बेहद कमजोर सबूतके आधारपर फाँसीकी सजायें सुना दी गई हों।" (पृष्ठ ४९)

मार्शल लॉ के अन्तर्गत जो मामले निर्णीत हुए थे, गांधीजीने कहा कि उनपर पुनर्विचार होना चाहिए और यदि निरपराध लोगोंको सख्त सजाएँ दी गई हैं तो वे रद की जानी चाहिए। उनका यकीन था कि डॉ० किचलू और सत्यपालपर ऐसी तमाम बातें कहने और करनेका अभियोग लगाया गया है जो उन्होंने न कभी कही थीं और न कभी की थीं; और उन्हें ऐसे अभियोगोंके आधारपर ही देश-निकाला दे दिया गया है। (पृष्ठ ९०) उन्होंने लिखा कि जब पंजाबके लोग इतनी बड़ी संख्यामें कैदमें पड़े सजाएँ भुगत रहे हों और सो भी इसलिए कि वे अपने वश-भर देशकी सेवा करना चाहते थे, उस समय मेरा जेलसे बाहर रहना मजाक नहीं है। (पृष्ठ ७७) इसलिए इस परिस्थितिमें पंजाबमें जो-कुछ हुआ है, उनकी पक्षपातहीन जाँच तो की ही जानी चाहिए। अतः जब ७ सितम्बरको हंटर जाँच समितिकी नियुक्ति की गई, गांधीजीने यह आशा व्यक्त की कि समिति न्याय करेगी। उन्होंने अनुभवी लोगोंसे सामने आकर और निर्भय होकर समितिके सामने तथ्य प्रस्तुत करनेकी अपील की। उन्होंने २ अक्तूबरको आर्यसमाजके नेता स्वामी श्रद्धानन्दसे प्रार्थना की कि वे गवाहियाँ देने और इकट्ठी करनेके लिए एक केन्द्रीय संस्थाका निर्माण करें।

२९ अक्तूबरको सी० एफ० एन्ड्रूजके साथ गांधीजी 'डिसऑर्डर्स इन्क्वायरी कमेटी' के अध्यक्ष लॉर्ड हंटरसे मिले। ३ नवम्बरको दिल्लीमें इस समितिकी पहली बैठक हुई। पंजाबके लेफ्टिनेन्ट गवर्नरको गांधीजीने लिखा कि हंटर समितिके सामने सार्वजनिक संस्थाओंको गवाहियाँ पेश करनेका अधिकार दिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि गवाहियाँ देनेके लिए पंजाबके नेताओंको रिहा करना भी जरूरी है। नेताओंको समितिके सामने गवाहियाँ पेश न करने देना गांधीजीकी समझमें उन्हें एक ऐसे अधिकारसे वंचित करना था जो क्रूर कर्म करनेवाले अपराधियोंको भी प्राप्त है। उन्होंने पंजाबकी सरकारको सूचित किया कि पंजाबमें हुए उपद्रवोंकी जाँच करनेके लिए कांग्रेस द्वारा गठित उप-समितिने हंटर समितिका बहिष्कार करना तय कर लिया है। कांग्रेसकी इस उप-समितिने मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, अब्बास तैयबजी, फजल हुसैन और गांधीजीकी एक समिति बनाई और उसे अधिकार दिया कि वे स्वतन्त्र रूपसे उपद्रवोंकी जाँच करें और कांग्रेसके सामने उसका विवरण प्रस्तुत कर दें। गांधीजीने इस सिलसिलेमें सारे पंजाबका दौरा किया, सार्वजनिक सभाएँ कीं, लोगोंसे मिले और उनके बयान लिये। इस तरह जो अनुभव हुआ, उसे उन्होंने 'बहुमूल्य' कहा है और 'नवजीवन' में 'पंजाबकी चिट्ठी' के रूपमें उसे अपने पाठकोंके सामने रखा।

रौलट अधिनियमके बने रहनेके कारण तो असन्तोष फैला ही हुआ था, एक और भी कारण इसीके साथ आ जुड़ा। अरब और इस्लामके पवित्र स्थानोंपर खलीफाके नियंत्रण अर्थात् खिलाफतकी माँग ही वह दूसरी चीज थी जो इस अवधिमें भारतीय राजनीतिमें बहुत महत्त्वपूर्ण रही। सितम्बर १८ को गांधीजीने बम्बईमें खिलाफतसे सम्बन्धित सभाम भाषण दिया। वहाँ प्रस्ताव पास करके टर्कीके अंग-भंग करनेपर चिन्ता प्रकट की गई और माँग की गई कि अंग्रेजोंने जो वचन दिया था वह उन्हें पूरा करना चाहिए। अक्तूबर १७ 'खिलाफत दिवस' की तरह मनाया गया। 'नवजीवन' और

अन्य अखबारोंमें लिखकर गांधीजीने इस दिवसकी महत्तापर जोर दिया। उन्होंने मुख्य भारतीय नेताओंसे भी इस विषयमें पत्र-व्यवहार किया। दिसम्बरके मध्यमें सरकारने "शान्ति उत्सव" आयोजित करनेकी घोषणा की। गांधीजीने कहा कि जबतक मुसलमानोंकी माँग पूरी नहीं की जाती, भारतीय इसमें बिलकुल भाग नहीं ले सकते। उन्होंने जोर देकर कहा कि खिलाफतकी माँगके पीछे न्याय, ब्रिटिश मन्त्रियोंकी घोषणाओं तथा हिन्दुओं और मुसलमानोंके विचारकी शक्ति है। गांधीजीने खिलाफतको हिन्दू-मुस्लिम एकताका आधार भी बनाया, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि यदि अपने मुसलमान भाइयोंकी आपत्तिकी घड़ीमें हिन्दू उनका साथ देंगे तो ये दोनों जमातें पास-पास आ जायेंगी।

यद्यपि रौलट अधिनियमके रद न होनेके कारण देशमें असन्तोष बना हुआ था और खिलाफतके विषयमें मुसलमानोंके मनमें शंका थी, तो भी गांधीजी यही मानते रहे कि देश अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ ब्रिटिश सहयोगसे प्राप्त कर सकेगा। दिसम्बर १९१९ के पहले हफ्तेमें लन्दनकी लोकसभामें सुधार-विधेयकका तीसरा वाचन हुआ। गांधीजीका कहना था कि हमें इन सुधारोंसे इनकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि बहुतसे अधिकार उनके द्वारा मिल जाते हैं। गांधीजी चाहते थे कि इसके लिए मॉण्टेग्युको धन्यवाद दिया जाये। उनका खयाल था कि रौलट ऐक्ट और पंजाबके मामलोंमें न्याय प्राप्त करनेके लिए इन सुधारोंके अनुसार देशको कौंसिलमें योग्य प्रतिनिधि भेजने चाहिए और यदि इसके बाद भी न्याय नहीं मिलता, तो हमारा अन्तिम शस्त्र सत्याग्रह तो हमारे पास है ही। (पृष्ठ ३५३) दिसम्बर २४ को सम्राट्की जो घोषणा हुई, उसे भी गांधीजीने न्याय करनेकी इच्छाका एक लक्षण माना और इसलिए उन्होंने कहा कि देशका कर्त्तव्य है कि वे इन सुधारोंको स्वीकार करके तदनुसार काम करें, ताकि वे सुधार सफल हो सकें और आगे-पीछे इनमें पूर्ण उत्तरदायी शासन सौंपे जानेकी योग्यता आ जाये। (पृष्ठ ३७२) गांधीजीके इस कथनका स्वाभाविक रूपसे ही यह परिणाम निकला कि उन्होंने अमृतसर कांग्रेसमें सुधारोंपर एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें आशा व्यक्त की गई थी कि अधिकारी और जनता, दोनों परस्पर सहयोग करते हुए सुधारोंको इस तरह अमलमें लायेंगे जिससे शीघ्र ही पूर्ण उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सकेगी।

गांधीजीके नेतृत्वके विकासकी दृष्टिसे इस अवधिकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, गांधीजी द्वारा बड़े धीरजके साथ जनताको सत्याग्रहके अभिप्रायसे पूरी तरह अवगत कराना। अप्रैल १९१९ की घटनाओंने उन्हें इस बातकी जरूरतका भरोसा दिला दिया था कि जनताको सत्याग्रहके पूरे अर्थका भान कराया ही जाना चाहिए। सरकार और जनता, दोनोंमें से एक भी यह नहीं समझे थे कि केवल राजनीतिक शस्त्रकी तरह ही नहीं, जीवनकी किसी भी समस्याको हल करनेके लिए आत्मबलका प्रयोग करनेवाले 'सत्याग्रह' नामक उपायका पूरा अर्थ क्या है। यह एक ऐसा उपाय है जो जीवनके किसी भी क्षेत्रमें लागू किया जा सकता है। (पृष्ठ १२९) उसका मूल तत्त्व है अन्यायका शान्त भावसे, शालीनतापूर्वक कष्ट सहते हुए मुकाबला करना। स्वदेशी, समाज-सुधार और राजनीतिक सुधार उसके क्षेत्रमें आ जाते हैं। उन्होंने कहा कि यदि कोई भी परिवर्तन सत्याग्रहके बलपर होता है तो वह टिकाऊ होता

है। उन्होंने दावा किया कि यदि आत्मबलका उपयोग सत्य-रक्षाके लिए किया जाये तो बड़ीसे-बड़ी शारीरिक शक्ति भी उसके सामने झुक जाती है। उन्होंने कहा, वे इसी तथ्यको संसारके सामने रखना अपने जीवनका उद्देश्य मानते हैं। उन्होंने पत्र-लेखक "पेनसिलवेनियन" को जवाब देते हुए लिखा कि सत्याग्रह खालिस नैतिक क्रान्ति है और सविनय प्रतिकार उसका आवश्यक अंग। (पृष्ठ ५३) भगवद्गीता की लोकमान्य तिलकने जो व्याख्या की थी, गांधीजीने उसकी आलोचना की और कहा कि बुराईका जवाब बुराईसे देना ईश्वरीय नियम नहीं है। ईश्वरीय नियम तो बुराईका जवाब अच्छाईसे देना है। (पृष्ठ ५१०-११)

उपद्रव जाँच समितिके सामने गांधीजी द्वारा दी गई गवाही एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आलेख है। ५ जनवरीको उन्होंने समितिको अपना वक्तव्य दिया। प्रारम्भमें उन्होंने सत्याग्रह शास्त्रकी संक्षिप्त रूपरेखा दी और फिर थोड़ेमें रौलट अधिनियमके विरुद्ध हुए आन्दोलनका विवरण पेश किया। पंजाब और अहमदाबादकी घटनाओंका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि मैं यह नहीं मानता कि "इन हिंसात्मक उपद्रवोंके पीछे कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन काम कर रहा था। इन उपद्रवोंको तो "विद्रोह" की संज्ञाका गौरव भी नहीं दिया जा सकता।" (पृष्ठ ३८३) अप्रैल १९१९ में की गई सार्वजनिक हड़तालके उद्देश्यको स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि उनके विरुद्ध नियंत्रणका आदेश "मुझे अपने शान्ति-कार्यसे विमुख करने" (पृष्ठ ४००) की नीयतसे जारी किया गया था। उन्होंने अहमदाबाद और वीरमगाँवके हिंसक कृत्योंको भी गलत कहा और घोषित किया कि वह "अर्ध-शिक्षित, अधकचरे नौजवानों" (पृष्ठ ४०३) का काम था। उन्होंने यह भी कहा कि सत्याग्रह मुल्तवी करनेका कारण यह नहीं था कि जनतामें सत्याग्रह करनेकी योग्यता नहीं है, बल्कि उसका कारण यह था कि समय उसके उपयुक्त नहीं था। (पृष्ठ ४३०-३१) सत्याग्रहका उपद्रवोंसे सम्बन्ध जोड़ना उन्होंने गलत माना। इसके बाद उन्होंने समितिके सामने रौलट अधिनियमके उद्देश्य स्पष्ट किये और कहा: "अगर सत्याग्रह न किया गया होता तो भारतको जो नजारे देखने पड़े उनसे भी कहीं अधिक भयंकर नजारे उसे देखने पड़ते।" (पृष्ठ ४८०)

भारतके त्रिविध ताप — भूख, वस्त्राभाव और रोग — गांधीजीके लेखे स्वदेशीसे ही समाप्त हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि प्राचीन कालकी तरह कातना किसानोंमें फिरसे शुरू किया जा सकता है और भारतका प्रत्येक गाँव इनके बलपर आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। यह एक क्रान्तिकारी कदम है और देशमें जैसे-जैसे शक्ति आयेगी, वह इसे अधिकाधिक अपना सकेगा। (पृष्ठ ७) वे स्वदेशी आन्दोलनको राष्ट्र-जीवनका पोषण करनेवाला, दरिद्रोंका त्राता और स्त्रियोंके शीलका संरक्षक आन्दोलन मानते थे। इस उपायसे देश ज्यादा सीधे ढंगसे स्वतंत्र किया जा सकता था। किन्तु उन्होंने स्वदेशी व्रत और बहिष्कारका अन्तर भी स्पष्ट किया और कहा कि बहिष्कार क्रोधका चिह्न है और उससे हमारी दुर्बलता व्यक्त होती है।

देशकी इन तमाम जबरदस्त और तात्कालिक समस्याओंसे घिरे रहकर भी गांधीजी दक्षिण आफ्रिकी परिस्थितियोंसे उत्पन्न होनेवाली खराबियोंसे जनताको अवगत रखनेका

समय निकाल लेते थे। ट्रान्सवालमें एक ऐसा अध्यादेश जारी किया गया जिसका अर्थ दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयों द्वारा व्यापार करने तथा भूमि रखनेके प्राथमिक उद्देश्योंको लगभग समाप्त कर देना होता था। बादमें एक जाँच-समितिकी घोषणा की गई जिसमें भारतीयोंको प्रतिनिधित्व दिये जानेकी बात भी थी और उससे लोगोंको कुछ राहत महसूस हुई। किन्तु चूँकि समितिका क्षेत्र व्यापारी परवानोंतक ही सीमित था, इसलिए यह घोषणा बहुत अधिक राहत नहीं दे सकी। इसी समय देशमें चलनेवाले दमनचक्रकी गांधीजीने निन्दा की और शंकरन् नायरने वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में जो विरोधी मत व्यक्त किया, उसके आधारपर गांधीजीने खेड़ा और चम्पारनके आन्दोलनोंका फिरसे पक्ष लेते हुए निर्भय होकर प्रशासकीय निरंकुशताका पर्दा फाश किया और न्याया-लयोंकी गैरजिम्मेदारीपर भी प्रकाश डाला जिसके कारण बम्बई उच्च न्यायालयसे संघर्ष आवश्यक हो गया। इन सारी बातोंके बीच भी वे पंजाबके प्रति अपने कठिन कर्त्तव्यको नहीं भूले और उस दिशामें आन्दोलन करते रहे।

अपने सम्पादकत्वमें 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का प्रकाशन भी गांधीजीने इसी अवधिमें प्रारम्भ किया। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि उनके पास भारतको देने योग्य कोई ऐसी वस्तु है जो अन्य किसी व्यक्ति द्वारा इस परिमाणमें तो नहीं दी जा सकती। उन्होंने अपने ही अखबारोंके जरिए उसे देनेका निश्चय किया। (पृष्ठ ९७) इन पत्रोंका उपयोग उन्होंने जनताको राजनीतिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें शिक्षित करनेके लिए तो किया ही; साथ ही उन्होंने उन्हें समाजकी सेवा और राष्ट्रीय जीवनके सभी क्षेत्रोंमें नये प्राणोंका संचार करनेके साधनके रूपमें भी प्रयुक्त किया। इस दृष्टिसे उनके गुजराती पत्रका 'नवजीवन' नाम बहुत सार्थक था: इस नवजीवनका निर्माण उन्होंने जनताकी दीर्घकालीन परम्परासे प्राप्त नैतिक शक्तिको जगाकर, उसे गतिशील बनाकर किया। अपनी सरल और सुबोध गुजरातीमें लोगोंसे अपनी बात उनके ही एक स्वजनकी तरह कहते हुए उन्होंने कभी उन्हें दलीलोंके जरिये समझाया-बुझाया, कभी लाड़-प्यारसे मनाया तो कभी डाँटा-फटकारा भी। अन्य लाभोंके सिवा इसका एक और लाभ यह हुआ कि उन्होंने अनायास ही भाषाको उसकी परम्परागत लेखन-शैलीके बन्धनोंसे मुक्त करके गुजराती साहित्यमें एक नये युगका श्री-गणेश किया।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; बम्बई सरकारका गृह-विभाग, बम्बई; इंडिया आफिस पुस्तकालय, लन्दन; श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्रीमती राधाबेन चौधरी, कलकत्ता; श्री ए० एच० वेस्ट; 'आत्मकथा', 'एविडेंस बिफोर डिसऑर्डर्स इन्क्वायरी कमेटी', 'बापुनी प्रसादी', 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३४वें अधिवेशनकी रिपोर्ट', 'महात्मा गांधी', 'महादेवभाईनी डायरी', 'माई डियर चाइल्ड' और 'सच्ची शिक्षा' पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'अमृतबाजार पत्रिका', 'इंडियन ओपिनियन', 'इंडियन रिव्यू', 'इंडिया', 'काठियावाड़ टाइम्स', 'गुजरात मित्र अने गुजरात दर्पण', 'गुजराती', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'ट्रिब्यून', 'नवजीवन', 'न्यू इंडिया', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'बॉम्बे लॉ रिपोर्टर', 'यंग इंडिया', 'लीडर' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ इन्फॉरमेशन् ऐंड ब्रॉडकास्टिंग) के अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग (रिसर्च ऐंड रेफरेंस डिवीजन), नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबादके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकलरूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलोंको सुधारकर दिया गया है।

अंग्रेजी, गुजराती और मराठीसे अनुवाद करते समय उसे मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका मूलसे मिलाने और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारणोंमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन हिन्दी और गुजरातीके व्यक्तिगत पत्रोंमें गुजराती संवत्के अनुसार तिथि दी गई थी उनमें ईसवी सन्के अनुरूप तिथि भी दे दी गई है। कुछ पत्रोंकी लेखन तिथिका निर्णय बाह्य या आन्तरिक साक्ष्यके आधारपर किया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा'के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ विभिन्न हैं; इसलिए हवाला देनेमें केवल उसके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' क्लेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. तार : स्वामी श्रद्धानन्दजीको

[अगस्त २, १९१९ से पूर्व][1]

स्वामी श्रद्धानन्दजी[2]
मार्फत लाला धर्मचन्द, वकील
अनारकली
लाहौर

शोक-सन्तप्त परिवारोंके लिए चन्देकी आपकी अपीलका समर्थन अवश्य करूँगा। मैं आपका यह पत्र छाप दूँ या आप कोई दूसरा अधिक ब्यौरेवार पत्र भेजेंगे। एक्सप्रेस तार द्वारा उत्तर दें।

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६७३१) की फोटो-नकलसे।

२. पंजाबकी पुकार

संन्यासी स्वामी श्री श्रद्धानन्दजीने पंजाबके विषयमें दिल्लीसे लिखा है:—

मैं (गत अप्रैलकी दुःखद घटनाओंके[3] पश्चात्) दो बार पंजाब हो आया हूँ। मैं अमृतसर, लाहौर, गुजराँवाला, शेखूपुरा और चाचड़खाना गया और वहाँ बहुत-कुछ देखा सुना। अमृतसरमें १३ अप्रैलको यदि अधिक नहीं तो पन्द्रह-सौ व्यक्ति अवश्य ही मारे गये होंगे। जान पड़ता है, दूसरे स्थानोंमें भी अमृतसरसे कम, मगर फिर भी बहुतोंको प्राण गँवाने पड़े हैं। इनमें से सैकड़ों लोग अपने-अपने परिवारोंके एकमात्र पालनहार थे। इनमें से कुछको फाँसी या कालेपानीकी सजा सुना दी गई है; दूसरोंको १० से २० साल तकका कारावास दिया गया है। पंजाबमें लगभग एक हजार परिवार तो ऐसे हैं जिनमें केवल स्त्रियाँ और बच्चे ही बच रहे हैं। उन्हें भोजन और वस्त्र पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है। पंडित मालवीयजीने[4] जनतासे एक लाख रुपया इकट्ठा करनेकी अपील की है परन्तु मेरा खयाल है कि हमें इनमें से कई शोक-सन्तप्त परिवारोंका भरण-पोषण कमसे-कम छः मासतक करना ही होगा। यदि यह ठीक है तो डेढ़ लाख रुपयोंकी

१. "पंजाबकी पुकार" शीर्षक लेख २-८-१९१९ के *यंग इंडिया*में छपा था। देखिए अगला शीर्षक।

२. महात्मा मुंशीराम (१८५६-१९२६); बादमें श्रद्धानन्दके नामसे आर्य समाजके प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता। गुरुकुल कांगड़ीके संस्थापक।

३. आशय पंजाबमें अप्रैल १९१९ के उपद्रवों और सरकार द्वारा किये गये जोर-जुल्मसे है। देखिए खण्ड १५।

४. पंडित मदनमोहन मालवीय।

आवश्यकता पड़ेगी। यह अनुमान हमने यह मानकर लगाया है कि जो आजकल जेलमें हैं उनमें से अधिकांश लोगोंपर से मुकदमे उठा लिये जायेंगे। यदि आप मेरे इस प्रस्तावसे सहमत हैं तो कृपया बम्बईके धनाढ्य पुरुषोंसे दानकी याचना कीजिए और रकमें मुझे भेजते रहिये। मुझे धन वितरित करनेके लिए विश्वासपात्र स्वयं-सेवकोंकी भी आवश्यकता पड़ेगी। आप ऐसे स्वयंसेवक भी भेज सकते हैं। यदि सम्भव हो तो ऐसे ४ या ५ व्यक्ति भेज दीजिए।

स्वामीजीकी यह अपील थोड़ेमें बहुत-कुछ कह देती है। मुझे आशा है कि अनेक व्यक्तियोंके हृदयोंमें इसका जैसा होना चाहिए वैसा असर होगा। मैं नहीं समझता कि इसमें मेरी सिफारिशकी जरा भी जरूरत है। लोगोंको सहायताकी जरूरत है और उस दिशामें बम्बईकी उदार जनताका कर्त्तव्य क्या है, इसपर मतभेद हो ही नहीं सकता। आशा है कि इन दुःखी परिवारोंको मदद पहुँचानेके बारेमें किसीको भी कोई आपत्ति नहीं होगी। इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि अमृतसर तथा अन्य स्थानोंमें जिनके प्राण गये हैं उनमें से बहुतेरे लोग निर्दोष थे। उनके परिवार सभीकी सहायताके पात्र हैं, वे चाहे किसी भी दल या जातिके क्यों न हों। पाठकोंको स्मरण होगा कि दिल्लीके आयुक्तने गत ३० मार्चको हत अथवा आहत लोगोंके परिवारोंकी सहा-यतार्थ चन्दा भेजनेकी अपील प्रकाशित की थी। परन्तु इस सिलसिलेमें यदि ऐसा कोई प्रश्न उठाया जाये कि हिंसा या इससे भी बुरे किसी अपराधके लिए सजा पानेवाले लोगोंके परिवारोंकी सहायता करना कहाँतक औचित्यपूर्ण होगा तो मैं विनम्रतापूर्वक कहूँगा कि उनके परिवारोंके लोगोंने तो कोई अपराध नहीं किया; जब कि ऐसे बड़ेसे-बड़े अपराधियोंके परिवारोंको भी जनतासे सहायता पानेका पूरा हक होता है जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थके लिए जघन्यतम अपराध किये हैं, और इस प्रकार जिनका मंशा राजनीतिक अप-राधियोंके मुकाबले कहीं अधिक निन्दनीय है। समाजका यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह जाति या वंशका विचार छोड़कर जरूरतमन्द और गरीबोंका पोषण करे। अतएव मुझे भरोसा है कि बम्बईके धनाढ्य व्यक्ति स्वामीजीकी अपीलके उत्तरमें मुक्तहस्त होकर दान देंगे और वह भी तुरन्त। स्वामीजीने मुझे तार द्वारा सूचित किया है कि धनकी तत्काल आवश्यकता है। रकमोंकी रसीदें बाकायदा भेजी जायेंगी। स्वामीजीके पत्रमें इतनी ही महत्वपूर्ण दूसरी बात यह है कि उन्हें ऐसे विश्वासपात्र स्वयंसेवकोंकी जरूरत है जो पंजाब जाकर धन-वितरणमें उनकी सहायता कर सकें। मैं ऐसे लोगोंको सहायताके लिए आमंत्रित करता हूँ जिनके पास पंजाब जानेका साधन और अवकाश है। ऐसे स्वयंसेवकोंमें एक अनिवार्य गुण यह होना चाहिए कि वे श्रद्धानन्दजीके निर्देशके अनु-सार और उनके पथ-प्रदर्शनमें ही केवल न्यासियोंके रूपमें धन-वितरण कर सकें। उन्हें अपने राजनैतिक विचारोंका प्रचार या एक साथ दो उद्देश्य पूरे करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए। राष्ट्रीय कार्यमें वास्तविक सफलता तभी मिल सकती है जब उसके कार्यकर्ता हाथमें लिये हुए काममें इतनी लगन और तन्मयताके साथ जुटनेका गुण अपने अन्दर पैदा कर लें कि उनको अन्य किसी कामकी सुधि ही न रह जाये। एक ही समयमें अनेक कार्य करनेकी कोशिश करनेपर हम किसी भी कामको भली प्रकार या

सन्तोषजनक रीतिसे पूरा नहीं कर सकते, बल्कि इससे हमारे इरादोंके बारेमें लोगोंको प्रायः सन्देह होने लगता है। मेरी तरह पाठकगण भी यही चाहेंगे कि पंजाब जानेके लिए चुने गये स्वयंसेवकोंके किसी कामसे स्वामीजी द्वारा उठाया गया यह कल्याणकारी कार्य बिगड़ने न पाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २–८–१९१९

३. भेंट : एक पत्रकारको[1]

[बम्बई
अगस्त ४, १९१९]

. . . यह पूछनेपर कि उनका विचार शीघ्र ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करनेका है अथवा नहीं, गांधीजीने कहा कि यह सब सरकार तथा निकट भविष्यमें स्थिति सुधारनेके उसके प्रयत्नपर निर्भर करता है। उन्होंने कहा : मैं अपने कार्यक्रममें जल्दबाजी करके स्थितिको उलझाना नहीं चाहता, क्योंकि हो सकता है कि उससे असल सवाल आसानीसे आखोंकी ओट हो जाये। यदि सरकार पंजाबकी स्थितिको सुलझाने तथा रौलट अधिनियमको रद करनेके लिए शीघ्र ही कदम नहीं उठाती, तो मुझे बड़े दुःखके साथ पुनः सत्याग्रह प्रारम्भ करना पड़ेगा। अगर ऐसी नौबत आई तो मैं नजरबन्दीके आदेशको मद्रासकी हद पार करके तोड़ूँगा। क्योंकि वह दिशा अपेक्षाकृत बहुत अधिक शान्त है। उस हालतमें सरकारको हिंसा या उपद्रवकी बात उठाकर कोई खास कार्रवाई करनेका बहाना न मिल सकेगा।

मैंने उनसे पूछा कि क्या आप दक्षिण भारतके लोगोंके लिए फिलहाल कोई विशेष सन्देश देने तथा सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य निर्दिष्ट करनेकी कृपा करेंगे?

हाँ, मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बालक हाथसे कातना और बुनना सीखे। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक सत्याग्रही इसके प्रचारमें सहायक हो। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जरूरतका कपड़ा अपने घरमें तैयार करना सीख ले तो हमारी आजकी बहुत-सी समस्याएँ हल हो जायें। मैं आपसे कोई नई चीज शुरू करनेको नहीं कह रहा हूँ। इस तरहके कामके लिए आपको भारतके बहुत प्राचीन कालका ध्यान करना भी आवश्यक नहीं है, अभी तीस-चालीस साल ही हुए होंगे भारतके प्रत्येक गाँवमें करघे थे और लोग उन्हीं करघोंपर बुने हुए कपड़े पहनते थे। सामान्यतया हर घरमें चरखा चलाया जाता था। हाथसे सूत कातना नीचा काम नहीं है। महलोंमें रहनेवाली रानियाँ भी यह काम करती थीं। यदि इसको फिरसे शुरू कर दिया जाये तो हम देशका बहुत हित साध सकेंगे। इसके अच्छे परिणाम निकलनेकी मुझे बड़ी आशा है।

१. इस भेंटका विवरण "सी० आर० एस०" के नामसे प्रकाशित हुआ था।

मैंने गुजरातमें १ हजार करघे चालू करवा दिये हैं और गुजरातके प्रमुख व्यक्ति जैसे श्रीमती बैंकर, श्रीमती पेटिट,[1] श्रीमती अनसूयाबेनने[2] उत्साहके साथ सूत कातना प्रारम्भ कर दिया है। चरखेके कल-पुर्जे बिलकुल सीधे-सादे होते हैं और सूत-कताईसे सम्बन्धित पूरा सरंजाम ३।। या ४ रुपयेमें मिल जाता है। कताई बहुत-कम समयमें सीखी जा सकती है। उदाहरणार्थ साथवाले कमरेमें श्रीमती टी० ए० चेट्टियार बैठी सूत कातना सीख रही हैं। उन्होंने कल ही प्रारम्भ किया है। चन्द घंटोंके अभ्याससे वे अच्छी तरह सूत कातने लगेंगी और मैं उम्मीद करता हूँ कि उनमें दूसरोंको सिखानेकी भी योग्यता आ जायेगी।[3]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९-८-१९१९

४. पत्र: जी० एस० अरुंडेलको[4]

लैबर्नम रोड
बम्बई
अगस्त ४, १९१९

प्रिय श्री अरुंडेल,[5]

आपका कृपापत्र मैंने बार-बार पढ़ा। पत्रके लिए धन्यवाद। अपने इस उत्तरके साथ आपके पत्रको 'यंग इंडिया'[6] में छपवा रहा हूँ।

मैं आपकी सलाहके अनुसार कार्य करना तो चाहता हूँ, परन्तु मेरा खयाल है कि अपने पत्रमें आपने जो कार्य बताया है, वह मेरे बूतेके बाहर है। मुझे अपनी मर्यादाओंका अच्छी तरह पता है। मेरे मनका झुकाव राजनीतिकी ओर नहीं धर्मकी ओर है। राजनीतिमें मैं भाग लेता हूँ, क्योंकि मेरे खयालसे जीवनका एक भी अंग ऐसा नहीं, जिसे धर्मसे अलग किया जा सके। दूसरा कारण यह है कि आज राजनीति हर जगह

१. बम्बईके प्रसिद्ध पारसी दानवीर, गांधीजीके मित्र और मेजबान श्री जे० बी० पेटिटकी पत्नी।

२. अनसूया साराभाई, अहमदाबादके प्रमुख मिल-मालिक अम्बालाल साराभाईकी बहन; देखिए खण्ड १४।

३. इसी समय पं० मदनमोहन मालवीय गांधीजीसे मिलने आये। इस विवरणका उत्तरांश मालवीयजीके साथ हुए वार्तालापसे सम्बन्धित था।

४. यह उनके २६ जुलाईके उस पत्रके उत्तरमें लिखा गया था, जिसमें उन्होंने गांधीजीसे अपील की थी कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित हो जानेके बाद अब उनको मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड संवैधानिक सुधारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेमें हाथ बँटाना चाहिये।

५. थियोसोफिस्ट, **न्यू इंडिया**के सम्पादक।

६. देखिए परिशिष्ट १।

भारतके मर्मभागको स्पर्श करती है। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि अंग्रेजों और हमारे बीचके राजनैतिक सम्बन्ध किसी ठोस नींवपर आधारित हों। इस प्रक्रियामें मदद देनेके लिए मैं अपनी सारी शक्तिसे प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं राजनीतिक सुधारमें ज्यादा दिलचस्पी नहीं लेता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि योग्य व्यक्ति उसपर ध्यान दे रहे हैं। रौलट कानूनके साथ राजनैतिक सुधारकी बात जोड़ना मेरी रायमें तो एक गतिरोध ही है। रौलट कानून द्वेषपूर्ण प्रवृत्तिके द्योतक हैं और अन्तमें अंग्रेज अधिकारी, यदि भारतीय लोकमत उनपर अच्छा असर न डाल सके तो, सुधारोंको व्यवहारमें बेकार कर डालेंगे। वे हमारा अविश्वास करते हैं और हम उनका अविश्वास करते हैं। दोनों ही एक-दूसरेको अपना स्वाभाविक शत्रु मानते हैं। इसीलिए रौलट कानून बनाये गये हैं। सिविलियन अफसरोंने हमें दबा रखनेके लिए ही ये कानून बनाये हैं। मेरे मतसे तो ये कानून भारतीय जनताके लिए नागपाशकी तरह हैं। इनके विरुद्ध लोकमत इतने अधिक स्पष्ट रूपमें प्रदर्शित किया जानेपर भी सरकार इन धिक्कारने-योग्य कानूनोंसे इतने हठपूर्वक चिपकी हुई है कि मुझे तो किसी बहुत बड़े अनिष्टकी आशंका होती है। चूँकि मेरे ऐसे विचार हैं, इसलिए सुधारोंमें दिलचस्पी लेनेकी मेरी अनिच्छापर आपको आश्चर्य नहीं होगा। रौलट कानून हमारे रास्तेको रोक रहे हैं। अन्य बातोंके साथ मार्गकी इस बाधाको दूर करनेके लिए भी मेरा जीवन समर्पित है।

इस बारेमें कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन सदा चलता ही रहेगा। यह जीवनका एक सनातन सिद्धान्त है। जीवनके बहुतसे क्षेत्रोंमें जाने-अनजाने हम उसपर अमल करते हैं। ये शंकाएँ और इतनी उत्तेजना इसीलिए है कि उस सिद्धान्तका नया और विस्तृत प्रयोग किया गया। वह स्थगित इसीलिए किया गया है कि उसके सच्चे स्वरूपका दर्शन कराया जा सके और रौलट कानून रद करनेकी जिम्मेदारी सरकार और उन नेताओंपर डाली जा सके जिन्होंने (आप सहित) उसे मुल्तवी करनेकी मुझे सलाह दी है। परन्तु मुनासिब मियादमें ये कानून रद न किये गये, तो जैसे रातके बाद दिनका आना निश्चित है, वैसे ही सविनय अवज्ञा भी निश्चित है। सरकारके शस्त्रागारमें एक भी हथियार ऐसा नहीं, जो इस सनातन बलको दबा सके अथवा नष्ट कर सके। सचमुच वह समय अवश्य आयेगा, जब वह दुःखोंके विरुद्ध न्याय प्राप्त करनेमें सबसे कारगर और साथ ही सबसे निर्दोष उपायके रूपमें स्वीकार किया जायेगा।

आपका सुझाव है कि इस समय हम सब एक हो जायें। मेरा खयाल है कि ध्येय तो हमारा एक है ही। परन्तु देशमें दल हमेशा रहेंगे। किसी भी सुधारके लिए सबके लिए एक सामान्य कार्यक्रम नहीं ढूँढ़ा जा सकता, क्योंकि कुछ लोग औरोंसे ज्यादा आगे जानेकी इच्छा रखनेवाले होंगे ही। मुझे ऐसी स्वस्थ विविधतामें कोई हर्ज मालूम नहीं होता। हममें से जो चीज मैं दूर करना चाहता हूँ, वह है हमारा एक-दूसरेपर अविश्वास और एक-दूसरेपर गलत इरादोंका आरोपण। हमें जिस पापने घेर रखा है, वह हमारा मतभेद नहीं बल्कि हमारा ओछापन है। हम शब्दोंपर झगड़ा करते हैं। कई बार तो हम परछाईंके लिए लड़ते हैं और मूल वस्तुको खो बैठते हैं; जैसा कि श्री गोखले कहा करते थे, हमारे देशमें राजनीतिका उपयोग या तो अपनेको आगे बढ़ानेकी सीढ़ीके तौरपर

किया जाता है और नहीं तो वह अवकाशके समय हमारे विनोदका साधन मात्र होती है।

मैं तो आपसे और अखबारोंके दूसरे सभी संपादकोंसे प्रार्थना करता हूँ कि हमारी राजनीतिमें उदारता, गाम्भीर्य और निस्वार्थभाव लानेका आग्रह कीजिये। फिर हमारे मतभेद आज जितने खटकते हैं, उतने नहीं खटकेंगे। असलमें खटकनेवाली वस्तु हमारे मतभेद नहीं बल्कि उनके पीछे छिपा हमारा ओछापन है और जो बेशक बड़ा भद्दा है।

पंजाबमें दी गईं सजाएँ रौलट-कानूनके विरुद्ध चलनेवाले आन्दोलनके साथ अटूट रूपसे गुँथी हुई हैं। इसलिए जितना जरूरी इस कानूनको रद कराना है उतना ही जरूरी इन सजाओंमें तबदीली कराना है। मैं आपसे सहमत हूँ कि प्रेस ऐक्टमें बुनियादी तबदीलियाँ करनेकी जरूरत है। असलमें तो सरकार अपने स्वेच्छाचारी शासनकृत्योंसे राजद्रोहका पोषण कर रही है। यह जानकर मुझे अफसोस हुआ कि 'हिन्दू' और 'स्वदेश मित्रम्' के विरुद्ध की गई कार्रवाइयों[1] (जो मेरी रायमें बिलकुल अनावश्यक थीं) की कुल जिम्मेदारी लॉर्ड विलिंग्डनने[2] अपने ऊपर ले ली है। इन कार्रवाइयोंसे इन दोनों पत्रोंकी प्रतिष्ठा अथवा लोकप्रियतामें कोई कमी नहीं हुई, उलटी वृद्धि ही हुई है। कोई भी पत्रकार उचित आलोचनाकी मर्यादाका उल्लंघन कर दे और राजद्रोहात्मक लेख लिखे तो उसे सजा देनेके लिए देशमें काफी अदालतें हैं। आप अधिकारोंके घोषणापत्रकी जो बात कर रहे हैं, वह मुझे पसन्द नहीं आया। यदि हम अंग्रेज कर्मचारियोंका मानस बदल पायें तो हम अधिकारोंके घोषणापत्रके मामलेमें बहुत आगे बढ़ जायेंगे। उन्हें और हमें परस्पर सम्माननीय मित्र बनना चाहिए या फिर सम्माननीय शत्रु। परन्तु जबतक हम बहादुर, निर्भय और स्वतंत्र नहीं बनेंगे तबतक दोनोंमें से कुछ नहीं हो सकेगा। लॉर्ड विलिंग्डनने एक बार कहा था कि जब तुम्हारे मनमें 'न' हो तब परिणामोंसे डरे बिना 'न' कहो। मुझे लगता है कि उनकी यह सलाह याद रखने लायक है। सविनय अवज्ञाका शुद्ध रूप तो यही है। मैत्री और प्रेमका यही मार्ग है। परम्परासे चला आ रहा दूसरा मार्ग सम्मानपूर्ण खुली हिंसा करना है — जिस हदतक वह सम्मानपूर्ण हो सकती है। मेरा खयाल तो यह है कि हिंसाका मार्ग मनुष्यके लिए सम्मानपूर्ण नहीं है। इसलिए मैंने पहला, अहिंसाका रास्ता हिन्दुस्तानके आगे रखा है। जब उसका पूर्ण रूपमें आचरण किया जाता है तब वह सत्याग्रह कहलाता है। यही मार्ग मनुष्यकी शोभाके अनुरूप है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–८–१९१९

१. सरकारने मद्रासके इन दोनों पत्रोंसे दो-दो हजारकी जमानतें माँग ली थीं तथा पंजाब और ब्रह्मामें **हिन्दू**के प्रवेशपर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

२. १८६६–१९४१; बम्बईके गवर्नर; भारतके वाइसराय, १९३१-६।

५. पत्र : छगनलाल गांधीको

बम्बई
सोमवार [अगस्त ४, १९१९][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

भाई हनुमन्तराव भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) में थे। उनकी देखभाल करना। बा के पास रहनेका इन्तजाम कर देना। उन्हें मैंने लिखा है कि वे जबतक रहना चाहें तबतक रहें।

६०० रुपयेके बैंक-नोटकी रकमको अकाल खातेमें जमा करवाना है। और यह भी लिख देना कि यह रकम इंग्लैंडसे प्राप्त हुई है।

सुन्दरम् [घर] पहुँच गया है। लगता है, बरसात इस बार कुछ ज्यादा हुई है।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ६७८५) की फोटो-नकलसे।

६. पत्र : मनुभाई नन्दशंकर मेहताको

लैबर्नम रोड
गामदेवी, बम्बई
[अगस्त ४, १९१९][2]

भाईश्री मनुभाई,

मैं गत बृहस्पतिवारको बीजापुरमें था। वहाँ जाते हुए रास्तेमें हजारों स्त्री-पुरुषोंसे मिला। मैं स्वदेशी-आन्दोलनके सिलसिलेमें ही वहाँ गया था।

भड़ौंचकी एक प्रख्यात विधवा बहन बीजापुरमें रहती हैं। उन्हींकी मार्फत वहाँ कातनेका, और अब बुननेका भी काम चलता है। उनका नाम गंगाबेन है। इस कार्यका उद्देश्य यह है कि देशमें अधिक कपड़ा तैयार किया जाये। जिन भी बहनों तथा भाइयोंके पास अवकाश हो, उन्हें उसमें सूत कातना चाहिए और अगर बन सके तो बुनना चाहिए। ऐसा करके अन्तमें हम किसानोंको उनका पुराना सहायक धंधा सौंप देना चाहते हैं। इस कार्यक्रमके अन्तर्गत बीजापुरमें इस समय सवा सौ स्त्रियाँ सूत

१. पत्रमें किसी और व्यक्तिकी लिखावटमें सोमवारके नीचे ये तारीखें दी हुई हैं: ३ अगस्त, १९१९; श्रावण सुदी ७, १९७५; तथापि अगस्त १९१९ में पहला सोमवार ४ तारीख तदनुसार श्रावण सुदी ८, १९७५ को पड़ा था।

२. अगस्त ४, १९१९ को गांधीजी बम्बईमें थे और उसी दिन अहमदाबादके लिए रवाना हुए थे।

कातती हैं और तदनुसार दो-चार अथवा कुछ-अधिक पैसे भी रोजाना कमा लेती हैं। ये स्त्रियाँ इस कार्यको हाथमें लेनेसे पहले कहीं भी काम नहीं करती थीं। गंगाबेन आदि यह काम प्रभु-प्रीत्यर्थ कर रही हैं।

अभी एक करघा भी लगाया गया है। मैंने देखा कि इस संस्थाको जगहकी बड़ी तंगी है। राज्यसे मेरी माँग यह है: [वह] स्टेशनके पास एक अथवा दो एकड़ जमीन दे दे और उस जमीनपर तुरन्त रहने तथा काम करने लायक मकान बनवा दे। उसका भाड़ा देनेके लिये मैं तैयार हूँ। अगर [आप] इतना करा दें तो उपर्युक्त कार्य अधिक सुचारु ढंगसे चल सकेगा। मेरी इच्छा तो यह है कि यदि महाराजा साहबको यह प्रवृत्ति पसन्द हो तो वे अधिकारियोंको भी [इस कार्यमें] मदद करनेकी सलाह दें। मुझे प्रोत्साहन मिलेगा तो मुझे उम्मीद है कि बीजापुर रियासतमें थोड़े समयमें ही बहुत ज्यादा कपड़ा तैयार हो सकेगा और किसान तथा इतर वर्गको अपनी आयमें वढ़ोतरी करनेका एक साधन मिल जायेगा।

यह तो हुई एक वात।

रेलगाड़ीमें मैंने देखा कि [उसमें] व्यक्तियोंको बकरियोंके समान ठूँसा जाता है। डिब्बे बहुत ही कम हैं तथा एक ही गाड़ी आती और जाती है। यह पर्याप्त नहीं है। मेरी आकांक्षा है, यदि इस सम्बन्धमें कुछ किया जा सकता हो तो आप अवश्य करें।

पत्रके लिए क्षमा चाहता हूँ।

आपका,

श्री मनुभाई नंदशंकर
दीवान
बड़ौदा

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ६७९६) की फोटो-नकलसे।

७. पत्र: ए० एच० वेस्टको

आश्रम
साबरमती
अगस्त ४, [१९१९]

प्रिय वेस्ट,[1]

बम्बईसे लौटनेपर तुम्हारा पत्र अभी-अभी पढ़ा। चूँकि तुम मेरे ही हाथका लिखा चाहते हो इसलिए मैं तत्काल लिखे देता हूँ, ताकि कहीं ऐसा न हो कि काममें फँसे रहनेके कारण फिर लिख ही न पाऊँ।

तुम्हारी सभी उलझनों और चिन्ताओंके प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। तुम्हारी माताके देहान्तका समाचार पाकर दुःख हुआ।

१. अल्बर्ट हेनरी वेस्ट; इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस, फीनिक्सके प्रबन्धक। दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके घनिष्ठ मित्र और साथी। देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ३५४।

जब मैंने महादेवसे देवीकी कुशल-क्षेम पूछी तो पता चला कि पिछले कुछ समयसे उसका कोई पत्र नहीं आया है। चूँकि वह पत्र-व्यवहारमें बहुत नियमित है इसलिए मुझे चिन्ता हुई।

जब आश्रममें मेरा रहना होता है तब 'इंडियन ओपिनियन' जरूर पढ़ लिया करता हूँ। मैं तो वह [जानकारी] चाहता था जो तुम 'इंडियन ओपिनियन' के द्वारा मुझे नहीं दे सकते थे।

मुझे पूरा यकीन है कि मैंने दूसरा पत्र लिखनेके बहुत पहले ही पी० आर० [पारसी रुस्तमजी ?] को हिदायत दे दी थी। परन्तु मेरी चिट्ठियाँ कई हाथोंसे गुजरती हैं, इसलिए कभी-कभी वे इधर-उधर हो जाती हैं।

मणिलालको एक माहका नोटिस देकर उसकी ओरसे पत्रका सम्पादन करना बन्द कर दिया जाये। तुम्हारे इस कथनसे मैं सहमत हूँ कि अगर अब भी उसे लिखनेकी आदत नहीं हो पाई तो पत्रका प्रकाशन बन्द कर दिया जाये।

मेरी अब भी पत्रमें बाहरी विज्ञापन छापने या छापेखानेमें फुटकर छपाईका काम करनेकी राय नहीं है। परन्तु चूँकि मैं मणिलालकी रुपये पैसेसे मदद नहीं करना चाहता, इसलिए मैंने उससे कह रखा है कि वह अपनी जिम्मेवारीपर चाहे जो कर सकता है।

श्री एन्ड्रयूज[1] तो तफसीलोंके मामलेमें एक निकम्मे आदमी हैं। इसलिए उन्होंने मुझे सामान्य सूचनाएँ ही भेजी हैं। परन्तु प्रति सप्ताह पत्र — व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक — लिखनेके बन्धनसे मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ — जब लिख सको तभी लिखना। दक्षिण आफ्रिकाके सम्वाददाताके कामके लिए 'क्रॉनिकल' को मैंने तुम्हारा नाम सुझाया है। यदि तुम उनके लिए लिख सको, तो वे तुम्हें पारिश्रमिक देंगे। पारिश्रमिक स्वीकार करनेमें मुझे कोई हर्ज नहीं लगता।

मैं हमेशाकी तरह काममें पूर्ण रूपसे व्यस्त हूँ। सुना जाता है, मेरी गिरफ्तारी शीघ्र ही होनेवाली है।

आश्रम बढ़ रहा है। हरिलाल कलकत्तेमें है। उसके बच्चे मेरे पास हैं; देवदास आजकल मेरे साथ मुसाफिरीमें है। छगनलाल और मगनलाल यहीं मेरे पास हैं। आनन्दलाल[2] नवजीवन प्रेसका प्रबन्ध करता है। आश्रम, विद्यालय तथा बुनाईशाला लगातार प्रगति कर रहे हैं। मेरी इच्छा थी कि तुम इन चीजोंको किसी दिन स्वयं आकर देखते।

तुम सबको मेरा प्रेम।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४३२) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ए० एच० वेस्ट

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज (१८७१-१९४०); अंग्रेज धर्म प्रचारक जिनकी मानवतापूर्ण सेवाओंके कारण भारतवासी उन्हें 'दीनबन्धु' के नामसे पुकारने लगे थे।

२. गांधीजीके चचेरे भाई अमृतलालके लड़के।

८. सत्याग्रहियोंको डिगानेकी कोशिश

माननीय श्री सी० वाई० चिन्तामणिने[1] ४ जुलाईके 'इंडिया' में अपने एक विशेष लेखमें लिखा है कि सर माइकेल ओडायर[2] के —

> **बारेमें कहा जाता है कि वे रौलट कानून विरोधी आन्दोलन तथा सत्याग्रह-प्रदर्शनके खिलाफ कार्रवाई करनेके अपने इरादेकी घोषणा शान्तिभंग होनेके पहले ही कर चुके थे।**

हमें ज्ञात है कि [आन्दोलनके] कारण और परिणाम दोनों ही के बारेमें उन्होंने क्या-कुछ अन्दाज लगा रखा था। हमें यह भी मालूम है कि पंजाबकी शान्ति-भंग करनेमें उन्हें जबरदस्त सफलता मिली है। यद्यपि सर माइकेल इस समय सशरीर भारतमें उपस्थित नहीं हैं तथापि भावनाके रूपमें तो वे यहाँ हैं ही। जरा पंजाबके उन अनेक मामलोंपर जिनके बारेमें हम अपने विचार इस पत्रमें प्रकाशित कर चुके हैं, गौर कीजिए। अगर मार्शल लॉ के न्यायाधीशगण पंजाब अथवा भारतमें सत्याग्रहकी भावना समाप्त नहीं कर पाये तो निस्सन्देह इसमें उनका कोई दोष नहीं है; बल्कि इसमें दोष तो ओडायरकी उस भावनाका है जो यहाँसे ब्रह्मदेशतक जा पहुँची है और ब्रिटिश भारतके[3] उस प्रान्तके लेफ्टिनेन्ट गवर्नरमें भी उस भावनाकी झलक दिखाई पड़ रही है। 'एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया' की खबरके अनुसार ब्रह्मदेशकी सरकारके मुख्य सचिवने पहली अगस्तको ब्रह्मामें आयोजित प्रान्तीय सार्वजनिक सभाके दो संयोजकों को, जो भारतीय हैं, यह लिख भेजा है कि यदि सार्वजनिक सभामें ब्रह्मदेशकी सुधार योजनाके विषयमें ही वाद-विवाद किये जायें तो कोई आपत्ति नहीं होगी;

> **परन्तु प्रकाशित प्रस्तावोंकी आड़में या कार्यक्रममें गिनाये गये प्रस्तावोंके सिवा असंगत मामले प्रस्तुत करनेपर गम्भीर आपत्ति की जायेगी।**

सचिव आगे चलकर कहता है कि

> **विशेष रूपसे लेफ्टिनेन्ट गवर्नरका इरादा ऐसी सभाओंके लिए अनुमति देनेका नहीं है कि जिनमें सत्याग्रह छेड़नेका समर्थन किया जाये अथवा जिनमें पंजाबके हालके दंगोंको दबाने या रौलट अधिनियमको पास करनेके सिलसिलेमें सरकारकी नीतिकी आलोचना की जाये।**

जनता ब्रह्मदेशको दिये जानेवाले राजनैतिक सुधारोंपर विचार व्यक्त करे परन्तु पंजाबमें क्या घटनाएँ घटीं, उनसे वह कोई सरोकार न रखे। ब्रह्माकी सरकारने दूरदर्शितासे काम लिया है। उस दिन पहली अगस्तको रंगूनमें क्या हुआ सो हमें नहीं मालूम और न हमें यही मालूम है कि सभाके भारतीय आयोजकोंने मुख्य सचिवको

१. सर चिरावुरी यज्ञेश्वर चिंतामणि (१८८०-१९४१); राजनीतिज्ञ तथा **लीडर**के सम्पादक।
२. पंजाबके गवर्नर।
३. बर्मा १९३५ तक भारतका अंग था।

उत्तरमें क्या लिखा, परन्तु यह स्पष्ट है कि जबतक हमारे द्वारा उद्धृत पत्रकी शब्दावलीमें निहित भावना बनी हुई है तबतक ब्रह्मदेशको प्राप्त होनेवाले सुधार ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकते।

उस भावनाकी प्रतिध्वनि बम्बईके समीप भी सुनाई दे रही है। अब हमें पहलेकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह मालूम हो गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा अहमदाबादके कुछ सत्याग्रही वकीलोंके नाम नोटिस जारी किये जानेका कारण क्या था। उस नोटिसके जारी किये जानेका कारण जिला न्यायाधीश, अहमदाबाद द्वारा बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकके नाम लिखा एक पत्र था। उस पत्रका[1] सम्पूर्ण पाठ हम अन्यत्र दे रहे हैं। अब देखना है कि आगामी २५ तारीखको जब उच्च न्यायालयमें मामलेपर बहस शुरू होगी तब उच्च न्यायालय क्या करता है। परन्तु अहमदाबादके जिला-जजने मामलेपर जिस तरह पहलेसे ही फतवा दे दिया है वह अजीब-सा लगता है। वे 'लीग'की गतिविधियोंको — हमारा खयाल है 'लीग' से उनका मतलब सत्याग्रह सभासे[2] है — गैरकानूनी मानते हैं और धृष्टतासे भरी हुई यह बात कहते हुए नहीं हिचकिचाते कि

> **सत्याग्रहका स्थगित किया जाना निस्सन्देह, महज एक ऐसी चाल है जिसका मंशा यह है कि सत्याग्रहियोंके प्रभाव तथा उपदेशोंके परिणामस्वरूप — चाहे वह परिणाम प्रत्यक्ष रहा हो अथवा अप्रत्यक्ष — किये गये कृत्योंके सम्बन्धमें दिया जानेवाला दण्ड उनको न भोगना पड़े।**

हम 'धृष्ट' विशेषणका प्रयोग जान-बूझकर कर रहे हैं, क्योंकि इस बहुमूल्य पत्रके दूसरे ही अनुच्छेदमें लिखनेवालेकी यह राय स्पष्ट हो जाती है कि

> **उपरोक्त सज्जन सच्चे दिलसे और अन्तरात्मासे यह मान बैठे हैं कि रौलट कानून एक अपराध है। चूँकि उनके दिलमें यह धारणा जम चुकी है इसलिए**

१. यह पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। देखिए **टू मैमोरेबल ट्रायल्स ऑफ महात्मा गांधी,** पृष्ठ २३-२६; सम्पादक: आर० के० प्रभु, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९६२।

अहमदाबादके जिला-जजने अपने २२ अप्रैल, १९१९ के पत्रमें उन दोनों बैरिस्टरों तथा अहमदाबादके तीन वकीलों द्वारा सत्याग्रहकी शपथ लेनेके औचित्यका प्रश्न उठाया था। इसके अनुसार उन वकीलोंने इन (रौलट) कानूनोंकी तथा उन अन्य कानूनोंकी, जिनको इसके बाद नियुक्त होनेवाली समिति ठीक समझे — सविनय अवज्ञा करनेका भार अपने ऊपर लिया था। न्यायाधीशका खयाल यह था कि सनदकी रू से उन वकीलोंका इस प्रकार व्यवहार करना उनके व्यावसायिक स्तर तथा कर्त्तव्योंसे असंगत है। जजके इस प्रकार लिख भेजनेपर, बम्बई उच्च न्यायालयने अपने अनुशासन-सम्बन्धी अधिकार-क्षेत्रके अन्तर्गत १८ जुलाईको उन वकीलोंके खिलाफ नोटिस जारी किये। जिला-जजके उस पत्रकी एक प्रतिलिपि गांधीजीके हाथ लग गई। गांधीजीने उस पत्रको अपनी उक्त टिप्पणीके साथ **यंग इंडिया**में प्रकाशित कर दिया। उच्च न्यायालयने १५ अक्तूबरको वकीलोंके खिलाफ अपना निर्णय दे दिया। फैसलेपर गांधीजीकी टिप्पणियोंके लिए देखिए **यंग इंडिया,** २२-१०-१९१९ में "द सत्याग्रही लॉयर्स" शीर्षक

२. मार्च ३, १९१९ को रौलट अधिनियमका विरोध करनेके लिए स्थापित सभा। गांधीजी इसके अध्यक्ष थे।

यदि वे उसका विरोध करनेमें कानूनका उल्लंघनतक कर डालें तो मैं उन्हें दोष नहीं देता।

इन वकीलोंपर यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो उनको न जानता होता, ऐसे अशोभनीय इरादेका आरोप लगाता तो हम उसे असम्मानपूर्ण कहते लेकिन जब एक ऐसे विद्वान् जिला-जज जो इन वकीलोंके बारेमें बड़ी ऊँची राय रखनेकी बात करते हैं, उनपर यह आरोप लगाते हैं तो यह आरोप अक्षम्य हो जाता है। पत्रके अन्तिम अनुच्छेदसे इस मामलेमें जिला-जजकी भावनाओंका साफ-साफ पता चल जाता है। उनका कथन है कि इन दो बैरिस्टरोंके मुकदमे निपटानेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है, और वे आगे चलकर कहते हैं कि "बहुत सम्भव है कि अहमदाबादकी अभी हालकी घटनाओंके फलस्वरूप उनके खिलाफ [हमारा] कोई कदम उठाना अनावश्यक भी हो जाये", हमारा खयाल है कि उनका अर्थ यह है कि विशेष न्यायाधिकरण अभियोग लगायेगा और उन्हें दण्डित करेगा। यह सच है कि उनपर अभीतक [विशेष] न्यायाधिकरण द्वारा अभियोग नहीं लगाया गया है, परन्तु इसमें जिला-जजकी कोई गलती नहीं — उन्होंने तो यह निश्चित रूपसे कह दिया था कि इन लोगोंने देशके कानूनके उल्लंघनका अपराध किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्याग्रहियोंको कुचलनेके लिए कहीं कम तो कहीं ज्यादा सरगर्मीके साथ कोशिशें की जा रही हैं। मगर इस प्रकारकी कोशिश फिजूल है। सत्याग्रहकी भावना तो दमनसे और फलती-फूलती है। कोई इक्का-दुक्का तथाकथित सत्याग्रही तो कष्टोंसे घबराकर घुटने टेक भी सकता है और सिद्धान्तसे मुँह मोड़ सकता है; परन्तु सत्याग्रह यदि एक बार लौ पकड़ ले तो उसे बुझाया नहीं जा सकता। इस मामलेमें शोचनीय यही है कि सत्याग्रह तथा सत्याग्रहियोंके ये विरोधी जान-बूझकर या अनजाने ही बोल्शेविज्मके प्रचारके साधन बनते जा रहे हैं। यहाँ भारतमें बोल्शेविज्मका यही अर्थ समझा जाता है कि वह एक हिंसापूर्ण अराजक भावना है। दूसरोंपर अपना सिद्धान्त जबरदस्ती थोपनेके मौजूदा तरीकेके अतिरिक्त बोल्शेविज्म और कुछ नहीं है।

ब्रह्माकी सरकार, पंजाबकी सरकार, अहमदाबादके जिला-जज ये सब अपने-अपने तरीकोंसे दूसरोंपर, यहाँ सत्याग्रहियोंपर — जबरदस्ती अपनी बात थोपनेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं कि सत्याग्रहका मूलतत्त्व यही है कि विरोध या अवज्ञा करनेके दण्डको धैर्यपूर्वक सहन करके अत्याचारीकी मरजीका विरोध किया जाये। इसलिए बोल्शेविज्मके शमनके लिए सत्याग्रह ही प्रभावकारी ओषधि है और जो लोग सत्याग्रहकी भावनाको कुचलनेकी सबसे ज्यादा कोशिश कर रहे हैं वे बोल्शेविज्मकी आगको प्रज्ज्वलित करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहे हैं।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–८–१९१९

१. बादमें इस लेखके कारण गांधीजीपर "अदालतकी मानहानि" का मुकदमा चलाया गया था। देखिए "पत्र : बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", अक्तूबर २२, १९१९।

९. पत्र : एस० आर० हिगनेलको

[अगस्त ७, १९१९][1]

प्रिय श्री हिगनेल,

टर्कीके प्रश्नसे सम्बन्धित अपने २७ जुलाईके पत्रके सिलसिलेमें मैं एक लेखकी प्रतिलिपि संलग्न कर रहा हूँ। श्री मार्माडच्यूक पिकथॉल द्वारा लिखित स्तम्भित कर देनेवाला यह लेख १० जुलाईके 'न्यू एज' में प्रकाशित हुआ था। इसमें दी गई जानकारी प्रामाणिक मालूम पड़ती है। यदि स्थिति वास्तवमें ऐसी है तो यह बड़े दुःखकी बात है। मुझे लगता है जनताको इसकी जानकारी न देना अनुचित होगा। मैं अपनी पूरी शक्तिके साथ वाइसराय महोदयसे आग्रह करता हूँ कि किसी तरह सम्भव हो तो वे इस बारेमें तुरन्त एक सार्वजनिक घोषणा करके जनताकी दुश्चिन्ताओंको शान्त करें। मेरी विनम्र राय है कि यदि कमजोर राष्ट्रोंके साथ ऐसा ही बर्ताव किया जायेगा — जैसा कि लगता है टर्कीके साथ किया जानेवाला है — तो शान्तिकी बात एक मखौल बनकर रह जायेगी। इस पूरे मामलेमें न्यायका जो प्रश्न निहित है, उसके अलावा उसमें यह प्रश्न भी निहित है कि क्या भारत सरकार इस बातके लिए तैयार है कि साम्राज्यके करोड़ों नागरिकोंके हृदयोंमें असन्तोष इसी प्रकार सुलगता रहे। मैं नहीं मान सकता कि खिलाफतके प्रश्नका कोई उचित हल निकालना वाइसरायकी शक्तिसे बाहर है।

मैं यह भी बतला दूँ कि मैंने अपने पिछले पत्रमें जिस नोटिसका उल्लेख किया था, उसकी शर्तोंके अनुसार मैंने श्री पिकथॉलके लेखको प्रकाशित करनेकी अनुमति लेनेके लिए बम्बई सरकारको प्रार्थना-पत्र भेज दिया है।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६७९०) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र और पिछला शीर्षक एक ही दिन लिखे गये जान पड़ते हैं।

१०. पत्र : जेम्स क्रिररको

[अगस्त ७, १९१९][1]

प्रिय श्री क्रिरर,

मैंने अभी-अभी १० जुलाईके 'न्यू एज' में श्री मार्माड्यूक पिकथॉलका हैरतमें डाल देनेवाला एक लेख देखा है। राजनीति-विभाग (पोलिटिकल डिपार्टमेंट) ने अन्य समाचारपत्रोंके साथ-साथ 'यंग इंडिया' को भी एक गुप्त नोटिस संख्या ४५१५ दिनांक २३ जुलाई, १९१९ को भेजा है। उसमें कहा गया है कि भारत सरकार चाहती है कि टर्कीके साथ सुलहकी शर्तोंको या इस विषयसे सम्बन्धित किसी भी ऐसे समाचारको भारतके समाचारपत्रोंमें, भारत सरकारकी पूर्व-अनुमति लिए बिना प्रकाशित न किया जाये, जिससे भारतकी जनतामें उत्तेजना फैलनेकी आशंका हो। इस जानकारीको प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें मैं अपने विचार वाइसराय महोदयको लिख चुका हूँ। मैंने उनको यह भी लिखा है कि इस मामलेमें जनताको सन्तोष दिलानेके लिए सार्वजनिक रूपसे घोषणा करना आवश्यक है। आप जानते ही हैं कि 'यंग इंडिया' की नीति पूरी तौर पर मेरी ही देखरेखमें निर्धारित होती है और मैं उसमें प्रकाशित होनेवाली सारी सामग्रीपर नियंत्रण रखता हूँ। मुझे लगता है कि श्री पिकथॉलने इस प्रश्नका जो विश्लेषण किया है, उसे मुझे जनताकी नजरमें लाना ही चाहिए। मुझे एकाएक विश्वास नहीं होता कि उस लेखमें दी गई सूचना सही है। लेकिन स्पष्ट है कि उन्होंने जो लिखा है, अधिकारपूर्वक लिखा है और उद्धृत-सामग्री उद्धरण चिह्न लगाकर जैसीकी-तैसी दी है। कृपया मुझे जितनी जल्दी हो सके बतलाइये कि प्रकाशनके मामलेमें सरकार क्या चाहती है। मैं आपकी आसानीके लिए मूल लेख संलग्न कर रहा हूँ।[2]

हृदयसे आपका,

मो० क० गां०

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६७८९) की फोटो-नकलसे।

१. जेम्स क्रिरर द्वारा ५ सितम्बरको लिखित उत्तरमें इस तिथिका उल्लेख है।

२. जेम्स क्रिररने, गांधीजीका पत्र गलत पतेपर पहुँच जानेके कारण, उत्तर भेजनेमें विलम्बके लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए लिखा था : "आप यदि अभी उस लेखको प्रकाशित करनेका विचार कर रहे हों तो मेरी समझमें उल्लिखित नोटिसकी शर्तें उसपर लागू होती हैं।

श्री पिकथॉलने जहाँसे हवाले दिये हैं, वे कागज तो मेरे पास नहीं हैं। लेकिन उन्होंने अपने लेखके अन्तिम भागमें एक बड़ी ही गलत बात कही है कि 'कॉन्फ्रेन्स' मुस्लिम भावनापर आधारित सभी दलीलोंको हास्यास्पद समझती है। यह तो इस सम्बन्धमें ज्ञात सभी तथ्योंके विरुद्ध पड़ती है और उसके प्रकाशनसे भारतीय जनताके दिमागमें एक बिलकुल ही गलत तसवीर बनेगी।"

११. पत्र : अब्दुल अज़ीज़को

बम्बई,
अगस्त ८, १९१९

प्रिय श्री अब्दुल अज़ीज़,

जब सर नारायण चन्दावरकरने[1] खुली चिट्ठी लिखी और जब सविनय अवज्ञा — जिसे गलत तौरपर 'पैसिव' (निष्क्रिय) कहा गया है — फिरसे शुरू करनेके प्रस्तावके बारेमें सरकारने मेरे सामने दलीलें रखीं, तब मैंने थोड़े समयके लिए उसे मुल्तवी करके नम्रतापूर्वक उसकी बात मान ली। इसलिए मेरे लिए और कोई उत्तर देना ज़रूरी नहीं था। परन्तु आपकी खुली चिट्ठीमें[2] कुछ बुनियादी मुद्दे पेश किये गये हैं। सविनय अवज्ञाके विरुद्ध जो विभिन्न आपत्तियाँ उसमें उठाई गई हैं, उनका ब्यौरेवार उत्तर देनेकी आवश्यकता है।

आपने कृपापूर्वक पत्र लिखा इसलिए सर्वप्रथम मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें। आपको यह जाननेमें दिलचस्पी होगी कि दक्षिण आफ्रिकाकी आठ सालतक चलनेवाली लम्बी लड़ाईमें आपके जिलेके कुछ दिलेर पठान भी मेरे साथ सत्याग्रहीके रूपमें काम करते थे। उनमें से एक नेटालकी एक खानमें काम करते थे। उनके जमादारने उनको बुरी तरह पीटा था। कारण इतना ही था कि वे मेरे साथ सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें शरीक हुए थे। अपकार करनेवालेका विरोध न करने, परन्तु उसकी इच्छाके आगे न झुकनेकी अपनी प्रतिज्ञासे वे बँधे हुए थे, इसलिए उन्होंने अवज्ञाका यह दण्ड चुपचाप सहन कर लिया। वे मेरे पास आये, उन्होंने मुझे अपनी पीठपर पड़े निशान दिखाते हुए कहा : "मैंने अपनी प्रतिज्ञा और आपकी खातिर इसे सहन किया है। वरना मैं एक पठान हूँ और मुझपर जो हाथ उठाये उसे मैं यों ही नहीं छोड़ता।" उनके इस कष्ट-सहनसे और उन जैसे हजारों दूसरे लोगोंके कष्ट-सहनके कारण ही वह तीन पौंडका घृणित व्यक्ति-कर रद हुआ था, जो हमारे गरीब देशबन्धुओं, उनकी पत्नियों और उनके बालकोंको गिरमिटसे छूटनेके बाद नेटालमें स्वतंत्र मनुष्यकी हैसियतसे रहनेकी कीमतके तौरपर हर साल देना पड़ता था।

जिस विचारने नेटालके मूक मजदूरोंको जुल्मसे छुड़ाया, अब उसीका प्रयोग छोड़ देनेको आप मुझसे कहते हैं। जिस प्रयोगने इस्लामको दुनियाके महान् धर्मोंमें एक जीवन्त धर्म बनाया, उसे छोड़ देनेको आप मुझसे कह रहे हैं। सन् १९१७ में[3] चम्पारनमें अधिकारियोंने मुझे जिला छोड़कर चले जानेका हुक्म दिया था। उसकी जब मैंने सविनय अवज्ञा की, तब कोई अनिष्ट परिणाम नहीं हुआ। मेरा यह दावा है

१. नारायण गणेश चन्दावरकर (१८५५–१९२३); समाज-सुधारक तथा उच्च न्यायालयके न्यायाधीश।

२. यह २७–७–१९१९ के **पायनियर** में प्रकाशित हुई थी। देखिए परिशिष्ट २।

३. देखिए खण्ड १३।

कि चम्पारनके गरीब किसानोंमें और बिहारकी सरकारमें भी किसी हदतक जो जाग्रति हुई, उसकी बुनियाद मेरी इस सविनय अवज्ञासे ही पड़ी है। जिस सिद्धान्तको मैं पिछले चालीस वर्षसे बहुत मूल्यवान मानता रहा हूँ और गत तीस वर्षसे अपने जीवनमें काफी सफलताके साथ सोच-समझकर जिसका प्रयोग करता रहा हूँ, उसे मैं कैसे छोड़ दूँ?

परन्तु आप पिछली अप्रैलके दर्दनाक अनुभव उद्धृत करके यह बात कह रहे हैं। क्या आपने वास्तवमें परिस्थितिका अच्छी तरह विश्लेषण कर लिया है? ६ अप्रैलका दिन कन्याकुमारीसे पेशावरतक और कराचीसे कलकत्तेतक करोड़ों स्त्री-पुरुषों और बच्चों द्वारा मनाया गया था। इस जैसी घटना हमारी याददाश्तमें तो कभी नहीं हुई। उस दिन पेशावरमें क्या हुआ, यह मैं नहीं जानता। परन्तु मुझे मालूम है कि हिन्दुस्तानके सभी बड़े-बड़े शहरों और लाखों गाँवोंमें वह दिन शान्तिसे गुजरा और मेरा कहना है कि यह बात बड़ी स्पष्टताके साथ सिद्ध करती है कि सविनय अवज्ञाकी सम्भावनाएँ कितनी हैं। ६ अप्रैलको असलमें कहीं भी सविनव अवज्ञा नहीं की गई, वह दिन तो तैयारीका था। दुनियाकी अन्य कोई भी सरकार होती तो इस नये बलको मान्यता देती और इसके सामने साहसपूर्वक सिर नवाकर इन सबकी जड़ रौलट कानूनको रद कर देती। परन्तु पंजाब सरकार तो पागल हो गई है। उसने भारत सरकारसे अपनी जिद पूरी कराकर छोड़ी। इस प्रकार क्रूर दमन-नीति शुरू हुई। दो नेताओंको नजरबन्द करके निर्वासित कर दिया गया। वे जानते थे कि मैं दिल्ली और जरूरी हुआ तो वहाँसे पंजाब शान्ति-कार्यके लिए जा रहा था। फिर भी मुझे वहाँ जानेसे रोक दिया गया और मैं गिरफ्तार कर लिया गया। नजरबन्दीमें ही मुझे बम्बई लाकर छोड़ दिया गया।[१] उसके बाद विस्फोट हुआ। मैं यह कहना चाहता हूँ कि पंजाब सरकारने जान-बूझकर और द्वेषपूर्वक पंजाबमें बलवा करानेकी योजना बनाई होती, तो वह भी इससे ज्यादा कारगर कदम नहीं हो सकता था। फिर भी सत्याग्रहका बल देखिए कि पंजाब और गुजरातके तीन स्थानोंको छोड़कर बाकी सारा हिन्दुस्तान इतनी गम्भीर उत्तेजना होते हुए भी काफी शान्त बना रहा। मैंने अपनी भूल स्वीकार कर ली है। थी क्या मेरी भूल? मेरी भूल इतनी ही थी कि मैंने दु:ख और कष्ट सहन करनेकी लोगोंकी क्षमताके बारेमें गलत हिसाब लगाया था। पंजाबके नेताओंकी गिरफ्तारीसे उत्पन्न उत्तेजनाके बावजूद पंजाबके लोगोंका शान्त बने रहना सम्भव था। किन्तु जो-कुछ भी हुआ वह उनकी सहन-शक्तिसे बाहर था। अमृतसरके लोग अपने-आपपर काबू न रख सके। अपने नेताओंका देश-निकाला वे बर्दाश्त न कर सके। उसके बाद जो-कुछ हुआ, उसमें किसका कितना दोष था, इसका निबटारा आप या मैं नहीं कर सकते। सत्याग्रहका सवाल एक तरफ रखकर हमें इस प्रश्नका निराकरण करना पड़ेगा कि क्या सेनाके गोली चलानेसे लोग पागल बने या भीड़के दंगोंसे सेनाको मजबूर होकर गोली चलानी पड़ी?

१. गांधीजीको अप्रैल ९ को दिल्लीके पास गिरफ्तार किया गया था और दूसरे दिन बम्बई लाकर छोड़ दिया गया था।

खैर, जो-कुछ हुआ, सो हुआ परन्तु देशके कुछ भागोंमें विशेष कारणोंसे लोगोंने पिछले अप्रैल मासमें हिंसाका प्रयोग किया इस आधारपर मैं सविनय अवज्ञा फिरसे शुरू करनेका विचार स्थायी रूपसे कैसे छोड़ सकता हूँ? सम्भव है, कुछ लोग उसी वक्त दुष्कृत्य करने लगें तो क्या मैं सत्कृत्य करना छोड़ दूँगा? मैं मानता हूँ कि यह सवाल इतना सरल नहीं है, जैसा मैंने पेश किया है। हरएक कार्यके पीछे विविध प्रकारकी कुछ जटिल परिस्थितियाँ होती हैं, जिनमें से कुछ तो कर्त्ताके वशमें होती हैं और कुछ वशके बाहर; इसलिए कर्त्ता तो इतना ही कर सकता है कि आसपासकी परिस्थितियोंपर अधिकसे-अधिक काबू पानेतक खुद कोई कदम न उठाये और फिर भगवान्पर भरोसा रखकर अपना कदम उठाये। सविनय अवज्ञा मुल्तवी करके मैंने ठीक ऐसा ही किया है। मैंने दिखाया है कि सविनय अवज्ञा अपराधपूर्ण अवज्ञासे बिलकुल उलटी है। सविनय अवज्ञा सरकारके साथ सहयोग और आदरकी वृत्तिके साथ पूरी तरह सुसंगत है।

मेरे खयालसे आप पेशावरका उदाहरण इसलिए दे रहे हैं कि लोगोंने विचार किये बिना अथवा शरारती लोगोंके पीछे लगकर ६ अप्रैलके कार्यक्रममें भाग लिया। शायद उन्होंने वैसा ही किया हो, जैसा आप कहते हैं। परन्तु जो घटनाएँ हुई हैं, उनका मैं आपसे भिन्न अर्थ ही लगाता हूँ। रौलट कानून न बनाया गया होता, तो किसी भी किस्मके प्रदर्शन न होते और शरारती लोगोंको मौका नहीं मिलता। इन प्रदर्शनों अथवा सविनय अवज्ञाका संगठन करनेमें कोई गलत बात नहीं थी, गलत बात तो यह थी कि सरकारने लोकमतको इस हदतक ठुकराया कि उसके फलस्वरूप एक इतना बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसकी सरकारने कल्पनातक नहीं की थी।

इससे जो सार निकलता है वह तो स्पष्ट ही है। सार यह है कि सरकारको लोकमतके आगे झुकना चाहिए और अपना कदम पीछे हटा लेना चाहिए। यह मान भी लें कि रौलट कानून द्वारा दिये गये अधिकार जरूरी हैं, तो भी सरकारको इसके लिए धीरजके साथ लोकमत तैयार करना चाहिए और ऐसे उपाय अख्तियार करने चाहिए और उतने ही अधिकार लेने चाहिए, जिन्हें प्रबुद्ध लोकमत स्वीकार कर ले। यहाँ तो सरकारने अपने मित्रोंकी सलाहकी उपेक्षा की है और ऐसा करके महत्त्वके मामलोंमें सरकारपर असर डालनेमें उनकी असमर्थता सिद्ध करके उन्हें हँसीका पात्र बना दिया है। मेरी विनम्र राय यह है कि आप और आपकी तरह दूसरे नेतागण मुझे खुली या खानगी चिट्ठियाँ लिखनेके बजाय सरकारको लिखें। और उससे अपनी भूलें सुधारनेको कहें। मुझे अपने कर्त्तव्य-पथसे विचलित होनेके लिए कहना अनुचित है। मैं आशा रखता हूँ कि आप इसपर तो मुझसे सहमत होंगे कि जिन रौलट कानूनोंके प्रति इतना विरोध जागा है और जिनके कारण इतना खून बहा है, वे रद होने चाहिए। इसके लिए सविनय अवज्ञाके सिवा और कोई उपाय आपके पास हों, तो आपको अवश्य आजमाने चाहिए और यदि उसमें आपको सफलता मिले तो अपने-आप सविनय अवज्ञाके लिए कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। इस स्थगन-कालमें आपको

और दूसरे नेताओंको, जिन्हें सविनय अवज्ञासे भय है या जो उसे नापसन्द करते हैं, अपनी सारी ताकत लगाकर इष्ट परिणामके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-८-१९१९

१२. भाषण : 'डेकन सभा', पूनाकी बैठकमें[1]

शुक्रवार, अगस्त ८, १९१९

तुमुल हर्षध्वनिके बीच, श्री गांधीने अपने स्थानसे उठकर निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किये :

'डेकन सभा'के तत्त्वावधानमें आयोजित पूनाके नागरिकोंकी यह सार्वजनिक सभा दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय प्रवासियोंके प्रति, जो बुनियादी नागरिक अधिकारोंके लिए संघर्ष कर रहे हैं, गहरी सहानुभूति प्रदर्शित करती है तथा उनको वीरतापूर्वक और दृढ़ताके साथ यह संघर्ष चलानेके लिए साधुवाद देती है और मातृभूमिके हार्दिक समर्थनका उनको विश्वास दिलाती है। यह सभा भारत सरकारको भी भारतीय मामलेकी पैरवी करनेके लिए धन्यवाद देना चाहती है और पूर्ण रूपसे विश्वास करती है कि जबतक हालमें पास हुए कानूनको वापस लेकर और निवास, व्यवसाय तथा स्वामित्व सम्बन्धी पूरे-पूरे अधिकार बहाल करके दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्याय नहीं किया जाता, तबतक भारत सरकार तथा सम्राट्की सरकार चैनसे न बैठेंगी।

श्री गांधी हिन्दीमें बोले।[2] उन्होंने श्रोताओंसे कहा : हालमें पास किये गये अन्यायपूर्ण कानूनके जरिये दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके हितोंपर कैसा कुठाराघात किया गया है, इसका पूरा-पूरा अनुमान करना आप लोगोंके लिए कठिन है। इस विषयपर आप लोगोंको गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। अपने मुसीबतजदा देशवासियोंकी हर तरहसे मदद करना आप लोगोंका कर्त्तव्य है। श्री गांधीने कहा कि मेरे पास बम्बईसे एक तार आया है, जिसमें मेरे नाम सर जॉर्ज बार्न्सके एक पत्रका उल्लेख है। सर जार्ज बार्न्सने उसमें यह वचन दिया है कि भारत सरकार मेरे प्रत्येक सुझावपर ध्यानपूर्वक विचार करेगी और यह भी कहा गया है कि भारत सरकारने इस सम्बन्धमें

१. पूनाकी 'डेकन सभा'ने ट्रान्सवालके कानूनोंके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए पूनाके नागरिकोंकी एक सभा किर्लोस्कर थियेटरमें आयोजित की। सभाके अध्यक्ष सर डुरमसजी वाडियाकी अनुपस्थितिमें, अवकाश-प्राप्त डिप्टी-कलक्टर तथा सभाके उपाध्यक्ष राव बहादुर खोपकरने अध्यक्षता की थी।

२. भाषणकी हिन्दी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

भारतमंत्रीके साथ पत्र-व्यवहार शुरू भी कर दिया है। गांधीजीने कहा कि मैं भारत सरकारके प्रति उसके सहानुभूतिपूर्ण रुखके लिए कृतज्ञ हूँ। गांधीजीने साफ कहा कि इस नये कानूनके परिणामस्वरूप भारतीय दक्षिण आफ्रिकाके अधिवासी-नागरिक बनने, औरोंकी भाँति व्यवसाय करने और भू-सम्पत्ति रखने आदिके अपने बुनियादी अधिकारोंसे वंचित हो जाते हैं। गांधीजीने डॉक्टर सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकरकी[1] अध्यक्षतामें पूनामें १८९६ में होनेवाली एक सभाका उल्लेख किया, जिसमें इसी प्रकारके एक अन्यायपूर्ण कानूनका[2] विरोध किया गया था। उस अवसरपर डॉ० भाण्डारकरने कहा था कि वे कभी राजनीतिमें भाग नहीं लेते और न कभी इस प्रकारकी इच्छा ही उनके मनमें उठती है; परन्तु चूँकि इस बातका यकीन होनेपर कि ट्रान्सवालमें रहनेवाले भारतीयोंको असहनीय कष्ट हो रहे हैं, उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सभाकी अध्यक्षता स्वीकार करनेका निश्चय किया। गांधीजीने श्रोताओंको स्मरण दिलाया कि पूना राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षणिक आन्दोलनोंका एक बड़ा केन्द्र रहा है; इसलिए वर्तमान आन्दोलनमें भी पूनाका योगदान बहुत ठोस होना चाहिए। जनरल स्मट्सने दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना होते समय महायुद्धके दौरान भारतके द्वारा किये गये बलिदानोंकी प्रशंसा की थी; श्री गांधीने उसका भी उल्लेख किया और कहा कि जनरल स्मट्सकी सिफारिशका आशय यह था कि भारतके साथ समानताका व्यवहार किया जाना चाहिए। इसके बाद भी वही संघ-सरकार, जनरल स्मट्स जिसके सदस्य हैं — एक ऐसा निन्दनीय कानून पास करने जा रही है। श्री गांधीने जोर देकर कहा कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय, संघ सरकारसे राजनैतिक अधिकार नहीं माँगते और न वे दक्षिण आफ्रिकाकी संघ संसदमें बैठनेका हक ही तलब कर रहे हैं। उस देशमें अप्रतिबन्धित आव्रजनका भी कोई अन्देशा नहीं है। यह बड़े दुखकी बात है कि ट्रान्सवालके लोग भारतीयोंको निवास, कारोबार चलाने या अपनी ही कमाईके रुपयोंसे जमीन खरीदने-जैसे साधारणसे अधिकारोंका दिया जाना भी बरदाश्त नहीं कर सकते। क्या भारतीयोंको उनके बिलकुल ही बुनियादी अधिकारोंसे वंचित रखना या उनके मुँहसे रूखा-सूखा रोटीका टुकड़ा छीनना उन्हें शोभा देता है? श्री गांधीने श्रोताओंको बतलाया कि वहाँके भारतीयोंने अब ठान[3] लिया है कि वे इसका जवाब अब पूरे नागरिक अधिकारोंकी माँग करके देंगे और जबतक वे प्राप्त न होंगे तबतक सत्याग्रह आन्दोलन चलाते रहेंगे। ट्रान्सवालके लोगोंने इस कानूनके जरिये यह चाहा कि भारतीयोंको स्वर्ण खानोंके क्षेत्रमें व्यापार करनेका जो अधिकार निर्विवाद रूपसे सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके द्वारा मिल चुका है, उनसे छीन लिया जाये। ट्रान्सवालके लोगोंका कहना

१. डॉ० रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर (१८३७–१९२५); प्राच्य विद्या-विशारद और समाज-सुधारक।

२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १४७।

३. 'बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स' में प्रकाशित विवरणके अनुसार गांधीजीने भारतीयोंकी उस सभाका उल्लेख किया था जो दक्षिण आफ्रिकामें ४ अगस्तको हुई थी।

था कि इस नये कानूनमें भारतीयोंके जानेमाने अधिकारोंको मान्यता दी गई है; और उन्होंने तो मुझपर यह आरोपतक लगाया था कि मैंने एक प्रकारसे अधिनियमका समर्थन किया था। श्री गांधीने कहा कि यह सरासर झूठ है। परन्तु ट्रान्सवालके लोग इस विधानसे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। श्री गांधीने कहा कि उनमें से कुछ ट्रान्सवाली सज्जन भारतीयोंको बिलकुल ही पृथक करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। वे भारतीयोंसे अपना कारोबार अपनी बस्तियोंमें ही सीमित रखनेको कहते हैं। ये बस्तियाँ भारतके गाँवोंके महारवाड़ों[1] अथवा भंगीवाड़ोंके समकक्ष हैं। इसका तो यह अर्थ हुआ कि भारतीय आपसमें ही व्यापार चलायें। श्री गांधीने भाषण समाप्त करते हुए कहा कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके लिए वैसा ही सत्याग्रह करनेका समय आ पहुँचा है जैसा उन्होंने कुछ वर्ष[2] पूर्व चलाया था, जिसका स्वर्गीय श्री गोखलेने अनुमोदन किया था और जिसे उन्होंने अपना आशीर्वाद भी दिया था। ट्रान्सवालमें भारतीय जब एक ऐसे संकटके द्वारपर खड़े हों, तब यहाँ भारतमें आप लोगोंको यही उचित है कि आप उनकी समस्याको पूर्ण रूपसे समझें; औरोंकी अपेक्षा महाराष्ट्रके लोगोंके लिए यह अधिक उचित है क्योंकि वह अपनी विद्वत्ता और अध्ययन-परायणताके लिए प्रख्यात है। आप दक्षिण आफ्रिकाकी स्थितिका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें और तन-मनसे समस्याका हल निकालनेका प्रयत्न करें। प्रस्तावका अनुमोदन प्रोफेसर काले[3], श्री भोपटकर[4] और श्री देवधरने[5] किया। प्रस्ताव सर्व-सम्मतिसे पास हुआ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-८-१९१९

१३. भाषण: गुजराती बन्धु-समाजकी सभामें

पूना

[अगस्त ८, १९१९]

मैं आजकल स्वदेशीकी बात करता हूँ। अन्य प्रवृत्तियोंसे समय बचाकर मैं वह सारा समय स्वदेशीपर ही लगाता हूँ। स्वदेशीसे ही हमें स्वराज्यकी प्राप्ति होगी। जिस समय मैंने सूरतमें "स्वदेशी और स्वराज्य" पर भाषण[6] दिया था उस समय मुझे खयाल आया कि मुझे उपस्थित लोगोंको समझाना चाहिए कि मैं जो-कुछ चाहता

१. महाराष्ट्रकी एक हरिजन-जाति।

२. १९१३-१४ के सत्याग्रहकी ओर संकेत है; देखिए खण्ड १२।

३. प्रो० वामन गोविन्द काले, समाज-सुधारक, लेखक व अर्थशास्त्री।

४. लक्ष्मण बलवंत भोपटकर, प्रख्यात वकील, व्यायाम-विशारद और राजनीतिज्ञ।

५. गोपाल कृष्ण देवधर (१८७९-१९३५); भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के सदस्य और श्रीनिवास शास्त्रीके बाद उसके अध्यक्ष।

६. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ ५०१-५०८।

हूँ वह सब स्वदेशीमें ही आ जाता है। मैं इस समय इसीका प्रचार करना चाहता हूँ और मुझे उम्मीद है कि भारतमें चन्द दिनों अथवा चन्द महीनोंमें वाइसरायसे लेकर भंगीतक सभी व्यक्ति यह जान जायेंगे कि स्वदेशीसे ही स्वराज्यकी प्राप्ति होगी।

इसके लिए स्वदेशी [के आदर्श] को शुद्ध बनाये रखना आवश्यक है। यह इतनी महत्त्वपूर्ण वस्तु है कि इसे दूषित नहीं करना चाहिए।

भारत इस समय तीन तापोंसे पीड़ित है:

(१) रोग: भारतके लोग अपने इतिहासमें, किसी भी समय, इतने अधिक रोगोंसे पीड़ित नहीं थे। यहाँ जितने लोग रोगोंसे परेशान रहते हैं उतने सारी दुनियामें अन्यत्र कहीं नहीं रहते।

(२) भुखमरी: पिछले कई वर्षोंके अनुभवसे यह बात सिद्ध हो गई है कि भारतकी अधिकांश जनता भूखों मरती है। सर विलियम विल्सन हंटरने चालीस वर्ष पूर्व स्पष्ट रूपसे बताया था कि भारतकी तीन करोड़ आबादीको दिनमें केवल एक बार ही भोजन मिलता है और वह भी सूखी रोटीका टुकड़ा और नमक। इससे अधिक उन्हें — घी, तेल या मिर्च — कुछ भी नहीं मिलता। ऐसी दुर्दशा तो हमारी चालीस बरस पहले थी। प्रत्येक अधिकारीको 'नीली पुस्तिका' में यह लिखना पड़ा है कि भारतकी गरीबी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। और गाँवोंमें घूमने-फिरनेवाले लोग जानते हैं कि हमारे किसान-वर्गकी स्थिति तो और भी बुरी है। गुजरातमें रहनेवाले लोगोंसे पूछनेपर पता चलेगा कि उन्हें दूध प्राप्त करनेमें कितनी दिक्कतका सामना करना पड़ता है। छः मासके बच्चेके लिए भी दूध जुटानेमें काफी कठिनाई होती है। अहमदाबादके आसपासके गाँवोंमें लोगोंसे पूछनेपर मुझे हमेशा यही जवाब मिलता है कि हमें दूध नहीं मिलता इतना ही नहीं, हमारे बच्चोंको भी वह नसीब नहीं होता। इससे पता चलेगा कि चालीस वर्ष पूर्व हमारी जो स्थिति थी, उससे कहीं अधिक बुरी स्थिति आज है।

(३) नग्नावस्था: इस समय भारत वस्त्रके अकालसे भी पीड़ित है। सर दिनशा वाछाके[1] हिसाबके अनुसार चार वर्ष पहले भारतके प्रत्येक मनुष्यको १३ गज कपड़ा मिल पाता था। अब केवल ९ गज ही मिलता है। अर्थात् अब प्रत्येक व्यक्तिके पीछे कपड़ेमें चार गजकी कमी हुई है तथा उसी मात्रामें हमारी गरीबीमें बढ़ोतरी हुई है।

दो वर्ष पूर्व मैं जब चम्पारनमें काम कर रहा था तब मुझे इस बातका निजी अनुभव हुआ था। चम्पारनकी स्त्रियोंने मुझसे बिना किसी झिझकके स्पष्ट शब्दोंमें शिकायत की थी कि हमारे पास तन ढकनेको पर्याप्त वस्त्र नहीं है तो फिर हम नहा-धोकर स्वच्छ कैसे रह सकती हैं? अपनी पवित्र-हृदय बहनोंकी ऐसी शोचनीय अवस्था देखकर मेरा हृदय आठ-आठ आँसू रोता था।

जो देश इन तीन तरहकी व्याधियोंसे पीड़ित है उस देशसे शौर्य, धैर्य तथा सचाई आदि गुणोंका लोप हो गया है। जिस देशके लोगोंमें इन तीन गुणोंका अभाव

१. सर दिनशा ईदुल्जी वाछा, १८४४–१९३६; प्रसिद्ध पारसी राजनीतिज्ञ; १९०१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

है वे अधार्मिक हैं तथा मैं तो उनके लिए 'नामर्द' शब्दतकका प्रयोग करूँगा। मैं भारतके विषयमें भी आजकल इस शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ।

इस परिस्थितिका विचार करके जब मैं भाई-बहनोंसे [इसका उपाय] पूछता उस समय एक उत्तर तो मुझे यह मिलता कि धर्मकी स्थापना करनी चाहिए। निस्संदेह हमने धर्मको खो दिया है; लेकिन ऐसी परिस्थितियोंमें धर्मकी पुनः स्थापना करना अत्यन्त कठिन काम है। कारण, ऐसी दुर्दशामें पड़े हुए मनुष्यके लिए धर्मका पालन बहुत दुस्साध्य है। यह तो कोई बिरला महात्मा ही कर सकता है। मैं तो ऐसे लोगोंको 'योगी' ही कहता हूँ, लेकिन सबके-सब लोग योगी नहीं बन सकते। और इसलिए आत्माकी शुद्धिके लिए शरीरकी शुद्धि भी आवश्यक है। "शुद्ध शरीरमें ही शुद्ध आत्मा निवास करती है।" शौर्य आदि गुणोंका जीर्णोद्धार करनेके लिए इन त्रिविध तापोंका संहार किया जाना चाहिए। इन दिक्कतोंके बीच जो मनुष्य अपने धर्मका पालन कर सकता है उसे मैं योगी कहता हूँ।

इस रोगका उपचार करनेके लिए हमें प्रबल प्रयत्न करना चाहिए, और इसके लिए ज्ञानकी आवश्यकता है। ऐसे रोगोंसे पीड़ित लोगोंका उपचार करनेके लिए हमें अपना समय देना होगा। पहले तो हमें इस बातकी जाँच करनी चाहिए कि लोग अपने आलस्यके कारण भूखों मरते हैं अथवा वास्तविक अभावके कारण। भारतमें अनाज तो प्रचुर मात्रामें है; वह भूखोंको दिया जाना चाहिए। लेकिन उसे खरीदनेके लिए धनकी आवश्यकता है और इसीकी कमीके कारण भारत गरीब है।

इस स्थितिका मुकाबला करनेके लिए स्वदेशीकी जरूरत है। अपनी रुई और अपने रेशमकी रक्षा करना — इसे ही हम स्वदेशी कहते हैं। आजकलकी परिस्थितियोंको देखते हुए मैंने स्वदेशीकी यह संकुचित व्याख्या की है। हमने गत वर्ष सूती कपड़ेके लिए ५६ करोड़ रुपये तथा रेशमी कपड़ेके लिए ४ करोड़ रुपये विदेशोंको भेजे। आदरणीय दादाभाई नौरोजी कहा करते थे कि भारतसे बहुत सारा धन बाहर चला जाता है। यह सच है कि सेनाके महकमेमें तथा पेन्शन आदि देनेमें काफी धन व्यय होता है, परन्तु मेरा कहना तो यह है कि स्वदेशीकी भावनाके अभावके कारण जितना पैसा जाता है उतना और किसी तरीकेसे नहीं जाता। गत वर्ष १८ करोड़ रुपयेकी चीनी आयात की गई। और इसी तरह दूसरी अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जो आयात की जाती हैं और हमारा पैसा विदेशोंको जाता है, पर इस समय मैं उनकी चर्चा नहीं करूँगा। अभी तो मैं केवल जड़को ही पकड़ना चाहता हूँ और इसे पकड़ लेनेसे दूसरे तरीकोंसे बाहर जानेवाले पैसेका जाना स्वयमेव बन्द हो जायेगा। इसलिए हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वर्तमान परिस्थितियोंमें हमें संकुचित स्वदेशी-व्रतका पालन करना चाहिए और उसके लिए मैंने जो तीन व्रत आपके सामने रखे हैं उनपर अमल किया जाना चाहिए। [यदि आप] सूतके व्यापारमें अपना अधिकार जमा लेंगे तो अन्य दूसरी चीजें आसानीसे मिल जायेंगी। आज हम अपनी जरूरतका कपड़ा तैयार नहीं कर सकते, हमारी मिलें हमारी जरूरतको पूरा नहीं कर सकतीं। भारतमें जो वस्तुएँ तैयार नहीं की जातीं उन्हें तैयार करवानेके उपाय किये जाने चाहिए। यह एक प्रश्न है। इस समय मैं मिल-मालिकोंके साथ इस विषयपर बातचीत कर रहा हूँ और सर फज़ल-

भाई करीमभाईके साथ बातचीत करते समय उन्होंने मुझे बताया था कि मिलोंको जरूरतका कपड़ा तैयार करनेमें अभी पचास वर्ष लगेंगे। तो क्या हम पचास वर्ष राह देखते हुए बैठे रहेंगे? उद्योग-आयोगकी रिपोर्टमें बताया गया है कि भारतमें हाथ-बुनाईसे एक तिहाई कपड़ा तैयार हो सकता है और यदि उसका विकास हो तो हमें अधिक सुविधा हो जाये। मिलोंके लिए तो यन्त्र चाहिए, यन्त्रके लिए हम दूसरोंपर निर्भर करते हैं; विदेशोंमें उतने यन्त्र नहीं हैं। मिल-मालिकोंका कहना है कि एक यन्त्र लानेमें एक वर्ष लगता है तथा उसको लगानेमें बहुत दिक्कतका सामना करना पड़ता है। इन सब कठिनाइयोंको देखते हुए हाथसे बुननेका काम अत्यन्त आसान है, क्योंकि उसमें इतने प्रयत्न नहीं करने पड़ते। यह काम सामान्य व्यक्ति छः महीनेमें सीख सकता है। और यदि उसमें सामान्य बुद्धि भी हो तो वह तीन महीनेमें ही इस कामके लिए तैयार हो जाता है। सूत कातना तो बहुत ही आसान है। मैंने यह काम पन्द्रह दिनोंमें ही सीख लिया था।

डेढ़ सौ वर्ष पहले हम [अपने वस्त्र] अपने हाथोंसे ही तैयार किया करते थे। भारतकी प्रत्येक माता यह काम प्रभु-प्रीत्यर्थ किया करती थी। भारतकी नारियोंमें सूत कातनेकी यह प्राचीन इच्छा अभीतक देखनेमें आती है। अभी हाल ही में जब मैं बीजापुर और कलोलकी ओर गया था उस समय मैं लगभग बीस हजार स्त्री-पुरुषोंसे मिला। उनके साथ बातचीतके दौरान स्त्रियोंने मुझे बताया कि यह प्रयोग बहुत अच्छा और सरल है और यदि आप हमें चरखा प्रदान करें तो हम भी यह काम करेंगी। इस समय बीजापुरमें डेढ़ सौ स्त्रियाँ हररोज आध मन रुई कातती हैं और अगर ज्यादा रुई दी जाये तो चार सौ स्त्रियाँ काम करनेको तैयार हैं। कलोलकी स्त्रियोंका भी यही कहना है। मद्राससे मेरे प्रिय मित्र श्री चेट्टियार मुझसे मिलने आये थे। और जब मुझे यह खबर मिली कि श्रीमती चेट्टियार भी साथ आई हैं तब मैंने श्री चेट्टियारसे कहा कि मैं उन्हें यहाँ आठ दिन रोकूँगा; कारण, यदि वे कातनेका काम सीखकर जायें तो अच्छा हो। इसे उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया और वे काम सीखकर ही गईं। उन्होंने मेरी इस इच्छाको मेरे प्रति प्रेमके कारण नहीं बल्कि इस कामके प्रति प्रेमभाव होनेके कारण ही स्वीकार किया था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सूत कातनेका काम हमें विरासतमें मिला है। जिन्होंने डारविनको पढ़ा है वे विरासतके सिद्धान्तसे परिचित हैं। यदि हम अपने इस धन्धेको फिरसे नहीं अपनायेंगे तो हम अपनी विरासत खो बैठेंगे। मैं आपसे कहता हूँ कि आप इसके प्रति अश्रद्धा न रखें। हम प्रयत्न करेंगे तो अनुकूल वातावरण तैयार हो जायेगा और हम अपनी इस परित्यक्त विरासतको वापस ला सकेंगे।

आचार्य परांजपेने[1] कहा था कि हम सारी दुनियासे होड़में नहीं टिक सकते; लेकिन इसमें होड़का प्रश्न नहीं है। यह तो किसानों और गरीबोंकी आर्थिक मुक्तिका प्रश्न है। किसान जगत्का पिता है। अमेरिका अथवा जापानका उदाहरण लीजिए। [वहाँ] किसानोंकी मदद की जाती है। हमारे गवर्नर महोदय भी यह बात जाननेके लिए

१. रैंगलर रघुनाथ पुरुषोतम परांजपे, फर्ग्युसन कॉलेज, पूनाके प्रिंसिपल।

उत्सुक हैं कि किसानको किस तरह मदद दी जा सकती है। इसका निर्णय तो अर्थशास्त्रके सिद्धान्तके आधारपर ही हो सकता है।

मेरी सलाह है कि आप युवक लोग इस कामको हाथमें ले लें। यह काम सरल है; इसमें कष्ट नहीं है। इसमें बहुत ज्यादा दिमाग लगानेकी भी जरूरत नहीं है; केवल अनुभवकी जरूरत है। यह उद्योग हमें अधिक स्वतन्त्रता देता है। सूत कातनेवालेको तीन आने रोजकी कमाई होती है; लेकिन जो व्यक्ति बुनाईका काम करता है उसे लगभग आठ आने मिलते हैं। बम्बईके मदनवाड़ीके बुनकरोंसे बात करनेपर मुझे मालूम हुआ कि उनमें से बहुतसे लोग प्रतिदिन एकसे दो रुपयेतक कमा लेते हैं। हमें इस उद्योगकी जरूरत है; इसका व्यापक प्रचार होना चाहिए। शिक्षित-वर्गको भी थोड़ा-बहुत इसका अभ्यास करना चाहिए। इंग्लैंडमें जिस तरह प्रत्येक लड़का नौसेनाके कामको जानता है उसी तरह हमें भी यह काम सीखना चाहिए।

इसलिए, यदि भारतके लोग इस मन्त्रको समझ लें तथा अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझकर इसका पालन करें तो भारतकी आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी तथा भुखमरी और रोगोंका नाश हो जायेगा। चूँकि आप लोग इस बातको अच्छी तरह समझते हैं इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप उसपर अमल करें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१०-१९१९

१४. रौलट कानून

श्री मॉण्टेग्युने अपना वक्तव्य दे दिया है। उनका "विश्वास है कि रौलट कानूनने कार्यकारिणी परिषद्को जो अधिकार दिये हैं वे आवश्यक हैं।" बहुतसे मित्र पूछते हैं कि ऐसा वक्तव्य दे देनेपर भी क्या कानून रद होगा? मेरा जवाब है कि बंग-भंगके मामलेमें भी मि० मॉर्लेने कहा था कि वह "सुनिश्चित तथ्य" है, फिर भी वह रद कर दिया गया था।[1] इसी तरह रौलट कानून भी रद ही होगा। जनरल स्मट्सने बार-बार जोर देकर घोषणा की थी कि एशियाई पंजीयन अधिनियम[2] कभी रद नहीं किया जायेगा, फिर सन् १९१४में वह कानून भी रद हो गया था। इसलिए मुझे तो पूरा यकीन है कि रौलट कानून भी हट जायेगा, क्योंकि कष्ट-सहनकी अर्थात् सविनय प्रतिकारकी शक्तिके बारेमें मेरा विश्वास है कि वह पहाड़ जैसी कठिनाइयोंको भी पार कर सकती है। मुझे तो अफसोस इस बातका है कि जिस कानूनका उसमें निहित अनिष्टकी दृष्टिसे और इस दृष्टिसे भी कि लोकमतने इतने कठोर शब्दोंमें उसकी निन्दा की है, जरा भी समर्थन नहीं हो सकता, उसका समर्थन करने श्री मॉण्टेग्यु सामने आये हैं। अपनी स्थितिकी सफाई देनेके लिए मि० मॉण्टेग्युको घटिया

१. ब्रिटिश मालके बहिष्कारके उग्र जन-आन्दोलनके फलस्वरूप १९११ में बंगालका विभाजन रद कर दिया गया था।

२. देखिए खण्ड ९, परिशिष्ट १।

किस्मके तर्कों और तथ्योंकी तोड़-मरोड़का सहारा लेना पड़ा है। कार्यकारिणी परिषद्के अधिकारियोंको जो अधिकार दिये हैं, वे इस समय तो अनावश्यक हैं इसका एक सीधा-सा कारण यह है कि भारत-रक्षा कानून अभी अमलमें है और अगले कुछ मास-तक अमलमें रहेगा भी। उन्हें सचमुच ऐसे अधिकार देने जरूरी ही हों, तो वे किसी दूसरे कम अपमानजनक तथा अधिक संयत ढंगसे दिये जा सकते हैं। श्री मॉण्टेग्यु और लॉर्ड चैम्सफोर्ड राजनैतिक सुधारोंकी इस योजनाके संयुक्त प्रणेता हैं। यदि इन सुधारोंसे कुछ भी भला करनेका इरादा हो, तो जिस कानूनसे वह व्यर्थ हो जाता है, उस कानूनका समर्थन करना श्री मॉण्टेग्युको शोभा नहीं देता।

किन्तु यह लेख लिखनेका उद्देश्य यह तर्क करना नहीं है कि श्री मॉण्टेग्युकी बात टिक नहीं सकती। मुझे तो यह दिखाना है कि रौलट कानून बनाये रखनेका ही आग्रह हो तो सरकारको बहुत जबरदस्त सविनय अवज्ञा आन्दोलनके लिए तैयार रहना चाहिए, जो पूर्ण रूपसे सम्मानकी भावना रखते हुए तो किया जायेगा, परन्तु होगा उतना ही अटल। सवाल बिलकुल सीधा-सा है: जनताकी इच्छा सर्वोपरि रहे या सरकारकी? मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि कोई भी सरकार, वह कितनी ही बलवान और स्वेच्छाचारी क्यों न हो, सर्वसम्मत लोकमतके आगे झुकनेके लिए बाध्य है। यदि बल-प्रयोगके आगे — फिर वह एक व्यक्तिका हो या सरकारका — सत्य और न्यायको झुकना पड़े तो वह एक बड़ी ही भौंडी परिस्थिति होगी। मेरे जीवनका ध्येय यही साबित करना है कि सत्यका समर्थन करनेवाले नीतिबलके आगे जबरदस्तसे-जबरदस्त शरीर-बलको झुकना ही पड़ता है। पिछले अप्रैल मासमें इतनी उत्तेजना होनेपर भी लोगोंने यदि हिंसाका आश्रय न लिया होता, तो अभी तक रौलट कानून कभीका वापस ले लिया गया होता। इस समय मेरा यह लेख लिखना जितना सुनिश्चित सत्य है, उतनी ही सुनिश्चित यह बात मेरे मनमें है। मुझे आशा है कि श्री मॉण्टेग्यु, लॉर्ड चैम्स-फोर्ड और दूसरे सत्तारूढ़ अधिकारी अब समझ लेंगे कि सच्ची प्रतिष्ठा न्याय करने और लोकमतका आदर करनेमें ही है। परन्तु सम्भव है कि उनके विचार दूसरी तरहके हों। उस स्थितिमें मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी शीघ्र सफलता चाहनेवालोंसे कहूँगा कि वे इसकी सुगमताके लिए वातावरण तैयार करें। हमें यदि लड़ना ही पड़ा, तो दो ताकतोंका जबरदस्त मुकाबला होगा। परन्तु परिणाम निश्चित है। सविनय अवज्ञाकी यह अपनी विलक्षणता है। अन्यायके विरुद्ध न्याय हासिल करनेका यदि लोगोंके पास बिलकुल ही कोई उपाय न हो, तो उनका नाश ही हो जाये। अधिकसे-अधिक निश्चित और निरापद उपाय सविनय अवज्ञा है। यूरोपका उदाहरण हमें हिंसाकी पद्धतिके विरुद्ध जीती-जागती चेतावनी साबित हो रहा है। वहाँ जो सुलह हुई, उससे वहाँके देशोंको शान्ति नहीं मिली। जहाँ देखिए वहीं हड़तालें, हिंसा और लूटमार नजर आ रही है। इंग्लैंड भी जो शायद सबसे बड़ा विजेता है, इन उत्पातोंसे मुक्त नहीं है। लड़ाईमें हुई विजयसे विशाल जनसमुदायको कोई सन्तोष नहीं मिला। हिन्दुस्तानको दो शस्त्रोंके बीच चुनाव करना है। हिंसाका शस्त्र टूटा-फूटा है और

सविनय अवज्ञा अर्थात् कष्ट-सहन द्वारा प्रतिकारका हथियार अटूट, शान्तिमय और उन्नतिकर है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-८-१९१९

१५. पत्र : जी० ए० नटेसनको

बम्बई

अगस्त ९, [१९१९]

प्रिय श्री नटेसन,

देवदासकी[1] बीमारीमें उसकी देखभालके लिए मैं आपका आभारी हूँ। डॉ० कृष्ण-स्वामीने देवदासकी बड़ी शुश्रूषा की है, उसके लिए आप मेरी ओरसे उन्हें धन्यवाद देनेकी कृपा करें।

आपको जब भी मेरे लेखों या कामोंकी आलोचना करना जरूरी लगे तो निःसंकोच ऐसा करें।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २९३१) की फोटो-नकलसे।

१६. पत्र : मोहनलाल पंड्याको[2]

आश्रम

मंगलवार [अगस्त १२, १९१९][3]

भाईश्री ५ मोहनलाल पंड्या,

मैं काममें इतना अधिक व्यस्त रहता हूँ कि मुझे जरा भी समय नहीं मिलता। इसी कारण आपको पत्र न लिख सका। रुईके आँकड़े मेरी भूलके कारण ही रह गये। अब बम्बई पत्र लिख रहा हूँ। [यह] तो आपने देखा [ही] होगा कि पंजाब जानेकी कोई जरूरत नहीं है। वहाँ क्या हाल है? कठलालमें स्वराज्यकी स्थापना किये बिना मुझे सन्तोष मिले, सो बात नहीं। स्वराज्य अर्थात् कठलाल अपने लिए अनाज, वस्त्र और जरूरतकी अन्य वस्तुओंमें आत्मनिर्भर हो जाये। हमने यह रास्ता नहीं अपनाया इसी-लिए हम भटक रहे हैं। स्वराज्य हम स्वयं अपने प्रयत्नोंसे ही प्राप्त कर सकते हैं। इसे प्राप्त करनेके लिए आप तथा भाई शंकरलाल अपने प्राणतक उत्सर्ग कर देना। आपमें

१. देवदास गांधी हिन्दी-प्रचार कार्यके सिलसिलेमें १९१८ से मद्रासमें थे।

२. खेड़ा-सत्याग्रहके एक सहयोगी; देखिए खण्ड १४, पृष्ठ ४०२-४।

३. स्पष्टतः यह पत्र गांधीजीके सितम्बर १९१९ में **नवजीवन** प्रकाशित करनेके कुछ समय पूर्व लिखा गया था। १४ अगस्त, १९१९ के दिन गांधीजी गोधरामें थे, और यह तिथि बृहस्पतिवारको पड़ी थी।

शक्ति है, इच्छा है और आपको लोगोंकी सहायता प्राप्त है। मैं बृहस्पतिवारको सवेरे गोधरा जा रहा हूँ। वहाँसे शुक्रवारको बम्बईके लिए रवाना हो जाऊँगा।

मुझे उम्मीद है कि मैं थोड़े ही समयमें जनताको गुजराती पत्र दे सकूँगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २१७२) की फोटो-नकलसे।

१७. लाला लाजपतरायके पत्रपर टिप्पणी[1]

[अगस्त १३, १९१९ से पूर्व]

यह पत्र[2] यद्यपि स्पष्टतः लाला लाजपतरायका भेजा हुआ है और 'यंग इंडिया' में प्रकाशित होनेके लिए है तथापि इसमें उनके हस्ताक्षर होनेसे रह गये हैं। फिरभी मैं उसके महत्त्वको देखकर इस चूकके बावजूद उसे प्रकाशित होने दे रहा हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३–८–१९१९ तथा गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६६६९) की फोटो-नकलसे।

१८. पत्र : अखबारोंको[3]

[पूना
अगस्त १३, १९१९]

मुझे ब्रिटिश भारतीय संघ, जोहानिसबर्गके अध्यक्ष श्री इब्राहीम इस्माइल अस्वातका निम्नलिखित तार अभी-अभी मिला है:

> **विधेयक २३ जूनको (गवर्नर जनरल द्वारा) मंजूर हुआ, ३ अगस्तको प्रख्यापित कम्पनी लॉ लागू होनेके पूर्व कम्पनियोंको और अधिक बॉण्डों तथा अचल सम्पत्तिको खरीदनेके जो अधिकार मिले हुए थे, उनको यह विधेयक प्रतिबन्धित करता है। पहली मईके पश्चात् नये परवाना-धारियोंपर लागू किये**

१. **यंग इंडियामें** लाला लाजपतरायका पत्र गांधीजीकी इस टिप्पणीके साथ प्रकाशित हुआ था। पत्रकी फोटो-नकलके शीर्षकमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें निम्नलिखित शब्द हैं; "लाला लाजपतरायके सिद्धान्त: निम्नलिखित पत्र प्रकाशनार्थ आया है।"

२. देखिए परिशिष्ट ३।

३. यह **बॉम्बे क्रॉनिकल**, १४–८–१९१९ और **इंडियन रिव्यू**, अगस्त १९१९ में भी छपा था।

> **गये स्वर्ण तथा बस्ती-अधिनियमोंकी पुनः पुष्टि करता है और वर्तमान व्यापारियों तथा उनके उत्तराधिकारियोंको उनकी बस्तियों-विशेष तक ही सीमित करता है। शिष्टमण्डल गवर्नर जनरलसे मिलने तथा उनसे आग्रहपूर्वक यह निवेदन करने जा रहा है कि यह एक वर्ग-विशेषको लाभ पहुँचानेवाला विधेयक है। इसलिए इसे मंजूरी न दें। सरकारने संसदमें आलोचकोंकी बात मानते हुए वचन दिया है कि समस्त संघमें भारतीय प्रश्नकी जाँच करनेके लिए (संसदके) अवकाशके समयमें दूसरा आयोग नियुक्त किया जायेगा। अन्देशा इस बातका है कि कहीं प्रतिबन्ध लगानेवाले अन्य कानून भी न बनाये जायें। समाज आपसे प्रार्थना करता है कि आप वाइसरायसे अपील करें और एक ऐसे शाही आयोग की नियुक्तिका प्रस्ताव रखें कि जिसमें संघके (स्थानीय) भारतीयों (के हितों) का प्रतिनिधित्व भारत करे। ४ अगस्तको आयोजित संघ भारतीय सम्मेलन बहुत सफल रहा। निश्चय हुआ कि मिलकर कदम उठाया जाये। अनेक संघोंने संकल्प किया कि अधिनियमका विरोध हर कीमतपर करेंगे — अस्वात।**

बीच-बीचमें जो शब्द डाले गये हैं, उन्हें मैंने इस उद्देश्यसे जोड़ा है कि अर्थ स्पष्ट हो जाये। मैंने सर जॉर्ज बार्न्ज़को उनके नाम लिखे गये पत्रमें जो बात लिखी थी तथा पूनामें[1] अभी हाल ही में एक सार्वजनिक सभामें जो कहा था, उसकी पुष्टि इस तारसे हो रही है। लगाये गये प्रतिबन्ध स्पष्ट हैं:

(१) ट्रान्सवालमें भविष्यमें मौजूदासे ज्यादा भू-सम्पत्ति न रखी जा सकेगी;

(२) स्वर्ण-कानून और बस्ती-अधिनियमसे प्रभावित क्षेत्रके अन्दर अब नये व्यापारिक परवाने न दिये जायेंगे,

(३) जिनके पास इस वक्त परवाने इत्यादि हैं, वे तथा उनके वैध उत्तराधिकारी अपना कारोबार उन्हीं बस्तियोंतक सीमित रखेंगे जिनमें वे आजकल व्यापार चला रहे हैं।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ इन प्रतिबन्धोंका अर्थ ट्रान्सवालमें बसे हुए भारतीयोंके कारोबारकी बरबादी ही होगा। वहाँके अधिकांश भारतीयोंकी रोजी-रोटीका एकमात्र साधन व्यापार है और सर्वाधिक भारतीय स्वर्ण क्षेत्रमें ही रहते हैं। यदि अधिनियम बना रहता है तो इस इलाकेमें रहनेवाली भारतीय जनता अपने-आप कम होती जायेगी और कुछ ही समयमें वहाँ उसका नाम भी न रहेगा।

तारमें 'मंजूरी' शब्द दो बार आया है। उसमें लिखा है कि विधेयकको मंजूरी दे दी गई है: उसमें इस बातका भी संकेत है कि एक शिष्टमण्डल दक्षिण आफ्रिकाके गवर्नर जनरलके पास आकर यह प्रार्थना करनेवाला है कि मंजूरी न दी जाये। इस तारमें 'मंजूरी' शब्द दूसरी जगह आया है वह कदाचित् अधिकार-पत्र (लेटर्स पेटेंट) में आई हुई उस धाराकी ओर संकेत करता है जिसमें वर्ग-विशेषके लिये लाभकारी

१. देखिए "भाषण: 'डेकन सभा', पूनाकी बैठकमें", ८-८-१९१९।

इस विधानका अपनी विशेष शक्तिसे निषेध करनेकी व्यवस्था है। यह धारा निश्चय ही अत्यन्त असाधारण परिस्थितियोंमें प्रयुक्त होनेके लिए है। इस बातसे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि एशियाई अधिनियम एक असाधारण स्थिति उत्पन्न करता है; इसलिए यह सम्राट्के निषेधका पात्र है।

परन्तु इस तारकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह तथ्य है कि संघ सरकारने आयोग-की नियुक्तिका वचन संघ-संसदमें भारतीयोंके "आलोचकों" को एक "रियायत" के रूपमें दिया है। इसलिए अगर भारत सरकार सावधान न रही तो बहुत सम्भव है कि भारतीयोंके लिए यह आयोग दक्षिण आफ्रिकी विधान-सभाकी भाँति वरदानके स्थानपर अभिशाप बन जाये। इसलिए ब्रिटिश भारतीय संघका यह आग्रह करना कि परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदय सम्राट्को एक ऐसे शाही आयोगके नियुक्त करनेकी बात सुझायें जिसमें संघके तथा भारतीय हितोंका प्रतिनिधित्व हो, अस्वाभाविक नहीं है। श्री अस्वातके इस प्रस्तावसे अधिक उचित कोई प्रस्ताव हो ही नहीं सकता। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि अधिकारतः यह तय करनेके लिये किसी आयोगकी जरूरत है ही नहीं; दक्षिण आफ्रिकामें यूरोपीय प्रवासियोंको व्यापार सम्बन्धी और जायदादकी मिल्कियत सम्बन्धी हक जिन शर्तोंके साथ सुलभ हैं उन्हीं शर्तोंके साथ भारतीय प्रवासियोंको भी जहाँ चाहें व्यापार करने और जमीनके मालिक बननेके अधिकार मिलने चाहिए। यह तो उनकी कमसे-कम माँग हो सकती है। परन्तु इस साम्राज्यके जटिल विधानके अन्तर्गत अन्ततोगत्वा जो न्याय देना ही पड़ता है, बहुत घुमा-फिराकर दिया जाता है। चतुर कप्तान तेज हवाके खिलाफ जहाज ले जानेके बजाय मार्ग बदल देता है और फिर भी अपने गन्तव्य स्थानपर उससे भी कम समयमें पहुँच जाता है जितना उसे अन्यथा लगाना पड़ता। उसी तरह श्री अस्वात एक स्वयंसिद्ध विषयके सम्बन्धमें आयोग नियुक्त करनेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेनेकी बुद्धिमत्ता दिखाते हैं, उतनी ही बुद्धिमत्ताके साथ वे ऐसे आयोगकी नियुक्ति चाहते हैं जो निष्फल न हो और जो दक्षिण आफ्रिकामें शासन करनेवाली जातिसे यह कहनेका साहस करे कि आप लोग उस साम्राज्यके सदस्योंकी हैसियतसे — जिस साम्राज्यमें गोरोंकी अपेक्षा रंगदार लोगोंकी संख्या अधिक है — अपनी सहप्रजा, भारतवासियोंके साथ गुलामों-जैसा बर्ताव न करें। सम्राट्की सरकार चाहे उपरोक्त प्रस्तावको स्वीकृत करे अथवा किसी दूसरे प्रस्तावको, यह बात स्पष्ट रूपसे उसे बता दी जानी चाहिए कि भारतकी जनता दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंके बुनियादी अधिकारोंका खत्म किया जाना बर्दाश्त नहीं करेगी।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-८-१९१९

१९. पत्र : अखबारोंको[1]

अगस्त १४, १९१९

दक्षिण आफ्रिकासे आये हुए तारके तुरन्त बाद ही फीजीसे निम्नलिखित तार प्राप्त हुआ है :

> **भारतीय साम्राज्यीय संघ (इंडियन इम्पीरियल एसोसिएशन) फीजी सरकार द्वारा भारतीय गिरमिट प्रथाकी समाप्तिके प्रश्नके स्थगनपर खेद प्रकट करता है। संघ इसका सख्त विरोध करता है और गिरमिट प्रथाको अविलम्ब बन्द करनेकी प्रार्थना करता है।**

फीजीके सम्बन्धमें वाइसरायकी घोषणाके पश्चात् तो मैंने सोचा था कि अब भारतीय गिरमिटियोंका फीजीमें आना ही बन्द हो जायेगा। श्री पियर्सन और श्री एन्ड्रचूजने हम लोगोंको इस प्रथाके बारेमें बहुत-कुछ बतला दिया है। इस तारसे यह स्पष्ट हो जाता है कि फीजी द्वीपकी सरकारने पहले गिरमिट प्रथाको अविलम्ब समाप्त कर देनेका निर्णय कर लिया था; परन्तु अब उसने अपना निर्णय बदल दिया है और उसकी समाप्तिकी कार्रवाई स्थगित करना चाहती है। आशा है कि भारत सरकार कार्यक्रमके इस परिवर्तनपर कुछ प्रकाश डालेगी। जनताको गिरमिट प्रथाकी समाप्तिके स्थगनको भारी सन्देहकी दृष्टिसे देखनेका अधिकार है।

[मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १५-८-१९१९

२०. भाषण : स्वदेशी भण्डार, गोधरामें

अगस्त १४, १९१९

भेंटसे[2] पहले [स्वदेशी] भंडारका उद्घाटन-समारोह हुआ। गोधरामें ही बना चाँदीका एक ताला और ताली श्री गांधीको भेंट स्वरूप दिये गये। भण्डारके मालिकोंने, जिन्होंने यह काम जनसेवाके भावसे प्रेरित होकर शुरू किया है, श्री गांधीसे यह ऐलान कर देनेको कहा कि गोधरामें जो लागत बैठती है उसपर ७½ फी सदीसे अधिक मुनाफा न लिया जायेगा। अर्थात् उसमें रेलभाड़ा और पैकिंगका खर्चा जोड़कर बम्बईकी दरपर चीजोंकी बिक्री की जायेगी। यह ऐलान केवल उन वस्तुओंके सम्बन्धमें लागू होगा

१. यह १६-८-१९१९ के **यंग इंडिया**में एक टिप्पणीके रूपमें तथा **इंडियन रिव्यू**, अगस्त १९१९ में भी प्रकाशित हुआ था।

२. गोधराके कलक्टर श्री क्लेटन द्वारा बेगार प्रथाके सम्बन्धमें स्थानीय नेताओंको दी गई थी।

जिनकी स्वदेशी व्रत लेनेवालोंको आवश्यकता पड़ती है। भण्डारका उद्घाटन एक विशाल जनसमूहके समक्ष किया गया। श्री गांधीने कहा कि इस भण्डारकी सफलता उसके प्रबन्धकोंकी ईमानदारी और गोधरा निवासियोंकी देशभक्तिकी भावनापर निर्भर करेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-८-१९१९

२१. भाषण : गोधराकी महिला-सभामें

अगस्त १४, १९१९

महिलाओंकी सभा शामके चार बजे शुरू हुई। लगभग एक हजार महिलाएँ उपस्थित रही होंगी। खान साहब कोठावालाकी सुसंस्कृत पत्नी श्रीमती जेरबानू मेरवानजी कोठावालाने सभाकी अध्यक्षता की। इस सभामें गांधीजीने जो भाषण दिया उसका सार यह है :

श्री गांधीने कहा कि आज इस सभामें श्रीमती क्लेटन आई हुई हैं, उनकी उपस्थिति के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मुझे यकीन है कि इस कृतज्ञता-ज्ञापनमें आप लोग मेरे साथ हैं। श्री गांधीने उपस्थित महिलाओंको संक्षेपमें उनका परिचय देनेके पश्चात् कहा कि हम लोगोंके अन्दर स्वदेशी-भावना वह भावना है जो हमें दूसरोंसे पहले अपने नजदीकी पड़ोसियोंकी सेवा करना तथा अधिक दूरके लोगों द्वारा तैयारकी गई चीजोंकी अपेक्षा नजदीकी पड़ोसियोंकी बनाई नई चीजोंका उपयोग करना सिखाती है। ऐसा करनेसे हम अपनी शक्ति-भर मानव-जातिकी ही सेवा करते हैं। आप अपने पड़ोसियोंकी ओरसे लापरवाह होकर मानव-जातिकी सेवा नहीं कर सकते। अपनी आवश्यकताओंके बारेमें भी यही समझिये। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति अपने पड़ोसियों द्वारा तैयार की गई वस्तुओंसे करें और अधिक दूरके लोगोंके मुकाबले अपने पड़ोसियोंकी मेहनत और उनके द्वारा तैयार मालको तरजीह दें। सौ वर्ष हुए भारतने स्वदेशीका परित्याग किया और फलस्वरूप वह अपेक्षाकृत निर्धन और असहाय हो गया। जब हम स्वदेशीके नियमपर चलते थे तब हम लोग अपनी आवश्यकता-भर वस्त्र जुटा लेते थे और इतना ही नहीं, दूसरे देशोंके बाजारोंको भी कुछ माल दे पाते थे। उस अवधिमें भारतकी अधिकांश स्त्रियाँ राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझकर सूत काता करती थीं और पुरुष उस सूतसे कपड़ा बुन लिया करते थे। आजकल भारतके २१ करोड़ किसान सालमें कमसे-कम चार मास निठल्ले रहते हैं। वे कामसे जी चुरानेवाले लोग नहीं हैं किन्तु उनके पास अवकाशका सदुपयोग करने तथा खेतीसे होनेवाली आमदनीमें वृद्धि करनेके लिए कोई काम ही नहीं रहता। इसलिए स्वदेशीका अर्थ हमारे किसानोंके लिए एक अतिरिक्त काम खोज निकालना है। संसारका कोई भी देश जिसके अधिकांश निवासियोंका एक-तिहाई समय काममें न आ पाता हो, समृद्ध नहीं हो सकता। इसके अति-

रिक्त, ऐसे अनेक पुरुष और स्त्रियाँ हैं जिनके पास दिनमें कई घंटे खाली रहते हैं। यदि राष्ट्रके इस समयका सूत कातने और कपड़ा बुननेमें पूरा-पूरा उपयोग किया जाये तो हम अपनी जरूरतके लायक पूरा कपड़ा बनाकर हर साल विदेशोंको जानेवाले करोड़ों रुपयोंकी बचत कर सकते हैं। सफलता तभी मिल सकती है जब सुसंस्कृत पुरुष और स्त्रियाँ कताई और बुनाईका काम हाथमें ले लें। फिर अपेक्षाकृत गरीब लोग भी वैसा करने लगेंगे। लेडी दोराबजी टाटा, लेडी पेटिट और श्रीमती जयजी पेटिटने सूत कातनेकी कला सीखने तथा उसे अन्य महिलाओंको सिखानेका वचन दिया है। श्रीमती रमाबाई रानडेने भी इच्छा व्यक्त की है कि उनके सेवासदनमें चरखेका संगीत सुनाई दे। श्रीमती बैंकर नित्य छः घंटे चरखा चलाती और महीन सूत कातती हैं। इस प्रकार काता गया सूत वे राष्ट्रको सौंप देती हैं। गोधराकी बहनोंसे भी ऐसी ही आशा है। मैं अपने यूरोपीय मित्रोंसे भी यही कहनेमें संकोच न करूँगा। एक यूरोपीय महिलाने यह काम शुरू भी कर दिया है। मैं आशा करता हूँ कि जिन लोगोंको आर्थिक सहायताकी आवश्यकता नहीं है वे भी सूत कातकर राष्ट्रको प्रतिदिन कमसे-कम अपना एक घंटा देनेका संकल्प करेंगे। इस दिशामें प्रोत्साहन देनेके लिए आप लोगोंको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि आप आजसे बिलायती कपड़ा नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार जहाँतक जीवनकी दो मुख्य आवश्यकताओं — भोजन तथा वस्त्रका सम्बन्ध है, भारतका प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी हो जायेगा और जरूरतकी इन चीजोंको खुद ही बना लिया करेगा।

अध्यक्षाने सभामें उपस्थित महिलाओंसे कहा कि आप लोग गांधीजीके बताये मार्गपर चलकर आन्दोलनकी सहायता करें। श्रीमती क्लेटनने कहा कि मुझे इस सभामें उपस्थित होकर प्रसन्नता हुई है, मैं सदासे गृह-उद्योगोंके पक्षमें रही हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-८-१९१९

२२. भाषण : गोधराकी सार्वजनिक सभामें[1]

गोधरा

अगस्त १४, १९१९

भाषणके प्रारम्भमें ही श्री गांधीने सभाकी अध्यक्षता करनेके लिए श्री क्लेटनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट किया। उन्होंने कहा कि श्री क्लेटनने संयोजकोंका निमन्त्रण जिस शर्तपर स्वीकार किया है उसे मैं जानता हूँ और मैं उसे ठीक समझता हूँ। शर्तपर अमल करनेकी मैं पूरी-पूरी कोशिश करूँगा। मेरे लिए स्वदेशीके राजनैतिक पहलूकी अपेक्षा आर्थिक और धार्मिक पहलू कहीं अधिक आकर्षक हैं। मेरा स्वप्न तो यह है कि

१. सभा वनिता-विश्राम, गोधराका निरीक्षण करनेके बाद हुई थी। गांधीजीका भाषण सुननेके लिए विशाल जनसमूह उपस्थित था।

वाइसरायसे लेकर एक झाड़ू लगानेवाला तक सभी स्वदेशी अपना लें; इसलिए मेरी इच्छा आर्थिक तथा धार्मिक दृष्टिकोणसे स्वदेशीका प्रचार करनेकी है। श्री क्लेटनने सभामें अधिकारियोंको आनेकी अनुमति प्रदान कर दी है, मैं इसलिए भी उनका आभारी हूँ। मेरे लिए [किसी भी बातका] धार्मिक पहलू ही सब-कुछ है। मानव जातिमें समान रूपसे पाया जानेवाला मूल धर्म हमें दयालुता और पड़ोसियोंका ध्यान रखना सिखाता है। यदि यह सही है कि अपने पड़ोसियोंकी सेवा करना देश और मानवताकी सेवा करना है, तो अपने किसानों और कारीगरों — जैसे कि बुनकरों, बढ़इयों आदि — की मदद-करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। और यदि गोधराके किसान और बुनकर गोधराके नागरिकोंकी जरूरतें पूरी कर सकते हैं, तो यहाँके लोगोंको गोधरासे बाहरके, मसलन बम्बईके भी, किसानों और बुनकरोंकी जरूरतें पूरी करनेका कोई हक नहीं। अपने पड़ोसीको भूखा रखकर उत्तरी ध्रुवके अपने दूरके भाई-भतीजोंकी सेवा करनेका मेरा दावा सही नहीं हो सकता। सभी धर्मोंका यही मूल सिद्धान्त है और हम पायेंगे कि सच्चे मानवीय अर्थ-शास्त्रका भी यही मूल सिद्धान्त है। भारत एक साथ तीन-तीन शापोंसे ग्रस्त है — असाधारण रोग, भोजनकी कमी और कपड़ेकी कमी। इन सबका मुख्य कारण ज्यादा-तर एक ही है — गरीबी; और गरीबीका मुख्य कारण देशके धनका बराबर बाहर जाना है। हमने १९१७–१८ में भारतसे बाहरके उत्पादकोंको साठ करोड़ रुपयोंकी भारी रकम दी और अपने हजारों कातने-बुननेवालोंके लिए कोई उल्लेखनीय दूसरा धन्धा भी नहीं जुटाया। इस प्रकार श्रमका यह समूचा स्रोत जैसे एक वेगपूर्ण जल-प्रवाहकी तरह व्यर्थ ही बहनेके लिए खोल दिया गया है। अनजानेमें की गई इस भूलको केवल इसी तरह सुधारा जा सकता है कि हम स्वदेशीकी ओर लौटें और अपने कातने-बुननेवालोंको उनके पहलेके सम्मानित धंधेमें फिरसे जमाया जाये। इस महत् कार्यमें अधिकारियों, करोड़पतियों और समाजके अन्य नेताओंको मदद करनी चाहिए। देशकी यह आवश्यकता तत्काल पूरी की जानी चाहिए। देशमें इक्कीस करोड़ किसान हैं। मेरे अपने अनुभव और अधिकारी लेखकोंके अनुभवसे यह स्पष्ट है कि सालमें लगभग चार महीने इनके पास कोई काम नहीं रहता। फिर ताज्जुब क्या कि वे गरीब हैं। शक्तिका यह बहुत-बड़ा अपव्यय है। इसलिए स्वदेशीकी समस्या किसानोंको कातने-बुननेका एक अनुपूरक धंधा अपनानेके लिए प्रोत्साहित करनेकी समस्या है। अपने शास्त्रों और समस्त संसारमें कताई-बुनाईका इतिहास यही बताता है कि सदासे रानियोंसे लेकर उनकी दासियोंतक ने रुई कातनेको सम्मानका काम माना है। बुनाईमें बहुत लोग विशेष दक्षता प्राप्त कर लेते थे। समृद्धिके उन दिनोंमें जब हमारी माताएँ राष्ट्रके लिए सूत कातती थीं, हम अच्छीसे-अच्छी मलमल तैयार कर लेते थे। हम अब भी उस लुप्त कला और उसके साथ लुप्त होजानेवाली सम्पन्नताको पा सकते हैं। परन्तु जरूरत इस बातकी है कि लोग केवल स्वदेशी कपड़ा लेने और जहाँतक हो सके उसे स्वयं तैयार करनेका आग्रह करें। पंजाबमें उच्च कुलोंकी हजारों महिलाएँ अपने लिए सूत स्वयं कातती हैं

और उसे पेशेवर बुनकरोंसे बुनवा लेती हैं। स्वदेशी व्रतोंका उद्देश्य लोगोंमें स्वदेशीके लिए रुचि पैदा करना है। आपको मोटे कपड़ेपर शर्मिन्दा नहीं होना चाहिए। वास्तवमें हाथके कते-बुने कपड़ेमें, वह चाहे जितना मोटा हो, मशीनके कपड़ेसे, वह चाहे जितना सुन्दर हो, कहीं अधिक कला है। परन्तु कलाके अलावा आप आत्मसम्मान, बुद्धिमत्ता और अर्थ-दृष्टि आदि प्रत्येक विचारसे इस बातके लिए बँधे हैं कि आप अपने गाँवमें बन सकनेवाला कपड़ा ही पहनें और तबतक उसीसे सन्तुष्ट रहें जबतक अपनी क्षमता, उद्योग और उत्साहके बलपर उससे बेहतर किस्मका कपड़ा तैयार न कर सकें।

कार्रवाईके अन्तमें अध्यक्षने कहा कि मुझे इस सभाकी अध्यक्षता करनेकी खुशी है। उन्होंने श्री गांधीको उनके सारगर्भित भाषणके लिए धन्यवाद दिया और श्रोताओंसे स्वदेशीमें मदद करनेके लिए कहा। अध्यक्षको धन्यवाद देनेके प्रस्तावके साथ सभा समाप्त हुई।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०–८–१९१९

२३. भाषण: गोधराकी सार्वजनिक सभामें

अगस्त १५, १९१९

इसके बाद श्री गांधीने लोगोंकी एक विशाल सभामें पंजाबकी स्थितिके बारेमें भाषण दिया। उन्होंने संक्षेपमें गत अप्रैलकी घटनाओंका सिंहावलोकन करते हुए कहा कि यदि वे सजाएँ और अभियोग, जिनमें से अनेक मेरी दृष्टिसे अनुचित और गलत हैं — उठा नहीं लिये जाते तो वे ब्रिटिश न्यायपर कलंक बन जायेंगे। यदि आप पंजाबमें हुई सारी कार्रवाइयोंकी निष्पक्ष जाँच करानेका आग्रह नहीं करते तो आपकी देशभक्तिपर उससे भी बड़ा दाग लगेगा। उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि शीघ्र ही एक ऐसी समिति की नियुक्ति होगी। उन्होंने श्रोताओंसे भी पंजाबके पीड़ितोंकी सहायताके लिए खोले गये कोषमें दान देनेका अनुरोध किया। इसके बाद एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें सरकारसे माँग की गई कि असन्तोषके कारणोंकी जाँच करने और सजाओंपर पुनर्विचार करनेके लिए एक स्वतन्त्र समिति नियुक्त की जाये। प्रस्तावमें जनतासे पंजाब कोषमें धन देनेको भी कहा गया।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०–८–१९१९

२४. सर शंकरन् नायर और सरकार

खेड़ा और चम्पारनके सम्बन्धमें सर शंकरन् नायरकी[1] अकाटच टिप्पणियोंके खण्डनकी कोशिश करनेके पीछे वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के उनके सहयोगी सदस्योंकी भावना क्या रही होगी, यह समझ पाना कठिन है। उन्होंने इस प्रकार केवल यही जाहिर किया है कि अपने सहयोगीका दृष्टिकोण समझने या उसका महत्त्व देख सकनेकी क्षमता उनमें नहीं है। सर शंकरन्‌की टिप्पणियोंके उनके जवाबसे नौकरशाही पद्धतिकी जड़ता स्पष्ट होती है। उन्होंने सर शंकरन्‌को गलत सिद्ध करनेकी चेष्टा करके उन्हें उसका मुँहतोड़ जवाब देनेपर मजबूर कर दिया और इस प्रकार अपने हाथों अपनी ही कलई और खोली। यदि मैं ठीक समझ पाया हूँ, तो सर शंकरन् नायर वर्तमान पद्धतिकी जड़ताको सिद्ध करने तथा इस आरोपका उत्तर देनेमें सफल हुए हैं कि कांग्रेस या शिक्षित भारतीय, जनताका प्रतिनिधित्व नहीं करते या उनको जनताके हितोंकी परवाह नहीं है।

हम खेड़ाका ही मामला लें और उसपर बम्बई सरकारकी टिप्पणीके विषयमें विचार करें।[2]

> **सपरिषद् गवर्नर ऐसा मानते हैं कि सर सी० शंकरन् द्वारा किया हुआ वर्णन इतना भ्रामक है कि भारत-मन्त्री या संसदको भेजनेसे पूर्व उसमें प्रगट किये गये उनके विचारोंमें कुछ प्रामाणिक संशोधन करना जरूरी है।**

यह आवश्यक कर्त्तव्य निबाहनेके लिए पहले सरकारने मालगुजारी प्रथाके "उस अत्यन्त जटिल विषयके" सम्बन्धमें विचार व्यक्त करनेकी कठिनाईमें सर शंकरन् नायरके साथ सहानुभूति दिखाई है जो विशेष ज्ञानकी अपेक्षा रखता है। मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि यह अत्यन्त ही भ्रामक कथन है। मालगुजारी प्रथामें कोई ऐसी जटिलता नहीं है और न वह केवल विशेषज्ञोंका विषय है। उसमें जितनी-कुछ जटिलता दिखाई पड़ती है वह सब प्रशासकोंकी कृपासे है। सर शंकरन्‌ने 'जटिलता और विशेषज्ञता' को विशेषज्ञोंके लिए छोड़ दिया है और केवल उन मुख्य सिद्धान्तोंपर ही लिखा है जिन्हें एक साधारण व्यक्ति भी आसानीसे समझ सकता है। मुझे सिर चकरा देनेवाले मालगुजारीके नियमों और समय-समयपर उनमें किये गये संशोधनोंको पढ़नेकी तकलीफ उठानी पड़ी है और मैं यह बात पूरी तरह मानता हूँ कि समय पड़नेपर स्मृतिसे सिर्फ विशेषज्ञ ही उन्हें प्रस्तुत कर सकते हैं। परन्तु वास्तवमें वे नियम आफतके मारोंकी सहायताके लिए नहीं बल्कि इसलिए बनाये गये हैं कि लगानकी जो दर निर्धारित है और जो लगभग अधिकतम ही है, बाकायदा

१. सर सी० शंकरन् नायर (१८५७-१९३४); मद्रास हाइकोर्टके न्यायाधीश; वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य। **मद्रास रिव्यू, मद्रास लॉ जरनल** व **मद्रास स्टैंडर्ड**के सम्पादक।

२. देखिए परिशिष्ट ४।

पाई-पाई, ठीक समयपर वसूल हो सके। मैं यह बात भी पूरी तरह मानता हूँ कि अपनी योग्यताके बावजूद सर शंकरन्के लिए ऐसे किसानोंसे, जिनके पास लगान देनेके लिए पैसे ही नहीं हैं, वसूली करनेका कोई अच्छा तरीका निकालना बहुत कठिन था। परन्तु एक इतनी साधारण-सी बात समझनेके लिए कि खेड़ामें सन् १९१७ में पूरी फसल हुई थी या नहीं या कि भारी वर्षासे इतना अधिक नुकसान हुआ था कि रैयतको करकी अदायगी मुल्तवी रखनेकी राहत पानेका हक था, कोई बड़ी योग्यता अपेक्षित नहीं है। बम्बई सरकारकी विज्ञप्तिका अधिकृत रूपसे यह कहना कि विधान परिषद्के सामने जो प्रस्ताव रखा गया है और सर शंकरन्ने जिसका उल्लेख किया है "एकदम अव्यावहारिक है", साधारण जनताको — भारतमन्त्री तथा संसदको भी इसी श्रेणीमें रखा जाना चाहिए — आतंकित कर देता है। माननीय श्री कामतके इस प्रस्तावको कि "कृषि विभाग" के विशेषज्ञको यह पता लगाना चाहिए कि फसल कितने आने हुई है, अव्यावहारिक कहा गया है। सरकार अपने ही हठपर अड़ी है और कोई प्रमाण जुटाये बिना ही पाठकोंसे इस अतिशय व्यावहारिक सुझावको पूर्णत: अव्यावहारिक मान लेनेको कहती है। माननीय श्री कामतने इस कामके लिए एक अपेक्षाकृत स्वतन्त्र — फिर भी सरकारी ही — अभिकरणका सुझाव दिया, बजाय एक ऐसे सरकारी अभिकरणके जिसके स्वार्थ इस कामके साथ जुड़े हुए हों; अर्थात् जिसमें सर्किल इंस्पेक्टर और निचली श्रेणीके अन्य वे अधिकारी शामिल हैं जिनकी तरक्की केवल इसी योग्यतापर निर्भर करती है कि वे "अत्याचारपूर्ण तरीके" अपनाकर भी लगानकी पूरी-पूरी वसूली करके दिखायें। सर शंकरन् नायरकी "तथ्यों और नीति-सम्बन्धी गलतफ़हमी" को और अधिक प्रमाणित करनेकी दृष्टिसे सरकारने इस बातके लिए उनकी आलोचना की है कि उन्होंने मेरे द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यको स्वीकार कर लिया है, जो "ऐसे खेतिहरोंके कथनपर ही आधारित है जिनके स्वार्थ उससे सम्बद्ध हैं।" चूँकि टिप्पणी तैयार करनेवाले अपने-आपको मालगुजारी विभागकी गहरी जानकारी रखनेवाला विशेषज्ञ मानते हैं इसलिए इस अंशके बारेमें कुछ कहना मुझे कठिन जान पड़ता है। मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि अधीनस्थ अधिकारियोंने उनको ठीक जानकारी नहीं दी। यदि उन खेतिहरोंके स्वार्थ, जिनके कथन मैंने स्वीकार किये हैं, इससे जुड़े हुए हैं तो जैसा मैं पहले दिखा चुका हूँ, सर्किल इंस्पेक्टरोंके स्वार्थ उनसे भी कहीं ज्यादा, एक उलटी ही दिशामें जुड़े हुए हैं। और फिर टिप्पणीमें यह उल्लेख नहीं किया गया कि मैंने सम्बद्ध स्वार्थवाले खेतिहरोंकी गवाहीको आँख मूँदकर स्वीकार नहीं किया है, बल्कि उनके कथनोंकी जाँच भी की है और कुछ मामलोंमें जहाँतक हो सका स्वयं भी देखा, और हर मामलेमें ऐसे सम्मानित लोगोंके साक्ष्यसे उसका मिलान किया जो अपने हितोंकी खातिर लगान वसूली मुल्तवी करानेमें दिलचस्पी नहीं रखते थे। इस प्रकार, मैंने इसके लिए तिहरी कसौटी रखी थी और मैं निवेदन करता हूँ कि जब हजारों मामलोंमें हजारों स्त्री-पुरुषोंने एक ही बात कही तो [मेरे लिए] उस साक्ष्यपर सन्देह करना असम्भव हो गया। और सरकारने अपने सम्बद्ध अधिकारियोंके कथनोंको बल देने और उसके फलस्वरूप किसानोंसे लगान वसूली करनेके लिए खेड़ाके सम्बद्ध किसानोंके

ही नहीं, बल्कि खेड़ाकी लगभग समस्त जनताके बयानोंको गलत ठहरा दिया। किसी भी रूप या आकारमें जनताके प्रति उत्तरदायी कोई भी सत्ता ऐसा आरोप लगानेसे झिझकती। तथापि हमारी आजकी व्यवस्थामें सरकारकी बातको लोग डरके मारे आँखें बन्द करके सत्य, पूर्ण सत्य और शुद्ध सत्यकी तरह स्वीकार करने पर बाध्य हो जाते हैं। भले ही इसे सच माननेमें जनताके विशाल समुदायकी बातको गलत कहना पड़े। सर शंकरन्ने लिखा था कि पहले इस इलाकेकी आर्थिक दशा अच्छी थी; सरकारने इस बातको एकदम अस्वीकार किया है। मैं टिप्पणीकारोंको चुनौती देता हूँ कि वे जिलेके गाँवोंका स्वयं जाकर निरीक्षण करें और उनकी जीर्ण-शीर्ण इमारतोंके मूक बयानोंको पढ़ें तथा अपने दिलोंपर हाथ रखकर कहें कि वे इमारतें क्या प्रमाणित करती हैं। सरकारने यह भी कहा कि "राहत देनेके लिए जो कदम उठाना मंजूर किया जा चुका था" उसपर खेड़ाके आन्दोलनोंका "कोई खास असर" नहीं हुआ और परिणामस्वरूप "सरकारी लगानकी अदायगीका निर्णय रैयतकी ही मरजीपर" नहीं छोड़ा गया। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि सरकार और उसके जिन वरिष्ठ अधिकारियोंके दिये हुए वचन इस तरह टूटे, उनके लिए यह अच्छा नहीं हुआ। उनमें से एकने तो लगभग दो सौ लोगोंके सामने मुझसे कहा था कि गरीब खेतिहरोंके मामलोंमें लगान-वसूलीकी मुल्तवीकी अनुमति दी जायेगी और गरीबीके कारण लगान-अदायगीकी असमर्थताके प्रश्नपर गाँवोंके प्रमुख लोगोंकी सलाहसे फैसला किया जायेगा।[1] जिला कलक्टरने भी इसकी पुष्टि की थी। लेकिन जो-कुछ हुआ वह इतना गर्हित है कि उसके सम्बन्धमें अधिक कुछ कहनेकी जरूरत नहीं रहती। इतना ही बता देना काफी होगा कि यथासम्भव लगानकी वसूली मुल्तवी रखनेके फैसलेका लाभ कमसे-कम किसानोंको ही दिया गया; वसूली मुल्तवी रखनेके आदेशोंको कोई एक महीनेसे अधिक समय-तक लोगोंसे छिपाकर रखा गया और उनको तब प्रकट किया गया जब सम्बन्धित विभागको सब-कुछ करनेके बाद भी, यह समझमें नहीं आया कि अब क्या किया जाये; वह विभाग सभी-कुछ करके देख चुका था — यानी अनुपस्थित किसानोंके मवेशी बेच दिये गये, उनके जेवरात कुर्क कर लिये गये, उनपर चौथाई (जुर्माना) लगाई गई, बकायेकी बहुत मामूली-सी रकमके बदले उनकी हजारों रुपयेकी फसलें कुर्क कर ली गईं और कमिश्नरने यहाँतक कह डाला कि उन्हें किसानोंकी तरह अपने कथन-पर अमल करनेके लिए किसी प्रतिज्ञाकी जरूरत नहीं होगी; वे किसानोंकी फसलें बेच देंगे, जमीनें छीन लेंगे और उन्हें फिर कभी मौरूसी जोतदारोंके नाम नहीं चढ़ायेंगे। मुझे यह सोचकर बड़ा दु:ख होता है कि नये गवर्नर महोदय, जिनके आचरणसे इस बातके प्रमाण मिले हैं कि वे दोनों पक्षोंकी बातें सुननेको उत्सुक हैं और यथासम्भव निष्पक्षता बरतना चाहते हैं, नि:सन्देह अनजाने ही, साम्राज्यीय संसदके नाम एक ऐसी टिप्पणी भेजनेके निमित्त बन गये हैं जो केवल गलत-बयानियों और व्यंग्योक्तियोंसे भरी हुई है। मैंने इन तथाकथित रियायतोंका — यानी जूनमें जिन आदेशोंका पता चला उनका — कभी कोई फायदा नहीं उठाया। मैंने सिर्फ उत्तरसंडामें प्राप्त

१. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ ३९७-९८।

जानकारीका उपयोग किया और जैसा कि एक सत्याग्रहीके लिए उचित है, संघर्ष बन्द कर दिया। अगर मैं इसे जारी रखता तो सरकारके साथ दुराग्रह और अविनय बरतनेका दोषी बनता और जिन लोगोंका मार्गदर्शन करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था उनके कष्टोंकी उपेक्षा करनेका अपराधी माना जाता। लोगोंको परिणामकी सूचना देते हुए जो टिप्पणी[1] भेजी गई उसमें मेरे सहयोगियोंने और मैंने समझौतेका वर्णन इस प्रकार किया था:

> उत्तरसंडा, नडियादके मामलतदारने तारीख ३ जूनको ऐसा हुक्म जारी किया। इसपर उत्तरसंडाके लोगोंमें जो समर्थ हैं, उन्हें लगान जमा कर देनेकी सलाह दे दी गई है, और वहाँ लगान जमा कराना शुरू हो गया है।
>
> उत्तरसंडामें उपर्युक्त आदेश जारी किये जानेके बाद कलक्टरको यह सूचित करते हुए एक पत्र लिखा गया कि उत्तरसंडामें जैसे आदेश जारी किये गये हैं यदि वैसे आदेश सभी जगह जारी कर दिये जायें तो आन्दोलन समाप्त कर दिया जायेगा और तब आगामी १० तारीखको, जब प्रान्तीय युद्ध-सम्मेलनकी बैठक शुरू होगी, परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको यह शुभ संवाद दिया जा सकेगा कि खेड़ाके स्थानीय मतभेदका निपटारा हो गया है। कलक्टरने जवाब दिया है कि उत्तरसंडामें जारी किया गया आदेश सारे जिलेपर लागू होता है; इस प्रकार अन्ततः जनताकी माँग स्वीकार कर ली गई है। कलक्टरने चौथाईसे सम्बन्धित आदेशोंके सिलसिलेमें की गई पूछताछके उत्तरमें यह भी बताया है कि जो लोग स्वेच्छासे अदायगी कर देंगे उनके विरुद्ध ये आदेश लागू नहीं किये जायेंगे। हम इस रियायतके लिए कलक्टरके आभारी हैं।
>
> परन्तु, हमें यह कहना पड़ता है कि संघर्ष तो समाप्त हो गया है; लेकिन समाप्ति शोभनीय ढंगसे नहीं हुई। इसमें गरिमाका अभाव है; उपर्युक्त आदेश न तो उदारतासे जारी किये गये हैं और न सच्चे हृदयसे। स्पष्टतः ऐसा लगता है कि ये आदेश बहुत ही पसोपेशके साथ जारी किये गये हैं। कलक्टरका कहना है:
>
> सब मामलतदारोंके नाम यह आदेश जारी कर दिया गया था कि जो अदायगी करनेकी स्थितिमें न हों, उनपर कोई दबाव न डाला जाये। २२ मईको बाकायदा एक परिपत्र भेजकर इन आदेशोंकी ओर उनका ध्यान पुनः दिलाया गया था। इन आदेशोंपर कारगर ढंगसे अमल हो सके इसलिए मामलतदारोंसे यह भी कहा गया था कि वे लगान अदा न करनेवालोंको दो वर्गोंमें छाँट लें। एकमें वे लोग रखे जायें जो अदा करनेकी स्थितिमें हैं और दूसरेमें वे लोग जो गरीबीके कारण लगान देनेमें असमर्थ हैं।
>
> अगर बात ऐसी ही थी तो इन आदेशोंको जनताकी जानकारीके लिए प्रकाशित क्यों नहीं किया गया? अगर उन्हें इसकी जानकारी २५ अप्रैलको हो जाती तो न जाने वे कितनी मुसीबतोंसे बच जाते। सरकारने इस जिलेके

१. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ ३९९-४०१।

अधिकारियोंको कानूनी कार्रवाईमें लगाकर जो अनावश्यक खर्च उठाया उससे भी वह बच जाती। जहाँ-कहीं लगान वसूल नहीं हो पाया, वहाँके लोगोंको जानके लाले पड़ गये। कुर्कीसे बचनेके लिए वे अपने घरसे बाहर चले गये। उनको भरपेट खाना नहीं मिला, औरतोंको तो ऐसी-ऐसी मुसीबतें झेलनी पड़ीं जो उन्हें किसी हालतमें नहीं झेलनी चाहिए। कभी-कभी उन्हें उद्धत सर्किल इंस्पेक्टरोंके हाथों अपमानित होना पड़ा; उन्हें चुपचाप अपनी दुधारू भैंसोंको दरवाजेपर से हाँककर ले जाते देखना पड़ा। उन्होंने चौथाई (जुर्माना) भी दी। अगर उन्हें उपर्युक्त आदेशोंकी जानकारी होती तो इन कष्टोंसे उन्हें छुटकारा मिल सकता था। अधिकारीगण जानते थे कि गरीबोंको छूट न देना ही संघर्षका आधार है; कमिश्नरने तो इन कठिनाइयोंकी ओर भी ध्यान ही नहीं दिया। उनके पास कई पत्र भेजे गये, लेकिन उनके रुखमें तनिक भी नरमी नहीं आई। उन्होंने कह दिया, "व्यक्तियोंको अलगसे कोई राहत नहीं दी जा सकती; ऐसा कानून नहीं है।" अब कलक्टरका कहना है कि "जहाँतक सचमुच गरीबीके कारण लगान देनेमें असमर्थ लोगोंपर दबाव डालनेकी बातका सम्बन्ध है, २५ अप्रैलके आदेशका मतलब इस विषयमें सरकारके उस स्थायी आदेशको दुहराना-भर था जिसके बारेमें सभी जानते हैं।"

अगर यह सत्य है तब तो लोगोंको जो-कुछ झेलनेपर मजबूर किया गया सो दुराग्रहके कारण जान-बूझकर ही। दिल्ली जाते समय श्री गांधीने कमिश्नरको पत्र लिखकर उनसे उपर्युक्त आशयके आदेश जारी करनेकी प्रार्थना की थी, ताकि वे परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयको यह शुभ संवाद दे सकते लेकिन कमिश्नरने उनकी प्रार्थनापर कोई ध्यान नहीं दिया।

"हम जनताके कष्ट देखकर विचलित हो उठे हैं, अपनी गलती समझ गये हैं और जनताको तुष्ट करनेके लिए अब हम व्यक्तियोंको अलगसे राहत देनेको तैयार हैं",—अधिकारीगण उदारतापूर्वक ऐसा कहकर जनताके स्नेह-भाजन बन सकते थे, लेकिन उन्होंने दुराग्रहपूर्वक (उसके हृदयपर विजय पानेके) इस तरीकेकी उपेक्षा कर दी। और अब भी जो राहत दी गई है वह बहुत ही कृपणता और अनिच्छाके साथ तथा अपनी गलतीको स्वीकार किये बिना दी गई है। यह भी दावा किया जाता है कि जो राहत दी गई वह कोई नई चीज नहीं है। इसीलिए हमारा कहना है कि इस निपटारेमें कोई शोभा नहीं है।

अधिकारीगण अपनी हठवादिता और इस गलत मान्यताके कारण कि उन्हें कभी गलती स्वीकार नहीं करनी चाहिए लोगोंके प्रियपात्र नहीं बन पाये। वे घोर दुराग्रहपर अड़े रहे कि कहीं कभी उनके बारेमें यह न कहा जा सके कि उन्हें जन-आन्दोलन जैसी किसी चीजके सामने झुकना पड़ा था। ऐसी आलोचना करते हुए हमें सचमुच बड़ा दुःख हो रहा है। लेकिन उनके मित्रकी हैसियतसे ही हमने ऐसा करना जरूरी समझा है।

इस प्रकार अन्त तो शोभनीय नहीं ही हुआ, लेकिन अब जो सरकार, लोगोंको इस तरह आखिरी बूँदतक चूसनेकी अपनी सफलतापर, बार-बार अपने मुँह अपनी झूठी बड़ाई किये चली जा रही है, उससे उसका यह कार्य एक जघन्य भूल भी बन जाता है। सरकारकी टिप्पणीमें सर शंकरन् नायरके इस कथनका कोई उत्तर नहीं दिया गया कि वर्तमान सरकारकी प्रवृत्ति जड़ नियमोंसे कुछ इतना बँधकर चलनेकी है कि उसमें भावना और दयाकी कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती; फलतः यह शासनप्रणाली अत्याचारपूर्ण हो गई है; और इस अनिच्छुक नौकरशाहीसे न्याय तो आम तौरपर लगातार आन्दोलन करके जबरदस्ती ही प्राप्त किया जा सकता है; और यह आन्दोलन शिक्षित-वर्गके बेचारे बदनाम लोगोंके द्वारा मुख्यतः वार्षिक सभा-समितियों आदिके माध्यमसे संचालित होता है।

अगले अंकमें हमें चम्पारनके सम्बन्धमें[1] भी कुछ कहना पड़ेगा, हालाँकि उस दुःखद घटनाका स्मरण ताजा करनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। लेकिन सरकारने जो असाधारण रुख अपना रखा है, उसके कारण ऐसा करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है, क्योंकि अपने सहयोगियोंके अलावा मैं ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ, जो जनताके सामने ये सारे तथ्य पेश कर सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-८-१९१९

२५. क्या करें ?

देशके सम्मानका जरा भी ध्यान रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके सामने यह साफ है या साफ होना चाहिए कि रौलट अधिनियम सारे देशके विरोधको देखते हुए रद किया ही जाना चाहिए। जैसा कि मैं बार-बार कह चुका हूँ इस कानूनका रद कराना सुधार-विधेयक पास होनेसे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इसे रद कराना हमारे लिये संसदीय संविधिके बिना, स्व-शासन चलानेकी दिशामें एक पदार्थपाठ होगा। इस कानून-को हमें अनुशासनपूर्ण आन्दोलन द्वारा अवश्य रद करवाना चाहिए। अनुशासनपूर्ण आन्दोलन क्या है? यदि उसका अर्थ सभाएँ करना, प्रस्ताव पास करना और प्रार्थना-पत्रोंके मसविदे आदि तैयार करना है, तो यह दलील कि यह-सब तो हम पहले ही काफी कर चुके हैं, लचर नहीं होगी। परन्तु सरकारोंकी याददाश्त बहुत कम होती है। यदि सभाएँ न की जायें और प्रस्ताव पास न हों तो काफी अधिकारी ऐसे निकलेंगे जो कहेंगे कि जनता रौलट कानून रद नहीं कराना चाहती और न उसे इसकी परवाह ही है। यद्यपि यह बात सभी जानते हैं कि हॉर्निमैनके निष्कासनपर हम लोग जान-बूझकर मौन इसलिए साधे रहे कि पुनः शान्ति और सन्तुलन स्थापित हो सके, तथापि जिम्मेदार लोगोंमें भी ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है, जो उसका अर्थ यह लगाते हैं कि लोगोंने अधिकारियोंके दमनके सामने झुककर निष्कासनके विरुद्ध आवाज नहीं उठाई।

१. देखिए "सर शंकरन् नायर और चम्पारन", २७-८-१९१९।

यह तो निश्चित ही है कि गम्भीर और निरन्तर प्रयत्नके बिना कानून रद होनेवाला नहीं है, किन्तु उसका रद होना है निश्चित। इस बातपर पूर्ण विश्वास करनेका मेरा आधार यह है कि देशमें [उसके खिलाफ] बड़ा ही गम्भीर और प्रबल आन्दोलन चलता ही रहेगा। और यह भी कि यह अधिनियम जनताके स्वतन्त्र विकासके लिए हानिकारक है। समूची जनता रौलट अधिनियम-जैसे एक कानूनके आतंकसे त्रस्त बनी रहे, उसके बजाय तो मैं क्रान्तिकारी किस्मकी इक्की-दुक्की अपराधपूर्ण कार्रवाइयोंकी बात सोचनेमें शायद कुछ कम मानसिक अशान्ति महसूस करूँगा। यह कानून मूल रोगको तो बिलकुल छोड़ देता है और उसके लक्षणोंका शमन करनेकी कोशिश करता है। यह पुलिस और प्रशासकोंको मनमानी करने और इसलिए उनके दायित्वके बोधको शिथिल करनेवाली, उन्हें भ्रष्ट करनेवाली ताकतोंसे लैस कर देता है। असाधारण शक्तियोंकी माँग करनेवाली प्रशासन-सत्ताको ज्यादातर अविश्वसनीय समझा ही जाना चाहिए। असाधारण अधिकारोंकी माँग वही करते हैं जो किसी बुराईको दूर करनेकी अपनी अक्षमता और अयोग्यतापर परदा डालना चाहते हैं। यह ठीक इसी प्रकारकी बात है कि जहाँ कुशल हाथोंसे लगाया गया एक हलका नश्तर ही पर्याप्त हो वहाँ एक अनाड़ी शल्य चिकित्सक छुरेका प्रयोग करना चाहे। अप्रैलमें पंजाब सरकारने जैसे काम किये थे अक्सर अधिकारियों द्वारा किए गये ऐसे ही गलत कामोंको छिपानेके लिए असाधारण अधिकार माँगे जाते हैं। यदि केन्द्रीय सरकार पंजाब सरकारसे साधारण उपायों द्वारा ही स्थिति सँभालनेको कहती तो इतिहास दूसरे ही ढंगसे लिखा जाता। कहा जाता है कि कमसे-कम दो जगहोंपर तो गवर्नरने पुलिससे यह कहा ही था कि यदि उनके अधिकार-क्षेत्रमें कोई उपद्रव हुए तो वे उत्तरदायी ठहराये जायेंगे। तब जैसा कि मैं मानता हूँ रौलट कानून हर तरहसे बुरा है, और कोई भी बुरी चीज सच्चे प्रयत्नके आगे नहीं टिक सकती, मुझे इस विषयमें कोई सन्देह नहीं कि कानून अवधिसे बहुत पहले ही रद हो जायेगा। किन्तु [कानूनके] स्थगनकी अवधिमें सभाएँ करना, प्रार्थनापत्र तैयार करना और प्रस्ताव पास करना सच्चा प्रयत्न है। जिन नेताओंने मुझे सविनय अवज्ञा स्थगित करनेकी सलाह दी है मैं समादरपूर्वक उनसे अपना कर्त्तव्य करनेकी प्रार्थना करता हूँ। सर नारायण चन्दावरकरने तो यह भी कहा है कि लोगोंके लिए सविनय अवज्ञाके अलावा अन्य तरीके अपनानेके रास्ते भी खुले हैं। क्या वे और अन्य नेतागण नेतृत्वके लिए आगे आयेंगे? मेरा सुझाव है कि उन्हें अपने कामके साथ-साथ 'कांग्रेस-लीग स्कीम मेमोरियल'[१] की तरहके एक प्रार्थनापत्रपर हजारों लोगोंके दस्तखत कराने चाहिए। जैसा कि स्वर्गीय श्री रानडे कहा करते थे, ऐसे प्रार्थनापत्रोंका शैक्षणिक महत्त्व भी होता है; वे किसी समस्याकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित करनेमें काफी उपयोगी होते हैं। इसके अलावा, जब सविनय अवज्ञा शुरू की गई थी तब मुझसे कहा गया था कि उसके लिए ठीक समय नहीं है, जनताने सबके-सब सुलभ तरीके अभी प्रयुक्त करके नहीं देखे हैं। मैंने कहा कि हम वह सब कर चुके हैं। मैंने जिस कार्यक्रमका सुझाव दिया है उसे अपनानेसे यदि दुर्भाग्यवश सविनय अवज्ञा फिर

१. देखिए खण्ड १४, परिशिष्ट १।

शुरू करनी पड़ी तो अब उसे समयसे पूर्व शुरू करनेका आरोप लगनेकी सम्भावना नहीं रहेगी। इस प्रकार हरएक दृष्टिसे मैं यही महसूस करता हूँ कि फिलहाल हमें आन्दोलनका और आम जनताकी राय बनानेके लिए सभा आदिका पुराना रास्ता फिर अपनाना चाहिए। उसमें वक्ताओंसे सदा इस बातका आग्रह रखा जाये कि वे तथ्य बतलानेतक ही अपनेको सीमित रखें और निन्दात्मक तथा उत्तेजनात्मक भाषाके प्रयोगसे बचें। रौलट कानूनकी ठीक-ठीक व्याख्या करना ही उसकी कड़ीसे-कड़ी निन्दा करना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–८–१९१९

२६. पत्र : वी० एस० सुन्दरम्‌को

लैबर्नम रोड
बम्बई
अगस्त १७, १९१९

प्रिय सुन्दरम्,

जो पढ़े जा सकें ऐसे अक्षर लिखा करो। फैशनेबल लिखावटकी अपेक्षा बाबुओं जैसा सँभालकर लिखना कहीं अच्छा है।

नींद आ जाये इसके लिए तुम्हें संस्कृत या तेलगूका कोई पद गाना चाहिए। अपने कमजोर शरीरके लिए तुम्हें शर्मिन्दा होना चाहिए।

कुमारी फैरिंगके पास तुम कब जा रहे हो? मुझे उसका एक संक्षिप्त-सा पत्र मिला था। उसे बताना कि मैं जवाब नहीं लिख रहा हूँ।

क्या वहाँके लोगोंने कताई सीखना शुरू कर दिया है?

देवदासके बारेमें तुम्हारा तार मुझे मिला था। तुम 'हिन्दू', 'स्वदेश मित्रन्' आदिमें, स्वदेशी तथा कताईकी जो प्रगति तुमने यहाँ देखी, उसपर लेख भेज सकते हो। प्रशंसापूर्ण लेख मत लिखना बल्कि मात्र तथ्य पेश करना। अपना आशय समझानेमें तथ्य ही सबसे ज्यादा कारगर रहते हैं।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ३१९९) की फोटो-नकलसे।

२७. पत्र : सी० रॉबर्ट्सको

सत्याग्रह आश्रम
अहमदाबाद
अगस्त १७, १९१९

प्रिय श्री रॉबर्ट्स[१],

मैं यह पत्र श्री मॉण्टेग्युको न लिखकर आपको लिख रहा हूँ क्योंकि मैं उन्हें परेशान नहीं करना चाहता। एक तो इसलिए कि वे पहले ही अन्य परेशानियोंके बोझसे दबे हैं और दूसरे जितनी अच्छी तरह आपसे परिचित होनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है मैं उनसे उतनी अच्छी तरह परिचित नहीं हूँ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुन: शुरू करनेके पहले, मुझे लगा कि श्री मॉण्टेग्युको एक व्यक्तिगत तार भेजना चाहिए जो मैंने भेजा भी।[२] इस सम्बन्धमें मैंने उन्हें पत्र[३] भी लिखा था। तारका गोपनीय उत्तर उन्होंने बम्बईके गवर्नरकी मार्फत भेजा था। उस उत्तरमें मुझसे सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुन: शुरू न करनेका आग्रह करते हुए कहा गया था कि उसे शुरू करना मेरी भूल थी और अब फिर शुरू करना तो अपराध होगा। उसमें यह भी लिखा था कि मुझे समझ लेना चाहिए कि कानून न तो रद होगा और न वापस लिया जायेगा। जहाँतक इस "अपराध" का सवाल है, यदि मैं उसे करनेपर मजबूर किया गया तो मैं उसे करूँगा; और तब निश्चय ही उसके नतीजे भी मैं भोगूँगा। मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मुझे आन्दोलन शुरू करनेका कोई खेद नहीं है। मेरा ऐसा पक्का विश्वास है कि अपराधपूर्ण विरोधका स्थान केवल सविनय अवज्ञा ही ले सकती है। आश्चर्य है कि श्री मॉण्टेग्यु इतने कल्पनाशील होते हुए भी सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी निरपेक्ष प्रभावशीलताका सरल सौन्दर्य और उसकी आवश्यकता नहीं देख पाये। तथापि काल तो अपनी गतिसे चलता ही रहेगा और दिखा देगा कि अप्रैलमें लोगोंने परिस्थितिवश जो हिंसात्मक कार्रवाई की थी, उसके लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन जिम्मेदार नहीं था। पंजाबमें लोगोंको हिंसाके लिए विवश किया गया था। अहमदाबादमें लोग यह सोचकर पागल हो उठे थे कि जिस व्यक्तिने उनकी सेवाकी, उसे अकारण ही गिरफ्तार कर लिया गया। भारतके अन्य भागोंमें पूर्ण शान्ति रही। मैं अपनी गलती इसी हदतक मानता हूँ कि मैंने सरकार तथा जनता दोनोंमें व्याप्त बुराईकी शक्तियोंको कम आँका था।

जिस बातपर मुझे सबसे अधिक दु:ख हुआ, वह श्री मॉण्टेग्युका यह संदेश है कि मुझे भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि रौलट अधिनियम रद होनेवाला नहीं है।

१. चार्ल्स रॉबर्ट्स; भारत उप-मन्त्री।

२. देखिए खण्ड १५; पृष्ठ ३९९–४००।

३. वही; पृष्ठ ३७८–८०।

अधिनियमके रद न होनेकी इस असंदिग्धताके बारेमें मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो यह जानता हूँ कि इस कानूनको रद करवानेके लिए मैं अपना सर्वस्व दे दूँगा। इस कानूनकी कल्पना जनताके प्रति अशोभनीय अविश्वासके कारण की गई, भारतीय जनमतके व्यापक विरोधके बीच यह पेश किया गया और इसका पोषण हुआ दमनके बलपर। इसको निन्दनीय साबित करनेके लिए इतना ही पर्याप्त है। क्या श्री मॉण्टेग्यु अपने सुधारोंका उद्घाटन ऐसी जनताके बीच करना चाहते हैं जिसके स्वाभिमानको बुरी तरह ठोकर लगायी गयी है, जिसकी रायको ठुकरा दिया गया है और जिनमें से कई लोगोंको, गलत ढंगसे मुकदमे चलाकर, सजाएँ दी गई हैं? क्या उनके उदारतापूर्ण सुधारोंकी यह पृष्ठभूमि उपयुक्त है? क्या सुधारोंका सूत्रपात उक्त कानून रद करके ही नहीं करना चाहिए ?

और रौलट कानून है क्या? यह शुरूसे आखिरतक एक ऐसा कानून है जो प्रजाकी स्वतंत्रता छीननेके लिए बनाया गया है; इसकी जरा भी जरूरत नहीं है। मानी हुई बात है कि क्रांतिकारी किस्मके अपराधका क्षेत्र इतना सीमित है (या था) कि उसके जवाबमें रौलट कानून जैसा दमनकारी कानून थोपना जनताका अपमान करना है।

इसलिए मैं श्री मॉण्टेग्युकी चेतावनीकी ही शब्दावलीका सहारा लेकर कहना चाहूँगा कि भारतीय विरोधके बावजूद रौलट अधिनियम पास करना एक भूल थी, और विरोधके जारी रहनेके बावजूद उसे बनाये रखना अपराध है।

आप जब देखें कि [श्री] मॉण्टेग्युको इसे सुननेका अवकाश है, आप यह पत्र उन्हें सुना देनेकी कृपा करें।

लेडी सैसिलिया रॉबर्ट्सको कृपया मेरी याद दिलाइये और कहियेगा कि मैं और श्रीमती गांधी दोनों अक्सर कृतज्ञतापूर्वक उनके उस सौजन्यका स्मरण करते हैं जो उन्होंने १९१४[1] की मेरी बीमारीके समय दिखाया था।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८०६) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए खण्ड १२।

२८. पत्र : इन्द्र विद्यालंकारको

मुंबई

श्रावण कृष्ण ६ [अगस्त १७, १९१९]

भाई इंद्र,

मेरा दफ्तर साफ कर रहा हुं। उसमें तुमारा पत्र देखता हुं। मेरा ख्याल है कि उसका उत्तर मैंने भेजा हे। यदि न मीला हो तो लीखीये। मैं उत्तर भेजनेका प्रयत्न करूंगा।

मोहनदास गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४८५६) की फोटो-नकल से।
सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

२९. पत्र : 'टाइम्स ऑफ इंडिया'[1] को

बम्बई

अगस्त १८, १९१९

सम्पादक
'टाइम्स ऑफ इंडिया'
[बम्बई]

महोदय,

आपके दक्षिण आफ्रिकाके संवाददाताने आपके १८ तारीखके अंकमें जिस निष्पक्ष तरीकेसे ट्रान्सवालमें भारतीय स्थितिका सारांश दिया है, उसपर कोई भी आपत्ति उठाना सम्भव नहीं है। प्रश्नके दोनों ही पक्ष उसने यथासम्भव ईमानदारीसे पेश किये हैं।

दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय उपनिवेशवादियोंको जो बात उत्तेजित बनाये रखती है वह यह नहीं है कि उन्हें आफ्रिकाके "काले लोगोंके साथ-साथ खाकी लोगों [भारतीयों] का अतिरिक्त भार" भी वहन करना पड़ रहा है, बल्कि पूरी समस्याका सार, जैसा कि आपके संवाददाताने लिखा है, यह है "कि भारतीयोंके रहते दक्षिण आफ्रिकाको आर्थिक रूपसे आत्मनिर्भर नहीं बनाया जा सकता और जिस गोरी जातिने दक्षिण आफ्रिकाको बनाया है उससे इस बातकी आशा नहीं की जा सकती कि वह एक जातिके रूपमें आत्महत्या कर ले।" यह समस्या फेल्टमें रहनेवाले बोअर लोगोंकी

१. यह २०-८-१९१९के **यंग इंडिया** तथा २२-८-१९१९के **हिन्दू** और **न्यू इंडिया**में उद्धृत किया गया था।

नहीं है; उनके लिए तो भारतीय व्यापारी वरदान-स्वरूप हैं। न यह ट्रान्सवालके बड़े नगरोंमें रहनेवाली यूरोपीय गृहिणियोंकी समस्या है; वे अपने दरवाजेपर आकर सब्जी दे जानेवाले भारतीयपर पूरी तरह निर्भर हैं। यह समस्या तो, जैसा कि आपके संवाददाताने लिखा है, उस खुदरा यूरोपीय व्यापारीकी है जो किफायती उद्योगशील भारतीयको एक दुर्जय प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें देखता है; और यूरोपीय व्यापारीके पास मतदानका अधिकार है, जो काफी महत्त्वपूर्ण बात है; और वह शासक जातिका सदस्य है। इसलिए अपने प्रभावके बलपर अपनी इस आर्थिक समस्याको उसने समस्त दक्षिण आफ्रिकाकी जातीय समस्याका रूप दे दिया है। वास्तवमें समस्या यह है कि क्या खुदरा व्यापारियोंको अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यकी पूर्तिके लिए न्याय, औचित्य, निष्पक्ष नीति और उन सभी विचारोंको धता बतलानेकी अनुमति दी जानी चाहिए जो राष्ट्रको नेक और महान् बनाते हैं।

भारतीयोंको धीरे-धीरे परन्तु निश्चित तौरपर दक्षिण आफ्रिकासे बाहर निकाल फेंकनेकी प्रक्रियाके समर्थनमें तथाकथित स्मट्स-गांधी समझौतेको आधार बनाया गया है। वह समझौता दो, और केवल दो ही पत्रोंमें[1] निहित है, जो ३० जून, १९१४ को लिखे गये थे; इनमें से पहला जनरल स्मट्सकी ओरसे गृहसचिव श्री जॉर्जेसने मुझे लिखा था और दूसरा उसी तारीखको उसी पत्रकी मेरी प्राप्ति-स्वीकृति है। जैसा कि पत्रोंसे सर्वथा स्पष्ट हो जाता है, समझौता सविनय अवज्ञा, जिसे पत्र-व्यवहारमें निष्क्रिय प्रतिरोध कहा गया है, के विषयसे सम्बन्धित प्रश्नोंके बारेमें है। समझौतेमें वर्तमान अधिकारोंका क्षेत्र बढ़ानेकी बात है, उसे प्रतिबन्धित करनेकी कदापि नहीं। और चूँकि समझौतेका उद्देश्य केवल सविनय अवज्ञासे उठनेवाले मसलोंपर ही विचार करनेका था, अन्य प्रश्न जैसेके-तैसे छोड़ दिये गये थे। ३० जूनके मेरे पत्रमें उसकी सीमा निर्धारित कर दी गई है; कहा गया है:—

> जैसा कि मन्त्री महोदयको मालूम है, मेरे कतिपय देशभाई चाहते थे कि मैं इससे अधिक अधिकारोंकी माँग करूँ। वे इस बातसे असन्तुष्ट हैं कि विभिन्न प्रान्तोंके व्यापार परवाना कानूनों, ट्रान्सवाल स्वर्ण-कानून, ट्रान्सवाल कस्बा कानून तथा १८८५ का ट्रान्सवाल कानून संख्या ३ में ऐसे परिवर्तन नहीं किये गये जिनसे कि भारतीयोंको अधिवास, व्यापार तथा जमीनके स्वामित्वके पूर्ण अधिकार मिलते। कुछ लोग इसलिए असन्तुष्ट हैं कि पूर्ण अन्तर्प्रान्तीय आवागमनकी अनुमति नहीं दी गई, और कुछ इसलिए असन्तुष्ट हैं कि विवाहके सवालपर राहत विधेयक जिस हदतक जाता है उससे आगे क्यों नहीं गया।

इस पत्र-व्यवहारमें भारतीय अधिवासियोंको व्यापार परवाने न मिलनेके बारेमें या खानोंके अथवा अन्य किसी क्षेत्रमें उनके अचल सम्पत्ति न रख सकनेके बारेमें एक भी शब्द नहीं है। भारतीयोंको पहले चाहे जितने व्यापार परवानों और अचल सम्पत्तिके लिए प्रार्थनापत्र देने और हासिल कर सकनेका पूरा-पूरा अधिकार था। यह अचल सम्पत्ति पंजीयित कम्पनियाँ बनाकर अथवा बन्धकों द्वारा हासिल की जा सकती थी।

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ४२९-३० और परिशिष्ट २६।

अब आठ वर्षोंके कठिन संघर्षके बाद यह तो सम्भव नहीं कि मैं कोई भी कानूनी हक छोड़ दूँ; और यदि मैं छोड़ूँगा भी तो जिस समाजका प्रतिनिधित्व करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है, वह मुझे यदि गद्दार नहीं तो एक अयोग्य प्रतिनिधि करार देकर पदच्युत तो कर ही देगा; उसका वैसा करना बिलकुल स्वाभाविक और उचित होगा।

एक तीसरा पत्र भी है जो सर्वथा अप्रासंगिक है; परन्तु वह भी समझौतेका अंग समझा जाता है और व्यापार सम्बन्धी अधिकारोंमें कटौती करनेके लिए उसका उपयोग किया गया है। वह पत्र[१] मैंने ७ जुलाईको श्री जॉर्जेसको लिखा था। पत्रकी शब्दावलीसे प्रकट है कि वह पत्र बिलकुल ही निजी है। उसमें मैंने स्वर्ण-कानून तथा बस्ती संशोधन अधिनियमसे सम्बन्धित निहित अधिकारोंके बारेमें अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। मैंने उसमें निश्चित रूपसे कहा है कि मैं अपने किसी भी शब्दसे अपने देशवासियोंका भावी कार्य-क्षेत्र सीमित नहीं करना चाहता। मैंने उसमें निहित अधिकारोंकी परिभाषा-भर लिखी है। इसी परिभाषापर ४ मार्च, १९१४ को सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनसे मैंने बातचीत की थी। मैंने उसमें लिखा था कि "निहित अधिकारोंका अर्थ है भारतीय और उसके उत्तराधिकारियोंको उस बस्तीमें रहने और व्यापार करनेका अधिकार जिसमें वह निवास और व्यापार कर रहा था; फिर चाहे उसने अपनी उस बस्तीमें अपने निवास या व्यवसायका स्थान कितनी ही बार क्यों न बदला हो।"[२] यही परिभाषा है जिसपर कानूनकी प्रवंचना तथा विश्वास-भंगका पूरा सिद्धान्त खड़ा किया गया है। मेरा कहना है कि पत्रके अप्रासंगिक होनेके अलावा, यदि उस पत्रको समझौतेका अंग मान भी लिया जाये तो उसका उपयोग जिस ढंगसे किया गया है, उस ढंगसे नहीं किया जा सकता। जैसा कि मैं पहले भी कई अवसरोंपर कह चुका हूँ व्यापार परवानोंके बारेमें स्वर्ण-कानूनकी प्रतिकूल व्याख्या सम्भव थी और भूमि या इमारतोंके पट्टे हासिल करनेमें स्पष्ट ही बड़ी कठिनाई थी और स्वर्ण-क्षेत्रमें भारतीय जी-तोड़ प्रयत्न करके ही अपने पैर जमाये रह सके हैं। "कानूनकी वैधानिक व्याख्या भारतीयोंके दावेके प्रतिकूल की जा सकती थी", किन्तु फिर भी मैं तत्कालीन व्यापारियों और उनके वारिसोंको संरक्षण दिलानेके लिए प्रयत्नशील था। अतएव ७ जुलाईके मेरे पत्रमें उल्लिखित निहित अधिकारका अर्थ था एक ऐसा अधिकार जो कानूनके बावजूद अस्तित्वमें आ चुका था। और यही वह अधिकार था जिसे उस समयके प्रचलित कानूनोंके अमलमें संरक्षण देना था। अतएव मेरा उक्त पत्र यदि समझौतेमें शामिल मान भी लिया जाये तो मुझे ऐसी कोई व्याख्या नहीं सूझ पड़ती जिसके आधारपर कहा जा सके कि यह देशके कानूनके मुताबिक नैतिक रूपसे (क्योंकि विश्वासभंगके आरोपका यही अर्थ है) भारतीयोंको नये परवाने पानेसे रोकता है। भारतीयोंको खुल्लम-खुल्ला और न्यायपूर्ण संघर्षके फलस्वरूप उनके हकमें यह कानूनी निर्णय मिला है कि वे स्वर्ण-क्षेत्रमें भी परवानेका शुल्क देकर व्यापार परवाने हासिल कर सकते हैं। इसका तो उन्हें पूर्णतः नैतिक अधिकार था। कानून-भंगका उसमें कोई प्रश्न नहीं हो सकता।

१. देखिए खण्ड १२।

२. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३६४-५।

यदि कानून-भंगकी कोई बात होती तो उनके व्यापारी प्रतिद्वंद्वियोंने उनकी कभी की गत बना दी होती। अन्तमें यदि मान भी लें कि कानून भारतीय दावेके प्रतिकूल था, तो भी मेरी परिभाषाका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता था कि उससे कानूनमें संशोधनकी बात उठानेपर प्रतिबन्ध लग जाता है; क्योंकि पूरा समझौता ही अपने स्वरूपमें एक अस्थायी प्रकारका समझौता था। मैंने अपने ३० जूनके पत्रमें निश्चित रूपसे कहा था, "भारतीय तबतक चुप नहीं बैठ सकते जबतक उन्हें पूरे नागरिक अधिकार नहीं मिल जाते।" अतएव मैं तो कहूँगा कि विश्वासभंगकी बात कहना बिलकुल बेईमानी और बेहयाईसे भरी हुई चाल है। ऐसी चालोंको इस प्रश्नके उचित हलमें आड़े नहीं आने देना चाहिए।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

टाइम्स ऑफ इंडिया, १९-८-१९१९

३०. पत्र: एन० पी० कॉवीको[१]

लैबर्नम रोड
गामदेवी
बम्बई
अगस्त १९, १९१९

प्रिय श्री कॉवी,

समाचारपत्रोंसे विदित होता है कि कल महामहिम बम्बईमें होंगे। पिछली बार जब मुझे उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उन्होंने मुझे बताया था कि वे मुझे फिर भेंटका अवसर देंगे और इस बार स्वदेशीपर बातचीत होगी। अतएव यह पत्र केवल महामहिमको स्मरण दिलानेके लिए है। मैं अगले शुक्रवारतक बम्बईमें हूँ और यदि बना तो मैं पूरे अगले हफ्ते बाहर रहना चाहता हूँ। तथापि यह तो है ही कि मैं अपना कार्यक्रम महामहिमकी सुविधानुसार बनाऊँगा। इसलिए अगर मुझे बम्बई छोड़नेसे पहले मुलाकातका समय सूचित कर सकें तो मैं बहुत आभारी होऊँगा।[२]

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८१५)की फोटो-नकलसे।

१. बम्बईके गवर्नर सर जॉर्ज लॉयडके निजी सचिव।

२. कॉवीने २२ अगस्तको लिखे अपने पत्रमें उत्तर दिया था कि गवर्नर आवास-सम्बन्धी एक सम्मेलनमें व्यस्त हैं, तथापि सम्भव हुआ तो बम्बईसे रवाना होनेके पूर्व गांधीजीसे भेंट करेंगे।

३१. एक और कलंक

मेरा यह अरुचिकर कर्तव्य है कि मैं पाठकोंके सामने पंजाबके ऐसे कुछ और भी मामले पेश करूँ जिनसे पता चलता है कि वहाँ स्थिति सर्वथा असहनीय हो गई है। हम कामना करते हैं कि महामहिम वाइसराय अपने वायदेके अनुसार तुरन्त जाँच-समिति नियुक्त करके यह निरन्तर बढ़ती हुई चिन्ता दूर करेंगे। श्री मॉण्टेग्युने हाउस ऑफ कॉमन्समें घोषित किया था कि पंजाबके विशेष न्यायाधिकरणोंके तीन न्यायाधीशोंमें से दो तो ऐसे हैं ही जिन्हें उच्च न्यायालयका तीन वर्षका अनुभव है। और जनताको अभी हालमें यह बतलाया गया है कि न्यायाधिकरणके जो सदस्य उच्च न्यायालयके न्यायाधीश नहीं रहे वे भी उस ऊँचे पदके योग्य हैं। जिन नृशंस अन्यायोंका पर्दाफाश करनेका कष्टकर कर्त्तव्य मुझे निभाना पड़ा है, उसके दुःखकी तीव्रता यह जानकर और भी बढ़ गई है कि इन अन्यायोंको थोपनेवाले लोग वे ही न्यायाधीश हैं, जिनके निर्णयोंपर पूरा भरोसा करनेका जनताको अभ्यास हो गया है। स्वभावमें इस वैषम्यकी उत्पत्तिका कारण यही माना जा सकता है कि पंजाबकी घटनाओंने न्यायाधीशोंकी प्रशिक्षित न्यायिक बुद्धि-को भी थोड़े समयके लिए चकरा दिया होगा। लगता है कि न्यायाधीशोंके दिमागपर यह एक ही आक्रोश छाया हुआ था कि अंग्रेजोंको 'नेटिव' फिर कभी कोई शारीरिक क्षति पहुँचानेकी हिम्मत न कर सकें इसलिए उनको कोई ऐसा दण्ड देना चाहिए जो उन्हें सदा याद रहे। इस आक्रोशने उनके विवेक, उनकी बुद्धि और न्याय-भावनाको आच्छादित कर दिया था। मैंने जिन फैसलोंको देखा है, उनको अन्य कुछ मानकर चलनेपर समझ पाना मेरे लिए तो सम्भव नहीं। ये विचार हाफिजाबादके मुकदमेसे सम्बन्धित फैसले और सबूतको ध्यानपूर्वक देखनेपर उठे हैं। मुकदमेके फैसलेका पूरा पाठ और जिरहके लिए पेश सबूतकी सामग्री इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित की जा रही है। अपनी वकालतके पूरे अर्सेमें, जो कम नहीं है—मैंने लगातार करीब बीस साल वकालत की है, मैंने कभी ऐसे मुकदमे नहीं देखे जिनमें हाफिजाबादके मुकदमेकी तरह इतनी गैर-संजीदगी और इतने बेहद कमजोर सबूतके आधारपर फाँसीकी सजायें सुना दी गई हों।

जिन उन्नीस अभियुक्तोंकी सुनवाई हुई थी उनमें से केवल उन्नीसवें अभियुक्त करमचन्द, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेजके एक विद्यार्थीका मामला मेरे पास भेजा गया है। परन्तु मुझे यह कहनेमें जरा भी हिचक नहीं कि अदालतके सामने ऐसा एक भी सबूत नहीं आया जिससे किसी भी अभियुक्तपर युद्ध छेड़नेका जुर्म लगाया जा सके। अभियुक्तोंपर कई अभियोग लगाये गये थे और न्यायाधीश चाहते तो अन्य अभियोगों-की भी सजा दे सकते थे। अभियुक्तोंपर भारतीय दंड संहिताकी धारा १२१, १४७, ३०७, ४८६ (?) और १४९ के अधीन अभियोग लगाये गये थे। धारा १४७ दंगा करनेसे सम्बद्ध है और उसके अन्तर्गत अधिकसे-अधिक दो सालका दंड दिया जा सकता है। धारा १४९ में गैर-कानूनी सभाओंमें शामिल होनेवाले सभी लोगोंके लिए समान दण्डकी

व्यवस्था है। धारा ३०७ कत्ल करनेकी कोशिशसे सम्बद्ध है, और उसका अधिकतम दण्ड दस वर्षका है। इस मामलेमें धारा ४८६ तो बेमतलब ही दूसरे मुकदमोंकी नकल करते हुए लगा दी गई है, जिसका अदालतके सामने पेश किये गये सबूतसे कोई वास्ता नहीं। इस प्रकार यदि न्यायाधीश चाहते तो किसी कम सख्त धाराके अन्तर्गत लगे अभियोगको लेकर भी सजा सुना सकते थे। पर उनको तो अप्रैलके उन तीन-चार दिनोंके दौरान भीड़ द्वारा किये गये प्रत्येक कार्यसे युद्धकी ही बू आ रही थी।

अतएव जहाँ मेरे सामने यह स्पष्ट है — और मुझे आशा है कि मुकदमेके प्रत्येक निष्पक्ष पाठकके सामने भी स्पष्ट होगा — कि सम्राट्के विरुद्ध युद्ध छेड़नेका अभियोग साक्ष्यके अभावमें सिद्ध नहीं किया जा सकता और छोटे-छोटे अन्य अभियोगोंके आधारपर उनके मुकदमोंके बारेमें एक निश्चित राय बना पाना कठिन है। जो भी हो, मैं अपने मनका यह बहुत गहरा संदेह अपने-आपसे और पाठकोंसे नहीं छिपा सकता कि सबूतके पूरे पाठमें[1] भी शायद ऐसी कोई चीज नहीं मिलेगी जिसके आधारपर न्यायाधीश यह कह सकते हों कि वक्ताओंने भीड़को इस बातके लिए उत्तेजित किया कि वह अधिकसे-अधिक विद्रोह करके सरकारको उलटनेके लिए तत्काल कारगर कदम उठाये। अप्रैलके उन दिनोंमें मैंने कहीं भी सरकारको उलटनेका कोई प्रयत्न नहीं देखा।

परन्तु मुझे सिर्फ करमचन्दके मुकदमेके बारेमें ही कहना चाहिए। फैसलेमें उसके बारेमें कुल इतना कहा गया है:

> **मुजरिम नं० १९, करमचन्द विशेषरूपसे अपराधी था। वह लाहौरके दंगोंकी खबर लेकर वहाँ आया। उसने दंगोंका हाल बहुत ही बढ़ा-चढ़ाकर बतलाया और यह जताकर कि लाहौरकी भीड़ फौजको भी पराजित करनेमें सफल हो गई थी, उसने हाफिजाबादकी भीड़को यह विश्वास दिलाया था कि उनकी बगावत सफल होगी।**

न्यायाधीश आगे कहते हैं कि "हमारा खयाल है कि ये चार आदमी अधिकतम दंड पानेके योग्य हैं।" अधिकतम दंडमें जो तीन अन्य आदमी उसके साथ रखे गये हैं, वे खुद लेफ्टिनेंट टैटमपर हमला करनेवाले माने गये हैं। परन्तु करमचन्द हमलावरोंमें से नहीं था, यह फैसलेके उद्धृत अंशसे भी जाहिर होता है।

अभियुक्तके खिलाफ पेश किये गये सबूतकी भी हमें जाँच करनी चाहिए। अभियोग पक्षके दो गवाहोंने जो लेफ्टिनेंट टैटमको ले जानेवाली गाड़ीमें थे, केवल शिनाख्तीके सबूत दिये गये हैं। वे यह कहनेमें असमर्थ हैं कि करमचन्दने खुद भी कुछ किया था। अभियोग पक्षको गवाह नम्बर ५ने १७ अप्रैलके १८ या २० दिन बाद पहले-पहल करमचन्दकी शिनाख्त की थी। गवाह नम्बर ६ने उक्त तारीखके दस या बारह दिन बाद उसकी शिनाख्त की थी। यह मान्य तथ्य है कि दोनों ही गवाह करमचन्दके लिए बिलकुल अपरिचित थे। करमचन्दके विरुद्ध अभियोगकी मुख्य बात यह नहीं कि उसने १४ अप्रैलको कुछ किया वरन् यह कि वह ११ अप्रैलको लाहौरसे कुछ समाचार

१. सबूतका पाठ करमचन्दके पिताने गांधीजीको भेजा था। देखिए "पत्र: ईश्वरदास खन्नाको", २०-८-१९१९।

पहचाननेमें गलतीकी सम्भावना है कि उन्होंने उसे सक्रिय रूपमें कुछ भी करते नहीं देखा था। इस सबके साथ यह तथ्य भी जोड़कर देखिये कि अभियोग पक्षके गवाह केवल कुछ मिनटोंके लिए भीड़में थे और वह भी उस समय जब, सरकारी सबूतके अनुसार पहले दर्जेके डिब्बेपर पत्थर फेंके जा रहे थे। शिनाख्त सम्बन्धी इतनी अधिक अनिश्चयात्मक साक्षीके आधारपर एक आदमीको फाँसीका हुक्म दे देना न्याय नहीं है। १४ अप्रैलको वह अपने गाँवमें था। इसको साबित करनेके लिए करमचन्दके पिताने मुझे और भी विवरण दिया है। जाहिर है कि इसके अतिरिक्त, उसकी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिए मैं अधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य पेश नहीं कर सकता। उसका पिता अपने पत्रमें लिखता है कि करमचन्दकी सजा घटाकर १० सालकी सख्त कैद[1] कर दी गई है। जाहिर है कि वह इससे सन्तुष्ट नहीं। आशा है कि पंजाबके माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नर खुद मुकदमेका अध्ययन करेंगे; और यदि ऐसा किया गया तो मुझे इस बातमें संदेह नहीं है कि करमचन्द बरी कर दिया जायेगा। यह भी आशा है कि उसके साथके अभियुक्त, जिन्हें फाँसीका हुक्म हुआ था, अबतक जिंदा हैं; उस हालतमें आगामी जाँच समिति उनके मामलोंपर पुनर्विचार कर सकेगी।

हम लोग, जो इस अहाते (बम्बई) में रह रहे हैं, पंजाबकी कार्रवाइयोंकी तुलना, इस समय अहमदाबादमें जो कार्रवाई चल रही है उससे किये बिना नहीं रह सकते। वीरमगाँवमें विक्षुब्ध भीड़की नीचतापूर्ण और नृशंस क्रूरतासे ज्यादा तो हाफिजाबादमें कुछ हुआ ही नहीं था। फिर भी यह देखकर मैं आभारी हूँ कि उस न्यायाधिकरणने न्यायिक रूपसे शान्तचित्त होकर, बिना उत्तेजित हुए जाँच की है और बचाव पक्षके वकीलको प्रत्येक तथ्यको प्रकाशमें ला सकनेका हर तरहसे अवसर दिया है; और उस मामलेमें एक भी व्यक्तिको फाँसीकी सजा देनेकी बात उसके मनमें नहीं आई। जहाँतक मैं जानता हूँ उसके फैसलोंकी अधिक विरोधपूर्ण आलोचना भी नहीं हुई जब कि पंजाबके न्यायाधिकरणोंके प्रत्येक फैसलेकी, जो भी प्रकाशमें आये, सख्तसे-सख्त आलोचना हुई है। जिसकी नियुक्तिका वचन दिया गया है वह जाँच समिति ही इस वैषम्यको दूर कर सकती है। इस बीच हम आशा करते हैं कि जनता बिलकुल ही स्पष्ट अन्याय-के मामलोंमें, जैसा कि बेचारे करमचन्दका है, पूरी तरह बिना शर्त रिहाईकी माँग करेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०–८–१९१९

१. बादमें और भी घटाकर यह एक साल कर दी गई थी।

३२. पत्र : 'टाइम्स ऑफ इंडिया'को[1]

लैबर्नम रोड
बम्बई
अगस्त २०, १९१९

सम्पादक,
'टाइम्स ऑफ इंडिया'

महोदय,

'पेनसिलवेनियन' ने आपके पत्र द्वारा मुझे सद्भावपूर्ण सलाह दी है। आशा है आप मुझे उसका उत्तर देनेकी अनुमति देंगे। मैं जानता हूँ कि 'पेनसिलवेनियन' के जैसे विचार हैं, वैसे ही विचार बहुतसे अंग्रेज ईमानदारीसे रखते हैं। सत्याग्रहके बारेमें कुछ गलतफहमियाँ फैली हुई हैं, उन्हें दूर करनेका मौका देनेके लिए मैं उनको धन्यवाद देता हूँ।

'पेनसिलवेनियन' अपने यशस्वी देशबन्धु अब्राहम लिंकनके उदाहरणका अनुसरण करनेके लिए मुझसे कहते हैं। उनकी एक उक्ति यह है कि

हमें विश्वास रखना चाहिए कि सत्याचरणसे ही बल पैदा होता है और हमें इसी विश्वाससे जीवनके अन्ततक अपनी समझके अनुसार अपने कर्त्तव्य पूरे करते रहना चाहिए।[2]

मैंने अपने जीवनमें अपनी शक्ति-भर इस वचनको कार्यान्वित करनेका सदा प्रयत्न किया है।

'पेनसिलवेनियन' का 'नैतिक क्रान्ति' का आग्रह करना वाजिब है। सत्याग्रह उसके सिवा और कुछ नहीं है। सविनय अवज्ञा उसका केवल एक भाग है, यद्यपि वह एक आवश्यक भाग है। सत्याग्रहका शब्दार्थ है 'किसी भी मूल्यपर सत्यका आग्रह।' जिन्होंने आजीवन सत्याग्रही रहनेका व्रत लिया है वे सत्य, अहिंसा, गरीबी और ब्रह्मचर्यका सम्पूर्ण पालन करनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। 'पेनसिलवेनियन' ने जो कार्यक्रम बताया है, वह लगभग सारा अमलमें लानेका जहाँ प्रयत्न किया जा रहा हो, ऐसी एक संस्था इस समय मौजूद है।[3] अंग्रेज और अमरीकी मित्र उसे देख चुके हैं। 'पेनसिलवेनियन' को भी मैं उसे देखने और उसके बारेमें सार्वजनिक विवरण देनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ।

१. गांधीजीने यह पत्र 'पेनसिलवेनियन' द्वारा कुछ दिन पहले **टाइम्स ऑफ इंडिया**में लिखे एक खुले पत्रके उत्तरमें लिखा था, जिसमें लेखकने गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे सामाजिक शिक्षा और आर्थिक सुधारोंके निरन्तर प्रचारके माध्यमसे समाजके उत्थानके प्रयत्नोंपर ही जोर दें। यह पत्र २३-८-१९१९ के **यंग इंडिया** और **न्यू इंडिया**में भी प्रकाशित हुआ था। देखिए परिशिष्ट ५।

२. लिंकन द्वारा २७ फरवरी, १८६० को कूपर इन्स्टीटयूटमें दिये गये भाषणसे उद्धृत।

३. उल्लेख स्पष्ट ही गांधीजी द्वारा साबरमतीमें संस्थापित सत्याग्रह आश्रमका है।

वहाँ वे देखेंगे कि जीवनमें अलग-अलग दर्जा रखनेवाले स्त्री-पुरुष पूर्ण समानताके भावसे रहते हैं; जो निरक्षर हैं उनको दैनिक परिश्रमसे बचनेवाले समयमें अक्षर-ज्ञान कराया जाता है और जो पढ़े-लिखे हैं, वे कुदाली और फावड़ा लेकर काम करनेसे नहीं हिचकिचाते। वहाँ वे देखेंगे कि खेतीके कामके सिवा वहाँके सदस्य सूत कातना फर्ज समझकर सीखते हैं। उसका पुराना इतिहास देखनेपर उन्हें पता लगेगा कि जब इन्फ्लुएँजा फैला, तब उसके सदस्योंने आसपासके गाँवोंके लोगोंको दवा देनेका काम किया था और अकालके समय गरीब लोगोंको अनाज बाँटनेमें अकाल-समितिको सहायता दी थी। उसी समिति द्वारा जुलाहोंको काम देकर उनमें हजारों रुपये बाँटे थे और इस प्रकार देशका उत्पादन बढ़ानेमें सहायता दी थी। उसके सदस्योंके प्रयत्नसे ही आज बहुत-सी स्त्रियाँ, जो अबतक कुछ भी नहीं कमाती थीं, अपने फुरसतके समयमें सूत कातकर थोड़ा-सा कमाने लगी हैं। सार यह कि 'पेनसिलवेनियन' द्वारा अंकित विस्तृत कार्यक्रमकी [कुछ] बातोंपर सत्याग्रही लोग अपनी पूरी शक्ति लगाकर अमल कर रहे हैं। यह हममें हो रही एक नैतिक क्रान्ति ही है। उसका विज्ञापन करनेसे उसमें न्यूनता आती है। आजीवन सत्याग्रही वहाँ जो रचनात्मक काम कर रहे हैं, वह इस प्रकार जाहिर करनेमें मुझे बड़ा संकोच अनुभव होता है।

मैं इतना और बता दूँ कि सत्याग्रहके प्रादुर्भावसे मेरी जानकारीके मुताबिक कितने ही अराजकतावादियोंको उनके रक्तपातके सिद्धान्तोंसे विमुख किया जा सका है। उनकी समझमें आ गया है कि गुप्त संस्थाएँ बनाने और छिपकर खून-खराबी करनेसे इस अभागे देशपर सैनिक और आर्थिक भार बढ़नेके सिवा और कोई परिणाम नहीं निकलता; उससे देशपर खुफिया पुलिसका नागपाश और अधिक सख्त हो गया है और हजारों गुमराह जवानोंकी जिन्दगी बरबाद हो चुकी है। सत्याग्रहने उदीयमान पीढ़ीमें नवीन आशाका संचार किया है। जीवनके अनेक अनिष्टोंके लिए सत्याग्रह उन्हें खुला और रामबाण उपाय बताता है। नई पीढ़ीको सत्याग्रह एक अजेय और अनुपम बलका अनुभव कराता है। इस बलका उपयोग कोई भी मनुष्य बिना-किसी आपत्तिके कर सकता है। सत्याग्रह हिन्दुस्तानके युवकोंसे कहता है कि स्वयं कष्ट सहन करना ही आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक मुक्तिका एकमात्र मार्ग है।

सत्याग्रहमें ज्यादातर 'बुराईका प्रतिकार' और 'सविनय सहायता' का समावेश रहता है। परन्तु कभी-कभी वह सविनय प्रतिकारका रूप भी ग्रहण करता है। यहाँ मैं अपनी सहायताके लिए 'पेनसिलवेनियन' के एक अन्य यशस्वी देशबन्धु हेनरी थोरोका आश्रय लूँगा। वे पूछते हैं कि "क्या कोई भी नागरिक किसी भी मात्रामें एक क्षणके लिए भी अपनी विवेक-बुद्धि विधायकको सौंप सकता है?" यह सवाल पूछकर वे स्वयं जवाब देते हैं: "मेरी समझमें तो प्रत्येक व्यक्तिको पहले मनुष्य होना चाहिए और इसके बाद प्रजा। न्यायके प्रति लोगोंके मनमें सम्मान बढ़ाना वांछनीय है किन्तु कानूनके प्रति वैसा ही करना वांछनीय नहीं है।" मैं समझता हूँ कि थोरोका तर्क अकाट्य है। प्रश्न केवल यह है कि अन्तरात्माके अनुरोधपर अमल करनेके अधिकारको स्थापित करनेके लिए क्या उपाय अपनाया जाये? प्रचलित उपाय तो यह है कि जो आपकी अन्तरात्माको आघात पहुँचाये, उसपर आप हिंसाका प्रयोग करें। थोरो अपने

उस अमर लेखमें कहते हैं कि हिंसा नहीं, सविनय अवज्ञा ही सच्चा उपाय है। सविनय अवज्ञामें अवज्ञा करनेवाला अवज्ञाके परिणाम भुगत लेता है। ईरान और मीडियाके कानूनोंकी जब दानियालने अवज्ञा की, तब उसने यही किया था। जॉन बनियनने[1] भी यही किया था। हिन्दुस्तानमें किसान परम्परासे ऐसा ही करते आये हैं। यही हमारा जीवन-धर्म है। हिंसा तो हमारे भीतर मौजूद पशुका धर्म है। स्वयं कष्ट उठाना अर्थात् सविनय अवज्ञा करना हमारे भीतर बसे हुए मनुष्यका धर्म है। सुव्यवस्थित राज्यमें सविनय प्रतिकारका अवसर बहुत ही कम आता है। परन्तु अवसर उपस्थित हो जाये तो उसका प्रतिकार करना उन लोगोंका कर्त्तव्य हो जाता है, जो अपने स्वाभिमान या अपनी अन्तरात्माको ही सर्वोपरि समझते हैं। रौलट कानून एक ऐसा कानून है, जो हममें से हजारोंकी अन्तरात्माओंको मंजूर नहीं। इसलिए मेरा नम्रतापूर्वक यह सुझाव है कि अंग्रेज जनताको चाहिए कि वह मुझपर रौलट कानूनकी सविनय अवज्ञा न करनेके लिए दबाव डालनेके बजाय सरकारसे ही अपील करे कि राष्ट्रके स्वाभिमानको आघात पहुँचानेवाले और ऐसे सर्वसम्मत लोकमतके विरोधके पात्र इस कानूनको वह रद कर दे।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

टाइम्स ऑफ इंडिया, २२–८–१९१९

३३. पत्र : ईशरदास खन्नाको

लैबर्नम रोड
बम्बई
अगस्त २०, १९१९

प्रिय महोदय,

आपका पत्र और उसके साथ आपके पुत्र करमचन्दके मुकदमेसे सम्बन्धित सबूत और फैसलेकी नकल मिली। कृपया माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नरको भेजे गये प्रार्थनापत्रकी नकल भी मेरे पास भेज दीजिए। आपका पुत्र १४ अप्रैलको हाफिजाबादमें नहीं था, आपने इस बयानकी पुष्टि करनेके लिए गवाही क्यों नहीं दी? कृपया मुझे सबूतके पूरे पाठकी प्रति भी भेज दीजिये। मुझे यह भी सूचित कीजिये कि जिन तीन अन्य व्यक्तियोंको फाँसीकी सजा सुनाई गई थी, उनका क्या हुआ।

हृदयसे आपका,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८१४) से।

१. (१६२८–१६८८); **पिलग्रिम्स प्रोग्रेस** तथा **द होली वॉर**के लेखक।

३४. पत्र : लाला लाजपतरायको

अगस्त २०, १९१९

प्रिय लाला लाजपतराय,

आपका पत्र[1] पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। इसे मैं इतना मूल्यवान समझता हूँ कि मैंने उसे प्रकाशित कर दिया है।[2] आपके विचारोंके बारेमें जो गलत धारणायें थीं उन्हें दूर करनेमें इससे मदद मिलती है। आपने पत्रपर हस्ताक्षर नहीं किये। मेरे खयालमें हस्ताक्षर भूलसे रह गये हैं। मैं चाहता हूँ कि यदि आप ठीक समझें तो अपने विचारोंको विस्तृतरूपमें लिखकर उन्हें प्रकाशित करनेके लिए दूसरा ब्यौरेवार पत्र[3] लिख भेजें। आप-जैसे आदमियोंको इस समय हिन्दुस्तानसे बाहर रहना पड़ रहा है, यह मेरे लिए तो असह्य है।[4] मेरी रायमें तो हर सच्चे भारतीय का स्थान भारतमें ही है। सत्याग्रहके सिद्धान्तके लिए यानी हिंसा किये बिना विरोध करनेके लिए अधिकसे-अधिक शक्ति चाहिए। मेरी राय है कि इससे केवल हिन्दुस्तानके ही नहीं बल्कि दुनियाभरके प्रश्न हल हो जायेंगे।

'यंग इंडिया' तो आपको नियमित रूपसे मिलता ही रहता होगा।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. देखिए परिशिष्ट ३।

२. देखिए "लाला लाजपतरायके पत्रपर टिप्पणी", १३-८-१९१९ के पूर्व।

३. गांधीजीके अनुरोधपर लाला लाजपतरायने जो पत्र लिखे थे वे १२-११-१९१९, २६-११-१९१९ और १७-१२-१९१९ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुए थे।

४. सरकारने लाला लाजपतरायको उनकी राजनीतिक गतिविधियोंके कारण भारतसे निष्कासित कर दिया था। इन दिनों वे अमरीकामें थे और वहाँसे १९२० में भारत लौटे।

३५. देवदास गांधीको लिखे पत्रका अंश

[बम्बई]
श्रावण बदी ९, [अगस्त २०, १९१९]

लाला लाजपतरायका पत्र प्रकाशित होनेसे किसीके नाराज होनेका तो कोई कारण नहीं है। वह प्रकाशित होनेके लिए ही भेजा गया था। उससे उनकी कीर्ति बढ़ती है। फिर भी जो आलोचना हो, उसे हमें तो शान्तिसे ही सुनना है।

लालाजीका पत्र छापनेके लिए ही है। हरदयालके बारेमें [उसमें] जो-कुछ लिखा गया है, वह प्रसिद्ध ही है। मनुष्य इतने डरपोक हो गये हैं कि वे अपनी परछाईंतक से डरते हैं। मैंने तो पत्र छापकर लालाजीके लिए भारत आनेका द्वार कुछ खोल दिया है। 'सत्याग्रह' थोड़े ही अर्सेमें केवल गुजराती शब्द नहीं रह जायेगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

३६. पत्र : लल्लुभाई शामलदास मेहताको[1]

लैबर्नम रोड
गामदेवी, बम्बई
श्रावण बदी १०, १९७५ [अगस्त २०, १९१९]

सुज्ञ भाईश्री,

मैंने अभीतक आपको किसी भी दिन कष्ट नहीं दिया, लेकिन आज दिये बिना काम नहीं चल सकता। आप भाई मणिलाल जादवजी व्यासके मामलेसे कदाचित् बिलकुल अपरिचित नहीं हैं। ये राजकोट रियासतकी रैयत हैं। कराचीमें धन्धा करते थे। इन्होंने सत्याग्रह प्रतिज्ञापर अप्रैल अथवा मार्च महीनेमें हस्ताक्षर किये थे। मई मासमें कराचीके कमिश्नरने इन्हें १८६४के कानूनकी रूसे ब्रिटिश भारतसे निर्वासित किये जानेका आदेश दिया। उन्होंने मुझे पत्र लिखा तथा बम्बई सरकारसे अपील की। बम्बई सरकारने उपर्युक्त आदेशको बहाल रखा है। आप देखेंगे कि 'यंग इंडिया'में सरकारके इस निर्णयकी आलोचना की गई है। आप 'यंग इंडिया' तो अवश्य पढ़ते होंगे। यदि आपको 'यंग इंडिया'की प्रति नहीं मिलती है तो लिखियेगा, मैं भिजवा दूँगा। इस सम्बन्धमें आप चाहें तो बहुत-कुछ कर सकते हैं; मैं चाहूँगा कि आप अवश्य कुछ करें।

मूल गुजराती पत्रकी हस्तलिखित प्रति (एस० एन० ६८१०) से।

१. भावनगर रियासतके दीवान।

३७. पत्र : सी० विजयराघवाचारियरको[1]

लैबर्नम रोड
गामदेवी
बम्बई
अगस्त २१, [१९१९]

प्रिय दीवान बहादुर,

मेरा खयाल है कि सविनय अवज्ञाके स्थगित रहते हुए भी रौलट कानून रद करानेके लिए सतत आन्दोलन जारी रखना ही चाहिए। मेरा सुझाव है कि नेतागण वाइसराय अथवा श्री मॉण्टेग्युको एक तर्क-सम्मत ज्ञापन भेजें। इसके लिए इधरके नेताओंके साथ में बात कर रहा हूँ। परन्तु कुछका खयाल है कि ऐसा स्मरण-पत्र भेजनेसे भी सुधारोंको खतरा पैदा हो सकता है! क्या मद्रास नेतृत्व करेगा?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३८. पत्र : लेडी टाटाको

लैबर्नम रोड
[बम्बई]
अगस्त २१, १९१९

प्रिय लेडी टाटा,

चरखेके मामलेमें माफी माँगनेकी तो कोई जरूरत नहीं थी। आप इतने समय चरखेके बिना रहीं, इसका मुझे अफसोस है। आप (शुक्रवारको) दोपहरमें अपनी मोटर भेज दें, तो मैं चरखा और थोड़ी-सी पूनियाँ गोविन्दबाबूके साथ भेज दूँगा। आप यदि थोड़ा समय देंगी, तो वे आपको चरखा चलाने तथा उसे ठीक रखनेके बारेमें कुछ हिदायतें दे देंगे।

१. १९२० में नागपुर कांग्रेसके अध्यक्ष।

गवर्नर-सम्बन्धी बात मैं अपने तक रखूँगा। वह बहुत अच्छी है; उसका प्रचार नहीं किया जा सकता। इसलिए उसके प्रचारका भय मत मानिये। ईश्वरेच्छा होगी तो आपकी भविष्यवाणी सच्ची निकलेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

३९. पत्र : बम्बईके लोक-शिक्षा निदेशकको

बम्बई
अगस्त २१, १९१९

प्रिय महोदय,

मुझे पिछले सप्ताह गोधरा जाने और वहाँ स्टुअर्ट लाइब्रेरी देखनेका मौका मिला। मैंने देखा कि कुछ समाचारपत्रोंको पुस्तकालयमें पढ़नेके लिए रखना अवांछनीय माना जाता है। मैं कहना चाहूँगा कि अवांछनीय समाचारपत्रोंकी सूची बनानेमें मनमानी की गई है। उदाहरणके लिए, मैं देखता हूँ कि 'यंग इंडिया' वहाँ निषिद्ध है। अब चूँकि आजकल यह पत्र विशेषरूपसे मेरी देखरेखमें प्रकाशित हो रहा है, मैं निर्भीकतासे कहता हूँ कि यह एक ऐसा समाचारपत्र है जो बच्चेके भी हाथोंमें दिया जा सकता है। १९ जून, १९१७ को उसे निषिद्ध करार दिया गया। उस दिनके बादसे इसमें कई उतार-चढ़ाव आ चुके हैं। 'मराठा'[1] भी निषिद्ध है। यह बहुत समयसे प्रतिष्ठित और पुराना अंग्रेजी साप्ताहिक है, जिसका भारतीय पाठक-वर्गमें बहुत प्रचार है। फिर 'गुजराती' भी गुजराती पत्रोंमें सबसे पुराना पत्र है। इन पत्रोंकी नीतिसे कोई भले ही सहमत न हो, परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि पत्रकी नीतिके कारण उसे सार्वजनिक पुस्तकालयसे अलग रखना एक गंभीर बात है। मैंने सूचीमें से केवल थोड़ेसे उदाहरण सरसरी तौरपर चुन लिए हैं। जहाँतक मैं जानता हूँ उस सूचीका एक भी समाचारपत्र ऐसा नहीं है, जिसपर किसी भी उचित कारणसे आपत्तिकी जा सके। मेरी रायमें यह मानकर कि पत्रोंका निर्वाचन होना चाहिए, यह मामला एक ऐसी पुस्तकालय समितिके हाथोंमें सौंप दिया जाये जिसका चुनाव स्थानीय निवासी करें और जिसमें आपका स्थानीय प्रतिनिधि पदेन सदस्य हो। इसमें यह साफ होना

१. लोकमान्य तिलक द्वारा पूनामें संस्थापित दो पत्रोंमें से एक; वे इसके सम्पादक भी थे।

चाहिए कि कोई समाचारपत्र या पुस्तक सिर्फ तभी निषिद्ध की जाये जब समितिकी रायमें नैतिकताकी दृष्टिसे जनतापर उसका बुरा प्रभाव पड़ता हो।

मैं विश्वास करता हूँ कि आप इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलेपर शीघ्र ही पूरी गम्भीरतासे विचार करेंगे।[१]

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १७-९-१९१९

४०. पत्र : पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरके निजी सचिवको

लैबर्नम रोड, गामदेवी
बम्बई
अगस्त २२, १९१९

सेवामें,
पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयके
निजी सचिव
लाहौर

प्रिय महोदय,

कष्टकर होनेपर भी, कर्त्तव्यके नाते मुझे लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयका ध्यान एक और स्पष्ट मामलेमें न्यायकी त्रुटिकी ओर आकर्षित करना पड़ रहा है। मैं हाफिजाबाद जत्थेके एक अभियुक्त, करमचन्दके मामलेकी बात कर रहा हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयने पहले उसके मृत्युदण्डको घटाकर दस वर्षका कारावास करने और फिर अन्तमें उसे भी घटाकर एक वर्षके कारावासमें बदल देनेकी कृपा की है, परन्तु सभी मानेंगे कि एक ऐसे मामलेमें जिसमें अभियुक्तके विरुद्ध कोई भी ठोस सबूत न हो अभियुक्तको पूरी तौरपर दोषमुक्त करके ही न्यायका मंशा पूरा किया जा सकता है, इससे कम किसी भी चीजसे वह पूरा नहीं हो सकता। मैं इसीलिए यह कहनेकी धृष्टता कर रहा हूँ कि इस मामलेपर एक बार फिर गौर किया जाये। मुझे भरोसा है कि पुनर्विचारके बाद लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदय युवक करमचन्दकी रिहाईका आदेश देनेकी कृपा करेंगे। मैं इसके साथ 'यंग इंडिया' की वह प्रति संलग्न कर रहा हूँ जिसमें करमचन्दके मामलेसे सम्बन्धित सबूत, फैसलेका पूरा पाठ और

१. निदेशकने १३ सितम्बरको इस पत्रका उत्तर देते हुए गांधीजीको सूचित किया कि पत्रिकाओंके निषेध सम्बन्धी आदेशको वापस ले लिया गया है।

फैसलेका मेरा अपना विश्लेषण है।[1] मुझे बतलाया गया है कि युवक करमचन्दका विवाह हाल ही में हुआ है और उसका पिता तो अपने सर्वथा निर्दोष पुत्रके जेलमें डाल दिये जानेके कारण बिलकुल ही टूट गया है।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

संलग्न : १, ('यंग इंडिया'की प्रति)

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८१९) की फोटो-नकलसे।

४१. पत्र : लॉर्ड विलिंग्डनके निजी सचिवको

लैबर्नम रोड
गामदेवी
बम्बई
अगस्त २२, १९१९

प्रिय महोदय,

मैं यह पत्र महामहिमके सामने प्रस्तुत करनेके लिए एक निजी ढंगके बहुत ही जरूरी कामके सिलसिलेमें लिख रहा हूँ।

सम्भवत: डेनमार्ककी कुमारी फैरिंगका नाम, जो अभी हालतक तिरुकोइलूरमें मिशनके एक बालिका स्कूलकी सुपरिटेंडेंटके पदपर काम कर रही थी, महामहिमके ध्यानमें आ चुका है। लगभग दो वर्ष पहलेकी बात है, वे अहमदाबादके मेरे आश्रम-में एक अन्य डेनिश महिलाके[2] साथ गई थीं और दोनों ही महिलाओंने आश्रम तथा उसके आदर्शोंमें विशेष दिलचस्पी ली थी। उसके बादसे कुमारी फैरिंग मुझसे तीन-चार बार मिल चुकी हैं और मेरा खयाल है कि वे बादमें भी एक बार आश्रम आई हैं। वे काफी नियमित रूपसे मुझसे पत्र-व्यवहार करती रही हैं[3] और मैं समझता हूँ कि उनका मुझसे इस तरहका लगाव है जैसा कि पितासे अपनी बच्चीका होता है; और इसका कारण केवल यह है कि उनकी रायमें मैं अपने कार्योंमें उन आदर्शोंका प्रतिनिधित्व करता हूँ जिन्हें वे अपने निजी जीवनमें उतारनेकी बराबर कोशिश कर रही हैं। वे भारतको अपनी मातृभूमिकी तरह प्यार करती हैं और मैं यह भी जानता हूँ कि यदि उन्हें भारतसे निर्वासित किया गया तो उनको बड़ा मानसिक क्लेश होगा; जिसकी उन्हें आशंका है। इधर कुछ दिनोंसे उनपर सन्देह किया जाता रहा है और

१. देखिए "एक और कलंक", २०–८–१९१९।
२. एन० मेरी पीटर्सन।
३. देखिए खण्ड १३, १४ और १५।

खुफिया उनके पीछे पड़ी रही है। कुछ समय पहले उनका इरादा था कि हो सके तो वे डैनिश मिशन छोड़ दें। मैं समझता हूँ कि इस इच्छासे उन्हें विमुख करनेमें मुझे सफलता मिली। मैंने उन्हें समझाया कि मिशनसे हुए अपने करारको यदि पूरा करनेका अवसर प्राप्त रहे तो उसे पूरा करते रहना उनका कर्त्तव्य है। मैंने अभी-अभी सुना है कि वे अब मिशनमें नहीं हैं। यदि यह सच है और यदि उन्हें अनुमति मिल सके तो मैं उन्हें सहर्ष आश्रममें लेनेको तैयार हूँ। यहाँ वे मेरे गैर-राजनैतिक कार्योंमें सहयोग देंगी। मेरा विश्वास है कि वे बहुत सीधी-सच्ची हैं और ऐसे व्यक्ति खोजनेसे भी नहीं मिलते। वे सदैव ईश्वरसे भय मानती हैं और सच्चा ईसाई जीवन बितानेका पूरा प्रयत्न करती हैं। चूँकि भारतके लोगोंमें ही अपना अधिकांश जीवन बितानेकी उनकी इच्छा है, इसलिए मैंने उन्हें यहाँकी नागरिकता ले लेनेकी सलाह दी थी। मैं जानता हूँ कि उन्होंने इसकी कोशिश की थी। मैंने भारतीय नागरिकताकी प्राप्तिके लिए दिये गये उनके प्रार्थनापत्रको भी ठीक किया था। परन्तु मैं नहीं जानता कि उन्होंने उसे भेजा या नहीं। मैं केवल आशा कर सकता हूँ कि महामहिम उनसे मिलकर उनके विषयमें मेरी जैसी ही राय बना सकेंगे। यदि उनके बारेमें कोई जिम्मेदारी लेनेकी जरूरत हो तो वह आसानीसे ली जा सकती है। यदि किसी आश्वासनकी आवश्यकता हो तो मैं महामहिमको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि राजनैतिक क्षेत्रमें उनकी सहायता लेनेकी मेरी रत्ती-भर भी इच्छा नहीं है। जैसा कि लॉर्ड विलिंग्डन शायद जानते हैं, मेरे कार्यका सबसे बड़ा अंश सामाजिक और नैतिक या धार्मिक है। मेरे अतीव अन्तरंग सहयोगी भी मेरे राजनैतिक कार्यमें कोई हिस्सा नहीं लेते। मेरे आश्रमके निवासी कृषीय, औद्योगिक और शैक्षणिक कार्योंमें लगे हैं। और यदि कुमारी फैरिंग आश्रम आ जाती हैं तो वे इन्हीं कामोंमें हिस्सा लेंगी और यदि जरूरत हुई तो मैं इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लूँगा कि वे अन्य कोई काम न करें।

कुमारी फैरिंगको इस पत्रके बारेमें कुछ नहीं मालूम। मैं इस पत्रकी नकल उनके पास इस सांत्वनाके लिए भेज रहा हूँ कि एक सौभाग्यशाली बन्धुके नाते मैं उनके प्रति अपने कर्त्तव्यसे बेखबर नहीं हूँ और इसलिए भी कि इस पत्रमें जो जिम्मेदारी मैं ले रहा हूँ उसपर उनकी स्वीकृतिकी मोहर लग जायेगी।

मैं इस मामलेमें, जो कुछ अंशोंमें व्यक्तिगत है, महामहिमको तकलीफ देनेके लिए क्षमा चाहता हूँ।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० ६८२३) की फोटो-नकलसे।

४२. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

लैबर्नम रोड, गामदेवी
बम्बई
अगस्त २२, १९१९

प्रिय चार्ली,

सुन्दरम्ने मुझे कुमारी फैरिंगके बारेमें बड़ा ही चिन्ताजनक समाचार सुनाया है। मैंने उससे खास तौरपर इसीलिए वहाँ जाकर कुमारी फैरिंगसे मिलनेको कहा था। उसने लौटकर मुझे यह बतलाया है कि फैरिंग अब 'डैनिश मिशन' में काम नहीं करती और आशंका है कि उसे कहीं भारत न छोड़ना पड़े। वह इस सम्भावनाके कारण बहुत परेशान है। यदि उसे भारत छोड़ना पड़ा, तो उसकी तो जैसे मौत ही हो जायेगी। मैंने लॉर्ड विलिंग्डनको जो पत्र लिखा है उसकी प्रति भेज रहा हूँ। मुझे इसकी बड़ी चिन्ता है। अच्छा हो कि तुम तुरन्त ही मद्रास चले जाओ और उसका देशनिकाला रोकनेके लिए जो भी बन सके करो।

अहिंसाके सिद्धान्तकी अकाट्यतापर मेरा विश्वास दिन-दिन अधिक जमता जा रहा है। पशु-बल जिसके पास जितना अधिक होता है वह उतना ही अधिक कायर बन जाता है। जरा कल्पना तो करो, संसारके एक सबसे अधिक निर्दोष व्यक्तिपर नजर रखनेके लिए गुप्तचर विभागकी पूरीकी-पूरी घृणित मशीनका लगा दिया जाना कितनी विचित्र बात है। निर्दोष व्यक्तियोंको शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचाकर बन्दूककी गोलीसे अपनेको बचानेकी अपेक्षा मैं स्वयं तो उन गोलियोंसे छलनी बन जाना कहीं ज्यादा पसन्द करूँगा।

आज हमारी सरकार कोई भी ज्यादती करनेसे नहीं हिचकती। भौतिक बलकी निःसारता इतनी स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि उसे समझनेके लिए किसीका दार्शनिक होना जरूरी नहीं। परन्तु हो सकता है कि तुम मेरे निष्कर्षों या अनुमानोंसे सहमत न हो। मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी इस बातसे अवश्य सहमत हो जाओ कि कुमारी फैरिंगको किसी भी अनिष्टसे बचानेके लिए भरसक प्रयत्न करना हमारे लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि मेरे लिए पूरे जीवनकी बाजी लगाकर रौलट अधिनियमका विरोध करना और तुम्हारे लिए शान्तिनिकेतनमें रहना।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

संलग्न : १

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८२२) की फोटो-नकलसे।

४३. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लैबर्नम रोड
बम्बई
अगस्त २४, १९१९

रानी बिटिया,

तुम्हारे सम्बन्धमें सुन्दरम्‌के पत्रने मुझे बहुत उदास कर दिया है। तुम्हारे दुःखमें मेरी हार्दिक समवेदना है। लेकिन मैं जानता हूँ कि जब हम अतिशय दुर्बल हो गये हों उस समय ईश्वरपर भरोसा रखें तो वह हमें किसी-न-किसी प्रकार शक्ति प्रदान कर देता है। इसीलिए अपने हृदयके अन्तरतममें मुझे लगता है कि तुमपर कैसी भी क्यों न बीते, अन्तमें तुम्हारा कल्याण ही होगा। फिर भी मैं गवर्नरको पत्र लिखे बिना नहीं रह सका।[1] उस पत्रकी एक प्रति संलग्न है। यदि तुम्हें कोई काम न हो, तो तुरन्त आश्रम चली जाओ। मैं श्री बिटमैनको पत्र लिखना चाहता हूँ, लेकिन पहले मैं इस पत्रके उत्तरकी प्रतीक्षा करूँगा। बाकी बातें गवर्नरके नाम मेरे पत्रसे तुम्हें ज्ञात हो जायेंगी। यदि लगे कि उसमें वस्तुस्थितिका सही उल्लेख नहीं है तो मुझे सूचित करना। यदि तुम अपनी आर्थिक आवश्यकताएँ[2] मुझे नहीं बताओगी तो तुम रानी बिटिया नहीं कहलाओगी।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

४४. पत्र : एन० पी० कॉवीको

लैबर्नम रोड, गामदेवी
बम्बई
अगस्त २५, १९१९

प्रिय श्री कॉवी,

जान पड़ता है, परमश्रेष्ठसे मुलाकातका मौका मुझे शायद कुछ दिनोंतक नहीं मिल सकेगा।[3] फिर भी मैं स्वदेशीके बारेमें परमश्रेष्ठकी सम्मति यथाशीघ्र पानेके लिए

१. देखिए "पत्र : लॉर्ड विलिंग्डनके निजी सचिवको", २२-८-१९१९।

२. एस्थर फैरिंगको मिशनसे वेतन मिलना बन्द हो गया था।

३. गांधीजीने वाइसरायसे भेंटके लिए समय माँगा था; देखिए "पत्र : एन० पी० कॉवीको", १९-८-१९१९।

उत्सुक हूँ। इसलिए मैं परमश्रेष्ठके विचारार्थ स्वदेशी सम्बन्धी अपने विचार और तर्क प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझे पूरी आशा है कि वे उसे पढ़नेका समय निकाल सकेंगे और यदि सम्भव हो तो मेरे तर्कोंके अन्तमें जो प्रार्थना की गई है उसे पूरा करनेकी कृपा करेंगे।

स्वदेशी

स्वदेशी मेरी कल्पनाके अनुसार यह है: भारतकी जरूरत-भरके लिए पर्याप्त कपड़ा तैयार करना और उसका समुचित वितरण करना; इसमें घरेलू उत्पादनको प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे लोगोंको यह शपथ लेनेके लिए राजी करना भी शामिल है कि वे स्वदेशी वस्त्र ही पहनेंगे। इस शपथमें शपथ लेनेवालेको अधिकार रहेगा कि उसके पास फिलहाल जो विदेशी वस्त्र हों वह उन्हें आवश्यकता पड़नेपर पहनता रहे। स्वदेशीकी कल्पना वस्तुत: एक धार्मिक और आर्थिक आवश्यकताके रूपमें ही की गई है। और यद्यपि इसमें एक उच्च नैतिक ढंगके राजनीतिक परिणामोंकी सम्भावनाएँ भरी पड़ी हैं, तथापि इसलिए कि सब लोग इसमें भाग ले सकें, स्वदेशीके प्रचारको केवल धार्मिक और आर्थिक पहलुओंतक ही सीमित रखा गया है। स्वदेशी वस्त्र या तो कताई-बुनाई करनेवाली मिलों द्वारा तैयार किया जा सकता है या हाथ-कताई और हाथ-बुनाई द्वारा। फिलहाल इस समय हम हाथसे कातने और हाथसे बुननेपर ही जोर दे रहे हैं।

तर्क

हम ऐसा इसलिए कर रहे हैं कि किसानों अर्थात् भारतकी ७३ प्रतिशत आबादी-को एक ऐसे उद्योगकी आवश्यकता है जो कृषिका पूरक हो। यह जन-संख्या सालमें लगभग चार महीने बेकार रहती है। आजसे सौ साल पहले भारतकी स्त्रियाँ पैसेके लिए या शौकिया सूत कातती थीं। हजारों पेशेवर बुनकर कपड़ा बुनते थे जो घरेलू आवश्यकताओंके लिए पर्याप्त होता था। इसकी जाँच करना तो अनावश्यक है कि आज भी वैसा ही किया जा सकता है या नहीं; इसमें सन्देहकी गुंजाइश नहीं है कि यदि इन लाखों किसानोंको सूत कातने और बुननेकी ओर प्रवृत्त किया जा सके तो इस देशका जो धन विदेशोंमें चला जाता है उसका परिमाण बहुत घट जायेगा और साथ ही किसान अपनी आमदनी भी बढ़ा सकेंगे। कई केन्द्रोंमें जाकर और सैकड़ों स्त्रियोंसे मिलकर मैंने देखा है कि वे कताईका धन्धा फिरसे शुरू करके कुछ पैसे कमा सकने के कारण बहुत खुश हैं। मुझे मालूम है कि पिछले अकालके दौरान बीजापुरकी बहुत-सी गरीब औरतोंके लिए ये थोड़ेसे पैसे भी वरदान हो गये थे। अकेले एक उसी गाँवमें आज १५० औरतें प्रतिदिन करीब आधा मन सूत कातती हैं और प्रत्येक औरत औसतन ३ पैसे कमा लेती है जो उसके लिए अपने बच्चोंका दूध खरीदने-भरको पर्याप्त हैं। मैं हाथ-कताई और हाथ-बुनाईको अकालका मुकाबला करनेका एक बहुत ही सहज साधन मानता हूँ। जब पिछले शुक्रवारको मैंने पूर्वी खानदेशकी कुमारी लैथमसे भी यह सुना कि उस जिलेकी औरतें किसी ऐसे घरेलू धन्धेके लिए तरस रही

हैं जिसमें उन्हें मेहनत करके कुछ पैसे मिल सकें तो मैं चकित हुआ। हमें सिर्फ इतना ही करना जरूरी है कि उन्हें कुछ सस्ते चरखे और धुनी हुई साफ रुई मुहैया कर दी जाये। एक सीमित पैमानेपर ये दोनों चीजें उन्हें उपलब्ध करानेका प्रबन्ध किया जा चुका है। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही इसमें अधिकाधिक दिलचस्पी ले रहे हैं। लेकिन यदि इस आन्दोलनको प्रतिष्ठित लोगोंकी सरपरस्ती हासिल हो जाये तो यह काम कहीं-ज्यादा तेजीसे चल सकता है।

अनुरोध

इसलिए मैं निम्नलिखित अनुरोध करता हूँ:

१. परमश्रेष्ठ स्वदेशी आन्दोलनका समर्थन करते हुए एक पत्र[1] लिखनेकी कृपा करें, जिसे हम प्रकाशित कर सकें; उसमें खास तौरपर हाथ-कताई और हाथ-बुनाई आरम्भ किये जानेका समर्थन हो।

२. सहकारी समितियोंके पंजीयक (रजिस्ट्रार)को सत्ता दी जाये कि वह हाथ-कताई और हाथ-बुनाईको प्रोत्साहन दे सके और उसके लिए आवश्यक तरीके खोजे।

३. कलक्टरों और अन्य सरकारी अमलदारोंसे कहा जाये कि वे आन्दोलनको बढ़ावा दें, और विशेष रूपसे किसानोंको हाथसे सूत कातने और हाथसे बुनाई करनेके लिए प्रोत्साहित करें।

४. और यदि इसे मेरी धृष्टता न समझा जाये तो मैं परमश्रेष्ठसे सविनय निवेदन करूँगा कि मेरी ओरसे वे लेडी जॉर्ज लॉयडको मेरी कताई-कक्षाओंका संरक्षक बननेपर राजी कर लें। कई भद्र महिलाएँ गरीबोंको इस उद्योगमें प्रोत्साहित करनेके लिए स्वयं कताईकी शिक्षा ले रही हैं। यदि उन्हें (हर एक्सेलेंसीको) भी एक चरखा

१. सितम्बर १ को कॉवीने उत्तर दिया कि गवर्नर महोदय कुछ ही दिनोंमें जवाब लिख भेजेंगे। लगता है, गांधीजीने १६ सितम्बरको लिखे एक दूसरे पत्रमें अन्य बातोंके अलावा इसके सम्बन्धमें भी लिखा था। ७ अक्तूबरको उन्हें गवर्नरके निजो सचिवकी ओरसे निम्नलिखित उत्तर मिला:

"परमश्रेष्ठकी इच्छासे मैं आपके २५ अगस्त और १६ सितम्बरके उन पत्रोंका उत्तर भेज रहा हूँ जिनमें आपने स्वदेशी आन्दोलनके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठके विचार जाननेकी इच्छा व्यक्त की है। परमश्रेष्ठको ऐसे हर आन्दोलनसे पूरी सहानुभूति है जिसका उद्देश्य भारतके राष्ट्रीय उत्पादनमें वृद्धि करना हो। हाँ, उनके परिणाम ऐसे न हों जिनसे भारतीय उद्योगको दूसरे उत्पादक देशोंसे सफलतापूर्वक होड़ लेनेमें कठिनाई हो। मेरा खयाल है, वित्तीय प्रश्नके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठके विचारसे आप भली-भाँति अवगत हैं और इस सम्बन्धमें उनका विचार यह है कि आर्थिक और तकनीकी शिक्षाकी अधिकाधिक सुविधाएँ देनेके साथ-साथ वित्तीय समस्याका समुचित समाधान प्रस्तुत करना भारतके औद्योगिक विकासमें सहायता देनेका सबसे अच्छा तरीका है। परमश्रेष्ठ आपके नये पत्र **नवजीवन**की प्रगतिको दिलचस्पीसे देखेंगे।

और जहाँतक नडियादमें अतिरिक्त पुलिस रखने तथा श्री मणिलाल व्यासके मामलेके सम्बन्धमें आपकी उक्तियोंका सवाल है, परमश्रेष्ठकी इच्छा है कि मैं आपको आश्वस्त कर दूँ कि उन्होंने इन मामलोंपर पूरी तरह गौर किया है।"

गांधीजीको जिस दिन यह पत्र मिला, उन्होंने उसी दिन उसका उत्तर दिया था; देखिए "पत्र: बम्बईके गवर्नरके निजी सचिवको", अक्तूबर ७, १९१९ के बाद ।

भेंट करने और किसी महिला द्वारा अथवा स्वयं मुझे आकर कताई सिखानेकी अनुमति मिल सके तो इसे मैं अपने लिए सम्मानकी बात मानूँगा? मैं यहाँ कह दूँ कि कताई-कला सीखना बहुत ही सहज है।[1]

हृदयसे आपका,

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८२६) की फोटो-नकलसे।

४५. पत्र : एस्थर फैरिंगको

[अगस्त २५, १९१९ के बाद][2]

रानी बिटिया,

तुम मुझे काफी नियमित रूपसे लिखती रही हो मगर मैं नियमित रूपसे नहीं लिख पाया। कारण तुम जानती हो।

मुझे जो कष्ट हुआ था वह कुछ-विशेष नहीं था। छोटालालने उसे बहुत मान लिया था। मैं शरीरकी जितनी चाहिए उतनी सँभाल कर रहा हूँ।

मैं समझता हूँ कि बोर्ड या श्री बिटमैनको तुम्हारा जल्दी ही कोई अन्तिम उत्तर देना जरूरी नहीं है। तुम्हारा मामला थोड़ा जटिल है। मैं चाहता हूँ कि बोर्डके प्रति तुम्हारा व्यवहार पूरी तरह सच्चा और वफादारीसे भरा हुआ हो। मैं यह भी चाहता हूँ कि उन लोगोंको किसी भी प्रकार यह न लगने पाये कि तुमने कोई अशोभनीय कार्य किया है। क्या मैं श्री बिटमैनको (क्या मैंने उनके नामके हिज्जे ठीक-ठीक लिखे हैं? तुम्हारा पत्र मेरे पास नहीं है) तुम्हारे बारेमें पत्र लिखूं जैसा कि मैंने गवर्नरको[3] लिखा था? भारतके प्रति तुम्हारी सेवा एक सच्चे डेन और ईसाईके योग्य होनी है। तुमने सेवा-कार्य इसलिए अपनाया है कि तुम्हारी ईसाइयत तुम्हें ऐसा करनेको प्रेरित करती है। और तुम्हारा वैसी भावना रखना पर्याप्त भर नहीं है। आवश्यकता इस बातकी है कि तुम्हारे अपने लोग तुम्हारे स्नेह, नम्रता और उदारताको महसूस करते हुए तुम्हारी सेवा-भावनाको समझें।

इस कामको करनेका सबसे अच्छा तरीका कौन-सा है सो मैं नहीं जानता। कुछ भी हो, उनको लिखे तुम्हारे पत्र विनम्रता, सचाई और उदारतासे भरे होने चाहिए, न कि सख्त, कटु या निन्दासूचक। आखिर तुमने जो रास्ता अख्तियार किया है वह एक तरहसे बगावतका है और वह उचित तभी माना जा सकता है जब तुम्हारे मार्गको दानियाल और बनियनकी भाँति धार्मिक अर्थमें सफलता प्राप्त हो।

१. ऐसा लगता है कि गांधीजीने इसी सिलसिलेमें सितम्बर १६ को एक पत्र फिर लिखा था, लेकिन वह उपलब्ध नहीं है।

२. एस्थर फैरिंगने अपने २५ अगस्तके पत्रमें भारतमें रहने तथा समाज-सेवा करनेकी इच्छा व्यक्त की थी। इस पत्रमें गांधीजीने उसीका उल्लेख किया है।

३. देखिए "पत्र: लॉर्ड विलिंग्डनके निजी सचिवको", २२-८-१९१९।

मुझे इस बातकी प्रसन्नता है कि तुम्हारा स्वास्थ्य अब अच्छा है। क्या तुम्हें वहाँ सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त है? अगर तुम अपनी जरूरतें मुझे नहीं बताती रहोगी तो रानी बिटिया नहीं कहलाओगी। अगर तुम्हें रुपयोंकी आवश्यकता हो तो मुझसे कहनेमें संकोच मत करना।

सभी अंग्रेजी पढ़नेको लालायित हैं यह एक विचित्र-सी बात है। सीमाके अन्दर रहते हुए ही तुम्हें उनकी इच्छाएँ पूरी करनी है। कौन-कौन अंग्रेजी पढ़नेके इच्छुक हैं, उस बारेमें कुछ विस्तारके साथ लिखना।

सस्नेह,

तुम्हारा,

बापू

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियामें सुरक्षित हस्तलिखित मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे**।

४६. सर शंकरन् नायर और चम्पारन

इस बार भी दोनों पक्ष — जिसमें एक ओर सर शंकरन् हैं और दूसरी ओर उनके सहयोगी — वही तर्क दोहरा रहे हैं जो खेड़ाके बारेमें दिये गये थे। सर शंकरन्का कथन है कि नौकरशाहीने [चम्पारनके मामलेमें], कांग्रेस या दूसरे शब्दोंमें कहें तो शिक्षित भारतीयोंके जबरदस्त दबावसे मजबूर होकर ही कोई कदम उठाया था। उधर उनके साथियोंका कहना है कि नौकरशाही जन-साधारणके हितोंके प्रति सदैव सजग रही है। शिक्षित भारतीयोंने जनताका प्रतिनिधित्व कभी नहीं किया और न उन्हें उसके हितोंकी कोई परवाह ही रही है। इसके अतिरिक्त, जहाँतक खेड़ाका सम्बन्ध है, नौकरशाहीके पक्षमें कहा जाता है कि एक तो उन्होंने किसानोंके लिए अगर कुछ नहीं किया तो उसका कारण यह था कि अधिकारियोंको किसानोंकी शिकायतोंमें विश्वास नहीं था, और दूसरे अगर कोई कहे कि कुछ किया तो गया था, तो उसका जवाब यह है कि जो-कुछ किया गया सो इस कारण नहीं कि माननीय श्री गोकुलदास तथा अन्य शिक्षित भारतीय और संघर्षकी आखिरी मंजिलमें श्री गांधी बीचमें पड़े थे, बल्कि वास्तवमें अगर ये लोग बीचमें न पड़ते तो भी नौकरशाही स्वयं वैसा ही करती। चम्पारनके मामलेमें किसानोंको कष्ट है — यह बात मान ली गई है, परन्तु नौकरशाहीके हिमायतियों द्वारा यह भी कहा जाता है कि उनके बारेमें सरकारने जो भी कदम उठाये वे कोई श्री गांधीके बीचमें पड़नेके कारण नहीं। सर शंकरन् नायरका उक्त दोनों मामलोंके सम्बन्धमें यह कथन है कि नौकरशाहीने किसानोंके लिए जो-कुछ भी किया वह जन-साधारणके हितोंको सदा सामने रखनेवाले शिक्षित भारतीयोंके कठिन परिश्रमका ही परिणाम है।

मैं समझता हूँ कि यह बात मैं स्पष्ट रूपसे समझा सका हूँ कि खेड़ाके किसानोंके कष्ट वास्तविक थे और यह भी कि सरकारसे जो-कुछ राहतें प्राप्त हुईं वे एक जबरदस्त

संघर्षके बाद ही मिलीं; और जो अल्प राहत दी गई वह नौकरशाहीके दिमागके ओछेपनका प्रमाण है। खेड़ाके किसानोंकी शिकायतें बहुत पुरानी नहीं थीं और उनके प्रति उच्चतम अधिकारीके मनमें भी मात्र उपेक्षाका भाव था। लॉर्ड विलिंग्डनने, जो स्वयं एक सदाशय व्यक्ति हैं, अपने उन हठी सलाहकारोंके सामने सिर झुका दिया था जो खेड़ाके मामलेसे सीधा सम्बन्ध रखते थे। इसलिए खेड़ाकी समस्याको सुलझाना मेरे लिए काफी आसान काम था। चम्पारनमें शिकायतें पुरानी थीं, संघर्ष त्रिकोणात्मक था —जिसमें निहित बड़े-बड़े स्वार्थ मिलकर रैयतके हितोंका विरोध कर रहे थे। परन्तु मुझे यह कहनेमें प्रसन्नता होती है कि बिहार सरकारके सर्वोच्च अधिकारी सर एडवर्ड गेट दृढ़ व्यक्ति थे; वे अपने सलाहकारोंकी सलाहको यों ही नहीं मान लिया करते थे; वे उनके द्वारा शासित नहीं होते थे बल्कि उनपर शासन करते थे और वे अपने प्रभावको यथासम्भव रैयतके हितोंमें प्रयुक्त करनेमें हिचकते नहीं थे। यदि उनकी जगह कोई और व्यक्ति होता या उनकी अपेक्षा कम सहानुभूतिवाला या उससे कम मजबूत आदमी होता तो चम्पारन-संघर्षका इतिहास भिन्न और अधिक दुःखद होता। उसके परिणाम बहुत भयंकर होते। इसीलिए सर शंकरन् नायरने चम्पारन रिपोर्टपर अन्य सदस्योंसे असहमति प्रकट करते हुए जो टिप्पणी लिखी थी, उसके जवाबमें दी गई बिहार सरकारकी टिप्पणीकी आलोचना करते हुए मुझे दुःख होता है। सरकार रैयतकी तकलीफों और शिकायतोंको स्वीकार करती है, लेकिन उसका कहना है कि वह तो खुद ही शिकायतोंको रफा करनेवाली थी; बस जमीनके नये बन्दोबस्तका जो काम उसने उठाया था उसके पूरा होते ही वह उन शिकायतोंको दूर कर देती। उसने जो कुछ राहत दी है उसमें मेरे (अर्थात् श्री गांधीके) हस्तक्षेपको कोई श्रेय नहीं है। मेरे लिए इस मामलेमें कुछ कहना कठिन हो गया है, क्योंकि मैं जाँच-समितिका एक सदस्य था। जो कागजात सरकार द्वारा समितिके समक्ष पेश किये गये थे परन्तु स्वभावतः जिन्हें समितिकी रिपोर्टमें शामिल नहीं किया गया है उनका उपयोग करनेमें मैं असमर्थ हूँ। इसलिए जितनी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है मुझे उसके बाहर नहीं जाना है। बिहार सरकारकी टिप्पणीमें जमीनके नये बन्दोबस्तको बहुत महत्त्व दिया गया है। मेरा निवेदन यह है कि [चम्पारनमें] नये बन्दोबस्तके कामका इस संघर्षमें निहित बड़े-बड़े प्रश्नोंसे कोई सम्बन्ध नहीं था। बंगाल काश्तकारी अधिनियमके अन्तर्गत, जो बिहारपर भी लागू है, नया बन्दोबस्त—स्थायी भूस्वामीको प्रत्येक काश्तकार द्वारा अदा किये जानेवाले लगानमें वृद्धिको नियन्त्रित करनेके उद्देश्यसे निर्धारित अवधिके अन्तरसे—स्वतः होता ही रहता है। स्थायी स्वामित्ववाली बड़ी-बड़ी जोतें जिन काश्तकारोंको बँटी हुई हैं, उन काश्तकारोंकी स्थिति बंगालके इस्तमरारी बन्दोबस्तके अन्तर्गत जरा भी मजबूत नहीं हुई है। चम्पारनमें भूमिके स्थायी पट्टेदार यूरोपीय बागान-मालिक हैं। वे राजाओंकी तरह हैं; और यद्यपि इन यूरोपीय जमींदारोंको कानूनने रैयत अर्थात् किराएदारोंके ऊपर किसी प्रकारके फौजदारी या दीवानी अधिकार नहीं दे रखे हैं तथापि वे लोग व्यवहारतः चम्पारनके नितान्त दीन-हीन किसानोंपर दोनों प्रकारके अधिकारोंका प्रयोग किया करते हैं।

इस बातमें वे भारतीय स्थायी भू-स्वामियोंसे किसी बातमें भिन्न नहीं हैं। परन्तु जैसा कि मैं स्वतंत्र जाँचके दौरान सरकारके पास बहुत शुरूमें भेजे गये अपने एक पत्रमें कह चुका हूँ, — "हालाँकि यह सच है कि उन्हें (गोरे बागान-मालिकोंको) यह दूषित प्रणाली विरासतमें मिली है किन्तु यह भी सच है कि अपनी बौद्धिक प्रवीणता और अधिकारपूर्ण स्थितिकी सहायतासे उन्होंने इन पुराने रिवाजोंका एक शास्त्र ही बना डाला है।" बंगाल काश्तकारी अधिनियमके अन्तर्गत इन जमींदारोंको यह अधिकार प्राप्त है कि वे अमुक निर्धारित परिस्थितियोंमें लगान बढ़ा सकते हैं और उसी प्रकार किसानोंको भी यह हक हासिल है कि अन्य दूसरी निर्दिष्ट परिस्थितियोंमें वे लगानमें कमी करानेकी कोशिश कर सकते हैं। यह सहज ही समझा जा सकता है कि लगानमें कमी तो शायद ही कभी सम्भव होगी, पर लगानमें इजाफा तो एक ऐसा सत्य है जो किसानको जीवन-भर त्रस्त रखता है। बन्दोबस्त अधिकारीका मुख्य कार्य इन लगानोंको संशोधित करना, प्रत्येक काश्तकारकी जोतकी फिरसे पैमाइश करना और लगान सम्बन्धी कुछ मामलोंमें जमींदार तथा काश्तकारके बीच होनेवाले झगड़ोंकी जाँच करना है। बन्दोबस्त अधिकारीको इसके अतिरिक्त और-कुछ करनेका अधिकार नहीं है। जो अत्यावश्यक मुद्दे चम्पारन समितिके सामने निर्णयके लिए पेश थे उनके सम्बन्धमें जाँच करना या उनपर कोई फैसला देना उसके अधिकारके बाहरकी बात थी। मेरी खुदकी जाँच तो केवल ऐसे कष्टोंतक ही सीमित थी जो चम्पारनकी अधिकांश रैयतके सामान्य कष्ट थे और जिनके बारेमें कोई नया बन्दोबस्त करनेकी आवश्यकता न थी — कारण, इन शिकायतोंकी अलग-अलग जाँचकी जरूरत थी ही नहीं। ये कष्ट मेरे चम्पारन पहुँचनेके क्षणसे ही मेरी नजरमें स्वतः आने लगे और कुछ ही सप्ताहके अन्दर मेरे पास उन कष्टोंको प्रमाणित कर सकने योग्य बहुत काफी मसाला एकत्रित हो गया। काश्तकारोंकी सबसे मुख्य शिकायत तो करीब सौ सालसे चली आ रही थी। इसके कारण रैयतकी दशा गुलामोंकी दशाके समान हो गई थी। यह कष्ट नीलकी खेतीसे सम्बन्धित था। इस नीलकी खेतीको तिनकठिया प्रणालीके नामसे पुकारा जाता था और इसके अन्तर्गत रैयतको जमींदार द्वारा पसन्द किया हुआ अपनी जमीनका कुछ भाग, जिसमें शुरूमें नील और बादको जमींदार द्वारा बतलाई हुई कोई अन्य फसल उगानी पड़ती थी, अलग कर देना पड़ता था। यह फसल उसे जमींदारको औने-पौने मूल्यपर बेच देनी पड़ती थी, और उसकी मेहनतके पैसे भी खड़े नहीं होते थे। इस सम्बन्धमें समितिकी रिपोर्ट इस प्रकार है:

> **किन्तु जिस शर्तपर किसान इन कोठीदारोंके लिए अबतक नीलकी खेती करते रहे हैं, उसके कारण अनेक बार झगड़े हुए हैं। और यद्यपि हम इन झगड़ोंके इतिहासपर विचार करना आवश्यक नहीं समझते; किन्तु इस प्रथाका कुछ विवरण दिये बिना हम वर्तमान असन्तोषके कारणोंको भली-भाँति स्पष्ट नहीं कर सकते। इसके मुख्य तत्त्व पिछले १०० वर्षोंमें बदले नहीं जान पड़ते।**

इन सौ वर्षोंमें जब-जब कष्ट असहनीय हो गये तब-तब काश्तकारोंने अपनी शिकायतें दूर करानेके लिए हिंसात्मक तरीकोंका सहारा लिया। जब-जब दंगे-फसाद हुए तब-तब कुछ थोड़ा-सा दे-दिवाकर मामला शान्त कर दिया गया। इन हिंसात्मक कृत्योंके परिणाम-

स्वरूप उन काश्तकारोंकी हालत वस्तुतः पहलेकी बनिस्बत और भी बदतर हो गई। बागान-मालिकोंने उन दंगोंको कुचलनेके लिए पुलिस और फौजकी सहायता ली और पुरानी शिकायतें, जिनके कारण ये दंगे हुए थे लगभग बिलकुल ही विस्मृत कर दी गईं। कभी-कभी काश्तकारोंपर दाण्डिक-पुलिस तैनात कर दी जाती थी। काश्तकारोंको उनके पागलपनके एवजमें जो थोड़ा-बहुत सन्तोष प्राप्त होता था वह इतना ही कि उन्हें नीलकी कीमत पहलेकी अपेक्षा कुछ-अधिक मिलने लगी। परन्तु नीलकी जबरन खेतीकी प्रथा और उससे उत्पन्न होनेवाले कष्ट ज्योंके-त्यों बने रहे और काश्तकारोंपर जमींदारों-का शिकंजा और भी मजबूत होता गया। जब काश्तकारोंने यह देखा कि हिंसा व्यर्थ है तब उन्होंने कचहरियोंके दरवाजे खटखटाना शुरू किया परन्तु जिस प्रकार हिंसा करने पर उनके हाथ कुछ न लगा था उसी प्रकार अदालतोंसे भी उनको कुछ हासिल नहीं हुआ। कभी-कभी फैसला न्यायसम्मत हो जाया करता था परन्तु असमान प्रतिद्वंद्वियोंके इस संघर्षमें काश्तकारोंकी पराजय निश्चित थी। भला गोरे जमींदारोंके प्रचुर साधनोंके सामने काश्तकारोंकी छोटी-सी थैली कैसे टिक सकती थी? मेरे कथनकी सत्यताका प्रमाण चम्पारनकी अदालतोंमें रखी हुई फाइलोंमें देखा जा सकता है। इस दुहरी असफलता-को बन्दोबस्त अधिकारी न तो देख सकता था और न उसके विषयमें कुछ कह ही सकता था। मैं इस बातको भरसक जोरके साथ कहता हूँ कि चम्पारनके काश्तकारोंकी गत १०० वर्षोंकी कहानी अधिकारियोंकी उस असफलताकी भी कहानी है जो उन्होंने या तो स्थितिके भीतरी रूपको समझनेमें या उससे निपटनेमें दिखाई थी। हर काश्त-कारने अधिकारियोंको भयंकर चेतावनी दी, परन्तु सब व्यर्थ रही। वे समस्यासे खिलवाड़ करते रहे, परन्तु उसकी तहतक कभी नहीं गये। और यदि मैं चम्पारन न गया होता, यदि जबरदस्त कठिनाइयोंके बावजूद मैं वहाँ बने रहनेके अपने अधिकारपर दृढ़तापूर्वक न डटा रहता, और यदि मैं अपने कुछ मित्रोंकी इस सलाहको कि मामला अदालत द्वारा तय करा लो, दरकिनार न कर देता, और सबसे खास बात यह कि यदि मैं काश्तकारोंकी जरूरतोंको समझनेके लिए उनसे स्वयं जाकर न मिलता तो यह बात दावेके साथ कही जा सकती है कि बिहार सरकारने जो बड़ी राहत काश्तकारोंको दी वह उन्हें हरगिज न मिलती। बिहार सरकार नीलकी जबरन खेतीके अभिशापको हटानेका साहस कभी न करती। उसे मालूम था कि यह प्रथा एक अभिशाप है। उसे यह भी ज्ञात था कि काश्तकार लोग तिनकठियासे होनेवाले दुःखोंको व्यक्त करनेमें असमर्थ थे तथापि यह प्रथा उनके जीवनस्रोतोंको सुखाये दे रही थी और उनकी नैतिक तथा भौतिक शक्तिको निचोड़े डाल रही थी। बिहार सरकारको यह कहनेमें लज्जा नहीं है कि बिहार विधान परिषद्के अधिकांश सदस्योंने — वे सदस्य जो बिहार सरकारकी ही भाँति इस प्रथाके दोषोंसे बिलकुल अनभिज्ञ थे — बिहारके सच्चेसे-सच्चे व्यक्तियोंमें से एक श्री ब्रजकिशोर प्रसाद, जिन्हें अपने कथनके मर्मका पूरा ज्ञान था, द्वारा पेश किया गया प्रस्ताव रद कर दिया था। बिहार सरकारको उसी अवसरपर जान लेना चाहिए था कि इस ज्वलन्त प्रश्नके ऊपर बन्दोबस्त अधिकारी किंचित् भी प्रकाश नहीं डाल सकता था। सच तो यह है कि अगर जमीनका नया बन्दोबस्त न होता तो

सम्भवतः शरहबेशी अर्थात् नीलके एवजमें लगानकी वृद्धिका अस्तित्व ही न होता। मैं मानता हूँ कि बन्दोबस्त अधिकारी शिष्ट और सहानुभूतिपूर्ण था और अपने कर्त्तव्यका पालन करनेको इच्छुक था। मैं यह भी मानता हूँ कि यह अधिकारी अपनी निष्पक्षताकी बदौलत ही काश्तकारोंके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार कर सका — जबकि अन्य अधिकारी ऐसा करनेमें असफल हो गये होते। परन्तु जाँच-समितिके सामने भी अनेक मुद्दे तय करने थे; उनके सम्बन्धमें बन्दोबस्त अधिकारी होनेके नाते वह किसी भी अन्य व्यक्तिकी अपेक्षा कुछ अधिक प्रकाश डाल सकता था, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि वे मुद्दे उसके कार्यक्षेत्रसे परे थे। जाँच समितिकी बहुसमावेशी सिफारिशें बन्दोबस्त अधिकारीके बयान-पर आधारित नहीं हैं बल्कि बिहार सरकारके पास मौजूद उन कागजोंपर आधारित हैं जिनमें से अधिकांश तो ऐसे थे जिनपर बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा कार्य प्रारम्भ किये जानेके पूर्वकी तिथियाँ पड़ी हुई थीं। सरकार नीलकी जबरन खेतीकी प्रथाके उन सब दोषोंसे पहलेसे ही परिचित थी जिनको समितिने जनताके सामने रखा है, इसलिए उलटे यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि सरकारने इस प्रथाका अन्त पहले ही क्यों नहीं कर दिया? पिछले बन्दोबस्तसे पूर्व भी कई बार जमीनका बन्दोबस्त किया जा चुका था। समितिने जिन कष्टोंके बारेमें जाँच-पड़ताल की है उन कष्टोंके निवारणार्थ नये बन्दोबस्त-की इन कार्रवाइयोंके दौरान कोई कदम क्यों नहीं उठाया? जाँच-समितिने काश्त-कारोंकी जिन शिकायतोंको यथार्थ माना है, उनकी लम्बी सूची देकर मैं पाठकोंको उबाना नहीं चाहता। मैं तो इतना ही कहकर सन्तोष माने लेता हूँ कि यदि सरकारने बाबू ब्रजकिशोर प्रसादकी बात मान ली होती — जो कि [उस अवसरपर] नक्कार-खानेमें तूतीकी आवाजकी भाँति थी — तो समिति उन सब शिकायतोंमें से प्रत्येकको विशेषतया शरहबेशी और तावानके प्रश्नको हल कर सकती थी, और इसके लिए नये बन्दोबस्तकी जरूरत नहीं थी। क़ाश्तकार लोग तावानके रूपमें होनेवाली खुली डकैती और शरहबेशीके रूपमें होनेवाली छिपी डाकेजनीसे बच जाते। मैं बिहारके बाहर रहने-वाले व्यक्तियोंकी सुविधाके लिए इन दो शब्दों अर्थात् तावान और शरहबेशीका अर्थ समझा देना चाहता हूँ। तावान तथाकथित हरजानेकी वह रकम थी जो भूमिका पट्टेदार बागान-मालिक, **उन दिनों जब जमींदारको नीलकी जरूरत नहीं हुआ करती थी,** अपने काश्तकारोंसे नील न उपजानेके एवजमें वसूल किया करता था — और शरहबेशी लगानमें वह इजाफा था जो **वैसी ही परिस्थितिमें** स्थायी पट्टेदार अपने काश्तकारोंसे लिया करते थे। इस प्रकारसे तावान और शरहबेशी कुछ वैसी ही चीज है, मानों किसी इकरारके दो फरीकोंमें से एक फरीक इकरारको एक बोझा समझकर इकरार की शर्तोंसे छूट निकले और इकरारके बन्धनसे अपनी छूटका हरजाना दूसरे फरीकसे वसूल करे। सामान्य-तया तो यही हुआ करता है कि जो व्यक्ति किसी कारणसे छूटना चाहता है वही इकरारसे छूटनेकी कीमत भी अदा करता है। यह कहना कि काश्तकार लोग भी यही चाहते थे, असली मुद्देसे बिलकुल अलग बात है। वे लाचार थे। बिहार सरकारका पक्ष उसके इस कथनसे बिलकुल ही कमजोर हो जाता है।

> "चूँकि यह प्रथा बागान-मालिकों और काश्तकारोंके बीच किये गये इक-रारनामोंपर आधारित थी, इसलिए स्थिति और भी जटिल हो गई थी, और

जाहिर है कि इकरारोंपर आधारित सम्बन्धोंकी सुसम्पादित व्यवस्थामें हस्तक्षेप करना अत्यन्त नाजुक काम है, और जबतक हस्तक्षेप करनेकी अनिवार्यता बिलकुल स्पष्ट न हो, तबतक कोई सरकार उसमें हस्तक्षेप करनेका साहस न करेगी। श्री गांधीने अपने हस्तक्षेपसे काश्तकारोंके असन्तोषको जिस तरह उभारा और उसके परिणामस्वरूप जिलेमें अराजकताका विस्फोट होनेका अन्देशा होनेके कारण सरकारको राहत देनेकी अपनी वर्तमान योजना पहले ही निर्धारित करनी पड़ी। परन्तु उस समयतक जिस जानकारीको स्थानिक प्रशासन हमेशासे अत्यावश्यक मानता आया था वह जानकारी भी बन्दोबस्त विभागके कर्मचारियोंने एकत्रित कर ली थी। और इस जानकारीके सुलभ होनेकी बदौलत ही जाँच-समिति अपना कार्य इतनी तेजीसे पूरा कर सकी।"

यह सच है कि चम्पारनमें मेरी उपस्थितिके परिणामस्वरूप काश्तकारोंका असन्तोष उभरकर सामने आ गया था। यदि उन्हें राहत न दी गई होती तो उन्होंने निःसन्देह गोरे बागान-मालिकोंके खेतोंमें काम करना बन्द कर दिया होता — खेतोंमें काम करनेके लिए वे किसी प्रकारसे बँधे हुए न थे। परन्तु मैं इस बातको माननेसे इनकार करता हूँ कि मेरे बीचमें पड़नेके परिणामस्वरूप जिलेमें अराजकता अर्थात् काश्तकारोंमें अराजकता फैलनेका अन्देशा उत्पन्न हो गया था। मैं यह बात बिना किसी संकोचके कह सकता हूँ कि इस प्रकारकी अराजकताको प्रतिबन्धित रखनेमें मेरी उपस्थितिका बहुत बड़ा हाथ रहा है। मैंने काश्तकारोंसे साफ-साफ कह दिया था कि यदि वे एक भी हिंसात्मक कार्य करेंगे तो मैं उसी क्षण उनका साथ छोड़ दूँगा। मैं हजारों काश्तकारोंसे मिला और मुझे एक भी ऐसे अवसरकी जानकारी नहीं है कि जब मेरी उपस्थितिका काश्तकारोंपर शमनकारी प्रभाव न हुआ हो। मैं यह बात भी माननेको तैयार नहीं हूँ कि "चूँकि बन्दोबस्त विभागके रजिस्टरोंमें सब जानकारी प्रस्तुत थी और वह जाँच-समितिको सुलभ थी इसलिए समिति काम शीघ्रतासे समाप्त कर सकी।" वास्तविकता तो यह है कि जितने दिन मैं चम्पारनमें रहा उतने दिन गोरे बागान-मालिक बराबर यही चिल्लाते रहे कि गांधीको चम्पारनसे निकाल दिया जाये। मैं यह बात शिकायतके रूपमें नहीं कह रहा हूँ और न मैंने इसकी उस समय ही कोई शिकायत की थी। परन्तु चम्पारनसे स्वयं हटने या अपने बिहारी सहयोगियोंको वहाँसे हटानेसे इनकार करते समय मुझे प्रायः सरकारसे तथा स्वयं अपनेसे यह प्रश्न पूछना पड़ता था कि इस बातको देखते हुए कि प्रत्येक प्रजाजनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करना सरकारका कर्त्तव्य है, क्या सरकार खुद-ब-खुद चम्पारनके काश्तकारोंकी शिकायतें रफा नहीं कर देगी और यही बात मैंने एक सरकारी अधिकारीको लिखे गये ३१ मईके अपने पत्रमें कही थी[1]:

स्वाभाविक रूपसे प्रश्न उठता है, क्या सरकार उन्हें उससे मुक्त नहीं कर सकती? मेरा कहना है कि इस प्रकारके मामलोंमें मण्डली जैसी सहायता

१. यह पत्र मई ३०, १९१७को लिखा गया था। देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ४०८–१०।

कर रही है वैसी सहायताके बिना सरकार कुछ नहीं कर सकती। सरकारी यन्त्रकी बनावट ही ऐसी है कि वह धीमी गतिसे चलता है। वह घूमता है, अवश्य घूमता है, किन्तु कमसे-कम अवरोधकी दिशामें। मेरे जैसे सुधारकोंके प्रति, जिनके पास वर्तमान सुधार-कार्य करनेके अलावा कोई और काम नहीं है, असहिष्णु हो उठना, अथवा उनकी सहायताके बिना भी काम कर सकनेकी अपनी सामर्थ्य-पर गलत विश्वास करना शायद सरकारकी गलती होगी। मुझे आशा है कि इस मामलेमें उक्त दोनों बातोंमें से एक भी घटित नहीं होगी, और जो शिकायतें मैं पहले ही सरकारके सामने रख चुका हूँ, और जिन्हें स्वीकार भी किया जाता है, वे कारगर ढंगसे दूर की जायेंगी। तब बागान-मालिकोंको उस मण्डलीके प्रति, जिसके नेतृत्वका भार मुझपर है, भय या शंका रखनेका कोई कारण नहीं रह जायेगा, और वे सहर्ष स्वयंसेवकोंकी सहायता स्वीकार करेंगे। ये स्वयंसेवक गाँववालोंमें शिक्षा-प्रसार और सफाईका काम करेंगे और बागान-मालिकों और रैयतके बीच कड़ीका काम अदा करेंगे।

मुझे इस बातका हार्दिक खेद है कि विवश होकर बिहार सरकारके वक्तव्यकी नुक्ताचीनी करनी पड़ी। परन्तु मैं इस बातपर दुःखी हुए बिना नहीं रह सकता कि एक निन्द्य उद्देश्यका समर्थन करनेकी उधेड़-बुनमें सरकारने ऐसे सदनुष्ठानको नगण्य सिद्ध करनेकी चेष्टाकी जो किसी भी अर्थमें राजनीतिक उद्देश्यसे प्रेरित नहीं था। यह अनुष्ठान केवल मानव-सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर ही हाथमें लिया गया था और इसका लक्ष्य न केवल काश्तकारोंके कष्ट दूर करना था बल्कि उन्हें शिक्षित करना, उन्हें स्वच्छता सिखाना और उनके सामान्य उत्थानके तरीके खोज निकालना भी था; फिर चाहे इस कार्यमें उन स्वयंसेवकोंको सरकार या बागान-मालिकोंका सहयोग मिलता चाहे न मिलता। यद्यपि मैं अन्य-दूसरे कामोंमें लग गया लेकिन वह रचनात्मक कार्यक्रम अबतक चालू है। मेरे सहयोगी जबरदस्त कठिनाइयोंके बावजूद काश्तकारोंके बीच अब भी पाठशालाएँ चला रहे हैं। स्थानीय सरकार यह बात जानती है और उसे यह भी मालूम है कि मैंने प्रयासपूर्वक अपने अनुष्ठानको राजनीतिक अखाड़ेसे दूर रखा था। जहाँतक मुझसे बन पड़ा वहाँतक मैंने अपने कार्यसे सम्बन्धित कोई चीज यथासम्भव समाचारपत्रोंमें प्रकाशित नहीं होने दी थी; और काश्तकारोंकी ओरसे जो अनेक पत्र मैंने सरकारको लिखे हैं उन्हें प्रकाशित करानेका लोभ होते हुए भी मैं अभी वैसा नहीं कर रहा हूँ। भारत सरकारका हाल तो उस व्यक्ति जैसा है जो उसी डालको काट रहा है जिसपर वह बैठा है। सर शंकरन् नायरने स्पष्ट सत्य ही सामने रखा है। उसके समर्थनमें उन्होंने दो बहुत प्रभावकारी उदाहरण भी दिये हैं। यदि भारत सरकार उनकी प्राप्ति-सूचना नहीं दे सकती थी, तो उसके लिए शोभाजनक और शानदार बात यही होती कि कमसे-कम चुप तो बनी रहती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-८-१९१९

४७. अब्दुल बारीको लिखे पत्रका अंश[1]

बम्बई जाते हुए गाड़ीमें
अगस्त २७, १९१९

मेरी समझमें [अली] बन्धुओंकी रिहाईकी माँग करनेका ठीक वक्त अभी नहीं आया। गुजारेके खर्च सम्बन्धी आदेशसे ही हमें सन्तोष करना होगा। जबतक टर्कीके साथ की गई सुलहकी शर्तें प्रकट नहीं की जातीं तबतक मैं समझता हूँ कि हमारे प्रयत्न सफल नहीं होंगे।

अपने सन्देशमें[2] मैंने इस सम्बन्धमें अपने विचार आपको लिख भेजे थे। बहुत करके मामला तो तय हो ही चुका है। यदि अंग्रेजी समाचारपत्रोंकी रिपोर्ट सही है तो मेरा विश्वास है कि कुस्तुनतुनियाके ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण और थ्रेसके विभाजनका फैसला होगा। मैं वाइसराय महोदयसे इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि मुसलमानोंको कैसा लगता है, लेकिन विशेषरूपसे केवल उनकी भावनाओं-को व्यक्त करनेका मुझे अधिकार नहीं है। संयुक्त रूपसे, दृढ़तापूर्वक हमारे द्वारा कदम उठाये जानेका मौका आ पहुँचा है। अन्यथा बादमें गहरी निराशा और क्षोभ ही हाथ लगेंगे। लेकिन तब वह सब व्यर्थ ही होगा। इस समय सब-कुछ किया जा सकता है और सन्धिकी शर्तें प्रकाशित होनेके बाद कुछ भी नहीं। मैं इस विषम स्थितिको बड़ी तीव्रताके साथ अनुभव करता हूँ और यह सोचकर बड़ी शर्म आती है कि हम लोग दूसरोंकी निगाहमें इतने लापरवाह और गैरजिम्मेदार सिद्ध हो गये। हिंसा कोई उपाय नहीं है, न अब, न आगे कभी; और मैं जानता हूँ कि आप हिंसाका विरोध करने आये हैं। लेकिन यह जरूरी है कि इसके लिए अनेक लोग आजकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रयत्नशील हों। सब-कुछ कर चुकनेके बाद तो सत्याग्रह ही एकमात्र उपाय है, जिसका आश्रय लिया जा सकता है।[3] जब हमारी आँखोंके सामने ही यह दुःखद प्रसंग घटित हो रहा है और हम हाथपर-हाथ धरे बैठे हैं, उस समय तो सत्याग्रह ही सहारा है। वह आत्माकी आवाज हो सकती है, और आत्मा न कभी सोती है, न विश्राम करती है और जब अवसर आता है तब परिणामकी परवाह किये बिना जो करना है, कर

१. पत्रका यह अंश सीक्रेट सैंसर रिपोर्टसे लिया गया है; पत्रको अवश्य ही बीचमें रोक लिया गया होगा। अपने ४ अगस्तके पत्रमें अब्दुल बारीने अली भाइयोंके सम्बन्धमें चिन्ता व्यक्त की थी। और इस सिलसिलेमें वाइसरायके पास एक शिष्टमण्डल भेजनेके बारेमें गांधीजीकी सलाह माँगी थी।

२. यह २० जूनको भेजा गया था।

३. मूल अंग्रेजीके अनुसार 'जिसका आश्रय नहीं लिया जा सकता'; 'नहीं' का प्रयोग स्पष्टतः चूक है।

गुजरती है। सक्रिय सत्याग्रहकी गरिमामें ही इस्लामका भविष्य, भारतका भविष्य और प्रकारान्तरसे अली बन्धुओंका भविष्य निहित है।

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया : होम, पोलिटिकल — ए, अक्तूबर १९१९, संख्या ४२६–४४०।

४८. पत्र : जी० ई० चैटफील्डको

लैबर्नम रोड, गामदेवी
बम्बई
अगस्त २८, १९१९

प्रिय श्री चैटफील्ड,

गवर्नर महोदयने घोषणा की है कि यदि मिल-मजदूरों और ऐसे ही अन्य मजदूरोंके सहयोगसे अच्छे किस्मके मकान बनाये जायें तो वे उसमें अपनी शक्ति-भर हर तरह की मददके लिए इच्छुक हैं। इस घोषणाको दृष्टिमें रखते हुए अनसूयाबेनको एक बात सूझी है और वे चाहती हैं कि मैं उसे आपके सामने रख दूँ। दरियापुर-काजीपुर क्षेत्रमें दूधेश्वर रोडपर दिल्ली दरवाजेके बाहर स्थित एक सरकारी जमीन पड़ी हुई है। उसका खसरा-नम्बर ४४१ है। यदि वह जमीन एक दीर्घकालीन पट्टेपर दे दी जाये, तो अनसूयाबेन कुछ मजदूरोंके साथ मिलकर उसपर उनके लिए ठीक मकान और उनके बच्चोंके लिए स्कूलकी एक इमारत खड़ी करनेके लिए तैयार हैं। उनका खयाल स्कूल और मकान एक ही जगहपर बनवानेका है। मुझे बतलाया गया है कि इस योजनामें कई मिल-मजदूर अपनी बचतकी रकम लगानेको तैयार हैं। आपको शायद मालूम न हो कि अनसूयाबेन पहलेसे ही सहकारी समितियोंके पंजीयक श्री यूबैंकके सहयोगसे एक-दो सहकारी समितियाँ चला रही हैं। चूँकि उक्त समितियोंको काफी हदतक सफलता मिली है, इसलिए अब वे इस दिशामें आगे बढ़कर आपकी सहायतासे उपर्युक्त प्रयोग कर देखना चाहती हैं। यदि आपको यह प्रस्ताव पसन्द आये — मैं समझता हूँ कि पसन्द आयेगा — और यदि आप इसके बारेमें अनसूयाबेनसे अधिक विस्तारके साथ बात करना चाहें, तो उन्होंने कहा है कि उनको एक पुर्जा लिख भेजने-भरसे वे आपसे जाकर मिल लेंगी। लेकिन यदि आप इसके बारेमें पत्र-व्यवहारके बजाय मेरे और उनके, दोनोंके साथ बैठकर चर्चा करना ज्यादा पसन्द करें तो लिखिये। आपका पत्र पाकर मैं आपको अपने अहमदाबाद पहुँचनेकी ठीक-ठीक तिथि लिखूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गां०

[पुनश्च :]

मैं अगले सोमवारको अहमदाबाद पहुँच रहा हूँ।

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८२७) की फोटो-नकलसे।

४९. पत्र : श्रीमती क्लेटनको

लैबर्नम रोड, गामदेवी
बम्बई
अगस्त २८, १९१९

प्रिय श्रीमती क्लेटन[१],

आशा है, मेरे वायदेके मुताबिक गोधराके मेरे भाषणका सारांश आपको मिल गया होगा। एक महिला शिक्षिकाको कताईकी कक्षा खोलनेके लिए गोधरा भेज दिया गया है। आशा है, आप स्वयं कातना शुरू करके उस कक्षाको प्रोत्साहन देंगी। श्रीमती देसाई जो इस समय गोधरामें हैं, लेडी दिनशा पेटिटको कातना सिखाती रही हैं। मैं कातनेमें बहुत ज्यादा समय देनेको नहीं कहता। अगर रोज आधा घण्टा भी दें तो काफी होगा; वह गरीबों और जरूरतमन्दोंके लिए आपकी निःशुल्क सेवा होगी।

कृपया श्री क्लेटनको मेरी याद दिलाइये और उनसे कहिये कि उन्होंने बेगारके सम्बन्धमें नोटिस जारी करानेमें जो तत्परता दिखाई, उससे मुझे बहुत अच्छा लगा है।

हृदयसे आपका,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८२८) की फोटो-नकलसे।

५०. पत्र : डॉ० सत्यपालको

लैबर्नम रोड, गामदेवी
बम्बई
अगस्त २८, १९१९

प्रिय श्री सत्यपाल[२],

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं इस मामलेमें अवश्य यथासम्भव शीघ्र ही कुछ करूँगा। आप कृपया सभी नेताओंको बतला दीजिये कि अभी इस समय मुझे सर्वाधिक चिन्ता पंजाबकी स्थितिके बारेमें है और मैं इसी कामको प्रमुखता दे रहा हूँ। आप उनको और विशेषकर उन महिलाओंको जिनके पति निर्दोष होते हुए भी इस समय जेलोंमें पड़े हैं मेरी ओरसे आश्वस्त कर दीजिये कि मैं उनके लिए न्याय हासिल करनेमें कोई कसर उठा नहीं रखूँगा। मेरे लिये ऐसे समय जबकि पंजाबके इतने सारे नेता जेलोंमें पड़े हैं और वह भी केवल इस अपराधके कारण कि उन्होंने अपनी

१. गुजरातके पंचमहाल जिलेके कलक्टरकी पत्नी।
२. पंजाबके कांग्रेसी नेता; रौलट कानून विरोधी आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया।

योग्यता-भर देशकी अधिकसे-अधिक सेवा करनेका साहस दिखाया, जेलसे बाहर रहना खुशीकी बात नहीं है।

हृदयसे आपका,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८२९) की फोटो-नकलसे।

५१. पत्र : 'टाइम्स ऑफ इंडिया'को[1]

लैबर्नम रोड
बम्बई
अगस्त २९, १९१९

महोदय,

मैं जानता हूँ कि हमसे कई हजार मीलकी दूरीपर होनेवाली जो घटनाएँ और समस्याएँ हैं उनके सम्बन्धमें लोगोंकी अनभिज्ञता स्वाभाविक ही है, और इस अज्ञानको धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे कोशिश करके ही मिटाया जा सकता है। "यूरेका" का जो पत्र आपके इसी २८ तारीखके अंकमें प्रकाशित हुआ था, उसीके सन्दर्भमें मैं यह लिख रहा हूँ। उसने कई प्रश्न उठाये हैं। मैं अपनी बात दक्षिण आफ्रिकावाले प्रश्नतक ही सीमित रखूँगा। आज जनताके सामने प्रश्न प्रवासका नहीं है, बल्कि उन लोगोंकी आजीविका और दर्जेका है जो दक्षिण आफ्रिकामें वैध रूपसे बस गये हैं। साम्राज्यके नागरिकोंके निहित अधिकारोंको छोड़ना न लॉर्ड सिन्हाके हाथकी बात थी और न बीकानेर नरेशके। उन्होंने ऐसा-कुछ किया भी नहीं। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको बसे हुए ५० सालसे ऊपर हो गये हैं। उन्होंने अपने जीवन-स्तरको नीचे गिराया हो, ऐसी कोई बात सामने नहीं आई। क्या "यूरेका" महोदयको याद है कि सर्वप्रथम भारतीय प्रवासियोंको आफ्रिकाके यूरोपियोंने ही बुलवाया था? मेरा मतलब गिरमिटिया भारतीयोंसे है। १८९४ में मैंने कहा था, और आज भी वही कहता हूँ कि जब नेटाल में ही ४००,००० हट्टे-कट्टे जूलू लोग मौजूद थे, और यदि मजदूर-मालिकोंने अन्धाधुन्ध मुनाफा कमानेकी इच्छा न की होती तो इन लोगोंने खुशी-खुशी काम किया होता, फिर भी नेटालके लालची यूरोपीयोंने बहुत-ही कम मजदूरीपर भारतसे गिर-मिटिया मजदूरोंको नेटाल बुलाया। यह एक जबरदस्त गलती थी। अब क्या दक्षिण आफ्रिकाका इन मूल प्रवासियोंके वंशजों और उनके सम्बन्धियोंको भूखों मारकर बाहर निकालना उचित कहा जा सकता है?

१. किसी व्यक्तिने "यूरेका" के नामसे 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में पत्र लिखकर गांधीजीको सलाह दी थी कि वे दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंके लिए आन्दोलन न करें, और यह दलील दी थी कि भारतीयोंको वस्तुतः शिकायत करनेका कोई कारण नहीं है क्योंकि केवल यूरोपी-यनोंने दक्षिण आफ्रिकाके लिए लड़ाई लड़ी थी और उसे अपने हाथमें रखा था। इसके उत्तरमें गांधीजीने उक्त पत्र लिखा।

किस तरह और किसने दक्षिण आफ्रिकापर विजय पाई, इस प्रश्नकी चर्चा करना मेरे लिए व्यर्थ है। लेकिन "यूरेका" की एक भ्रान्ति दूर करनेके लिए यह बतलाना चाहूँगा कि स्वर्गीय सर जॉर्ज व्हाइटके अधीन भेजी वह सहायता भारतसे ही गई थी जिसके फलस्वरूप लेडीस्मिथ [नगर] की रक्षा हो सकी और शायद उसके कारण ही युद्धका पासा पलटा था। "यूरेका" को मैं यह भी बतला दूँ कि सर जॉर्ज व्हाइट अपने साथ जिन १०,००० सैनिकोंको ले गये थे उनमें बहुतसे भारतीय सहायक भी थे; और वे सैनिक अभियानके लिए इतने ही जरूरी थे जितने कि अन्य सैनिक। इतना ही नहीं है, जिस समय लेडीस्मिथका भाग्य अधरमें लटका हुआ था, और कोलेंज़ोकी लड़ाईमें विपरीत परिस्थितिका सामना करते हुए जब स्वर्गीय लेफ्टिनेन्ट रॉबर्ट्सकी बन्दूकें छिन गईं थीं, उस समय करीब १,२०० भारतीयोंकी एम्बुलेन्स टुकड़ीके साथ मैं वहाँ था।[1] इस टुकड़ीमें स्वतन्त्र और गिरमिटिया, शिक्षित और अशिक्षित सभी वर्गोंके भारतीय थे। आज आफ्रिकामें जिन लोगोंके सिरपर अपनी रोजी खो बैठनेका खतरा मँडरा रहा है उनमें कुछ ऐसे हैं जिन्होंने लेफ्टिनेन्ट रॉबर्ट्सको युद्धभूमिसे मरणासन्न अवस्थामें स्ट्रेचरपर लादकर वहाँसे हटाया था। इस टुकड़ीने स्पियनकॉपकी पराजयके समय भी मैदानमें सेवा की थी। हमें मैदानमें गोलाबारीकी सीमाके बाहर रहकर काम करनेके लिए भरती किया गया था, लेकिन यह इसलिए नहीं कि हमें कोई आपत्ति थी, बल्कि हमें सैनिक ढंगकी कोई शिक्षा नहीं मिली थी इसलिए अधिकारी लोग ही हमारी जानको जोखममें नहीं डालना चाहते थे। तथापि कर्नल गालवेने सन्देश भेजा कि हालाँकि हम गोलाबारीके क्षेत्रमें काम करनेको बाध्य नहीं हैं, लेकिन अगर हम पहाड़ीके नीचे युद्धभूमिके अस्थायी अस्पतालमें पड़े हुए घायलोंको हटा सकें तो जनरल बुलरको खुशी होगी। बोअर लोगोंके पहाड़ीपर से नीचे उतर आनेका अन्देशा था; पर बिना जरा भी हिचके, बल्कि इस अवसरसे खुश होकर मेरे साथके प्रत्येक आदमीने इसपर अमल किया और घायलोंको वहाँसे हटाकर २४ मील दूर फ्रीयर कैम्प-स्थित अस्पतालमें पहुँचाया। इन घायलोंमें स्वर्गीय जनरल वुडगेट और उनके अधीनस्थ लड़नेवाले बहादुर अफसर भी थे। अंग्रेजी अखबार और राजनीतिज्ञ भारतीय स्वयंसेवकोंके उस विशुद्ध सेवा-कार्यसे इतने प्रफुल्लित हुए कि कई कविताएँ इसकी प्रशंसामें रची गईं; जिसका भाव था "आखिर हम साम्राज्यके ही बेटे तो हैं।" जिन भारतीयोंके लिए ये पंक्तियाँ लिखी गई थीं, अब क्या वे यह गायेंगे कि "आखिर हम साम्राज्यके गुलाम ही तो हैं?" यदि भारतकी अंग्रेज और भारतीय जनता आसन्न संकटको समाप्त करनेके लिए जबरदस्त प्रयत्न नहीं करती है तो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रवासी पूर्णतः गुलामोंकी स्थितिको ही प्राप्त हो जायेंगे। मेरी रायमें दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय व्यापारियोंका पक्ष इतना कमजोर है कि यदि हम केवल लगातार शान्ति और सचाईके साथ उसकी असलियत सारे साम्राज्यके सामने प्रकट करते रहेंगे तो उनकी दलीलें अपने आप ढह जायेंगी।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३-९-१९१९

1. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १३८-३९, १४७-४८, १५७-५८।

५२. दूसरे पक्षकी भी बात सुनिए

इधर पंजाबकी अनेक घटनाओंसे जनताके मनको बहुत आघात पहुँचा था। मैंने आशा की थी कि अप्रैलमें जो घटनाएँ हुई हैं, उनके कारण हमें अब कहीं औरसे कोई आघात नहीं सहना पड़ेगा। किन्तु हम नडियादसे प्राप्त जिन कागजातके विवरणोंको अन्यत्र छाप रहे हैं, उन्होंने मेरी सारी आशापर पानी फेर दिया है। पिछले २१ अप्रैलको खेड़ाके कलक्टरने नडियाद नगरपालिकाको इस तरह लिखा था।

> **नगरकी जनताका प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था होनेके नाते नडियादके नगर-निगमको मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। प्रथम तो मैं इस बातके लिए निगमके द्वारा जनताके प्रति अपनी सराहनाकी भावना व्यक्त करता हूँ कि इस तनाव और उत्तेजनाके दिनोंमें, जो सौभाग्यवश अब समाप्त हो चुके हैं, उसने आम तौरपर कानून और शान्ति-सुव्यवस्थाके प्रति आस्था दिखाई। वे नेतागण धन्यवादके विशेष पात्र हैं, जो इस दौरान लोगोंको संयमित रखनेकी दिशामें अपने प्रभावका उपयोग करते रहे।**

लेकिन पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन्हीं लोगोंपर अब विशेष पुलिस तैनात की गई है और इसका कारण वे ही घटनाएँ हैं, जिनसे विचलित न होने-पर उन्हें बधाइयाँ दी गई थीं। इस पुलिस व्यवस्थाका खर्च नडियादके पाटीदारों और बनियों तथा बारेजडीके भूस्वामियोंसे वसूल किया जानेवाला है। जहाँतक मुझे मालूम है, इस अशान्ति-कालमें जो कलक्टर नडियादमें नियुक्त थे, वे नेताओंके बहुत निकट सम्पर्कमें थे। नेतागण कलक्टरसे पूरा सहयोग कर रहे थे और नडियादमें तनिक भी उपद्रव न होने देनेमें उनका हाथ कलक्टरसे किसी तरह कम न था। रेलकी पटरियाँ उखाड़ने-की बातपर जितना दुःख मुझे है, उससे अधिक किसीको नहीं हो सकता। नडियादके लोगोंकी एक बृहत् सभामें मैंने इस भीरुतापूर्ण कार्य और जिन लोगोंने यह सब करके अपने-आपको छिपानेकी कोशिश की थी, उनकी कायरताकी कड़ेसे-कड़े शब्दोंमें आलोचना की। इस मामलेमें स्वयं अपराधियोंके आचरणके कारण, कोई प्रमाण नहीं मिल पानेकी वजहसे, न्यायकी जो हत्या हुई है, उसके बारेमें भी मैंने लोगोंसे खुलकर चर्चा की है। इसमें सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं कि इन अपराधियोंने मौन रहनेकी एक साजिश-सी कर रखी है। लेकिन अपराधकी भर्त्सना करना एक बात है और जिन लोगोंके उस अपराधमें शरीक होनेकी बात कतई सिद्ध नहीं की जा सकती, उन्हें दण्डित करना बिलकुल दूसरी बात है। मैं जानता हूँ कि इन पाटीदारों और बनियोंमें से कुछने वास्तविक अपराधियोंको ढूँढ़ निकालने और उनसे अपना अपराध स्वीकार करानेकी दिशामें अपनी पूरी शक्ति लगा दी है; और यह बात कलक्टरको भी विदित है। ऐसी हालतमें, उनपर इस सहायताके बदले जुर्माना किसलिए ठोका जा रहा है? नडियादकी ३१,४८३ की आबादीमें से ६,०९३ लोग पाटीदार हैं और ३,६५२ बनिये। क्या सिर्फ

इसी कारण इन लोगोंको दण्डित करना चाहिए कि कुछ बदमाशोंने, जिनके सिर उस समय पागलपन सवार था, स्टेशन जाकर रेलकी पटरियाँ उखाड़ फेंकी? पाटीदारों और बनियों तथा इस अपराधके लिए दोषी लोगोंके बीच, कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं किया जा सका है। हम इस मामलेकी जानकारी देनेकी दृष्टिसे जो बहुत ही उपयुक्त कागजात छाप रहे हैं, उन्हें देखनेसे इसका असली कारण मालूम हो जायेगा। इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिसने बिना किसी सबूत-शहादतके इन विभिन्न अपराधोंके सम्बन्धमें यहाँतक कह डाला कि

> **जहाँतक जाँच की जा सकी है, उससे प्रकट होता है कि श्री मो० क० गांधी और उनके अनुगामियोंकी सीखोंके कारण खेड़ा और अहमदाबाद जिलोंमें अराजकताकी जो एक भावना व्याप्त हो गई है, अलग-अलग होनेवाली ये घटनाएँ भी उसी भावनाका विस्फोट थीं।**

यह बात तो वैसी ही हुई जैसे कोई कौआ किसी डालपर बैठ जाये और वह डाल टूट जाये और इस आधारपर कोई यह कहे कि कौएके बैठनेसे ही टूटी है। मैं तो देशके सामने पिछले चार वर्षोंसे उसके कर्त्तव्य रखता आ रहा हूँ; अफसोसकी बात तो यह है कि मेरे ज्यादा अनुगामी नहीं हैं। यदि मेरे पास काफी संख्यामें प्रबल अनुगामियोंका एक सुसंगठित दल होता तो मैं अराजकता और अव्यवस्थाको बिलकुल ही असम्भव बना देता और इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिसके पास कोई काम न बचता। लोगोंको मैं जो सिखाता हूँ वह तो यह है कि "हर हालतमें सत्यपर दृढ़ रहो और कभी किसी व्यक्ति या उसकी सम्पत्तिको क्षति न पहुँचाओ।" जब खेड़ामें या अहमदाबादके हजारों मिल-मजदूरोंके बीच मेरी सीखपर बड़ी मुस्तैदीसे अमल किया जा रहा था, उस समय किसी प्रकारकी अव्यवस्था देखनेमें नहीं आई। उन्होंने एक चींटी तकको त्रास नहीं दिया। और कलक्टरके पत्रमें जो विवेकहीनता आद्योपान्त झलक रही है उसके सामने तो इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिसके शब्द भी मात हैं। अतिरिक्त पुलिस तैनात करने और सामूहिक दायित्व लादनेकी सलाह देते हुए उन्होंने जो कारण बताये हैं, उनमें से एक यह है:

> **रेलकी पटरियाँ निस्सन्देह नडियादवालोंने उखाड़ीं, जिन्हें जल्दी ही विशेष न्यायाधिकरणके सामने पेश किया जायेगा। इनमें से अधिकांश पाटीदार हैं।**

ये वाक्य जिस पत्रसे लिये गये हैं वह २६ मईका है। इस तारीखतक गिरफ्तार-शुदा लोगोंकी पेशी भी नहीं हुई थी फिर भी वे बड़े दावेके साथ फरमाते हैं कि पट-रियाँ नडियादवालोंने उखाड़ीं, जिनमें अधिकांशतः पाटीदार लोग थे। भला इस कदर उतावली दिखानेकी क्या जरूरत थी। सम्बन्धित कागजोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि एक ओर तो वे खुद यह कहते हैं:

> **चूँकि सभी अपराधोंसे सम्बन्धित मामले एक विशेष न्यायाधिकरणके विचाराधीन हैं, और इन मुकदमोंके परिणामोंका असर इस पूरे सवालपर पड़ सकता है इसलिए किसी भी निष्कर्षपर पहुँचनेमें जल्दबाजी दिखाना मुझे पसन्द नहीं है। उदाहरणके लिए यदि किसी विशेष मामलेमें अपराधियोंके सरगनोंको दोषी**

ठहराया जाकर माकूल सजा दे दी जाती है तो यह सवाल उठ सकता है कि विशेष पुलिस तैनात करना आवश्यक या वांछनीय है अथवा नहीं।

और इससे आगेके एक अनुच्छेदके बाद वे मामलेकी सुनवाई होनेसे पूर्वतक सामूहिक दायित्व लादनेकी सलाह देते हैं। उन्होंने जो दूसरा कारण बताया है, वास्तवमें मुख्य तो वही है। वे कहते हैं:

> **पिछले कुछ वर्षोंसे, और जहाँतक मैं जानता हूँ, १९१८ के प्रारम्भसे नडियाद जिलेके लोगोंके बीच सरकारके विरुद्ध लगातार एक आन्दोलन चलता रहा है और यह अपराध स्पष्टतः उसीका प्रत्यक्ष परिणाम है। इस जिलेके आन्दोलनका केन्द्र नडियाद है। पिछले साल सत्याग्रह आन्दोलनके समय यही शहर श्री गांधीका सदर मुकाम था; यह आन्दोलन वास्तवमें सरकारी लगानकी अदायगीके विरुद्ध छेड़ा गया था, और इस प्रकार इसका सीधा उद्देश्य जनताके मनमें, सरकारी अधिकारियों और स्वयं सरकारके प्रति जो सम्मान-भाव है उसकी बुनियाद खोखली कर देना था। और वास्तवमें उससे ऐसा हुआ भी।**

ऐसा कहना भ्रामक है। मैं यह नहीं मान सकता कि मुझे जिस आन्दोलनका नेतृत्व करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसके कारण सरकारी अधिकारियों अथवा स्वय सरकारके प्रति जनताके सम्मान-भावकी बुनियाद रंच-मात्र भी कमजोर हुई। अगर लोगोंके रावनियों, तलाटियों और मुखियोंके भयसे मुक्त हो जानेको ही कलक्टर जड़ खोखली करना समझता हो तो बात और है। खेड़ा जानेपर मैंने देखा कि बहुत-से लोग इन अदना अफसरोंके भयसे त्रस्त रहा करते थे, और मुझे यह तसदीक करते हुए खुशी होती है कि अब लोगोंके दिलोंसे उनका और उनसे ऊँचे अफसरोंका डर जाता रहा है। मैंने उन्हें आदर देने और डरनेके भेदको पह-चाननेके लिए कहा। मैं कलक्टरको चुनौती देता हूँ कि लोगोंके निर्भय हो जानेकी बातको छोड़कर वे सिद्ध करें कि आन्दोलनमें भाग लेनेवाले एक भी आदमीने सत्ताके प्रति तनिक भी तिरस्कार प्रदर्शित किया। मेरी नम्र सम्मतिमें बिना सुनवाईके किसीको सजा दे देना अन्याय है। शिष्टता और शालीनताका तकाजा है कि कमसे-कम नडियादके लोगोंको, और विशेष रूपसे पाटीदारों और बनियोंको, जिनका इस मामलेसे सम्बन्ध है, तथा बारेजडीके भूस्वामियोंको तलब करके यह प्रमाणित करनेके लिए तो कहा जाये कि उनपर २२,००० का जुर्माना क्यों न ठोका जाये। आदेशमें जुर्मानेके रूपमें यही बड़ी रकम देनेको कहा गया है। इसके अतिरिक्त एक बड़े शहरके इने-गिने पियक्कड़ोंका दोष सारी आबादीपर मढ़ देना ईमानदारी नहीं कही जा सकती, जबकि सजाका मूल कारण अपराध न होकर जनताकी राजनीतिक गतिविधि ही है।

बनियोंसे सम्बन्धित अनुच्छेद तो इतना हास्यास्पद है कि उसपर नाराज तक नहीं हुआ जा सकता। किन्तु नडियादके कलक्टर महोदय वास्तविक स्थितिसे इतने अनभिज्ञ हैं कि मैं उनसे सहानुभूति प्रकट किये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि मैं श्री केरको इतना तो जानता ही हूँ कि समझ सकूँ कि वे जान-बूझकर कोई अन्याय करना नहीं चाहते। जान पड़ता है, मेरे भी बनिया होनेके कारण उनका खयाल है कि मैंने श्री

तलाटी और शाहसे मिलकर पाटीदारोंको सत्याग्रह करनेके लिए उकसाया था। लेकिन तथ्य यह है कि मुझे एक महीना पहले यह मालूम ही नहीं था कि श्री शाह बनिया हैं, और श्री तलाटीके बनिया होनेकी बात तो मुझे कलक्टर साहबके जिस पत्रकी हम चर्चा कर रहे हैं, उसे देखकर ही मालूम हुई। अभीतक तो मैं उन्हें पाटीदार समझ रहा था। और फिर मैं बनिया होनेके कारण ही दुनियाभरमें सत्याग्रहका प्रचार नहीं करता फिरा हूँ। जिन लोगोंने सत्याग्रहके विकासमें जीवन-भर मेरा साथ दिया है, उनमें यूरोपीय और भारतके सभी हिस्सोंके लोग शामिल हैं। सत्याग्रह तो एक सैनिक प्रवृत्ति है, और बनियोंको ज्यादातर पैसा कमानेवाली जाति माना जाता है न कि किसी उद्देश्य विशेषके लिए लड़नेवाली जाति। इसलिए बनियोंमें तो मेरे सबसे कम सहयोगी रहे हैं। लेकिन इस व्यक्तिगत बातको लिखनेमें मेरा उद्देश्य यह दिखाना है कि अधिकारीगण हमसे कितनी बुरी तरह विलग रहते हैं। उनका यह विलग रहना उन्हें लोगोंको जानने-परखनेके अवसरसे वंचित रखता है और इसीलिए वे लोगोंकी सच्ची सेवा भी नहीं कर पाते। आशा है, परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय अपनी सहज उद्यमशीलता और मनोयोगका परिचय देते हुए स्वयं इस मामलेकी जाँच करेंगे। मेरी नम्र सम्मतिमें नडियादमें किसी भी विशेष पुलिसकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन अगर सरकार समझती हो कि सार्वजनिक सुरक्षाके लिए यह आवश्यक है तो मैं कहूँगा कि इस विशेष पुलिसका खर्च नडियादके पाटीदार और बनियों तथा बारेजडीके भूस्वामियों द्वारा दिये जानेका कोई कारण स्पष्ट नहीं किया गया है। दुःख अदायगीके सवालको लेकर नहीं है; दुःख तो इस बातका होता है कि लोगोंकी बात सुने बिना अकारण ही उनपर लांछन लगाया गया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-८-१९१९

५३. पत्र : अखबारोंको[1]

लैबर्नम रोड
बम्बई
अगस्त ३०, १९१९

महोदय,

जिन भारतीयोंने सुदूर दक्षिण आफ्रिकामें भारतके लिए कार्य किया और उसकी सेवा की है, ऐसे भारतीयोंकी मृत्युकी खबर समय-समयपर जनताको देनेका मेरा दुर्भाग्य रहा है। श्री रुस्तमजीके एक तारसे मुझे अभी-अभी एक ऐसे ही योग्य भारतीयकी

१. यह पत्र दाऊद मुहम्मदकी मृत्युपर लगभग सभी पत्रोंको भेजा गया था और **हिन्दू**में १-९-१९१९ को, **यंग इंडिया**में ३-९-१९१९ को और **इंडियन ओपिनियन**में १७-१०-१९१९ को प्रकाशित हुआ था।

मृत्युकी सूचना मिली है। उनका नाम दाऊद मुहम्मद था। श्री दाऊद मुहम्मद पहले साधारण स्थितिके व्यक्ति थे। उन्होंने अंग्रेजी ढंगकी कोई शिक्षा नहीं पाई थी। मैं कह नहीं सकता कि उन्होंने भारतमें दूसरे दरजेसे आगेकी शिक्षा भी पाई थी या नहीं। लेकिन अपनी बहुमुखी प्रतिभा और लगनके बलपर उन्हें बिना किताबी शिक्षा पाये भाषाओंपर ऐसा अद्भुत अधिकार प्राप्त हो गया था कि मैंने उन्हें लोगोंसे गुजराती, जो उनकी मातृभाषा ही थी, के अलावा तमिल, हिन्दी, क्रियोल, फ्रेंच, डच और अंग्रेजी भाषामें बहस करते देखा था। सहज वाक्चातुर्यके कारण वे लोकप्रिय व्याख्यान-दाता बन गये थे। वे जितने कुशल व्यापारी थे उतने ही कुशल राजनीतिज्ञ भी। और जब निर्णय करनेका कठिन अवसर आया उस समय उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके सविनय अवज्ञाकारियोंका साथ दिया, सीमा पारकी और कई अन्य प्रतिष्ठित व्यापारियोंके साथ ट्रान्सवालकी पवित्र सीमा लाँघनेके अपराधमें अपनेको गिरफ्तार होनेके लिए प्रस्तुत किया।[1] कई यूरोपीय व्यापारी पेढ़ियोंके साथ बड़े पैमानेपर उनका कारोबार था, इसलिए बहुतसे यूरोपीय उनको अच्छी तरह जानते थे, और उनकी महानता तथा योग्यताके कारण उनका आदर करते थे। मुझे यह प्रमाणित करते हुए हर्ष होता है कि उन जैसे आदमीके लिए, जो ऐशोआरामकी जिन्दगीका आदी था और जिसकी उम्र उस समय ५० वर्षकी थी, अपनी आत्माकी आवाजपर गिरफ्तारीका खतरा उठाना एक ऐसा कार्य था जिसके कारण वे अपने कई यूरोपीय मित्रोंकी निगाहमें गिरनेके बजाय और ऊपर उठ गये। इसे मैं अपने लिए सम्मानकी बात मानता हूँ कि मैं दक्षिण आफ्रिकामें व्यापारी-वर्गके ऐसे लोगोंके निकट आया जिन्होंने जी खोलकर अपना समय और अपना धन दिया; और यहाँतक कि वे जेल जाकर अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता और अपनी सम्पत्ति खोनेका खतरा भी स्वेच्छासे उठानेको तैयार रहे। श्री दाऊद मुहम्मद इस तरहके सर्वोत्तम लोगोंमें से थे। वे कई वर्षोंतक नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष रहे। सम्पूर्ण दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय उन्हें जानते थे। मेरी विनम्र रायमें, यद्यपि भारत उन्हें नहीं जानता, तथापि इस बातपर उसे गर्व होना चाहिए कि उसने दाऊद मुहम्मदको जन्म दिया। इस समय दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको उनकी सेवाओंकी बहुत आवश्यकता थी। श्री दाऊद मुहम्मदकी मृत्युसे उनको क्षति पहुँची है। और मैं कहूँगा ऐसी ही क्षति उन्हें उस साहसी राजनीतिज्ञ जनरल बोथाकी[2] मृत्युसे भी हुई है। अतः अब और भी अधिक यह देखना भारतका कर्त्तव्य हो गया है कि स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष करनेवाले उसके सपूतोंके हित पूरी तरह सुरक्षित रहें।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १–९–१९१९

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ १९६-९७।

२. दक्षिण आफ्रिका संघके प्रधान-मंत्री (१९१०-१९); इनकी मृत्यु २८ अगस्तको हुई।

५४. भाषण : महिलाओंकी सभामें[1]

दाहोद[2]

अगस्त ३१, १९१९

स्त्रियोंके हाथमें धर्मकी बागडोर है। पुरुष बाह्य-प्रवृत्तिमें अत्यन्त लीन होनेके कारण अनेक बार धर्मको भूल जाता है, कितनी ही बार उसका त्याग कर देता है। लेकिन स्त्री जिस तरह, अपने बच्चेको, अपने हृदयका टुकड़ा मानकर अच्छी तरहसे सँभालकर रखती है ठीक उसी तरह वह धर्मकी भी रक्षा करती है। इसलिए मैं तो हमेशासे यह मानता आया हूँ कि हिन्दुस्तानकी मुक्ति स्त्रियोंकी उन्नतिमें निहित है। स्वदेशी एक महान् धर्म है। गुजरातकी अनेक स्त्रियोंने उसका त्याग कर दिया है। अपने पड़ोसीको छोड़कर किसी दूसरेकी सेवा कदापि नहीं की जा सकती, जो पड़ोसीकी सेवा करता है वह समस्त विश्वकी सेवा करता है। हम अपने कारीगरोंका त्याग करते हैं और विदेशी कारीगरोंको प्रोत्साहन देते हैं, यह अधर्म ही कहा जायेगा। विभिन्न कारणोंसे हम पिछली एक शताब्दीसे यह अधर्म करते चले आ रहे हैं। परिणामस्वरूप हमने अपने कारीगरोंके हाथोंसे करोड़ों रुपए छीनकर विदेशी कारीगरोंको दे दिये हैं। इसलिए हिन्दुस्तानी भुखमरीसे पीड़ित हैं। हमारी सबसे बड़ी दो जरूरतें हैं, अनाज और वस्त्र। सौभाग्यसे अनाज तो हम अभी देशमें पैदा हुआ ही खाते हैं लेकिन वस्त्र तो हम अधिकांशतः विदेशोंसे मँगवाया हुआ ही पहनते हैं। फलतः हमने गत वर्ष ५० करोड़ रुपए विदेश भेज दिये। यह हमारे लिए बड़ी शर्मकी बात है। इस स्थितिसे निकलना हमारा कर्त्तव्य है। उसका सबसे आसान रास्ता है कि हम जैसा सौ वर्ष पहले करते थे वैसा ही आज भी करें। स्त्रियोंको मुख्य रूपसे सूत कातना चाहिए और पुरुषोंको बुनना चाहिये।

मैं स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ होनेके बाद अनेक बहनोंसे मिल चुका हूँ। उनमें से कुछ-एक बहनोंने मुझे बताया कि वे सब सूत कातती हैं। और इस बातका प्रमाण भी दिया कि उनकी माताएँ भी सूत काता करती थीं। कातनेके धन्धेको हलका नहीं माना जाता था। शाही परिवारोंमें भी रानियाँ शौककी खातिर अथवा सहानुभूतिकी भावनासे सूत काता करती थीं। दाहोदकी बहनोंको इस प्राचीन और पवित्र कलाका जीर्णोद्धार करना चाहिए। जो बहन गरीब है वह अपने मौजूदा प्रामाणिक धन्धेको छोड़कर कताईका काम शुरू करे, ऐसी मेरी माँग नहीं है। कताईका काम सहल और सुन्दर है। जल्दीसे सीखा जा सकता है। जब करना हो, तब शुरू किया जा

१. दाहोदमें गांधीजीके आगमनपर हजारों लोग उनके स्वागतके लिए गये थे और जलूस भी निकाला गया था। दोपहरके समय गांधीजीने महिलाओंकी एक सभामें स्वदेशी और कताईके महत्त्वपर भाषण दिया था। **यंग इंडिया**के १०-८-१९१९ के अंकमें भाषणका अंग्रेजी विवरण भी उपलब्ध है।

२. सौराष्ट्रके पंच महाल जिलेका एक प्रमुख शहर।

सकता है और जब छोड़ना चाहो तब छोड़ सकते हो। इसलिए जब-जब फुरसत मिले तब-तब यह काम हो सकता है। गरीब बहनें इस तरह अपने फालतू समयमें कातनेका काम करके हर समय थोड़ा-बहुत पैसा कमा सकती हैं और इससे देशके एक भारी और आवश्यक धन्धेको प्रोत्साहन मिलेगा। स्वदेशीका शीघ्रातिशीघ्र प्रचार करनेके लिए बहनोंके आग्रहकी जरूरत है। अबसे हम स्वदेशी वस्त्र ही पहनेंगी — प्रत्येक बहनको ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए। देशकी खातिर थोड़ा-बहुत सूत हमेशा कातेंगी — यह दूसरा निश्चय भी प्रत्येक बहनको करना चाहिए। यदि दाहोदकी बहनें ऐसा करें तो अपनी जरूरतका सारा कपड़ा वे दाहोदमें ही तैयार कर सकती हैं। इससे दाहोदवासी बाहरसे कपड़ा लानेके झंझटसे मुक्त हो जायेंगे, इतना ही नहीं बल्कि बहुत-सारा धन भी दाहोदकी बहनों और बुनकरोंको मिलेगा। इसके लिए बहुत-थोड़े त्यागकी आवश्यकता है। अपने नगरमें मोटा-पतला चाहे जैसा भी कपड़ा बने, उसीको पहनकर हमें सन्तोष करना चाहिए तथा ईश्वरका उपकार मानना चाहिए और आलस तजकर जब-जब समय मिले तब-तब चरखेके आगे बैठ जाना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि प्रत्येक बहन इस कार्यमें उत्साहसे भाग लेगी।[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–९–१९१९

५५. भाषण: बुनकरोंकी सभामें[2]

दाहोद

अगस्त ३१, १९१९

मुझे यह देखकर बहुत दुःख हो रहा है कि कुछ अन्त्यज भाई दूसरोंसे अलग हटकर खड़े हैं। मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार हिन्दू-धर्मका अध्ययन किया है और यथासम्भव इसके सिद्धान्तोंपर आचरण करनेकी कोशिश भी करता हूँ। मेरी मान्यता है कि कोई भी राष्ट्र धर्मके बिना वास्तविक प्रगति नहीं कर सकता। लेकिन मैं यह बात नहीं मान सकता कि किसी जाति विशेषके स्पर्शको पाप मानना कोई धर्म है। मेरे विचारसे तो ईश्वरकी रची हुई किसी वस्तुके स्पर्शमें पापकी कल्पना करना ही पाप है। रूढ़ियाँ अच्छी बुरी हो सकती हैं किन्तु अन्त्यजोंका स्पर्श न करनेकी रूढ़िको मैं बुरा ही मानता हूँ। तनिक विचारनेसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि केवल उनके पेशेके कारण उनका स्पर्श न करना अनुचित है। अगर उनका पेशा बुरा है तो उन्हें इसे छोड़ देनेको कहिए। अगर हमारे पाखानोंको साफ करना पाप है तो उन्हें उनसे साफ मत

१. सभाके अन्तमें अनेक स्त्रियोंने तुरन्त कताई आरम्भ करनेका निश्चय किया और उनमें से कुछने जिन्हें कताई आती थी, दूसरोंको भी सिखानेकी इच्छा व्यक्त की।

२. दोपहर बाद श्री गांधीने मेवाड़से आकर वहाँ बसे हुए बुनकरोंकी सभामें भाषण दिया। श्रोताओंमें बहुत-से मुसलमान और अन्त्यज भी शामिल थे। भाषणकी इस रिपोर्टका **नवजीवन**के ७–९–१९१९ के अंकमें प्रकाशित गुजराती रिपोर्टसे भी मिलान कर लिया गया है।

करवाइए। उस परिस्थितिमें अपने शहरकी हालतकी कल्पना कीजिए। हर माता अपने बच्चेका पाखाना साफ करती है। वह सहर्ष ऐसा करती है और मानती है कि यह उसका कर्त्तव्य है। और हम सभी अपनी-अपनी माताओंके आगे सिर झुकाते हैं। इसलिए अगर मैं यह कहूँ कि भंगी लोग भी उसी श्रद्धाके पात्र हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अगर यह कहा जाये कि भंगी गन्दे रहते हैं, मांस खाते हैं और शराब पीते हैं, तो मैं कहूँगा कि हम ऐसे बहुतसे लोगोंको छूते हैं जो मांस खाते या शराब पीते हैं और हम ऐसे पुरुषों और स्त्रियोंके साथसे भी इनकार नहीं करते जो अन्त्यजोंकी अपेक्षा कहीं अधिक गन्दे होते हैं। मैं अस्पृश्यता सम्बन्धी पूर्वग्रहको जाति भेदपर आधारित खान-पान और शादी-विवाहसे सम्बन्धित नियमोंके दर्जेमें नहीं रखना चाहता। यह तो एक ऐसी बात है जिसमें मतभेद हो सकता है। हम अन्तर्जातीय भोजों और अन्तर्जातीय विवाहोंका समर्थन करनेको बाध्य नहीं हैं। लेकिन ईश्वरकी सृष्टिके किसी भी जीवको अस्पृश्य मानना तो मुझे पाप जान पड़ता है। मेरी यही कामना है कि दाहोदके हिन्दू इस पापसे मुक्त हो जायें।

कुछ मुसलमान भाई भी यहाँ आये हुए हैं। हम दोनों (यानी हिन्दू और मुसलमान) एक ही हैं। हमारे सुख-दुःख एक ही हैं। इसलिए हम दोनोंके बीच झगड़ेका कोई कारण नहीं है। हिन्दुओंका काम मुसलमानोंके बिना नहीं चल सकता और मुसलमानोंका हिन्दुओंके बिना। यही हमारा अनुभव है। अगर दोनों समुदायोंमें केवल एक-दूसरेकी सेवा करनेका भाव आ जाये तो आपसी कटुताकी भावना अपने-आप दूर हो जाये। हिन्दुओंको मुसलमानोंकी भावनाका आदर करना चाहिए और मुसलमानोंको हिन्दुओंकी भावनाका। अपने प्रति हमारा यही कर्त्तव्य है। दोनों सवाल — अर्थात् दलित वर्गों और हिन्दू-मुस्लिम एकताका सवाल — स्वदेशीके अन्तर्गत आ जाते हैं; क्योंकि स्वदेशीकी सीख है, "पहले अपने पड़ोसियोंकी सेवा करो।"

लेकिन सच पूछिए तो मैं विषयसे जरा बाहर चला गया, हालाँकि एसा मैंने जान-बूझकर ही किया है। फिलहाल मेरा प्रमुख कार्य वस्त्रके सम्बन्धमें स्वदेशीका प्रचार करना है। जबतक हम स्वदेशीको उसके पूर्ण रूपमें स्वीकार नहीं कर लेते, हम आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकते। पुरानी दस्तकारी भी दाहोदमें बिलकुल खत्म नहीं हुई है। दाहोद अभी अपने चतुर स्त्री-पुरुषों और कारीगरोंपर गर्व कर सकता है। आपको जितने कपड़ेकी जरूरत हो वह आप थोड़ी-सी मेहनतसे पैदा कर सकते हैं और मुझे आशा है, आप ऐसा करेंगे। मैंने जुलाहोंसे बातचीत की है। उन्होंने वादा किया है कि वे हाथकता सूत ही बुनेंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि वे अपनी इस प्रतिज्ञाको निभायेंगे। दाहोदके जुलाहे दाहोदकी औरतों द्वारा काते सूतसे कपड़े बुनें और दाहोदकी जनता उस स्वदेशी वस्त्रको धारण करे, इससे बढ़कर शानदार बात क्या हो सकती है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–९–१९१९

५६. भाषण : अन्त्यजोंकी सभामें

दाहोद
अगस्त ३१, १९१९

श्री गांधीके अस्पृश्यता सम्बन्धी उद्गार लोगोंके हृदयोंमें उतर गये। श्री गांधीके आगमनसे पहले ही ब्राह्मण, वैश्य और मुसलमान सभी जातियोंके लोग अन्त्यजोंकी बस्तीमें पहुँच गये थे और वहाँ भूमिपर एक-दूसरेसे घुल-मिलकर बैठे हुए थे। अन्त्यजों द्वारा बुने गये सब वस्त्र बहुत सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित थे। अन्त्यजोंकी बस्तीमें श्री गांधी द्वारा दिये गये भाषणका सार निम्नलिखित है :

जब किसी अन्त्यज-बन्धुसे मेरी भेंट होती है या उनकी बस्तीमें जाकर उनसे मिलनेका अवसर मिलता है तो मुझे बहुत खुशी होती है। मेरा नियम रहा है कि मैं जिस बातपर विश्वास करता हूँ, उसपर अमल करूँ। इसलिए अन्त्यजोंके सम्पर्कमें आना और उन्हें स्पर्श करना मेरे लिए तो एक पदार्थ-पाठ है। अन्त्यजोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे धीरज रखें। धीरे ही सही, हिन्दू-समाजका वातावरण निश्चित रूपसे बदल रहा है। कट्टर हिन्दू भी अब अस्पृश्यताके पापको समझने लगे हैं और लगभग निश्चित है कि यह घोर बुराई ज्यादा दिनोंतक नहीं टिक पायेगी। मैं यह भी चाहता हूँ कि अन्त्यज अपनी बुराइयोंको दूर करनेके लिए जोरदार कोशिश करें। पिछले वर्ष जब मैं गोधरा गया था तब बहुतसे अन्त्यजोंने शराब पीनेकी आदत छोड़नेका निश्चय किया था। मैं चाहता हूँ कि यहाँके अन्त्यज भी उनका अनुकरण करें। मुझे आशा है कि आप सब लोग बुनाईके काममें पूरा उत्साह दिखायेंगे और मुझे जो वचन दिया है उसीके अनुसार काम करेंगे। हाथसे कते सूतको बुननेमें कठिनाई होती है, लेकिन अगर आप सफलताओंसे विचलित हुए बिना, बुनाई करते रहे तो मुझे भरोसा है कि आप अपनी दशा सुधारनेके साथ ही देशकी उन्नति भी करेंगे। यहाँके प्रसिद्ध व्यापारी श्री के० एन० देसाईने आप लोगोंको हाथकता सूत देना स्वीकार कर लिया है। आप लोग जो कपड़ा बुनेंगे उसे वे उचित मूल्यपर आपसे खरीद लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–९–१९१९

मन लकड़ीकी जरूरत पड़ी थी और दूसरी जगह यह दर्ज किया गया है कि दो-चार लकड़ियोंसे ही काम चल गया था।

ज्यादासे-ज्यादा यही लगता है कि एकको छोड़कर शेष सब अभियुक्त केवल दर्शक ही थे।

ये तथ्य सभी अभियुक्तोंपर लागू होते हैं। लाला दौलतरामके सम्बन्धमें भी मेरे पास कागजात आये हुए हैं। इस मुकदमेके तथ्य लाला करमचन्दके मुकदमेके तथ्योंसे मिलते-जुलते हैं। मेरे मनमें यह बात पक्के तौरपर बैठ चुकी है कि २८ पुरुषोंको जो दण्ड दिया गया है वह अज्ञानवश दिया गया है। उन्हें रिहा कर दिया जाना चाहिए।

लाला करमचन्द एक पुराने अवकाश-प्राप्त सरकारी नौकर हैं। उन्होंने राजनीतिमें कभी भाग नहीं लिया। कुछ वर्षोंसे वे अपना समय या तो रामनगरमें या हरिद्वारमें रहकर भजन-पूजनमें बिता रहे हैं। लाला दौलतराम एक ऐसे व्यक्तिके आत्मज हैं जिन्होंने बहुत लम्बे अर्सेतक सरकारकी प्रशंसनीय सेवा की है। वस्तुतः ऐसा लगता है कि उनका पूराका-पूरा कुटुम्ब ही सरकारी अधिकारियोंसे भरा पड़ा है। ऐसे लोगोंको इस निर्लज्जतापूर्ण ढंगसे दण्डित किया जाना क्रूरतापूर्ण कृत्य ही माना जायेगा।

फैसला स्वयंमें ही धिक्कारके योग्य है। उसमें बदला लेने तथा रोषकी गन्ध आ रही है। बचाव पक्षकी गवाहीका अस्वीकृत किया जाना, इस्तगासेके लचर मुद्दोंकी लीपा-पोती, तनहाईकी सजा और भारी-भारी जुरमाने निश्चित रूपसे यह इंगित करते हैं कि न्यायाधीशका मस्तिष्क असन्तुलित है और वह उस पदके योग्य नहीं है। ये सब मामले अब परमश्रेष्ठ वाइसरायके विचाराधीन हैं। अगर वाइसराय महोदय अभियुक्तके स्थानपर होते उस सूरतमें वे अपने साथ जैसे व्यवहारकी आशा रखते वैसा ही व्यवहार वाइसरायको इन अभियुक्तोंके साथ करना उचित है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–९–१९१९

५८. डॉक्टर सत्यपालका मामला

डॉक्टर सत्यपालके वक्तव्यसे, जिसे हम अन्यत्र छाप रहे हैं, प्रकट होता है कि डॉक्टर किचलूकी[1] भाँति इनके साथ भी कितना बड़ा अन्याय हुआ है। उनकी गिरफ्तारीके पश्चात् किये गये हिंसात्मक कृत्योंकी जिम्मेवारीसे उन्हें मुक्त कर दिया जाना चाहिए था। अमृतसरमें जो-भी हिंसा हुई वह इन व्यक्तियोंकी गिरफ्तारीके बाद हुई थी। इस प्रकार उनपर ऐसे कृत्य करने और ऐसे भाषण देनेके अभियोग लगाये गये जिनसे उनका कोई भी वास्ता नहीं था। डॉक्टर सत्यपालपर जो अनेक आरोप लगाये गये हैं उन सबका जोरदार खण्डन उनके स्पष्ट, जोरदार और साहसपूर्ण वक्तव्यसे हो जाता है। उन्होंने साफ तौरपर यह प्रमाणित किया है कि गुप्तचर विभागके

१. डॉ० सैफुद्दीन किचलू (१८८७–१९६३); बैरिस्टर तथा पंजाबके कांग्रेसी नेता।

अधिकारियोंने उनके भाषणोंकी गलत रिपोर्टें पेश की हैं और यह भी कहा है कि जब-जब वे बोले हैं तब-तब उन्होंने सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तपर अमल करनेको ही कहा है और लोगोंको बराबर यह सलाह दी है कि वे क्रोधवश किसी प्रकारकी हिंसात्मक कार्रवाई न करें।

डॉक्टर सत्यपालके पिताने जो साहस और दृढ़तापूर्ण पत्र मेरे नाम भेजा है उसे मैंने जान-बूझकर नहीं छापा। उस पत्रमें उन्होंने मुकदमेके सम्बन्धमें अपने निजके विचार प्रकट किये हैं। परन्तु उस पत्रमें आये हुए कुछ तथ्योंको उद्धृत करनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, वे कहते हैं:

> **सरकारका इरादा पहले तो डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपालपर मुकदमा चलानेका न था। वे १० अप्रैलको निष्कासित कर दिये गये थे; इसलिए अमृतसरके मजिस्ट्रेटकी अदालतमें मुखबिरने जो अपराध-स्वीकृतिका बयान दिया था उसमें डॉक्टर सत्यपाल और डॉ० किचलूको नहीं फँसाया गया था। परन्तु सरकारका इरादा बदलते ही मुखबिरसे एक अतिरिक्त वक्तव्य जिसे 'सुधार' के नामसे पुकारा गया, मँगवा लिया। उसमें इन दोनोंको दोषी बताया गया था।**

यदि यह आरोप सच है तो वह सरकारी पक्षके ऊपर बहुत-बड़ा लांछन है और सारीकी-सारी अदालती कार्रवाईको प्रभावहीन कर देता है।

इसके अतिरिक्त उस पत्रमें यह भी लिखा है कि :

> **डॉक्टर सत्यपालपर २९ मार्चको सार्वजनिक सभाओंमें भाषण देनेके सम्बन्धमें प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। आयुक्तोंने डॉक्टर सत्यपालको इस अपराधमें कि वे राजद्रोह फैलानेके निमित्त संगठित किये गये षड्यंत्रमें शामिल थे, आजन्म कालेपानीकी सजा दी है। परन्तु एक अत्यन्त विचित्र बात तो यह है कि ३० मार्चको होनेवाली सार्वजनिक सभामें भाषण देना तो दूर रहा वे वहाँ हाजिरतक न थे यद्यपि न्यायाधीश लोगोंने यही माना है कि उन्होंने उस सभामें भाषण दिया था। और कहा जाता है इसी सभामें — उस षड्यंत्रको कार्यान्वित करनेके उद्देश्यसे राजद्रोहका प्रचार किया गया था।**

यह सच है कि ३० मार्चको होनेवाली सभाके सम्बन्धमें प्रकाशित पर्चेपर डॉक्टर सत्यपालके हस्ताक्षर थे। यह २८ मार्चकी बात है। परन्तु यदि कोई षड्यन्त्र था भी तो २८ मार्चतक नहीं था, ३० मार्चको भले ही रच लिया गया हो। गत जनवरी और फरवरी मासमें प्लेटफॉर्म टिकट सम्बन्धी आन्दोलनको, जिसके आयोजक और संचालक डॉक्टर सत्यपाल थे, निर्लज्जतापूर्वक इस मुकदमेमें जोड़ दिया गया ताकि उनपर चलाया गया मुकदमा उनके खिलाफ जाये। यह आन्दोलन बिलकुल निर्दोष था और वह सफल भी हुआ था और इसके सम्बन्धमें स्टेशनके अधिकारियोंने डॉक्टर सत्यपालके प्रति अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त की थी।

उस पत्रका अन्तिम अंश यह है:

> **आपकी जानकारीके लिए सूचित करना चाहता हूँ कि सन् १९१५ में डॉक्टर सत्यपालने फौजी नौकरीके लिए प्रार्थना-पत्र भेजा था। उनको अस्थायी रूपसे आई० एम० एस० में लेफ्टिनेन्टका अस्थायी कमीशन भी मिल गया था। उनकी तैनाती अदनमें की गई। वहाँ उन्होंने अत्यन्त कठिन परिस्थितियोंमें रहकर एक सालतक अपने कर्त्तव्यका पालन किया और उनके कामसे अधिकारीगण सन्तुष्ट भी थे। इन अफसरोंने डॉ० सत्यपालको नौकरीसे अलग होते समय प्रशंसात्मक प्रमाणपत्र प्रदान किये थे। सन् १९१८ में उन्होंने अपनी सेवाएँ पुनः अर्पित कीं परन्तु किसी कारण उन्हें लिया नहीं जा सका। जब भारतमें इनफ्लुएंजा और मलेरियाका प्रकोप हुआ तब उन्होंने अपनी सामर्थ्य-भर अपने नगर-निवासियोंकी सेवाकी और उनके कष्टोंको यथासम्भव दूर किया। उन्हें गैर-सरकारी सनद प्रदान की गई। सरकार तथा जनताकी ऐसी सराहनीय सेवा करनेका उचित पुरस्कार भला इसके सिवाय और क्या हो सकता था कि उनपर दफा १२४ के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जाये।**

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, लाहौर और अमृतसरके मुकदमे ऐसे मुकदमे नहीं हैं जिनमें दी गई सजामें कमी कर देना कोई खूबीकी बात कही जा सके या जिससे लोगोंको सन्तोष हो सके। ये प्रतिष्ठित अभियुक्त दयाकी भीख नहीं माँग रहे हैं। वे न्याय चाहते हैं और जनताको इस न्यायकी आग्रहपूर्वक माँग करनी चाहिए। सजाओंमें जो कमी की गई है वह धोखेकी टट्टी है, फिर वह भले ही बिना किसी खास इरादेके क्यों न की गई हो। उसके परिणामस्वरूप जनताको गाफिल नहीं हो जाना चाहिए। जबतक लाहौर और अमृतसरके नेताओंकी पूरी तरहसे और सम्मानपूर्ण रिहाई नहीं हो जाती, तब-तक शान्ति और सन्तोषका वातावरण उत्पन्न हो ही नहीं सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–९–१९१९

५९. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

आश्रम

भाद्र सुदी ९, सितम्बर ३, १९१९

. . . यदि हम सींचते रहेंगे तो किसी-न-किसी दिन फसल उगेगी ही। अज्ञान भी एक तरहका अन्धकार है, एक प्रकारका असत्य है। इसलिए ज्ञान अथवा सत्यके सामने वह टिक नहीं सकता।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

६०. दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय

दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नको लेकर जो शिष्टमण्डल[1] श्री मॉण्टेग्युसे मिला उसे जो जवाब दिया वह आश्वासनपूर्ण है। यह बहुत सन्तोषकी बात है कि वे आयोगमें भारतीयोंको प्रतिनिधित्व दिलायेंगे। लेकिन शर्त यही है कि भारतीयोंका प्रतिनिधित्व एशियाई-विरोधी पक्षके प्रतिनिधित्वके बराबर होना चाहिए, और यह भी कि आयोगको ब्रिटिश भारतीयोंके मौजूदा अधिकारोंको कम करनेका कोई अधिकार न हो। और यह शर्त भी है कि हाल ही में पास हुआ एशियाई कानून स्थगित रहे तथा आयोगको उसे वापस ले लेनेकी सिफारिश करनेका अधिकार दिया जाये। साम्राज्यीय भारतीय नागरिक संघका दूसरे स्तम्भमें प्रकाशित प्रस्ताव कुछ हमारे सुझावों-जैसा ही है।

पिछले वायदे, समानता तथा न्यायके विचार, दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय अधिवासियोंका अनुकरणीय आचरण तथा पिछले दक्षिण आफ्रिकी युद्धमें, जूलू-विद्रोह कालमें और यूरोपीय युद्धमें भारतीयों द्वारा दिया गया सहयोग, ये सारी बातें उनके मौजूदा अधिकारोंको कम करनेके विरुद्ध एक जोरदार पक्ष प्रस्तुत करती हैं। भारतीयोंके विरुद्ध यूरोपीय व्यापारियोंमें व्याप्त तीव्र पूर्वग्रह ही जिनका एकमात्र औचित्य है, ऐसे प्रतिबन्धोंको पूरी तरह हटानेकी बात यदि आयोग न सोचे तो भी न्याय करनेके लिए उसे इन प्रतिबन्धोंमें ढील करनेकी सिफारिश करनी ही होगी। परन्तु ऐसा निराधार पूर्वग्रह भी एक अयोग्य और भ्रष्ट प्रणालीवाली सरकारके सामने कारण रूपमें पेश किया जा सकता है। साम्राज्यीय सरकारको वास्तवमें साम्राजिक होनेके लिए कुछ विशेष परिस्थितियोंमें, दुर्बल हितोंके संरक्षणके लिए प्रभावशाली तौरपर दखल देनेकी ताकत होनी चाहिए। अतएव भारतीय जनताके विचारमें श्री मॉण्टेग्युकी यह अभ्युक्ति ग्राह्य नहीं हो सकती कि राजनीतिक दृष्टिसे 'वीटो' (निषेधाधिकार) का प्रयोग करना सम्भव नहीं है। 'वीटो' मात्र एक नैतिक नियन्त्रण ही नहीं है, अपितु उसे कुछ विशेष परिस्थितियोंमें अनाचार और अन्यायोंपर एक बहुत ही वास्तविक और ठोस नियन्त्रण भी होना चाहिए। साम्राज्य संगठित रहे इसके लिए कुछ-ऐसे मूल सिद्धान्त होने चाहिए जिनसे अलग हटनेका साहस साम्राज्यका कोई अंग न करने पाये। जैसा कि लगता है, यदि श्री मॉण्टेग्युको विश्वास है कि एशियाई कानून अन्याय है और वह ब्रिटिश संविधानके सिद्धान्तोंके विरुद्ध है तो उसपर निषेधाज्ञा लागू करनेमें क्या कठिनाई है? ज्यादासे-ज्यादा इससे यह हो सकता है कि दक्षिण आफ्रिका साम्राज्यीय-साझेदारीसे शायद अलग हो जाये। निश्चय ही यह हजार गुना बेहतर होता कि दक्षिण आफ्रिका साम्राज्यका सदस्य न रहे बनिस्बत इसके कि वह समूचे साम्राज्यीय ताने-बानेको दूषित करे और नष्ट कर दे। यह असंख्य गुना बेहतर होगा कि साम्राज्यमें जितने साझेदार हैं उससे कम

१. जो श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें २८ अगस्तको मिला था। "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय", ७-९-१९१९ भी देखिए।

संख्यामें साझेदार हों परन्तु सभी साथ-साथ उत्थानकी एक ही दिशाकी ओर अग्रसर हों, बजाय इसके कि कानूनसम्मत जब्तियों और अन्य प्रकारके अनैतिक कार्यों द्वारा साम्राज्य अपने ही विनाशके बीज बोये। और फिर स्वार्थ, लोभ और अन्याय ये कायरताके ही सहचर हैं। इस आशंकाका तो कोई कारण नहीं कि शाही 'वीटो' के स्वस्थ और सम-योचित प्रयोगसे दक्षिण आफ्रिकामें और अधिक हलचल पैदा होगी। यदि मेरी याददाश्त सही है तो उस वक्त जब स्वर्गीय श्री चेम्बरलेनने आस्ट्रेलियाई प्रवास-प्रतिबन्धक अधि-नियम, जिसमें एक जातिमूलक रुकावट थी, के विरुद्ध निषेधाधिकारका प्रयोग करनेका साहस किया था, तब स्वर्गीय सर हेनरी पार्क्सने [साम्राज्यसे] पृथक् हो जाने या कुछ ऐसा ही करनेकी धमकी दी थी।

परन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि जबतक अन्य नरम उपाय सुलभ हैं तबतक 'वीटो' करनेका अन्तिम और तीव्रतम उपाय काममें नहीं लाना चाहिए। निःसन्देह 'वीटो' [चिकित्साकी दृष्टिसे दागकर उठा हुए] एक ऐसे बड़े छालेकी तरह है जिससे क्षणिक ही सही, लेकिन बहुत ही भयंकर पीड़ा होती है और इसलिए इसका बहुत कम प्रयोग करना चाहिए। प्रस्तावित आयोगमें यदि भारतीय प्रतिनिधित्व सशक्त हो तो वांछित उद्देश्य पूरा करनेमें वह पर्याप्त सक्षम होगा। अतएव फिलहाल सबसे अच्छा यही होगा कि जनमतका आग्रह एक शक्तिशाली आयोगके लिए हो, जिसको ऐसे निर्देश हों कि वह [भारतीयोंके] समुचित संरक्षणको ध्यानमें रखकर चले।

यह देखकर हमें बहुत राहत हुई कि श्री मॉण्टेग्यु 'पारस्परिकता' (रेसिप्रोसिटी) के उस जालमें नहीं फँसे जिसे सर विलियम मेयरने शायद बहुत जल्दी-जल्दी सुझाया था। श्री बनर्जी[1] उसमें इतनी आसानीसे फँस गये, इसका मुझे दुःख है। 'पारस्परिकता' जैसे सुन्दर शब्दका प्रयोग इतने बुरे अभिप्रायके लिए करना तो भाषाका हनन करना है। यदि हमें यह खराब नीति अपनानी ही पड़े तो हमें कमसे-कम उसका सही नाम जानना चाहिए, और सही नाम 'पारस्परिकता' नहीं, बल्कि 'बदला' है। व्यक्तिगत रूपसे मैं बदलेमें कतई विश्वास नहीं करता। यह हमेशा अन्तमें पलटकर दूनी शक्तिसे बदला लेनेवालेपर ही चोट करता है। परन्तु जैसा कि दक्षिण आफ्रिकाके हमारे देश-भाइयोंके हितोंकी महत्त्वपूर्ण सेवा करनेवाले 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने ठीक ही कहा है, बदलेकी नीतिसे, जिसे गलतीसे 'पारस्परिकता' कहा जाता है, कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। "इसका प्रमुख दोष इसकी नितान्त निरर्थकता है," और यदि हमने कभी भी इस अत्यन्त अव्यावहारिक नीतिको अपनाया तो दक्षिण आफ्रिकाका एशियाई विरोधी दल तो उसका सन्तोषपूर्वक स्वागत करेगा, लेकिन वहाँके डेढ़ लाख भारतीय जिनका अस्तित्व ही दाँवपर लगा हुआ है, हमें कोसेंगे। जब दाँवपर लगी चीज अच्छी हो तो कोई बदला ले भी ले। परन्तु जब आदमी-औरत दाँवपर लगे हों उस समय बदलेकी बात सोचना ही भयानक है। दक्षिण आफ्रिकाके डेढ़ लाख भारतीयोंको वहाँसे निकाला जाये — क्योंकि वास्तवमें एशियाई विरोधी दलका उद्देश्य यही है — या उन्हें भूमिदास बना डाला जाये और बदलेमें यदि भारत दक्षिण आफ्रिकासे आनेवाले एक जहाज-भर

१. सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (१८४८–१९२५); सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ व वक्ता।

सामानको वापस कर दे तो उससे दक्षिण आफ्रिकामें हमारे देशभाइयोंको क्या राहत मिलेगी, या यदि दक्षिण आफ्रिकाको कुछ टन कोयला भेजनेसे इनकार कर दे, यदि इक्के-दुक्के दक्षिण आफ्रिकी सैलानीको भारतमें न आने दें तो उन्हें क्या राहत मिलेगी? १८९६ या ९५ में स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरने बिल्कुल स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रश्नपर प्रकाश डाला था। दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके इसी सवाल-पर लिखते हुए उन्होंने कहा था कि उन्हें महामहिमकी डोमिनियनमें ब्रिटिश नागरिकका पूरा दर्जा हासिल होना है या नहीं? यह सवाल बदला या पारस्परिकता — जो भी कहें — अस्थायी नीतिसे हल नहीं किया जा सकता। यह सवाल तो सिर्फ सही राज-नीतिक नेतृत्व और हमारे अपने सही आचरण द्वारा ही हल किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–९–१९१९

६१. पत्र : अखबारोंको[1]

लैबर्नम रोड
बम्बई
सितम्बर ६, १९१९

सम्पादक
'बॉम्बे क्रॉनिकल'

महोदय,

कुछ समय पूर्व मुझे फिरंगी महलवाले मौलाना अब्दुल बारी साहबकी मेहमानी करनेका सौभाग्य मिला था। भारतके इस भागमें रहनेवाले हम लोग, मुसलमानोंको छोड़कर, इस महान् और अच्छे आदमीके बारेमें कुछ नही जानते। वे इस्लामके एक प्रमुख धार्मिक आचार्य हैं और भारत-भरमें सर्वत्र उनके हजारों अनुयायी हैं। उनका आडम्बर-हीन और सच्चा स्वभाव उनके विरोधियोंको भी, जब वे उन्हें समझने लगते हैं, मित्र बना देता है। उन्होंने और मैंने पारस्परिक हित सम्बन्धी अनेक समस्याओंपर बातचीत की जिसके दौरान मैंने उन्हें बताया कि जहाँतक मैं हिन्दुओंकी राय समझ सका हूँ, मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि वह टर्कीके दावोंपर न्यायपूर्ण निर्णय उपलब्ध करानेके कठिन काममें पूरी तरहसे मुसलमानोंके साथ होगी। यद्यपि यह काम कठिन है क्योंकि सवालको कितनी ही यूरोपीय उलझनोंसे इतना दबा दिया गया कि मित्र-देश शायद दुर्बलताके क्षणोंमें उस सवालको मात्र न्यायके आधारपर हल नहीं कर पायेंगे। उन्होंने मुझसे पूरी गम्भीरताके साथ, और निस्संकोच रूपसे कहा कि "यदि

१. लगता है यह पत्र सामान्यतया सभी समाचारपत्रोंमें प्रकाशनार्थ भेजा गया था। १०–९–१९१९ के **यंग इंडियाने** इसे **टाइम्स ऑफ इंडियासे** उद्धृत किया था।

हम लोग आप हिन्दुओंकी मदद नहीं करते और आपके प्रति न्याय नहीं करते तो कमसे-कम मैं तो अपने सहधर्मियोंके लिए आपकी सक्रिय मदद न माँग सकता हूँ और न ही ले सकता हूँ।" मैंने कहा "आप एक क्षणके लिए भी ऐसा न सोचिए कि मैंने किसी सौदेकी भावनासे बात की है। आपने जो विचार अभी-अभी व्यक्त किये हैं उनके पीछे जो प्रश्न आपके मनमें है, यानी गोवधका प्रश्न, वह अपने गुणदोषके आधारपर सुलझाया जा सकता है और समाधानकी तबतक प्रतीक्षा कर सकता है जबतक कि हमारे बीच सच्ची मैत्री परिपुष्ट न हो जाये ताकि हम निष्पक्ष रूपसे उसपर बातचीत कर सकें।" जैसे ही मैंने वाक्य समाप्त किया वे तुरन्त बीचमें बोल पड़े "कृपया मुझे क्षमा करें। मैं जानता हूँ कि आप इसलिए मदद करना चाहते हैं कि हमारा उद्देश्य न्यायोचित है और हम एक ही मिट्टीकी सन्तान हैं, इसलिए नहीं कि आप कोई प्रतिदान चाहते हैं। परन्तु क्या हमारा अपने प्रति एक कर्त्तव्य नहीं है? इस्लाम यदि हमेशा लेता रहा और कभी दिया नहीं तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। सबसे पहले जरूरी तो यह है कि उसमें सचाई हो। हमारे धर्मका आभिजात्य (उन्होंने 'खानदानी' शब्दका प्रयोग किया) हमसे अपेक्षा रखता है कि अपने पड़ोसियोंके प्रति हम पूरी तरहसे न्याय करें। यहाँ प्रश्न है सेवा लेनेका। हिन्दू हमारे विश्वासकी सही परख अपने प्रति हमारे आचरणसे करेंगे। इसीलिए मैं कहता हूँ कि "यदि हम आपसे लें तो हमें आपको देना भी जरूर चाहिए।" एक ऐसे मौलानासे, जिसमें ज्ञान, सच्ची बुद्धिमत्ता और विनम्रता है, हुई विलक्षण बातचीतका मैंने केवल थोड़ा-सा नमूना दिया है। मौलाना अपनी बातके सच्चे रहे हैं। मैं जानता हूँ कि इस बातचीतके बाद वे बराबर अपने अनुयायियों और मित्रोंको गो-वध न करनेका उपदेश देते रहे हैं और आज इस्लाम धर्मके एक सबसे पवित्र दिन उन्होंने हिन्दुओंका ध्यान रखा है और निम्नलिखित तार मुझे भेजा है:

> **"हिन्दू-मुस्लिम एकताके उपलक्ष्यमें इस बकरीदको फिरंगी महलमें गायकी बलि नहीं होगी — अब्दुल बारी।"**

इस तारका मैंने निम्नलिखित जवाब भेजा है:

> **"आपके त्यागके महान् कार्यसे प्रसन्नता हुई। कृपया ईद मुबारक स्वीकार करें।"**

भगवान् करे कि हम सबमें — हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी सभी जातिके लोगोंमें दान, न्याय और उदारताके गुण हों। निश्चय ही इससे संसारकी बेहतरी होगी।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ९-९-१९१९

६२. तार : वाइसरायके निजी सचिवको

बम्बई

सितम्बर ६, १९१९

क्या उपद्रव [जाँच] आयोगके अधिकारोंमें फैसलोंकी जाँच करने और सजाको रद करने या पुनर्विचारकी सिफारिश करनेका अधिकार भी शामिल है?[१]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स

६३. हमारा उद्देश्य

जब मैंने 'यंग इंडिया'के सम्पादन कार्यकी देखरेखका दायित्व अपने सिरपर लिया तब मेरे तथा मेरे मित्रोंके मनमें यह प्रश्न उठा था कि क्या मेरे लिए यह अधिक उचित न होगा कि अंग्रेजी लेख लिखने, उनमें संशोधन करने, उनका अध्ययन करने और उन्हें संक्षिप्त करने आदिमें समय लगानेकी अपेक्षा गुजराती पत्र चलाऊँ। किन्तु विशेष महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह था कि मैं किस तरहसे हिन्दुस्तानकी अधिक सेवा कर सकता हूँ?

उस समय मैं यह देख सका कि 'यंग इंडिया' चलाते रहना मेरा स्पष्ट कर्तव्य है। अपने अंग्रेजीके ज्ञानका उपयोग मैं प्रजाके लिए कर सकता हूँ — यह मैं जानता हूँ। लेकिन मुझे और मेरे कुछ मित्रोंको ऐसा लगा कि मुझे इसके साथ-साथ गुजराती समाचारपत्र भी चलाना चाहिए। अनुकूल परिस्थितियाँ भी उपस्थित हो गईं। मैं छापाखानेका मालिक रह चुका हूँ। मैंने बहुत समयतक 'इंडियन ओपिनियन' चलाया है।[२] किन्तु मैंने अपनेको उसके सम्पादकके रूपमें प्रगट नहीं होने दिया था। सम्पादकके रूपमें जनताके समक्ष आनेका मेरा यह पहला मौका है। इसका मैंने स्वागत किया है, लेकिन मैं घबरा रहा हूँ। अपनी जवाबदारीका मुझे पूरा भान है। यह दक्षिण आफ्रिका नहीं है। वहाँ तो मेरी गाड़ी किसी तरह चल जाती थी। लेकिन यहाँ समाचारपत्रोंकी कमी नहीं है। लेखक बहुत हैं। मेरा भाषा-विषयक ज्ञान बहुत-ही कम है। तीस वर्षतक भारतसे बाहर रहनेके कारण भारतके विषयमें मेरी जानकारी, जैसा कि स्वाभाविक है, कम है। यह विनयकी भाषा नहीं बल्कि मेरी स्थितिका वास्तविक चित्रण है।

१. वाइसरायके निजी उप-सचिवने अपने ७ सितम्बरके पत्रमें गांधीजीके उपर्युक्त तारको उद्धृत करते हुए उन्हें सूचना दी थी कि तारको भारत सरकारके गृह-विभागको उचित कार्रवाईके लिए भेज दिया गया है।

२. १९०३ से १९१४ तक।

इन कठिनाइयोंके बावजूद मुझे यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि मुझे भारतको ऐसा-कुछ देना है जो औरोंके पास उतने ही प्रमाणमें नहीं है। बहुत कोशिशोंके बाद मैंने अपने जीवनमें कुछ सिद्धान्त स्थिर किये हैं और उनपर अमल भी किया है। उससे मुझे सुखकी जो अनुभूति हुई वह दूसरोंमें दिखाई नहीं दी। अनेक मित्रोंने इस बातका समर्थन किया है। भारतको अपने इन सिद्धान्तोंका परिचय देने और उसे अपने सुखकी अनुभूति करानेकी मेरे मनमें तीव्र अभिलाषा है। इसका एक साधन समाचारपत्र है।

सत्याग्रह मेरे लिए कोरी किताबी चीज नहीं है, वह तो मेरा जीवन है। मुझे सत्यके सिवा किसी और चीजमें कोई दिलचस्पी नहीं है। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि असत्यसे देशका कभी भी हित नहीं हो सकता। लेकिन कदाचित् असत्यसे तात्कालिक लाभकी उपलब्धि होती हो तो भी हमें सत्यका त्याग नहीं करना चाहिए, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है।

मैं सयाना हुआ तभीसे मैं इस सत्यकी शोधमें लगा हुआ हूँ। इसकी खोजमें चालीस वर्ष व्यतीत हो गये हैं, फिर भी मुझे मालूम है कि मैं अभीतक मन, वचन और कर्ममें पूर्ण सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाया हूँ।

उससे क्या? हम आदर्शको अपने आचरणमें जितना अधिक उतारनेका प्रयत्न करते हैं वह हमसे उतना ही दूर होता दीख पड़ता है। ऐसी स्थितिमें उसको और भी दृढ़तासे पकड़े रहनेमें ही पुरुषार्थ है। हमारे पैर लड़खड़ायेंगे, हम गिरेंगे तो भी उठेंगे। हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है कि हम पीछे न हटें अथवा पीठ न दिखायें।

इस खोजके दौरान मुझे अनेक रत्न मिले हैं। उन्हें मैं भारतके सम्मुख रखना चाहता हूँ। 'नवजीवन' उन्हें प्रकाशमें लानेका एक माध्यम है।

यह खोज करते हुए मैंने देखा कि कानूनोंका स्वेच्छापूर्वक पालन करना हमारा फर्ज है। लेकिन इस फर्जको अदा करते हुए मैंने यह भी देखा कि जब कानून असत्यका पोषण करे तब उसकी अवहेलना करना भी कर्त्तव्य है। कानूनका यह [कर्त्तव्य रूप] भंग किस तरह किया जाये? उत्तर है: सत्यका पालन करते हुए हम कानूनके भंगसे मिलनेवाले दण्डको स्वीकार कर लें। इसका नाम कानूनका सविनय भंग है। इसको कौन लोग करें, कौनसे कानून असत्यका पोषण करनेवाले होते हैं — इसका निर्णय-मात्र अमुक नियम बनाकर नहीं किया जा सकता। यह तो अनुभवसे ही सम्भव हो सकता है। और इसके लिए समय तथा साधन चाहिए। यह साधन 'नवजीवन' बने।

प्रतिकूल वातावरणमें भारी संघर्ष करते हुए भी सत्याग्रही अधिकारी-वर्गके साथ मधुर सम्बन्ध बनाये रख सके थे। क्योंकि सत्याग्रहमें रोष अथवा द्वेषको अवकाश नहीं है। सत्यकी छाप विरोधी पक्षपर पड़ती है। इसलिए उसके [विरोधी पक्षके] मनमें अविश्वास नहीं रहता। परिणामस्वरूप संघर्ष करते हुए भी दोनों पक्ष एक दूसरेके प्रति आदरकी भावना और मिठास बनाये रख सकते हैं। उदाहरणों और दलीलोंके द्वारा 'नवजीवन' बतायेगा कि भारतमें भी, अधिकारी-वर्गके साथ जहाँ मतभेद हो वहाँ, लड़ते हुए भी जिन विषयोंपर हमारा मतभेद न हो उनमें उन्हें मदद दे सकते हैं और उनसे मदद ले सकते हैं।

लेकिन सत्याग्रहकी सीमा सरकार तथा प्रजाके आपसी सम्बन्धोंमें ही समाप्त नहीं हो जाती। सामाजिक सुधारोंके लिए भी यह अमूल्य अस्त्र है। इसके द्वारा स्त्रियोंकी स्थिति, हमारे कितने ही अनिष्टकारी रिवाज, हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न, हरिजनों-सम्बन्धी कठिनाइयाँ —— ऐसी अनेक समस्याओंका हल निकाला जा सकता है। इसलिए प्रसंग आनेपर 'नवजीवन' इन सब प्रश्नोंकी चर्चा करेगा।

रौलट कानून सम्बन्धी लड़ाई सत्याग्रहका पदार्थ-पाठ है। इसलिए 'नवजीवन' प्रजाके समक्ष इस लड़ाईको निरन्तर बनाये रखेगा। यह कानून अपने समयसे पहले ही रद हो जायेगा, इस विषयमें मुझे कोई सन्देह नहीं, क्योंकि मुझे सत्यकी और सत्याग्रहियोंकी शक्तिमें पूर्ण विश्वास है।

मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि भारतकी आर्थिक दशाका पुनरुद्धार स्वदेशी द्वारा ही सम्भव है। स्वदेशीमें धर्मका मूल है। धर्मका त्याग करके कोई प्रजा उन्नत नहीं हो सकती, न कभी होगी। इस कारण 'नवजीवन' स्वदेशीका भी भारी प्रचार करेगा।

यदि कोई मुझसे यह प्रश्न पूछे कि मुझे भारतकी सेवा करनी है तो मैं अपनी आत्मा अंग्रेजी भाषामें क्यों नहीं उँडेलता, तो मैं कहना चाहूँगा कि जन्म और कर्मसे गुजराती होनेके नाते गुजरातके जीवनमें ओतप्रोत हो जानेपर ही मैं भारतकी शुद्ध सेवा कर सकता हूँ। व्यापारिक दृष्टिसे भी मैं गुजरातको ही अपना मुख्य क्षेत्र मानकर अपनी शक्तिका अच्छेसे-अच्छा उपयोग कर सकता हूँ। इसके सिवा अंग्रेजी भाषाकी मार्फत मैं अपना सन्देश किसे दूँ? अंग्रेजीका मोह मिथ्या है, यह बात तो 'नवजीवन' नित्य बताया करेगा। मेरे कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि हमारे अभ्यास-क्रम अथवा जीवनमें अंग्रेजीका कहीं कोई स्थान नहीं है। मेरा आग्रह इतना ही है कि आजकल अंग्रेजीका व्यवहार ठीक जगहपर नहीं किया जाता।

हिन्दुस्तान किसानोंकी झोपड़ियोंमें बसता है। बुनकरोंका कला-कौशल भारतकी भव्यताका स्मरण कराता है। इसीसे मैं अपनेको किसान अथवा बुनकर कहलानेमें गर्वका अनुभव करता हूँ। मुझे तो 'नवजीवन'को किसानोंकी झोपड़ियों तथा बुनकरोंके घरोंमें पहुँचाना है। मुझे उसे उनकी भाषामें ही लिखना है। इसलिए किसानों आदिके सुख-दुःखकी बातें 'नवजीवन' हमेशा उनकी भाषामें करेगा। यदि किसान भयभीत रहेंगे, कर्जके बोझ तले दबे रहेंगे, उनके शरीर रोगी होंगे तो मैं इसमें भारतका सर्वनाश ही देखता हूँ।

मैं ईश्वरसे सदा यही प्रार्थना करूँगा कि घर-घर स्त्रियाँ [भी] 'नवजीवन' पढ़ें। धर्मकी रक्षा स्त्रियाँ नहीं करेंगी तो कौन करेगा? स्त्रियाँ अज्ञान एवं मूढ़ स्थितिमें रहें, स्त्रियोंको भारतकी रक्षाका ज्ञान न हो तो आगे आनेवाली पीढ़ीका क्या हाल होगा? इससे 'नवजीवन' स्त्रियोंको जाग्रत करेगा और पुरुष-वर्गको स्त्रियोंके प्रति उनके कर्त्तव्यका भान करानेका प्रयत्न करेगा।

यह तो मैंने अपनी महत्त्वाकांक्षाओंका नमूना-भर पेश किया है। संक्षेपमें तो मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि 'नवजीवन'का संचालन इस तरह किया जायेगा जिससे राजा और प्रजामें वैरभाव मिटकर मित्रता बढ़ेगी, अविश्वासके स्थानपर विश्वास

उत्पन्न होगा, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें आन्तरिक एकता स्थापित होगी। भारतको आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी तथा हिन्दुस्तानमें प्रेमके सिवा और-कुछ दिखाई नहीं देगा। जगत् प्रेममय है। नाशमें भी उत्पत्तिके बीज हैं।

[कोई कह सकता है] ये सब लम्बी-चौड़ी बातें हैं। भले हों, फिर भी इस दिशामें किया गया प्रयत्न निष्फल नहीं होता; यह धर्मवाक्य है और मैं इसीका अनुसरण करूँगा। किन्तु कोई निराशावादी प्रश्न कर सकता है कि क्या अशिक्षित भारतको — विशेषतया समाचारपत्र सम्बन्धी जुल्मी कानूनोंके होते हुए — इस तरहका सन्देश दिया जा सकता है? हमारा उत्तर है: ऐसा व्यक्तिगत अनुभव किसे न हुआ होगा कि प्रेम अज्ञानकी लौह-शृंखलाओंको तोड़ सकता है? और फिर प्रेम — सत्य — को समाचारपत्र अधिनियम (प्रेस ऐक्ट) का क्या भय? 'नवजीवन'के व्यवस्थापकों तथा सम्पादकों आदिकी यह प्रतिज्ञा है कि इससे भयभीत हुए बिना जो बात जैसी लगेगी वह उसी रूपमें 'नवजीवन' में प्रकाशित की जायेगी। उसकी जमानत जब्त हो जाने अथवा उसके कर्मचारियोंकी स्थिति खतरेमें पड़ जानेके भयसे सत्य बात कहनेमें वह कभी नहीं हिचकिचायेगा लेकिन वह विनयका भी त्याग नहीं करेगा। 'नवजीवन'में एक भी वाक्य ऐसा नहीं होगा जिसे पूरी तरह सोच-विचारकर न लिखा गया हो; उसमें एक भी निरर्थक विशेषण नहीं होगा। असलमें देखें तो सत्यको विशेषण-रूपी शृंगारकी जरूरत नहीं होती। शुद्ध यथातथ्य वर्णनमें जो कला है वह व्यर्थके विशेषणोंसे दूषित वर्णनमें कदापि नहीं होती।

गुजरातकी माताएँ और विद्वान् 'नवजीवन'का स्वागत करें, आशीर्वाद दें तथा 'नवजीवन' उनके आशीर्वादके योग्य हो, ईश्वरसे यही मेरी प्रार्थना है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–९–१९१९

६४. खेड़ाकी कहानी

खेड़ाके सम्बन्धमें सर सी० शंकरन् नायरकी[1] टिप्पणीके उत्तरमें बम्बई सरकारने जो कहा है उसपर माननीय श्री गोकुलदास कहानदास पारेखने[2] टिप्पणी लिखकर एक और अमूल्य सेवा की है। यह टिप्पणी बहुत लम्बी है इसलिए हम [यहाँ] श्री पारेखके मुद्दोंको देकर ही सन्तोष करेंगे। सर शंकरन् नायरका यह कहना है कि जो-जो सुधार किये गये हैं तथा लोगोंको सरकारकी ओरसे जो राहतें प्राप्त हुई हैं उसका कारण शिक्षित-वर्ग है तथा उसका माध्यम कांग्रेस है। राज्याधिकारियोंने हमेशा यह दोषारोपण किया है कि शिक्षित-वर्गने रैयतकी कभी परवाह नहीं की है इसलिए उसे जनताके नेताके

१. सर सी० शंकरन् (१८५७–१९३४); मद्रास उच्च न्यायालयके न्यायाधीश; वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य।

२. सदस्य, बम्बई विधान परिषद्।

रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस आरोपके उत्तरमें सर शंकरन् नायरने चम्पारन[1] और खेड़ाकी[2] लड़ाईके दो अत्यन्त उपयुक्त उदाहरण दिये हैं; और सिद्ध कर दिया है कि दोनों स्थानोंपर रैयतके अधिकारोंकी रक्षा करनेवाला शिक्षित-वर्ग ही था तथा [इन दोनों मामलोंमें] अधिकारियोंसे बड़ी ही मुश्किलसे न्याय प्राप्त किया जा सका। इसमें खेड़ाके सम्बन्धमें जवाब देते हुए बम्बई सरकारने लिखा है कि सरकारने वहाँ जो राहत दी थी वह अपनी ओरसे ही दी थी और इस बातको सिद्ध करनेके लिए सरकारने कुछ दलीलें भी दी हैं। माननीय श्री पारेखकी यह टिप्पणी उसीके उत्तरमें है। अब पाठक उनकी टिप्पणीके नीचे लिखे सारको समझ सकेंगे।

(१) पंचमहालके अतिरिक्त गुजरातके सब जिलोंमें लगानके आँकड़े अपनी उच्चतम सीमापर पहुँच गये हैं, अर्थात् सरकार प्रतिवर्षकी औसत उपजका बीस प्रतिशत ले लेती है।

(२) सन् १९०७से पहले सरकार फसल खराब होनेपर भी रैयतको लगानमें बिलकुल माफी नहीं देती थी और न उसे मुल्तवी करती थी। अकालसे सम्बन्धित दो आयोगोंमें अन्तिम अर्थात् १९०१ के आयोगके बाद ही सरकारने लगान मुल्तवी रखने और माफी देनेके नियम निर्धारित किये। इतना न्याय भी लोगों द्वारा आन्दोलन किये जानेपर ही मिल सका।

(३) १८९९में जब अकाल पड़ा था तब भड़ौच और सूरत जिलोंमें अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारोंके विरुद्ध बहुत शिकायतें की गई थीं। बम्बई विधान मण्डलके सदस्योंने विधान सभामें भी यह सवाल उठाया था। सरकारने शिकायतोंको गलत बताया। अन्तमें शिकायत करनेवाले व्यक्तियोंमें से एक सज्जनने इन जिलोंका दौरा किया, उन्होंने निजी तौरपर इन शिकायतोंकी जाँच की तथा गवाहियाँ इकट्ठी करके उन्हें प्रकाशित किया। उससे सरकारको जाँच करवानेके लिए विवश होना पड़ा। श्री मैकॉनिकीको जाँच करनेके लिए नियुक्त किया गया और उन्हें बहुत-सी शिकायतें उचित मालूम हुई। अन्ततः सरकारको १९०७ में लगान माफ और मुल्तवी करनेके सम्बन्धमें नियम बनाने पड़े।

(४) बम्बई सरकारने यह कहा है कि खेड़ा आन्दोलन शुरू होनेसे पहलेके वर्षोंमें वहाँ ऐसी कोई बात दिखाई नहीं दी जिससे पता चले कि फसलोंको नुकसान पहुँचा है। सरकारी रिपोर्टोंमें से उदाहरण देते हुए माननीय श्री पारेखने बताया है कि १९११से लेकर १९१६ तक लगातार खेड़ा जिलेके किसान कम या ज्यादा नुकसान उठाते रहे हैं। और फिर उन्हीं रिपोर्टोंके आधारपर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि सरकारको लगानकी वसूलीके लिए लोगोंके ढोर-डंगर बेचने आदि दमनकारी उपायोंका अधिकाधिक सहारा लेना पड़ा है।

(५) खेड़ा जिलेके लोगोंको न केवल फसल अच्छी न आनेसे होनेवाला नुकसान उठाना पड़ा बल्कि वहाँके किसानोंको प्लेग आदि रोगोंका प्रकोप भी सहना पड़ा।

१. देखिए खण्ड १३।
२. देखिए खण्ड १४।

(६) १९१७में अतिवृष्टिके कारण बाजरेकी फसल नष्ट हो गई, बावटा और कोदोंको भी नुकसान पहुँचा। इन मुख्य फसलोंके साथकी गौण फसलोंको और कहीं-कहीं धानको भी चूहोंसे हानि पहुँची थी।

(७) इससे माननीय श्री पारेखने यह सिद्ध कर दिखाया है कि ऊपरसे लेकर नीचेतक लगान वसूल करनेवाला कोई अधिकारी रैयतके कष्टोंकी परवाह नहीं करता। रैयतको चाहे कर्ज लेना पड़े अथवा अपने मवेशी बेचने पड़े तो भी वह लगानकी वसूली करनेसे नहीं चूकता।

(८) फसलकी आनावारी निश्चित करनेके लिए कोई नियम नहीं, सिर्फ अन्दाज-भर ही लगाया जाता है।

(९) होमरूल लीगके सदस्य सरकारको प्रजाके सेवकके रूपमें देखने लगे, जिससे अधिकारीगण उनपर नाराज हो उठे और उन्होंने इस नाराजगीको खेड़ाकी प्रजाके वास्तविक कष्टोंके बारेमें यह कहकर उतारा कि इन कष्टोंको तो बाहरसे आये लोग बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहे हैं।

(१०) सरकारी नोटमें यह कहा गया है कि श्री पारेख और श्री पटेल मानो वकीलकी हैसियतसे कलक्टरके पास गये थे यद्यपि हकीकत यह है कि ये दोनों खेड़ाके निवासी होनेके कारण, बिना-किसी फीसके जनताके दुःखमें हिस्सा लेनेके लिए उसके प्रतिनिधिके रूपमें गये थे।

(११) सरकारने गुजरात सभापर[१] जो आरोप लगाये थे वे अनुचित थे। सभाके सदस्य प्रतिष्ठित सज्जन हैं और उन्हें खेड़ामें काम करनेका पूरा अधिकार है। सारा गुजरात उस सभाका कार्यक्षेत्र है।

(१२) सरकार जब-जब लगान मुल्तवी करनेका आदेश देती है तब-तब वह [जनतापर] मेहरबानी करती है यह खयाल गलत है। लगान मुल्तवी करनेके सिद्धान्तको केन्द्रीय सरकारने स्वीकार किया है। उसी सिद्धान्तके अनुसार नियम बनाये गये हैं और अधिकारी मनमाने ढंगसे इन नियमोंका अनादर नहीं कर सकते।

(१३) माननीय श्री पारेख और श्री पटेल[२], भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) और श्री गांधी द्वारा जाँच किये जानेके बाद बम्बई सरकारके लिए जाँच समिति नियुक्त करना जरूरी हो गया था, लेकिन उसने वैसा नहीं किया। यह उसका अन्याय ही माना जायेगा; और यदि भारत सरकार हस्तक्षेप न करती तो खेड़ाकी रैयतको जो-कुछ राहत मिली है वह भी न मिलती।

इस तरह श्री पारेखने ठोस उदाहरण और दलीलें देकर सर शंकरन् नायरकी रिपोर्टका समर्थन किया है और बम्बई सरकारकी पोल खोल दी है। आश्चर्य तो यह है कि सरकार अपने पक्षके बहुत कमजोर होनेके बावजूद उससे चिपटे रहनेका प्रयत्न कर रही है। 'रस्सी जल गई लेकिन बल न गये' इस सिद्धान्तके अनुसार सरकार

१. देखिए खण्ड १४।
२. देखिए खण्ड १५।

भी भूल करनेके बाद उसे स्वीकार करनेको तैयार नहीं है और इस तरह व्यर्थ ही राजा और प्रजाके बीचके भेदको बढ़ाती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–९–१९१९

६५. नडियाद और बारेजडीपर जुर्माना

नडियादके पाटीदार तथा वणिकों और बारेजडीके जमीदारोंपर संकट आ पड़ा है। सरकारकी ओरसे एक प्रस्ताव प्रकाशित हुआ है जिसमें आदेश दिया गया है कि जिला पुलिस अधिनियमके खण्ड २५के अन्तर्गत नडियाद और बारेजडीमें एक सालतक अतिरिक्त पुलिस रखी जाये तथा नडियादकी अतिरिक्त पुलिसका खर्च नडियादके पाटीदारों तथा वणिकोंसे लिया जाये और बारेजडीकी अतिरिक्त पुलिसका खर्च वहाँके और नांदेजके जमीदारोंसे। सरकारने नडियादमें १५,५५६ रुपयेके खर्चका अनुमान लगाया है और बारेजडीका ५,०२८ रु० आँका है। सामान्यतया यह नियम है, जिस व्यक्तिपर जुर्माना किया जाना हो उसे पूर्व सूचना दी जानी चाहिए और उसे जुर्माना देनेके अनौचित्यको प्रमाणित करनेका अवसर दिया जाना चाहिए। इससे भी सुन्दर न्याय तो यह है कि अभियुक्तपर विधिपूर्वक मुकदमा चलाकर निर्देश प्राप्त करना चाहिए। लेकिन सरकारने इन दोनोंमें से कुछ भी नहीं किया है। अभियुक्तोंकी कोई भी पूर्व-जाँच किये बिना उनपर जुर्माना किये जानेका आदेश-भर दे दिया है। नडियादकी नगरपालिकाकी मार्फत यह जुर्माना वसूल किये जानेके सम्बन्धमें सरकारने नगरपालिकाको जो कागजात भेजे हैं उन्हींसे जुर्माना लागू किये जानेकी इस हकीकतका पता चला है।

आइये अब हम इस दण्डकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विचार करें। उसका मूल पुलिस विभागके इन्स्पेक्टर-जनरल श्री रॉबर्ट्सनके ७ जूनके पत्रमें तथा खेड़ाके जिला कलक्टर श्री केरके १६ और २६ मईके पत्रोंमें निहित है। इससे पहले २१ अप्रैलको नडियाद नगरपालिकाके प्रमुख श्री गोकुलदास तलाटीको लिखे पत्रमें श्री केर नडियादकी जनताको शान्ति बनाये रखनेकी खातिर निम्नलिखित शब्दोंमें बधाई देते हैं—"मैं सम्मानपूर्वक कहना चाहता हूँ कि चिन्ता और उत्तेजनाके वातावरणमें—जिससे सौभाग्यवश अब हम निकल आये हैं—नडियादवासियोंने जिस सुचारु ढंगसे शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखी वह सचमुच सराहनीय है। उन नेताओंको विशेष रूपसे धन्यवाद दिया जाना चाहिए जिन्होंने परिस्थितिको सँभाले रखनेके लिए अपने प्रभावका उपयोग किया।"[1] हम मान सकते हैं चूँकि कलक्टर महोदयने अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिए श्री गोकुलदासको अपना माध्यम बनाया, इससे वे भी उन व्यक्तियोंमें आ जाते हैं

१. देखिए "दूसरे पक्षकी भी बात सुनिए", ३०–८–१९१९। यहाँ प्रस्तुत तथा अन्य उद्धृत अंशोंका अनुवाद गुजरातीसे किया गया है।

जिन्हें धन्यवाद दिया गया है। लेकिन १६ मईको हवाका रुख बदल गया। २१ अप्रैल और १६ मईके दरमियान कलक्टर महोदय श्री रॉबर्ट्सन तथा उत्तर विभागके कमिश्नर श्री प्रैटके बीच सलाह-मशविरा हो चुका था। श्री रॉबर्ट्सनकी माँगपर कलक्टर महोदयने, कितनी अतिरिक्त पुलिस चाहिए, इसके आँकड़े पेश किये और २६ मईको इन्होंने कमिश्नर महोदयको एक लम्बा पत्र लिखा और उसमें सुझाव दिया कि अतिरिक्त पुलिसका खर्च नडियादके पाटीदारों और वणिकोंसे लिया जाये। ये महोदय अनुच्छेद २ में जिस नियमको स्वीकार करते हैं, अनुच्छेद ३ में उसका उल्लंघन करते हैं। दूसरे अनुच्छेदमें कहते हैं:

> **विशेष अदालतमें सब अपराधोंके सम्बन्धमें मुकदमे चलाये जा रहे हैं और सम्भव है कि इन मुकदमोंके परिणामोंका हमारे निर्णयपर असर हो। इसलिए मैं ऐसी किसी भी बातका विरोध करता हूँ जिससे यह प्रतीत हो कि हमने निर्णयपर पहुँचनेमें उतावली दिखाई है।**

तथापि तीसरे अनुच्छेदमें ये महोदय बताते हैं कि नडियादपर जुर्माना किये जानेकी बात तो निश्चित की जा चुकी है। नडियादके मुकदमे २६ मईतक खत्म नहीं हो गये थे। उनकी सुनवाई तक भी नहीं हुई थी। अदालतने नडियादके मुकदमेका निर्णय १२ अगस्तको दिया। इसके बावजूद नडियादपर जुर्माना करनेका निश्चय १६ मईको हो गया। इन्होंने अपने पत्रके चौथे अनुच्छेदमें यह जुर्माना लागू किये जानेके पाँच कारण बताये हैं:

> **(१) इसमें बिलकुल सन्देह नहीं कि नडियादके लोगोंने ही रेलकी पटरी उखाड़ी थी। उनमें अधिकांश पाटीदार हैं।**
>
> **(२) कुछ समयसे नडियादके लोग सरकारके विरुद्ध लगातार जो आन्दोलन चला रहे हैं उससे यह अपराध अच्छी तरह प्रमाणित हो जाता है। गत वर्ष सत्याग्रह आन्दोलनके दौरान श्री गांधीका सदर मुकाम नडियादमें था। इस आन्दोलनसे लोगोंके मनमें सरकार एवं अधिकारियोंके प्रति आदर कम हुआ।**
>
> **(३) खेड़ा जिलेके पाटीदार वणिकोंको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं; उन्हें गुमाश्तों-जैसा मानते हैं। लेकिन वणिकोंने लगानके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया और पाटीदारोंने स्वार्थके वशीभूत होकर उसे अपना लिया और जब आन्दोलनने उग्र रूप धारण किया तब असली हिस्सा, जैसा कि स्वाभाविक था, साहसिक पाटीदारोंने लिया और वणिक पीछे रह गये। श्री गांधी, श्री गोकुलदास तलाटी तथा श्री फूलचन्द शाह वणिक हैं।**
>
> **(४) मैंने नडियादके लोगोंको नडियादमें जिन व्यक्तियों द्वारा अपराध किये गये थे उन्हें पकड़नेमें मदद देकर दूसरोंको मुक्त करवानेमें मदद देनेका अवसर प्रदान किया था लेकिन उन्होंने ५०० रुपयेका मामूली-सा इनाम घोषित करनेके सिवा और कुछ नहीं किया। नडियादके किसी भी नेताने मुझे कोई महत्त्वपूर्ण खबर नहीं दी। इससे सिद्ध होता है कि उन्हें जो अवसर दिया गया था उसका**

उन्होंने लाभ नहीं उठाया और उनपर जो जिम्मेदारी थी उससे मुक्त होनेके लिए उन्होंने कुछ भी नहीं किया।

(५) दो कारणोंसे वणिकोंको विशेष रूपसे उत्तरदायी माना जा सकता है; क्योंकि उन्होंने सरकारके विरुद्ध लोगोंको उकसाया तथा अपनी दुकानें बन्द करके —— वे मुख्यतः व्यापारी हैं —— खलबली मचाई और उपद्रवकारियोंको उत्तेजित किया। नडियादमें पहली हड़ताल छः अप्रैलको बिना-किसी कारणके की गई और इस तरह ११ तारीखको जो दंगे हुए उनके लिए रास्ता तैयार हुआ।

उपर्युक्त कारणोंसे एक बात स्पष्ट रूपसे सामने आ जाती है और वह यह कि नडियादके लोगोंने श्री गांधीको अपने यहाँ बुलाकर तथा नडियादको सत्याग्रहका सदर मुकाम बनने देकर भारी अपराध किया। पहले कारणमें तो कलक्टर महोदयने न्याया-धीश बननेकी अनधिकार चेष्टा की है; जिस अदालतको नडियादके मुकदमे सौंपे गये थे उसके द्वारा निर्णय किये जानेसे पूर्व उन्होंने स्वयं नडियादके लोगोंको और उनमें भी मुख्यतः पाटीदारोंको अपराधी करार दिया, लेकिन यह तो उनके पत्रके दूसरे अनुच्छेदके अनुसार दण्ड देनेके लिए पर्याप्त कारण नहीं माने जा सकते। तीसरा कारण विशेष रूपसे पाटीदारों और वणिकोंको बलिका बकरा बनानेके निमित्त दिया गया है। [लेकिन] यदि पाटीदार सिर्फ वणिकों द्वारा ही बहकाए गये हों तो सारी सजा वणिकोंको ही दी जानी चाहिए। हकीकत तो यह है कि लगानके प्रश्नका अथवा राजनैतिक हल-चलका सम्बन्ध एक ही समुदायसे न था बल्कि इसमें सारे समुदायोंका हाथ था।

हड़तालमें समस्त भारतके हिन्दू व मुसलमानोंने एक समान भाग लिया, यह हम देख सकते हैं। श्री गांधीने 'यंग इंडिया'के अपने एक लेखमें स्पष्ट कर दिया है कि उन्होंने इस लड़ाईमें अथवा इस किस्मकी अन्य लड़ाइयोंमें एक वणिकके रूपमें भाग नहीं लिया है। श्री गोकुलदास तलाटी वणिक हैं इस बातका पता भी उन्हें श्री केरके पत्रसे ही चला और एक मास पूर्व ही उन्हें श्री फूलचन्दके वणिक होनेकी बात मालूम हुई। वणिकों और पाटीदारोंको दोषी ठहराकर कलक्टर महोदयने अपने, वणिकों और पाटीदारोंके प्रति अन्याय किया है। हमारा विश्वास है कि वणिकों और पाटीदारोंपर जो जुर्माना किया गया है उससे दूसरी जातियोंके लोगोंने प्रसन्न होनेके बजाय अपनेको अपमानित ही महसूस किया होगा। क्योंकि सार्वजनिक कार्यमें जितना भाग वणिकों और पाटीदारोंने लिया उससे कुछ कम दूसरी कौमोंने नहीं लिया; तो फिर ये लोग जिन्होंने सचमुच उसमें उतना ही भाग लिया है, ऐसा आरोप कैसे सहन कर सकते हैं? अन्तमें इस कारणपर विचार करते हुए हमें इतना तो कहना ही चाहिए कि यदि नडियादके अपराधका कारण श्री गांधी द्वारा चलाया हुआ आन्दोलन ही है तो १५,००० रुपयेके जुर्माने तथा अन्य सजाओंके एकमात्र अधिकारी वे ही हैं। कलकत्ताके प्रसिद्ध दैनिक 'इंग्लिशमैन'ने, श्री हॉर्निमैनके देशनिकाले के समय टीका करते हुए ऐसे ही उद्गार प्रकट किये थे और वे ठीक थे। कलक्टर महोदयने जो चौथा कारण दिया है वह उनकी न्यायदृष्टिका परिचायक है। इसका अर्थ तो यह हुआ

कि नडियादके लोग गुप्तचरका काम नहीं कर सके इसलिए वे उत्तरदायी ठहराये गये। और इस न्यायसे तो जहाँ-जहाँ अपराध हो वहाँ-वहाँ यदि अपराधी पकड़ा न जा सके अथवा पकड़नेके बाद वह भाग निकले और अपराधीको पकड़नेमें लोगोंने मदद न की हो अथवा करनेपर भी उनके प्रयत्न निष्फल हो गये हों तो उस स्थानके लोगोंको जुर्माना भरना चाहिए। पाँचवाँ कारण वणिकोंकी जवाबदेही सिद्ध करनेके लिए दिया गया है। उसका एक भाग तीसरे कारणमें आ जाता है और दूसरा भाग यह है कि वणिकोंने अकारण दुकानें बन्द कर दीं, इसलिए दूसरोंको भी विवश होकर अपनी दुकानें बन्द करनी पड़ीं। ये दोनों ही बातें गलत हैं। यह तो सर्वविदित है कि दुकानें बन्द करनेमें सारे भारतवर्षके लोगोंका एक समान भाग था। दुकानें बिना कारण बन्द की गईं — ऐसा कहनेमें तो कलक्टर महोदय बिलकुल भटक गये हैं; क्योंकि श्री गांधीके सुझावके अनुसार सत्याग्रह आरम्भ किये जानेके चिह्नस्वरूप जगह-जगह दुकानें बन्द कर दी गई थीं और उपवास रखा गया था। इसके अलावा कलक्टर महोदय यह सर्वथा भूल गये जान पड़ते हैं कि ६ और ११ अप्रैलके बीच सरकारने स्वयं एक गम्भीर भूल की — ऐसी भूल जो अगर न की गई होती तो १० से १५ तारीख[1]-तक भारतमें जो खलबली मची वह कभी न मचती। श्री गांधी जब शान्ति बनाये रखनेमें सरकारको मदद देने जा रहे थे उस समय उन्हें गिरफ्तार करनेका सरकारके पास कोई कारण नहीं था। इसके बावजूद उन्हें गिरफ्तार किया गया; इसे जनता सहन नहीं कर सकी। फलस्वरूप स्थान-स्थानपर हड़तालें की गईं तथा ज्यादतियाँ भी हुईं। सरकार द्वारा की गई कार्रवाइयोंकी जाँचके लिए तो कोई अदालत होती नहीं तथापि कलक्टर महोदय अपना अभिप्राय तो बता सकते थे; वह न बताकर उन्होंने अपने जिलेके लोगोंका बचाव करनेके बदले उनके साथ अन्याय किया है।

अब यही विचार करना बाकी रह गया है कि [उपर्युक्त परिस्थितियोंमें] नडियाद और बारेजडीके लोगोंको क्या करना चाहिए। हमें तो दोनों स्थानोंमें से एक भी स्थानपर अतिरिक्त पुलिस रखनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इन दोनों स्थानोंपर अथवा दूसरी जगहोंपर लोगोंकी ओरसे जो ज्यादतियाँ हुईं उनकी जितनी निन्दा की जाये कम है। ज्यादतियाँ करके लोगोंने सिर्फ अपने पागलपनका ही प्रदर्शन किया। जनताको फायदा होनेके बदले नुकसान हुआ। जनताका पैसा व्यर्थ फूँक दिया गया, उसपर जुर्माना हुआ और सत्याग्रहके नामको बट्टा लगा। और जो रौलट अधिनियम तुरन्त खत्म हो सकता था उसे रद करवानेके लिए अब और अधिक प्रयत्न करना होगा। इसके अतिरिक्त नडियादमें अपराधियोंका पता नहीं चल सका, यह भी हमारे लिए शर्मकी बात है। पंजाबमें जिस तरह सरकारकी ओरसे अन्याय किया गया — उसी तरह नडियादमें हमने अन्याय किया है — यह स्वीकार करना एक बात है और अन्यायपूर्वक दी गई सजाको भुगतना यह बिलकुल जुदी बात है। यह नियम कि जिसका अपराध सिद्ध न हो सका हो उसे सजा नहीं दी जानी चाहिए, अखंडित रहना चाहिए। इस नियमके पालनमें राजा और प्रजाका स्वार्थ एवं हित दोनों ही

१. पंजाब, अहमदाबाद, नडियाद तथा बम्बईमें जो व्यापक उपद्रव हुए थे यहाँ उन्हींसे तात्पर्य है।

समाये हुए हैं। अंग्रेजी कानूनकी पुस्तकोंमें हमें स्थान-स्थानपर न्यायाधीशोंका यह कथन उद्धृत मिलता है कि एक भी निर्दोष व्यक्ति मारा जाये इससे कहीं अधिक अच्छा तो यह होगा कि सौ अपराधी छूट जायें। यह सत्य है। हमें इस सिद्धान्तपर दृढ़ रहना चाहिए। इसलिए नडियादवासियोंको हमारी आग्रहपूर्ण सलाह है कि उन्हें उपर्युक्त दण्डसे छूटनेके लिए सतत प्रयास करना चाहिए तथा स्थितिकी सही जानकारी देनेवाले आवेदनपत्र तैयार करके सरकारको भेजने चाहिए। बारेजडीके लिए अलग दलीलकी जरूरत नहीं है। नडियादकी अपेक्षा उसका मामला कहीं-ज्यादा मजबूत कहा जा सकता है। बारेजडीके जमींदार यदि बारेजडी स्टेशनपर हुई घटनाओंके लिए उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं तो फिर उन्हें वीरमगाँव तथा अहमदाबादके स्टेशनोंपर हुई घटनाओंके लिए जिम्मेदार क्यों नहीं माना जा सकता? जबतक स्टेशनपर हुई घटनाओंसे जमींदारोंका कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो जाता तबतक उन्हें कदापि उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। उन्हें भी आवेदनपत्र देने चाहिए। हम आशा करते हैं कि गुजरातके अन्य स्थानोंके लोग इन दोनों स्थानोंके लोगोंकी पूरी-पूरी मदद करेंगे। इसके साथ ही हम सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि उसने नडियाद और बारेजडीके लिए जो अनुचित हुक्म जारी किया है उसे वापस ले ले।

[गुजरातीसे [

नवजीवन, ७–९–१९१९

६६. पंजाबकी स्थिति

गरजनेवाले बादल आखिर बरसे ही। जिस पंजाब आयोगके नियुक्त किये जानेकी बात चल रही थी, वह नियुक्त किया जा चुका है। इस आयोगमें लॉर्ड हंटर, श्री रैनकिन, श्री राइस, सर चिमनलाल सीतलवाड, साहबजादा सुलतान अहमद तथा सर जॉर्ज बैरोकी नियुक्ति हुई है। यह आयोग अप्रैलमें पंजाब, बम्बई आदिमें जो घटनाएँ हुईं उनके कारणोंको तथा उस सम्बन्धमें सरकारने जो कदम उठाये उनकी भी जाँच करेगा तथा उनपर अपनी राय देगा। आयोग अगले महीनेसे अपनी बैठकें आरम्भ करेगा। यह बात, माननीय वाइसराय महोदयने विधान परिषद्का उद्घाटन करते समय जो भाषण दिया था, उससे प्रकट होती है। लॉर्ड हंटर सन् १९१०–११में स्कॉटलैंडके महान्यायवादी (सॉलिसिटर) जनरल थे। श्री रैंकिन कलकत्ता उच्च-न्यायालयके न्यायाधीश हैं। सर चिमनलाल सीतलवाडसे सब गुजराती परिचित हैं। साहबजादा सुलतान अहमद, इंडिया कौंसिलके सदस्य साहबजादा आफताब अहमदखाँके भाई हैं। उन्होंने ग्वालियर राज्यके न्याय विभागमें एक लम्बे अर्सेतक नौकरी की है। श्री राइस वरिष्ठ सरकारी नौकर हैं तथा बर्मामें कुछ वर्षोंतक मुख्य सचिव रहे हैं। सर जॉर्ज बैरो मेजर जनरल हैं। इस प्रकार आयोगमें हर विभागके व्यक्ति नियुक्त किये गये हैं और यह कहा जा सकता है कि [आयोगके संगठनमें] सन्तुलन ठीक है। सदस्य स्वतन्त्र

सिद्ध होंगे अथवा नहीं यह तो अनुभवसे ही मालूम होगा। सर चिमनलाल सीतलवाड स्वर्गीय सर फीरोजशाह[1]-जैसे होशियार नेताके शिष्य एवं मित्र हैं, इसलिए ये महोदय निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र रहेंगे, ऐसा हम मान सकते हैं। साहबजादा सुलतान अहमदके सम्बन्धमें हमें बहुत-थोड़ी जानकारी हैं। यही बात दूसरे सदस्योंपर भी लागू होती है। लॉर्ड हंटर बाहरके वातावरणसे आये हैं इसलिए हम आशा रख सकते हैं कि ये महोदय दृढ़ता एवं तटस्थताके गुणोंका — जो एक अध्यक्षमें होने ही चाहिए — परिचय देंगे। समिति अपना काम मुख्यतः प्रकट रूपसे करेगी और यह न्याय-प्राप्तिका एक बड़ा साधन माना जा सकता है। न्याय मिलेगा अथवा नहीं इसका मुख्य आधार तो अन्ततः हमारे ऊपर ही रहेगा। यदि प्रत्येक स्थानसे अनुभवी व्यक्तियोंकी गवाहियाँ मिलें तो इसमें सन्देह नहीं कि आयोगके सदस्य न्यायके अलावा और कुछ कर ही नहीं सकेंगे। जो व्यक्ति हकीकत जानता हो यदि वह निर्भयतापूर्वक उसकी गवाही देगा तो हमारा विश्वास है कि पंजाबमें जो घोर अन्याय किया गया है वह पूरी तरह जनताके समक्ष प्रकट हो जायेगा। वाइसरायके प्रकाशित भाषणसे ऐसा अर्थ तो निकलता है कि आयोगकी नियुक्तिकी शर्तोंके अनुसार जो सजाएँ दी जा चुकी हैं उनकी फिरसे जाँच हो सकेगी। लेकिन यह बात तो बादमें ही अच्छी तरहसे स्पष्ट हो सकेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–९–१९१९

६७. दुःखी पंजाब

एक ओर पंजाबसे वहाँ एकके-बाद-एक अनेक मामलोंमें किये गए अन्यायके समाचार मिलते रहते हैं तो दूसरी ओर हमें स्वामी श्रद्धानन्दजीकी[2] मार्फत लोगोंके दुःखकी गाथा सुननेको मिलती है। करमचन्द नामक एक युवक विद्यार्थीको फाँसीकी सजा दी गई थी, लेकिन जैसा कि इस युवकके मामलेके प्रकाशित विवरणका विश्लेषण करके श्री गांधीने सिद्ध किया है, यह सजा बिना-किसी सबूतके दी गई थी। सौभाग्यसे इस युवकको फाँसीपर नहीं लटकाया गया; और अब उसे एक वर्ष कैदकी सजा ही दी गई है। लेकिन ऐसे मामलोंमें सजाका कम किया जाना न्यायका सूचक नहीं माना जा सकता। जहाँ अपराध किया ही नहीं गया, जहाँ निरपराध व्यक्तिको दोषी ठहराया गया है वहाँ सजामें कटौती करके कृपाभाव दरसाना ठीक वैसा ही है जैसे किसीकी सम्पत्ति छीन लेना और फिरसे उसे थोड़ा-सा हिस्सा वापस देकर मेहरबानी जताना। जनता अथवा जो निर्दोष व्यक्ति इस समय सजा भुगत रहे हैं वे मेहर-

१. फीरोजशाह मेहता।

२. महात्मा मुन्शीराम (१८५६–१९२६); गुरुकुल काँगड़ीके संस्थापक और आर्यसमाजके प्रमुख नेता।

बानी नहीं न्याय माँगते हैं। उनके विरुद्ध जो आरोप लगाये गये हैं यदि उन्होंने सच-मुच वे अपराध किये हैं तो हमें दया माँगनेका कोई अधिकार नहीं है और ऐसे मामलों-में सरकारपर मेहरबानी करनेकी कोई जवाबदारी नहीं है। डॉक्टर सत्यपालका ही उदाहरण लें। इनके पिताने श्री गांधीको जो पत्र लिखा है, उसमें दी गई हकीकत इतनी दुःखद है कि उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। डॉ० सत्यपालने लड़ाईके समय सरकारकी खूब सेवा भी की है। जिस समय षड्यंत्र रचे जानेकी बात कही गई है उस समय डॉ० सैफुद्दीन किचलू और डॉ० सत्यपालको भाषण देनेकी भी मनाही थी। इसके अतिरिक्त डॉ० सत्यपाल तो उस समय, अर्थात् ३० मार्चको जब साजिश की गई कही जाती है, वहाँ उपस्थित भी नहीं थे। उनके गिरफ्तार किये जानेसे पूर्व अमृतसरमें किसी तरहकी खून-खराबीकी घटनाएँ नहीं हुई थीं। डॉ० सत्यपालके भाषणोंकी जो रिपोर्ट न्यायालयमें पेश की गई थी, वह भी झूठी थी। इस तरह बिना-किसी ठोस प्रमाणके योग्य नेताओंको सजायें दी गई हैं। ऐसी स्थितिमें स्वतंत्र जाँचके सिवाय और किसी चीजसे प्रजाको सन्तोष अथवा न्याय मिल ही नहीं सकता। जनता ऐसे अन्यायोंको सहन नहीं कर सकती। हमें उम्मीद है कि सरकार समय रहते जाँच करनेवाली समितिको नियुक्त करके लोगोंमें व्याप्त अशान्तिको दूर करेगी।

ऐसा हो जाये तो भी जिनके प्रियजन फाँसीपर लटका दिये गये या जेल भुगत रहे हैं उनके कष्ट-निवारणकी आवश्यकता बनी रहेगी। स्वयंसेवकोंकी मददसे संन्यासी स्वामी [श्रद्धानन्द] दुःखी परिवारोंके दुःखमें हिस्सा बँटा रहे हैं। उसमें पैसेकी बहुत आवश्यकता है। कलकत्ता तथा बम्बईसे एक-एक लाख रुपयेके वचन मिल चुके हैं। स्वामीजीकी धारणाके अनुसार अभी और पैसेकी जरूरत पड़ेगी। उनके द्वारा दिये गये हिसाबको समाचारपत्रोंमें प्रकाशित किया जा चुका है। हमें आशा है कि सब गुजराती इस पुण्य कार्यमें यथाशक्ति भाग लेंगे। हमें विश्वास है, जिससे जितना बन सकेगा वह उतना देगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–९–१९१९

६८. टर्की

टर्कीके प्रश्नका सम्बन्ध भारतके आठ करोड़ मुसलमानोंसे है और जो प्रश्न जनताके चौथाई भागपर लागू होता है वह समस्त हिन्दुस्तानका ही है। जनताके चौथे अंगको चोट पहुँचे और सारी जनतापर उसका असर न हो, यह असम्भव है। यदि ऐसी चोटका असर न हो तो हम एक राष्ट्र नहीं कहे जा सकते, हम एक शरीर नहीं हो सकते। इसलिए हिन्दू व मुसलमान सबका समान रूपसे यह फर्ज है कि वे टर्कीके प्रश्नकी मुख्य-मुख्य बातोंको जान लें। अगस्त १९१४ में जब लड़ाई शुरू हुई उस समय टर्कीकी जो स्थिति थी वही आज भी होनी चाहिए, यह टर्कीकी माँग है, हिन्दुस्तानमें बसनेवाले मुसलमान भाइयोंकी माँग है तथा यह माँग इंग्लैंडमें रहनेवाले प्रमुख मुसलमान

भाइयोंने भी जोरदार शब्दोंमें की है। उन्होंने प्रधानमंत्री श्री लॉयड जॉर्जके शब्दोंको उद्धृत करते हुए बताया है कि उन्होंने भी [मुसलमानोंकी] इस भावनाको स्वीकार किया था। राष्ट्रपति विल्सनने भी ऐसे ही उद्‌गार प्रकट किये थे। उनके चौदह सिद्धान्तों तथा पाँच मुद्दोंमें भी यही बात आई है। युद्धमें सम्मिलित हुए दूसरे राष्ट्रोंके अधिकारोंकी बहुत हदतक रक्षा की गई है। तब टर्कीका ही क्या दोष? अभी तक इस प्रश्नका निपटारा नहीं हुआ है और ब्रिटिश समाचारपत्रोंसे ऐसी ध्वनि निकल रही है कि जिससे सारे मुसलमान शंकित हो उठे हैं। उन्हें डर है कि टर्की अर्थात सारी मुस्लिम दुनियाको, मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे न्याय नहीं मिलेगा और टर्की-साम्राज्यका विभाजन हो जायेगा।

यह प्रश्न मामूली नहीं है। टर्की साम्राज्य [के प्रश्न] के साथ इस्लामका गम्भीर सवाल खड़ा हुआ है। इस्लाम दीन और दुनियावीका भेद नहीं करता। टर्कीके सुल्तान स्वयं इस्लामके आदरणीय खलीफा हैं और यदि सल्तनत चली जाये तो इस्लाम धर्मके अनुसार खलीफाका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता; 'कुरान' की आयतें ऐसी कड़ी हैं। इसलिए सारी मुसलमान जनताके लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धार्मिक प्रश्न बन गया है।

महाराज बीकानेरने बम्बईमें कदम रखते ही कहा है कि श्री मॉण्टेग्यु तथा लॉर्ड सिन्हा आदि इस प्रश्नपर पूरा-पूरा ध्यान दे रहे हैं। कहा जाता है कि लॉर्ड चैम्स-फोर्ड भी श्री लॉयड जॉर्जसे जोरदार लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। लेकिन केवल जोरदार लिखा-पढ़ीसे ही कार्य सध जायेगा, सो बात नहीं। हमारी मान्यता है, कि श्री मॉण्टेग्यु तथा लॉर्ड चैम्सफोर्डका यह कर्त्तव्य है कि या तो वे मुसलमान भाइयोंको वह न्याय दिलवायें जिसे पानेका उन्हें हक है; या अन्यायके विरुद्ध अपनी आवाज उठानेके विरोधस्वरूप भारत-मंत्री तथा सम्राट्के प्रतिनिधिके अपने ओहदोंको छोड़ दें।

मुसलमानोंका कर्त्तव्य है कि वे अपना मामला शान्तिपूर्वक लेकिन दृढ़तासे समस्त संसारके सम्मुख रखें और बिना झुके उसपर डटे रहें। उसमें अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए और न ही ऐसी कोई बात होनी चाहिए जिससे लगे कि इसमें कमी-बेशी की जा सकती है। उन्हें उसी वस्तुकी माँग करनी चाहिए जिसके बिना यह कहा जा सके, सिद्ध किया जा सके कि इस्लामी जीवन-पद्धति व्यर्थ हो जाती है। जहाँ नीति अर्थात् धर्मका प्रश्न है, जहाँ अन्तरके गहरे भावावेगोंकी बात है, वहाँ समझौतेकी, सौदेबाजी करनेकी अथवा खींचतान करनेकी गुंजाइश नहीं है। सत्य एक ही होता है और अन्ततः सब उसे उसी रूपमें देख पाते हैं। टर्कीके मामलेमें न्याय है, ब्रिटिश प्रधानमंत्रीकी प्रतिज्ञा है, राष्ट्रपति विल्सनका वचन है। यदि मित्रराष्ट्रोंका यह दावा खरा हो कि उन्होंने अन्यायके विरुद्ध छोटे राज्योंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए युद्ध किया था तो टर्कीको, मुसलमानोंको अथवा हममें से किसीको भी आशंकित रहनेका कोई कारण नहीं है। लेकिन निःशंक तो वही हो सकता है जो प्रयत्नशील हो। जैसे मुसलमानोंका फर्ज है वैसे ही हिन्दू आदि अन्य जातियोंका भी है। यदि वे मुसलमानोंको अपना आदरणीय पड़ोसी एवं भाई मानते हों तो उन्हें उनकी धार्मिक

माँगका पूरा समर्थन करना चाहिए। हिन्दमें जन्मे सब लोगोंको साथ ही जीना और साथ ही मरना है। एकका हनन करके दूसरा कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। एकके अधिकारोंको छिनते देखकर यदि दूसरा चुप बैठा रहेगा तो वह अपने अधिकारोंकी रक्षा भी नहीं कर सकेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–९–१९१९

६९. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

दक्षिण आफ्रिकी प्रश्नपर माननीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें भारत-मन्त्रीसे जो शिष्टमण्डल मिलने गया था उसके परिणामोंको कुल-मिलाकर सन्तोषजनक माना जा सकता है तथा यह उम्मीद की जा सकती है कि दूर रहनेवाले हमारे भाई-बहनोंको सविनय कानून-भंग रूपी सत्याग्रहका आश्रय लिये बिना ही न्याय मिल जायेगा। श्री मॉण्टेग्युने यह स्वीकार किया है कि हमारा मामला एकदम न्यायोचित है। उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया है कि दक्षिण आफ्रिकामें जो आयोग नियुक्त किया जानेवाला है उसमें भारतीय प्रतिनिधि भी होगा। यदि वह व्यक्ति सच्चे अर्थोंमें [भारतीय जनताका] प्रतिनिधि हुआ तथा यदि साम्राज्यीय नागरिक संघ (इम्पीरियल सिटीजनशिप एसोसिएशन) की चार शर्तोंका पालन किया गया तो आयोगके परिणामके सम्बन्धमें हमें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। वे शर्तें ये हैं: (१) गोरोंकी ओरसे जितने प्रतिनिधि हों उतने ही भारतीयोंकी ओरसे हों, (२) आयोगके वर्तमान अधिकारोंमें कटौती करनेकी सत्ता नहीं होनी चाहिए, (३) भू-सम्पत्ति तथा व्यापारसे सम्बन्धित अधिकारोंको छीन लेनेका जो कानून पास किया गया है, आयोगको उस कानूनको रद करनेकी सिफारिश करनेका अधिकार होना चाहिए एवं (४) जबतक आयोगकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हो जाती तबतक उपर्युक्त कानूनको अमलमें नहीं लाया जाना चाहिए। ये शर्तें जितनी उचित हैं उतनी ही अनिवार्य भी हैं। हमारे भाइयोंको सबसे बड़ी आशंका यह है कि इस आयोगकी नियुक्तिका उद्देश्य उन्हें ज्यादा अधिकार देकर उनके साथ न्याय करना नहीं बल्कि ट्रान्सवालकी भाँति समस्त दक्षिण आफ्रिकासे उन्हें लगभग नष्ट करने अथवा उन्हें केवल मजदूरके रूपमें ही रहने देनेका है। इस सम्बन्धमें जनताकी ओरसे अच्छेसे-अच्छा आन्दोलन तो यही हो सकता है कि वह उपर्युक्त शर्तोंके अनुसार ही [आयोगमें] अपना प्रतिनिधि नियुक्त करवानेकी कोशिश करे।

हमें खेद है कि माननीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सर विलियम मेयर द्वारा बिछाये गये जालमें फँस गये। श्री मॉण्टेग्यु नहीं फँसे, यह सन्तोषप्रद बात है। हमें उम्मीद है कि सर विलियम मेयरने पारस्परिकता (रेसिप्रोसिटी) का जाल उतावलीमें और अज्ञानवश बिछाया। इसका अर्थ तो यह है कि यदि अन्तमें दक्षिण आफ्रिकाके हमारे भाई-

बहनोंको न्याय नहीं मिलता तो दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंके साथ हम वैसा ही व्यवहार करें। अर्थात् दक्षिण आफ्रिकासे अगर कोई भूला-भटका गोरा यात्री इधर आये तो उसे भारतमें प्रवेश न करने दिया जाये, उसे यहाँ जमीन न खरीदने दी जाये तथा भारतसे जो एक-दो टन कोयला दक्षिण आफ्रिका भेजा जाता हो उसे बन्द कर दिया जाये। व्यावहारिक दृष्टिसे विचार करनेपर भी इस सुझावका कोई अर्थ नहीं निकलता। यदि धृष्टता न मानी जाये तो कहूँ कि इस सुझावके अनुसार काम करना "हाथी चले बजार, कुत्ते भौंकें हजार" वाली कहावतको चरितार्थ करना होगा। दक्षिण आफ्रिकाके गोरे तो अवश्य ही इसका स्वागत करेंगे। भारतके साथ दक्षिण आफ्रिकाका व्यापार तथा भारतमें दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंकी आबादी इतनी कम है कि हमारे द्वारा यह नीति अपनानेका कोई अर्थ नहीं है। ऐसा कहकर हम न केवल उपहासके पात्र बनेंगे बल्कि अपने भाई-बहनोंके शापके पात्र भी बनेंगे। वहाँ रहनेवाली भारतकी डेढ़ लाख सन्तानोंको अपनी धन-सम्पत्ति छोड़कर हिन्दुस्तान भागना पड़ेगा। अथवा उन्हें हमेशा ही मजदूर बनकर रहना पड़ेगा। और कुछ टन कोयलेका दक्षिण आफ्रिका जाना बन्द हो जायेगा या वहाँके एकाध गोरेके भारतमें प्रवेशपर प्रतिबन्ध लग जायेगा तो इससे उन्हें क्या सन्तोष मिल सकता है? 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने भी, जो इस प्रश्नकी अच्छी वकालत कर रहा है, सर विलियम मेयरके इस सुझावकी हँसी उड़ाई है।

अधिक गहरे उतरनेपर हमें यह भी पता चलेगा कि वैर-भावसे प्रेरित होकर दी गई सजा, प्रतिपक्षी द्वारा किये गये अन्यायकी तुलनामें उचित होनेपर भी अन्ततः सजा देनेवालेको ही नुकसान पहुँचाती है। अपनी करतूत मनको खटकती रहती है। एक अन्यायका निराकरण कदापि दूसरे अन्यायसे नहीं हो सकता। अन्यायसे अन्याय दूर नहीं होता। भारतमें डेढ़ लाख गोरे रहते होते और उनके सम्बन्धमें हम दक्षिण आफ्रिकाके समान ही कानून बना सकते और बनाते तो भी इससे डेढ़ लाख भारतीयोंको नष्ट होनेसे कैसे बचाया जा सकता है? "जैसेको तैसा" वाली जो न्याय-नीति है उसमें बराबर यह मान्यता निहित है कि जब हममें भी अपने विरोधीके जैसा व्यवहार करनेकी शक्ति और इच्छा रहती है तो वह हमारे प्रति अन्याय करनेसे डरता है और इसलिए अपना हाथ रोके रहता है। और यह सच है, ऐसा कई बार होता भी है। किन्तु कुल-मिलाकर उससे न्याय नहीं होता, — यह सर्वमान्य है। कारण ईंटका जवाब पत्थरसे तथा काँटेसे काँटा निकालनेके प्राचीन कालसे चले आ रहे सिद्धान्तको असंख्य स्त्री-पुरुषोंने आजमाया है फिर भी अभीतक अन्याय किया जाना बन्द नहीं हुआ है; इतना ही नहीं पश्चिमके दूरदर्शी लेखकोंका भी यह कहना है कि यूरोपमें विज्ञानकी भारी प्रगति होनेपर भी, और वहाँ साक्षरताका इतना बाहुल्य होनेके बावजूद वैर-भाव एवं अन्यायमें कोई कमी नहीं हुई है। उसके प्रत्यक्ष प्रमाण तो हमारी नजरोंके सामने हैं। किन्तु हम प्रस्तुत विषयसे दूर जा रहे हैं। सर विलियम मेयर द्वारा दिया गया सुझाव ग्राह्य नहीं है, यह सिद्ध करनेके लिए तो इतना ही काफी है कि हमें उनके सुझावमें व्यावहारिक — वैरभावकी — दृष्टिसे कोई अर्थ नहीं दिखाई देता।

श्री मॉण्टेग्युने बताया है कि राजनैतिक दृष्टिसे 'वीटो' (निषेधाधिकार) का प्रयोग करना सम्भव नहीं है। 'वीटो' अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्यके जुदा-जुदा उपनिवेशों द्वारा पास किये गये कानूनोंको रद करनेका सम्राट्का सुरक्षित शाही अधिकार। श्री मॉण्टेग्युके कहनेका अभिप्राय यह है — दक्षिण आफ्रिकाका उपनिवेश इतना बलवान एवं स्वतंत्र है कि यदि मन्त्रिमंडलके सदस्य सम्राट्को दक्षिण आफ्रिकाके कानूनोंको रद करनेकी सलाह दें और सम्राट् उसके अनुसार कार्य करें तो सम्भवतः दक्षिण आफ्रिकामें भारी हलचल हो। इसका अर्थ तो सिर्फ इतना ही है कि ब्रिटिश सल्तनतका एक भागीदार उससे अलग हो जायेगा। इस साम्राज्यके सबसे ज्यादा कमजोर लोगोंपर होनेवाला अन्याय बन्द हो जाये और उसे बन्द करवानेसे कोई भागीदार साम्राज्यसे अपना सम्बन्ध तोड़ ले तो यह परिणाम, निस्सन्देह अभिनन्दनीय है। ब्रिटिश साम्राज्य अथवा कोई भी साम्राज्य अत्यन्त निरीह लोगोंको भी हमेशाके लिए गुलामों-जैसा बनाये रखकर कदापि नहीं टिक सकता। इसलिए जो साम्राज्य दीर्घ कालतक जीवित रहना चाहता हो उसके लिए विरोध करनेवाले अंगोंका त्याग करनेके सिवा और कोई चारा नहीं है। लेकिन अगर सचमुच देखा जाये तो यह माननेका कोई कारण नहीं है कि सम्राट्के निषेधाधिकारका प्रयोग करनेसे दक्षिण आफ्रिकाके गोरे तूफान खड़ा कर देंगे। अन्यायी व नीतिहीन व्यक्ति हमेशा डरपोक एवं कायर होते हैं। ऐसे लोग आरम्भमें बहुत बलका प्रदर्शन करते हैं परन्तु अन्तमें जाकर न्यायके बलके आगे झुक जाते हैं। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके विरुद्ध चल रही हलचल सरासर अन्यायपर आधारित है और यदि साम्राज्यीय सरकार थोड़ा-सा भी जोर लगाये तो यह अन्याय टिक नहीं सकता। साम्राज्यीय सरकार जोर लगाये उसके लिए एक ही बात आवश्यक है। यदि हम अत्यन्त विषम दशामें जीवन व्यतीत करनेवाले समुद्र पारके अपने भाई-बहनोंके पक्षमें मर्यादापूर्वक परन्तु दृढ़ शब्दोंमें आवाज उठायेंगे और उतना ही ठोस कार्य करेंगे तो हम साम्राज्यीय सरकारको बहुत बल प्रदान करेंगे तथा उसे इस सम्बन्धमें न्याय देनेमें समर्थ बनायेंगे।

हालाँकि हम यह बता चुके हैं कि सम्राट्का निषेधाधिकार एक ऐसा शस्त्र है जिसका प्रयोग किया जा सकता है तो भी हमें स्वीकार करना चाहिए कि इस अस्त्र-का बहुत-कम इस्तेमाल किया जाना चाहिए। और जैसा श्री मॉण्टेग्युका विचार है हम यह भी मानते हैं कि शाही आयोगसे न्याय मिल सकेगा। इसलिए फिलहाल तो हमें इसी बातपर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए कि आयोगका कार्य अच्छी तरहसे सम्पन्न हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–९–१९१९

७०. फीजीके संघर्षका महत्त्व

फीजीके प्रश्नमें बहुत सारी बातें समाई हुई हैं। लेकिन इस समय लोकमतको शिक्षित करनेके लिए वस्तुतः एक बातको जानना जरूरी है। भारतसे गिरमिटिया मजदूर फीजी सन् १८७७ में गये। गिरमिटका सीधा अर्थ तो अर्धगुलामी है। यह अर्थ हमारा दिया हुआ नहीं है, बल्कि यह गिरमिटिया भारतीयोंके लिए स्वर्गीय सर विलियम हंटर द्वारा प्रयुक्त किया गया शब्द है। तबसे लेकर आजतक भारतीय मजदूर-स्त्रियोंपर जो अत्याचार होते रहे हैं वे हमारे आलस्य अथवा अज्ञानके कारण ही सम्भव हो सके। हमारे सामने परोपकारी वृत्तिवाले श्री एन्ड्रयूज द्वारा दिया गया साक्ष्य मौजूद है जिससे पता चलता है कि एक-एक स्त्रीको तीन-तीन पुरुषोंकी सेवा करनी पड़ती है।[1] ये तीन तो हुए गिरमिटिया पुरुष, इनके अतिरिक्त जो बाहरसे आ जायें सो अलग। हमने श्री एन्ड्रयूजकी भाषाका अनुवाद किया है लेकिन पाठक इस सेवाका अर्थ सहज ही कर सकेंगे। फीजीके भारतीयोंकी ओरसे श्री गांधीको जो तार भेजा गया है उसमें माँग की गई है कि इस भयानक अत्याचारको बन्द किया जाना चाहिए। इस तारमें बताया गया है कि उन्हें यह आशा थी कि फीजीकी सरकार चालू गिरमिट प्रथाको बन्द कर देगी लेकिन अब यह आशा व्यर्थ हो गई जान पड़ती है। उन्हें भय है कि सरकारने गिरमिट रद करनेके अपने विचारको बदल दिया है। यदि गिरमिट बन्द हो जाये तो अपनी असहाय बहनोंके शीलकी रक्षा हो सकेगी; या कमसे-कम हम अपनी जवाबदारीसे तो मुक्त हो सकेंगे। यह हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है। बिस्तरके नीचे पड़े हुए साँपकी जबतक हमें खबर न हो, तबतक और केवल तबतक ही, हम निश्चिन्त होकर सो सकते हैं। लेकिन इस जहरीले साथीका पता चलते ही जैसे हम चौंक उठते हैं, फीजीकी गिरमिट प्रथाके सम्बन्धमें भी हमारी ठीक यही स्थिति होनी चाहिए। फीजीमें रहनेवाली बहनोंकी भयंकर स्थितिसे हम जबतक अवगत नहीं थे तभी तक हम निश्चिन्ततासे सो सकते थे, बैठे रह सकते थे। लेकिन अब तो हमारा एक मिनट भी आरामसे बैठे रहना पाप है। जिस समय सारा हिन्दुस्तान इस हकीकतको समझ लेगा उस समय फीजीमें चलनेवाली यह अनीति एक पल भी नहीं टिक सकेगी। कोई कानूनशास्त्री यह भी कह सकता है कि कानूनन

१. मार्च १९१८ में जिन दिनों भारत-मंत्री एडविन मॉण्टेग्यु भारतमें थे उन दिनों श्री एन्ड्र्यूज उनसे मिले थे और उन्होंने लॉर्ड मॉण्टेग्युके सम्मुख फीजी सरकारकी डाक्टरी रिपोर्ट पेश की। रिपोर्टमें कहा गया था कि "जब एक भारतीय गिरमिट स्त्रीको तीन-तीन गिरमिटिया पुरुषोंके साथ-साथ बाहरके कुछ लोगोंकी भी सेवा करनी पड़ती हो तो उसके परिणामस्वरूप होनेवाले रोगोंके बारेमें सन्देहकी कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।" "इतना ही काफी है", मॉण्टेग्युने कहा "अब आप चाहे-जो माँग सकते हैं।" जनवरी १, १९२० को अन्तिम गिरमिटिया मजदूरोंको मुक्त कर दिया गया था। **चार्ल्स फ्रीयर एन्ड्र्यूज।**

गिरमिट-प्रथाको हम कैसे तोड़ सकते हैं? फीजीके गोरोंपर हम दबाव कैसे डाल सकते हैं? इसका तो एक ही जवाब हो सकता है। जो कानून नीति-विरुद्ध है, अनीतिका पोषण करता है, वह कानून कानून नहीं है। ऐसे कानूनका आदर करना अनीतिमें हिस्सा लेनेके समान है। [आश्चर्य तो यह है कि] ऐसा कानून — जिससे अनीतिको प्रोत्साहन मिला, इतने दिनोंतक कैसे टिक सका? यह एक उचित प्रश्न है। हमें आशा है कि गुजरातके प्रत्येक शहर और गाँवसे सरकारके पास समय रहते इस आशयके प्रार्थनापत्र पहुँच जायेंगे कि गिरमिट-प्रथा एकदम बन्द कर दी जानी चाहिए। श्री एन्ड्रयूजने गिरमिट-प्रथा बन्द किये जानेकी अन्तिम तारीख ३१ दिसम्बर निश्चित की है। इनके हाथमें सरकारी सत्ता तो नहीं है, लेकिन इनके हाथमें इससे कहीं-अधिक बड़ी सत्ता है और वह सत्ता है इनकी दुःखी आत्माकी गम्भीर पुकार। हमारी कामना है, गुजरातका प्रत्येक स्त्री-पुरुष इस पुकारको सुने तथा अपना कर्त्तव्य निभाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-९-१९१९

७१. टिप्पणियाँ

'नवजीवन' की जमानत

'नवजीवन' मासिकपर [सरकारकी] कृपादृष्टि थी — ऐसा कहा जा सकता है। लेकिन साप्ताहिक 'नवजीवन' इतनी कृपाका पात्र नहीं बन सका। प्रत्येक समाचारपत्रको अपने प्रकाशन-कालमें अथवा छापाखानेमें परिवर्तन करते समय नये सिरेसे [अपने स्वामित्व आदिका] आवश्यक विवरण देना पड़ता है और उस समय बल्कि असलमें तो चाहे जिस समय मजिस्ट्रेटको जमानत लेने अथवा पहलेसे ली गई जमानतमें बढ़ोतरी करनेका अधिकार है। 'नवजीवन' के साप्ताहिक होनेपर उसके सम्बन्धमें आवश्यक विवरण तो देना ही पड़ा और अब मजिस्ट्रेट महोदयने निम्नलिखित आदेश भेजा है।[1]

क्या 'नवजीवन' अपनी स्वतन्त्रता इसलिए खो बैठा कि श्री गांधीने 'नवजीवन'-का सम्पादक बनना स्वीकार कर लिया है।

पंच महालमें बेगार

यह बात अकसर सुननेमें आती है कि अन्य जिलोंकी अपेक्षा पंच महालमें[2] बेगारकी बुराई कुछ अधिक है। यह बात अदालतमें भी पहुँच चुकी है। गोधरामें[3]

१. इसे यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है; आदेशमें **नवजीवन**से ५०० रुपयेकी जमानत माँगी गई थी।

२. गुजरातमें।

३. देखिए "भाषण : गुजरात राजनीतिक परिषद्में", खण्ड १४।

जो राजनीतिक परिषद् हुई उसमें इसके बारेमें काफी चर्चा हुई थी। और अब जहाँ-तक पंच महालका सवाल है इस समस्याका समाधान हो गया है। पंच महालके कलक्टर महोदय श्री क्लेटनने जो परिपत्र निकाला है उसके लिए उन्हें तथा गोधरा होम-रूल लीगके व्यवस्थापकोंको बधाई दी जानी चाहिए। श्री क्लेटनने स्थानीय होमरूल लीगकी समितिके साथ बातचीत करनेके बाद तुरन्त ही अपना निश्चय प्रकाशित कर दिया यह बात सचमुच सराहनीय है। अपने आदेशमें उन्होंने स्पष्ट तौरसे बताया है कि कोई भी व्यक्ति बाजारके भावसे कम दाम लेकर अधिकारी-वर्गकी सेवा करनेके लिए बँधा हुआ नहीं है और यदि कोई भी अधिकारी लोगोंपर [इसके लिए] दबाव डालेगा या उन्हें हैरान करेगा तो वह सजाका पात्र होगा। यह घटना इस बात-का एक बढ़िया उदाहरण है कि अधिकारी तथा प्रजा परस्पर बातचीत करके बेगार-जैसे उलझे हुए मामलेको भी सुलझा सकते हैं। हमें उम्मीद है, अब पंच महालमें बेगार-की बुराईके खिलाफ कोई शिकायत नहीं रह जायेगी तथा अधिकारी लोग श्री क्लेटनके हुक्मकी पूरी-पूरी तामील करेंगे। इसके साथ ही हम यह भी सुझाना चाहेंगे कि जब उचित दाम मिलें तब लोगोंको अधिकारियोंकी योग्य सेवा कर देनी चाहिए। सरकारी अमलदार जब दौरा करने निकलें तब उनकी सहायता करना, उनकी आवभगत करना हमारा फर्ज है तथा प्रजाको मित्र मानकर जोर-जबरदस्तीसे नहीं बल्कि विनयसे एवं पूरे दाम देकर काम लेना अधिकारियोंका फर्ज है। झूठी खुशामद, जी-हजूरी तथा भीरुता — ये सब सर्वथा त्याज्य हैं। लेकिन उद्धतता तथा अविनय भी उतने ही त्याज्य हैं।

स्वर्गीय सेठ दाऊद मुहम्मद[1]

दक्षिण आफ्रिकाके प्रसिद्ध नेता सेठ दाऊद मुहम्मदके सम्बन्धमें श्री गांधीने समा-चारपत्रोंमें[2] जो लेख लिखा है उसे सब लोगोंने पढ़ा होगा। उनकी मृत्युसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी बहुत भारी क्षति हुई है, इसमें सन्देह नहीं। सेठ दाऊद मुह-म्मद सूरतके आसपासके गाँवके निवासी थे। अत: उनपर गुजरात अभिमानका अनुभव करे तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं होगी। श्री दाऊदकी चतुराई और कार्यदक्षता ऐसी थी कि यदि वे यूरोपमें पैदा हुए होते तो वे एक प्रसिद्ध व्यक्ति होते। हिन्दु-स्तान तो उन्हें बहुत ही कम जानता है। सामान्य परिस्थितिमें पल-पुसकर जिसने बिलकुल निरक्षर होनेके बावजूद लाखोंका व्यापार चलाया, अपनी छत्रछायामें अनेकोंको तालीम दी और पाला-पोसा, जिसने लोकसेवामें अपनी उत्तरावस्था व्यतीत की, जिसने अपने पुत्रको अच्छी शिक्षा दी और जिसने अपनी शक्तिसे हजारों व्यक्तियोंपर अपना प्रभुत्व जमाया वह व्यक्ति और क्या करता जिससे उसे ख्याति मिलती? अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियोंको झूठमूठ की कीर्ति मिली है और जिन्होंने ख्याति प्राप्त नहीं की ऐसे

१. नेटालके भारतीय समाजके एक नेता। नेटाल भारतीय कांग्रेसके सभापति और सत्याग्रही।
२. देखिये "पत्र अखबारोंको", ३०-८-१९१९।

अनेक व्यक्तियोंने लोकसेवा करके प्रभुको पहचाना है। हम सेठ दाऊद मुहम्मदके परिवार तथा दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके प्रति समवेदना प्रकट करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-९-१९१९

७२. भाषण : बम्बईमें स्वदेशीपर[1]

सितम्बर ७, १९१९

कुछ लोगोंका कहना है कि स्वदेशीकी ध्वनि समस्त हिन्दुस्तानमें गूँज रही है लेकिन मैं यह नहीं मानता। अनेक स्थानोंसे इस आशयके पत्र आते हैं कि यदि आप यहाँ आकर भण्डार खोलें तो हम स्वदेशी-वस्त्र पहनना सीखेंगे। लेकिन यह होता नहीं है। हाँ, अगर लोग पहलेसे ही दृढ़ निश्चय कर लें तो यह हो सकता है। एक सज्जनने कहा है कि हमें इंग्लैंड अथवा जापानकी अपेक्षा अधिक अच्छा माल तैयार करके सस्ते भावपर बेचना चाहिए। यह असम्भव है। यदि हम स्वदेशी-व्रतके आन्दोलनको चलाना चाहते हैं तो हमें आन्दोलन-कालमें हर प्रकारके संकटको झेलनेके लिए तैयार रहना चाहिए। मैं जो वस्त्र पहनता हूँ उनकी बराबरी इस संसारमें कोई नहीं कर सकता। हमें जापानके बने सुन्दर वस्त्र पहनने चाहिए — ऐसा 'भगवद्गीता' में कहीं नहीं लिखा है। प्रत्येक शास्त्रमें यही लिखा है, आपका जो धर्म है उसीसे आपका उद्धार होगा। इसलिए हमारे देशके कारीगर अपने घरोंमें भजन गाते हुए जो कपड़ा बनाते हैं, उस वस्त्रको पहनना हमारा धर्म है। हमारी माँ हमें जो रूखी-सूखी रोटी दे उसे खाकर ही हमें उसका आभार मानना है। यह हमारा पहला कर्त्तव्य है। हमारे पास पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं, यह बात तो निश्चित ही है। हमें इस तरह काम करना चाहिए जिससे हम घर-घर चरखेकी कक्षाएँ खोल सकें; इससे हम प्रत्येक घरमें मिलकी स्थापना कर सकेंगे। इसके लिए हमें धन लगाने अथवा किसी अन्य प्रकारका खर्च करनेकी आवश्यकता नहीं होगी। यदि आप सब भारतकी समृद्धि चाहते हैं तो उसे प्राप्त करनेका यह उत्तम मार्ग है। मैं ऐसी कल्पना नहीं करता कि कोई भी व्यक्ति एकदम सुन्दर वस्त्रोंको त्यागकर खादी पहन सकता है। लेकिन यदि हमारे युवक इस कार्यको हाथमें ले लें तो हम धीरे-धीरे अपनी स्थितिमें सुधार कर सकेंगे। हमें कोई भी कार्य करनेसे पूर्व उसपर विचार अवश्य करना चाहिए। मेरे मनमें जो विचार आये हैं उन्हें आपके समक्ष रख रहा हूँ और मुझे उम्मीद है कि आप सब इन्हें अपनायेंगे। किन्तु सरकारने मेरे पंख काट दिये हैं और मुझे बम्बई प्रदेशमें[2] ही बाँध लिया है। यदि केवल इस प्रदेशके स्त्री-पुरुष ही इस कार्यको हाथमें ले लें तो

१. गुजरात स्वदेशी-भण्डारके उद्‌घाटनके समय।

२. सरकारने ९ अप्रैलको गांधीजीको इस आशयका अदेश दिया था कि वे पंजाबकी सीमामें प्रवेश न करें। देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २१४-१६।

वे समस्त हिन्दुस्तानकी कपड़ेकी जरूरतको पूरा कर सकेंगे। यदि हिन्दुस्तानमें स्वदेशी आन्दोलन, जिस रूपमें हम चाहते हैं, उस रूपमें चले तो हमें स्वराज आज ही मिल सकता है। लेकिन भाइयो, ऐसा हो नहीं रहा है। आपने मेरा भाषण सुना इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। अन्तमें, मैं भगवान्से यही प्रार्थना करता हूँ कि वह इन भाइयोंको उनके कार्यमें सफलता प्रदान करे।

[गुजरातीसे]

गुजरात मित्र अने गुजरात दर्पण, १४–९–१९१९

७३. तार : गृह-सचिवको

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
[सितम्बर ७, १९१९ के बाद]

सचिव
गृह-विभाग
शिमला

क्या आप कृपया वाइसरायके निजी-सचिवके नाम की गई मेरी उस पूछ-ताछका[१] उत्तर तार[२] द्वारा भेज सकते हैं जो लॉर्ड हंटरकी समितिकी अधिकार-सीमाकी व्याख्या के सम्बन्धमें है?

गांधी

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६८६६) की फोटो–नकलसे।

७४. वाइसरायका भाषण

जाँच समिति

अभी हालमें हमें एक भारी उथल-पुथलके कालसे गुजरना पड़ा है, जिसके प्रभावसे हम अब भी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाये हैं — यदि इस पूर्व-परिस्थितिके सन्दर्भमें देखें तो शाही परिषद्के सत्रारम्भके अवसरपर दिया गया वाइसराय महोदय-का भाषण एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वक्तव्य है। इस बातसे राहत मिलती है कि आयोग सचमुच नियुक्त कर दिया गया है, हालाँकि देखता हूँ, इसके सदस्योंको लेकर

१. देखिए "तार : वाइसरायके निजी–सचिवको", ६–९–१९१९ ।

२. भारत सरकारके उप-सचिवका एक तार गांधीजीको १६ सितम्बरको मिला जिसमें लिखा था : "भारत सरकारका शीघ्र ही इस विषयमें घोषणा करनेका विचार है । आपको पहलेसे ही सूचना देना सम्भव नहीं होगा ।"

भारतीय अखबारोंमें कोई विशेष उत्साहका भाव नहीं है और न वे इस बातसे ही बहुत खुश हैं कि यह आयोग एक शाही आयोग न होकर एक ऐसा आयोग है जो अपनी रिपोर्ट भारत सरकारको देगा। मेरी नम्र सम्मतिमें तो भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया गया आयोग भी उतना ही प्रभावशाली हो सकता है जितना कि कोई शाही आयोग। और हमें अपने ही समयमें शाही आयोगोंके भी असफल होनेके बहुत सारे उदाहरण मिले हैं। लॉर्ड मॉर्ले जिन दिनों सरकारकी सक्रिय सेवामें थे, उन दिनों वे कहा करते थे कि उन्हें इन आयोगोंका इतना बुरा अनुभव है कि उनमें उनका कोई विश्वास ही नहीं रह गया है। फिर भी चूँकि आयोगोंकी नियुक्ति अंग्रेजोंकी एक कमजोरी है, अतः उन्हें अनिच्छापूर्वक उनमें शरीक होना ही पड़ा। फिर भी पंजाब-जैसे मामलेमें ऐसी जाँच करना तो एक स्वाभाविक चीज है। अतः हमें इस कारण कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए कि यह जाँच-आयोग शाही आयोग नहीं है। लेकिन इसके सदस्योंके चुनावपर विचार करनेका हमें पूरा अधिकार है और यद्यपि लॉर्ड हंटर कोई ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जिन्हें संसार-भरमें प्रतिष्ठा प्राप्त हो फिर भी इतनी प्रतिष्ठा तो प्राप्त है ही कि न्याय न करनेपर उन्हें उसके खोनेका भय हो। आखिरकार उनके चुनावके लिए मुख्यतः श्री मॉण्टेग्यु ही जिम्मेदार हैं, और यद्यपि उन्होंने सरकार द्वारा अंगीकृत या स्वीकृत कुछ सदस्योंका सर्वथा अनुचित तथा अन-पेक्षित बचाव करनेमें बड़ा उत्साह दिखाया है, फिर भी मैं तो उनके चुनाव या इरादेमें किसी प्रकार सन्देह नहीं करना चाहूँगा। और न दूसरे सदस्योंकी नियुक्तिपर ही कोई निरर्थक आपत्ति की जा सकती है। लेकिन हम बम्बईके लोगोंको सर चिमन-लाल सीतलवाडकी नियुक्तिपर अधिकसे-अधिक सन्तोष होना चाहिए — इसलिए नहीं कि वे एक योग्य वकील हैं पर इससे भी बढ़कर इसलिए कि वे स्वर्गीय फीरोज-शाह मेहताके एक शिष्य और सच्चे अनुगामी हैं। हम आश्वस्त रह सकते हैं कि वे उतनी ही निर्भीकता और निष्पक्षतासे काम करेंगे जितनी निर्भीकता और निष्पक्षतासे सर मेहता करते थे और कठिनसे-कठिन परिस्थितियोंमें भी विचलित नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त उनकी नियुक्ति शायद इस बातका भी संकेत देती है कि भारत सरकार आयोगमें ऐसे निष्पक्ष लोगोंको रखना चाहती है जिन्होंने इस सम्बन्धमें पहलेसे ही कोई मत स्थिर नहीं कर रखा है या यों कहें कि कोई विचार व्यक्त नहीं किया है। और अगर हम आशा करें कि साहबजादा सुलतान अहमदखां भी इतना तो करेंगे ही, तो यह अनुचित नहीं होगा। साथ ही मैं इतना और कहना चाहूँगा कि जहाँ अंग्रेज लोगोंने पूर्वगृहीत धारणाएँ न बना ली हों और जहाँ उनपर कुछ बातोंको लेकर पागलपन सवार नहीं हो गया हो, जैसा कि कभी-कभी हम सबपर हो जाता है, वहाँ वे बहुत निर्भीक होकर न्याय करते हैं और अन्यायका पर्दाफाश करके ही दम लेते हैं — भले ही यह अन्याय उनके भाई-बन्दोंने ही क्यों न किया हो। इसलिए मेरा नम्र सुझाव है कि अभी आयोगके सदस्योंके सम्बन्धमें कोई विचार नहीं ही प्रकट करना चाहिए। आप उसमें विश्वास रखें और वाइसराय महोदयने वातावरणको शान्त बनाये रखनेका जो अनुरोध किया है उस ओर ध्यान दें।

लेकिन यह जानकर मुझे बहुत अधिक सन्तोषका अनुभव होता है कि आखिरकार आयोगके सही निष्कर्षपर पहुँचनेसे सम्बन्धित सारी बातें बहुत हदतक हमारे पंजाबी भाइयोंपर निर्भर करती हैं। जिन्हें तथ्योंकी जानकारी है वे लोग अगर निर्भीकतापूर्वक सत्य कहनेके लिए आगे आयेंगे और अगर पंजाबमें ऐसे गिरे हुए लोग नहीं हैं जो व्यक्तिगत लाभकी आशामें अपने-आपको बेच देनेको तैयार हों तो हमें आशंकित होनेकी कोई जरूरत नहीं। हमारा मामला इतना मजबूत है, और जो अन्याय पहले ही प्रकाशमें लाये जा चुके हैं वे इतने स्पष्ट हैं, कि अगर पंजाबके लोग सिर्फ अपना कर्त्तव्य निभानेकी चिन्ता करें तो हमें असफलताका कोई भय नहीं होना चाहिए। चम्पारनके मामलेमें न्याय क्यों किया गया? मूलतः और मुख्यतः इसलिए कि चम्पारनके गरीब और दलित काश्तकारोंने सत्य कहनेका साहस दिखाया। क्या पंजाबके लोग इतना भी नहीं करेंगे? इसका तो केवल एक ही उत्तर हो सकता है कि हाँ, अवश्य करेंगे। लेकिन हमें उनकी मदद करनी है और उनकी मदद हम समितिके सदस्योंकी कमजोरी बतानेमें या इसके शाही आयोग न होनेका रोना रोनेमें पन्ने रँगकर नहीं कर सकते। उसका सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि हम ऐसा प्रयत्न करें जिससे किसी पक्षकी ओरसे जासूसी न हो और पंजाबके लोग स्वच्छन्द और मुक्त वातावरणमें अपना काम कर सकें। और इस सम्बन्धमें यह सोचकर मनको बड़ा सन्तोष मिलता है कि हमें सतत जागरूक तथा हर समय और हर स्थानपर हमारे बीच विद्यमान रहने-वाले पंडित मदनमोहन मालवीयका साहाय्य प्राप्त है तथा उनकी सहायताके लिए संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द और दुर्धर्ष पंडित मोतीलाल नेहरू-जैसे लोग मौजूद हैं। हमें परिणामोंके बारेमें डरनेकी कोई जरूरत नहीं।

यह बात ध्यान देने लायक है कि समिति पंजाबके मामलोंकी ही नहीं, प्रेसिडेंसी[1]-के मामलोंकी भी जाँच करनेवाली है। असन्तोषके वास्तविक कारणोंको दिखा सकनेमें हमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए और न यहाँकी तथा पंजाबकी घटनाओंके परवर्ती परिणामोंमें कुल-मिलाकर जो एक शुभ अन्तर है, उसे ही स्पष्ट करनेमें कोई दिक्कत होनी चाहिए। समितिके बारेमें विचार समाप्त करनेके पूर्व एक और बात कहना जरूरी है। कहा गया है कि समितिको अमुक बातोंपर विचार करना है। इसका मतलब क्या है? मुझे तो लगता है कि इन बातोंमें पंजाबकी विशेष अदालतों-ने, चाहे वे विशेष आयोग हों या सैनिक अदालतें, जो निर्णय दिये हैं उनकी जाँच करना और जो सजाएँ दी गई हैं उन्हें सम्पूर्ण अथवा आंशिकरूपसे रद करनेका अधिकार भी शामिल है। लेकिन हम इतने महत्त्वपूर्ण मामलेमें कोई भी बात यह मानकर नहीं छोड़ सकते कि ऐसा तो होगा ही। इसलिए जैसे भी हो, हमें इस मुद्देको स्पष्ट करवा लेना है।

अब जहाँतक क्षतिपूर्ति विधेयकका सवाल है, मेरा खयाल है कि यदि वाइसराय महोदयने आयोगके साथ इस विधेयककी चर्चा न की होती तो यह बात उनके लिए

१. अभिप्राय बम्बई प्रेसिडेंसीसे है।

अधिक शोभनीय, बल्कि नीतिपूर्ण भी होती। फिर भी मेरी नम्र सम्मतिमें सरकार इस सम्बन्धमें जो विधेयक पेश करना चाहती है, उसका पूरा पाठ जबतक सामने नहीं आ जाता तबतक इस विषयमें कोई विचार व्यक्त न करना ही अच्छा होगा।

रौलट अधिनियम और उसके बाद

अब मैं अप्रैल महीनेकी घटनाओंके सम्बन्धमें वाइसराय महोदयके भाषणके उस अंशको लेता हूँ जिसपर विवादकी गुंजाइश है। उनके शब्द ये हैं:

> **पिछले सत्रमें जिस समय रौलट विधेयकपर विचार किया जा रहा था उस समय कुछ माननीय सदस्योंने मुझे कुछ धमकीके स्वरमें चेतावनी दी थी कि अगर यह विधेयक कानूनके रूपमें पास कर दिया गया तो बहुत ही गम्भीर ढंगका आन्दोलन होगा। मेरा खयाल है कि माननीय सदस्यगण इस बातको समझेंगे कि कोई भी सरकार किसी आन्दोलनके भयसे ऐसी किसी नीतिसे विचलित नहीं होगी जिसका अनुसरण करना वह आवश्यक मानती है। फिर भी कुछ ऐसे लोग तो थे ही जिन्होंने सोचा कि इस धमकीको चरितार्थ करना जरूरी है, और फलतः वे निन्दनीय घटनाएँ घटित हुईं जिनकी अब जाँच होनी है। मैं उन घटनाओंपर विचार करना नहीं चाहता, लेकिन यह बता देना चाहूँगा कि उनकी गम्भीरताको घटाकर आँकना बहुत आसान है। आज जब ये उपद्रव शान्त कर दिये गये हैं, तब जिन लोगोंपर उस समय स्थितिसे निबटनेकी जिम्मेदारी थी, उनमें से कोई ऐसा नहीं है जो उस समयकी विभीषिका-को भूल सकेगा। हत्याएँ की गईं, आगजनी हुई, टेलीफोनके तार काटे गये, रेलकी पटरियाँ उखाड़ी गईं और कुछ दिनोंतक मेरे पास पंजाब सरकारके साथ सम्पर्क स्थापित करनेका एकमात्र निश्चित उपाय वायरलेस ही रह गया था। जिन जिलोंको इन मुसीबतोंसे होकर गुजरना पड़ा उन जिलोंमें जाकर कोई आज भी प्रत्यक्ष देख सकता है कि हमें जिस परिस्थितिका उस समय सामना करना पड़ा था वह कितनी गम्भीर, और जो बरबादी हुई वह कितनी ज्यादा थी। और जो लोग इस मुसीबतकी गम्भीरताको घटाकर देखनेकी कोशिश करेंगे उनसे मैं यही कहूँगा कि "आप इन जिलोंमें जाइये और लोगोंने अपने विवेकको ताकपर रखकर जो बरबादी मचाई थी उसकी निशानी अपनी ही आँखों देख आइए।"**

वाइसराय महोदयने भारतीय विधायकों द्वारा "धमकीके स्वरमें चेतावनी" देनेकी जो बात कही है, उसका क्या मतलब है? यदि किसी चेतावनीको कार्यरूपमें परिणत कर दिया जाता तब क्या वह "धमकी" हो जाती है? जो सवाल स्वयं परमश्रेष्ठ द्वारा निर्मित आयोगके सामने पेश किया जानेवाला है उसके सम्बन्धमें ऐसे विचार व्यक्त करके आयोगकी रायको प्रभावित करना क्या उचित है? यह चेतावनी मित्रोंकी चेतावनी थी। सदस्योंको इस बातकी पूरी छूट थी कि वे अपनी चेतावनीको कार्यरूप देकर देशमें एक ऐसा आन्दोलन प्रारम्भ करें,

जिसका सरकारपर प्रभाव पड़ता, और सच बात तो यह है कि यदि सरकारने इसी बीच जल्दबाजीमें मूर्खतावश स्थितिको बिगाड़ न दिया होता, तो सरकारपर उक्त आन्दोलनका वांछित प्रभाव पड़ चुका होता। वाइसराय महोदय १० अप्रैलके बादकी हिंसात्मक घटनाओंका सम्बन्ध उस व्यवस्थित, पवित्र और सुस्पष्ट आन्दोलनसे क्यों जोड़ रहे हैं जिसकी चरम परिणति ६ अप्रैलको राष्ट्रीय अपमान और प्रार्थना दिवसके रूपमें हुई है? इस हालतमें, उत्तरमें हमारा यह कहना क्या उचित नहीं होगा कि सरकारने जब देखा कि उसका दुलारा कानून विफल हुआ जा रहा है तो वह अपना आपा खो बैठी, और अपनी जानकारी तथा उचित-अनुचितके विचारको ताकपर रखकर, उसने ऐसे बेढंगे काम किये जिनका परिणाम उस खेदजनक हिंसाके रूपमें प्रकट हुआ जिसमें कितने ही निरीह यूरोपीयों और भारतीयोंको अपने प्राण गँवाने पड़े। यह निर्णय करना तो आयोगका काम है कि भीड़ने जो हिंसात्मक कार्रवाई की वह रौलट अधिनियमको लेकर छेड़े गये आन्दोलनका परिणाम थी, या उसने सरकारके आचरणसे उत्तेजित होकर ऐसा किया। वाइसराय महोदयने स्वयं कहा है कि उन्होंने पंजाब सरकारको पूरी छूट दे रखी थी, बल्कि उसकी सिफारिशपर उन्होंने आदेश भी जारी किये थे। मैं पूरे आदरके साथ कहना चाहूँगा कि इस लिहाजसे वे भी आयोगके निर्णयार्थ उसी कठघरेमें खड़े होने लायक हैं जिसमें पंजाब सरकार खड़ी है।

वाइसराय महोदयने मेरे शब्दोंको सन्दर्भसे हटाकर और उसे एक सर्वथा भिन्न परिस्थितिसे जोड़कर मेरे साथ घोर अन्याय किया है। उन्होंने अहमदाबादके श्रोताओंके सम्मुख १४ अप्रैलको दिया गया मेरा वह भाषण पूरा-पूरा नहीं पढ़ा है जिसके एक अंशको उन्होंने अपने भाषणमें उद्धृत किया है। जनताके प्रति और मेरे प्रति भी उनका फर्ज था कि उन्होंने यह भाषण मँगवा लिया होता। फिर वे उसमें देख सकते थे कि मेरे भाषणका सम्बन्ध सिर्फ अहमदाबादकी घटनाओंसे था, जिनकी मैंने स्वयं जाँच की थी। उस भाषणसे उन्हें मालूम हो जाता, और मैं अब भी उन्हें यह दिखा सकता हूँ कि मैंने जो-कुछ कहा उसका सम्बन्ध अहमदाबाद और केवल अहमदाबादकी घटनाओंसे ही था — वीरमगाँव या खेड़ाकी घटनाओंसे भी नहीं, क्योंकि उनके सम्बन्धमें मुझे उस समय कोई जानकारी थी ही नहीं। वाइसराय महोदयने मेरे मत्थे जो विचार मढ़ा है, वैसा कोई विचार मैं रखता हूँ, इस बातसे मैं बिलकुल इनकार करता हूँ। पंजाबके सम्बन्धमें तथा उस प्रान्तके "शिक्षित और चालाक आदमियों"के बारेमें मैं अब भी निश्चित और सीधे तौरपर कुछ नहीं जानता।[1] अतः मैं अपने अहमदाबादके

१. अपने भाषणमें वाइसरायने कहा था कि "अब मेरी और पंजाबके माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयकी भी इच्छा है कि उन अभागे और गुमराह लोगोंके प्रति दयाका व्यवहार किया जाये जिन्होंने श्री गांधीके शब्दोंमें, 'शिक्षित और चालाक आदमी अथवा आदमियों' के बहकावेमें आकर मार-काट मचाई।" इस वक्तव्यको अपने ६-९-१९१९ के अंकमें उद्धृत करते हुए **अमृतबाजार पत्रिकाने** इसपर आपत्ति उठाई थी और लिखा था कि अगर गांधीजीका सचमुच ऐसा विचार हो तो वे अपनी जानकारीका स्रोत बतायें, अन्यथा वाइसराय महोदयके कथनका प्रतिवाद करें। स्पष्ट ही, यहाँ गांधीजीने जो-कुछ लिखा उससे मामला साफ हो जाता है।

भाषणका[1] एक शब्द भी नहीं बदलना चाहूँगा और साथ ही यह भी कहूँगा कि पंजाबकी घटनाओंके बारेमें मैंने कोई विचार निश्चित नहीं किया है। फिर भी मुझे पंजाबसे इस बातके काफी प्रमाण मिले हैं कि वहाँकी सरकारने ऐसे काम किये जिन्हें कदापि माफ नहीं किया जा सकता।

दयाका व्यवहार

यह जो दयाके व्यवहारकी चर्चा की गई है, वह कुछ शोभा नहीं देती। और यह दयाका व्यवहार करना भी किनके प्रति है? उन लोगोंके प्रति जो किसी तरहकी दया या कृपाकी भीख नहीं माँगते, सिर्फ सीधा-सादा न्याय चाहते हैं। अगर बात सचमुच ऐसी हो कि सम्राट्के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने या सरकारको उखाड़ फेंकनेके लिए साजिश की गई थी तो किसी समुचित ढंगसे गठित न्यायालयकी नजरोंमें जो लोग दोषी पाये जायें उन्हें फाँसीपर लटका दिया जाये। मैं तो नहीं चाहूँगा कि लाला हरकिशनलाल, पंडित रामभजदत्त चौधरी, डॉक्टर किचलू, डॉ० सत्यपाल और ढलती उम्रके ऐसे ही कुछ अन्य प्रसिद्ध जन-सेवी लोगोंने यदि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे भीड़को हिंसा करनेके लिए उकसाया हो, और देशकी विधिवत् संस्थापित सत्ताके खिलाफ साजिश की हो, तो उन्हें फाँसीके तख्तेसे बचाया जाये। आयोगको निर्णय कर लेने दीजिए। फिर अगर दयाके व्यवहारकी चर्चा करनेकी जरूरत हुई तो उसके लिए काफी समय रहेगा। अगर भारत सरकार सचमुच न्याय करना चाहती हो तो जिन्हें हिंसात्मक कार्य करते हुए रँगे हाथों पकड़ा गया हो और जिनके अपराध निर्विवाद रूपसे सत्य सिद्ध हो चुके हों उन्हें छोड़कर अन्य सभी राजनीतिक अभियुक्तों-को वह मुक्त कर दे। अगर परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदय वास्तवमें यह चाहते हैं कि न्याय और केवल न्याय — न उससे अधिक और न उससे कम — किया जाये तो वे वही करें जो दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारने किया था। जब दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रह संघर्षके परिणामस्वरूप वहाँ एक आयोग नियुक्त किया गया तो आयोगकी सलाहपर मुझे और मेरे कुछ साथी कैदियोंको जान-बूझकर इस खयालसे छोड़ दिया गया ताकि मेरे वे साथी और मैं, जिन लोगोंका हम प्रतिनिधित्व करते थे, उनकी ओरसे गवाहियाँ देकर आयोगको[2] सही निर्णयपर पहुँचनेमें मदद दे सकें। मुझे आशा है कि अगर परमश्रेष्ठ दक्षिण आफ्रिकाके पूर्वोक्त उदाहरणका अनुसरण अपनी ओरसे नहीं करते तो आयोग उन्हें वैसा करनेकी जोरदार सलाह देगा।

दक्षिण आफ्रिकाकी स्थिति

अब मैं प्रसन्नतापूर्वक वाइसरायके भाषणके उस अंशको लेता हूँ जिसपर किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं की जा सकती। परमश्रेष्ठने दक्षिण आफ्रिकी सवालके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा है वह अपनी हदतक काफी सन्तोषजनक है। सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनका

१. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २२८-३२।

२. दक्षिण आफ्रिकी संघ-सरकार द्वारा दिसम्बर १९१३ में नियुक्त सॉलोमन आयोग। देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २६५।

जनरल स्मट्ससे व्यक्तिगत सम्बन्ध है। वे चाहें तो अपनी सूझ-बूझ और नीतिज्ञताके बलपर एक न्यायसम्मत और सम्मानपूर्ण समझौतेके लिए कई तरहसे रास्ता तैयार कर सकते हैं। स्वभावतः मेरी यह मान्यता है कि सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन तो भारत सरकारके प्रतिनिधिकी हैसियतसे उसके मामलेको दक्षिण आफ्रिकी सरकारके सामने पेश करने और जो आयोग नियुक्त किया जानेवाला है उसकी आम तौरसे सहायता करनेके लिए जायेंगे ही, लेकिन साथ ही श्री मॉण्टेग्युकी यह घोषणा कि आयोगमें भारतीयोंके हितोंका प्रतिनिधित्व करनेके लिए भी दो सदस्य नियुक्त किये जायेंगे, अब भी ज्योंकी-त्यों बनी हुई है और शीघ्र ही इन दो उपयुक्त सदस्योंके नाम घोषित कर दिये जायेंगे। वाइसराय महोदयके इस उद्गारसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि "इस समय हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम ऐसा-कुछ न कहें, ऐसा-कुछ न करें जिससे मौजूदा भावनाओंमें कटुता उत्पन्न होने और समझौतेकी सम्भावना कठिन हो जानेकी आशंका हो।"

फीजीके गिरमिटिया

फीजीसे सम्बन्धित घोषणाके विरुद्ध भी कुछ नहीं कहा जा सकता, बल्कि उससे भी बड़ा सन्तोष प्राप्त होता है, और हम ऐसी आशा कर सकते हैं कि वह दिन दूर नहीं, और निश्चय ही वह दिन इस वर्षकी समाप्तिके पूर्व ही आना चाहिए, जब यह प्रथा समाप्त हो जायेगी।

लेकिन हमें दक्षिण आफ्रिका और फीजीके सवालपर निश्चिन्त होकर नहीं बैठ जाना है बल्कि तबतक जाग्रत और प्रयत्नशील रहना है जबतक कि फीजीका यह शर्मनाक कलंक बिलकुल समाप्त नहीं हो जाता और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके सिरपर छाये विनाशके बादल पूरी तरह छँट नहीं जाते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-९-१९१९

७५. लाला लाभूराम

मुझे पंजाबके मामले समय-समयपर देखने पड़े हैं, वे बुरे हैं; लाला लाभूरामका मामला भी कुछ बेहतर नहीं है। अन्यायका एकाध मामला तो सर्वोत्तम व्यवस्था सम्पन्न समाज और आदर्श शासनमें भी होगा। परन्तु जब अन्याय नित्य-प्रति होने लगे तो ईमानदार लोगोंको न केवल उसी समय उसका विरोध करना चाहिए वरन् ऐसी शासन प्रणालीको जिसके अन्तर्गत ऐसा सुनियोजित अन्याय सम्भव होता है अपनी मदद देनी तबतक के लिए बंद कर देनी चाहिए, जबतक कि वह प्रणाली बदल न जाये और वैसा सुनियोजित अन्याय हो सकना असम्भव न हो जाये। तस्वीरको अतिरंजित करनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। दो जातियोंके पारस्परिक सम्बन्धोंमें तनाव पैदा करनेका मेरा इरादा बिलकुल नहीं है। और यदि मेरे चुप रहनेसे उत्तेजना उत्पन्न

होनेसे बच सकती तो मुझे बड़ी खुशी होती। परन्तु जो अन्याय मेरे देखनेमें आये हैं यदि मैं उनकी ओर सरकारका ध्यान नहीं दिलाता तो मैं अपने कर्त्तव्यसे च्युत होता हूँ। ये अन्याय जहरकी तरह हैं; ये पूरी प्रणालीको दूषित कर रहे हैं। जहरको जरूर बाहर निकाल दिया जाना चाहिए, नहीं तो शरीर नष्ट हो जाता है।

तो अब देखें कि लाला लाभूरामका मामला क्या है? पिछले सप्ताह पाठकोंके सामने उनके मामलेसे सम्बन्धित तथ्य प्रस्तुत किये गये थे। बचाव पक्षका सबूत परिपूर्ण नहीं लगता किन्तु फिर भी लाला लाभूरामके वकीलकी समझमें उतना ही सबूत कुल मिलता है। इसकी भी काफी सम्भावना है कि उनकी ओरसे दिये गये बयान अदालतमें दर्ज नहीं किये गये क्योंकि अदालतका फैसला इस साभिप्राय वाक्यसे शुरू होता है कि "बचाव पक्षकी ओरसे दिये गये सबूत बेकार हैं।" सबूतकी लिखित टिप्पणियोंमें एक स्थानपर यह भी दर्ज है: "अभियुक्त सं० ९की ओरसे की गई जिरह विषयसे सम्बन्धित नहीं है"। न्यायाधीशोंने शायद बचाव पक्षके सबूतोंको भी बेकार माना होगा! सौभाग्यसे श्रीमती लाभूरामकी विस्तृत याचिका है; उसका सहारा लिया जा सकता है। किसी खण्डनके अभावमें इसे बचाव पक्षका एक सही सबूत मानना चाहिए।

करमचन्दकी तरह श्री लाभूराम एक गरीब और तरुण छात्र नहीं हैं; और न जगन्नाथके समान एक मामूली व्यापारी ही। वे एक सिविल इंजीनियर हैं। मालनदेवी बताती हैं कि वे "लाहौरके एक बड़े प्रतिष्ठित और राजनिष्ठ परिवारके हैं। उनके कई रिश्तेदार सरकारी सेवामें उत्तरदायी पदोंपर हैं।" उन्होंने ग्लासगोमें अपनी शिक्षा सम्पन्न की। १९१२में वे इंग्लैंडसे वापस आये। कुछ समयके लिए वे पुंछमें रियासतके इंजीनियर रहे। "जहाँ उन्होंने न केवल अपने कार्यसे ऊँचे अधिकारियोंको पूरी तरह सन्तुष्ट किया वरन् भरतीके काममें अधिकारियोंकी वास्तविक मदद की। वे किसी भी राजनैतिक संस्था अथवा किसी भी समाज या सभाके सदस्य नहीं थे, और न ही उन्होंने किसी भी प्रकारके प्रचार-कार्यमें हिस्सा लिया। वे कभी भाषण आदि सुनने नहीं जाते थे। उन्होंने हालकी हड़तालमें कोई हिस्सा नहीं लिया।" समाजमें श्री लाभूरामकी स्थितिपर मैंने यहाँ कुछ विस्तारसे लिखा है; क्योंकि अगर इस मुकदमेको और कोई सहारा न मिले तो यह मुकदमा गवाहोंकी विश्वसनीयतापर ही निर्भर करेगा। कई अभियुक्तोंने जिनमें लाला लाभूराम भी थे, अपराधके समय उस स्थानपर न होनेकी बात कही, और जैसा कि मुझे एक मामलेके सम्बन्धमें टिप्पणी भी करनी पड़ी थी, अदालतें घटनास्थलपर न होनेकी दलीलको हमेशा काफी सन्देहकी दृष्टिसे देखती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि इस मामलेका जो सबसे कमजोर पहलू हो सकता है उसीको ध्यानमें रखकर इसपर विचार किया जाये और अदालतको इस बातका श्रेय दिया जाये कि उसने तमाम सबूतोंको निष्पक्षतासे जाँचा होगा। अतः मेरा निवेदन है कि जबतक अदालतके पास बहुत अधिक और अकाट्य प्रमाण लाला लाभूरामके इस कथनके विरुद्ध न हों कि वे बादशाही मसजिदकी सभामें मौजूद नहीं थे —और उनके इस कथनके समर्थनमें अनेक प्रतिष्ठित लोगोंने गवाही दी है — तबतक अदालतको उनका बयान अवश्य स्वीकार करना चाहिए था और उन्हें ससम्मान बरी कर देना चाहिए था।

ऐसे मामलोंमें किसी निष्कर्षपर पहुँचनेमें अभियुक्तका सामाजिक दर्जा वस्तुतः बड़ा महत्त्व रखता है और मैं दावा करता हूँ कि समाजमें लाला लाभूरामका दर्जा ऐसा ही है; अदालतमें उनकी स्थितिको मजबूत रखनेके लिए वह पर्याप्त होना चाहिए था।

परन्तु पाठक चाहें तो उनकी सम्माननीयताकी दलीलको भूल जायें। शायद विरोधियोंकी — पंजाबकी अदालती कार्रवाइयोंके समर्थकोंकी — यह दलील अनुचित नहीं होगी कि जब पंजाबके अच्छेसे-अच्छे लोगोंपर भी बहुत सन्देह किया जा रहा था और उन्हें विगत अप्रैलके उपद्रवोंमें घसीटा जा रहा था, तो सम्माननीयताके प्रश्नपर ध्यान नहीं दिया जा सकता। परन्तु पंजाबके न्याय आयोग इससे कई गुना आगे बढ़ गये। जैसा कि इन पृष्ठोंके पाठकोंने अबतक देख लिया होगा, उन्होंने कई मामलोंमें प्रायः बचाव पक्षके सबूतोंको पूराका-पूरा ही अस्वीकार कर दिया है। श्री लाभूराम २० अप्रैलको अर्थात् कथित अपराधके बाद आठवें दिन गिरफ्तार किये गय थे। एक पुलिस अधिकारीको एक साथ मिलकर मारनेका आरोप जिन सौ आदमियोंपर लगाया गया था, उनमें एक वे भी माने जाते हैं। वे इस अधिकारीसे पहलेसे परिचित नहीं थे और न ही अभियोग पक्षका एक भी गवाह ऐसा था जो पहलेसे अभियुक्तोंको जरा भी ढंगसे जानता रहा हो। ऐसेमें यदि सर्वथा असम्भव नहीं तो यह नितान्त कठिन तो है ही कि कई हजारकी उत्तेजित भीड़में से आदमियोंको पहचान लिया जाता। जिस पुलिस डायरीमें हमलावरोंके नाम दर्ज किये गये थे उसमें श्री लाभूरामका नाम नहीं है। अभियोग पक्षके ११ गवाहोंमें से ६ ने अभियुक्त लाभूरामके बारेमें कुछ नहीं कहा। श्रीमती लाभूराम कहती हैं कि "गवाह, जिन्होंने याचिका देनेवाली (श्रीमती लाभूराम) के पतिकी शिनाख्त की, पुलिस कर्मचारी हैं या पुलिसमें दिलचस्पी रखनेवाले हैं। उनमें से अधिकांश मार्शल-लॉ (फौजी-कानून) के अन्य मामलोंमें भी अभियोग पक्षके गवाह बनकर अदालतमें आ चुके हैं।" यदि यह कथन सत्य है तो अभियोग पक्षके लिए बहुत हानिकर है। इसका अर्थ यह है कि वे पेशेवर गवाह थे। चूँकि अभियुक्त घटनाके आठ दिन बाद गिरफ्तार किया गया था इसलिए कोई भी सोचेगा कि अभियोग पक्ष इस विलम्बका कुछ कारण बतायेगा। यही बात श्रीमती लाभूराम अपनी याचिकामें कहती है: "शिकायतकी बहीमें चूँकि याचनाकर्त्रीके पतिका नाम दर्ज नहीं किया गया था अतः पुलिसको उनकी सहापराधिता-का पता कब और कैसे लगा, यह नहीं बताया गया।" अभियोग पक्षके मामलेका यह एक नमूना है। बचाव पक्षके मामलेमें बहुत-कुछ है। "लाहौरके एक सुविख्यात चिकित्सक डॉ० बोधराज, डॉ० भोलाराम और उनके कम्पाउन्डरने बयान दिया कि कथित हमलेके समय लाभूराम अपने बीमार बेटेकी चिकित्साके सिलसिलेमें उनके साथ व्यस्त थे।"

पाठकोंको यह जानकर धक्का-सा लगेगा कि श्री लाभूरामकी सम्पत्ति जब्त करके निर्वासनकी अवधी घटाकर अब १४ सालकी कैदकी सजा दी गई है। यद्यपि मैं एक पत्नीके उस दुःख और व्यथाको जो उसको अपने पतिसे व्यर्थ ही वियोग होनेसे होती है, अच्छी तरह समझ सकता हूँ और हमदर्दी करता हूँ, और इसीलिए जब कि श्रीमती लाभूरामकी यह याचना कि यदि पूरी तरह बरी करना सम्भव न हो तो

दण्ड कम कर दिया जाये, समझमें आती है — लेकिन दण्डमें जो कमी की गई है उससे मुझे जरा भी सन्तोष नहीं हुआ है। श्री लाभूराम कोई बच्चे नहीं है। वे एक दुनियादार और सुसंस्कृत आदमी हैं और अपने उत्तरदायित्वको जानते हैं। यदि उन्होंने एक ऐसे निर्दोष व्यक्तिपर कायरतापूर्ण हमलेमें भाग लिया, जो अपने कर्त्तव्यका पालन कर रहा था, तो उन्हें कठोर दण्ड मिलना ही चाहिए और वे दयाके पात्र नहीं हैं। क्योंकि वैसी स्थितिमें उन्होंने अपने इस जुर्ममें झूठी गवाही देनेका जुर्म भी जोड़ लिया है। अतएव यदि उनका पक्ष सच्चा नहीं है तो वे दयाके पात्र नहीं हैं और यदि वह सच्चा है तो न्याय पूर्णतः तभी सन्तुष्ट होगा जब वे रिहा हो जायेंगे।

मैं अदालतके उस अति कुत्सित तरीकेपर कुछ नहीं लिख रहा हूँ जो उसने "विद्रोह-की स्थिति"को कानूनी तौरपर ध्यानमें रखकर अपनाया है। १२ अप्रैलको लाहौरकी जो स्थिति थी उसे विद्रोहकी स्थिति मानना, और सरकारकी एक फौजी घोषणाको न्यायके मामलेमें इस तरह प्रयोग करने योग्य प्रमाणपत्र मानना वास्तवमें कानूनी शब्दोंका दुरुपयोग करना है। अदालतके सामने जो सबूत आये उनसे सम्राट्के विरुद्ध युद्ध छेड़नेकी पुष्टि नहीं होती। अभी हालमें लिवरपूलके लोगोंने जो-कुछ किया वह बादशाही मसजिदवाली सभाके मुकाबले कहीं ज्यादा उग्र कार्य था। परन्तु जिसका अरसेसे इन्तजार था, अब उस आयोगकी नियुक्ति हो गई है और यदि उसको सजाओं-पर पुनर्विचार करनेका अधिकार दिया गया है, तो आयोगके सदस्योंको श्री लाभूरामके जैसे मामलोंपर पुनः निर्णय देनेका अवसर मिलेगा। परन्तु पंजाब सरकार तथा भारत सरकारसे भी मेरा निवेदन है कि जिन मामलोंमें केवल लिखित सबूतोंसे यह जाहिर हो जाता है कि न्याय नहीं मिल पाया, वहाँ उनकी नैतिक जिम्मेदारी है कि आयोगकी आड़ लिये बगैर अभियुक्तोंको अपने-आप रिहा कर दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-९-१९१९

७६. सत्याग्रह

[सितम्बर ११, १९१९][1]

सत्याग्रहके सम्बन्धमें हम लोगों तथा अंग्रेजोंमें अभीतक इतनी भ्रान्ति फैली हुई दिखाई देती है कि इसके बारेमें, हालाँकि मैं बहुत-कुछ लिख और बोल चुका हूँ, फिर भी पुनरुक्ति दोषके बावजूद कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ।

सत्याग्रह शब्दकी रचना अमुक प्रवृत्तिको सूचित करनेके लिए दक्षिण आफ्रिकाम की गई थी। वहाँ हमारे भाई जो महान् संघर्ष कर रहे थे उसे पहले तो गुजरातीमें भी सब कोई "पैसिव रेजिस्टेंस"के रूपमें जानते थे। एक बार मैं अंग्रेजोंकी एक सभामें

१. यह लेख सर्वप्रथम बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले गुजराती दैनिक **साँझ वर्तमान**के पटेटी अंकमें प्रकाशित हुआ था। १९१९ में पटेटी (पारसियोंका नया साल) ११ सितम्बरको पड़ा था।

इस संघर्षके सम्बन्धमें भाषण दे रहा था; उस सभाके अध्यक्षने कहा कि बेचारे भारतीयोंके पास न तो 'वोट' है और न हथियार, अतः 'पैसिव रेज़िस्टेंस'के सिवा और क्या कर सकते हैं? कमजोरोंका हथियार तो 'पैसिव रेज़िस्टेंस' ही हो सकता है? ये अध्यक्ष मेरे मित्र थे। उन्होंने तो ये विचार सरल भावसे प्रगट किये थे लेकिन मैंने अपनेको अपमानित महसूस किया। मुझे पता था कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय लोग जो युद्ध कर रहे थे उसका कारण उनकी दुर्बलता नहीं थी। उन्होंने सोच-समझकर युद्धकी इस पद्धतिको अपनाया था। जिस समय मेरी बारी आई उस समय मैंने अपने मित्रके उपर्युक्त विचारोंको सुधारा और बताया कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयों-जैसा युद्ध दुर्बल व्यक्तियों द्वारा किया ही नहीं जा सकता। सिपाहियोंको जिस साहसकी जरूरत होती है, इस युद्धमें कहीं अधिक हिम्मत मुझे दिखाई पड़ रही थी।

मैं जिस समय इस संघर्षके सम्बन्धमें इंग्लैंड गया था उस समय मैंने देखा कि मताधिकार चाहनेवाली (सफ्रेजेट) महिलाएँ मकानोंमें आग लगा देती थीं, अधिकारियों-को चाबुक मारती थीं फिर भी अपनी लड़नेकी इस पद्धतिको 'पैसिव रेज़िस्टेंस'के नामसे पुकारती थीं तथा जनसमाज भी उसे इसी नामसे पहचानता था। दक्षिण आफ्रिकाके संघर्षमें ऐसी आक्रामकताको कोई अवकाश न था।

इसलिए मैंने महसूस किया कि दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईको 'पैसिव रेज़िस्टेंस'के नामसे पहचाननेमें बहुत भय है। इसके लिए मुझे वहाँ कोई ऐसा अंग्रेजी शब्द नहीं मिला जो प्रचलित हो सकता। ऊपर मैं अंग्रेजोंकी जिस सभाका जिक्र कर आया हूँ, उसमें मैंने अपनी लड़ाईका परिचय "सोल फोर्स"के नामसे दिया था। लेकिन अपने संघर्षको हमेशा इस नामसे पुकारनेकी मेरी हिम्मत न पड़ी। समझदार अंग्रेज मित्र भी 'पैसिव रेज़िस्टेंस' शब्दकी अपूर्णताको पहचान गये थे लेकिन [इसके स्थानपर] वे मुझे कोई दूसरा शब्द न दे पाये थे। 'सिविल रेज़िस्टेंस' शब्द समुचित रूपसे हमारे संघर्षका ठीक बोध कराता है। यह मुझे कुछ समय पूर्व अनायास ही सुझाया गया था और तबसे मैं अंग्रेजीमें तो इसका प्रयोग कर रहा हूँ। 'सिविल डिसओबिडियन्स' में जो अर्थ निहित है उसकी अपेक्षा 'सिविल रेज़िस्टेंस' कहीं अधिक अर्थ-गर्भित है। तथापि 'सत्याग्रह' शब्दकी तुलनामें उसका अर्थ भी हलका पड़ता है।

इसके सिवा दक्षिण आफ्रिकामें मैंने देखा कि हमारी लड़ाईमें विशुद्ध सत्य और न्याय ही था और लड़नेमें जिस बलका प्रयोग किया जाता था वह पशुबल नहीं आत्मबल था। वह कितना ही कम क्यों न रहा हो फिर भी उसका सम्बन्ध आत्मासे था। इस बलका प्रयोग हम पशुओंमें नहीं देख सकते, और सत्यमें हमेशा आत्माकी शक्ति होती है, इसी कारण दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईको हमने अपनी भाषाओंमें सत्याग्रहके नामसे पुकारना शुरू किया।

इस तरह यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सत्याग्रहका मूल पवित्रतामें निहित है। अब हम समझ सकते हैं कि सत्याग्रहमें केवल कानूनका सविनय भंग नहीं है। अनेक बार सविनय भंग न करनेमें ही सत्याग्रह हो सकता है। जिस समय कानून-का सविनय भंग करना ही हमें अपना कर्त्तव्य जान पड़े और वैसा न करनेपर

अपने पुरुषार्थ और अपनी आत्मापर लांछन लगता दिखाई पड़े उस समय कानूनका सविनय भंग करनेमें ही सत्याग्रह हो सकता है। इस तरहका सत्याग्रह न केवल सरकारके विरुद्ध, बल्कि समाजके विरुद्ध भी किया जा सकता है; यह पति-पत्नी, बाप-बेटे और मित्रोंके बीच भी हो सकता है। संक्षेपमें, प्रत्येक क्षेत्रमें और लगभग हरएक सुधारके लिए हम इस महान् शस्त्रका प्रयोग कर सकते हैं। यह शस्त्र प्रहारकर्त्ता तथा जिसपर प्रहार किया जाये उस व्यक्ति, दोनोंको ही पवित्र करनेवाला है। इसके सदुपयोगका परिणाम किसी भी समय बुरा हो ही नहीं सकता। इसमें हमेशा सफलता ही मिलती है। यदि सत्याग्रहके नामपर दुराग्रह किया जाये और उसका बुरा परिणाम निकले तो इसके लिए सत्याग्रहको दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

परिवारोंमें अनेक बार जाने-अनजाने सत्याग्रहका ऐसा प्रयोग होता ही रहता है; जैसे कि बेटा बापके अन्यायको महसूस करता है और उसे अस्वीकार करते हुए बाप जो सजा दे उसे आनन्दपूर्वक झेल लेता है तथा ऐसा करते हुए अन्तमें क्रूर बापको भी वशमें करके न्याय प्राप्त करनेमें सफल हो जाता है। लेकिन हम अपनी जड़ताके कारण पारिवारिक क्षेत्रके बाहर इस कानूनका उपयोग करनेमें हिचकिचाते हैं। इसलिए राजनैतिक और सामाजिक विषयोंमें सत्याग्रह करनेके प्रयोगको मैंने नया माना है। यह प्रयोग नया है – इसकी ओर हमारा ध्यान पहले-पहल स्वर्गीय टॉल्स्टॉयने अपने पत्रमें खींचा था।

कुछ लोग यह मानते हैं कि सत्याग्रह तो केवल धार्मिक विषयोंके सम्बन्धमें ही किया जा सकता है। मेरा व्यापक अनुभव ठीक इससे विपरीत बात सिद्ध करता है। अन्य विषयोंमें उसका प्रयोग करके हम उनमें धर्मका संचार कर देते हैं और ऐसा करके हम वस्तुतः जल्दी विजय प्राप्त करते हैं तथा अनेक प्रकारके मिथ्याचारसे बच जाते हैं।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि सत्याग्रहमें अर्थशास्त्रके बहुत सूक्ष्म नियमोंका पालन हो जाता है। इस अर्थमें मैं सत्याग्रहको व्यावहारिक प्रवृत्ति मानता हूँ। मैंने ऊपर सत्याग्रहका जो अर्थ बताया है, उस अर्थमें सत्याग्रह एक नवीन प्रवृत्ति है और इसलिए लोगों द्वारा उसे न पहचाननेके कारण स्वीकार करनेमें विलम्ब होना स्वाभाविक है और जिससे उत्तम परिणाम निकलनेकी सम्भावना हो, उसमें देर लगे तो आश्चर्य क्या? लेकिन जब सत्याग्रह हिन्दुस्तानमें व्यापक प्रवृत्तिके रूपमें रूढ़ हो जायेगा तब जिन राजनैतिक अथवा सामाजिक सुधारोंको करनेमें अभी हमारा इतना समय लग जाता है उनमें उससे कहीं-कम समय लगा करेगा। राजा-प्रजाके बीच जो अविश्वास और दूरी है वह मिट जायेगी और उसका स्थान विश्वास और प्रेम ले लेंगे। यही बात समाजके अन्यान्य अंगोंके बारेमें कही जा सकती है।

जनतामें इस प्रवृत्तिका अधिक विस्तार करनेके लिए केवल एक वस्तुकी आवश्यकता है। यदि नेता लोग इसके शुद्ध स्वरूपको पहचान लें और उसे प्रजाके सामने रखें तो मुझे विश्वास है कि प्रजा इसे स्वीकार करनेके लिए तैयार है। इसे पहचाननेके लिए सत्य और अहिंसापर विश्वास होना जरूरी है। सत्यका अर्थ करनेकी आवश्यकता नहीं, और यहाँ मैं अहिंसाके बहुत सूक्ष्म अर्थकी माँग भी नहीं कर रहा हूँ। यहाँ

अहिंसासे मेरा मतलब इतना ही है कि जिससे हम न्याय प्राप्त करनेकी आशा रखते हैं उसके प्रति कोई वैरभाव न रखें, उसे मारकर अथवा किसी भी प्रकारकी क्षति पहुँचाकर उससे काम करानेकी इच्छा न करें बल्कि अपने निश्चयपर अडिग रहते हुए किन्तु विनयपूर्वक हम अपना कार्य करें। तथा इस तरहके सुधार करानेके लिए सिर्फ इतनी ही अहिंसाकी जरूरत है।

जब लोग सत्याग्रहको अंगीकार कर लेंगे तब हमारी समस्त प्रवृत्तियाँ एक भिन्न स्वरूप धारण कर लेंगी। हम बहुत भारी पचड़ोंसे, आडम्बरयुक्त भाषणोंसे, प्रार्थना-पत्रोंसे, अनेक प्रस्तावों और प्रपंचोंसे बच जायेंगे। मुझे तो राष्ट्रकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक उन्नति जिस हदतक सत्याग्रहमें दिखाई देती है उस हदतक किसी अन्य वस्तुमें नहीं दिखाई देती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–९–१९१९

७७. पत्र: महादेव देसाईको

गुरुवार [सितम्बर ११, १९१९][1]

भाईश्री महादेव,

तुम्हारा पत्र और टिप्पणियाँ आदि मिलीं। दण्डविमुक्ति[2] (इंडेम्निटी) के बारेमें तुम्हारी दलीलोंपर तो हम ट्रेनमें ही विचार कर चुके थे और निर्णयपर पहुँच गये थे। फिर भी वह पैराग्राफ निकाल दिया तो कोई हर्ज नहीं। उसके बारेमें हम यदि फिर लिखना चाहेंगे तो लिख सकेंगे।

पोलकका पत्र भयंकर है। यदि राजाओंकी जाँच न हुई तो फिर कमीशनका क्या उपयोग रहा। यह तो एक महत्त्वपूर्ण बात है और इसे यों ही उड़ा दिया गया है।

'दुर्गा' के साथ 'गौरी' तो मुझे भी खटका। लेकिन लिख गया और छपनेके बाद देखा तब सूझा। 'मणि' के साथ भी मैंने 'गौरी' जोड़ा था, फिर काट दिया। 'दुर्गा महादेव' जँचा नहीं। लेकिन मैं मानता हूँ कि जँचने-न-जँचनेका विचार हम नहीं कर सकते। दूसरी जो त्रुटियाँ तुमने बताई हैं, वे दूर हो सकती थीं। मैंने वे सब भाई इन्दुलालको बता दी हैं।

कलकी अपेक्षा आज तबीयत कुछ ठीक है।

शनिवारको वहाँ पहुँचूँगा।

बापूके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११४०५) की फोटो-नकलसे।

१. दुर्गागौरी और मणि द्वारा लिखित जिन लेखोंका पत्रमें उल्लेख है वे ७–९–१९१९ को प्रकाशित **नवजीवन**के प्रथम अंकमें छपे थे। पत्र उसके बाद पड़नेवाले गुरुवार, सितम्बर ११ को लिखा गया होगा।

२. देखिए "वाइसरायका भाषण", १४–९–१९१९ और "दण्डविमुक्ति विधेयक", २०–९–१९१९।

७८. स्वदेशीका तात्पर्य

[सितम्बर ११ १९१९][१]

स्वदेशी अर्थात् भारतमें पैदा होनेवाली वस्तुओंका सब भारतीय ही उपयोग करें। इसमें आर्थिक स्वातन्त्र्य है, इस कारण स्वदेशी अर्थात् आर्थिक स्वतन्त्रता।

आर्थिक स्वतन्त्रताके बिना स्वराज्यका कोई अर्थ नहीं है; इसलिए स्वदेशी अर्थात् स्वराज्य भी कह सकते हैं।

लेकिन हिन्दुस्तानकी हालत इतनी गिर गई है कि हम अपनी जरूरतकी सब चीजोंका उत्पादन नहीं कर सकते।

इसलिए जिस वस्तुकी हमें सबसे अधिक जरूरत है, उसके सम्बन्धमें हमें स्वदेशी-का पालन करना चाहिए।

वह वस्तु कपड़ा है; इसलिए भारतमें तैयार होनेवाले कपड़ेका उपयोग करना ही फिलहाल स्वदेशीका पालन करना है।

यह स्वदेशी धर्म कोई हिन्दुओंके लिए अथवा बम्बईके लिए नहीं है। इसका पालन करना, हिन्दुस्तानमें रहनेवाले हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, गोरे-काले, स्त्री-पुरुष, सबका कर्त्तव्य है।

हम सब स्वदेशी कपड़ेका ही इस्तेमाल करनेका व्रत लेकर अपनेको बाँध लें।

हमारी जरूरतका सारा कपड़ा हिन्दुस्तानमें तैयार नहीं होता इसलिए हम उसका उत्पादन करें।

हम सब धनाढ्य नहीं हैं फिर भी यह हमारा फर्ज है कि हम सारा कपड़ा तैयार करें। इसलिए हमें मिलके अतिरिक्त अन्य तरीकेसे सूत और कपड़ा तैयार करना जान लेना चाहिए जिससे गरीब लोग भी इस महान् कार्यमें हाथ बँटा सकें। ऐसा साधन हमारा प्राचीन चरखा और करघा है।

प्रत्येक स्त्री अपने खाली समयमें सूत कातना अपना धर्म समझे तो जनताको सूत रुईके दाम पड़े।

प्रत्येक पुरुष अपने फालतू समयमें सूत बुने तो लोगोंको रुईके दाम कपड़ा मिले।

स्त्री और पुरुष दोनों ही उपर्युक्त दोनों कलाओंको सीख सकते हैं। कातना सीखनेमें एक सप्ताह लगता है और बुनना सीखनेमें आठ सप्ताह।

चरखा चार रुपयेमें मिलता है। करघेपर २५ से ४० रुपयेतक खर्च आता है। इन दोनों चीजोंको हमारे बढ़ई आसानीसे बना सकते हैं।

जो रुई नहीं कात सकता उसे ४० तोले सूत कातनेमें अधिकसे-अधिक तीन आने मिल सकते हैं। जो मुफ्त सूत नहीं बुन सकता उसे २४ इंच पनहेकी एक गज खादी बुननेका कमसे-कम एक आना मिल सकता है।

१. यह लेख भी **साँझ वर्तमान**के पटेटी अंकमें प्रकाशित हुआ था। देखिये "सत्याग्रह", ११-९-१९१९ की पाद-टिप्पणी १ ।

मैं यह कामना करता हूँ, कोई भी इस कायरतापूर्ण प्रश्नको न उठाये कि लोग कब कातें और कब बुनें।

जो पाठक स्वयं सूत कातने अथवा बुननेका निश्चय करेगा तो उसके काते-बुनेका उसको तथा जनताको उतना लाभ हुआ यह तो माना ही जायेगा। फिर जितना शौर्य तथा देशाभिमान हममें है उतना ही हम दूसरोंमें भी क्यों न मानें? 'आप भला तो जग भला' उसी तरह हम उद्यमी तो जग उद्यमी।

चालू प्रवृत्तिके अन्तर्गत फिलहाल कमसे-कम दो हजार चरखे चलते हैं, तथा कमसे-कम बारह सौ नये बुनकर हो गये हैं।

लेडी टाटा, लेडी पेटिट, श्रीमती जाईजी पेटिट आदि बहनोंने कातना आरम्भ कर दिया है अथवा करनेवाली हैं। हिन्दू बहनोंमें तो बहुतोंने सीख लिया है। इसलिए किसकी प्रशंसा करें और किसका मन दुखायें?

पाठक! आप भी, बहन हों अथवा भाई, अपने कर्त्तव्यपर विचार करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-९-१९१९

७९. पत्र: जे० क्रिररको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
सितम्बर १२, १९१९

प्रिय श्री क्रिरर,

आपका पत्र मेरे आश्रम पहुँचते-न-पहुँचते यहाँ आ गया था। समझमें नहीं आ रहा था कि जवाब क्यों नहीं मिल रहा है, परन्तु मुझे लगा कि आप मेरा आशय[1] ठीक नहीं समझे। खैर, आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपके पत्रको ध्यानमें रखते हुए मैंने वह लेख[2] प्रकाशित नहीं किया है। फिर भी मेरा खयाल है कि मैंने उसे पूरा-पूरा किसी समाचारपत्रमें[3] प्रकाशित देखा है। श्री पिक्थॉलने जिस लेखकी चर्चा की है मुझे ध्यान है कि वह भी अंग्रेजी समाचारपत्रोंमें उद्धृत किया गया था।

हृदयसे आपका,

श्री जे० क्रिरर
सरकारके सचिव
न्याय-विभाग
पूना

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ६८५०) की फोटो-नकलसे।

१. आशय अगस्त ७, १९१९ के पत्रसे है।

२. टर्कीपर मार्माडयूक पिक्थॉलका लेख। इस सम्बन्धमें क्रिररने लिखा था: "... यदि यह भारतमें प्रकाशित हुआ तो गलतफहमी फैलेगी।"

३. **न्यू एज**।

८०. गुजरातीमलका मुकदमा

गुजरातीमल अठारह सालकी उम्रका एक लड़का है जिसे मिडिलसे अधिक शिक्षा नहीं मिली। सोलह सालकी उम्रमें उसने फौजी विभागमें एक 'ड्रेसरके' रूपमें अपनी नियुक्ति करा ली। मुल्तान छावनीमें लगभग एक वर्ष काम करनेके बाद वह मिस्र गया और वहाँ भी एक साल नौकरीमें बिताया। इसके बाद वह एक महीनेकी छुट्टी लेकर पंजाब लौटा। ८ अप्रैलको वह हाफिजाबादसे पाँच मील दूर अपने गाँव मधरानवाला पहुँचा। वह गाँवमें ही रहा और अपनी दुकानकी मरम्मत कराता रहा। परन्तु गुजरातीमलका ७० वर्षीय वृद्ध पिता इस प्रकार लिखता है: "हम अचम्भेमें पड़ गये जब पुलिसके कुछ आदमी उसके नाम वारंट लेकर १६ तारीखको वहाँ आये और उन वारंटोंके मुताबिक उसपर अभियोग चलाया। हम बिलकुल आश्चर्यचकित रह गये क्योंकि हम समझ नहीं पाये कि मामला क्या है।" यह उस तरहका मामला नहीं है जिनमें कोई भी अनजान व्यक्ति केवल उन गवाहियोंको, जिन्हें 'यंग इंडिया'के पिछले अंकमें प्रकाशित किया गया था, पढ़कर पक्के निर्णयपर पहुँच सके। स्मरण रहे कि गुजरातीमलका मुकदमा उन उन्नीस मुकदमोंमें से एक है जिनकी सुनवाई एक साथ हुई। करमचन्दके[1] मामलेके सम्बन्धमें फैसलेकी व्याख्या करनेका मौका मुझे मिल चुका है और उस फैसलेके बारेमें मैंने जो-कुछ कहा है वह इस मामलेपर भी स्वाभाविक रूपसे वैसे ही घटित होता है जैसे कि बालक करमचन्दके मामलेपर। परन्तु गवाहियोंको पढ़कर किसी ऐसे निश्चित निष्कर्षपर पहुँच सकना सम्भव नहीं है कि बचाव पक्ष द्वारा घटनाके समय अन्य स्थानपर होनेकी दलील सिद्ध हो गई थी। जैसा कि पाठकोंने देखा होगा, पूरी गवाही कुछ ऐसी काट-छाँट करके ली गई है कि क्या छोड़ दिया गया है, किसीकी समझमें नहीं आ सकता। गवाहियोंसे यह भी स्पष्ट है कि अभियोग पक्षके गवाह अधिकतर पुलिसके आदमी हैं या पुलिससे सम्बन्धित हैं, और यह भी स्पष्ट होता है कि अभियुक्त रँगे हाथों नहीं पकड़े गये वरन् उनमें से अधिकांश घटनाके कुछ समय बाद पकड़े गये थे। निश्चय ही गुजरातीमल, जो प्रमुख वक्ता और मारनेवालोंमें एक बताया जाता है, रँगे हाथों नहीं पकड़ा गया था बल्कि कथित हमलेके दो दिन बाद पकड़ा गया। गुजरातीमलको फाँसीका हुक्म सुनाया गया। बादमें फाँसीकी सजा घटाकर निर्वासनकी कर दी गई और अब जैसा कि उसके पिताने सुना है यह सजा और घटाकर सात सालकी सख्त कैद कर दी गई है। अठारह सालके एक लड़केको जो अपना अपराध अस्वीकार करता है, जो घटना-स्थलपर अपनी उपस्थितितक से इनकार करता है, और जिसने अभी हालतक सरकारकी सेवा की है, उसे बेसाख गवाहोंकी शिनाख्तके अत्यन्त सन्दिग्ध आधारपर, फाँसीका हुक्म सुना देना अत्यन्त गम्भीर बात है।

१. देखिए "दोषी नहीं, अन्यायके शिकार", ३-९-१९१९।

इन टिप्पणियोंके साथ मैं गुजरातीमलके पिता द्वारा प्रस्तुत तथ्योंका सारांश भी देता हूँ और सादर निवेदन करता हूँ कि यदि उसके पिताके दिये हुए तथ्य सच हों तो वह बिना और जाँच-पड़तालके रिहा कर दिये जानेका हकदार है। वैसे उन तथ्योंके न होनेपर भी पूरे मामलेकी पूरी तरहसे जाँच-पड़तालकी जरूरत है। उसके पिताका कहना है कि "घटनाके पाँच हफ्ते बाद २३ मईको जिलेके डिप्टी कमिश्नरने सभी निवासियोंको एक जगह इकट्ठे होनेका हुक्म दिया ताकि अभियोग-पक्षके गवाह और लेफ्टिनेंट टैटम भी शिनाख्त करें।" गुजरातीमल भी भीड़में था। इसके आगे पिताके बयानका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश आता है: "अभियोग-पक्षके गवाह सं० ३, ४, ७, ८, ९, १५, १६, १८, १९ जिन्होंने बादमें उसके खिलाफ गवाही दी, इस अवसरपर इनमें से एक भी उसकी शिनाख्त नहीं कर सका और न लेफ्टिनेंट टैटम ही शिनाख्त कर सके।" यदि यह सच है तो निश्चय ही गुजरातीमलपर गलत अभियोग लगाया गया है। और जब हम इस तरहके दहलानेवाले बयान पढ़ते हैं जैसा कि अभियोग-पक्षके गवाह सं० १३ का है तो हम शिनाख्तके पूरे सबूतको कहाँतक विश्वसनीय मानें। बयान इस प्रकार है: "श्री टैटमने करमसिंह, जीवनकिशन और मूलचन्दकी शिनाख्त की। श्री टैटमने मुझे भी मारनेवालोंमें से एक बताया और जब डिप्टी कमिश्नरने कहा कि यह तहसीलदार है तो श्री टैटमने कहा कि जो आदमी मुझे याद आ रहा है वह इससे ज्यादा मोटा था।" यदि यह सच है — और निश्चय ही अभियोग-पक्ष इसकी सचाईपर सन्देह नहीं कर सकता — तो यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें अभियोग-पक्ष द्वारा पेश की गई शिनाख्तकी गवाहियोंके विश्वसनीय होनेपर गम्भीर सन्देह अवश्य होगा। उसके पिताका यह भी कहना है कि अभियोग-पक्षका गवाह सं० ३ कहता है कि गुजरातीमलने स्टेशनपर एक व्याख्यान दिया, जबकि अभियोग-पक्षका गवाह सं० १६ कहता है कि व्याख्यान ज्ञानसिंहने दिया। यह गड़बड़ी लिखित गवाहियोंसे प्रमाणित की जा सकती है। पिता फिर कहता है कि अभियोग-पक्षके गवाह सं० १५ने, जो ३ मईको गुजरातीमलको पहचान नहीं सका था, मुकदमेमें कहा कि गुजरातीमल एक झंडा लिये था, आदि। पिता पहले भी कई याचिकाएँ अधिकारियोंको दे चुका है। वह एक गरीब आदमी है और अभियुक्त एक महत्त्वहीन लड़का है। इसलिए भी मेरी रायमें मामलेकी खोजपूर्ण छानबीनकी और-ज्यादा जरूरत है। वाइसराय महोदयने अपने भाषणमें कृपापूर्वक कहा था कि "जो मामले भारत सरकारके सामने आये हैं उनके बारेमें मुझे यह दावा करनेमें कोई झिझक नहीं है कि उनपर बहुत अधिक सावधानीसे विचार किया गया और जितनी जल्दी हो सकता था हुक्म सुना दिया गया।" मेरे सामने जो पत्र है वह बताता है कि पिताने महामहिमको भी याचिका दी थी। यह पूछना गुस्ताखी नहीं होगी कि पिताकी याचिकामें सरकारकी प्रतिष्ठाको गम्भीर धक्का पहुँचानेवाले बयानोंपर "अत्यन्त सावधानीसे विचार करने"का परिणाम क्या निकला। यदि उसके बयान बेकार समझे गये तो भी उसे यह जाननेका अधिकार था और अब भी है कि उनका फैसला किस आधारपर किया गया।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-९-१९१९

८१. बहनोंसे [–१]

सितम्बर १४, १९१९[1]

जिसमें हिन्दुस्तानका उद्धार अन्तर्निहित है और जिसके बिना भारतका उद्धार नहीं हो सकता ऐसी महत्त्वपूर्ण लेकिन एक सरल बात मुझे आपसे कहनी है। पुरुष अपनी मूढ़तावश स्त्रीके प्रति अपने कर्त्तव्यको भूल जाता है तो क्या इसलिए स्त्रीको भी स्त्रीके प्रति अपना फर्ज भूल जाना चाहिए?

मुझे दाहोदसे एक पत्र मिला है; उसमें जो बात लिखी है वह हम सबके लिए लज्जाजनक है। संवाददाता कहता है कि ढेढ जातिकी स्त्रियाँ, जिन्हें घरोंमें कोई काम नहीं मिलता, बाहर नौकरी करने जाती हैं और वहाँ उन स्त्रियोंका शील भंग किया जाता है। इस बातको इन बहनोंके दीन-हीन पुरुष और सगे-सम्बन्धी जानते हैं, लेकिन सह रहे हैं। इस जातिके लिए मैंने 'ढेढ' शब्दका प्रयोग किया है लेकिन वे बुनकर हैं। कुछ-एक बुनकरोंको ढेढ क्यों कहा जाता है, यह मैं नहीं जानता। लेकिन यदि हम इस बातको हमेशा याद रखें कि ऐसा स्वच्छ धन्धा करनेके बावजूद ये लोग अस्पृश्य माने जाते हैं तो संभवतः किसी दिन हममें से कुछ लोग अस्पृश्यताके इस दोषसे मुक्त हो जायेंगे। जिस तरह स्त्रियाँ दूसरे धन्धेके अभावमें मजूरी करने जाती हैं उसी तरह पुरुष भी करते हैं। इससे जब उन्होंने देखा कि मैं उन्हें सूत देनेके लिए तैयार हूँ तब उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की कि यदि नियमपूर्वक रोज एक मन सूत मिल सके तो वे बुननेके धन्धेके अलावा कोई दूसरा धन्धा ही नहीं करेंगे। संवाददाता आगे कहता है कि बुनकरों द्वारा उपर्युक्त प्रतिज्ञा लेनेका मुख्य कारण उस अनीतिकी प्रतीति ही है जिसकी मैंने ऊपर चर्चा की है।

ऊपर जिस अनीतिकी बात कही गई है वह अपनी किस्मका अकेला उदाहरण नहीं है, यह बात तो आप अवश्य ही समझ गये होंगे। जब मैं उमरेठमें था तब मुझे बताया गया था कि बहुत-सी स्त्रियाँ दाल बीनकर अपनी आजीविकाके साधनोंमें वृद्धि करती हैं उन्हें व्यापारियोंके यहाँ दाल लेने और देने जाना पड़ता है और वहाँ अनेक प्रकारके उपहासास्पद वाक्यों तथा अपशब्दोंको सहना पड़ता है। मैं चार वर्षोंसे भारत यात्राके दौरान अनेक स्थलोंपर ऐसी शिकायतें सुनता रहा हूँ। मुझे ऐसा महसूस होता है कि सौ वर्ष पूर्व जब हमारी माताएँ करोड़ोंकी संख्यामें सूत कातती थीं तब ऐसा नहीं होता होगा।

इसलिए मैं धनिक और शिक्षित बहनोंसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि यदि आप अपनी गरीब बहनोंके शीलकी रक्षा करना चाहती हैं तो हाथसे सूत कातने और कपड़े बुननेकी प्रवृत्तिमें आगे बढ़कर भाग लें। इस स्थलपर अन्य धन्धोंके बदले इसी धन्धेको प्रारम्भ करनेका क्यों आग्रह कर रहा हूँ, मैं इस सम्बन्धमें बहुत-सी दलीलें न देकर

१. इसकी अंग्रेजी रिपोर्ट १७-९-१९१९ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुई थी।

इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि सूत कातना हमारा प्राचीन और परम्परागत धन्धा माना गया है और इसमें रानियाँतक जुटी रहती थीं। कातनेका काम सीखना अत्यन्त सहल है। कोई भी सामान्य बढ़ई कातनेका उपकरण बना सकता है और उसपर यदि करोड़ों बहनें सूत कातें तो भी, स्थिति यह है कि उसकी सारी खपत केवल हिन्दुस्तानमें ही हो सकती है; फिर यह क्षणिक प्रवृत्ति न होकर [सदा चलती रह सकती है क्योंकि वस्त्र] लगभग अनाजके समान ही उपयोगी वस्तु है। सूत कातनेमें किसी बड़े शारीरिक बलकी आवश्यकता भी नहीं है और इस कार्यको जब चाहे छोड़ा या आरम्भ किया जा सकता है; इसलिए इसे फुरसतमें किया जानेवाला धन्धा भी कह सकते हैं। यदि कुछ समझदार बहनें इस प्रवृत्तिको चलायें तो मैंने ऊपर जिन अत्याचारोंका वर्णन किया है, वे बन्द हो जायें तथा किसी बहनको अनुकूल धन्धेके अभावमें ऐसा काम करनेके लिए न जाना पड़े जिसे करनेमें उसके शीलपर तनिक भी आँच आती हो।

पाठक बहन! बड़े घरकी महिला होनेपर भी अपनी गरीब बहनोंके सतीत्वकी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी आपकी है। मैंने आपको जो राजमार्ग सुझाया है उसपर आप इस सप्ताह विचार करेंगी, ऐसी उम्मीद रखता हूँ। आगामी सप्ताह में यह बात बतानेकी आशा करता हूँ कि प्रत्येक बहन किस तरह मदद कर सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–९–१९१९

८२. बहनोंसे [–२]

[सितम्बर १४, १९१९]

गत सप्ताह मैंने कुछ-एक उदाहरण देकर बताया था कि हमारी गलती, आलस्य अथवा लापरवाहीके कारण अनेक गरीब बहनें स्वतन्त्र धन्धेके अभावमें अत्याचारका शिकार होती हैं। यहाँसे हजारों मील दूर फीजीमें सैकड़ों स्त्रियोंपर जो अत्याचार हो रहे हैं, उन्हें जानकर कँपकँपी छूटना स्वाभाविक है। उसके लिए हम फीजी सरकारको दोषी ठहराते हैं और भारत सरकारसे अनुरोध करते हैं कि वह फीजीमें होनेवाले इन अत्याचारोंको बन्द करवानेका प्रयत्न करे। यह भी हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन हमारी आँखोंके सामने ही फीजीकी अपेक्षा बहुत-अधिक संख्यामें हमारी जो बहनें कष्ट भोग रही हैं उनके बारेमें हम क्या कर रहे हैं? उनके लिए प्रस्ताव पास करके हमें सरकारसे न्याय नहीं प्राप्त होगा। उसके लिए हमें स्वयं ही यथाशक्ति कार्य करना होगा। आप सब बहनोंको सोचना होगा कि इस अत्याचारको कैसे दूर किया जाये। आपको विचार करनेमें, उपाय सुझानेमें मदद करना ही इस पत्रका उद्देश्य है।

हम गत सप्ताह देख चुके हैं कि गरीब बहनोंके, और यदि मुझसे सच पूछा जाये तो चरखा सभी बहनोंके शीलका सर्वोत्तम रक्षक है। आप शायद कहेंगी: "गरीब

बहनोंकी बात तो समझमें आती है, लेकिन अन्य बहनोंका चरखेके साथ क्या सम्बन्ध है ?" प्रसिद्ध कहावत है, "खाली दिमाग शैतानका घर"; मैं निजी अनुभवसे कह सकता हूँ कि आलस करने या निठल्ले बैठनेसे विषयवृत्ति बढ़ती ही है। हमारी सम्पन्न बहनें अपना समय बातचीत अथवा गप्पें मारनेमें या अन्य प्रकारसे गँवा देती हैं। इसके विपरीत यदि वे अपना समय कुछ उपयोगी धन्धेमें लगायें तो उनका मन तथा हाथ-पैर अच्छी तरहसे व्यस्त रहें और यदि चरखा कातनेका काम करें तो उससे दूना लाभ हो। अभी कुछ दिन पहले ही एक बहनकी माँगका सिन्दूर पुँछ गया। उसे चरखेके कामका पता चला। कुलीन परिवारकी यह महिला एक वर्षतक तो बाहर नहीं निकल सकती, इससे उसने सूत कातनेके कामको हाथमें लिया। छः ही दिनमें उसने लगभग आध सेर महीन सूत कातकर भेजा है। उसकी पवित्र इच्छा तो यह है कि विधवाओंके लिए अनिवार्य शोक-काल समाप्त होनेसे पहले वह [कमसे-कम] इतना सूत अवश्य कात ले जो उसके परिवारकी आवश्यकताके लिए काफी हो।

लेकिन मैं विषयसे बाहर चला गया। हमें तो इस बातपर विचार करना है कि यदि गरीब बहनें परवश हो अपना शील खो बैठें तो कैसे उनकी मदद की जाये ? यदि आप-सब बहनें अपना सारा समय इसी कार्यमें लगा सकें तब तो आपको गाँव-गाँव जाकर यह मालूम करना चाहिए कि आपकी गरीब बहनें क्या करती हैं। यदि उन्हें कातना न आता हो तो कातना सिखाएँ, उन्हें रुईकी काफी पूनियाँ दें तथा उनसे सूत लेकर उसकी मजूरी चुका दें। फिलहाल तो बम्बईकी स्वदेशी सभाने स्थान-स्थानपर इस कार्यके लिए प्रबन्ध करनेका दायित्व अपने हाथमें लिया है और थोड़े समयमें ही इसके लिए उपयुक्त स्थान चुन लिये जायेंगे। अहमदाबादकी सभाकी ओरसे एक ऐसी शाखा खोली गई है, वहाँसे रुई आदिका प्रबन्ध हो सकता है।

मैं स्वीकार करता हूँ कि सब बहनें अपना सारा समय नहीं दे सकतीं। जो बहनें अपना थोड़ा-सा ही समय दे सकती हैं या अपने गाँव अथवा शहरको छोड़कर नहीं जा सकतीं, वे अपने मुहल्ले अथवा अपने गाँवकी ही देखभाल कर सकती हैं। समझदार बहनोंको अपनी ही सार-सँभाल करनेसे सन्तोष नहीं हो सकता, वे अपनी अच्छाईको दूसरोंमें भी लाना चाहेंगी। इसलिए अपने पड़ोसीकी स्थितिकी जाँच कर उसके जीवनमें भाग लो तथा अपने मुहल्लेमें कताई मंडल अथवा कताई क्लबकी स्थापना करो और अपनी कमनसीब बहनोंको सहायता और आगे बढ़नेके लिए प्रोत्साहन दो।

यदि आप इतना-भी नहीं कर सकतीं, यदि आप समझती हों कि आपमें दूसरी बहनोंको प्रभावित करनेकी क्षमता नहीं है अथवा आप वैसा न करना चाहती हों तो आप स्वयं कातना सीखकर, हमेशा एक निश्चित समयतक कातकर, अन्य बहनोंके लिए उदाहरण प्रस्तुत कर सकती हैं और आप स्वयं मुफ्त सूत कातकर उस हदतक गरीब बहनोंको अधिक धन मिल सके, ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकती हैं। ऐसे कार्य कई बहनोंने शुरू कर दिये हैं। इस आशयके समाचार आपको समय-समय पर 'नवजीवन' में दिखाई देंगे। अतएव मैं आशा करता हूँ कि लोक-जीवनका उन्नयन

करनेवाली, गरीबोंकी मदद करनेवाली, हजारों स्त्रियोंके शीलकी रक्षा करनेवाली, हिन्दुस्तानको आसानीसे आर्थिक स्वतन्त्रता दिलवानेवाली इस महान् प्रवृत्तिमें आप अपनी सामर्थ्यके अनुसार भाग लेंगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१–९–१९१९

८३. विज्ञापन क्यों नहीं लेते ?

श्री खाँडवालाने ऊपर जो टीका की है वैसी टीका अन्य अनेक मित्रोंने भी की है, इसी कारण हमने इस पत्रको [यहाँ] स्थान दिया है। श्री खाँडवालाको जो भय है वह निष्प्रयोजन है। विज्ञापन पैसे लेकर ही किया जा सकता है — ऐसी मिथ्या धारणा होनेके कारण सम्वाददाता यह मानता है कि स्वदेशी वस्तुओंको 'नवजीवन' के माध्यमसे प्रोत्साहन नहीं मिल सकता। जिस वस्तुकी देशको जरूरत है उस वस्तुके मिलनेके स्थान आदिकी जानकारी देनेके लिए पैसा खर्च करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। जब 'नवजीवन' की प्रवृत्ति भली-भाँति मालूम हो जायेगी और इसके कार्यकर्त्ता संगठित हो जायेंगे तब कोने-कोनेमें चलनेवाले हिन्दुस्तानके उद्योगोंकी खोज करके — इसमें अगर पैसे खर्च करने पड़ें तो खर्च करके भी — हम उनका विज्ञापन देंगे। पैसे लेकर जब विज्ञापन दिये जाते हैं तब विज्ञापनकी भाषा अथवा वस्तुको पसन्द करना तो लगभग असम्भव है। जो विज्ञापन हमारे देखनेमें आते हैं उनमें से ९९ प्रतिशत बेकार होते हैं। जिन विज्ञापनोंसे अधिकसे-अधिक धन मिलता है वे विज्ञापन तो सिर्फ दवाओंके होते हैं और दवाइयोंके विज्ञापनोंमें जो पाखंड और कभी-कभी वीभत्सता आदि देखनेमें आती है, वह देशके लिए अत्यन्त नुकसानदेह है, ऐसी हमारी मान्यता है। हम ऐसे अनेक मित्रोंको जानते हैं जिन्होंने दवाके विज्ञापनोंको पढ़नेके बाद उनका सेवन करके बीमारी मोल ले ली है। दवाके अलावा अन्य दूसरी वस्तुओंके विज्ञापनोंसे भी लोगोंको अनेक बार धोखा खाना पड़ा है, ऐसा किसने अनुभव नहीं किया है ? हम भूलवश [यह] मानते हैं कि विज्ञापनोंके आधारपर हमें कम पैसोंमें समाचारपत्र मिल सकते हैं। लेकिन जिस वस्तुके सम्बन्धमें विज्ञापन दिये जाते हैं उस वस्तुको खरीदनेवाले भी हम [पाठक] लोग ही होते हैं और इस तरह अन्ततः हमें विज्ञापनोंका खर्च भी देना पड़ता है। दवाकी कीमत दवा बेचनेमें नहीं वरन् बोतल, कॉर्क, विज्ञापन और अन्तमें औषध बेचनेवालेके लाभमें रहती है। एक पैसेकी दवाका हम एक रुपया देते हैं। यदि विज्ञापन न दिये जायें तो वह घटकर [कमसे-कम] आठ आने हो जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–९–१९१९

८४. स्वदेशी बनाम मशीनें

[सितम्बर १४, १९१९]

श्री गांधीने एक पाठक द्वारा पूछे गये प्रश्नका उत्तर देते हुए स्वदेशीके साथ मशीनोंका तालमेल बैठने या न बैठनेके बारेमें निम्न विचार व्यक्त किये हैं:

शुद्ध स्वदेशीका मशीनोंसे कतई-कोई विरोध नहीं है। स्वदेशीका आन्दोलन तो केवल विदेशी वस्त्रोंके इस्तेमालके खिलाफ है। मिलोंमें तैयार किये गये वस्त्र पहननेपर कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मैं स्वयं मिलका बना कपड़ा नहीं पहनता और स्वदेशीकी प्रतिज्ञाके साथ मैंने यह स्पष्टीकरण भी अवश्य जोड़ दिया है कि हाथका कता और बुना कपड़ा पहनना ही प्रत्येक भारतीयका आदर्श होना चाहिए। यदि भारतके सौभाग्यसे कई करोड़ लोग इस आदर्शपर चलने लगें तो शायद मिलोंको कुछ नुकसान तो पहुँचेगा। परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि समूचा भारत पवित्र मनसे ऐसा संकल्प कर ले तो हमारे मिल-मालिक भी उसका स्वागत करेंगे, उसकी पवित्रताका सम्मान करेंगे और उसके समर्थक बन जायेंगे। पर जमी-जमाई पुरानी आदतोंको छोड़नेमें काफी समय लगता है। इस प्रकार देशमें मिल-उद्योग और करघा, दोनोंके लिए गुंजाइश है। इसलिए चरखों और करघोंके साथ मिलोंकी संख्या भी बढ़ने दीजिए। और मेरा तो खयाल है कि चरखे और हथकरघे भी निःसन्देह एक प्रकारकी मशीनें ही हैं। चरखा बुनाई मिलका ही एक लघु रूप है। मैं चाहता हूँ ऐसी छोटी-छोटी सुन्दर-सी मिलें देशके घर-घरमें दिखने लगें। परन्तु देशको हाथके कताई-बुनाई उद्योगकी भी पूरी-पूरी आवश्यकता है। किसी भी देशमें कृषिके किसी एक अनुपूरक उद्योगके बिना किसानोंका काम नहीं चल सकता। और भारतमें तो कृषिका दारोमदार ही अनुकूल वर्षापर होता है। इसलिए यहाँ तो चरखा और हथकरघा कामधेनुओंके समान हैं। इस प्रकार यह आन्दोलन भारतके इक्कीस करोड़ किसानोंके हितके लिए है। यदि हमारे यहाँ देशकी आवश्यकताके लायक वस्त्र तैयार करनेके लिए पर्याप्त मिलें हों, तो भी दिन-दिन निर्धनताके अधिक शिकार बनते जानेवाले हमारे किसानोंके लिए कोई अनुपूरक उद्योग खड़ा करनेकी आवश्यकता बनी ही रहेगी, और जो करोड़ों जनोंके लिए उपयुक्त हो, ऐसा उद्योग हाथकी कताई और बुनाईका उद्योग ही हो सकता है। सवाल मिलों या मशीनोंके विरोध करनेका नहीं है। सवाल यह है कि हमारे देशके लिए सबसे अधिक उपयुक्त क्या है। मैं न तो देशमें मशीनोंके निर्माणके आन्दोलनका विरोध करता हूँ और न मशीनोंमें और-अधिक सुधार करनेका। मैं तो बस एक प्रश्नका उत्तर चाहता हूँ कि ये मशीनें हैं किस मतलबकी? रस्किनके शब्दोंमें मैं पूछता हूँ: क्या ये मशीनें ऐसी होंगी कि एक मिनटमें लाखों व्यक्तियोंको ध्वस्त कर दें या ऐसी होंगी कि बंजर भूमिको कृषि योग्य और उपजाऊ बना दें? यदि विधान बनाना मेरे हाथमें होता तो मैं विनाशकारी

मशीनोंके निर्माणकी प्रवृत्तिको दण्डनीय बना देता और उस उद्योगको संरक्षण देता जो इतने अच्छे हल तैयार करता कि जिसे हर आदमी चला सके।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-९-१९१९

८५. तार: सर जॉर्ज बार्न्जको

अहमदाबाद
सितम्बर १४, १९१९

सर जॉर्ज बार्न्ज
शिमला

सर बेंजामिन रॉबर्टसनके दक्षिण आफ्रिका रवाना होनेके सम्बन्धमें वाइसराय द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमके गुण-दोषोंकी मेरी व्याख्यापर अनेक मित्र आपत्ति करते हैं। क्या सर बेंजामिनकी नियुक्ति आगामी दक्षिण आफ्रिकी आयोगमें दो प्रतिनिधि रखनेकी श्री मॉण्टेग्युकी उक्तिके अनुसार है या अभी उनकी नियुक्ति होनी है? यदि ऐसा है तो क्या आप उनके नामोंका संकेत दे सकते हैं। कृपया उत्तर दें।

गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखे मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६४८४ बी०) से।

८६. वाइसरायका भाषण

माननीय वाइसराय महोदयने विधान परिषद्के अधिवेशनका उद्घाटन करते हुए जो भाषण दिया वह विचार करने लायक है। साधारणतः ऐसे भाषणोंसे कुछ-न-कुछ जानने-सीखनेको मिलता है। किन्तु इस भाषणमें जानने-सीखनेकी बनिस्बत सोचने-विचारने और खासकर कार्य करनेके लिए कहीं-ज्यादा मसाला है। अभी तो मैं उनके भाषणके निम्नलिखित भागकी ओर ही जनताका ध्यान खींचना चाहता हूँ। वह इस प्रकार है: (१) टर्कीकी समस्या (२) पंजाबकी और उस सिलसिलेमें आयोग तथा 'इंडेम्निटी' की समस्या, (३) दक्षिण आफ्रिका और (४) फीजीकी समस्या।

टर्कीकी समस्या

मुझे खेदके साथ लिखना पड़ रहा है कि वाइसराय महोदयके पूरे भाषणके जिस अंशसे सबसे अधिक निराशा होती है वह है उसका टर्कीके प्रश्नसे सम्बन्धित

अंश। दैनिक समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंने इस भाषणके सम्बन्धमें तार देते हुए बताया है कि वाइसराय महोदयको अपना भाषण पढ़नेमें पचपन मिनट लगे; उसमें वे टर्कीके सम्बन्धमें कदाचित् एक मिनट ही बोले। मैं स्वीकार करता हूँ कि भाषणकर्त्ता चाहे तो एक मिनटमें बहुत-कुछ अर्थात् बहुत महत्त्वपूर्ण बात कह सकता है। लेकिन वाइसराय महोदयके इस एक मिनटके भाषणमें मुझे निराशाके अतिरिक्त और कुछ नजर नहीं आता। वे कहते हैं, "मुसलमानोंकी भावनाओंको पूरी तरह पेश करनेके लिए मुझसे जो बन सका मैंने वह किया है। इस सरकारने साम्राज्य सरकारसे भारतके मुसलमानोंके विचारोंकी बड़े जोरदार ढंगसे सिफारिश की है, इतना ही नहीं बल्कि हमारे अपने प्रतिनिधियोंने भी शान्ति-सम्मेलन [के सदस्यों] के सम्मुख इन विचारोंको पेश किया है। और फिर इस भयसे कि कहीं ऐसा न हो कि उनकी बातोंको पूरा महत्त्व न दिया जाये, उनके साथ इसी हेतु तीन प्रमुख मुसलमानोंको भी चुना गया था। भारतके मुसलमानोंको यह विश्वास रखना चाहिए कि उनकी भावनाओंको अच्छी तरह पेश किया गया है।" माननीय वाइसराय महोदयने इस तरह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नको उड़ा दिया है। उन्होंने मुसलमानोंकी भावनाओंको [यथास्थान] अच्छी तरह पहुँचानेकी व्यवस्था कर दी, इससे भला मुसलमानोंको क्या सन्तोष हो सकता है? इस प्रश्नके सम्बन्धमें मुसलमानोंकी ही नहीं बल्कि उनके सहोदर हिन्दू भाइयोंकी भावनाएँ भी बहुत तीव्र हैं। हमें उम्मीद है कि वाइसराय महोदयने यह बात भी बताई होगी। लेकिन उससे क्या लाभ? हम जानना तो यह चाहेंगे कि क्या ब्रिटिश राज्याधिकारियोंने भी इस प्रश्नको अपना माना है। उन्होंने मुसलमानोंकी सिफारिश की है, इतना-भर कह देनेसे वे उस [प्रश्न] से अलग नहीं रह सकते। इस प्रश्नपर जैसी मुसलमानोंकी भावनाएँ हैं वैसी ही उनकी भी हैं अथवा नहीं? और यदि उनकी भी वही हैं तो प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थितिमें वे शान्ति-सम्मेलनमें क्या रुख अपनानेवाले हैं। भूखसे पीड़ित व्यक्तिको अपना दुःख कहनेका पूरा अवसर प्रदान करना जलेपर नमक छिड़कनेके समान है। मुसलमान अपनी भावनाओंको प्रकट करनेके इरादेसे वकीलोंकी तलाश नहीं कर रहे हैं। वे अपनी भावनाओंकी अग्निको शान्त करनेके लिए जिस पानीकी तलाशमें हैं, ब्रिटिश राज्याधिकारी वह देनेको तैयार हैं या नहीं, वह मिलेगा कि नहीं— वाइसराय महोदयने इस विकट प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया। जनताका, नेताओंका तथा महाराजा बीकानेरका फर्ज है कि वे इस प्रश्नके स्पष्टीकरणकी माँग करें।

पंजाब

इस विषयपर बोलते हुए वाइसराय महोदयने लोगोंकी भावनाओंका कुछ-भी खयाल नहीं किया है। रौलट अधिनियम पास करते समय जिस तरह लोगोंकी भावनाओंको कूड़ेके समान बाहर फेंक दिया गया था, इस सम्बन्धमें भी वाइसराय महोदयने वैसा ही व्यवहार किया है। और [इस सम्बन्धमें] सिद्धान्तकी तरह उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किया है, मुझे आशा है, जनता उसका अवश्य विरोध करेगी। वह सिद्धान्त यह है । वाइसराय महोदयने कहा, "इस सभाके सदस्यगण स्वीकार

करेंगे कि आन्दोलनकी धमकीसे डरकर कोई भी सरकार अपने द्वारा निर्धारित नीतिसे —जिसे वह आवश्यक समझती हो—कदापि पीछे नहीं हट सकती।" इसके सर्वथा विपरीत तथा सही, प्रजा-पक्षके महत्त्वको स्वीकार करनेवाला, राजा और प्रजा दोनों-की उन्नति करनेवाला सिद्धान्त तो यह है कि, "जिस नीतिके विरुद्ध जनता भारी आन्दोलन खड़ा कर दे उसका सब सरकारोंको अवश्य त्याग कर देना चाहिए।" और इसी कारण मैं कहता हूँ कि जबतक रौलट अधिनियमका अस्तित्व है, अर्थात् जबतक सरकार लोकमतके विरुद्ध अपनी हठधर्मीपर कायम है तबतक इंग्लैंडसे चाहे कितने ही सुन्दर सुधार क्यों न आयें वे सब निरर्थक हैं। इसलिए वाइसराय महोदयकी ओरसे पेश किये गये भयंकर सिद्धान्तका उच्छेदन करवानेके लिए जनताको महान् प्रयत्न करना चाहिए। इतिहास भी वाइसराय महोदयके विरुद्ध है। मुझे पुराने उदाहरण ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। पंजाबके लोगोंकी नजरोंमें सम्मानित बाबू कालीनाथ राय, लाला राधाकृष्ण आदि कैदियोंकी सजामें जो कमी की गई है, वह प्रजा द्वारा किये गये आन्दोलनके फलस्वरूप ही हुई है। ऐसा न माननेका हमारे पास कोई कारण नहीं है कि सरकार द्वारा निर्धारित आवश्यक नीति तो सजा देने तथा उसे बहाल रखनेमें ही है। यदि पंजाबसे लाला गोवर्धनदास न आये होते तो बाबू कालीनाथ राय आदिके सम्बन्धमें हमें पता ही न चलता तथा यदि जनता एक स्वरसे अपनी नाराजी व्यक्त न करती तो मेरी मान्यता है कि सजामें जो कटौती हुई है वह कभी न होती। लेकिन माननीय वाइसराय महोदय तो लोकमतके आगे झुकना लज्जास्पद मानते मालूम होते हैं। पश्चिममें तो अधिकारी-वर्गको इच्छा या अनिच्छापूर्वक लोकमतके सामने झुकना ही पड़ता है, यह बात हम पाठशालामें सीखते हैं तथा पश्चिमसे आनेवाली खबरोंसे भी ऐसा ही पता चलता है। वाइसराय महोदयकी यदि ऐसी मान्यता है कि भारतमें जनमतको खुशीसे स्वीकार करनेमें राज्यका अपमान होता है तो हम उन्हें आसानीसे बता सकते हैं कि वे भ्रममें हैं। रामचन्द्रने गुप्त रूपसे प्रकट किये गये लोकमतके अधीन होकर सीताका त्याग किया, इसका कवियोंने बहुत बखान किया है और इसी कारण आजतक रामचन्द्रकी पूजा की जाती है। जबतक हिन्दुस्तानमें इस राजनीतिका [प्रजाके मतका आदर करनेकी राजनीतिका] पुनरुद्धार नहीं होता तबतक प्रजा कदापि शान्त एवं सुखी नहीं हो सकती। और वाइसराय महोदयने जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया है यदि वह उनका अपना न होकर सरकारका है तो सरकारको अपनी नीतिमें परिवर्तन करना चाहिए तथा प्रजा यह परिवर्तन करवायेगी।

लेकिन ये महोदय केवल सिद्धान्त पेश करके ही चुप नहीं रहे; उनका कहना है कि जिन्होंने आन्दोलन करनेकी धमकी दी थी उन्होंने अपनी "धमकीको व्यावहारिक रूप देना आवश्यक समझा, परिणामस्वरूप दुःखदायी घटनाएँ घटीं।" ऐसा कहकर ये महोदय खुद ही काजी बन गये हैं, यद्यपि इन्होंने ही न्याय करवानेके लिए आयोग नियुक्त किया है। यह खून-खराबी आन्दोलनके परिणामस्वरूप हुई अथवा सरकारकी गम्भीर भूलोंके कारण, इसका निर्णय तो आयोगको करना है। फिर भी वाइसराय

महोदयका यह कहना कि आन्दोलनके फलस्वरूप ही ऐसी दुःखदायी घटनाएँ घटीं, सचमुच हैरानीमें डालनेवाला है।

"शिक्षित और चतुर व्यक्ति"

मुझे यह भी कहना चाहिए कि वाइसराय महोदयने मेरे साथ अन्याय किया है। अहमदाबादमें घटी घटनाओंके सम्बन्धमें अप्रैल महीनेमें मैंने जो भाषण[1] दिया था उसमें यह कहा था कि यदि शिक्षित एवं होशियार व्यक्ति अथवा व्यक्तियोंका [उनमें] हाथ न होता तो अहमदाबादमें जो घटनाएँ घटीं वे न घटी होतीं। इस भाषणको पढ़नेवाला कोई भी व्यक्ति खुद देख सकेगा कि मेरे ये वाक्य [अहमदाबादके अलावा] अन्य किसी भी स्थानको दृष्टिमें रखकर नहीं कहे गये थे। मैं अपने इन शब्दोंपर अब भी कायम हूँ; लेकिन उन्हें अहमदाबादसे बाहर किसी और स्थानपर लागू करनेका वाइसराय महोदयको कतई अधिकार नहीं था। फिर भी उन्होंने मेरे इन शब्दोंको पंजाबके सम्बन्धमें लागू किया। पंजाबकी स्थितिके बारेमें तो मुझे आज भी कोई निजी जानकारी नहीं है। मैंने वहाँसे प्राप्त कुछ मामलोंका अध्ययन किया है और उनसे तो मैं यही देख पाया हूँ कि चाहे कितने ही शिक्षित एवं चतुर व्यक्ति [जनताको] उकसाते तो भी सर माइकेल ओ'डायरने जाने अथवा अनजाने जो भारी भूलें कीं, यदि वे न की होतीं तो यह खून-खराबी कभी न हुई होती। छः अप्रैलको जब भारतके शहरों तथा छोटे-छोटे गाँवोंमें, चारों दिशाओंमें, लोगोंने उपवास किया और हड़ताल रखी उस समय ऐसा शान्त एवं भव्य दृश्य दिखाई दिया जो हमारे समयमें आजतक हममें से किसीने नहीं देखा था। उस दिन लाखों स्त्री-पुरुषोंने संसारके सामने यह सिद्ध कर दिखाया कि हम सब एक राष्ट्र हैं, एक दूसरेके दुःखके भागी हैं तथा एक ही भावनासे अनुप्रेरित हैं। तथापि उस दिनतक लोगोंने कोई भी निंद्य कार्य नहीं किया था। छः तारीखके इस प्रदर्शनसे पंजाबकी सरकारने होश खो दिये और सर माइकेल ओ'डायर अकारण ही लगातार एकके-बाद-एक भूलें करते चले गये। उससे लोग उत्तेजित हो गये और उन्होंने भी भूल की। आयोग इन घटनाओंको सत्याग्रहकी तराजूपर नहीं, बल्कि पश्चिममें ऐसी घटनाओंको तोलनेके लिए आजकल जो तराजू सामान्यतः सर्वमान्य है, उसपर तोलेगा और पंजाबके लोगोंने भूलकी अथवा नहीं इस बातका निर्णय होनेके बजाय इस बातका निर्णय होगा कि पहले भूल किसने की।

आयोग

इसका निर्णय करनेके लिए आयोग नियुक्त किया जा चुका है, वाइसराय महोदयने यह सूचना अपने भाषणके दौरान दी है। मैंने ऐसी आलोचना पढ़ी है कि यह शाही आयोग (रॉयल कमीशन) नहीं बल्कि समिति [मात्र] है, यह शोचनीय है तथा शाही आयोग नियुक्त न करके थोड़ा अन्याय किया गया है। मेरा खयाल है कि शाही आयोग तथा वाइसरायकी ओरसे नियुक्त की गई समितिमें विशेष अन्तर नहीं है।

१. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २२८-३२।

शाही आयोगकी नियुक्ति इंग्लैंडमें [साम्राज्य-सरकार द्वारा] की जाती है और यह आयोग अपनी रिपोर्ट साम्राज्य सरकारको देता है। इस समितिकी नियुक्तिकी घोषणा भारत सरकारने की है तथा इसकी रिपोर्ट वाइसरायके सम्मुख पेश की जायेगी। इतना अन्तर अवश्य है किन्तु भारतमें नियुक्त किये गये आयोगके सदस्य, भारत-मन्त्रीकी सम्मतिके बिना नामजद नहीं हो सकते। हमारा अनुभव है कि [कई मामलोंमें] शाही आयोगोंकी नियुक्ति हुई है, लेकिन वे निरर्थक सिद्ध हुए हैं और इसके विपरीत कई बार स्थानीय समितियोंकी मार्फत [हमें] न्याय मिल सका है। इसलिए मुझे तो शाही आयोग तथा स्थानीय सरकार द्वारा नियुक्त की गई समितिमें भारी भेद नहीं जान पड़ता। समिति [की जाँच] के परिणामका आधार कुछ हदतक इस बातपर निर्भर करेगा कि उसके सदस्य कैसे हैं। सदस्योंकी ओर देखनेपर मालूम होता है कि यद्यपि सब नाम ऐसे नहीं है जिन्हें हम सहर्ष स्वीकार कर सकें; तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे पूर्वग्रहोंसे ग्रस्त हैं या कि वे स्वतन्त्र विचार कर सकनेकी क्षमता नहीं रखते। लॉर्ड हंटर इस समितिके अध्यक्ष हैं। वे साम्राज्यीय स्तरकी प्रसिद्धिवाले व्यक्ति नहीं हैं, किन्तु वे स्कॉटलैंडके महान्यायवादी (सॉलिसिटर जनरल) थे, इसलिए इस बातसे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है कि वे स्वतंत्र विचार करनेमें तनिक भी हिचकिचायेंगे। दूसरे सदस्योंके प्रति अपनी राय कायम करनेके लिए हमारे पास एक कुंजी है। सर चिमनलाल सीतलवाडकी[1] नियुक्तिके विषयमें टीका करनेका हमारे पास कोई कारण नहीं है। इतना ही नहीं यदि सभी सदस्य उनके जैसे ही हों तब तो हम इस समितिको अवश्य ही सहर्ष स्वीकार कर लें। सर चिमनलाल सीतलवाड एक प्रख्यात वकील हैं, इसके अतिरिक्त वे सार्वजनिक जीवनमें भी दिलचस्पी लेते हैं, और फिर वे सर फीरोजशाह मेहता जैसे धुरन्धर एवं स्वतन्त्रताके उपासक व्यक्तिके प्रमुख शिष्य, सहयोगी तथा मित्र हैं। इससे हम उम्मीद रख सकते हैं कि वे पक्षपात किये बिना और निर्भयतापूर्वक सच्चा न्याय करेंगे; इतना ही नहीं वे अन्य सदस्योंको भी अपनी ओर खींचेंगे। और यदि उन्होंने बम्बईसे ऐसे स्वतन्त्र विचारों-वाले तथा समझदार नेताको चुना है तो हम यह अनुमान कर सकते हैं कि दूसरोंके चुनावमें भी अधिकांशतः इसी पद्धतिसे काम लिया गया होगा। साहबजादा सुलतान अहमद, भारत-परिषद्के सदस्य साहबजादा आफताब अहमदखाँके भाई हैं। लेकिन समितिकी रिपोर्टका मुख्य आधार हमारे ऊपर रहेगा — हमारे अर्थात् पंजाबके भाइयोंपर। यदि वे निर्भयतापूर्वक सच्ची हकीकत कह सुनायेंगे तथा यदि कोई भी भारतीय निजी स्वार्थके वशीभूत होकर झूठी गवाही नहीं देगा तो हमें समितिकी रिपोर्टके बारेमें भय करनेका कोई भी कारण नहीं है। हालाँकि यह समिति, यदि उसे उचित जान पड़े तो, गुप्त बैठक कर सकती है, फिर भी यह सामान्यतया प्रकट रीतिसे ही गवाहियाँ लेगी। इसलिए समिति अपनी रिपोर्ट इन गवाहियोंके आधार-पर ही तैयार कर सकेगी। और फिर पंजाबमें हुए कुछ मामलोंमें तो स्पष्ट रूपसे

१. स्व० सर चिमनलाल हरिलाल सीतलवाड बम्बईके प्रमुख वकील तथा बम्बई विश्वविद्यालयके उपकुलपति। हंटर कमेटीके ३ भारतीय सदस्योंमें से एक।

इतना अधिक अन्याय किया गया है कि कोई अनपढ़ भी उसे देख और समझ सकता है। इस अन्यायके सम्बन्धमें समिति दूसरी और क्या राय प्रकट कर सकती है? मुझे स्वीकार करना चाहिए, समितिकी रिपोर्टके विषयमें मुझे तनिक भी भय नहीं, भय तो मुझे ठीक-ठीक गवाही देनेकी हमारी शक्तिके विषयमें ही है। लेकिन उससे मैं तो मुक्त हूँ और मेरी यह इच्छा है कि पाठक भी उससे मुक्त रहें। जहाँ पंडित मदनमोहन मालवीयजी, संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्दजी तथा पंडित मोतीलाल नेहरू-जैसे बहादुर व्यक्ति गवाहियाँ इकट्ठी करनेके कार्यमें जुटे हुए हैं वहाँ ऐसी आशंका करनेका कोई कारण ही नहीं है कि गवाहियाँ ठीक-ठीक नहीं दी जायेंगी। इसलिए, सचमुच देखा जाये तो समिति किस प्रकारकी है इसकी ओर ध्यान न देकर हमें इस बातपर ध्यान देना चाहिए कि समितिके सामने हम किस तरह पूरी-पूरी हकीकत पेश कर सकते हैं। समितिको सौंपे गये कार्योंमें पंजाबमें [अनेक मामलोंपर] दिये गये निर्णयों तथा सभाओं-की जाँच करनेका कार्य भी सम्मिलित है अथवा नहीं, इस बातका स्पष्टीकरण करने-का कार्य भी हमारा है। यद्यपि जान पड़ता है कि वाइसराय महोदयके शब्दोंमें यह बात आ जाती है फिर भी ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नके सम्बन्धमें शंकाका समाधान होना ही चाहिए। पाठकोंको याद होगा कि समिति सिर्फ पंजाबके लिए नहीं है, बल्कि उसकी जाँचके क्षेत्रमें बम्बई प्रदेशका भी समावेश हो जाता है। इस कारण हमें उसके लिए तैयार रहना होगा। मुझे तो यह लगता है, हमें अपना ध्यान मुख्यतया दो बातोंकी ओर देना चाहिए। एक तो समितिका अधिकार क्षेत्र क्या है — हमें इसका स्पष्टीकरण माँगना चाहिए तथा दूसरे उसके सामने अपना मामला रखनेके सम्बन्धमें हमें पूरी तैयारी करनी चाहिए।

"इंडेम्निटी"

अब रहा "इंडेम्निटी", अर्थात् अधिकारियोंकी, उनके द्वारा किये गये कार्योंके सम्बन्धमें, दीवानी एवं फौजदारी दावोंसे मुक्ति। वाइसराय महोदयने बताया कि [विधान-परिषद्के] वर्तमान अधिवेशनमें इस आशयका एक विधेयक पेश किया जानेवाला है। इसका कड़ा विरोध किया जा रहा है। कुछ सार्वजनिक संस्थाओंकी ओरसे वाइसरायको इस आशयके तार भी भेजे गये हैं कि जबतक समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हो जाती तबतक यह विधेयक पेश नहीं किया जाना चाहिए। इस तरहके कानूनका मैं जो मतलब लगाता हूँ उसे मैं पाठकोंके सामने रखना चाहता हूँ। [मतलब यह है कि] मार्शल लॉकी रूसे अधिकारियोंने जो कार्य किया उसके लिए वे व्यक्तिगतरूपसे जिम्मे-दार नहीं ठहराये जा सकते। मार्शल लॉके बिना, अधिकारी लोग सामान्य कानूनकी रूसे जो आदेश आदि देते हैं, फिर चाहे वह आदेश गलत अथवा पक्षपातपूर्ण या द्वेषसे दिया गया साबित हो, तो भी उसके लिए उनपर दीवानी अथवा फौजदारी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। यदि सरकार चाहे तो वह उनके विरुद्ध विभागीय कार्रवाई कर सकती है, उन्हें नौकरीसे अलग कर सकती है लेकिन उनसे अदालतमें जवाब-तलब नहीं किया जा सकता। मार्शल लॉके अधीन जो कार्य किये जाते हैं सर-कार उनका बचाव हमेशा ही विशेष कानून बनाकर करती है तथा सिद्धान्त-रूपमें

सब लोग इसे स्वीकार करते हैं। इसीसे मैं कहता हूँ, यदि सरकार अभी इसी समय क्षतिपूर्ति-(इंडेम्निटी) विधेयक पास करना चाहे तो हमें भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें यह विधेयक, यदि इसके खण्ड आपत्तिजनक न हों, तो पास हो जाने देना चाहिए। जिन अधिकारियोंने गोली चलाये जानेके अनुचित आदेश दिये अथवा जिन न्यायाधीशोंने फाँसी देनेके गलत हुक्म दिये, हम उन अधिकारियों या न्याया-धीशोंको फाँसीके तख्तेपर लटकाना नहीं चाहते। अगर चाहें भी तो हमें वैसी सत्ता मिलनेवाली नहीं है। वे तो ऐसी सजासे मुक्त ही रहेंगे। प्रत्येक राज्यको ऐसे संरक्षणकी आवश्यकता होती है। जिस समय हमें स्वराज्य मिल जायेगा तब भी [राज्यके पास] ऐसी सत्ता तो रहेगी ही। अधिकारी उस समय भी गम्भीर भूलें करेंगे और लोग भड़केंगे और यदि उस वक्त सत्याग्रह देशव्यापी नहीं हुआ होगा तो खून-खराबी होगी, मार्शल लॉ लगाया जायेगा, गोलियाँ चलेंगी, बादमें आयोग नियुक्त किया जायेगा और स्वराज्यमें भी अधिकारियोंकी रक्षा करनेकी खातिर उनकी मुक्तिके विधेयक पास किये जायेंगे। लेकिन उस समय भी आजकी तरह यह देखा जायेगा कि विधेयकमें कौन-कौनसे खण्ड हैं। इसलिए इस विधेयकके सम्बन्धमें, मैं तो यही कहूँगा कि हमें इस विधेयकके समयसे पहले पेश किये जानेके सम्बन्धमें शिकायत करनेके बदले इस बातपर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए कि उसमें क्या-क्या कहा जा रहा है। उदा-हरणस्वरूप यदि विधेयकमें यह व्यवस्था हो कि जिस व्यक्तिने गोली चलाये जानेका आदेश दिया, उसपर खूनका दोषारोपण अथवा हानिका दावा नहीं किया जा सकता तो हम उसपर कोई आपत्ति नहीं करेंगे। लेकिन अगर विधेयकमें ऐसी कोई व्यवस्था की गई हो कि उसके विरुद्ध विभागीय जाँच नहीं की जा सकती अथवा उसे उसके अनुचित व्यवहार या उसकी अयोग्यताके कारण नौकरीसे अलग नहीं किया जा सकता तो हम उसका डटकर विरोध करेंगे। उचित अथवा अनुचित जो भी सजा या आदेश दिये गये हों वे कायम रहेंगे और उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता — यदि विधे-यकमें इस आशयका कोई खण्ड दिया गया हो तो हमें उसका भी विरोध करना चाहिए। यह तो मैंने केवल उदाहरण दिये हैं। गरज यह कि मेरी विनम्र रायमें, हमें विधेयक-की अनुचित व्यवस्थाओंका ही विरोध करना चाहिए।

दक्षिण आफ्रिका

इस सम्बन्धमें वाइसराय महोदयने जो कहा वह असन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। हमारे मामलेको पेश करनेके लिए सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनको भेजनेका जो निश्चय किया गया है हम उसका स्वागत करते हैं। उनके जानेका दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंपर गहरा असर हुए बिना नहीं रहेगा। दक्षिण आफ्रिकासे प्राप्त हुए तारोंसे पता चलता है कि गोरे व्यापारी अभी भी गड़बड़ करते रहते हैं और शिकायत करते रहते हैं कि जो नये कानून पास किये गये हैं उनपर ठीक-ठीक अमल नहीं किया जाता। इसलिए भारत सरकारकी ओरसे यदि वहाँ एक प्रतिनिधि हो तो इस तरहकी समस्याओंमें वह उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस सम्बन्धमें दिये गये माननीय वाइस-राय महोदयके भाषणका मैं यह अर्थ करता हूँ कि श्री मॉण्टेग्यु द्वारा सुझाये गये प्रति-

निधियोंको, दक्षिण आफ्रिकामें नियुक्त किये जानेवाले आयोगमें अवश्य रखा जायेगा। ये प्रतिनिधि दृढ़ एवं स्वतन्त्र विचारोंवाले व्यक्ति होंगे तो मुझे इसमें सन्देहन हीं कि ये बहुत अच्छा काम कर सकेंगे एवं हमारे भाइयोंपर होनेवाला अन्याय बहुत कम हो जायेगा।

फीजी

फीजीके सम्बन्धमें वाइसरायने जो घोषणा की है उसे सर्वथा सन्तोषप्रद कहा जा सकता है और हम आशा रख सकते हैं कि इस वर्षके समाप्त होनेसे पूर्व हमारी बहनोंपर होनेवाला अत्याचार बन्द हो जायेगा तथा वे गिरमिटिया बन्धनसे मुक्त हो जायेंगी। किसीको यह न मान लेना चाहिए कि गिरमिट-प्रथाके बन्द हो जानेपर भी, लोगोंमें जो अनैतिकता घर कर गई है, वह एकाएक बन्द हो जायेगी। गिरमिट रद होनेसे सरकार और प्रजापर उत्तरोत्तर जो पाप बढ़ता जा रहा था उसका परि-मार्जन हो जायेगा तथा राजा और प्रजा दोनों मुक्त हो जायेंगे। बीती घटनाओंके लिए तो हमें निःसन्देह हमेशा लज्जा आयेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–९–१९१९

८७. एक संवाद[1]

कुछ दिन पूर्व हुए एक संवादको हम ज्योंका-त्यों नीचे दे रहे हैं। पाठकोंको इसमें रस आये, इसलिए कुछ वाक्योंको तोड़ दिया गया है तथा हिन्ददेवीका अपेक्षाकृत अधिक विशद रूपमें चित्रण किया गया है। किन्तु बाकी प्रश्नोत्तर ज्योंके-त्यों दे दिये गये हैं। पात्रोंके नाम जान-बूझकर नहीं दिये गये हैं।

अ : जय सच्चिदानन्द! मुझे पहचाना क्या?

ब : उस समय तुमने ये भगवे वस्त्र धारण नहीं किये थे।

अ : हाँ पिताजी, [ये वस्त्र] मुझे एक महात्माने पहनाये और मैंने पहने।

ब : तुमने कुछ विचारतक नहीं किया?

अ : महात्माके प्रति मेरी श्रद्धा थी। मैं धर्मके सम्बन्धमें थोड़ा-थोड़ा चिन्तन किया करता था, इसलिए मुझे लगा कि महात्मा जो कहते हैं उसपर अमल किया जा सकता है।

ब : तुम्हें भगवे वस्त्र पहने देखकर लोग तुम्हारी पूजा करते हैं क्या?

अ : हाँ पिताजी, आदर तो करते हैं।

ब : तुम पूजाके योग्य हो क्या?

अ : जी नहीं, ऐसा तो कैसे कहा जा सकता है? मैं राग-द्वेषसे भरा हुआ हूँ।

ब : तुम तो भिक्षा भी माँगते हो?

१. यद्यपि "पत्र: महादेव देसाईको", १५–९–१९१९ से इस लेखका गांधीजी द्वारा लिखा जाना कुछ-कुछ संदिग्ध प्रतीत होता है, परन्तु इसे **गांधीजीनु नवजीवनमें** (७–९–१९१९ से १२–३–१९२२ तक) गांधीजीका मानकर संग्रहीत किया गया है।

अ : यह तो सच है।
ब : भिक्षाके बदलेमें क्या तुम कुछ कहते भी हो?
अ : बहुत तो नहीं, लेकिन कभी-कभी उपदेश अवश्य देता हूँ।
ब : तुमने कुछ अध्ययन किया है क्या?
अ : कुछ तो किया है। प्राकृतमें लिखे कुछ शास्त्र पढ़े हैं।
ब : इस तरह जीवन व्यतीत करनेमें क्या तुम सन्तोषका अनुभव करते हो?
अ : सन्तोष मिले तो फिर किसी और चीजकी क्या जरूरत है? मैं तो भटक रहा हूँ। मैं तो निस्सन्देह वही करना चाहूँगा जो मेरे लिये ठीक हो। आप कोई रास्ता बतायेंगे?
ब : मेरा यह कहनेका बहुत मन करता है कि तुम भगवे वस्त्र उतार दो। लेकिन इस समय हमारे लिये यह विचार करना अधिक उचित होगा कि तुम्हें कैसा आचरण करना चाहिए जिससे तुम इसके योग्य बनो।
अ : ऐसा हो तो उत्तम हो।
ब : तुम हिन्ददेवीके उपासक हो यह तो मैं जानता हूँ।
अ : इच्छा तो निस्सन्देह यही है।
ब : तुमने देवीको देखा है?
अ : मैं समझा नहीं।
ब : तुम्हारे मनमें हिन्ददेवीका कोई चित्र है या नहीं?
अ : मैंने सोचा नहीं।
ब : देखो मैं बताता हूँ : देवीने जापानी साड़ी पहनी है। उसकी पेरिसकी बनी अतलसकी चोली है जिसपर पेरिसकी ही बेल लगी है। उसके भालपर विदेशी बिन्दी है। उसकी कलाईमें विलायती चूड़ियाँ हैं। दाँयें हाथमें सोने-सी चमकती बाजरेकी तथा मोतियों-सी ज्वारकी बालियाँ हैं। उसके बाँयें हाथमें सड़े हुए और धूल-धूसरित सूतके धागे हैं। देवीका वर्ण निकट पड़े हुए गेहूँ-सा है, देवीका मुँह फीका पड़ गया है और ऐसा लगता है मानो वह रो रही हो। आस-पास दुर्भिक्ष-पीड़ितों जैसे उसके बच्चे धीरे-धीरे खेतोंमें काम कर रहे हैं। बाँईं ओर चरखे पड़े हैं जिन्हें दीमक चाट गई है, उनकी माल टूट गई है तथा चमरख जर्जर हो गये हैं। उसके इर्द-गिर्द बैठी हुई हमारी स्त्रियाँ ऊँघ रही हैं। दो-चार बुनकर कुछ कपड़ा बुन रहे हैं।
अ : देवीका यह चित्रण तो ठीक ही है।
ब : तब फिर देवी तुमसे और मुझसे क्या कह रही है, यह तुम समझ सकते हो?
अ : देवी यही तो कह रही है कि हमें उद्यम करना चाहिए।
ब : यह तो है ही। जो यज्ञ (शारीरिक मेहनत) नहीं करता वह चोर है—यह 'गीता'का[१] वाक्य है। लेकिन क्या हमसे देवी और कुछ नहीं कहती?
अ : आप ही बताइये।

१. तीसरा अध्याय, १२ वाँ श्लोक।

ब : अपनी आकृतिसे देवी हमें यह कहती जान पड़ती है कि "मुझे इस विदेशी पहरावेसे मुक्त करो। ये स्त्रियाँ जो ऊँघ रही हैं उनके लिए चरखे साफ करो ओर उन्हें फिरसे सूत कातने योग्य बनाओ।"

अ : आपकी बात तो मुझे सोनेकी मोहरके समान खरी जान पड़ती है।

ब : तब फिर तुम्हें भगवे वस्त्र कैसे शोभा दें इसका निर्णय तो हम कर ही सकते हैं। अनेक साधु भगवेको लजाते हैं। वे देशपर भारस्वरूप हैं, इस बातको तो तुम स्वीकार करोगे।

अ : इससे कोई इनकार कर ही नहीं सकता।

ब : तब तुम सूत कातना और वस्त्र बुनना सीखकर दूसरोंको सिखाओ और इस तरह अपना तथा दूसरोंका उद्धार करो। तुम्हारा चरखा तुम्हारे बदले उपदेश देगा।

अ : मुझे लगता है कि मैंने भगवे वस्त्र धारण करनेमें उतावली की। मेरा इरादा अच्छा था, लेकिन मैं थोड़े ही दिनोंमें कातना और बुनना सीख लूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–९–१९१९

८८. टिप्पणियाँ

ट्रान्सवालके एशियाई

गत सप्ताह ट्रान्सवालसे जो समाचार मिले हैं उन्होंने आगमें घीका काम किया है। ट्रान्सवालकी नगरपालिकाओं, व्यापारी-मण्डलों, मजदूर-संघों तथा दूसरी संस्थाओंके प्रतिनिधियोंकी कांग्रेसमें इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया है कि एशियाइयोंके विरुद्ध जो कानून बनाये गये हैं उनके अमलमें ढील बरती जाती है, अतः उनमें अधिक सख्तीसे काम लिया जाना चाहिए। इस कांग्रेसने एशियाइयोंको नागरिक अधिकार दिये जानेके विरुद्ध आवाज उठाई है। इसके अतिरिक्त कांग्रेसने 'साउथ आफ्रिकन्स लीग' अर्थात् 'दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंका मण्डल, स्थापित करनेका निश्चय किया है। इस मण्डलका उद्देश्य यह है कि एशियाइयोंके पास इस समय जो अचल सम्पत्ति है उसको उचित दाम देकर उनसे ले लिया जाये तथा ट्रान्सवालमें रहनेवाले तथा व्यापार करनेवाले व्यापारियोंको वहाँसे धीरे-धीरे लेकिन कुशलतापूर्वक निकाल बाहर करनेका हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए।

प्रिटोरियासे प्राप्त हुए एक दूसरे तारसे भी गोरोंकी भावनाओंका पता चलता है। नगरपालिकाओं, व्यापारी-मण्डलों तथा अन्य संस्थाओंके प्रतिनिधि एक भारी सभामें उपस्थित हुए थे जिसमें एशियाइयोंके प्रश्नपर विचार किया गया था। सभाके अध्यक्ष-ने यह विचार प्रकट किया कि यदि इस समस्याका समाधान नहीं हुआ तो दक्षिण आफ्रिकाका भविष्य अन्धकारमय है। सभामें सीनेटर मुनिक द्वारा प्रस्तुत यह प्रस्ताव पास किया गया कि एशियाइयोंके बढ़ते हुए प्रभावके फलस्वरूप ट्रान्सवालके गोरे

निवासियोंकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई है। प्रस्तावम इस प्रश्नका निपटारा करनेके लिए तुरन्त ही कानून बनाये जानेकी सिफारिश की गई।

श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें एक शिष्टमण्डल श्री मॉण्टेग्युसे मिलने गया था। उसे श्री मॉण्टेग्युने जो उत्तर दिया था उसकी कड़ी आलोचना करते हुए 'केप टाइम्स'ने लिखा है कि भारत मन्त्रीको दक्षिण आफ्रिकाके कठिन एवं सूक्ष्म प्रश्नकी पूरी जानकारी नहीं है। यह पत्र उन्हें याद दिलाता है कि ट्रान्सवालमें अभी-अभी जो कानून पास किया गया था उसमें श्री कॉलिन्सने ट्रान्सवालके तमाम हिस्सोंमें भारतीयोंको व्यापार करनेसे रोकनेके सम्बन्धमें जो संशोधन पेश किया था उसका सरकारने खुद ही कड़ा विरोध किया था। हिन्दुस्तानने साम्राज्यकी जो मदद की है संघ संसदने उसकी बड़ी कद्र की है——श्री मॉण्टेग्युको यह बात अधिक स्पष्ट शब्दोंमें शिष्टमण्डलको बता देनी चाहिए थी और उन्हें सहानुभूतिपूर्वक यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए था कि इस प्रश्नको सुलझानेके लिए दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारको किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–९–१९१९

८९. तार : महादेव देसाईको

अहमदाबाद,
सितम्बर १५, १९१९

महादेव देसाई
द्वारा डॉ० जीवराज
भटवाड़ी
बम्बई

पुस्तकालय सम्बन्धी पत्र-व्यवहार छापो।

गांधी

मूल अंग्रेजी तार (एस० एन० ६८७७) की नकलसे।

९०. पत्र : महादेव देसाईको

सोमवार [सितम्बर १५, १९१९][1]

भाईश्री महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। 'सोशल रिफॉर्मर' यहाँ नहीं आता, इसलिए मैं टीका पढ़नेसे वंचित रहता हूँ। नटराजन्को लिखना कि वे उसकी एक प्रति आश्रम जरूर भेज दिया करें। अभी तो तुम्हीं भेज देना।

डायरेक्टरका नोट भेज रहा हूँ। पत्रोंके प्रकाशनके सम्बन्धमें तार दिया है। 'नवजीवन' के बारेमें जो टीका की गई है वह तो तुम्हें भेजनी ही चाहिए थी। प्रत्येक अंकमें जो भी टीका प्रकाशित हो अवश्य भेजो। मैं स्वस्थ रहूँ अथवा अस्वस्थ, जबतक 'नवजीवन' के सम्पादनका भार मेरे कन्धोंपर है तबतक टीका देखे बिना कैसे गुजारा हो सकता है?

'यंग इंडिया' हम यहाँ दूसरे प्रेससे छपवा सकते हैं। दोनों ही पत्र एक प्रेससे प्रकाशित करवानेकी आवश्यकता मुझे प्रत्येक क्षण अनुभव होती रहती है। मैं इसकी तजवीज कर रहा हूँ।

तुम्हें गोमतीके लेखका अनुवाद करना चाहिए। इस लेखको मैं अद्भुत मानता हूँ। "एक संवाद" उससे घटियापर महत्त्वपूर्ण है। साधुओंके लिए उत्तम है। हिन्ददेवीका चित्रण तो मेरे मनसे हटता ही नहीं है। 'नवजीवन' के द्वितीय अंकको बहुत अच्छा मानता हूँ। छापेकी भूलें इतनी कम है कि क्षम्य हैं। कार्यकर्त्ता घड़ी-भर भी चैनसे नहीं बैठे!

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। तुमपर नानालालका[2] लेख लागू होता है। उनके विचार अंग्रेजीमें भी प्रस्तुत करने लायक हैं।

नानालाल मुझे पहचान ही नहीं पाये हैं। सत्याग्रहको तो समझे ही नहीं हैं। मेरी तपश्चर्याकी अतिशय प्रशंसा की गई है। ब्रह्मचर्यको आकाशपर चढ़ा दिया है। मुझे तो इन दोनोंमें अपूर्णता दिखाई देती है। पन्द्रह वर्षकी आयुसे जिसने अपनी स्त्रीके साथ विषय-भोग किया तथा जो तीस वर्षतक वैसा ही जीवन व्यतीत करता रहा उसके ब्रह्मचर्यकी क्या प्रशंसा करना? "सौ-सौ चूहे खाय बिलारी चली हज्जको।" ब्रह्मचर्यका पालन तो देवदास करता दिखाई पड़ रहा है। मेरी तपश्चर्याका तो मेरे लिए कोई मूल्य ही नहीं है। मुझे तो यह सहज जान पड़ती है। मेरा सत्य [अवश्य]

१. यह पत्र सम्भवतः १४-९-१९१९ को रविवारके **नवजीवन**में प्रकाशित "एक संवाद", के १४-९-१९१९ तुरन्त बाद लिखा गया था। देखिए पृष्ठ १४७।

२. प्रमुख गुजराती कवि (१८७७-१९४६); संकेत "सामाजिक क्लान्ति और नवजीवन" की ओर है जो **नवजीवन** (७-९-१९१९) के प्रथम अंकसे लेखमालाके रूपमें क्रमशः प्रकाशित हुआ था। लेखमें राष्ट्रीय जीवनमें आनन्दतत्त्वकी आवश्यकतापर बल दिया गया था।

मेरा ही है, ऐसा मुझे लगता है। मेरी अहिंसा अत्यन्त उग्र है तथा इन दोनोंके संगमसे जिस सत्याग्रहकी उत्पत्ति हुई है वह निःसन्देह अवर्णनीय है। उसे नानालाल कैसे समझे? तुम समझनेका प्रयत्न कर रहे हो। इन दोनों वस्तुओंका मुझमें दिन-प्रतिदिन विकास होता जाता है। यह मुझे कहाँ ले जायेगा, सो नहीं जानता। नानालालकी कवितामें तो झाँकी ही नहीं है। उसमें उनका प्रेम झलक रहा है, लेकिन ज्ञान नहीं। तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य आदि साधन हैं, सत्याग्रह साध्य है। सत्य ही मोक्ष है। जो मोक्षका आग्रह नहीं करता, वह मनुष्य नहीं पशु है।

अब तुम जितना चाहते थे उससे अधिक लिख गया हूँ इसलिए बन्द करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

सोराबजीकी वसीयतके अभावमें मैं कष्टमें हूँ, मुझे इस संकटसे मुक्त करो। वसीयत कहाँ होगी? रुस्तमजी सेठका दूसरा तार आया है।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११४०६) की फोटो-नकलसे।

९१. लाभसिंह[1]

अत्यन्त विनम्रतापूर्वक निवेदन है कि महामहिमके इस प्रार्थीके साथ जो अन्याय हुआ है उसमें उसकी सजा कितनी ही क्यों न घटा दी जाये उससे प्रार्थीको न तो कोई सान्त्वना मिलेगी और न उस अन्यायका समुचित निराकरण होगा, और न न्यायके उद्देश्यकी पूर्त्ति ही हो सकेगी।

यह उद्धरण श्री लाभसिंह, बैरिस्टर-एट-लॉके सबसे हालके प्रार्थनापत्रसे लिया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह प्रार्थनापत्र पढ़कर पाठकके हृदयमें सहानुभूति और सराहनाके भाव उठे बिना नहीं रहेंगे। सहानुभूति इसलिए कि उनके साथ अन्याय हुआ है, और सराहना इसलिए कि इस युवा बैरिस्टरके स्वाभिमानको जेल भी नहीं झुका सकी है। वह दयाकी भीख नहीं माँगता; अगर मिल सके तो केवल न्यायकी माँग करता है। परन्तु वाइसराय महोदयकी टिप्पणीके बावजूद, न्यायकी प्रगति बहुत-ही धीमी है और बड़े-बड़े उच्चाधिकारियोंतक में न्याय करनेकी इतनी अनिच्छा है कि न्याय चाहनेवाला व्यक्ति उसकी आशा लगभग छोड़ ही देता है। एक आयोगकी नियुक्तिके लिए माननीय पंडित मालवीयजीके प्रस्तावके उत्तरमें, सर एडवर्ड मैकलेगनका भाषण देखिए। उन्होंने "गत अप्रैलकी घटनाओंकी गम्भीरताको कम आँकने"की प्रवृत्तिके विरुद्ध दी गई वाइसरायकी चेतावनीका हवाला दिया है। वे आगे कहते

१. मूल शीर्षकमें "एम० ए०, एलएल० बी० (कैन्टब), बैरिस्टर-एट-लॉ" शब्द भी जुड़े हुए हैं।

हैं: "मैं नहीं समझता कि पंजाबसे बाहरके लोग दंगे-फसादके दिनोंमें भी परिस्थितिकी गम्भीरताको पूरी तरह महसूस कर पाये थे।" आगे वे कहते हैं:

यदि दंगे-फसादपर इतनी तेजीसे काबू न किया गया होता, यदि उनको उस सीमासे थोड़ा-ही और आगे बढ़ने दिया जाता, तो सभी तबकोंके लोगोंके जान-मालको एक-भारी खतरा खड़ा हो जाता।

यह तो कोई उत्तर न हुआ। यह तो जिस चीजकी जाँच होनी है उसे पहलेसे ही मान लेना और जाँच-समितिके निर्णयका पूर्वानुमान लगाना है। सजाओंके बारेमें भी सर एडवर्डने इसी तरह यह कहकर एक प्रश्न खड़ा कर दिया है कि विशेष न्यायालयोंके निष्कर्षोंको स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि " हर मामलेमें वे तीन अनुभवी अधिकारियोंके सर्वसम्मत निष्कर्ष हैं।" परन्तु जब ये निष्कर्ष ऐसी बुद्धिकी उपज हों जो कुछ समयके लिए पथ-भ्रष्ट हो गयी थी तो सर्वसम्मति और अनुभवकी कोई सार्थकता नहीं रह जाती। फिर भी वे अपने आलोचकोंको यह कहकर चुप करानेका प्रयत्न करते हैं:

हालाँकि मैंने कई मामलोंकी जाँच की है, लेकिन मुझे उनमें एक भी ऐसा नहीं मिला जिसमें न्यायालय द्वारा निकाले निष्कर्षपर अँगुली उठानेका कोई भी औचित्य दिखा हो।

इस दो-टूक रायके बाद तो मुझे इस समय पंजाबकी जेलोंकी शोभा बढ़ानेवाले श्री लाभसिंह या पंजाबके अन्य बड़े-बड़े नेताओंके लिये न्याय हासिल करने या उसकी आशा करनेकी कोई गुंजाइश नहीं दिखती। फिर भी पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरके प्रति उचित आदरभाव रखते हुए मैं यह कहनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता कि यदि जनताके सामने आये अनेक मुकदमोंमें एक भी उनको ऐसा नहीं मिला जिसके बारेमें विशेष न्यायालयों द्वारा निकाले गये निष्कर्षोंपर अँगुली उठाई जा सके, तो मैंने भी विशेष न्यायालयोंके ऐसे कई निर्णय देखे हैं जिनके औचित्यपर मेरा विश्वास नहीं जमता। श्री लाभसिंहके ही मुकदमेका उदाहरण देकर मैं अपनी बात साफ करता हूँ। श्री लाभसिंह कोई बिलकुल-ही मामूली, बेसहारा आदमी नहीं हैं। उनके मुकदमेमें न्यायाधीशके निर्णयका पूरा पाठ इस प्रकार है:

चौथे अभियुक्त, लाभसिंहने रौलट अधिनियमके विरुद्ध प्रचार आन्दोलनको शुरू करनेमें सक्रिय भाग लिया और वह १२ और १३ तारीखकी सभाओंमें उपस्थित था। कहा जाता है कि उसने १३ तारीखको पहले तो हिंसात्मक कार्रवाईका विरोध किया, परन्तु अन्तमें उससे सहमत हो गया। १४ तारीखको उसे कई स्थानोंमें जनताकी भीड़के साथ देखा गया था, परन्तु लगता है कि उस दिन उसने अधिकारियोंकी सहायता की थी। हम उसे भारतीय दण्ड संहिताकी धारा १२१ के अन्तर्गत दोषी पाते हैं।

पाठक इस निर्णयका पूरा पाठ ३० जुलाईके 'यंग इंडिया' में देख सकते हैं। मैं पूछता हूँ कि न्यायाधीशोंने भी श्री लाभसिंहके बारेमें यह जो कहा है उसमें उनकी

अच्छाईके अलावा और है क्या, सिवाय इस एक वाक्यके कि "वह अन्तमें उससे सहमत हो गया था?" न्यायाधीशने जो-कुछ भी कहा है उसमें ऐसी कोई चीज नहीं है जो श्री लाभसिंहको १२ अप्रैलसे पहलेकी किसी कार्रवाईके लिए दोषी ठहराये। सजाका पूरा आधार ही मुखबिरका बयान है जिसका समर्थन करनेवाला कोई सबूत नहीं है, जबकि इस बातका पक्का सबूत मौजूद है कि उन्होंने हिंसापूर्ण कार्योंसे तथाकथित सहमति प्रकट करनेके बाद भी "अधिकारियोंकी सहायता करनेकी कोशिश की थी" (मैं न्यायाधीशके ही शब्द उद्धृत कर रहा हूँ)। परन्तु मुखबिरके बयानको सबूत मान लेनेके कारण ही न्यायालयने निर्णयके अन्तमें कहा है: "लाभसिंहने स्पष्ट ही अपने किये-पर पश्चात्ताप किया था।" पाठकोंको याद रखना चाहिए कि यह वही निर्णय है जिसमें घटनास्थलपर जगन्नाथकी अनुपस्थिति स्पष्टतः सिद्ध हो जानेपर भी उस बेचारेको कमिश्नर द्वारा घुमाई गई प्रश्नावलिके उत्तर मिलनेसे पहले ही सजा सुना दी गई थी। तब लाभसिंहके निम्नकथनमें कुछ भी विचित्रता नहीं है:

> **विनम्र निवेदन है कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नरका आदेश एक भारी और गम्भीर अन्यायकी परिपुष्टि ही करता है और उसे स्थायित्व प्रदान करता है।**

यह स्वीकार किया गया है कि श्री लाभसिंहने ५ अप्रैलके नोटिसपर हस्ताक्षर करनेके अलावा और कुछ नहीं किया; उन्होंने "१४ अप्रैलकी घटनासे पहले गत १२ से १५ महीनोंके बीच गुजराँवालामें या अन्य किसी भी स्थानपर किसी भी समय" न तो कोई सभा बुलाई और न किसी सार्वजनिक सभामें भाषण ही किया था। श्री लाभसिंह आगे कहते हैं:

> **न्यायालयने निर्णय करनेमें असामान्य जल्दबाजी की और सफाई पक्षके चन्द गवाहोंके नाम जारी की गई प्रश्नावलियोंके उत्तर आनेतक रुकना भी गवारा नहीं किया।**

मैं श्री लाभसिंहके अत्यन्त ही योग्य और विश्वासोत्पादक बयानों और उनके दो प्रार्थनापत्रोंसे और अधिक उद्धरण देकर इस टिप्पणीको बोझिल नहीं बनाना चाहता, परन्तु मैं प्रत्येक भारत-प्रेमी और प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्त्तासे अनुरोध करता हूँ कि वे मुकदमेके निर्णयको इन दस्तावेजोंके साथ रखकर सावधानी और बारीकीसे पढ़ें। मेरा ख्याल है कि श्री लाभसिंह और उनके साथी बन्दियोंके प्रति हमारा भी एक सीधा-सादा कर्त्तव्य है। सर एडवर्ड मैकलेगनके अनुसार वे स्पष्ट ही अपराधी हैं। जनताके सामने जो सबूत है उसके मुताबिक वे सब स्पष्ट ही निर्दोष हैं। हमें इतने प्रतिभाशाली, सुयोग्य और नीतिवान युवकोंका पूरा जीवन, उनके प्रति उदासीन रह-कर, बर्बाद नहीं होने देना चाहिए। भावी पीढ़ियाँ हमें इसी बातसे परखेंगी कि मैंने जिन मामलोंकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित किया है उनमें और उन-जैसे दूसरे मामलोंमें हम उनके लिए कहाँतक न्याय हासिल कर सके। मेरे लिए तो व्यक्तिके प्रति न्याय हासिल करना ही सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, वह व्यक्ति चाहे कितना-ही मामूली क्यों न हो। अन्य सभी बातोंका नम्बर इसके बाद आता है। और आशा है कि जनता भी इसे इसी दृष्टिसे देखेगी। यदि ये सजाएँ रद्द नहीं हुईं तो उसका कारण

यह नहीं होगा कि हम न्याय हासिल कर सकनेमें असमर्थ हैं, बल्कि यह होगा कि हम न्याय पानेके अयोग्य और अनिच्छुक हैं; क्योंकि मेरा ख्याल है कि तथ्योंपर आधारित और संयत भाषामें व्यक्त की गई जनताकी सर्वसम्मत रायके खिलाफ भारत सरकार और पंजाब सरकार भी खड़ी नहीं रह सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-९-१९१९

९२. तार : खिलाफत समितिको

[साबरमती]
सितम्बर १७, १९१९

तारके लिए धन्यवाद।[1] आज रवाना हो रहा हूँ। कृपया गुरुवार सुबह लैबर्नम रोडपर मुझसे मिलिए।

[मो० क० गांधी]

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६८८१) की नकलसे।

९३. पत्र : छोटालाल तेजपालको

आश्रम
साबरमती
बुधवार [सितम्बर १७, १९१९][2]

भाईश्री छोटालाल,

आपका पत्र मिला। यदि आप मुझे तथ्यपूर्ण विवरणसे युक्त ऐसा पत्र भेजें जो 'नवजीवन'के एक कालममें आ जाये, तो मैं उसे प्रकाशित कर दूँगा। आपने जो पत्र भेजा है वह तो बहुत-ही लम्बा है।[3] फिलहाल उसे संक्षिप्त करनेका समय मेरे पास नहीं है।

मोहनदास गांधी

छोटालाल तेजपाल
आर्टिस्ट
राजकोट

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पोस्टकार्ड (एस० एन० २५८८) की फोटो-नकलसे।

१. तार इस प्रकार था : "बम्बईकी खिलाफत समितिके अध्यक्ष और सदस्यगण खिलाफत और मुसलमानोंके तीर्थोंके प्रश्नपर तथा इस्लामकी वर्तमान परिस्थितिपर विचार करनेके लिए गुरुवार, १८ सितम्बर, १९१९ को बम्बई समयके अनुसार साढ़े आठ बजे शाम बैलासिस रोड स्थित मस्तान शाह टैंकपर होनेवाली बम्बईके मुसलमानोंकी एक सार्वजनिक सभामें महात्मा मो० क० गांधीकी उपस्थितिके लिए अनुरोध करते हैं. . . कृपया उत्तर दें।"

२. डाकघर द्वारा लगाई गई मुहरसे।

३. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-१०-१९१९।

९४. भाषण: बम्बईकी खिलाफत सभामें[1]

सितम्बर १८, १९१९

मुझे इस सभामें उपस्थित होनेकी बड़ी प्रसन्नता है, और इसमें आमंत्रित करनेके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आज शामकी यह सभा जिस प्रश्नपर चर्चा करनेके लिए बुलाई गई है वह मेरे लिए नया नहीं है। भारत पहुँचनेके बादसे ही मैं सभी विचारोंके मुसलमानोंसे मिलता-जुलता रहा हूँ और जानता हूँ कि आपके लिए यही प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके सही हलपर ही इस देशकी भावी शान्तिका दारमदार है। इसलिए इसका प्रभाव केवल मुसलमानोंपर ही नहीं हिन्दुओं और अन्य सम्प्रदायोंपर भी पड़ता है। यह प्रश्न समूचे साम्राज्यके लिए बड़ा महत्त्व रखता है। इसके लिए मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि महामहिम वाइसरायने विधान परिषद्के समक्ष अपने पचपन मिनटके भाषणमें इस प्रश्नको केवल एक ही मिनट दिया। अधिक उपयोगी और उचित तो यही होता कि वे इसी प्रश्नकी चर्चाके लिए चौवन मिनट देते। मैंने वाइसराय महोदयको पूरे सम्मानके साथ सार्वजनिक रूपसे इस प्रश्नकी गम्भीरताके बारेमें आगाह कर दिया है। इस्लामके लिए जो भी कुछ परम पवित्र है, वह सब इस प्रश्नके साथ जुड़ा हुआ है। मैं आपकी भावनाओंको बखूबी समझ सकता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि यदि हिन्दुओंके धार्मिक सम्मानपर कोई आँच आये तो वे कैसा महसूस करेंगे। मैं जानता हूँ कि आज आपके लिए खिलाफतका प्रश्न ही सब-कुछ है। इसलिए मुझे पूरा भरोसा है कि आपके इस न्यायपूर्ण संघर्षमें सभी हिन्दू आपके साथ हैं। मैंने अपने हालके एक लेखमें[2] वाइसराय महोदयसे कहा है कि आपका मामला पेश कर देना, और शान्ति-सम्मेलनमें आपको प्रतिनिधित्व दिला देना ही उनके लिए पर्याप्त नहीं है। अच्छा अवश्य है, पर पर्याप्त नहीं। उनको आपकी भावनाओंको आपकी तरह ही महसूस करना चाहिए। उनको आपके उद्देश्यको अपना उद्देश्य बना लेना होगा। मैं सम्मानपूर्वक सुझाव रखता हूँ कि यदि वाइसराय महोदय और श्री मॉण्टेग्यु दोनों ही आपकी भावनाओंको ठीकसे समझते हैं, तो वे सम्राट्से कह दें कि यदि इस बड़े प्रश्नको इस ढंगसे हल नहीं किया जाता कि आपको पूर्णतया संतोष हो जाये तो उनको पदके दायित्वसे मुक्त कर दिया जाये। सम्राट्के मंत्रियोंपर मुसलमानोंके एक बहुत महत्त्वपूर्ण हितका प्रतिनिधित्व करनेके नाते, इस मामलेका समुचित हल निकलवानेका दायित्व है। मुसलमानोंकी भावनाओंकी उपेक्षा करना उनके इस दायित्वसे मेल नहीं खाता। लेकिन मैं अपने मनकी बात बताऊँ तो कर्त्तव्यकी उपेक्षाका खतरा मुझे मंत्रियोंकी ओरसे इतना नहीं है जितना कि आपकी — इस सभामें उपस्थित

१. गांधीजीने मुसलमानोंकी एक सभामें टर्कीको अलग-अलग टुकड़ोंमें बाँटनेके खतरेके बारेमें एक प्रस्तावपर भाषण किया था। मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानी सभाके अध्यक्ष थे।

२. देखिए "वाइसरायका भाषण", १४-९-१९१९।

विशाल श्रोतृ-समूह और मंचपर मौजूद नेताओंकी ओरसे है। यदि आज आप और मैं अपना कर्त्तव्य नहीं निभाएँगे तो हम उन करोड़ों मुसलमानोंके शापके भागी बनेंगे जो आशा सँजोये हुए हैं कि किसी-न-किसी तरह सब ठीक हो जायेगा। यदि सब-कुछ ठीक न हुआ तो उनको बड़ी गहरी निराशा होगी। ब्रिटिश शासक बड़े चतुर और बुद्धिमान हैं। उनको यह समझते देर नहीं लगेगी कि हम कोई बात गम्भीरतासे कह रहे हैं, या केवल बातें बना रहे हैं। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपने आपसे सवाल करें कि इस इतने गम्भीर मसलेके बारेमें आप स्वयं भी पूरी तौरपर गम्भीर हैं या नहीं। विश्वास मानिए कि यदि आप गम्भीर हैं, तो अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं। हमें लॉर्ड एम्टहिल[1] और उन अन्य भले लोगोंका आभार मानना चाहिए जो आपके उद्देश्यका समर्थन और प्रचार कर रहे हैं। आपने उन भले अंग्रेज श्री एन्ड्रयूजका अभी केवल एक ही पत्र देखा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वह आपके लिए जो निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं, यह पत्र उसका एक बहुत ही मामूली-सा अंश है। परन्तु यदि आप स्वयं इस समस्याके बारेमें जागरूक नहीं रहेंगे तो मैंने अभी-अभी जिनके नाम गिनाये हैं उन अंग्रेजोंकी सेवाएँ निष्फल हो जायेंगी। आपने यह कार्रवाई एक प्रार्थनासे शुरू की थी और प्रार्थनाके साथ ही आप इसे समाप्त करेंगे। अल्लाह हर जगह मौजूद है और उसकी आँखोंसे कुछ छिपा नहीं है; हम उसे धोखा नहीं दे सकते। समस्त संसारके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मानते हैं कि आपका उद्देश्य न्यायपूर्ण है। परन्तु क्या आप भी न्यायपर हैं? आप स्वयं भी इसके प्रति ईमानदार हैं? इसकी कसौटी बड़ी सीधी-सी है। हर ईमानदार और सच्चा आदमी किसी सच्चे उद्देश्यके हित अपनेको बलि चढ़ानेके लिए तैयार रहता है। क्या आप अपने उद्देश्यके लिए अपनी बलि देनेको तैयार हैं? क्या आप अपना आराम, अपनी सहूलियतें, अपना धन्धा और अपनी जान कुर्बान करनेके लिए तैयार हैं? यदि हैं, तो आप सत्याग्रही हैं, आपकी विजय निश्चित है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कभी-कभी मेरे पास आकर पूछते हैं कि क्या सत्याग्रहमें कभी-कभी चोरी-छिपे भी हिंसा नहीं की जा सकती? मैंने सदा यही उत्तर दिया है कि हिंसा चोरी-छिपेकी हो या खुलासा, हर रूपमें वह सत्याग्रहके सर्वथा विपरीत है। पूर्ण अविचलता और [दृढ़] संकल्प ही न्यायपूर्ण उद्देश्यको सदा विजय दिलाते हैं। उद्देश्यके लिए मर-मिटना मानवमात्रका धर्म है और हत्या करना पशुओंका।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०–९–१९१९

१. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ५१२-१४।

९५. प्रस्ताव : खिलाफत सभामें

[बम्बई
सितम्बर १८, १९१९]

जुमा मस्जिदमें की गई मुसलमानोंकी यह सभा टर्की [साम्राज्य] के विघटन और खलीफाके नियन्त्रणसे पाक जगहोंके हटा दिये जानेका जो खतरा दिखाई दे रहा है, उसके प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त करती है और भरोसा करती है कि महामहिमके मन्त्रिगण, परममाननीय लॉयड जॉर्जने टर्कीके बारेमें जो वचन दिया था, उसे निभायेंगे और इस प्रकार महामहिमकी मुस्लिम प्रजाके मनमें फिर विश्वासका संचार करेंगे।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९५२) की फोटो-नकलसे।

९६. दण्डविमुक्ति विधेयक

बहुचर्चित दण्डविमुक्ति विधेयक (इंडेम्निटी बिल) अब जनताके सामने आ गया है। मैं देख रहा हूँ कि इस विधेयकके पेश किये जानेकी अब भी आलोचना की जा रही है। सर चन्दावरकर भी पूरी तौरपर आलोचकोंकी पंक्तिमें शामिल हो गये हैं। उनको कानूनकी बड़ी अच्छी जानकारी है। उनका मत है कि संवैधानिक विधि और पूर्वदृष्टांत दोनोंकी यही अपेक्षा है कि दण्डविमुक्ति विधेयक तो केवल इंग्लैंडकी संसद ही पास कर सकती है, स्थानीय विधान सभाएँ नहीं, और इंग्लैंडकी संसद भी तभी पास कर सकती है जब एक शाही आयोग उसकी आवश्यकताके बारेमें संसदको प्रतिवेदित करे। सर नारायण चन्दावरकरने अपने मतके समर्थनमें डैसीका मत उद्धृत किया है। इसलिए मैं उससे भिन्न अपनी एक राय अत्यन्त विनम्र भावसे ही व्यक्त कर सकता हूँ। मैं संसदीय हस्तक्षेपका बड़ा आलोचक हूँ। इसमें संदेह नहीं कि कभी-कभी संसदीय हस्तक्षेप बड़ा लाभकारी भी सिद्ध होता है, परन्तु मैं तो एक ऐसे समयकी बात सोच रहा हूँ — जो बहुत दूर नहीं है, जब हमारे देशमें एक ऐसा विधान-मंडल होगा जो जनताके लिए महत्त्वपूर्ण सभी बातोंमें जनताके प्रति पूरी तौरपर उत्तरदायी होगा। तब संसदीय हस्तक्षेप हमारे लिए उतना ही असहनीय बन जायेगा जितना कि वह आस्ट्रेलिया, कनाडा या दक्षिण आफ्रिकाके लिए है। राष्ट्रीय चेतनाका पूरा-पूरा विकास हो जानेपर, हम इंग्लैंडकी संसदके पिछलग्गू बनकर नहीं रहेंगे। यदि आवश्यक हुआ तो दूसरोंकी भाँति हम भी कलह, क्रोध और द्वेषके बीचसे गुजरते हुए आत्मिक शुद्धि और शान्तिकी मंजिलतक पहुँच जायेंगे। मैं जानता हूँ कि आम जनता द्वारा उचित ढंगसे चुने हुए प्रतिनिधि जब सरकारी अधिकारियोंके क्रोधके भय और उनकी प्रसन्नताके

लोभके दायरेसे बाहर निकलकर पहली बार संसदमें बैठेंगे तब यह भी हो सकता है कि वे भी ऐसा कोई प्रस्ताव पास करें जिससे मुझे जबरदस्त धक्का लगे। मैं उसके लिए भी बिलकुल तैयार हूँ। चूँकि मेरा यही दृष्टिकोण है, इसलिए मैं इस वर्तमान विधान द्वारा एक दण्डविमुक्ति विधेयक पास करनेके तथ्यपर भी एक संतुलित भावसे विचार कर सकता हूँ, जिसमें जनताका प्रतिनिधित्व और नियन्त्रण नाममात्रको ही है। और यदि इस प्रश्नपर व्यावहारिक दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा खयाल है कि दण्डविमुक्ति विधेयकको शाही संसदसे पास कराना और भारतमें एक पूर्व-दृष्टान्त तैयार कर देना हमारे लिए एक बड़ा मुश्किल काम होगा।

मैं अत्यन्त आदरपूर्वक इस मतसे भी अपना मतभेद व्यक्त करना चाहता हूँ कि एक ऐसा विधेयक शाही आयोग द्वारा प्रतिवेदित किये जानेके पश्चात् ही पास किया जा सकता है। मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि विधेयक जिस रूपमें प्रकाशित हुआ है, उस रूपमें लगभग हानिरहित ही है और यह एक ऐसा विधेयक है जिसे हमें आयोगके प्रतिवेदनके बाद भी इसी रूपमें पास कर देना चाहिए। मुझे क्षणभरके लिए भी यह भ्रम नहीं है कि अमानवीय ढंगसे कोड़े लगानेका आदेश देनेवाले अधिकारीने इस सदाशयतापूर्ण विश्वासके साथ वैसा आदेश दिया होगा कि वह साम्राज्यकी सेवा कर रहा है। मैं यह नहीं चाहूँगा कि हम व्यक्तिगत रूपसे उस अधिकारीके विरुद्ध क्षतिपूर्तिका दावा करें। यदि मेरे हाथमें सत्ता होती, तो मैं अक्षमताके आधारपर उस अधिकारीको बरखास्त करा देता और ऐसा कर सकनेके प्रशासकीय अधिकारपर इस विधेयकसे कोई आँच नहीं आती। आखिरकार, हम यह तो नहीं चाहते कि किसी से बदला लें या छोटे अधिकारियोंको उच्च अधिकारियोंके अपराधके लिए बलिका बकरा बनायें। आम जनताका विश्वास और मत यही है कि वास्तविक अपराधी तो पंजाब सरकार और भारत सरकार है। मेरी समझसे तो इस विधेयकसे उनको कोई निष्कृति नहीं मिलती। वाइसराय और सर माइकेल ओ'डायर अपने-अपने सचिवोंसे तो सदा-शयताके प्रमाणपत्र नहीं ले सकते। उनको तो असाधारण शक्तियाँ ग्रहण करनेके अभि-योगके उत्तरमें समुचित और पर्याप्त कारण जुटाकर उसकी आवश्यकता सिद्ध करनी ही पड़ेगी। अन्तमें, मेरा विनम्र मत है कि हमें छोटे अधिकारियोंको दण्डविमुक्त करनेका विरोध करते देखकर हमारे अंग्रेज मित्र निरर्थक ही रुष्ट हो जायेंगे। पंजाबके गवर्नर और वाइसरायके खिलाफ हमारे संघर्षको तो अंग्रेज मित्र भी अनुचित नहीं समझेंगे। परन्तु छोटे अधिकारियोंको कानूनी कार्रवाईसे दण्डविमुक्त करनेमें हमें विलम्ब करते देखकर भी वे हमारे बारेमें कोई अच्छी राय नहीं बनायेंगे।

और हमें अभी कई बड़े संघर्ष करने हैं। इसलिए मैं तो कहूँगा कि हमें अपनी सारी शक्ति, अपनी पूरी सामर्थ्य नितान्त आवश्यक और अवश्यम्भावी संघर्षके लिए सुरक्षित रखनी चाहिए। हमें इसके शिकार बननेवाले लाला हरकिशनलालसे लेकर युवक करमचन्द जैसे निर्दोष, निरपराध व्यक्तियोंके सम्मानकी रक्षा एक पवित्र धरो-हरकी भाँति करनी चाहिए। हो सकता है कि प्रीवी कौंसिल कुछ प्राविधिक आधारों-पर इन विचाराधीन अपीलोंको रद कर दे। और यह भी सम्भव है कि सभी लोग अपीलें न भी कर पायें। और हो सकता है कि सरकार भी हठधर्मी करे और केवल

उन मामलोंमें ही राहत देनेको तैयार हो जिनको प्रीवी कौंसिल उचित ठहराये। हमें इससे सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए। इसलिए हमें उन सभी मामलोंकी पूरी तौरपर सार्वजनिक और निष्पक्ष जाँच करानेका प्रयत्न करना चाहिए जिनमें हम समझते हैं कि स्पष्ट ही अन्याय हुआ है। इसलिए विचारणीय प्रश्न यह है: क्या लॉर्ड हंटरके पास ऐसी जाँच पड़ताल करनेके लिये पर्याप्त शक्ति है? यदि नहीं, तो मैं निःसंकोच यही सलाह दूँगा जो मैंने दक्षिण आफ्रिकामें दी थी और वह यह कि लोगोंको समितिके सामने साक्ष्य प्रस्तुत करने नहीं जाना चाहिए। दूसरी चीज यह कि मैं लाला हरकिशनलाल, लाला गोवर्धनदास, डॉ० सत्यपाल, डॉ० किचलू और अन्य राजनीतिक अपराधी कहे जानेवाले लोगोंकी रिहाईके लिए आन्दोलन करूँगा। उनको भी उसी स्वतन्त्रता और इज्जतके साथ साक्ष्य प्रस्तुत करनेका अवसर दिया जाना चाहिए जिस स्वतन्त्रता और इज्जतके साथ वाइसराय और सर माइकेल ओ'डायरको -- यदि वे इसके लिये सहमत हो जायें -- साक्ष्य प्रस्तुत करने दिया जायेगा। और मेरा खयाल है कि उनको सहमत होना चाहिए। तीसरी चीज यह कि हमें अपनी सारी शक्ति पंजाब और अन्य स्थानोंमें जाकर साक्ष्य इकट्ठे करने, उन्हें व्यवस्थित रूप देने और महत्त्वके हिसाबसे उसका चुनाव करनेमें लगानी चाहिए। इस कार्यके लिए निरन्तर प्रयत्न, संगठन-योग्यता और देशकी सर्वोत्तम प्रतिभाको क्रियाशील बनानेकी और समितिके सामने पूरा मामला प्रस्तुत करनेके लिए पूर्ण निर्भयता तथा सत्य-निष्ठाकी आवश्यकता है। और यदि हम सदा सतर्क पंडितजी द्वारा तैयार की गई बृहत् सूचीमें गिनाये गये अभियोगोंमें से एक चौथाईको भी पूरी तरह सिद्ध कर दें, तो हम शुरूसे जो कहते आ रहे हैं उसकी परिपुष्टि हो जायेगी। गलती करनेवाले अपराधियोंको दण्ड दिलाना हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा लक्ष्य तो उन व्यक्तियोंको सम्मानपूर्वक बरी करवाना है जिनको हम निर्दोष और निरपराध मानते हैं और जिनको सजा देना हमारे खयालसे गलत था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-९-१९१९

९७. पत्र: जी० एस० अरुंडेलको

आश्रम
साबरमती
सितम्बर २०, १९१९

प्रिय श्री अरुंडेल,

आपका अनुरोध[1] है कि मैं 'पंजाब सप्ताह' के सिलसिलेमें कुछ भेजूँ। इस सम्बन्धमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस दुःखी प्रान्तकी जनताके लिए पूरा-पूरा न्याय हासिल करना और हम जिसे उसके प्रति अन्याय समझते हैं उसका पर्दाफाश करना स्पष्ट ही हमारा कर्त्तव्य है।

१. अरुंडेलने सितम्बर १३, १९१९ को सम्बन्धित पत्र लिखा था।

इसके तीन तरीके हैं :

(१) खर्च पूरा करनेमें योग देना।

(२) जैसे-जैसे तथ्य हमें मिलते जाएँ उनका अध्ययन और प्रकाशन करना।

(३) हर सड़क और चौराहेपर सभाएँ करके अप्रैल और उसके बादकी घटनाओंकी खुली और निष्पक्ष जाँचकी माँगके प्रस्ताव पास करना।

मुझे प्रतीत होता है कि लॉर्ड हंटरकी समिति अलग-अलग मामलोंकी जाँच नहीं करेगी और जाँचके लिए दो न्यायाधीश ही नियुक्त किये जायेंगे। हमें कोशिश करनी चाहिए कि न्यायाधीश ऐसे हों जिनपर हम भरोसा कर सकते हों और जिन्हें नया साक्ष्य मंजूर करनेके अधिकारके साथ पर्याप्त शक्ति मिली हुई हो। और हमें माँग करनी चाहिए कि दोनों जाँचोंका कार्य उचित ढंगसे सम्पन्न करानेकी दृष्टिसे राजनीतिक बन्दियोंको रिहा कर दिया जाये, आवश्यक हो तो भले ही उन्हें पैरोलपर छोड़ा जाये।

मेरी विनम्र राय है कि जिस एक अधिनियमको बरकरार रखनेके लिए, जैसा कि मेरा विश्वास है, न्यायको धता बतला दी गई है, उसके रद हुए और आवश्यक राहत मिले बिना सभी प्रकारके सुधार व्यर्थ सिद्ध होंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
न्यू इंडिया, २६–९–१९१९

९८. टिप्पणियाँ

राष्ट्रीय शिक्षा

भारतवर्षके प्राचीन विद्यापीठोंके सम्बन्धमें लिखे गये लेखकी[1] ओर हम पाठकोंका ध्यान खींचते हैं। जबतक देशमें सच्चरित्र शिक्षकोंकी मार्फत विद्यादान नहीं होता, और ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती कि गरीबसे-गरीब भारतीयको अच्छीसे-अच्छी शिक्षा दी जा सके, जबतक विद्या और धर्मका सम्पूर्ण समन्वय नहीं हो पाता, जबतक [शिक्षा] भारतकी परिस्थितिके अनुरूप नहीं दी जाती, जबतक बालकों और युवकोंके मनपर विदेशी भाषाकी मार्फत शिक्षा देकर जो असह्य बोझ डाला जाता है उसे दूर नहीं किया जाता, तबतक राष्ट्रीय जीवनका विकास नहीं हो सकता। यह एक ऐसा सत्य है जिसमें शककी कोई गुंजाइश ही नहीं है।

शुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा तो प्रत्येक प्रान्तकी अपनी भाषाके माध्यमसे ही दी जानी चाहिए। शिक्षक उच्च कोटिके होने चाहिए। पाठशाला ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ

१. श्री मावजी दामजी शाह द्वारा मूल मराठीसे अनूदित यह लेख २१–९–१९१९ के **नवजीवन**में प्रकाशित हुआ था।

विद्यार्थियोंको स्वच्छ हवा और पानी प्राप्त हों, शान्ति मिले और जहाँ मकान तथा आसपासकी भूमि आरोग्यका पदार्थपाठ पढ़ाती हो; और शिक्षण पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे भारतके मुख्य धन्धों तथा मुख्य धर्मोका ज्ञान प्राप्त हो सके। एक मित्रने ऐसी पाठशालाका पूरा खर्च उठानेका अपना इरादा जाहिर किया है। उनका उद्देश्य यह है कि इस पाठशालामें अहमदाबादके बालकोंको प्राथमिक शिक्षा मुफ्त दी जाये। मित्रकी इच्छा है कि ऐसी पाठशालाएँ अहमदाबादमें एक नहीं अनेक होनी चाहिए। अहमदाबादके समीप जमीन मिल सकती है और भवन-निर्माण भी किया जा सकता है, ऐसा हम मानते हैं। लेकिन हमारा अनुभव है कि उच्च शिक्षा प्राप्त चारित्र्यवान शिक्षक पानेमें कठिनाईका सामना करना पड़ता है। हम गुजरातके शिक्षित-वर्गको सूचित करना चाहते हैं कि वे इस ओर अपना ध्यान दें। [इस दिशामें] महाराष्ट्रमें शिक्षित-वर्ग जितना त्याग करता है गुजरातका शिक्षित-वर्ग उसका एक चौथाई भी नहीं करता। हमारे मित्रकी योजनामें ऐसा तो कहीं नहीं है कि वेतन बिलकुल न दिया जाये। उसमें शिक्षकोंके लिए अपनी आजीविका प्राप्त कर सकनेका प्रबन्ध किया गया है लेकिन जो शिक्षक अपनी कमाईकी सीमा नहीं बाँध सकता वह ऐसी पाठशालामें घुलमिल नहीं सकता। गुजरातके शिक्षित समुदायमें से यदि कोई व्यक्ति ऐसी शिक्षा देनेमें अपना समय देना चाहता हो तो उसे राष्ट्रीय शिक्षा-विभागके मन्त्रीके नाम पत्र लिखना चाहिए। और यदि योग्य शिक्षक मिले तो हम अहमदाबादमें थोड़े समयमें ही ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा देनेवाली पाठशाला स्थापित हुई देखेंगे। इस शालाके विद्यार्थी अपने-अपने घर रहेंगे। केवल पढ़ाईके समय पाठशालामें आयेंगे। वैसा ही शिक्षकोंके विषयमें समझना चाहिए। सत्याग्रह आश्रमके अंग-रूपमें चलनेवाली राष्ट्रीय पाठशालाका हमारे मित्रोंकी योजनासे इस बातके अलावा और कोई सम्बन्ध नहीं होगा कि दोनों शालाओंमें एक ही शिक्षण पद्धति होगी। सत्याग्रह आश्रमकी पाठशालाका एक उद्देश्य उसमें पढ़नेवाले बालकोंपर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त करके उनमें से शिक्षक तैयार करना है। जिस पाठशालाके बारेमें अभी विचार किया जा रहा है उसका हेतु अहमदाबादके बालकोंको प्राथमिक शिक्षा देनेतक ही सीमित है।

व्यापारियोंका अपने नौकरोंके प्रति कर्त्तव्य

'सर्वोदय' उपनामसे लिखनेवाले पत्र-लेखकके पत्रकी ओर हम व्यापारियोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। यह पत्र लिखनेवाले महोदय स्वयं बम्बईके एक सम्मानित व्यापारी हैं। हमने बम्बईके नौकरोंकी दुःखभरी गुहार अनेक बार सुनी है। उनसे बहुत सवेरेसे लेकर रातके दस-दस बजेतक काम लिया जाता है। फलतः न तो वे पूजा-पाठ कर सकते हैं, न अपने शरीरकी सार-सँभाल कर सकते हैं और न अध्ययनके लिए ही समय बचा पाते हैं। जिस देशमें जनताके सेवक-वर्गकी ऐसी दयनीय स्थिति हो उस देशका राष्ट्रीय जीवन दोषपूर्ण माना जायेगा। व्यापारियों और नौकरोंके आपसी सम्बन्ध पिता-पुत्रके समान पारस्परिक सद्भाव तथा वफादारीपर आधारित होने चाहिए। सेठके प्रति नौकरकी इस वफादारी और सद्भावका परिणाम यह होना चाहिए कि वह जरूरत पड़नेपर अपने सेठके लिए प्राण न्यौछावर कर दे और हमेशा सेठके प्रति

ईमानदार रहे। सेठकी वफादारी काम लेते समय नौकरपर दयाभाव रखने, उसके स्वास्थ्यकी रक्षा करने तथा उसकी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें है। जहाँ परस्पर एक-दूसरेके प्रति ऐसी कर्त्तव्यभावना हो वहाँ बहुत सुन्दर परिणाम देखनेमें आते हैं। यह एक ऐसी बात है जिसमें हम अंग्रेजोंकी नकल कर सकते हैं। [उनमें] सामान्यतया नौकरोंके लिए काम करनेका एक निश्चित समय ही होता है, और वह इतना कम होता है कि जिससे नौकरके पास गृहकार्य, व्यायाम और अगर वह धार्मिक वृत्तिका व्यक्ति हो तो पूजा-पाठके लिए काफी समय बच जाता है। जितना काम अंग्रेज व्यापारी अपने नौकरोंसे आठ घंटेमें ले लेता है उतना काम हमारे व्यापारी अपने नौकरोंसे कई बार सोलह घंटोंमें भी नहीं ले पाते।

हम सेठोंके सम्मुख उनके स्वार्थकी ही बात प्रस्तुत करना चाहते हैं। नौकरोंसे दस-बारह अथवा चौदह घंटेतक काम लेनेमें उन्हें भी रुके रहना पड़ता है। हम कोई सारा दिन अपने व्यापारका ही विचार करनेके लिए पैदा नहीं हुए हैं। व्यापार एक साधन है। जब वह साध्यके रूपमें हमारे ऊपर हावी हो जाता है, तब हम गुलाम बन जाते हैं। व्यापारीका यह फर्ज है कि वह समय रहते इस दशासे छुटकारा पा ले।

श्री नानालाल कवि अपने अमूल्य लेखों[1] द्वारा जिस समस्याको सुलझानेका प्रयत्न कर रहे हैं उसका इस विषयके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके वक्तव्यका इतना आशय तो हम समझ गये हैं कि जहाँ राष्ट्रीय जीवनमें निर्दोष आनन्द प्राप्त करनेका समय नहीं है अथवा उसे प्राप्त करनेके साधन नहीं हैं वहाँ जनता निस्तेज हो जाती है। जैसे मनुष्यके लिए सोना आवश्यक है वैसे ही उसके लिये व्यापारादि चिन्ताओंसे मुक्त होकर घड़ी-भरके लिए बालकके समान विनोद करने तथा निश्चिन्त होनेकी भी आवश्यकता है। वैसा हो तो राष्ट्रको नित्य नया जीवन मिलेगा। तथा जैसे हररोज अरुणोदय होनेपर भी वह सदा नवीन ही लगता है वैसे ही जिस राष्ट्रके लोगोंको निर्दोष आनन्द प्राप्त करनेके साधन और समय दोनों मिलते हैं वह राष्ट्र निस्तेज और मुरझाया हुआ दिखनेके बजाय सदैव दीप्त एवं प्रफुल्लित दिखेगा। व्यापारियोंके सम्मुख हम अपना यह विचार सप्रेम प्रस्तुत करते हैं और उनसे इसपर विचार करनेका अनुरोध करते हैं तथा 'सर्वोदय' के सुझावोंपर, जैसे बने अमल करनेकी सलाह देते हैं।

क्षणिक और स्थायी

सारी दुनियामें लोग दो तरहके कार्योंमें रत हैं। एक क्षणिक है और क्षणिक सुखके लिए ही होता है। समझदार लोग उसका त्याग करते हैं अथवा उसके लिए अल्प प्रयास करते हैं। दूसरे प्रकारका कार्य स्थायी होता है, कायर व्यक्ति उसे त्याग देते हैं, क्योंकि उसमें निरन्तर प्रयत्नकी आवश्यकता होती है।

इस तरह हिन्दुस्तानमें भी आजकल ये दोनों प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। लोग सरकार द्वारा किये गये छोटे-छोटे अन्यायों एवं अत्याचारोंपर बहुत-ज्यादा ध्यान देते दिखाई

१. यह लेखमाला ७-९-१९१९ के **नवजीवन**के प्रथम अंकसे आरम्भ हुई थी। शीर्षक था "राष्ट्रीय जीवनका ह्रास और पुनर्जागरण।"

है। हमें उम्मीद है कि ग्राहक अथवा पाठक इसे स्वयं पढ़नेमें ही सन्तोष नहीं मानेंगे बल्कि अपने परिवारके अशिक्षित सदस्योंको भी पढ़कर सुनायेंगे। हम तो इससे भी अधिक माँग करना चाहते हैं। हम जानते हैं कि ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो सप्ताहमें एक आना भी खर्च नहीं कर सकते। और उनसे भी ज्यादा संख्या ऐसे लोगोंकी है जिन्हें पढ़ना तो आता है लेकिन जो यह जाननेको बिलकुल उत्सुक नहीं हैं कि देशमें क्या हो रहा है। वे समाचारपत्र पढ़ना नहीं चाहते और पढ़ते भी हैं तो ऐसी चीज़ जिसमें कुछ श्रम नहीं उठाना पड़ता। हमारे वे उत्साही पाठक जिन्हें 'नवजीवन' के उद्देश्य पसन्द हैं इन दोनों वर्गोंतक 'नवजीवन' का सन्देश पहुँचा सकते हैं। उन्हें हमारा सुझाव है कि वे 'नवजीवन' क्लबों अथवा मंडलोंकी स्थापना करें। इन मण्डलोंका यही एक सीमित उद्देश्य होना चाहिए कि उनके सदस्य अमुक दिन, अमुक समय और अमुक स्थानपर इकट्ठे होंगे और शुरूसे अंततक 'नवजीवन' को पढ़ेंगे तथा उसपर चर्चा करेंगे। यह कार्य अत्यन्त आसान है लेकिन इसके बहुत महत्त्वपूर्ण परिणाम हो सकते हैं। प्रत्येक पाठक यदि डायरी लिखे तो वर्षके अन्तमें इनका अन्दाजा लगा सकेगा। शुद्ध विचारों, शुद्ध कार्यों तथा शुद्ध भावोंका जनतापर गहरा असर पड़ता है। शुद्ध भावनाओंको हम अपनी सहचारिणी बना लें तो उनके द्वारा हम इस संसारके विकट मार्गको आसानीसे पार कर सकते हैं। हम इस बातका निरन्तर प्रयास करते रहेंगे कि 'नवजीवन' किसी भी अनुचित अथवा नीच भावनाका, झूठी खबर अथवा अविवेकपूर्ण भाषाका माध्यम न बने। इसमें हमसे भूल न हो, — इस बातका दायित्व हम अपने पाठकोंको सौंपते हैं। हमारी मान्यता है कि पाठक-वर्गके साथ हमारा सम्बन्ध व्यापारिक नहीं बल्कि अत्यन्त घनिष्ठ और नैतिक है।

ठीक किया

कुछ समय पहले जब श्री गांधी गोधरा गये थे तब उनके सुननेमें आया था कि पंजीयित वाचनालयोंमें अमुक समाचारपत्र नहीं आने दिये जाते। इन निषिद्ध पत्रोंमें बहुत-से लोकप्रिय पत्र भी हैं। इस विषयपर 'यंग इंडिया' में चर्चा की गई थी तथा इस सम्बन्धमें श्री गांधीने शिक्षा-विभागके मुख्याधिकारीके साथ पत्र-व्यवहार भी किया था। यह पत्र-व्यवहार 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुआ है और उससे पता चलता है कि पंजीयित वाचनालयोंमें समाचारपत्रों [के प्रवेश]से सम्बन्धित वह प्रतिबन्ध हटा दिया गया है। इस विवेकपूर्ण निर्णयके लिए हम शिक्षा-विभागके मुख्याधिकारीको बधाई देते हैं।

यह निःसन्देह वांछनीय है कि जनताके पास सत्साहित्य ही पहुँचे। विषैले साहित्यसे जनता दूर रहे यह भी स्पृहणीय है, लेकिन ऐसे सुधार बलात् नहीं कराये जा सकते। जनता क्या पढ़ेगी, इसका आधार उसको मिली शिक्षापर निर्भर करता है; अर्थात् अखबारों तथा किताबोंपर भारी प्रतिबन्ध लगाकर जनताकी रुचिको परिष्कृत नहीं किया जा सकता। और इसी तरह अमुक पुस्तकें अथवा अखबार पढ़नेकी मनाही करके वफादारीकी शिक्षा भी नही दी जा सकती। जिस राष्ट्रकी जनताके साथ हमेशा न्याय किया जाता है और जिसकी ज्ञानवृद्धि होती रहती है वह प्रजा स्वभावतः

वफादार रहती है। सत्य आदि गुणोंके समान वफादारी ऐसा गुण नहीं है जो स्वतन्त्र रूपसे अपने ही सहारे टिक सकता हो। वफादारी किसी तरहके सहारेके बिना नहीं टिक सकती। इसलिए श्री कवर्नटनका[1] कदम प्रत्येक दृष्टिसे सराहनीय है। सचमुच देखा जाये तो यदि सरकार सदा ही ऐसे विवेकपूर्ण कदम उठाती रहे तो विद्रोहके लिए अवकाश ही न रहे।

देवीके सम्मुख की जानेवाली हिंसा

एक भील सज्जनकी ओरसे हमें चार-पाँच कविताएँ मिली हैं जिनमें उन्होंने अपने जातिभाइयों तथा अन्य हिन्दुओंसे नम्रतापूर्वक लेकिन दृढ़तासे यह प्रार्थना की है कि दशहरेके पुनीत एवं शुभ दिन देवीके सामने बकरे आदि पशुओंका जो क्रूर वध किया जाता है उसे बन्द किया जाये। हम ये कविताएँ तो प्रकाशित नहीं कर सकते, लेकिन उनके स्तुत्य कार्यकी ओर हमें ध्यान देना ही चाहिए। दया-धर्मको माननेवाले हिन्दूभाई देवीको बलि देनेके बहाने जो हिंसा करते हैं उसे जितनी जल्दी हो बन्द करना प्रत्येक हिन्दू भाईका कर्त्तव्य है। हम मुसलमान भाइयोंसे गो-वध बन्द करनेका अनुरोध करते हैं तो हमें यह हिंसा बन्द करनी ही चाहिए।

बीजापुरमें चरखेकी प्रवृत्ति[2]

बीजापुरकी इस प्रवृत्ति तथा इस तरहकी अन्य प्रवृत्तियोंके बारेमें जब मैंने सम्बन्धित बहनोंसे लेखोंकी माँग की तो उन्हें संकोच हुआ तथा उनकी ओरसे यह प्रश्न पूछा गया कि इस तरह उनका नाम प्रकाशमें आये — ऐसी इच्छा मैं कैसे कर सकता हूँ? आजतक मैंने उनके कार्योंको गुप्त रहने दिया। मुझे स्वयं भी ऐसे कार्योंको प्रकाशमें लानेमें संकोच हुआ, लेकिन मुझे जनताको इस बातकी जानकारी देना भी आवश्यक जान पड़ा कि चरखेका काम चल सकता है, फैल सकता है, वह लोकप्रिय है, वह आर्थिक तथा अन्य दृष्टियोंसे भी लाभप्रद है और उसमें सम्भ्रान्त परिवारोंकी महिलाएँ काम कर रही हैं। 'नवजीवन' के समान साधन न मिला होता तो भी मैंने इन बहनोंकी प्रवृत्तियोंको प्रकाशमें लानेका निश्चय कर लिया था। और इसीलिए लेडी टाटा, लेडी पेटिट और श्रीमती जाईजी पेटिटके नाम मैंने उनकी अनुमतिसे 'साँझ वर्तमान'के[3] पटेटी अंकमें प्रकाशित किये। मेरी अल्प बुद्धिके अनुसार श्रीमती गंगाबेनकी प्रवृत्ति अत्यन्त महत्त्वकी है तथा सारे देशको उसकी जानकारी होनी ही चाहिए। इसमें उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। इस धंधेमें उन्होंने पहले अपना रुपया लगाया और जब उन्हें कामयाबी हासिल हो गई तभी उन्होंने इस प्रवृत्तिको बढ़ानेके लिए अन्य लोगोंसे सहायता माँगी और वह उन्हें मिली भी। बीजापुर-जैसे छोटे गाँवमें सूत कातनेकी

१. बम्बई प्रदेशके शिक्षा-निदेशक।

२. यह टिप्पणी श्रीमती गंगाबेन मजमुदार द्वारा लिखे गये लेखके नीचे दी गई थी। श्रीमती गंगाबेनने चरखा-आन्दोलनका संगठन करनेमें गांधीजीकी सहायता की थी। इस लेखमें बताया गया था कि किस तरह गंगाबेनने इस कार्यको अपने हाथमें लिया और इसमें अबतक कितनी प्रगति हुई है।

३. देखिए "स्वदेशी", ११-९-१९१९।

इस प्रवृत्तिका इतने विशाल पैमानेपर चलना यह सूचित करता है कि यदि ठीक तरहसे प्रयत्न हों तो थोड़े ही समयमें गाँव-गाँव सूत कातनेका प्रसार हो जाये और बुनकरोंके जिस धंधेका ह्रास हो गया है वह फिरसे अपने पैरोंपर खड़ा हो जाये। मैं उम्मीद करता हूँ कि जिन-जिन बहनोंके पास समय है वे सब गंगाबेनका अनुकरण करेंगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-९-१९१९

९९. निराशा

उपर्युक्त[1] विचार किसके हैं, यह समाचारपत्र पढ़नेवाले लोग समझ गये होंगे। जनताको ये विचार अच्छी तरह समझ लेने चाहिए, इसलिये हमने लगभग प्रत्येक शब्द और वाक्यका अनुवाद कर दिया है। थोड़ेसे ऐसे वाक्योंको जिनका दूसरोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है और जिनके यहाँ न देनेसे भाषणकर्त्ताके साथ कोई अन्याय नहीं होता, इसलिए छोड़ दिया गया है कि उनसे बेकार ही जगह भरती। ये उद्गार पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एडवर्ड मैकलेगनके हैं तथा माननीय पं० मदनमोहन मालवीय द्वारा पेश किये गये प्रस्तावके प्रत्युत्तरमें व्यक्त किये गये हैं।

इन उद्गारोंसे प्रकट होता है नये गवर्नर महोदय सर माइकेल ओ'डायरके कार्यों-का पूरा बचाव करना चाहते हैं। वे मानते हैं कि जो सजायें दी गईं हैं वे उचित हैं और [न्यायालयों द्वारा] जो निर्णय दिये गये हैं वे भी ठीक हैं। सजामें जो कटौती की गई है वह दया-भावसे प्रेरित होकर तथा राजा और प्रजाके बीच एकता बनाये रखनेके उद्देश्यसे की गई है। मुझे कहना चाहिए कि इस कटौतीमें मुझे कोई दया नहीं दिखाई देती, कोई न्याय नहीं दीख पड़ता और उपर्युक्त विचारोंको देखने-पर, सरकारके दृष्टिकोणमें कोई परिवर्तन भी हुआ लक्षित नहीं होता। मैं देखता हूँ कि राजा और प्रजाके मन एक-दूसरेसे बहुत दूर हो गये हैं। अधिकारियोंको उनके अपराधोंसे मुक्त करनेकी बातको मैं सहन कर सकता हूँ, आयोगको उसके वर्तमान रूपमें स्वीकार करनेमें भी मुझे विशेष आपत्ति नहीं, लेकिन उपर्युक्त विचारोंसे जिस नीतिका आभास मिलता है वह मेरे लिए असह्य है और मेरी इच्छा है कि प्रजा भी उसे सहन न करे; क्योंकि ऐसी नीतिमें मुझे दोनोंकी ही तबाही नजर आती है। इसमें मैं एक-दूसरेके प्रति अविश्वास और भेदकी खाईको और चौड़ी होते देखता हूँ।

१. इस टिप्पणीसे पहले पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरके भाषणके एक हिस्सेका गुजराती अनुवाद दिया गया था। गवर्नरका भाषण माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय द्वारा प्रस्तुत उस प्रस्तावके सम्बन्धमें था जिसमें भारतीय शासन-तंत्रसे असम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा गठित आयोगकी नियुक्तिकी माँग की गयी थी। भाषणके लिए देखिए **यंग इंडिया,** १७-९-१९१९।

यदि सरकार यही मानती है कि उसकी ओरसे कोई भूल नहीं हुई, भूल तो सारी जनताकी ही है, तो फिर आयोग नियुक्त करनेकी क्या आवश्यकता है? आयोग जाँच क्या करेगा? दो प्रमुख व्यक्ति — वाइसराय महोदय तथा पंजाबके गवर्नर — सरकारके पक्षमें और जनताके विरुद्ध अपना निर्णय दे ही चुके। यदि सरकार यह मानती हो कि आयोगका काम अधिकारियोंके कार्योंपर कलई पोतना है तो हमारे लिए यह आयोग त्याज्य होना चाहिए। जनताका पक्ष इस प्रकार है: सर माइकेल ओ'डायर गवर्नरके रूपमें अयोग्य सिद्ध हुए हैं। पंजाबमें जो अशान्ति फैली उसका कारण उक्त महोदयकी पहलेकी कार्रवाइयाँ थीं। यदि उन्होंने डॉ० किचलू तथा डॉ० सत्यपालके विरुद्ध अन्यायपूर्ण आदेश जारी न किये होते, मुझे दिल्ली जानेसे न रोका होता तो अशान्ति इतना उग्र रूप धारण न करती। उसके बाद भी यदि गोलियोंकी बौछार न की जाती, तो लोगोंने जो भूलें कीं वे कभी न की होतीं। जाहिर है कि लोगोंके क्रोधको भड़कानेमें सर माइकेल ओ'डायरके आदेश कारणभूत सिद्ध हुए।

मैं यह नहीं कहता कि प्रजाकी ओरसे पेश किया यह मामला सही है। हो सकता है उसमें अतिशयोक्ति हो, वह बिलकुल झूठा हो, फिर भी सरकार जिसके विरुद्ध उपर्युक्त आक्षेप लगाये गये हैं, और जो इस समय मुद्दालेहके कटघरेमें है, इन आरोपों-को मात्र अस्वीकार करके उनसे मुक्त नहीं हो सकती। इस आयोगका एक मुख्य कार्य उपर्युक्त कार्योंपर निर्णय देना है। लोकमत तो इस आयोगसे सन्तुष्ट नहीं है। लेकिन यदि सरकारने अपने कार्यके सम्बन्धमें निर्णय कर ही लिया है तो फिर आयोगकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। जब कि आयोगकी नियुक्ति हो चुकी है वह अभीसे जनताविरोधी भाषणोंके द्वारा उसे विपरीत विचारोंसे भरनेकी कोशिश क्यों कर रही है? सरकारका कर्त्तव्य अप्रैलमें हुई घटनाओंके सम्बन्धमें चुप रहकर उसके पास जो सबूत हों उन्हें आयोगके सामने पेश करके और जनताको उसकी गवाहियाँ देनेमें मदद करते हुए आयोगकी सहायता करना है।

सर एडवर्ड मैकलेगनने तो अपने भाषणके द्वारा यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि बाबू कालीनाथ राय, लाला हरकिशनलाल, डॉ० सत्यपाल आदि सचमुच अप-राधी थे। ऐसा कहकर उन्होंने जनताकी भावनाओंको चोट पहुँचाई है, उन्होंने आगमें घी डाला है, प्रजाको शान्त करनेका दावा करके उसे अशान्त ही किया है।

प्रजा नहीं चाहती कि सरकार उसपर दया करे। लाला हरकिशनलाल आदिने यदि अपराध किया है तो वे दयाके पात्र नहीं सिर्फ सजाके पात्र हैं; पर यदि उन्होंने अपराध न किया हो तो उन्हें शुद्ध न्याय मिलना चाहिए।

प्रजाका कर्त्तव्य स्पष्ट है। जो जनता न्याय प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं है वह जनता उत्तरदायी राज्यसत्ता प्राप्त करनेके योग्य भी नहीं है। यदि जनता न्याय प्राप्त करनेमें समर्थ बनना चाहती है तो उसे उत्तेजित हुए बिना शान्तिपूर्वक लेकिन दृढ़तासे काम लेना चाहिए। और जिन लोगोंसे वह न्याय चाहती है उन्हें न्याय देनेके लिए तत्पर रहना होगा। मेरी अल्प मतिके अनुसार हमारा मामला इतना मजबूत है कि उसे विशेषणोंके आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है। यदि वह बिगड़ेगा तो केवल हमारे क्रोध

और गफलतके कारण ही बिगड़ेगा। क्रोधमे सम्मोह पैदा होता है, सम्मोहसे स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंश (स्मरण-शक्तिके नाश) से बुद्धिका नाश होता है तथा बुद्धिके नाशसे मनुष्यका सर्वथा विनाश हो जाता है। मेरी इच्छा है कि जनता इस शास्त्र-वचनको ध्यानमें रखे।[1]

हम शान्तिपूर्वक क्या कर सकते हैं? स्थान-स्थानपर सभाएँ आयोजित करके उनमें वाइसराय महोदय तथा पंजाब सरकार द्वारा दिये गये भाषणोंके प्रति अपनी नाराजी प्रकट कर सकते हैं। यदि सरकार न्यायपूर्वक व्यवहार न करे तो हम आयोग-के समक्ष सबूत पेश करना बन्द कर सकते हैं। पंजाब तथा अन्य स्थानोंपर हमने जो भूलें की हैं हमें उनसे अब बचे रहना चाहिए। सरकारके कार्योंसे चिढ़नेके अभी हमें अनेक अवसर मिलेंगे। क्रुद्ध होनेके बदले यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें और सरकारको उसके अन्यायपूर्ण कार्योंमें मदद न दें तो हम अजेय बन सकते हैं। स्वराज्य प्रजाकी सत्यपरता, उसकी दृढ़ता और सहनशीलतामें है। न्याय प्राप्त करनेकी हमारी यह योग्यता स्वराज्य भोगनेकी हमारी शक्तिका मापदण्ड है। यदि जनता इतनी शक्तिका परिचय देगी तो सर एडवर्ड मैकलेगन तथा वाइसराय महोदयके भाषणोंसे होनेवाली निराशासे आशाकी किरणें फूट निकलेंगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-९-१९१९

१००. पंजाबकी कुछ-और दुःखद घटनाएँ

मुझे शोकमें डूबे हुए प्रदेशकी दो-और घटनाएँ 'यंग इंडिया' के पाठकोंके सामने पेश करनेका दुर्भाग्यपूर्ण कर्त्तव्य निभाना पड़ रहा है। मैं पंजाबको शोकका प्रदेश इस-लिए कह रहा हूँ कि मैं देखता हूँ कि एक ओर तो ऐसी घटनाओंकी सूचनाओंका ताँता लगा हुआ है जिनमें यदि घटनाओंके विवरणोंपर विश्वास किया जाये, तो स्पष्ट ही अन्याय किया गया है और दूसरी ओर पंजाब सरकार इस बातपर तुली हुई मालूम पड़ती है कि वह अन्यायका निराकरण नहीं करेगी। मैं इन स्तम्भोंमें पहले ही कह चुका हूँ कि सरकार यदि इतना भी स्वीकार नहीं करती कि परिस्थितिको समझनेमें उससे गलती हुई है, तो फिर केवल सजाएँ घटानेसे न तो उन लोगोंको कोई सन्तोष होगा जो अपनेको निर्दोष समझते हैं और न आम जनताको ही जो उनको निर्दोष मानती है और चाहती है कि उनके साथ न्याय किया जाये। मैं स्वीकार करता हूँ कि यदि बन्दियोंका अपराध सिद्ध होता है तो मुझे उनकी सजाएँ घटवानेमें कोई दिलचस्पी नहीं है। लेकिन यदि वे निर्दोष हैं तो उनको बलात् कैदमें रखना अपराधपूर्ण है। पाठक श्री गुरदयालसिंह और डॉ० मुहम्मद बशीरकी ओरसे पेश हुए प्रार्थनापत्र देख सकते हैं। दोनों ही बड़े दिलेर हैं। एक सिख संस्कृतिमें पगा हुआ है और दूसरा एक होन-

१. **भगवद्गीता**, अध्याय २, श्लोक ६३।

हार मुसलमान डॉक्टर है। यदि उन्होंने सचमुच ही दंगा-फसाद किया है और हत्याओंके लिए लोगोंको उकसाया है तो उनको दी गई सजाएँ माफ करनेका कोई सवाल ही नहीं उठता। इसलिए डॉ० बशीरको मिले मृत्यु-दण्डकी माफीके समाचारसे श्रीमती बशीरको चाहे थोड़ी-बहुत सांत्वना हो भी, पर डॉ० बशीर या आम जनताको तो उससे कोई सांत्वना नहीं मिल सकती।

आइए हम श्री गुरदयालसिंहके मामलेपर भी एक सरसरी नजर डालें। उनके भाईने मुझे एक बड़ा लम्बा पत्र लिखा है उसे प्रकाशित करनेतक के लिए कह दिया है। चूँकि मुख्य-मुख्य तथ्य प्रार्थनापत्रमें मौजूद हैं, इसलिए मैं पाठकोंके ऊब जानेके डरसे उस लम्बे पत्रको प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। मैं उसके केवल उन वाक्योंको उद्धृत करूँगा जो इस मामलेमें किये गये अन्यायकी अति दिखलानेके लिए जरूरी हैं। उनके भाईका कहना है :

> **उन्होंने सिर्फ ६ अप्रैलकी सभामें भाग लिया था, जो पूरी तौरपर वैधानिक और व्यवस्थित थी। १४ और १५ तारीखको वे बीमार पड़े थे। शहरके सब-असिस्टेन्ट सर्जन (सरकारी कर्मचारी) ने उनकी चिकित्सा की थी और एक नुस्खा भी लिखकर दिया था, जिसकी मूल प्रति मैं इन कागजातके साथ भेज रहा हूँ।**

मैंने यह नुस्खा देख लिया है।

> **एपेण्डिसाइटिससे अत्यंत पीड़ित होनेके कारण मेरे भाई उस तथाकथित उपद्रवकारी भीड़में शामिल नहीं हो पाये थे, जिसने तहसीलकी खिड़कियोंके काँच तोड़ दिये थे। इस्तगासेके गवाहोंने मेरे भाईके खिलाफ जो-भी कहा है, उसके बारेमें मुझे इतना ही कहना है कि मेरे भाईको उन लोगोंके नाम नहीं बतलाये गये थे। उन लोगोंको उन्होंने पहली बार अदालतमें ही देखा था। . . . सच तो यह है कि मेरे भाईको यह भी नहीं बतलाया गया था कि उन-पर कौन-से अभियोग लगाये गये हैं। उनका पता भी उनको इस्तगासेके गवाहोंकी जबानी ही लगा था।**

मेरा मत है कि यदि यह बयान सही है तो श्री गुरदयालसिंहकी रिहाई इसीके बलपर हो सकती है। किसी भी अभियुक्तको उसपर लगाये हुए अभियोग बतलाये बिना मुकदमेकी कार्रवाई आगे नहीं बढ़ सकती। उनको अपने ऊपर लगे हुए अभियोग पहलेसे जाननेका पूरा अधिकार था, इस्तगासेके गवाहोंके जरिये अभियोगोंका पता चलना बिलकुल ही गलत चीज है। फिर इस पत्रमें इस्तगासेके गवाहोंके शिनाख्ती विवरणकी छानबीन करके दिखलाया गया है कि उनको अभियुक्तके साथ क्या शत्रुता थी। यह ठीक है कि जनता इस्तगासेके गवाहोंके बारेमें अभियुक्त द्वारा या अभियुक्तकी ओरसे दिये गये एकतरफा बयानोंकी बिनापर कोई नतीजा नहीं निकाल सकती, लेकिन यदि ये बयान सही हैं तो इनसे पता चलता है कि इस्तगासेके गवाहोंने काफी झूठी गवाही दी होगी। मैं मानता हूँ कि बन्दीकी ओरसे इस मामलेमें अपनी बात साबित करनेके लिए उतना अच्छा सबूत पेश नहीं किया गया है जितना कि कई दूसरे बन्दियों-

ने किया है, जिनके मुकदमोंकी कार्रवाई मैंने देखी है। लेकिन जनताके सामने पेश करनेके लिए मेरे पास पूरे कागजात भी तो नहीं हैं। पर बन्दीने जितने भी बयान पेश किये हैं, यदि उनको सही मान लिया जाये तो इतना साफ है कि इसमें जाँच-पड़तालकी जरूरत है।

ऐसा ही एक-दूसरा मामला है डॉ० मुहम्मद बशीरका। उनकी पत्नी द्वारा पेश किया गया करुण प्रार्थनापत्र और मृत्यु-दण्ड देनेवाली अदालतके सामने दिया गया खुद डॉ० बशीरका बयान, दोनोंमें कही गई बातें यदि सही हैं तो उनसे यही पता चलता है कि अदालत अपने निर्णयमें काफी भटक गई है। डॉ० बशीरने कोई झूठी बात कही हो या न कही हो, परन्तु अदालतके सामने तो निश्चय ही ऐसी कोई चीज नहीं थी जिसके आधारपर वह बचाव पक्षकी तरफसे पेश किये गये सबूतको बिलकुल बेकार-का बतलाती, जैसा कि उसने किया है: क्योंकि डॉ० बशीरके बयानसे, जिसे इसी अंकमें अन्यत्र दिया जा रहा है, स्पष्ट है कि उन्होंने अपने ऊपर आरोपित कई बयानों और तथ्योंसे साफ इनकार किया था। डॉ० बशीरने अदालतके सामने जो एक बहुत ही सीधा और संक्षिप्त बयान दिया है, उसके कुछ अंश उद्धृत करके मैं अपनी इस टीकाको बोझिल नहीं बनाना चाहता, परन्तु मैं चाहता हूँ कि पाठक उसे ध्यानसे पढ़ लें। पाठक उससे यही नतीजा निकालेंगे कि वह बयान इस लायक तो नहीं ही था कि अदालत उसे इस तरह हिकारतके साथ रद्दीकी टोकरीमें डाल देती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–९–१९१९

१०१. गुजरातसे बाहरकी जनताके नाम

गुजराती भाषी जनता 'नवजीवन' में आशासे कहीं अधिक रुचि ले रही है। जितनी माँग है उसे पूरी करना सम्भव नहीं। जहाँतक मैं समझ पाया हूँ, उनकी माँग बीस हजार प्रतियोंसे भी पूरी नहीं हो पायेगी। परन्तु हम केवल बारह हजार ही छाप पाते हैं। अहमदाबादमें हमें जो मुद्रक मिले हैं वे दस हजार भी मुश्किलसे छाप सकते हैं। जो छाप सकते हैं वे प्रेस अधिनियमके भयसे 'नवजीवन' नहीं छापते। इसपर भी 'नवजीवन' के हिन्दी संस्करणके लिए आवाज उठाई जा रही है। सचमुच ही, मैं खुद भी हिन्दी, उर्दू, मराठी और अन्तमें तमिल भाषाओंके संस्करण निकालनेकी सोच रहा हूँ। परन्तु सच्चे कार्यकर्त्ताओंकी कमी है। यदि मैं हिन्दी, मराठी, उर्दू और तमिल जानने-वाले योग्य सहायक पा सकूँ तो इन भाषा-भाषियों तक अपनी बात पहुँचानेमें मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी। यह तो स्पष्ट ही है कि अंग्रेजी तो कोई बड़ा माध्यम है ही नहीं, उससे तो मुट्ठी-भर लोगोंके पास ही पहुँचा जा सकता है। मैं तो अधिकसे-अधिक लोगोंके पास पहुँचना चाहता हूँ। और यह केवल भारतीय भाषाओंके माध्यमसे ही किया जा सकता है। इसलिए आत्म-त्यागकी भावना रखनेवाले सुयोग्य युवकोंसे मेरी

अपील है कि यदि वे इसमें पर्याप्त रुचि रखते हैं तो उनको सहायताके लिए आगे आना चाहिए।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-९-१९१९

१०२. भाषण: राजकोटमें स्वदेशीके बारेमें[1]

सितम्बर २५, १९१९

इसके बाद श्री गांधीने अपना भाषण शुरू किया, जिसके दौरान उन्होंने कहा कि मैंने आजकल स्वदेशी वस्त्र तैयार करनेका आन्दोलन शुरू किया है। वस्त्र जनताकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओंमें से एक हैं। अन्नके बाद वस्त्रकी आवश्यकता ही सबसे बड़ी है और उसको देशके अपने साधनोंसे ही मुहैया किया जाना चाहिए। इसके लिए अन्य देशोंपर हमारी निर्भरताने हमें असहाय और गरीब बना दिया है। १९१७-१८ के दौरान देशको विदेशी वस्त्रोंके लिए ही ६० करोड़ रुपए बाहर भेजने पड़े थे। यह देशके लिए शोभनीय नहीं है और इस राशिको देशसे बाहर जानेसे रोकनेके लिए कदम उठाये जाने चाहिए। परन्तु यह तभी किया जा सकता है जब इसके लिए लगातार दृढ़तासे एक आन्दोलन चलाया जाये, जिसमें जनताको भी आवश्यक रूपसे कुछ त्याग करना ही पड़ेगा। श्री गांधीने कहा, मैंने प्रमुख भारतीय विशेषज्ञोंसे इस विषयमें सलाह ली है। उनका कहना है कि मिलोंके जरिये समूचे देशके लिए स्वदेशी वस्त्र जुटानेमें पचास वर्ष लग जायेंगे। ऐसी परिस्थितिमें हमें हथकरघोंसे वस्त्र तैयार करना चाहिए। उन्होंने बतलाया कि स्वदेशीका विचार अत्यंत ही लोकप्रिय बन चुका है और उच्चवर्गीय भारतीय महिलाओंने भी बड़े उत्साहपूर्वक सूतकी कताईका काम शुरू कर दिया है। जगह-जगह नये-नये स्वदेशी-भंडार खुलते जा रहे हैं। काठियावाड़में भी स्वदेशीके प्रचारके लिए ऐसे ही तरीके और साधन अपनाये जाने चाहिए। ऐसे आन्दोलनसे किसीका भी कोई नुकसान नहीं, इसलिए इसे शान्तिपूर्ण ढंगसे चलाया जाना चाहिए। महिलाओंको कताई करके अपने फालतू समयका सदुपयोग करना चाहिए। चरखा बहुत सस्ता मिल जाता है और कल्याण इसीमें है कि वे शीघ्रातिशीघ्र घर-घरमें चरखे और करघे चला दें। सुख और आर्थिक सन्तोष प्राप्त करनेका केवल यही एक मार्ग है।

[अंग्रेजीसे]

काठियावाड़ टाइम्स, २८-९-१९१९

१. राजकोट पहुँचनेपर गांधीजीका बड़ा शानदार स्वागत किया गया था। अध्यक्ष श्री डी० बी० शुक्लके संक्षिप्त परिचयात्मक भाषणके पश्चात् गांधीजीने सभामें भाषण किया था।

१०३. भाषण : राजकोटमें महिलाओंकी सभामें[1]

सितम्बर २५, १९१९

श्री गांधीने कहा कि महिलाएँ फैशन इत्यादिके लिए हमेशा ही विदेशी वस्त्रोंका अधिक व्यापक उपयोग करती आई हैं। भारतीय महिलाएँ बड़ी ही धर्म-निष्ठ हैं, परन्तु अशिक्षाके कारण उनको यह जानकारी नहीं है कि आजके संसारमें क्या चल रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि उनमें कर्त्तव्य-भावना जगाई जाये तो वे आज जैसी नहीं रह जायेंगी। इसलिए मैं उनको बतलाना चाहता हूँ कि वस्त्रों और अन्य वस्तुओंके मामलेमें विदेशोंपर उनकी निर्भरता ही उनके वर्तमान अधःपतनका कारण है। भारतीय महिलाओंको पूरी गम्भीरतासे यह तथ्य समझ लेना चाहिए। अन्य देशों-की तुलनामें उनको अपनी निर्धनता देखकर अपना मार्ग निश्चित करनेकी प्रेरणा लेनी चाहिए। इसका सबसे कारगर इलाज यही है कि महिलाएँ चरखे चलाना और पुरुष लोग बुनाई शुरू कर दें। इससे महिलाओंको घर बैठे ही सम्मानपूर्ण जीविका मिल जायेगी और साथ ही वे देशकी भी सेवा कर सकेंगी। श्री गांधीने कहा कि अभी मैं देख रहा हूँ कि आप बहुत ही बढ़िया-बढ़िया साड़ियाँ पहने हुए हैं। आपको इस तरह काम करना चाहिए कि हमारे देशमें कताई-बुनाईका कार्य भी इतना ही बढ़िया होने लगे। दृढ़ इच्छा-शक्ति और लगन हो तो कोई भी काम असम्भव नहीं होता। उन्होंने भाषणके अन्तमें सभामें उपस्थित महिलाओंसे अनुरोध किया कि सभामें उत्पन्न अपने क्षणिक जोशको वे कार्यरूपमें परिणत करें और मातृभूमिकी सेवाके लिए मैंने जो रास्ता बताया है उसपर बराबर काम करती रहें।

[अंग्रेजीसे]

काठियावाड़ टाइम्स, २८–९–१९१९

१. गांधीजीने दोपहरके समय वणिक भोजनशालामें आयोजित लगभग ५०० महिलाओंकी एक सभामें भाषण दिया था।

१०४. भाषण: राजकोटकी सभामें[1]

[सितम्बर २५, १९१९][2]

श्री गांधीने कहा कि मेजर मॉसको सभापतिके आसनपर बैठे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह अंग्रेजों और भारतीयों, दोनोंके ही हितमें है कि दोनों ही विवादहीन और अराजनीतिक मसलोंके सम्बन्धमें एक ही मंचपर मिलें। ऐसी सभाओंसे राजनीतिक जीवनकी तिक्तता कम होती है और दोनों जातियोंमें समरसता बढ़ती है।

वक्ताने सहाय्य मण्डलको शीत ज्वरकी महामारीके प्रकोप और हालके अकालके दौरान बहुत बढ़िया काम करनेके लिए बधाई दी। परन्तु उन्होंने साथ ही सुझाव रखा कि सच्ची और स्थायी सामाजिक सेवा पहलेसे रोक-थामके उपाय करनेमें ही है; वैसे महामारी या अकालके दौरान लोगोंको कष्ट-मुक्त करना अच्छा तो है, परन्तु महामारी या अकालकी पुनरावृत्ति रोकनेके लिए सम्मिलित प्रयास करना उससे भी अच्छा होगा। रोगों या झगड़ोंकी रोकथाम करनेवाला डॉक्टर या वकील अधिक बुद्धिमान और लोकोपकारक होता है। समाज-सेवियोंको देशकी सेवा करनेके लिए महामारी या अकाल फैलनेतक रुके नहीं रहना चाहिए।

बीमारीकी रोक-थाम सम्बन्धी और सच्ची रचनात्मक सेवा गाँवोंमें की जा सकती है और यदि हम अपने गाँवोंको शुद्ध, स्वच्छ, स्वास्थ्यकर और समृद्ध बनाये रखनेमें सफल हो जायें तो बड़े-बड़े शहर खुद अपनी देख-भाल कर सकते हैं। इसी दृष्टिसे उन्होंने राजकोटमें आन्दोलनके सिरमौर और उसके प्राण श्री नानालाल कविको सुझाया कि वे गाँवोंमें जाकर गाँववालोंके बीच उनकी तरह ही रहें और उनकी आवश्यकताओं तथा तौर-तरीकोंका अध्ययन करें। तभी उनको समाज-सेवाके सबसे अच्छे तरीकोंका पता चलेगा।

श्री गांधीने कहा कि पहले कभी मेरा खयाल था कि समाज-सेवाका सर्वोत्तम तरीका और संगठन तो यूरोपके लोग ही जानते हैं। परन्तु अनुभवने मेरी राय बदल दी है। मेरी रायमें भारतमें समाज-सेवाको जो एक धार्मिक कृत्य और कर्त्तव्य-जैसी प्रतिष्ठा मिली हुई है, वह अन्यत्र नहीं है। उन्होंने हरिद्वारमें कुम्भ मेलेके प्रबन्धको इसके एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरणके रूपमें पेश किया और कहा कि हमारी संगठन-क्षमता और समाज-सेवाकी प्रवृत्तिकी साक्षीके रूपमें हिमालय खड़ा हुआ है। बिना

१. गांधीजीने शामको 'कनॉट हाल' में आयोजित एक सभामें भाषण किया। हालरके पोलिटिकल एजेंट मेजर मॉसने सभाकी अध्यक्षता की।

२. **यंग इंडिया**ने इस भाषणकी तिथि २४ सितम्बर दी है, लगता है यह भूल थी। यह तिथि २८-९-१९१९ के **काठियावाड़ टाइम्स**में प्रकाशित विवरणसे ली गई है।

किसी कठिनाईके हिमालय-प्रदेशमें जमनोत्रीतक जानेवाले हजारों तीर्थ-यात्रियोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति सेवाकी भावनासे की जाती है, किसी व्यावसायिक लाभके लिए नहीं। हमारी अनुपम वर्ण-व्यवस्था समाज-सेवाके एक विशाल संगठनका उदाहरण है। स्वर्गीय सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर कहा करते थे कि भारतके बारेमें एक उल्लेखनीय बात यह है कि उसे [पाश्चात्य देशोंकी भाँति] दरिद्र-रक्षा कानूनोंकी कोई आवश्यकता ही नहीं। बीमारियों, मृत्यु और निर्धनताके समय जातियोंकी ओरसे आवश्यक सेवा नियमित रूपसे आयोजित की जाती है। श्री गांधीने कहा कि मैं वर्ण-व्यवस्थाकी प्रशंसा नहीं करना चाहता। उसके वर्तमान स्वरूपमें कुछ त्रुटियाँ और कुछ ज्यादतियाँ मौजूद हैं। उदाहरण देकर अपनी यह बात समझानेके लिए ही मैंने उसका उल्लेख किया है कि भारतमें समाज-सेवाको एक कर्त्तव्यके रूपमें लिया जाता है। दुर्भाग्यकी बात है कि हमारी अधिकांश प्राचीन संस्थाएँ रूढ़िग्रस्त हो गई हैं। मेरे कहनेका अर्थ यह था कि हमें प्राचीन संस्थाओं और उनके तौर-तरीकोंका अध्ययन करना चाहिए, उनमें नये प्राण फूँककर उनको एक नये आधारपर संगठित करना चाहिए, क्योंकि नई परिस्थितियोंके उपयुक्त बननेके लिए यह आवश्यक हो गया है। यदि हम सभी पुरानी चीजोंको अविवेकपूर्ण ढंगसे ठुकरा देंगे तो हो सकता है कि हम गलती कर बैठें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१०–१९१९

१०५. याचिकाएँ इस तरह न लिखें

केसरमलकी सोलह वर्षीय पत्नी मायादेवीने अपने इक्कीस वर्षीय युवा पतिकी रिहाईके लिए प्रार्थनापत्र दिया है। प्रार्थनापत्र बड़ा ही मार्मिक और सजीव है। उसके हार्दिक अनुरोधपर ही मैं उस प्रार्थनापत्र को अन्यत्र छाप रहा हूँ। उसमें की गई प्रार्थना पूर्णतः न्यायोचित लगती है, परन्तु इतने अच्छे मामलेको एक घटिया किस्मके वकीलने बिगाड़कर रख दिया है। प्रार्थनापत्र तो मायादेवीका ही है, पर यह सर्वथा स्पष्ट है कि जिसने उसे लिखा है निस्सन्देह उसने एक सर्वथा उचित आधारपर और अपनी समझसे एक घोर अन्यायके विरुद्ध, किन्तु क्रोधके आवेशमें लिखा है। क्रोध तो एक प्रकारका छोटा-मोटा पागलपन ही होता है, और अस्थायी पागलपनकी झोंकमें वकीलोंने कई बार बड़े उच्चादर्शपूर्ण उद्देश्योंको हानि पहुँचा दी है। प्रार्थनापत्रमें बेमतलब विषयों और निन्दात्मक वाक्योंकी भरमार है। उस शोकमें डूबे प्रदेशसे आये कई प्रार्थनापत्र मैंने देखे हैं। उनमें बड़े ही सीधे कामकाजी ढंगसे अपनी बातें कही गई थीं, इसलिए उनकी छानबीन और विवेचन करनेमें मुझे आनन्द आया; परन्तु इस प्रार्थनापत्रकी आवेशपूर्ण, क्रोधभरी भाषाके प्रवाहसे अपनेको अछूता रखते हुए एक सही निष्कर्ष निकालनेमें मुझे बड़ी मेहनत करनी पड़ी। मैं नहीं जानता कि प्रार्थनापत्र

किसने लिखा है। मायादेवीने इसके साथ जो पत्र भेजा है, उसकी भाषा भी उतनी ही आवेशपूर्ण है और उसमें प्रार्थनापत्रके लेखकके नामका कोई उल्लेख नहीं है। मैं ऐसे प्रार्थनापत्रों और याचिकाओंके मसविदे बनाता रहा हूँ। मुझे इसका अनुभव है। इसलिए मैं प्रार्थनापत्र तैयार करनेवालों — चाहे वे वकील हों या अन्य कोई — को आगाह करना चाहता हूँ कि ऐसे मसविदे तैयार करते समय उनको अपने मुख्य लक्ष्यकी बात ही सदा सामने रखनी चाहिए। मैं उनको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि आवेशपूर्ण शब्दजालमें गुँथे विवरणकी अपेक्षा तथ्योंका एक सीधा-सादा, विशेषण-हीन विवरण कहीं अधिक सुबोध और प्रभावशाली होता है। प्रार्थनापत्रोंके मसविदे तैयार करनेवालोंको समझना चाहिए कि प्रार्थनापत्र जिनके पास भेजे जाते हैं वे काफी व्यस्त लोग होते हैं, और जरूरी नहीं कि वे प्रार्थीसे हमदर्दी रखते हों; बल्कि कभी-कभी तो उसके खिलाफ उनकी कुछ पूर्व-धारणाएँ बनी होती हैं, और फिर ऐसे सभी लोग लगभग हमेशा ही अपने नीचे काम करनेवाले अधिकारियोंके निर्णयोंको ही बरकरार रखना चाहते हैं। पंजाबके मामलेमें ऐसे प्रार्थनापत्र वाइसराय या लेफ्टिनेन्ट गवर्नरको ही भेजे जाते हैं जिनके अपने ही पूर्वग्रह रहते हैं। उनके अतिरिक्त ऐसे प्रार्थनापत्र सार्व-जनिक कार्यकर्त्तागण और पत्रकार पढ़ते हैं। इनके पास भी इतना ज्यादा समय नहीं रहता। मैं चूँकि भुक्तभोगी हूँ इसलिए जानता हूँ कि पंजाबसे हर सप्ताह मेरे पास कागजातका जो एक ताँता लगा रहता है, उनके महत्त्वके अनुसार उनपर यथोचित ध्यान देना और समय निकालना कितना मुश्किल पड़ता है। मैं अपना यह महत्त्वपूर्ण अनुभव उन नवयुवक देशभक्तोंको समझाना चाहता हूँ जो प्रार्थनापत्रों या अन्य प्रकारके मसविदोंके जरिये जनताकी सेवा करनेकी कला सीखना चाहते हैं। मुझे स्वर्गीय श्री गोखले और कुछ समयतक भारतके पितामहके[1] साथ काम करनेका सौभाग्य मिला था। दोनोंने मुझे यही सिखाया था कि अपनी बात समझानेके लिए मुझे जो भी कहना है उसे संक्षेपमें कहना चाहिए, कभी भी अपने विषयसे बहकना और तथ्योंसे हटना नहीं चाहिए, कभी भी अपने मुख्य उद्देश्यके दायरेसे बाहरकी बातें उसमें नहीं लानी चाहिए; साथ ही विशेषणोंका प्रयोग भी कमसे-कम करना चाहिए। मुझे अपने प्रयत्नोंमें यदि कुछ सफलता मिली है तो उसका कारण यही है कि मैं इन दोनों दिवंगत आत्माओंकी सीखपर अमल करता रहा हूँ। इतनी प्रस्तावना और इस चेतावनीके बाद अब मैं युवक केसरमलके मामलेकी विवेचना करता हूँ।

मुझे चिन्ता इस बातकी है कि प्रार्थनापत्रके भोंडेसे मसविदेके कारण नवयुवक केसरमलका इतना अच्छा मामला कहीं रद्दीकी टोकरीमें न चला जाये। आश्चर्य तो इस बातका है कि काफी योग्यतापूर्ण और संयमित शैलीमें लिखे इतने सारे प्रार्थनापत्र आते रहते हैं; परन्तु जब भोंड़े किस्मका एक कोई मसविदा सामने आ जाये तो सार्वजनिक कार्यकर्त्ताका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसमें से भूसी निकालकर अलग करे और फिर उसकी सार वस्तु जनताके सामने पेश कर दे।

१. दादाभाई नौरोजी।

हमें याद रखना चाहिए कि यह मामला हाफिजाबादकी उस वारदातसे ताल्लुक रखता है जिसमें हाफिजाबाद स्टेशनपर हुए एक हंगामेमें कहा जाता है कि स्टेशन-पर जमा भीड़ने लेफ्टिनेन्ट टैटमको अपनी शरारतका निशाना बनाया था। केसरमलको पहले फाँसीकी सजा सुनाई गई थी, जो बादमें घटाकर दस वर्षकी जेल कर दी गई थी। उसकी पत्नीके प्रार्थनापत्रमें कहा गया है: "महामहिमको यह प्रार्थी अत्यधिक विनम्रताके साथ न्यायकी याचना करती है और उसका यही आग्रह है कि न्याय किया जाये।" उसने इसी आधारपर अपने युवा पतिकी रिहाईकी माँग की है। प्रार्थनापत्र-में उसकी इस माँगके आधार ये बतलाये गये हैं:

(१) इस्तगासेकी ओरसे पेश किये गये सबूतमें परस्पर विरोधी बातें कही गई हैं।

(२) केसरमलपर अभियोग लगाया गया है कि उसने लेफ्टिनेन्ट टैटमकी गोदसे उनके बच्चेको छीननेकी कोशिश की थी, परन्तु प्रार्थनापत्रके अनुसार पुलिसने कई बार केसरमलको श्री टैटमके सामने पेश किया था पर "श्री टैटमने हरबार अपना सिर हिलाकर बिलकुल साफ इनकार किया और हरबार कहा कि 'नहीं, मेरे बच्चेको छीननेकी कोशिश किसीने भी नहीं की थी।'"

(३) लेफ्टिनेन्ट टैटमने तो हमला करनेवालोंमें केसरमलकी शिनाख्ततक नहीं की।

(४) शिनाख्ती परेड वारदातके थोड़े ही अर्से बाद की गई थी।

(५) समाचार है कि लेफ्टिनेन्ट टैटमने कहा था: "आपके डिप्टी कमिश्नर लेफ्टिनेन्ट कर्नल ओ'बेरियन बहुत ही सख्त आदमी हैं और उन्होंने बिना जरूरत ही इस मामलेको इतना तूल देनेपर मुझे मजबूर कर दिया है।"

(६) प्रार्थनापत्रमें पुलिसपर आरोप लगाया गया है कि उसने सारी कार्रवाईको अनावश्यक रूपसे एक दूसरा ही रंग दे दिया है।

(७) इस्तगासेके लगभग सभी गवाह सरकारी कर्मचारी — चपरासी, मुहर्रिर, रेलवे कर्मचारी, पुलिसके आदमी इत्यादि — और फेरी लगानेवाले तथा हलवाई वगैरह थे, जिनको गवाही देनेपर मजबूर किया गया है।

(८) केसरमलके खिलाफ गवाही देनेवाले इस्तगासेके गवाहोंके या तो अपने पूर्वग्रह थे या वे "नतीजों" से डरते थे या पुलिसके कृपा-पात्र बनना चाहते थे।

(९) खुद लेफ्टिनेन्ट टैटमको केसरमलसे कोई शिकायत नहीं थी। बशीर हैयात-ने कहा: "खिड़कीके काँचसे सिर्फ केसरमल ही जख्मी हुआ था।" हवेली-रामने केसरमलकी शिनाख्त की थी, लेकिन कमीशनने उसके बारेमें कहा था: "देखनेमें बुरा आदमी — भरोसेके लायक नहीं।" बधवामलके बारेमें भी यही बात है। इस्तगासेका एक गवाह किशनदयाल भी था जिसके बारेमें कहा जाता है कि उसने झूठी गवाही दी थी और लेफ्टिनेन्ट टैटमने जो कहा था उसके बिलकुल खिलाफ बात कही थी। किशनदयाल केसरमलका एक मुँह-लगा मित्र बतलाया जाता है फिर भी 'उसने

अदालतके सामने बयान दिया था कि वह केसरमलको पहलेसे जानता ही नहीं। प्रार्थनापत्रमें केसरमलके साथ किशनदयालकी अन्तरंग मैत्री सिद्ध करनेके लिए सच्ची-सच्ची घटनाओंका तथ्यपूर्ण विवरण जुटाया गया है। कहा गया है कि किशनदयालने पुलिसके भयके सामने घुटने टेक दिये थे और अब उसमें कहा गया है कि उसे "अपने गलत और बेरहम बयान-पर" अफसोस है।

(१०) बचाव-पक्षको तरफसे पेश किये गये सबूतकी ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया गया था, हालाँकि उसने काफी प्रतिष्ठित और निष्पक्ष लोगोंको गवाहके रूपमें पेश किया था।

(११) युवक केसरमलके परिवारने सरकारकी सेवा की है।

यदि ये आरोप सही हैं, तो स्पष्ट है कि केसरमलको सजा देना गलत था और उसे रिहा कर देना चाहिए। ऐसे मामले यही साबित करते हैं कि इनकी जाँच-पड़तालके लिए एक निष्पक्ष आयोग नियुक्त करनेकी बड़ी आवश्यकता है। सर विलियम विन्सेंटने यह ऐलान करके सभीको आश्चर्य चकित कर दिया है कि ऐसे मामलोंकी जाँच करके उनके बारेमें सरकारको रिपोर्ट देनेके लिए दो न्यायाधीश नियुक्त किये जायेंगे। लोगोंका खयाल था कि लॉर्ड हंटरकी समिति ही यह काम कर लेगी। पर मेरा खयाल है कि इस नई समितिसे भी जनता सन्तुष्ट हो जायेगी यदि इसमें नियुक्त किये जानेवाले न्याया-धीश दृढ़, स्वतन्त्र और सुयोग्य हों। सर विलियम विन्सेंट इससे कुछ ज्यादा भी कह सकते थे। स्पष्ट है कि वे यह महसूस नहीं करते कि सजा पानेवाले लोगोंके उन सम्बन्धियोंको, जिनके खयालसे गलत सजाएँ दी गई हैं, कितनी पीड़ा और कितनी मानसिक वेदनामें अपने दिन बिताने पड़ रहे हैं।

एक अनुचित पैरवी

केन्द्रीय परिषद्में हुए वाद-विवादको पढ़कर और पंजाबमें विधि तथा व्यवस्था-की प्रतिष्ठाके नामपर की गई हर द्वेष तथा प्रतिहिंसापूर्ण कार्रवाईको सही ठहरानेके लिए की गई पैरवीको देखकर तो न्याय पानेकी रंचमात्र आशा नहीं रह जाती। लेफ्टिनेंन्ट जनरल सर हैवलॉक हडसनने तो "रेंगकर चलने" के आदेशतक को न्यायोचित ठहरानेकी कोशिश की है। एक निर्दोष लेडी डॉक्टरके साथ किये गये भीड़के दुर्व्यवहारकी जितने भी कड़े शब्दोंमें निन्दा की जाये, थोड़ी होगी। मैं नहीं जानता कि बहादुर जनरलने अपने भाषणमें जो तथ्य बतलाये हैं उनमें कितनी सचाई है, पर मैं यहाँ अपनी दलीलकी खातिर मान लेता हूँ कि वे सारेके-सारे सच्चे हैं। परन्तु उनको सच मान लेनेपर भी—यह मान लेनेपर भी कि भीड़ने वह सारी शर्मनाक हरकत की थी—ऐसा बर्बरतापूर्ण आदेश निकालना तो न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता कि "कुमारी शेरवुडपर जहाँ हमला हुआ था, उस स्थलसे गुजरनेवाले सभी लोगोंको घुटनोंके बल रेंगकर जाना पड़ेगा।" हमला जिस स्थलपर हुआ था वह शहरके किसी कोनेमें कोई ऐसा स्थान तो है नहीं जहाँ आमतौरपर लोगोंकी आमद-रफ्त न

रहती हो या यदि लोग उससे बचना चाहें तो न जानेसे भी काम चल सकता हो। इसलिए यह तो सवाल नहीं ही उठता कि लोग उस घटना-स्थलके पाससे होकर गुजरना चाहते हैं या नहीं। वहाँसे जाये बिना तो गुजर ही नहीं है। वह स्थान है ही ऐसा। और उस दिनकी हिंसापूर्ण कार्रवाईमें जिन लोगोंका बिलकुल कोई हाथ नहीं था, उन लोगोंको भी वहाँसे घुटनों और हाथोंके बल रेंगकर निकलनेके लिए क्यों विवश किया जा रहा है? जनरलने अपने आदेशको इस प्रकार उचित ठहराया है:

मैं समझता हूँ कि परिषद् इस बातसे सहमत होगी कि अमृतसरमें जिस अधिकारीके हाथमें कमान थी उसका यह विचार सर्वथा स्वाभाविक था कि आम जनताको पूरी तौरपर यह समझानेके लिए कुछ असाधारण किस्मके कदम उठाना जरूरी है कि एक अकेली, अरक्षित महिलाके खिलाफ ऐसी हिंसा-पूर्ण कार्रवाई सहन नहीं की जायेगी। यूरोपीय महिलाओंकी रक्षा करनेके सेनाके संकल्पसे समूची आम जनताको अवगत कराने और उसकी पूरी-पूरी गम्भीरता समझनेके लिए कुछ करना आवश्यक है।

कुरुचिका जीता-जागता उदाहरण है वह पूराका-पूरा भाषण। उसे पढ़कर देखना चाहिए। सर हैवलॉक हडसनकी तरहके भाषणोंसे कटुता और वैमनस्य बढ़ता है और सेना द्वारा की जानेवाली ज्यादतियोंको खुली छूट मिलती है। सच्चे बहादुर सैनिकोंको यह शोभा नहीं देता और इसलिए मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि इतने उच्च पदाधिकारी भी ऐसे प्रतिहिंसक कार्योंकी पैरवी करेंगे। यूरोपीय महिलाओंको सुरक्षा प्रदान करनेके और भी उत्तम तरीके मौजूद हैं। और क्या भारतमें उनका जीवन सचमुच इतने अधिक खतरेमें है कि उनको विशेष तौरपर रक्षा प्रदान करने-की आवश्यकता हो? यूरोपीय-महिलाओंका जीवन किसी भी भारतीय महिलाके जीवन-से अधिक पवित्र क्यों माना जाता है? क्या यूरोपीय और भारतीय दोनों ही महिलाओंकी प्रतिष्ठा, उनका सम्मान और उनकी भावनाएँ समान नहीं हैं? यदि एक ब्रिटिश सैनिक सम्राट्की सेनाकी वर्दी पहनकर वाइसरायकी परिषद्में खड़ा होकर भारतीय जनताके लिए ऐसे अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग करने लगता है जैसे कि लेफ्टिनेंट जनरल सर हैवलॉक हडसनने किये हैं, तो फिर ब्रिटिश ध्वजका मूल्य ही क्या रह जाता है? मैं अब भी दण्डविमुक्ति विधेयक (इंडेम्निटी बिल) के विरोधमें उठाई गई आवाजका समर्थन नहीं करता। भारतीय जनताके अधिक अनुभवी नेताओंके प्रति पूरा सम्मान मेरे दिलमें है, फिर भी मेरी अपनी यही राय है कि दण्डविमुक्ति विधेयकका विरोध करना यदि अधिक-कुछ नहीं तो कार्य-नीतिकी दृष्टिसे बुरा तो था ही। परन्तु यदि जनरल हडसनके भाषणमें परिषद्के अंग्रेज सदस्योंकी भावनाएँ ही व्यक्त की गई हैं, जो मुझे लगता है सचमुच व्यक्त की गई हैं, तो लॉर्ड हंटरकी समिति और उस जैसी अन्य समितियोंसे क्या नतीजा निकलनेवाला है — इसके बारेमें हमारे मनमें गम्भीर दुश्चिन्ताएँ पैदा होने लगती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७–९–१९१९

१०६. धन्यवादका पत्र[1]

[सितम्बर २८, १९१९]

भाइयो और बहनो,

मेरी इक्यावनवीं वर्षगांठके अवसरपर बधाईके अनेक तार, लिफाफे और पोस्ट-कार्ड मेरे पास आये हैं। मैं इस सारे प्रेमका प्रतिदान कैसे दे पाऊँगा? मैं अपनी कृतज्ञता किन शब्दोंमें व्यक्त करूँ? नि:सन्देह मैं विवेक और बुद्धिमत्तापूर्वक दिये गये स्नेहकी कद्र करता हूँ और अंध-स्नेहको नापसन्द करता हूँ। इसलिए मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे प्रति अपने स्नेहको आपने कई जगह एक व्यावहारिक और लाभकारी रूप दिया है। भारतकी जनताकी अपार निर्धनताका मैं इतनी स्पष्टतासे अनुभव कर चुका हूँ कि मैं जब धनका अपव्यय होते देखता हूँ तब मुझे लगता है कि वह धन गरीबोंसे ही छीना जा रहा है। तार इत्यादि भेजनेपर हम जितना व्यय करते हैं, वह धन यदि स्वदेशी खादी खरीदनेपर खर्च किया जाये और उससे वस्त्र-हीनोंको वस्त्र और बेसहारा लोगोंके लिए भोजन जुटानेकी कोशिश की जाये, तो क्या वे दानदाताओंको आशीर्वाद नहीं देंगे? गरीबोंके अभिशापसे राष्ट्रके-राष्ट्र धूलमें मिल गये हैं; सम्राटोंके मुकुट और धनिकोंका धन छिन गया है। प्रतिकारात्मक न्यायकी गति अदम्य होती है। गरीबोंके आशीर्वादके बलपर साम्राज्य फूले-फले हैं।

मेरे प्रति स्नेह दरसानेका सच्चा तरीका यही है कि मेरे जो भी कार्य अनुकरणीय हों, उनका अनुकरण किया जाये। किसी व्यक्तिका सर्वोत्तम सम्मान यही होता है कि उसका अनुकरण किया जाये। मेरे जन्मदिनके अवसरपर कई लोगोंने स्वदेशीकी प्रतिज्ञा ली है। कई बहनोंने अपने ही हाथसे कते सूतके कई पार्सल मेरे पास भेजे हैं। कइयोंने दलित-वर्गोंकी सेवा करनेका व्रत लिया। अहमदाबाद स्वदेशी स्टोरके प्रबन्धकोंने कई कठिनाइयोंके बावजूद उस दिन वस्त्रोंकी कीमतें घटा दी थीं। सूरतमें भी स्वदेशी भण्डारके प्रबन्धकोंने ऐसा ही किया है। जन्मदिन मनानेके ऐसे तरीके प्रबुद्ध स्नेहके लक्षण हैं और ऐसे जन्मदिवसोंका हर व्यक्ति सदा ही स्वागत करेगा जो हमें वर्तमान परिस्थितिसे आगे बढ़नेकी प्रेरणा दें।

भगिनी समाजने मुझे एक थैली भेंट करनेका निर्णय किया है। इससे मेरे ऊपर एक भारी दायित्व आ गया है। उसकी अपेक्षा है कि मैं उसे अच्छेसे-अच्छे ढंगसे इस्तेमाल करनेकी कठिनाईको हल करूँ। परन्तु अधिक सोच-विचार किये बिना ही मैं इतना तो कह ही सकता हूँ कि मैं उस राशिको भारतीय महिलाओंकी सेवाके ही किसी काममें लगाऊँगा। मैं उन भाई-बहनोंका आभार मानूँगा जो मुझे इस राशिके इस्तेमालके तरीकेके बारेमें अपनी सलाह देनेकी कृपा करेंगे।

१. गांधीजीने २८–९–१९१९ के **नवजीवन**में यह पत्र उन लोगोंको सम्बोधित करते हुए लिखा था जिन्होंने उनको जन्मदिनकी बधाइयाँ भेजी थीं।

सभीने मेरे दीर्घायु होनेकी कामना की है। मेरी कामना है कि जबतक मैं जीऊँ सत्यान्वेषण करता रहूँ, सत्यपर अमल करता रहूँ और केवल सत्य-चिन्तन ही करूँ। मैं अपने देशवासियोंका आशीर्वाद चाहता हूँ कि मेरी यह कामना पूरी हो।

आशा है कि मुझे तार और पत्र भेजनेकी कृपा करनेवाले लोग उनकी अलग-अलग प्राप्ति-स्वीकृति भेजनेकी मेरी असमर्थताको क्षमा करेंगे।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४–१०–१९१९

१०७. नडियाद और बारेजडीपर जुर्माना

माननीय राव बहादुर हरिलाल देसाई द्वारा बम्बई विधान सभामें नडियादमें अतिरिक्त पुलिस रखे जानेके सम्बन्धमें पूछे गये सवाल और सरकारकी ओरसे दिया गया उत्तर विचारणीय है। सरकारके उत्तरसे हम देख सकते हैं कि छोटे अधिकारी सरकारको किस तरह गलत रास्तेपर ले जा सकते हैं। इसके अलावा यह भी देख सकते हैं कि एक भूलसे किस तरह और भी अनेक भूलें होती चली जाती हैं। सरकारका पहला कदम गलत था। कलक्टर महोदयके पत्रसे भ्रममें पड़कर सरकारने नडियाद और बारेजडीमें अतिरिक्त पुलिस रख दी। सरकारने देखा कि उससे भूल हुई है, लेकिन भूल स्वीकार करनेके लिए वह तैयार नहीं थी; इसलिए सरकारके सम्मुख ऐसी स्थिति आ खड़ी हुई कि किसी भी तरह अपनी भूलका बचाव किया जाये। अब हम इस बातकी जाँच करें कि सरकारने अपना बचाव करते हुए कहीं और तो भूल नहीं की।

राव बहादुरने जो प्रश्न पूछे उनमें से एक यह भी था कि १०, ११, १२ और १३ अप्रैलको नडियादमें कोई उपद्रव हुए थे अथवा नहीं। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था और इसे पूछनेमें राव बहादुरका अभिप्राय यह था कि इन तारीखोंके दौरान नडियादमें कोई उपद्रव नहीं हुए इसलिए वहाँ अतिरिक्त पुलिस रखनेका सरकारके पास कोई कारण नहीं था। लेकिन भला यह बात सरकार किस तरह स्वीकार कर सकती थी? इसलिए उत्तर देनेमें सरकारने गलत मार्ग ग्रहण किया और यह बताया है कि ११ अप्रैलकी सुबह अंग्रेजी स्कूलके मुख्याध्यापकपर, अनुचित दबाव डालकर बलपूर्वक स्कूल बन्द करवानेके उद्देश्यसे भीड़ इकट्ठी हुई थी। सरकारने यह बात बहुत निश्चयपूर्वक कही है इसलिए यह सच ही होगी, ऐसा मान लेनेका कोई कारण नहीं है। सरकार इस घटनाकी कोई सार्वजनिक जाँच करवानेके बाद इस निर्णयपर नहीं पहुँची है। सरकारने एकपक्षीय पुलिस रिपोर्टके आधारपर उपर्युक्त हकीकतको विधान-सभाके सामने पेश किया है। यदि सरकारने विवेक-बुद्धिसे काम लिया होता तो वह

समुचित विशेषणका प्रयोग करके अपने कथनकी सीमा बाँधते हुए उस हकीकतको कुछ शंकापूर्वक पेश करती। यदि जनताकी ओरसे एकपक्षीय बात होती है तो सरकार उसकी आलोचना करनेको तैयार रहती है। तो फिर सरकारको एकपक्षीय बातके आधारपर निर्णय करनेका क्या अधिकार है? सरकार और रैयतके बीच न्याय करवानेके लिए अदालतें पड़ी हैं तथा पंच नियुक्त करनेके सिद्धान्तको भी वर्तमान राजनीतिमें स्थान दिया गया है। मैंने जाँच की है तथा मुझे नडियादके प्रमुख नागरिकोंकी ओरसे भिन्न ही कहानी सुननेको मिली है। उनका कहना है कि जोर-जबरदस्ती से स्कूल बन्द करवानेके इरादेसे वैसी कोई भीड़ इकट्ठी नहीं हुई थी। उस दिन दूसरे स्कूल बन्द थे, इसलिए अंग्रेजी स्कूलके लड़के भी अपने मुख्याध्यापकके साथ बकझक कर रहे थे। इसमें उनके साथ बाहरके कुछ व्यक्ति भी मिल गये थे। लेकिन किसी भी प्रकारका अनुचित दबाव नहीं डाला गया था।

अब सरकारके दूसरे उत्तरको लें। इसमें कहा गया है कि जब इस भीड़के एक नेताको गिरफ्तार किया गया तब उसकी जेबमें हिंसा भड़कानेवाली एक पत्रिका मिली थी — जिसके कारण बादमें उसे सजा भी हुई। यह हकीकत पाठकको भुलावेमें डालनेवाली है। पाठक यह समझेगा कि इस "नेता" के पास यह पत्रिका ११ तारीखको ही मिली थी और इसी दिन उसे गिरफ्तार भी किया गया था। प्रमाण-सिद्ध तथा उभय पक्ष द्वारा स्वीकृत हकीकत तो यह है कि वह "नेता" ११ को नहीं बल्कि १७ तारीखको गिरफ्तार किया गया था और उपर्युक्त पत्रिका भी उसके हाथमें उसी दिन आई थी। इस प्रकार सरकारका यह दूसरा कथन भी जनताको भ्रममें डालनेवाला सिद्ध होता है।

अब [सरकारके] तीसरे कथनकी जाँच करें। सरकार कहती है कि १२ अप्रैलको भीड़ इकट्ठी हुई थी जिसका उद्देश्य नडियादकी डेरीपर हमला करनेका था, लेकिन इस भीड़को पुलिसने तितर-बितर कर दिया था। मुझे जो खबर मिली है उससे पता चलता है कि भीड़ इकट्ठी हुई थी यह बात सच है, लेकिन यह भीड़ निर्दोष बुद्धिसे डेरीके व्यवस्थापकको डेरी बन्द करनेके लिए समझाने गई थी। और नडियादके अग्रणी नागरिकोंके कहनेपर यह भीड़ बिखर गई थी; पुलिसको इसके लिए तनिक भी प्रयत्न नहीं करना पड़ा था। उसकी जरूरत भी न थी।

चौथी बात सच है और वह यह है कि १२ तारीखको नडियाद शहरके बाहर रेलकी पटरियाँ उखाड़ दी गई थीं। यह एक भयंकर तथा शर्मिन्दा करनेवाला काम था और खासतौरसे शर्मकी बात यह है कि अपराधी गिरफ्तार नहीं किये जा सके।

अब हम पाँचवाँ कथन लेते हैं कि १३ तारीखको रेलकी पटरियोंको नुकसान पहुँचा था और तार काट दिये गये थे — यह हकीकत दो अर्थी होनेके कारण गलतफहमी पैदा करनेवाली है और इससे सरकारकी प्रामाणिकतापर आँच आती है।

यह बात सच है कि १३ तारीखको किसी स्थानपर रेलकी पटरियोंको नुकसान पहुँचा तथा तार काटे गये। राव बहादुरका सवाल नडियादको लेकर था। उक्त उत्तरसे पाठक यह समझ सकता है कि १३ तारीखको जो घटना घटी वह भी नडियादकी

सरहदमें हुई थी। सच बात यह है कि नडियादकी सीमासे काफी दूर पटरियोंको नुकसान पहुँचा था तथा तार काटे गये थे। इस दुष्कार्यमें भी नडियादवासियोंका हाथ होनेका संकेत कभी किसीने नहीं किया। फिर भी सरकार नडियादके सम्बन्धमें पूछे गये प्रश्नके उत्तरमें १३ तारीखको हुई घटनाका हवाला दे, यह दुःखद बात है।

सरकारके पास भारी सत्ता है। राव बहादुरके एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें सरकारने जो-कुछ कहा उसमें उसने राव बहादुर और प्रजाको इस बातकी पूरी कल्पना दी है कि वह सत्ता कैसी है। एक निर्दोष प्रश्नका उत्तर सरकारने किस सफाईके साथ दिया है, यह दिखानेके लिए मैं इस प्रश्नोत्तरका अक्षरशः अनुवाद नीचे देता हूँ:

> प्र० — नडियादमें जो अतिरिक्त पुलिस रखी गई है क्या उसका अर्थ यह नहीं कि यह पुलिस अपराध रोकनेके लिए नहीं वरन् सजा देनेके लिए है?
>
> उ० — माननीय सदस्य १८९९ के बम्बई जिला पुलिस अधिनियमके खण्ड २५ (१) को देख लें। उस खण्डमें बताया गया है कि किन कारणोंसे अतिरिक्त पुलिस रखी जा सकती है?

बिना अशिष्टता किये यदि साफ-साफ शब्दोंमें कहा जा सके तो कह सकते हैं कि सरकारका यह उत्तर धृष्टतापूर्ण है। इसमें सत्ताके मदकी बू आती है। यह उत्तर कुटिलतापूर्ण है और यदि ग्रामीण भाषाका प्रयोग करें तो इसका अर्थ यह हुआ कि "हमें जो करना था सो किया, अब तुमसे बन पड़े सो कर लो"।[1]

सरकारी सत्ताके भारी बलके आगे बेचारा एक राव बहादुर क्या कर सकता है? सरकारका फर्ज था कि वह उनके स्पष्ट सवालका स्पष्ट उत्तर देती; और यदि सरकार सही तरीकेसे अपना बचाव नहीं कर सकती थी तो उसे अपनी भूल सुधार लेनी चाहिए थी। मेरा निवेदन है कि सरल भावसे भूल सुधार लेनेमें जो वजन है, जो गौरव है वह उत्तरदायित्वकी भावनासे शून्य धृष्ट व्यवहार तथा कुटिलतापूर्ण उत्तरमें नहीं है।

जनता इस किस्सेको यहींपर खत्म नहीं होने दे सकती। नडियाद और बारेजडी-पर जुर्माना हुआ है — इसमें सिर्फ इतनी-सी बात नहीं है। इसमें न्यायका, सरकारकी राजनीतिका प्रश्न समाया हुआ है। यह राजा और प्रजा दोनोंका ही फर्ज है कि वे न्याय बरतें तथा शुद्ध राजनीतिका व्यवहार करें तथा करवायें। यदि आज नडियाद है तो कल गुजरात और परसों सारा हिन्दुस्तान [इसका शिकार] हो सकता है। ऐसी राजनीति एक रोगके समान है और जिस तरह रोगके उभरते ही उसका उपचार किया जाना चाहिए वैसे ही प्रजाको ऐसा इलाज करना चाहिए जिससे अनीतिपूर्ण राजनीति तुरन्त खत्म हो जाये।

नडियादके नागरिकों तथा बारेजडीके जमींदारोंपर भारी जिम्मेदारी है। उन्हें सरकार और जनताके सम्मुख इस प्रश्नकी चर्चा अत्यन्त तत्परतापूर्वक करनी चाहिए। उन्हें सरकार द्वारा दिये गये वक्तव्योंमें जहाँ भी दोष दिखाई पड़ें वे बताने चाहिए।

१. यह प्रश्नोत्तर **यंग इंडिया**से लिया गया है।

यदि लोग शान्ति, विवेक तथा मर्यादामें रहते हुए सावधानी तथा निडरतासे काम लेंगे तो मुझे विश्वास है कि सरकार अपनी भूल स्वीकार कर लेगी। यह २०–२५ हजार रुपयेका सवाल नहीं। सवाल यह है कि इससे नडियाद और बारेजडीपर कलंक लगता है। इस कलंकको दूर करना नडियादवासियों तथा बारेजडीके जमींदारोंका कर्त्तव्य है; और हमारा फर्ज है कि हम उनकी सहायता करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८–९–१९१९

१०८. पंजाब-समिति

पंजाब-समितिमें अजीबो-गरीब परिवर्तन होते रहते हैं। लगता है कि पंजाबके सम्बन्धमें किये गये आन्दोलनका सरकारपर असर हुआ है। समितिके क्या परिणाम निकलेंगे, यह कहना मुश्किल है। हमारा आन्दोलन और जोरदार हुआ होता तो हमारे लिए भयका कोई कारण न रहता। पंजाबके सम्बन्धमें हमें दुःख तो बहुत पहुँचा है किन्तु तत्सम्बन्धी उतनी जानकारी हमने नहीं प्राप्त की। उसे पानेका हमने उतना प्रयास भी नहीं किया। इतना होनेपर भी जैसा कि संन्यासी श्रद्धानन्दजी कहते हैं, चारों तरफसे लोगोंमें पंजाबके लिए सहानुभूति उमड़ पड़ी है; यह कोई मामूली बात नहीं है। "पंजाब हमारा है, पंजाबी हमारे भाई हैं" — चारों ओरसे हमें ऐसी ध्वनि सुनाई देती है, यह हमारी राष्ट्रीय भावना तथा एकताका परिचायक है।

सर विलियम विन्सेंटने सरकारकी ओरसे कहा है कि पंजाब-समितिमें दो और सदस्य नियुक्त किये जायेंगे — एक भारतीय और एक यूरोपीय। यह खबर एक तरहसे सन्तोषजनक कही जा सकती है। इससे पता चलता है कि लोक-भावनाका कुछ सम्मान किया गया है। दूसरी ओर यह चिन्ता उपजानेवाली बात भी है। कैसे सदस्य नियुक्त किये जायेंगे? यदि सदस्य ईमानदार, स्वतन्त्र और होशियार हुए तो समितिको बल मिलेगा तथा हम न्यायकी और अधिक आशा कर सकेंगे। यदि वे ईमानदारीकी अपेक्षा स्वार्थको अधिक महत्त्व देनेवाले हुए, स्वतन्त्रताकी अपेक्षा खुशामद करना उन्हें अधिक प्रिय हुआ, होशियारीकी कमीको चालाकीसे पूरा करनेवाले हुए तो कड़ाहीसे निकलकर चूल्हेमें गिरनेके समान होगा। अभी थोड़ी ही देरमें गाजेबाजेके साथ उनके नामोंकी घोषणा की जायेगी, इसलिए हमें लम्बे अर्से तक संशयमें नहीं रहना पड़ेगा।

इसी समितिसे एक दूसरी समितिकी नियुक्ति की जानेवाली है। समितिको पंजाबमें दी गई सजाओंकी जाँच करनेका अधिकार है या नहीं, यह सवाल हम हमेशासे करते आये हैं। यह दूसरी समिति इसी प्रश्नका उत्तर है। सर विलियम विन्सेंटने बताया है कि सजाकी जाँच करनेके लिए उच्च न्यायालयके दो न्यायाधीशोंकी नियुक्ति की जायेगी। उनमें एक भारतीय और एक अंग्रेज होगा। उपर्युक्त टीका इस समाचारके सम्बन्धमें भी लागू होती है। उच्च न्यायालयके न्यायाधीश पंजाबमें भी नियुक्त किये

गये थे, पंजाब आयोगमें भारतीय भी थे। उच्च न्यायालयका न्यायाधीश भी अपनी भावनाओंसे परिचालित हो, जाने-अनजाने अन्याय कर सकता है। भारतीय न्यायाधीश न्याय ही करता है, ऐसा दावा हम नहीं कर सकते। न्यायाधीशोंके नाम जाननेके बाद ही हमें पता चलेगा कि इससे हमें सन्तोष मिलेगा अथवा हमारी चिन्तामें वृद्धि होगी।

[ऐसी स्थितिमें] हमारा एक कर्त्तव्य स्पष्ट है। सरकार चाहे-जैसी और जितनी [छोटी या बड़ी] समिति नियुक्त करे, हम यदि ठीक-ठीक गवाही पेश न कर सके तो समिति क्या कर सकती है? और यदि लाला हरकिशनलाल-जैसे व्यक्तिको कैदमें रहना पड़े तो वे सच्ची बात कैसे कह सकते हैं? जो लोग किसी निश्चित अपराधके कारण नहीं वरन् मुख्यरूपसे राजनैतिक कैदीकी हैसियतसे ही गिरफ्तार किये गये हैं उनको छोड़ दिया जाना चाहिए। ऐसा हो तभी पंजाबमें हुए मामलोंकी सही जाँच हो सकेगी।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २८–९–१९१९

१०९. लेखकोंसे विनती

बहुत सारे लेखक हमें अपने लेख भेजते रहते हैं। उनके उत्साह तथा 'नवजीवन' के प्रति उनके प्रेमके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। हमारे मतानुसार जिन लेखोंको पढ़नेके लिए जनता उत्सुक रहती हैं उन्हें हम अवश्य स्थान देंगे। सब लेखकोंको हम अलगसे पत्र नहीं लिख सकते इसलिए हम कुछ-एक सूचनाएँ यहीं दिये देते हैं।

फिलहाल हम निबन्धोंको अधिक जगह नहीं देना चाहते। ख्याति प्राप्त विद्वानोंकी ओरसे हमें जब-जब लेख मिलते रहेंगे तब-तब हम उन्हें प्रकाशित करते रहेंगे। जनता-की मुख्य आवश्यकता अच्छे विचारोंकी नहीं बल्कि अच्छे कार्योंकी है। यदि हमारा उद्देश्य जनताके सम्मुख अच्छेसे-अच्छे विचारोंको ही प्रस्तुत करना हो तो हम प्राचीन ग्रन्थोंके सुन्दर अनुवादसे 'नवजीवन'को भर सकते हैं। जनता इनसे ऊब गई जान पड़ती है। इसलिए जिन-जिन विचारोंपर अमल किया जा चुका हो जनताके सामने उनका उदाहरण रखकर हम उनपर उसका विश्वास जमानेका प्रयत्न कर रहे हैं। तदनुसार हम जनताके सामने ऐसे ही अनुभव पेश करना चाहते हैं, जो उसके लिए उपयोगी हों। इस कारण जनतामें जो लोग शुद्ध भावनासे कोई भी कार्य कर रहे होंगे उनके कार्योंके वर्णनको 'नवजीवन'में स्थान मिलेगा।

लेखकोंको सम्पादक तथा बेचारे गरीब कम्पोजीटरोंपर दयादृष्टि रखनी चाहिए। इसलिए लेखकोंको कागजके एक ओर ही लिखना आवश्यक है। लेखक जो लेख भेजते हैं उन्हें हम फिरसे नहीं लिख सकते इसलिए यह बहुत जरूरी है कि वे अपना लेख यथासम्भव सुन्दर अक्षरोंमें लिखकर भेजें। कुछ लोग यह मानते हैं कि गुजराती भाषामें चाहे-जैसे अक्षर लिखनेसे काम चल जायेगा। यह मातृभक्तिकी न्यूनताका द्योतक है। अपनी भाषाको साफ और सुन्दर अक्षरोंमें लिखनेका हमें अभिमान होना चाहिए। चाहे-जैसे अक्षर लिखनेमें शर्म आनी चाहिए। खास तौरसे जब हम प्रकाशनार्थ लेख

लिखें उस समय प्रत्येक लेखकको यह मानना चाहिए कि दोहरी सावधानी बरतना उनका धर्म है।

इस अवसरपर हमें एक निष्णात लेखककी कविता याद आती है। उसका सार यह है: विचार किये बिना कुछ भी न लिखो, लिखनेके बाद उसे ध्यानपूर्वक पढ़ जाओ और उसे फिर लिख डालो, दुबारा लिखते समय उसे आधा कर दो। फिर पढ़ो, फिर विचारो और उस आधेका भी आधा करो; इस तरह जब वह एक चौथाई रह जाये तो उसे एक बार फिर पढ़ो और उसमें तनिक भी शंका रह जाये तो पुनः कुछ निकाल दो। फिर भी तुम देखोगे कि सम्पादक इतना निर्दय होता है कि वह उसमें से भी कुछ कम कर देगा। यह सीख नये लेखकोंके लिए है लेकिन अनुभवी लेखक भी इससे बहुत-कुछ सीख सके हैं। हम प्रत्येक लेखकसे उपर्युक्त अनुभवपूर्ण सलाहके आधारपर प्रयोग करके परिणामोंको जाँचनेका अनुरोध करते हैं। स्वर्गीय गोखलेको यदि एक छोटा-सा भी पत्र लिखना होता तो वे उसके सम्बन्धमें पाँच-दस मिनट विचार करते, भाषा गढ़ते और फिर पत्र लिखते, उसे काटकर दूसरा लिखाते, मित्रोंको दिखाते, विनयपूर्वक उनकी टीका सुनते और इन सबके बाद ही वे अपना पत्र पूरा हुआ समझते थे। इसका फल यह हुआ कि विदेशी भाषापर उनके-जैसा अधिकार बहुत ही कम लोग प्राप्त कर सके हैं। उनकी भाषा ओज तथा सत्य आदि गुणोंसे भरपूर थी, फिर भी उसमें कहीं दंश नहीं होता था। जिस प्रकार होशियार राज दीवारकी चिनाई करता है तो उसकी एक भी ईंट गलत रखी हुई नहीं दिखती ठीक वैसा ही अनुभव भाषाके इस कारीगरके शब्द-सौधके सम्बन्धमें उनकी रचनाओंके पाठकोंका है। अपनी मातृभाषाके प्रति तो हमें इससे भी अधिक प्रेम होना चाहिए।

यदि हमारे उत्साही तथा प्रेमी लेखक उपर्युक्त सूचनाओंको ध्यानमें रखेंगे तो उनके लेखोंको स्वीकार किये जानेकी सम्भावना बढ़ जायेगी; इतना ही नहीं इस तरह विचाररूपी हथौड़ेकी चोटसे गढ़े गये लेख जनताके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-९-१९१९

११०. जगत्का पिता — १

"हे किसान! तू सचमुच जगत्का पिता है।" यह बात हम पाठशालामें प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते समय सीखते हैं। इसका क्या अर्थ है तथा जगत्के "पिता" के प्रति हमारी भक्ति-भावना कितनी कम है, इसका थोड़ा-बहुत आभास हमें इस अंकमें प्रकाशित श्री चन्दुलालके लेखसे मिलता है।

श्री चन्दुलालने किसानोंकी स्थितिका संक्षिप्त किन्तु बहुत प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। उन्होंने यह लेख काठियावाड़के किसानोंको ध्यानमें रखकर लिखा है लेकिन जो बात काठियावाड़के किसानोंपर लागू होती है वही बात थोड़े-बहुत अन्तरके साथ समस्त हिन्दुस्तानके किसानोंपर लागू होती है। जबतक शिक्षित-वर्ग किसानोंकी स्थितिका

विचार नहीं करता, उसका परिचय और अनुभव नहीं प्राप्त करता तबतक उसमें कोई सुधार होना सम्भव नहीं है।

किसानोंकी स्थितिके सम्बन्धमें हमारे नेताओंने कुछ जानकारी इकट्ठी की है, थोड़ा लिखा भी है और विधान सभामें चर्चा भी की है, लेकिन उसका निजी अनुभव न होनेके कारण उसमें वास्तविक सुधार नहीं हो सका।

सरकारी अधिकारी किसानोंकी सही स्थितिसे निःसन्देह परिचित हैं, लेकिन अधिकारियोंकी स्थिति सचमुच दयनीय है। इन्होंने किसानोंको [सदा] अधिकारियोंकी दृष्टिसे अर्थात् लगान वसूल करनेवाले अधिकारियोंकी दृष्टिसे देखा है। जो अधिकारी अधिकसे-अधिक रकम उगाह सकता है उसकी पदोन्नति की जाती है, उसे खिताब दिया जाता है और वह योग्य अधिकारी माना जाता है। अमुक वस्तुकी जाँच हम जिस दृष्टिसे करते हैं उसके अनुसार ही वह हमें दिखाई पड़ती है। इसलिए जबतक कोई व्यक्ति किसानोंके दृष्टिकोणसे किसानोंकी स्थितिकी जाँच नहीं करता तबतक उसका हू-ब-हू चित्र हमारे सामने नहीं आ सकता।

फिर भी कुछ हदतक हम उसकी स्थितिको जान सकते हैं। हिन्दुस्तान निर्धन [देश] है। हिन्दुस्तानमें लाखों व्यक्तियोंको एक ही जून खानेको मिलता है। इसका अर्थ असलमें यह है कि हिन्दुस्तानके किसान कंगाल हैं और इन किसानोंमें से अधि-कांशको एक ही जून खानेको मिलता है। ये किसान कौन हैं? हजारों बीघे जमीनका मालिक भी किसान है, जिनके पास एक बीघा जमीन है वह भी किसान है और जिनके पास एक भी बीघा जमीन नहीं होती लेकिन जो दूसरेके अधीन रहकर खेती करता है और हिस्सेमें पेटके लिए अन्न-भर पाता है वह भी किसान! और अन्तमें चम्पा-रनमें मैंने ऐसे भी हजारों किसान देखे हैं जो साहब लोगों और हम लोगोंकी सिर्फ गुलामी ही करते हैं और उससे जन्म-भर छुटकारा नहीं पा सकते। इन भिन्न-भिन्न प्रकारके किसानोंकी सही-सही संख्या हमें कभी भी ज्ञात होनेवाली नहीं। जनगणनाकी रिपोर्ट तैयार करनेका भी एक तरीका होता है। किसानोंकी स्थितिकी जाँच करनेके उद्देश्यसे यदि यह रिपोर्ट तैयार की जाये तो उससे हमें ऐसी बातें मालूम हों जिससे हम आश्चर्यमें पड़ जायें और हमें शर्मिन्दा होना पड़े। किसानोंकी दशा सुधरनेके स्थान-पर दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जाती है, ऐसा मेरा अनुभव है। जो खेड़ा जिला समृद्ध माना जाता है वहाँ भी जिन लोगोंने अच्छे घर बनवाये थे वे अब उनकी मरम्मत नहीं करवा सकते। उनके चेहरोंपर आशाकी कोई किरण नहीं है। उनके शरीर जैसे होने चाहिए वैसे मजबूत नहीं हैं। उनके लड़के पस्तहिम्मत नजर आते हैं। प्लेगने गाँवोंमें प्रवेश पा लिया है; छूतके अन्य रोगोंसे भी लोग पीड़ित हैं। बड़े-बड़े पाटीदार कर्जके भारसे कुचले हुए हैं। मद्रासके गाँवोंमें जाते हुए तो कँपकँपी ही छूटती है; हालाँकि जैसा गहरा अनुभव मुझे खेड़ा और चम्पारन जिलोंका है वैसा मद्रासका नहीं, फिर भी वहाँके जो गाँव मैंने देखे हैं उनकी स्थितिसे मुझे मद्रासके किसानोंकी दारिद्र्यका ठीक अन्दाज हो सकता है।

हिन्दुस्तानके लिए यह सबसे अधिक महत्त्वका प्रश्न है। इस समस्याका समाधान किस तरह हो सकता है? किसानोंकी हालत किस तरह सुधर सकती है? इसपर हमें

प्रतिक्षण विचार करना चाहिए। हिन्दुस्तान अपने शहरोंमें नहीं, गाँवोंमें बसता है। यदि हम बम्बई, कलकत्ता आदि छोटे-बड़े शहरोंकी आबादीकी गणना करें तो यह संख्या एक करोड़से भी कम होगी। हिन्दुस्तानके अच्छे शहर गिनने बैठें तो वे सौ के अन्दर होंगे; लेकिन सौ से लेकर हजार व्यक्तियोंकी आबादीवाले गाँवोंकी कोई गिनती नहीं है। इसलिए हम शहरोंको खुशहाल बना सकते हों उनमें सुधार कर सकते हों तो भी इन प्रयत्नोंका हमारे गाँवोंपर बहुत-कम असर होता है। गड्ढों और डबरों आदिकी सफाई करनेसे पासकी नदीपर — यदि उसमें कुछ कचरा हो तो — कुछ असर नहीं होता। वही बात शहरोंपर भी लागू होती है। लेकिन जैसे नदीके सुधरनेपर गड्ढोंका मैल खुद-ब-खुद साफ होता है उसी तरह यदि हम गाँववालोंके जीवनमें सुधार और विकास कर सकें तो बाकी सब चीजोंमें अपने-आप सुधार हो सकता है।

'नवजीवन' का ध्यान हमेशा किसानोंकी स्थितिपर केन्द्रित रहेगा। यह स्थिति कैसे सुधर सकती है, इन सुधारोंमें छोटे-बड़े किस तरह भाग ले सकते हैं; यदि हममें से स्वयंसेवकोंका एक छोटा-सा ही सही ऐसा जत्था तैयार हो जाये जो सत्यका पालन करते हुए अपने कर्त्तव्यपर आरूढ़ रहे तो थोड़े समयमें हम कितना आगे बढ़ सकेंगे — इस विषयपर बादमें विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-९-१९१९

१११. टिप्पणियाँ

अन्याय सहना गलत है

श्री मूलशंकर मावजी याज्ञिक बम्बईसे लिखते हैं कि कुछ गोरे सिपाहियोंने सितम्बरकी १७ तारीखको एक किरायेकी घोड़ागाड़ीपर बलपूर्वक कब्जा कर लिया। उस गाड़ीको किरायेपर लेनेवाले भाटिया सज्जनका सामान बाहर फिंकवा दिया और गाड़ीवानके यह कहनेपर कि गाड़ी पहलेसे ही किरायेपर ली जा चुकी है, दो-तीन बेंत लगाये। वे आगे लिखते हैं, "आसपासके लोगोंमें इतनी हिम्मत न थी कि वे बेचारे गाड़ीवान अथवा भाटिया सज्जनके प्रति न्याय कर सकते।" यह न्याय किस तरह दिया या दिलाया जाये — यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। किसी दूसरे देशमें ऐसा उद्धत व्यवहार करनेपर देखनेवाले बीचमें पड़कर उस व्यक्तिको उद्धतता करनेसे अवश्य रोकते। जिसपर अन्याय हो रहा है हमें अपनी सीमामें रहते हुए उसका बचाव करना आता ही नहीं है। हममें व्यक्तिगत साहसकी इतनी अधिक कमी हो गई है कि एक भी व्यक्ति जोखिम उठाकर असहायकी सहायता करनेको आगे नहीं आता। ऐसी स्थितिमें हमारे पास तीन सहज रास्ते हैं। यदि गाड़ीवानमें न्याय-बुद्धि हो और साथ ही कुछ तेजस्विता भी हो तो उसे गोरोंको सीधे पुलिस-स्टेशन ले जाकर उनकी उसी समय

रिपोर्ट करनी चाहिए। और यदि उसमें हिम्मत हो तो उसे गोरोंके पते याद रखकर उनको उतारनेके बाद उनकी रिपोर्ट लिखवानी चाहिए। जिस भाटिया सज्जनको अन्यायका शिकार होना पड़ा वे भी उनके विरुद्ध दीवानी अथवा फौजदारी या दोनों ही किस्मकी कार्रवाई कर सकते हैं। और तीसरे, दर्शक भी इस गाड़ीवान तथा भाटिया सज्जनको फरियाद करनेमें सहायता दे सकते हैं। यदि श्री मूलशंकरने स्वयं एक दर्शकके नाते अपना कर्त्तव्य न निभाया हो और गाड़ीवान तथा भाटिया सज्जनकी मदद करनेसे इनकार किया हो तो हमारा विश्वास है कि अन्यायका और कोई प्रसंग आनेपर वे इतना तो अवश्य ही करेंगे। यह सुझाव तो हमने स्थितिपर सामान्य दृष्टिसे विचार करते हुए दिया है। अगर हम सबमें अन्यायके प्रति असहिष्णुताकी भावना पैदा हो जाये तथा उसके सिलसिलेमें हम मामूली ही सही किन्तु उपयुक्त और सही कार्य करना सीख जायें तो भी ऐसी अन्यायपूर्ण घटनाओंको हम जरूर रोक सकेंगे।

स्वदेशी खाँड

श्री पोपटलाल दामोदर पुजाराने स्वदेशी खाँड बरतनेकी आवश्यकतापर एक लेख लिखकर भेजा है। इस समय हम 'नवजीवन' में यह लेख प्रकाशित नहीं कर रहे हैं लेकिन स्वदेशी खाँड बरतनेकी आवश्यकताके विषयमें हमें कोई सन्देह नहीं है। हम कितना बोझ उठा सकते हैं इस सवालपर विचार करनेके कारण ही हमने इस लेखको स्थान नहीं दिया है। परन्तु कपड़ेके बाद विदेशी खाँडपर ही हमारा बहुत सारा पैसा अर्थात् लगभग १७ करोड़ रुपया [प्रतिवर्ष] बाहर चला जाता है। हमारी महत्त्वाकांक्षा तो यह है कि यदि हम विदेशी कपड़ेको देशमें न आने देनेके महाप्रयासमें सफल हो जायें तो उससे प्राप्त सफलता तथा उस प्रयत्नसे उत्पन्न हुए उत्साहसे प्रेरित होकर हम अन्य विदेशी वस्तुओंका — जिन्हें हम अपने देशमें तैयार कर सकते हैं — अवश्य त्याग कर सकेंगे। इस समय तो हमारी ऐसी दयनीय स्थिति है कि हम अपनी आवश्यकतानुसार खाँड, कपड़ा तथा अन्य वस्तुएँ तैयार कर ही नहीं सकते। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि तद्विषयक हमारी कमजोरी साधन-सुविधा अथवा द्रव्यके अभावके कारण नहीं है, इसका मूल हमारे ज्ञान, साहस, स्वदेशप्रेम तथा उत्साहकी न्यूनतामें है।

धर्मसंकटपर विजय[1]

इस लेखको मैंने 'नवजीवन' में इसलिए स्थान दिया है कि जो धर्मसंकट सन्तोकबेनके सामने आया और अभी तक बना है वैसा अनेक बार हम सबके सामने भी आता है। ऐसे संकटके विरुद्ध संघर्ष करने तथा उसपर विजय प्राप्त करनेमें ही सच्चा पुरुषत्व और नारीत्व है। एक बात और; मुझे उम्मीद है उपर्युक्त लेखसे कोई व्यक्ति यह अर्थ नहीं निकालेगा कि उसमें वर्ण संकरको कहीं स्थान दिया गया है। हिन्दू-समाज रूपी समुद्रमें नीति-विषयक उतार-चढ़ाव होता ही रहता है। सत्याग्रह

१. यह टिप्पणी श्रीमती सन्तोकबेन गांधी द्वारा लिखित एक लेखके नीचे दी गई थी।

आश्रममें सभी लोग एक निश्चित उद्देश्य और रहन-सहनके ढंगके अधीन हैं; वहाँ जाति-भेदको बनाये रखना, मेरे मतानुसार हिन्दू धर्मको न समझनेके बराबर है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-९-१९१९

११२. भाषण: काठियावाड़ पाटीदार परिषद्में[1]

सितम्बर २८, १९१९

भाइयो और बहनो,

मुझे उम्मीद है कि आप सब अत्यन्त शान्ति रखेंगे और मुझे जो कहना है उसे सुनेंगे। आशा है कि मेरी बात यहाँ उपस्थित हरएक व्यक्ति सुन सकेगा। मैं आप सबका अत्यन्त आभारी हूँ कि आपने मुझे अध्यक्षपद प्रदान किया है।

मुझे सामान्य शिष्टाचारके पालनकी बातको भूलना नहीं चाहिए। मैं सबसे पहले गोंडलकी रानी साहिबाके स्वर्गवासपर शोक प्रकट करता हूँ। मुझे मान देनेके लिए जुलूस आदि निकालनेका जो आयोजन किया गया था इस शोकके कारण उसे रद करके आपने एक उचित काम किया है। मुझे जुलूस पसन्द नहीं है। मैं नहीं मानता कि इससे देशसेवा होती है। आपने उसे बन्द करनेका विवेक दिखाया, यह बहुत अच्छा हुआ। ईश्वर स्वर्गीय रानी साहिबाकी आत्माको शान्ति प्रदान करे।

मेरे जो वचन आपको पसन्द आयें उनका तालियोंसे स्वागत न कीजिएगा; और ठीक उसी तरह जो शब्द आपको न रुचें उनका तिरस्कार भी न कीजिएगा। भारतकी प्राचीन परिपाटीका पालन कीजिए; भाषणकर्त्ताके वचन पसन्द आयें तो उनका स्वागत तालियों द्वारा नहीं, उनपर अमल करके कीजिए; और पसन्द न आयें तो उनकी हँसी उड़ाकर नहीं, कृत्यसे बताइये कि इन्हें हम पसन्द नहीं करते।

हिन्दुस्तान शास्त्रोंमें बताये गये तीन युगोंसे निकल चुका है और इस समय चौथे युगसे गुजर रहा है। सतयुगके लक्षण जिनका कि लोग पालन करते थे, सब बहुत अच्छे थे। आजका युग कठिन है; सत्ययुगके सर्वथा प्रतिकूल है। सत्ययुगकी व्याख्या करने अथवा उसकी झाँकी दिखानेके लिए इतना कहना जरूरी है कि उस युगमें सत्य प्रधान था और सब सत्यवादी थे। कलिकालमें तो वही सत्यका पालन करते हैं जिनसे शांतिपूर्वक बैठा नहीं जाता; अतः कलिकालमें सत्यकी स्थापनाके आग्रहकी, सत्याग्रहकी आवश्यकता है। सत्ययुगमें सत्यका आग्रह किसलिए? उस समय सत्यसे कोई उकताता ही नहीं था। उसके पालनका पूरा प्रयत्न करते हुए भी लोगोंको लगता था कि कहीं कोई कमी रह गई है। सत्ययुगमें सब कुछ सत्यमय था। सर्वत्र सत्यका प्रवर्तन था। स्त्रियाँ पुरुषोंकी ओर स्थिर दृष्टिसे देख सकती थी। उनको घूँघट निकालनेकी जरूरत नहीं थी। पुरुष अपलक दृष्टिसे स्त्रियोंको देख सकते थे लेकिन उनके मनमें विकार उत्पन्न नहीं

१. सौराष्ट्रमें गोंडल राज्यके मोटी मारडमें; गांधीजीने परिषद्की अध्यक्षता की थी।

होता था। अब स्त्री-पुरुष परस्पर टकटकी बाँध कर नहीं देख सकते, और परिणाम-स्वरूप सब पाप कर रहे हैं। विषयोंके श्रवणसे मनुष्य मूढ़ हो जाता है। मोहकी इस मूढ़तासे स्मृति जाती रहती है, स्मृतिके जानेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि भ्रष्ट होनेसे अन्ततः नाश हो जाता है।[१]

जगत्में — हिन्दुस्तानमें, मैं इस तरहका नाश होते देख रहा हूँ; जगत्में विषय-वासना बढ़ गई है और मेरा हृदय यह देख काँप उठता है। स्त्री-पुरुषका जन्म विषय-वासना अथवा कामवासनाके लिए नहीं हुआ है। मनुष्यत्व और स्त्रीत्व प्रकट करनेके लिए हमें अपनी विषय-भोगकी इच्छाओंपर यत्नपूर्वक संयम रखना चाहिए, उन्हें किसी तरहकी छूट नहीं देनी चाहिए। इस समय स्थिति खराब है। हम विषयी-लम्पट बन रहे हैं। जब यह दशा दूर होगी तभी सब निर्भय बन सकेंगे। आजके युगमें स्त्री और पुरुष दोनों ही भयभीत हैं। संयमसे विषयोंको रोक सके तो हिन्दुस्तानमें फिर सत्ययुग आ जायेगा।

भारत तीस करोड़की आबादीवाला देश है। उसमें साढ़े सात लाख गाँव हैं। प्रत्येक गाँवमें [औसतन] चार सौ व्यक्तियोंकी आबादी है। यहाँ ढाई हजार हैं तो कहीं पाँच हजार। सामान्यतः एक हजारसे कमकी आबादी है। किसी स्थानपर केवल ५० लोग ही रहते हैं। जहाँ इतनी कम आबादी है वहाँ स्थिति दयाजनक हो सो बात नहीं। [प्रायः] जितने लोग उतने रास्ते होते हैं; इसलिए यदि एक गाँवमें एक हजार व्यक्ति हों और वे एक हजार दिशाओंकी ओर जाते हों तो वहाँ नाश ही होता है। गाँवके छोटा होनेके कारण किसीको दुःखी होनेकी आवश्यकता नहीं। दुःख तो उसकी स्थितिपर हो सकता है। सत्ययुगका विचार करें तो उस कालमें अयोध्यानगरी श्रेष्ठ थी। उस समय बम्बई-जैसे शहर न थे। बम्बईकी जैसी सभ्यताकी कोई आवश्यकता मालूम नहीं होती, लेकिन ऐसे शहर हैं तो रहें। किन्तु हिन्दका आधार उसके गाँवोंपर है। यहाँ किसान मुख्य है। प्रति सैकड़ा ७३ व्यक्ति किसान हैं। इसलिए यदि हिन्दुस्तानके किसान जड़ हों, दीन हों तो हिन्दुस्तान भी जड़ और दीन है। हिन्दुस्तान धनवान है अथवा गरीब इसका अन्दाजा करोड़पतिकी आयसे नहीं उसके किसानकी आयसे लगाया जाता है। हिन्दकी नीति-अनीति वेश्यासे नहीं बल्कि किसानकी स्त्रीसे मापी जाती है।

भारतभूमि जब पुण्यभूमि थी उस समय उसके शहरोंका क्या हाल था? मनुष्योंके हृदय उस समय स्वच्छ, निष्कलुष और निष्कपट थे। और इसी तरह हिन्दुस्तानके घर भी उस समय शुद्ध एवं स्वच्छ होते थे। उनमें रहनेवाले व्यक्ति अपने मधुर सौरभसे उन्हें भर देते थे। पाँच व्यक्तियोंके रहनेका स्थान घर और पचास व्यक्तियोंके रहनेका स्थान गाँव। यहाँ मैंने देखा कि लोग जहाँ-तहाँ सो रहे थे, मैंने सब ओर छतोंसे बरसातका पानी टपकते देखा है।[२] हम इतने आलसी हैं तो भी हमें कमसे-कम टपकते

१. देखिए **भगवद्गीता,** अध्याय २, ६२–६३।

२. गुजराती रिपोर्ट यहाँ दोषपूर्ण है। **काठियावाड़ टाइम्स**में दी गई भाषणकी रिपोर्टसे इसका मिलान कर लिया गया है।

पानीको एक जगह इकट्ठा करनेका प्रबन्ध कर लेना चाहिए। मैंने यहाँकी गलियोंको बहुत मैला पाया। बरसात होनेपर भी किसानोंके घर साफ होने चाहिए तथा गलियाँ ऐसी होनी चाहिए जिनमें चलनेमें कोई कष्ट न हो। चाहे कितनी ही बरसात क्यों न हो फिर भी वहाँपर कीचड़ नहीं होनी चाहिए। गाँवोंके रास्ते खराब होंगे तो बैलोंको चलनेमें कष्ट होगा। गाँवोंकी सरकार तो हमीं लोग हैं। हमें आलसी एवं जड़ नहीं होना चाहिए। प्रजा सीधी और सच्ची हो तो राजा टेढ़ा हो ही नहीं सकता। प्रजा अन्यायी तथा फिजूलखर्च हो तो राजा भी वैसा ही होगा। राजा प्रजाके लिए एक छत्रके समान है। आपके गाँवका प्रबन्ध आपके अपने हाथमें होना चाहिए; आपको अपने गाँवकी सारी व्यवस्था स्वयं करनी चाहिए। सरकार साढ़े सात लाख गाँवोंको साफ नहीं कर सकती।

मारड गाँव यहाँ रहनेवाले लोगोंका गाँव हैं।[1] घर साफ न रखनेपर जिस तरह स्त्री फूहड़ मानी जाती है उसी तरह यदि गाँवके व्यक्ति गाँवको साफ न रखें तो उन्हें फूहड़ माना जायेगा। मैं आपका मेहमान हूँ। आप मुझपर प्रेमकी वर्षा कर रहे हैं। मारड गाँव कितना अधिक सुन्दर है फिर भी उसकी गलियोंकी स्वच्छताके बारेमें मुझे इतना कहना पड़ा। यह कोई मारड गाँवकी ही विशेषता नहीं है वरन् हिन्दुस्तानके साढ़े सात लाख गाँवोंका यही हाल है। अन्य गाँवोंकी अपेक्षा यहाँकी हालत अधिक खराब हो, सो बात नहीं। लेकिन चूँकि आपने मुझे इस पदपर बिठाया है इसलिए मुझे इतनी बात अवश्य कहनी चाहिए कि दूसरे भले ही पाप करते रहें, लेकिन आप तो आजसे ही गाँवको सुधारनेका काम शुरू कर दें। हमारी जाँच हमारी गलियों [की स्वच्छता]से होनी चाहिए। हम अपने परिवारोंका ही शास्त्र जानते हैं किन्तु परिवारके शास्त्रसे गाँवके शास्त्र और फिर शहरके शास्त्र तथा अन्ततः हिन्दुस्तानके शास्त्रकी ओर नहीं बढ़ सके हैं।

शंकराचार्य-जैसे व्यक्ति दक्षिणसे लेकर ठेठ उत्तरतक घूम आये थे। उससे पता चलता है कि प्राचीन कालसे ही हिन्दुस्तान एक देश था, रास्ते भी वैसे ही [अच्छे] थे। ग्रामव्यवस्था अच्छी थी। उस समयकी गलियोंकी स्वच्छता हमें विरासतके रूपमें प्राप्त हुई है। उसे हम फेंके दे रहे हैं। हम कोल्हूके बैलकी तरह जहाँ हैं वहीं चक्कर लगा रहे हैं। हमारी गति सीधी होनी चाहिए। अपने दोष हमें स्वयं ही दूर करने हैं। हमें गुण ग्रहण करने चाहिए; गुणग्राही होना चाहिए। गाँवोंको आत्मनिर्भर बनाना चाहिए। दूसरेकी सहायता लेना दूसरोंपर निर्भर रहना है। दूसरेपर भरोसा रखकर यह मानना ठीक नहीं कि वे हमारा गाँव साफ कर देंगे। हम नीतिमय जीवन व्यतीत करें। दूसरे बीमार पड़ें तो उनकी सहायताके लिए दौड़े जाओ; कोई मर जाये तो वहाँ जाकर मदद करो। इतना करनेके अतिरिक्त घर, रास्ते आदि स्वच्छ रखो। ऐसी व्यवस्था करो जिससे कुओंमें वृक्षोंके पत्ते न गिरें। जब जरूरत पड़े तब उनकी सफाई करो। पानी मोतीके समान स्वच्छ होना चाहिए। मन्दिरोंको साफ रखो; पुजारी भी मूर्ख नहीं होना चाहिए, उसे ज्ञानी होना चाहिए। [भजनकीर्तन

१. इसका **काठियावाड़ टाइम्स**में दी गई भाषणकी रिपोर्टसे मिलान कर लिया गया है।

आदिके लिए] वाद्ययन्त्र कर्णप्रिय होने चाहिए। ठाकुरजीकी पोशाक शुद्ध खादीकी अथवा अतलसकी होनी चाहिए। जापानसे आये हुए सड़े-गले वस्त्र ठाकुरजीको नहीं पहनाये जाने चाहिए। मैं तो कमसे-कम ऐसी मूर्तिको प्रणाम न करूँ। यदि आप तुलसीदाससे प्रणाम करवाना चाहते हों तो रामके हाथमें धनुष होना ही चाहिए। मैं लोगोंकी कीमत उनके मन्दिरोंमें ठाकुरजीकी दशाको देखकर आँक लेता हूँ।

एक तरफ [मन्दिरपर फहराती] ध्वजा, और दूसरी ओर मस्जिद, बाग तथा पारसियोंका मन्दिर — किसी और जगह लोग इसे कदापि सहन न करें लेकिन हिन्दुस्तानका धर्म उदार है। पारसी मन्दिर अथवा गिरजाघरके प्रति उदारभाव रखो, ऐसी थी हमारी स्थिति। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे हम गाँवके सब लोगोंको शिक्षा प्रदान कर सकें। शिक्षक गाँवका ही व्यक्ति होना चाहिए। शास्त्री पैसा लेकर विद्यादान देनेवाला व्यक्ति नहीं होना चाहिए। गाँवके लोगोंको उसे आजीविका प्रदान करनी चाहिए। यदि हम गाँवके अपाहिजों और गरीबोंकी सेवा करें तो हम अच्छे सेवक कहला सकते हैं। कोई भी मवेशी दुबला नहीं होना चाहिए। हमारे अपने गाँवमें ही सब वस्तुएँ पैदा होनी चाहिए। यदि सभी वस्तुएँ बाहरसे आयें तो हम अपने गाँवके प्रति वफादार नहीं कहे जा सकते।

किसानोंको अभी अपने धनका उचित उपयोग करना सीखना है। ज्ञान लेनेमें पैसा खर्च करना एक अच्छी बात है। विद्यापीठ अथवा शाला कैसी होनी चाहिए। शाला जैसी दूसरे कहें वैसी न होकर जैसी हम चाहें वैसी होनी चाहिए। जहाँ अंग्रेजी अथवा व्यर्थकी चीजें सिखाई जाती हैं वह सच्ची पाठशाला नहीं है। जहाँ धर्मकी शिक्षा दी जाती है वही सच्ची पाठशाला है। समुद्रके किनारे रहनेवाले लोगोंके लिए जैसे तैरना सीखना अनिवार्य है वैसे ही प्रत्येक भारतीयको बुनाई और खेतीका काम सीखना ही चाहिए। इनको सीखनेमें विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मुझे इसमें कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई और सफलता प्राप्त हो गई। यदि गाँवमें चार-पाँच व्यक्ति अच्छे हों तो वे सबको एक कर सकते हैं। उनमें सेवाधर्म होना चाहिए।

यदि कोई कठिनाई है तो वह एक ही है, और वह है [हमारी] भयभीत दशा। हम अधिकारियोंसे भागते फिरते हैं। हमें अधिकारियोंका पूरा-पूरा सम्मान करना चाहिए, उन्हें भाई समझकर उनके साथ विनयका व्यवहार करना चाहिए। लेकिन आज वे हमें जिस तरह दबाते हैं उसी तरह हम दब जाते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। हम रबड़की गेंदके समान मुलायम न हों बल्कि पत्थरके समान कठोर हों। पत्थरकी गेंदको पैरके नीचे दबानेवाले मनुष्यकी कैसी दशा होती है यह बात वही समझ सकता है जिसने पत्थरकी गेंदमें लात मारी हो। कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि आप दबेंगे तो अधिकारी आपको दबायेंगे। इसमें उनका दोष नहीं है। हममें सत्य और दया-की भावना होगी तभी हम निर्भय बन सकेंगे। सत्य अथवा दया न हो तो मनुष्य निर्भय नहीं हो सकता। हम दुनियासे दयाकी अपेक्षा करते हैं तो सर्वप्रथम हमें स्वयं दयामय होना चाहिए। यदि ७३ किसान राक्षसोंके समान निर्दय हों तो बाकीके २७ किसानोंको नष्ट-भ्रष्ट कर डालें, और बादमें आप लोग यादवोंकी भाँति आपसमें कट मरें। आपका बल आपकी जमीन है।

२७ [प्रतिशत] किसान ७३ [प्रतिशत] किसानोंको निकाल बाहर करें और सारी खेती खुद करें — सो तो हो नहीं सकता। आज जैसी स्थिति है उसमें तो यदि ये ७३ किसान निकलनेको तैयार हों तभी उन्हें निकाला जा सकता है। अभीतक एक भी राजा ऐसा नहीं हुआ, जो आपसे आपकी जमीन छीन सका हो। राजाका पद सही अर्थोंमें तो आपके पास ही है। दूसरोंको राजाके पदपर प्रतिष्ठित करनेवाले आप लोग स्वयं रंक कैसे हुए? यदि आपने सत्य, त्याग, विवेक और ज्ञानका त्याग कर दिया हो तो उसे पुनः प्राप्त करें। जहाँ शिक्षक आठ रुपये वेतन लेकर पहाड़ा सिखाते हैं वह सच्ची पाठशाला नहीं है। जिन प्रौढ़ व्यक्तियोंको लिखना-पढ़ना न आता हो उन्हें लिखना-पढ़ना सिखानेवाली शाला अच्छी शाला है। मेरी स्त्री शिक्षित न भी हो, तो भी मैं अपने बच्चे उसके सुपुर्द कर दूँगा। सत्य और विवेककी शिक्षा जितनी अच्छी आप दे सकते हैं वैसी कोई मामूली वेतन पानेवाला बाहरी शिक्षक कभी भी नहीं दे सकता। जरूरत पड़े तो [शिक्षकको] पैसे देकर [अपने बच्चोंको] अक्षर-ज्ञान करवाओ और बारहखड़ी सिखानेके बाद फिर चिन्ता मत करो, अपना काम करो। बच्चे स्वयमेव शुद्ध विचार करना सीख जायेंगे। सारे हिन्दुस्तानका, तीस करोड़ मनुष्योंका विचार करो।

अन्तिम बात स्वदेशीके सिद्धान्तकी है। सौ वर्ष पूर्व भारतके किसान [भारतमें बने] सूतके वस्त्र पहनते थे। भारतके बुनकर शुद्धसे-शुद्ध बारीक कपड़ा बना सकते थे। इसमें यह विशेषता थी कि ढाकाकी मलमल चाहे कितनी ही बारीक क्यों न हो उसमें से अंग नहीं झलकते थे। अंग दिखाई न दे, ऐसी थी उसकी खूबी। वस्त्र पहननेके बावजूद विवस्त्र दिखना हो तो जापानके वस्त्र पहनिये।

आपकी पत्नियाँ, बहनें और माताएँ जब खाली हों उस समय नींद, गाली-गलौज, टंटे-फसादमें समय न गँवाकर जिसमें धर्मका निवास है ऐसा शुद्ध और पवित्र सूत कातनेमें अपना समय व्यतीत करें तो कितना अच्छा हो? आपके पास सोनेके आभूषण हों तो मुझे उनकी चिन्ता नहीं। भले ही उनमें वृद्धि हो। लेकिन सूत कातनेसे आपमें जो निखार आयेगा वह जापान, फ्रांस अथवा इंग्लैंड [की बनी वस्तुओं]से कभी नहीं आ सकता। इस घरेलू धंधेके नष्ट होनेसे हमारी कैसी विषम स्थिति हुई है, आप इसपर विचार करें। इस पुख्ता और अनुभवी आदमीके ये वचन याद रखना। यदि याद नहीं रखोगे तो पीछे पछताओगे। जो आपने नहीं देखा, सो मैंने देखा है। आपकी माताकी ओर कोई आँख उठाकर नहीं देख सकता। लेकिन क्या आप जानते हैं कि जब वह बाहर मजूरीके लिए जाती है तब उसकी क्या हालत होती है? घरेलू काम-धन्धेके अभावमें बाहर मजूरी करनेके लिए जानेवाली अनेक माताओं और बहनोंपर [पुरुषों द्वारा] चारों ओर जो अत्याचार किया जा रहा है उससे कँपकँपी छूटती है। दाहोदमें, सड़कोंपर नियुक्त ओवरसीयर लम्पट एवं पाखंडी होनेके कारण सड़कोंपर काम करनेवाली बहनोंका शील भंग करते हैं। उन्हें आप मार डालें, मैं यह बात नहीं कहता, लेकिन आप स्वयं मर सकते हैं। स्त्रियाँ खेतोंमें काम करती हैं उस समय आप जैसे वीर पुरुष उनके शीलकी रक्षा करते हैं, फिर भी आप उन्हें बाहर जाने

देते हैं? उस पुरुषको धिक्कार है जो अपनी बहनों और माताओंके शीलकी रक्षा नहीं कर सकता। यदि आप शीलकी रक्षा नहीं कर सकते तो आत्महत्या कर लें।

[गुजरातीसे]

गुजराती, १२–१०–१९१९

११३. भाषण : काठियावाड़ पाटीदार परिषद्‌में[1]

[सितम्बर २८, १९१९]

प्रस्तावोंको पास कर देनेके साथ ही आपके कर्त्तव्यकी इति नहीं हो जाती। उन्हें कार्यान्वित करना है -- और वह भी अविलम्ब ही। आपने मेरी आँखोंमें आँसू देखे हैं, उनका कारण केवल मारडकी दशा ही नहीं, सारे देशकी हीन दशा है। उसे मिटानेमें अपना योग दे सकते हैं, परन्तु उसे पूरी तरह मिटानेके लिए और मेरे मनके दाहको बुझानेके लिए सम्पूर्ण भारतको आगे आना होगा। काठियावाड़ मेरा जन्म-स्थान है, इस नाते मेरा इसपर सबसे ज्यादा अधिकार है। आप उठें और प्रतिज्ञा करें कि महिलाओं समेत आप सब अपने लिए सूत कातेंगे और यदि आवश्यक समझें तो स्वयं अपने कपड़े बुनेंगे। इतनी अधिक संख्यामें स्त्रियों और पुरुषोंको खड़े होकर प्रतिज्ञा लेते हुए देखनेमें मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है।

परिषद्‌का कार्य समाप्त हो गया है। मेरी कामना यही है कि काठियावाड़ और भारतने मुझपर जो प्रेमकी वर्षा की है उसका मैं सत्पात्र होता। आपके लिए मेरा अन्तिम सन्देश आपसे यह प्रार्थना है कि उस पत्रको पढ़ें जिसका मैं सम्पादन कर रहा हूँ। कितना अच्छा होता कि मैं उसे निर्धनोंको निःशुल्क ही दे सकता। आप उसे ध्यानसे पढ़ेंगे तो उससे आपको अपनी प्रतिज्ञाको कार्यान्वित करनेमें सहायता मिलेगी। यदि विद्वज्जन मेरे पत्रको न पढ़ें तो इस चूकको मैं अनदेखा कर सकता हूँ; परन्तु किसानों और कारीगरोंकी उपेक्षासे मेरा हृदय दुखेगा। आप हर सप्ताह उसकी एक प्रति लेकर अपने चौकमें उसका सार्वजनिक पाठ करें। उसका वार्षिक चन्दा रु० ३–८–० है। यदि आप निःशुल्क ही चाहो तो उसका प्रबन्ध भी हो सकता है; यदि ऐसा हो तो आप श्री चन्दूलालकी मार्फत अपनी माँग पेश करें। इस पत्रको चलानेका ध्येय धन कमाना नहीं है। इसका ध्येय है जनताकी सेवा करना और अपनी प्यारी मातृभूमिकी उन्नतिमें सहायक होना।

मैं दुबारा सदस्यों और स्वयंसेवकोंको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १५–१०–१९१९

१. इस सम्मेलनमें गांधीजीका यह समापन भाषण था।

११४. पत्र : जी० ई० चैटफील्डको

आश्रम
सितम्बर २९ [१९१९]

प्रिय श्री चैटफील्ड,

अनसूयाबेनने अभी-अभी मुझे वह आदेश दिखलाया है जिसके द्वारा अप्रैलके उपद्रवोंके सिलसिलेमें मिल-मजदूरों सहित अहमदाबादके समस्त नागरिकोंपर तावान बैठाया गया है। यह भी मालूम हुआ है कि मिल-मालिक आज ही मिल-मजदूरोंसे यह तावान वसूल करेंगे और वे जमानतके रूपमें मजदूरों द्वारा जमा राशिमें से उनकी एक सप्ताहकी मजदूरीकी रकम डिप्टी कलक्टर साहबको दे देंगे। मैं समझता हूँ कि मिल-मजदूरोंको इस तावानकी बात सुनकर बड़ा ताज्जुब होगा। क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि उनको थोड़ा समय दिया जाये, जिससे कि वे स्थितिको ठीकसे समझ सकें और खुद ही व्यक्तिगत या सामूहिक तौरपर इसकी अदायगी करें। इस प्रकारकी एकतरफा कार्रवाई सरकारकी दृष्टिसे ठीक हो सकती है और शायद मिल-मालिकोंको भी यही पसन्द आये। लेकिन जिस पक्षपर तावान लगाया जा रहा है उससे बिलकुल ही बिना कुछ कहे-सुने बाला-बाला वसूलीका यह सिद्धान्त मुझे बड़ा ही खतरनाक और पस्ती पैदा करनेवाला लगता है। मैं तो समझता हूँ कि सरकारको भी यह बात रुचेगी कि मिल-मजदूर स्वयं ही अपने दायित्वको समझें, अनुभव करें और अपनी गरिमा पहचानें।

फिर मुझे यह पता नहीं कि आपको इस बातकी जानकारी है या नहीं कि आगामी कुछ दिन मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों ही के लिए धार्मिक महत्त्वके दिन हैं। मुहर्रमके दिन तो हमेशा ही भारत-भर में सरकारके लिए बड़ी चिन्ताके दिन रहते हैं। निःसन्देह ही आपने और इस निर्णयसे सम्बन्धित अन्य लोगोंने भी इस तावानका समय निर्धारित करते समय इसका ध्यान नहीं रखा। परन्तु आप मेरी इस बातसे तो सहमत होंगे ही कि मिल-मजदूर वैसे ही बड़े शंकालु रहते हैं और इसे देखकर तो वे तत्काल इसी नतीजेपर पहुँचेंगे कि तावान जमा करनेका यह समय खास तौरपर उनकी भावनाओंको चोट पहुँचाने और उनको परेशान करनेके लिए ही चुना गया है। इसलिये मेरा सुझाव है कि मिल-मजदूरोंसे इसकी वसूली दिवालीकी छुट्टियोंके बादतक के लिए स्थगित कर दी जाये। आपको ऐसा आश्वासन देनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि इस बीच मिल-मजदूरोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी लोग इसकी वसूलीमें आसानी पैदा करनेके लिए जितना भी उनसे

बन पड़ेगा, अवश्य करेंगे। मैं जानता हूँ कि आप इस मामलेको फौरी मानेंगे और यदि आप मेरी दलीलसे सहमत हों तो आवश्यक आदेश जारी कर देंगे।[1]

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९०४) की फोटो-नकलसे।

११५. पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको

साबरमती
सितम्बर ३०, १९१९

माननीय श्री एस० आर० हिगनेल, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०,
परमश्रेष्ठ वाइसरायके निजी सचिव

प्रिय श्री हिगनेल,

जैसा कि परमश्रेष्ठको विदित होगा, मेरे खिलाफ कुछ आदेश लागू हैं, जिनमें अन्य बातोंके अलावा मेरे पंजाब जाने और बम्बई प्रान्त छोड़नेपर भी रोक लगी हुई है। अबतक तो इन आदेशोंके वापस ले लिये जानेकी मुझे कोई चिन्ता नहीं रही — कारण भले ही इतना-भर रहा हो कि जबतक सरकार रौलट अधिनियमको विधि-संहितामें बनाये रखनेपर तुली हुई है तबतक तो मेरी सविनय अवज्ञाको, वास्तविक अथवा सामान्य रूपमें, जारी रहना ही है। लेकिन अब स्थिति कुछ बदल गई है। मेरी नम्र सम्मतिमें, आगामी समितियोंके अपनी बैठकें प्रारम्भ करनेके अवसरपर और उससे कुछ पहले मेरा पंजाबमें रहना आवश्यक है। मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी उपस्थितिसे सत्यका उद्घाटन करनेमें सहायता ही मिलेगी। पंजाबके लोगोंका फौरी तकाजा है कि जाँचसे पूर्व और जाँचके समय मैं उस प्रान्तमें रहूँ। देखता हूँ, मेरे नामके साथ इतनी अधिक घटनाओंका सम्बन्ध जोड़ दिया गया है कि स्वभावत: जाँचकी कार्रवाईमें मेरी

१. जी० ई० चैटफील्डने इसके उत्तरमें उसी दिन लिखा था: "मेरा खयाल है कि मिल-मजदूरोंसे अलग-अलग और सामूहिक चन्देके रूपमें यह रकम प्राप्त करनेके सिद्धान्तसे मैं शायद सहमत नहीं हो सकता और न यही मान सकता हूँ कि उनके साथ बातचीत किये बिना उनपर जुर्माना करना अनुचित है। मैं आपके दृष्टिकोणको समझता हूँ और मुझे पूरा विश्वास है कि आप भी मेरे दृष्टिकोणको समझेंगे और यह भी देख सकेंगे कि इन दोनोंमें अन्तर होना क्यों अनिवार्य है।" कलक्टर इस बातसे सहमत था कि जुर्माना जैसे समयमें लगाया गया था वह ठीक नहीं था, लेकिन साथ ही उसका यह भी खयाल था कि देर होनेसे और भी खतरा पैदा हो सकता है। उसने लिखा था कि मैं ऐसी व्यवस्था कर रहा हूँ जिससे कोई उपद्रव न हो और गांधीजीसे अनुरोध किया था कि शान्ति बनाये रखनेके लिए वे मिल-मजदूरोंपर अपने प्रभावका उपयोग करें।

बड़ी दिलचस्पी है। अतः मुझे आशा है कि जहाँतक पंजाबका सम्बन्ध है, मेरे विरुद्ध जारी किये गये आदेश लौटा लिये जायेंगे।[1]

[हृदयसे आपका]

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया : होम डिपार्टमेंट : पोलिटिकल ए : अक्तूबर १९१९ : फाइल सं० ४२६–४४० तथा अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९११) की फोटो-नकलसे।

११६. पत्र : शुएब कुरैशीको

[सितम्बर, १९१९][2]

प्रिय भाई,

अली बन्धुओंके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया' के सम्पादकके नाम, आपके तथा अन्य मित्रोंके हस्ताक्षरोंसे भेजे गये पत्रका उत्तर मैं न दे सका। आशा है, इसे आप मेरी अशिष्टता न मानेंगे। बात यह है कि मैं एक साथ दो महत्त्वपूर्ण समाचारपत्रोंके[3] सम्पादनकी चिन्ताके भारसे बुरी तरह दबा रहा हूँ। कहना पड़ेगा कि आपका पत्र मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगा। यह तो किसी वकीलके पत्र जैसा लगता है, जो वाक्-छलसे भरा हुआ है। लेकिन, खैर इतने तक भी कोई बात न थी। मगर आप सचमुच ऐसा मानते हैं कि एक मुसलमान दूसरे मुसलमानको, चाहे वह कैसा भी अपराध करे, नहीं मार सकता? अगर आप वैसा रुख अपनायें भी तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा, क्योंकि तब तो यह माना जायेगा कि आप ब्राह्मण स्मृतिकारोंके नियमका अनुसरण कर रहे हैं। ब्राह्मण स्मृतिकारोंका विचार है और जैसा कि दूसरे लोगोंने सम्भाव्य मान लिया है, उन्होंने यह व्यवस्था देकर कि किसी ब्राह्मणने चाहे जितना बड़ा अपराध किया हो उसे मारा नहीं जा सकता, उसे अवध्य बना दिया है। हाँ, यह सत्य है कि लोगोंने इस नियमका पालन कम और उल्लंघन ही ज्यादा किया है। क्योंकि युद्धमें तो हमने ब्राह्मणोंकी हत्या करनेमें कोई संकोच नहीं किया है। इसलिए किसीकी मानसिक प्रवृत्ति विशेषसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। मेरी आपत्ति तो इस बातपर है कि आप हमारे मित्रोंका पक्ष-समर्थन करनेके लिए कुरानकी आयतोंको उद्धृत क्यों कर रहे

१. गांधीजीने इसी सम्बन्धमें २ अक्तूबर, १९१९को एक तार भी दिया था और निषेधाज्ञा १५ अक्तूबर, १९१९को हटा ली गई थी।

२. इस पत्रकी सही तारीख मालूम नहीं है; तथापि यह सितम्बरके अन्तमें लिखा गया लगता है।

३. तात्पर्य गुजराती **नवजीवन** और अंग्रेजी **यंग इंडिया,** इन दो साप्ताहिकोंसे है। वैसे तो **नवजीवन**के सम्पादनका दायित्व गांधीजीपर पूरी तरहसे ७ अक्तूबर, १९१९से और **यंग इंडियाके** सम्पादनका दायित्व ८ अक्तूबर, १९१९से आया लेकिन इससे पहले भी वे इन दोनों पत्रोंके लिए काफी सम्पादकीय लेख लिखा करते थे।

हैं। मैं तो आपसे किसी ऐसे पत्रकी अपेक्षा करता था जो तर्क-बुद्धिको ठीक जँचे। आपका पत्र पानेसे पूर्व ही मैंने बारी साहबको[1] लिखा था कि मेरे विचारसे तो जबतक टर्कीके साथ जिन शर्तोंपर सन्धि होनी है, वे शर्तें घोषित नहीं की जातीं तबतक अली बन्धुओंकी मुक्तिके लिए चलाये गये किसी भी आन्दोलनके सफल होनेकी सम्भावना नहीं है। मुझे नहीं मालूम कि आपका पत्र, जो आपने सामान्य रूपसे सभी अखबारोंके नाम लिखा है, कहीं अन्यत्र प्रकाशित हुआ है या नहीं।

[हृदयसे आपका]

कुरैशी शुएब
मार्फत डॉ० अंसारी[2]
दिल्ली

पेंसिलसे लिखे हुए मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६८६४) से।

११७. पंजाबके विद्यार्थी

इस माहकी २२ वीं तारीखके 'लीडर' में जो पत्र 'वन हू फील्स' के नामसे प्रकाशित हुआ है वह एक महत्त्वपूर्ण पत्र है। उसमें मेरे पास पंजाबसे आनेवाले अनेक पत्रोंमें — जिनमेंसे कुछ तो 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हो चुके हैं — जो बात कही गई है उसकी पुष्टि की गई है। कॉलेजके अधिकारियोंने जो-कुछ किया है वह शोभनीय नहीं कहा जा सकता। 'लीडर' जनसाधारणको सूचित करता है कि 'वन हू फील्स' "पंजाबके शिक्षाजगत्के अत्यन्त प्रतिष्ठित और अग्रगण्य व्यक्ति हैं।" बहुत कहें तो विद्यार्थियोंका अपराध यही था कि वे विद्यालयोंसे अनुपस्थित रहे थे। यह तो छात्रों द्वारा सरकारकी कार्रवाईके खिलाफ अपनी भावना, और वे जिन्हें प्यार करते हैं उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करनेके बाल-सुलभ प्रदर्शनसे अधिक कुछ नहीं है। भारतके अलावा अन्य किसी भी देशमें इस प्रकारके कामपर कोई ध्यान भी नहीं देता। अथवा वहाँ कॉलेजके आचार्य अपने विद्यार्थियोंका साथ देते और अधिकारियोंका ध्यान उनकी कार्रवाईकी अप्रियताकी ओर खींचते। परन्तु अधिकारियोंकी कार्रवाईसे यह बात बहुत अधिक स्पष्ट हो जाती है कि पंजाबके सार्वजनिक जीवनमें आतंकवाद किस हदतक अपने हाथ दिखा रहा है। कॉलेजके अधिकारियोंने विद्यार्थियोंको कापुरुषताका पदार्थपाठ पढ़ाया है। हड़ताल करानेवाले छात्र-नेताओंके नाम मालूम करनेके लिए उन्होंने सजाकी धमकी देनेमें भी संकोच नहीं किया। प्रत्यक्ष है कि लड़कोंने किसीके उकसानेपर हड़ताल नहीं की थी बल्कि वह स्वतःस्फूर्त थी और वस्तुतः सभी छात्र हड़तालके मुखिया थे। ऐसे अवसरोंपर बुद्धिमानीका काम

१. मौलाना अब्दुल बारी।
२. डॉक्टर मुख्तार अहमद अंसारी।

यह नहीं है कि कमजोर लड़कोंको अपने सहपाठियोंपर दोषारोपण करके स्वयं अपनी सजासे मुक्ति पानेका लोभ दिया जाये, बल्कि यह है कि उनके जोशको ठीक मार्गपर प्रवाहित और निर्देशित किया जाये। यदि अधिकारीगण विद्यार्थियोंमें कटुता उत्पन्न करके उन्हें छल और बेईमानीके तरीके अपनानेपर मजबूर करनेका इरादा रखते होते तो भी जो रास्ता उन्होंने अख्तियार किया उससे अधिक कारगर रास्ता और नहीं हो सकता था।

लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदयने अब एक जाँच समिति नियुक्त की है। यह जाँच समिति 'लीडर' के सम्वाददाताके कथनानुसार पूर्णतः सन्तोषजनक नहीं है। कुछ भी हो, लाहौर मैडिकल कॉलेज इस समितिसे कोई सरोकार न रखेगा। अधिकारीगण अपने कार्योंकी आलोचना कैसे होने देंगे! शक्ति बनाये रखने तथा दण्ड देनेकी यह अप्रतिबंधित इच्छा सहन करने योग्य नहीं है। मुझे आशा है कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदय बीचमें पड़ेंगे और इस बातकी भी आशा है कि समस्त भारत आग्रह करेगा कि इन मामलोंकी जाँच कराई जाये। परन्तु यदि अधिकारीगण अपने हठपर अड़े ही रहें तो मेरे विचारसे इसका कोई उपाय ढूँढ़ना आवश्यक हो जायेगा। यदि स्वाभिमान और मर्दानगी बेचकर शिक्षा प्राप्त करनी है तो यह सौदा बहुत ही महँगा है। "मनुष्य केवल रोटी खाकर ही जीवित नहीं रहता।" जीविकोपार्जनके अथवा अच्छेसे-अच्छे पदोंपर पहुँचनेके साधनोंको प्राप्त करनेकी अपेक्षा आत्माभिमान एवं चारित्र्यबल अधिक मूल्यवान है। मुझे दुःख है कि अनेक विद्यार्थियोंने अपने कॉलेजोंसे निष्कासनका इतना अधिक सन्ताप माना। अभिभावकों तथा विद्यार्थियों, दोनोंको शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचार बदलने चाहिए। आजकल शिक्षाका उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन और समाजमें प्रतिष्ठित पद प्राप्त करना माना जाता है। यह आकांक्षा निन्द्य नहीं है परन्तु जीवनमें यही सब-कुछ नहीं है। धन और प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके और भी सम्मानपूर्ण रास्ते हैं। जीवनमें ऐसे अनेक स्वतन्त्र धंधे हैं जिन्हें कोई भी व्यक्ति स्वाभिमानको खोनेकी आशंका किये बिना अपना सकता है। समाजमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिए ईमानदारी और निस्वार्थ सेवासे अधिक श्रेष्ठ और स्वच्छ और कोई साधन नहीं है। इसलिए जितना ठीक है उतना कर चुकनेके बाद भी यदि विद्यार्थीगण अपने कॉलेजोंके दरवाजे बन्द पाते हैं तो उन्हें हतोत्साह नहीं होना चाहिए बल्कि जीविकोपार्जनके अन्य साधनोंको अपनाना चाहिए। और अधिकारियोंके दुराग्रहके प्रति सविनय विरोध प्रदर्शन करके अन्य विद्यार्थी भी अपने कॉलेजोंसे निकल आयें तो उससे न तो उनकी और न भारतकी ही कोई क्षति होनेवाली है — प्रत्युत उससे लाभ ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१०–१९१९

११८. देशी रियासतोंकी प्रजा

श्री एम० टी० दोषीने मुझे कराचीके जिलाधीशके साथ गत १३ अगस्तको हुई अपनी भेंटका विस्तृत वृत्तान्त भेजा है।

श्री दोषी काठियावाड़के वाँकानेर नगरके निवासी हैं। वे एकाउन्टेन्ट [हिसाब-किताब रखनेवाले कर्मचारी] और व्यवसाय सम्बन्धी तालीम देनेवाले शिक्षक हैं। वे कराचीकी एक पेढ़ीके व्यवस्थापक भी रह चुके हैं। न्यायाधीश द्वारा प्रेषित एक सूचनाके फलस्वरूप यह भेंट हुई थी, जिसमें श्री दोषीको लिखा गया था कि वे आकर उनसे मिलें। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस प्रकार लोगोंको सूचना द्वारा बहुत ज्यादा बुलाया जाने लगा है। और यह अधिकारियों तथा जनताके लिए समानरूपसे पतनकारी है। सार्वजनिक कार्योंको करनेका यह तरीका गैरमुनासिब है। लोगोंको इस प्रकार बुला भेजनेका जिला मजिस्ट्रेटोंको कोई कानूनी अधिकार नहीं है। यदि श्री दोषीने कोई अपराध किया था तो उनपर कानूनी कार्रवाई की जानी चाहिए थी। लेकिन गैरअदालती राजनैतिक ढंगकी चेतावनी देना व्यर्थका भय पैदा करता है और उस व्यवस्थाके अन्तर्गत जिसे राजनीतिक जासूसी व्यवस्था कहा जा सकता है कोई भी अपने आपको सुरक्षित नहीं मान सकता।

कुछ प्रारंभिक प्रश्नोंके पश्चात् श्री दोषीसे पूछा गया कि क्या आपने सत्याग्रहकी शपथ ली है और क्या आप समाचारपत्रोंको पत्र लिखते रहे हैं? श्री दोषीसे यह भी कहा गया कि "राजनीतिक आन्दोलनसे गत अप्रैलके जो कुपरिणाम निकल चुके हैं उनके बावजूद आप राजनीतिक हलचल और सत्याग्रह शुरू करना चाहते हैं"। वार्तालापका निम्नलिखित वृत्तान्त दिलचस्प है इसलिए उसे ज्योंका-त्यों —जैसा कि श्री दोषीने लिख भेजा है— दिया जा रहा है:

दोषी —मैं निस्संदेह चाहता हूँ कि राजनैतिक तथा अन्य सब प्रकारकी राष्ट्रीय हलचलें, यहाँ तथा अन्य स्थानोंमें चलती रहें। गड़बड़ी फैलानेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है और न मैं ऐसे कार्योंका समर्थन करता हूँ जिनसे अशांति उत्पन्न हो। मैंने किसीको खतरेमें डालनेका कोई कार्य नहीं किया है।

जि० मजिस्ट्रेट— जब श्री गांधीने सत्याग्रह शुरू किया था तब वे किसीको खतरेमें डालना नहीं चाहते थे, लेकिन आपको मालूम है कि पंजाब तथा अन्य स्थानोंमें क्या हुआ; आप उसी चीजकी यहाँ पुनरावृत्ति करना चाहते हैं।

दोषी —मेरे खयालसे "पंजाब" की अशांतिपूर्ण घटनाएँ महात्मा गांधीके किसी कार्यके कारण नहीं बल्कि वहाँके अफसरों द्वारा एक अजीब-सा रुख अख्तियार करनेके कारण घटी थीं। फिर भी मैं कोई ऐसा कार्य नहीं करता जिससे

चाहिए कि कहीं ऐसा न हो कि आपका भी वही हाल हो जो उनका हुआ है।

दोषी — मुझे अपने दोस्तोंकी यथाशक्ति सहायता करनेकी कोशिश करनी चाहिए। शेष बातोंकी मुझे परवाह नहीं।

जि० मजिस्ट्रेट — जब सम्पूर्ण नगरमें शांति है उस समय आप गड़बड़ मचाते हैं। यदि कोई बात हुई तो मैं आपको ही जिम्मेदार ठहराऊँगा।

दोषी — मैं गड़बड़ी मचानेका प्रयत्न नहीं करता। कराचीमें कभी कोई गड़बड़ी नहीं हुई और न होनेकी सम्भावना ही है। मैं नहीं समझता कि जिम्मेदारी मेरी क्यों मानी जायगी।

जि० मजिस्ट्रेट — आप दूसरे राज्यकी प्रजा हैं, सम्राट्की सरकार और उसके कानूनोंके द्वारा आप यहाँ रक्षित हैं, इसलिए आपको इसके कानून मानने ही होंगे वरना आपको यहाँसे चले जाना होगा।

दोषी — हमें आप दूसरे राज्यकी प्रजा कैसे कहते हैं? और हमारे साथ विदेशियों जैसा बरताव क्यों करते हैं? क्या हमारी रियासत भारतके अन्दर नहीं है?

जि० मजिस्ट्रेट — मैं इस प्रश्नपर आपके साथ बहस करना नहीं चाहता, कानून ऐसा ही है और कानून कानून है। मैं यहाँपर उसकी व्याख्या करनेको नहीं हूँ, मैं केवल यही चाहता हूँ कि आप ऐसे कार्योंमें भाग लेना बन्द कर दें।

दोषी — क्या मैं जान सकता हूँ कि आपका मतलब किन कार्योंसे है? क्या आप जो-कुछ कहते हैं उसमें सत्याग्रह तथा सामान्य राष्ट्रीय राजनीतिक कार्य भी शामिल हैं?

जि० मजिस्ट्रेट — आपको राजनीतिक आन्दोलनोंमें भाग नहीं लेना चाहिए। निश्चय ही आपको सत्याग्रह या कानूनका उल्लंघन और इसी प्रकारके अन्य कामोंमें भी भाग नहीं लेना चाहिए।

दोषी — मैं नहीं समझता कि सत्याग्रह कोई अपराध है या गैर-कानूनी है। वह हानिकर नहीं है।

जि० मजिस्ट्रेट — मैं इस मामलेपर आपसे बहस करना नहीं चाहता। मैं तो महज आपको पत्रोंमें लेख लिखने तथा ऐसे ही अन्य कार्योंसे, जैसे निर्वासितोंकी सहायता करना आदिसे, हाथ खींच लेनेकी बात चेतावनीके रूपमें कह रहा हूँ। मैं आपको सावधान करता हूँ कि यदि आप ब्रिटिश भारतमें, जहाँ आपको सरकार और कानून द्वारा प्रश्रय मिल रहा है, कानून-भंगकी गरजसे उग्र राजनीतिक आन्दोलन चलाते रहनेकी कोशिशें जारी रखेंगे तो मुझे आपके खिलाफ कार्रवाई करनेको लिखना ही पड़ेगा।

दोषी — मैंने उग्र राजनैतिक आन्दोलन छेड़नेकी कोशिश कभी नहीं की है और न कभी ऐसा करूँगा ही, लेकिन मैं किसी हालतमें भी भारतके

राष्ट्रीय कल्याणसे सम्बन्धित गति-विधियोंको नहीं त्याग सकता, क्योंकि मैं मानता हूँ कि मेरी अपनी तथा मेरी रियासतकी भलाई मेरे देश — भारतकी भलाईमें सन्निहित है।

श्री दोषीके लेखसे लिये गये उपर्युक्त उद्धरण पढ़नेसे दुःख होता है। उससे प्रकट होता है कि राजनैतिक आन्दोलन चलानेमें कैसी कठिनाई उपस्थित हुआ करती है। किसी भी दिन जिला मजिस्ट्रेट जो-कुछ कहे उसे कर सकता है। श्री दोषीको ब्रिटिश भारतसे निष्कासित कर सकता है और इस प्रकार उनके भविष्यको बरबाद कर सकता है जैसा कि श्री मणिलाल व्यास तथा औरोंके साथ हो चुका है।

इस प्रकारके नोटिसों तथा वार्तालापके औचित्यके आम सवालके अलावा देशी रियासतोंकी प्रजाकी हैसियतका सवाल बहुत बड़ा महत्त्व रखता है। यदि कोई कानून लोगोंको छोटे हलकोंमें बिना किसी मुकदमे या सुनवाईके एकदम हवालातमें डालना सम्भव बनाता है तो अवश्य ही उस कानूनको बदल देना चाहिए। यह स्पष्ट है कि ऐसी नजरबन्दीकी अपेक्षा जिसमें भरण-पोषणका कोई प्रबन्ध न हो, कारावास बेहतर है। सरकार देशी रियासतोंकी प्रजाको ऊँचे पदोंपर नियुक्त करती है और दूसरी ओर छोटे अफसरोंको उनके साथ विदेशियों जैसा व्यवहार करनेकी छूट देती है। सर प्रभा-शंकर पट्टणी श्री मॉण्टेग्युके आदरणीय सहयोगी बन सकते हैं। माननीय श्री लल्लूभाई सामलदास एक विश्वसनीय परिषद्-सदस्य हैं। सरकार देशी रियासतोंकी प्रजा द्वारा की गई वित्तीय तथा अन्य प्रकारकी सहायताका स्वागत करती है और उनपर उपाधियोंकी वर्षा करती है। वे "राजभक्त" कहे जाते हैं। विदेशियोंकी राजभक्तिका क्या अर्थ हो सकता है? क्या विदेशियोंसे उस राज्यके प्रति राजभक्त होनेकी आशा की जा सकती है जिसके वे निवासी नहीं हैं? क्या अधिराज्य अपने अधीन मित्र राज्योंके लोगोंसे सब-कुछ ले सकता है और बदलेमें कुछ भी नहीं देगा? सिन्धमें जो नीति लागू की गई है वह आत्मघातिनी नीति है। आशा करनी चाहिए परमश्रेष्ठ वाइसरायकी सरकार इस नीतिका प्रारम्भमें ही अन्त कर देगी और वह पनपने न पायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-१०-१९१९

११९. तार: बम्बईके गवर्नरके निजी सचिवको

लैबर्नम रोड
[बम्बई
अक्तूबर १, १९१९][१]

महामहिमके निजी सचिव
पूना

अप्रैलके उपद्रवोंके सम्बन्धमें अहमदाबादसे आठ लाख रुपये वसूल करनेका आदेश जिसमें से एक लाख पचहत्तर हजार[२] मिल-मजदूरोंसे। यह रकम मिल-मालिकोंके मारफत वसूल करानेका आदेश। पिछले महीनेकी २९ तारीखतक इतनी रकम जमानतकी रकममें से जिला मजिस्ट्रेटके पास जमा करानी थी। सुना है मिल-मालिक वेतन दिवसपर मजदूरोंके वेतनसे पैसे काटकर अपनी जिम्मेदारीसे बरी होना चाहते हैं। यह महीना हिन्दू मुसलमान दोनोंके त्योहारोंका पड़ेगा। यद्यपि इसे जानबूझकर नहीं चुना है, फिर भी मजदूर समझेंगे कि इसे उनकी भावनाओंको चोट पहुँचानेके लिए ही चुना गया है। इसके अलावा मेरी नम्र सम्मतिमें मजदूरोंसे बिना कहे-सुने एकाएक उनसे रकम वसूल करानेका उनके मनपर बुरा प्रभाव पड़ेगा। जबरदस्ती वसूल करनेकी कोशिशसे पहले सीधे वसूल करके देखना चाहिए। कलक्टरको भी यही सुझाया, लेकिन उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। सादर निवेदन कि महामहिम कमसे-कम हिन्दुओंके नव वर्षतक के लिए वसूली मुल्तवी करवा दें। मजदूरोंसे वसूलीके खिलाफ और खासकर जितनी रकम और जिस तरीकेसे वसूल करनी है उसके खिलाफ अपनी दलीलें देते हुए पत्र लिखनेका भी मेरा इरादा है।

गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९०६) की फोटो-नकलसे।

१. अक्तूबर ४, १९१९ को एन० पी० कॉवीको लिखे गांधीजीके पत्रके अनुसार उन्होंने बुधवार यानी १ अक्तूबरको यह तार भेजा था।

२. यहाँ छिहत्तर हजार होना चाहिए। देखिए "मजदूरोंपर जुर्माने", ४–१०–१९१९।

१२०. भाषण: बम्बईके अभिनन्दन-समारोहमें[1]

अक्तूबर १, १९१९

सभाकी कार्यवाही प्रारम्भ करते हुए श्री गांधीने कहा कि जिस व्यक्तिने जीवनका अधिकांश भाग जनताकी सेवामें लगा दिया हो उसकी वर्षगाँठके अवसरपर आयोजित जलसेमें सम्मिलित होनेमें मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। इस उत्सवके मनानेमें हमारा गर्व करना उचित ही है। मेरी श्रीमती बेसेंटसे प्रथम मुलाकात इंग्लैंडमें १८८९ में हुई थी। उनसे मेरा परिचय इंग्लैंडके ब्लैवट्स्की लॉजमें कराया गया था। मैंने उन्हें भिन्न-भिन्न प्रश्नोंके उत्तर देते हुए तथा अपना नास्तिकवाद त्यागने और ब्रह्मविद्या अपनानेके कारण समझाते हुए देखा था। समस्त आरोपोंका उत्तर दे चुकनेके बाद उन्होंने कहा था कि मुझे सन्तोष तभी होगा जब मेरी मृत्युके पश्चात् कहा जायेगा कि मैं सत्यके लिए जीवित रही तथा सत्यके हेतु ही मरी। जब मैं दक्षिण आफ्रिका गया तब मैं अनेक थियोसॉफी मतावलम्बियोंके सम्पर्कमें आया, और उन्हींसे मुझे श्रीमती बेसेंटके कार्यके विषयमें जानकारी प्राप्त हुई थी तथा उनसे वह जानकारी भी सुलभ हुई जो श्रीमती बेसेंट द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंमें नहीं थी। इन सब बातोंसे मुझे विश्वास हो गया कि श्रीमती बेसेंट प्रशंसा और निन्दाकी चिन्ता न करते हुए आत्म-विश्वासके अनुसार अपना काम किया करती हैं।

सत्याग्रह-आन्दोलनकी चर्चा करते हुए श्री गांधीने श्रोताओंको बताया कि किस प्रकार श्रीमती बेसेंट अपने विश्वासोंपर दृढ़ रहीं, इसी कारण उन्हें यकीन हो गया था कि सत्याग्रहमें कुछ अपनी त्रुटियाँ हैं तथा आम जनता उसके महत्त्वको पूरा-पूरा नहीं पहचान सकती है। यह एक दूसरा उदाहरण है जिससे प्रकट होता है कि वे अपनी अन्तरात्मामें बैठी हुई बातोंकी परवाह अधिक करती हैं। उन्होंने इस बातकी चिन्ता कभी नहीं की कि जनता उनके विश्वासोंको पसन्द करती है या नहीं।

तदुपरान्त श्री गांधीने उनके कार्यकी चर्चा करते हुए कहा कि मैंने श्रीमती बेसेंटको कभी अवकाशमें समय बिताते नहीं पाया बल्कि उन्हें सदैव जनताकी भलाईके लिए परिश्रम करते ही देखा है—यहाँतक कि रेलमें सफर करते समय भी। यद्यपि आज वे ७३ वर्षकी हैं तथापि उनको इतनी बड़ी उम्रमें ऐसे उत्साह और इतनी ईमानदारीसे काम करते हुए देखकर मुझे खुशी होती है—जैसा हम और आपमें कोई नहीं कर सकता है। मेरी रायमें श्रीमती बेसेंटने भारतकी जो अपार

१. श्रीमती एनी बेसेंटकी ७३ वीं वर्षगाँठ मनानेके लिए एक्सेल्सियर थियेटरमें हुई इस सार्वजनिक सभाकी अध्यक्षता गांधीजीने की थी। इसकी रिपोर्ट अक्तूबर ४, १९११ के न्यू इंडियामें छपी थी।

सेवा की है वह बड़ी मूल्यवान है। उन्होंने अपना समस्त जीवन तथा अपना सब-कुछ भारतके कल्याणके लिए अर्पण कर दिया है।

श्रीमती बेसेंटके साथ अपने मौजूदा राजनीतिक मतभेदोंका जिक्र करते हुए श्री गांधीने कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि वे लोग भी जो उनसे मतभेद रखते हैं, इस बातको प्रमाणित करनेमें गर्व अनुभव करते हैं कि श्रीमती बेसेंट इंग्लैंडमें भारतकी बड़ी सेवा कर रही हैं। भारतीयोंके पक्षका समर्थन करनेके परिणामस्वरूप श्रीमती बेसेंट-को दोनों ही प्रकारकी — शारीरिक और मानसिक वेदना सहनी पड़ी थी। यूरोपीय लोग उनसे मिलना-जुलना नापसन्द करते थे। लेकिन मेरे खयालसे श्रीमती बेसेंट द्वारा की गई महानतम सेवा होमरूल आन्दोलनका श्रीगणेश है, जो भारतमें उनके द्वारा की गई सेवाओंका मूर्त स्मारक है। यह केवल उन्हींकी सूझ-बूझ थी जिसके फलस्वरूप यह आन्दोलन खड़ा हुआ और अब वह भारतके कोने-कोनेमें फैल गया है, यहाँतक कि जिस किसी गाँवमें भी मैं गया मैंने देखा कि लोगोंने भारतके लिए होमरूल प्राप्त करनेकी आवश्यकताको [पूर्णरूपसे] समझ लिया है।

अन्तमें श्री गांधीने कहा कि श्रीमती बेसेंटने होमरूलके मन्त्रको भारतीयोंके हृदय-पटलपर अंकित कर दिया है। भगवान्‌से मेरी यही हार्दिक प्रार्थना है कि वे भारतकी भलाईके लिए दीर्घजीवी हों और अपने जीवन-कालमें भारतको होमरूल दिलानेमें समर्थ हों जिससे भारतमें चारों ओर सन्तोषका साम्राज्य हो तथा फिरसे भारत अपना प्राचीन गौरव प्राप्त कर सके।

श्री बेसेंटके कार्यकी दो और वक्ताओं द्वारा प्रशंसा की जानेके बाद गांधीजीने श्रोताओंसे श्रीमती बेसेंटके पास उचित सन्देश भेजनेकी अनुमति माँगी और वह उन्हें मिल गई।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २–१०–१९१९

१२१. सन्देश : एनी बेसेंटके जन्म-दिवसपर[1]

बम्बई
अक्तूबर १, १९१९

श्रीमती बेसेंटकी वर्षगाँठके अवसरपर जो अनेक प्रशंसात्मक लेख 'न्यू इंडिया' के सम्पादकको भेजे जायेंगे उनमें मेरा भी एक लेख हो, इस अनुरोधके उत्तरमें मैं प्रसन्नता-पूर्वक अपनी विनम्र श्रद्धांजलि भेज रहा हूँ। १८८९ में पहली बार मैं श्रीमती बेसेंटसे भेंट करने गया था। उन दिनों मैं नवयुवक ही था और लन्दनमें विद्योपार्जन कर रहा था। अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेका यह सुयोग मुझे अपने दो अंग्रेज मित्रोंके सौजन्यसे प्राप्त

१. सम्भवतः यह वही सन्देश है जिसका उल्लेख गांधीजीने श्रीमती बेसेंटके ७३ वें जन्म-दिवसपर दिये गये अपने भाषणमें किया था। देखिए पिछला शीर्षक।

हुआ था जो उन दिनों थियोसॉफीका बड़े उत्साहसे अध्ययन कर रहे थे। एनी बेसेंट कुछ दिन पूर्व ही थियोसॉफिकल सोसाइटीमें शामिल हुई थीं। उस समय मेरे मनपर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। वास्तवमें मैं प्रभावित होनेके खयालसे नहीं, केवल कौतूहलवश गया था कि देखूँ जो महिला पहले कभी नास्तिक थी, कैसी दिखती है। मेरे मित्रोंने मुझसे कह रखा था कि आज संसारकी महिला वक्ताओंमें वे सबसे श्रेष्ठ हैं और मैंने यह भी सुन रखा था कि मैडम ब्लैवट्स्कीको श्रीमती बेसेंटके उनकी संस्थामें शामिल होनेकी बड़ी खुशी है। परन्तु फिर कुछ ही देर बाद मैं क्वीन्स हॉल गया, उस समय मेरा उद्देश्य उनको देखना नहीं बल्कि उनका व्याख्यान सुनना था। अपने बारेमें असंबद्धताके आरोपका उत्तर देते-समय उन्होंने जो भाव व्यक्त किये थे वे मुझे कभी विस्मृत नहीं हुए। अपना शानदार भाषण, जिसे जनताने मन्त्रमुग्ध होकर सुना था, समाप्त करते हुए उन्होंने अन्तमें कहा कि यदि मेरी कब्रपर केवल इतना ही लिख दिया जाये कि यह महिला सत्यके लिए जीवित रही और सत्यके लिए मरी तो मुझे पूर्ण संतोष हो जायेगा। मेरे मनमें अपने बाल्यकालसे ही सत्यके लिए स्वभावगत आकर्षण रहा है। जिस नितान्त हार्दिकताके साथ उन्होंने ये शब्द कहे थे, मुझे प्रतीत हुआ कि उस हार्दिकता-ने मेरे चित्तको हर लिया और उसी दिनसे मैं उनकी गति-विधियोंको दिलचस्पीके साथ देखता रहा हूँ। और उनकी असीम कार्यशक्ति, उनकी महान् संगठन-क्षमता और हाथमें लिए गये कामके प्रति उनकी लगनके लिए मेरे मनमें सदैव प्रशंसा भाव रहा है। कामके तरीकेके बारेमें उनके साथ मेरा तीव्र मतभेद जरूर है। और कभी-कभी मुझे इस बातपर सन्ताप भी हुआ है कि उन्होंने अपनी १८८८ की बलवती स्वतन्त्र प्रकृति और सत्यकी साहसपूर्ण खोज तथा सत्यका हर मूल्यपर अनुसरण आदि गुण खो दिये हैं। परन्तु अपनी इन सब शंकाओंके रहते हुए भी मैं अपने इस विश्वाससे कभी नहीं डिगा कि उनमें भारतके प्रति अगाध प्रेम है। भारतको ऐसी महिलाका मिल जाना जिसने अपनी समस्त प्रतिभा भारतको सच्चे दिलसे अर्पित कर दी हो —— जिसका दावा भारतमें जन्मे बहुत ही कम पुरुष और स्त्रियाँ कर सकती हैं —— कोई कम लाभ नहीं है। मेरे मनमें इस बातके बारेमें जरा भी सन्देह नहीं है कि होमरूलको उन्होंने जितना लोकप्रिय बना दिया है उतना अन्य किसी व्यक्तिने नहीं बनाया। ईश्वर करे वे दीर्घजीवी हों और जिस देशको उन्होंने अपना देश बना लिया है उसकी सेवामें रत रहें।

गांधीजी द्वारा संशोधित हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९०३) की फोटो-नकलसे।

१२२. भाषण : बधाई-सभामें[1]

बम्बई

अक्तूबर २, १९१९

भेंटमें दी गई थैलीको स्वीकार करते हुए गांधीजीने कहा कि आप लोगोंने मेरे जन्मदिवसपर जो-कुछ किया है उसके लिए मैं आप लोगोंका कृतज्ञ हूँ। मैं इस रकमको बहुत सोच-विचारकर भारतीय स्त्री-समाजकी दशा सुधारनेसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी काममें खर्च करूँगा। आप लोगोंसे भी अपने-अपने सुझाव देनेको कहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन रिव्यू, अक्तूबर १९१९

१२३. तार : वाइसरायके निजी सचिवको

[अक्तूबर २, १९१९]

उपद्रवोंकी होनेवाली जाँचको ध्यानमें रखते हुए मैंने अहमदाबादसे आपको लिखा[2] था जिसमें मेरे नाम जारी नजरबन्दी तथा निष्कासनके हुक्म रद करनेकी प्रार्थना की गई थी। अभी-अभी ज्ञात हुआ है कि समिति जाँच-कार्य इस मासके अन्तमें प्रारम्भ करनेवाली है। इसलिए अविलम्ब तार द्वारा उत्तर[3] देनेकी कृपा करें।

गांधी

अहमदाबाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे गवर्नमेंट रेकॉर्ड्स।

१. गांधीजीकी ५० वीं वर्षगाँठ मनानेके लिए भगिनी समाज द्वारा एक सार्वजनिक सभाका आयोजन किया गया था। इस सभामें गांधीजीको एक थैली भेंट की गई थी।

२. देखिए "पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको", सितम्बर ३०, १९१९।

३. उत्तरमें मैफीने अपने ३ अक्तूबरके तारमें लिखा था: "वे हुक्म जिनका आपने उल्लेख किया है १५ अक्तूबरको रद कर दिये जायेंगे। लॉर्ड हंटर १ अक्तूबरको लन्दनसे रवाना नहीं हुए पर आशा है वे कल जहाज द्वारा चल दिये होंगे।" आदेश वापस लिए जानेकी सूचना गांधीजीको १६ अक्तूबरको दी गई; देखिए "पत्र : अखबारोंको", अक्तूबर १७–१०–१९१९।

१२४. तार : स्वामी श्रद्धानन्दजीको[1]

अक्तूबर २, १९१९

स्वामी श्रद्धानन्दजी,
'प्रकाश' कार्यालय,

लाहौर

कृपया मेरे अहमदाबादके पतेपर तार द्वारा सूचित कीजिए कि उपद्रव जाँच-समितिके सामने बयान दिलानेके लिए क्या किया जा रहा है। मेरा सुझाव है कि केन्द्रीय मण्डल केवल गवाहोंके बयान एकत्रित करके उन्हें समितिके सामने पेश करे। उपयुक्त वकील कर लिया जाये। मैं पंजाबमें प्रवेशानुमति पानेकी कोशिश कर रहा हूँ।

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९१७) की फोटो-नकलसे।

१२५. तार : वाइसरायके निजी सचिवको

अक्तूबर ३, १९१९

नि० स० वा०
शिमला

'टाइम्स ऑफ इंडिया' में इस अफवाहकी खबर प्रकाशित हुई है कि सरसरी तौरपर जाँच करके निबटाये गये मुकदमोंपर न्याय-मूर्ति चिनीज और रऊफ पुनर्विचार करेंगे। नम्र निवेदन है कि इस कामके लिए इन लोगोंकी नियुक्तिसे बड़ी निराशा होगी। अत्यन्त आवश्यक कि सिद्ध स्वतन्त्र वृत्तिवाले प्रसिद्ध न्यायाधीशों या वकीलोंको ही नियुक्त किया जाये और उनसे समरी अदालतोंके निर्णयोंपर ही नहीं बल्कि आयोगोंके निर्णयोंपर भी पुनर्विचार करनेको कहा जाये।

गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९२०) की फोटो-नकलसे।

१. इसी प्रकारका एक तार सी० एफ० एन्ड्रयूजको **ट्रिब्यून** कार्यालय, लाहौरके पतेपर भेजा गया था।

१२६. मजदूरोंपर जुर्माने

सरकारके निश्चयके अनुसार अहमदाबादको अप्रैलके दंगोंके सिलसिलेमें लगभग नौ लाख रुपये बतौर जुर्मानेके देने होंगे। यह जुर्माना ब्रिटिश पुलिस अधिनियमके[1] उसी खण्डके अन्तर्गत लगाया गया है जिस खण्डके अन्तर्गत नडियादमें लगाया गया है। कोई ऐसा कानून जो किसी सरकारको मनमाना जुर्माना थोपनेकी अनुमति देता है, खराब कानून है। ऐसे सभी कानून जो सरकारको कानूनके अंकुशसे मुक्त कर देते हैं और जिनकी बदौलत सरकार प्रजाकी सलाह लिये बिना या किसी वैधरूपसे निर्मित न्याया-धिकरणकी अनुमतिके बिना प्रजाके प्रति मनचाही कर गुजरती है, खराब हैं। जहाँ प्रबुद्ध और उदार सरकारें हैं अथवा जहाँ जनता अपनी स्वतन्त्रताके विषयमें जागरूक है वहाँ ऐसे कानूनोंको सहन नहीं किया जाना चाहिए। परन्तु यहाँ मैं कानूनके दोषोंपर विचार प्रकट करना नहीं चाहता। इस अवसरपर मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि मैं उस खराब कानूनके असामयिक, विवेकहीन और लगभग तानाशाही ढंगसे प्रयुक्त किये जानेकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित करूँ। यह सिद्धान्त निर्विवाद है कि जनताकी भीड़ने जानोमालको जो भारी क्षति पहुँचाई है उसका हर्जाना भी वही अदा करे। परन्तु उस सिद्धान्तको स्वीकार करनेका यह अर्थ नहीं है और न हो सकता है कि तानाशाही शासनप्रणालीको स्वीकार किया जाये। अहमदाबादके मिल-मजदूरोंके मामलेमें १,७६,००० रुपयेका जुर्माना तय किया गया है। यह जुर्माना सितम्बर १९१९ में नगरपालिकाकी सीमाके अन्दर मिलोंमें काम करनेवाले सभी मजदूरोंसे वसूल किया जायेगा। जरा गौर कीजिए कि दंगे गत अप्रैलमें हुए थे। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि मिलोंमें अब सब मजदूर वही नहीं हैं जो पहले थे। और नये मजदूरोंकी भरती होती ही रहती है। उन मजदूरोंको जिन्होंने दंगोंके बाद मिलोंमें काम करना शुरू किया है और जिनका उन दंगोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, जुर्माना देनेको विवश क्यों किया जाता है? मिलोंमें काम करनेवाली स्त्रियाँ और बच्चे — जिनकी संख्या काफी बड़ी है — जुर्माना क्यों अदा करें? सम्भवत: मिलोंमें ६० हजार मजदूर काम करते हैं। क्या उनपर लगभग २ लाख रुपयेका जुर्माना करना मुनासिब है?

जुर्मानेकी रकम वसूल करनेका तरीका और इसका जो वक्त चुना गया है वह और भी ज्यादा कष्टप्रद है। यह हुक्म २६ सितम्बर, १९१९ को जारी किया गया था। उसी दिन निम्नलिखित पत्र मिल मालिकोंके नाम भेजा गया था:

> अहमदाबादके कलक्टर चाहते हैं कि . . . मिलके एजेंट लोग सोमवार २९ सितम्बर, १९१९ को दिनके ३ बजेसे पहले मजदूरोंके नामसे जमानतकी रकमके

१. सन् १९१५ के अधिनियम ३ द्वारा संशोधित सन् १८९० का बम्बई जिला पुलिस अधिनियम ४।

खातेमें पड़ी रकममें से उतनी निकालकर अहमदाबादके हुजूर डिप्टी कलक्टरके पास जमा करवा दें जितनी सितम्बर मासमें नौकर रखे गये मजदूरोंकी एक सप्ताहकी मजदूरी होती है।

कानूनमें इस बातकी सम्भावना रखी गई है कि जिन लोगोंको इस प्रकारके हुक्मोंसे क्षति पहुँची है वे उन हुक्मोंके खिलाफ सरकारके यहाँ अपील दायर कर सकते हैं। यह हुक्म मिलोंमें काम करनेवाले मजदूरोंपर जारी नहीं किया गया है। उन्हें अपील दायर करनेका मौका नहीं दिया गया है और न जुर्माने खुद अदा करनेका अधिकार ही दिया गया है। जमानतकी रकम — वह रकम जिसे मजदूरोंके कमाये हुए धनमें से काटकर मिल-मालिक अपने पास रखे रहता है — सम्बन्धित मजदूरोंको सूचित किये बिना अथवा उनकी सहमति लिए बिना सीधे जुर्मानेकी पूर्तिमें वसूल कर ली गई है। मजदूरोंके साथ इस प्रकारका बरताव करनेसे उनका अपमान होता है, वे अनावश्यक रूपसे क्षुब्ध होते हैं और उन्हें असहाय अवस्थामें रहना पड़ता है। उनके साथ इस प्रकारके व्यवहारसे प्रकट होता है कि उन्हें जिम्मेदार मनुष्य नहीं माना जाता।

यह तो उसी प्रकार हुआ जैसे किसीके मवेशी अगर किसीकी जमीनमें घुस जायें तो उनसे नहीं पूछा जाता और मालिकोंसे जुर्मानेकी रकम वसूल कर ली जाती है। अन्तर इतना ही है कि मजदूर लोग मवेशियोंकी भाँति मूक नहीं होते और मवेशियोंकी तरह जुर्मानोंका बोझ मालिकोंपर न पड़कर अन्ततोगत्वा उन्हींके कंधोंपर आ पड़ता है। आश्चर्यकी बात है कि मिल-मालिक सरासर गलत ढंगकी इस कार्रवाईमें खुशीसे भाग लें — मुझे मालूम हुआ है कि वे ऐसा कर रहे हैं।

जो जानकारी मुझे प्राप्त हुई है उससे विदित होता है कि उपर्युक्त भुगतानके एवजमें मिल-मालिक अपने मजदूरोंको शीघ्र ही मिलनेवाली मजदूरीमें से उतनी ही रकम काट लेनेका इरादा रखते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यह १ लाख ७६ हजारकी बड़ी रकम ऐसे समयपर वसूल की जानेवाली है जिन दिनों हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंके त्योहार हैं। इस कदमके अनौचित्यपर किसीको भी शंका नहीं हो सकती। इसमें शक नहीं कि त्योहार और वसूलीका समय एक ही हो; यह एक संयोगकी बात है और यह जान-बूझकर नहीं किया है। परन्तु भोला-भाला मजदूर तो यही सोचेगा कि त्योहारका मौका जान-बूझकर उसकी भावनाओंको ठेस पहुँचानेके इरादेसे ही चुना गया है।

अहमदाबादके कलक्टर एक भद्र व्यक्ति हैं। उनके व्यवहारसे जिलेके निवासियोंको पूरा सन्तोष है। जब लोगोंमें जोश उमड़ा हुआ था तब उन्होंने सराहनीय धैर्यसे काम लिया था। वे एक बहुत ही उदारमना व्यक्ति हैं। इसलिए उनके कामोंकी आलोचना करते हुए मुझे विशेष दुःख होता है, और मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि यह अधिकारी राष्ट्रीय जीवनके लगभग प्रत्येक स्थलपर मनमानी कार्यपद्धति सम्भव बनानेवाली शासनप्रणालीका गुलाम न होता तो वह अपने कृत्योंकी अन्यायपूर्णता और विवेकहीनतापर अवश्य दुखी होता। अब यह मामला परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके सामने है, और मैं यह आशा करनेका साहस करता हूँ कि अहमदाबादके मिल-

मजदूरोंके प्रति किये गये अन्यायको दूर किया जायेगा। उनपर किये गये जुर्मानेकी रकम बहुत ही बड़ी है। उसे कम किया जाना चाहिए। स्त्रियों और बालकोंको जुर्मानेसे मुक्त कर देना चाहिए, वसूली छोटी-छोटी रकमोंके रूपमें कई किस्तोंमें की जाये। मजदूरोंकी बहुत बड़ी संख्यासे एक साथ किस्तोंमें जुर्मानेकी रकम उगाहनेमें कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, मैं इसे मानता हूँ। परन्तु यह कठिनाई उस अन्यायकी तुलनामें नगण्य है जो हजारों मनुष्योंपर किया गया है। आतंकित करनेवाला दंड अपराध करनेवालोंसे अपराध छुड़वानेका सबसे अच्छा तरीका हरगिज नहीं है और इस मामलेमें तो दण्ड चुकानेका भार अनेक निर्दोष व्यक्तियोंपर पड़ेगा।

अधिकारी स्थितिकी गम्भीरता समझ गये हैं क्योंकि उन्होंने अहमदाबादके लिए खास पुलिस मँगवा ली है और सरकार मजदूरों द्वारा अशान्ति तथा उद्दण्डता न होने पाये तथा उन्हें पूरी तरह दबानेके लिए असाधारण व्यवस्था कर रही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४–१०–१९१९

१२७. प्रार्थना और उपवास

यद्यपि पंजाब सरकारने जनताके उत्साह और साहसको कुचलनेका भगीरथ प्रयत्न किया है तथापि प्रार्थना, उपवास और हड़ताल आदि विधियाँ अत्यन्त प्राचीनकालसे चली आ रही हैं और उन्हें रोकना असम्भव है। सरकारने फैसलोंके रूपमें जो मोटे-मोटे पोथे प्रकाशित किये हैं उनमें से लिये गये दो उद्धरणोंसे जिनमें मार्शल लॉ आयोगों और समरी अदालतों द्वारा दी गई सजाएँ भी शामिल हैं, प्रकट हो जाता है — यद्यपि अस्पष्ट रूपसे ही — कि पंजाबके लोगोंपर इन विगत चन्द महीनोंमें क्या बीती है। जिन कुछ-एक खास मुकदमोंके कागजात मैंने देखे हैं उन्हें पढ़कर इन सजाओंके न्याय-सम्मत होनेके सम्बन्धमें मेरा विश्वास उठ गया है। कोड़े मारनेसे सम्बन्ध रखनेवाला हुक्म अत्यन्त क्षोभप्रद है और १८ मृत्युदण्ड भी उसी प्रकार सन्तापदायक हैं। यदि यह प्रमाणित हो गया कि ये सजाएँ न्यायसम्मत नहीं हैं तो उनका उत्तरदायित्व किसपर होगा?

परन्तु सजाएँ दी जायें चाहे न दी जायें, लोगोंका उत्साह और साहस अखंड और अजेय है। लखनऊमें आयोजित सम्मेलनने यह घोषणा की है कि आगामी शुक्रवारके दिन अर्थात् १७वीं तारीखको, लोग उपवास रखें और खुदाकी इबादत करें। उस दिनका कार्यक्रम शीघ्र ही व्यवस्थित कर दिया जायेगा। वह दिन 'खिलाफत दिवस' के नामसे प्रसिद्ध होगा। श्री एन्ड्रयूजके पत्रसे साफ तौरपर मालूम हो जाता है कि खिलाफतका मसला क्या है और मुसलमानोंकी माँगें कितनी न्यायपूर्ण हैं। मेरे इस प्रस्तावसे श्री एन्ड्रयूज सहमत हैं कि अगर टर्कीके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया जा सकता तो श्री मॉण्टेग्यु और लॉर्ड चैम्सफोर्ड दोनोंको अपने पदोंसे इस्तीफा दे देना चाहिए। परन्तु त्यागपत्रों और विरोधात्मक प्रस्तावोंकी अपेक्षा प्रार्थना अधिक

बलवती होती है। इसलिए मैं लखनऊ-सम्मेलन द्वारा पास किये गये प्रस्तावका स्वागत करता हूँ। प्रार्थना अन्तरात्माकी उत्कट इच्छाको प्रकट करती है और उपवास प्रभावशालिनी प्रार्थनाके लिए अन्तरात्माको मुक्त कर देता है। मेरी सम्मतिमें राष्ट्रीय उपवास और राष्ट्र द्वारा की जानेवाली ईश्वर-प्रार्थनाके साथ-साथ कारोबार भी बन्द रखना चाहिए। इसलिए मैं निःसंकोच होकर उस दिन कामकाज बन्द रखनेकी सलाह दे रहा हूँ, बशर्ते कि वह शान्तिके साथ और गम्भीरतापूर्वक सम्पादित हो और बशर्ते कि वह पूर्णतः स्वेच्छाप्रेरित हो। जिन लोगोंकी आवश्यकता अनिवार्य कामोंके लिए हो जैसे अस्पतालमें सेवा-शुश्रूषा, स्वच्छता कायम रखना, जहाजोंसे माल उतारना, उनसे काम बन्द करनको न कहना चाहिए। मेरा यह भी सुझाव है कि उस दिन जुलूस न निकाले जायें और सभाएँ न की जायें। लोगोंको घरोंमें बन्द रहना चाहिए और केवल प्रार्थनामें ही दिन गुजारना चाहिए।

यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं है कि हिन्दुओं और अन्य मतावलम्बियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे अपने मुसलमान भाइयोंका साथ दें। हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेका बिलकुल निश्चित और सबसे सरल मार्ग यही है। मित्रकी सहायता करना मित्रता करनेवालोंका अधिकार है और संकटका अवसर वह कसौटी है जिसपर मित्रता कसी जाती है। हिन्दू लोग लाखोंकी संख्यामें मुसलमानोंको दिखा दें कि वे दुःखमें उनके साथ हैं।

मैं सरकारसे आदरपूर्वक अनुरोध करना चाहता हूँ कि वह जनताके हितोंको अपने हित समझे और जनताकी भावनाओंके इस शान्तिपूर्ण प्रदर्शनको प्रोत्साहित करे तथा उसे व्यवस्थित रूप दे। सरकारको चाहिए कि लोगोंको यह न समझने दे कि वह उनके रास्तेमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे रोड़े अटकाना चाहती है।

मैं नई पीढ़ीके लोगोंसे अनुरोध करूँगा कि उपवास और प्रार्थनाको सन्देह अथवा अविश्वासकी दृष्टिसे न देखें। संसारके बड़ेसे-बड़े शिक्षकों और उपदेशकोंने उपवास और प्रार्थना द्वारा मानव-जातिके कल्याणके निमित्त असाधारण शक्तियाँ उपलब्ध की हैं और अपने दृष्टिकोणमें उदारता प्राप्त की है। इस आत्म-निर्णयका बहुत-सा भाग इस कारण व्यर्थ चला जाया करता है कि उपवास और प्रार्थनासे हृदयका नाता न जोड़कर लोग प्रायः उसका उपयोग नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करनेके निमित्त करते हैं। इसलिए मैं इस आन्दोलनसे संबद्ध संस्थाओंको चेतावनी दे रहा हूँ कि वे इस प्रकारकी आत्मघातक चालबाजी कदापि न करें। उन्हें या तो अपनी साधनामें सजीव आस्था रखनी चाहिए या उसका परित्याग कर देना चाहिए। अब हमारे लाखों देशवासी हमारी ओर आकर्षित होने लगे हैं। यदि हम उन्हें जान-बूझकर गलत रास्तेपर ले जायेंगे तो हम उनकी बददुआओंके पात्र बनेंगे। हम सबमें — चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान — धार्मिक भावना मौजूद है। धर्मके साथ खिलवाड़ करके हम उसकी जड़ खोखली न करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४–१०–१९१९

१२८. तार : मद्रासके गवर्नरके निजी सचिवको

[अहमदाबाद
अक्तूबर ४, १९१९]

परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय
मद्रास

श्री एन्ड्रयूजने लिखा है कि गवर्नर महोदय कुमारी फैरिंगको मेरे पास शीघ्र आने देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं। इस समय वे कहीं काम नहीं कर रही हैं और मेरे पास आनेको बहुत इच्छुक हैं। अगर उनके बारेमें पूछताछ की जा रही हो तो क्या उस बीच परमश्रेष्ठ कुमारी फैरिंगको मेरे पास आनेकी अनुमति देनेकी कृपा करेंगे?[1]

गांधी

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९३१) की फोटो-नकलसे।

१२९. तार : एस्थर फैरिंगको

[अहमदाबाद
अक्तूबर ४, १९१९][2]

धीरज रखो। तुम्हारे जल्दी आनेकी व्यवस्था करनेके लिए मद्रासके गवर्नर-को तार दिया है।[3]

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९३२) की फोटो-नकलसे।

१. अपने १५ और २१ तारीखके पत्रोंमें एस्थर फैरिंगने अपनी यह तीव्र इच्छा व्यक्त की थी कि वे जल्दीसे-जल्दी साबरमती आश्रम आना चाहती हैं। २८ तारीखको लिखे अपने पत्रमें उन्होंने गांधीजीसे बम्बई जाकर इस सम्बन्धमें गवर्नरसे बातचीत करनेकी अनुमति माँगी थी।

२. ६ अक्तूबरको मद्रासके गवर्नरके कार्यालयसे गांधीजीको इस तारकी प्राप्ति सूचित करते हुए जो पत्र लिखा गया था, उसमें इस तारीखका उल्लेख है।

३. इसका निम्नलिखित उत्तर प्राप्त हुआ था: "...अगर कुमारी फैरिंग सामान्य तौरपर सरकारसे बम्बई-यात्रा की प्रार्थना करें तो अनुमति देनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।" गांधीजीने इस पत्रकी प्राप्ति सूचित करते हुए २२ अक्तूबर, १९१९ को पत्र लिखा था; देखिए "पत्र: मद्रासके गवर्नरके निजी सचिवको", २२-१०-१९१९।

१३०. पत्र : जी० ई० चैटफील्डको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
अक्तूबर ४, १९१९

प्रिय श्री चैटफील्ड,

'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के सम्बन्धमें जमानत माँगनेके आपके प्रस्तावपर सर्वश्री बैंकर और देसाईसे हुई सारी बातचीत उन्होंने मुझे बताई। मैं जानता हूँ कि आप जो निर्णय देंगे उसमें आपकी कर्त्तव्य-भावनाकी ही प्रेरणा रहेगी। इसके अलावा मुझे आपसे किसी तरहकी खास छूट माँगनेकी कोई इच्छा भी नहीं है। तथापि मैं एक बात आपके सामने अवश्य रखना चाहूँगा। लोगोंका खयाल है, और मैं तो समझता हूँ, सरकार भी ऐसा ही मानती है कि मेरे कामके पीछे सरकारके प्रति शत्रुताका कोई भाव नहीं हुआ करता, और अगर मुझे सरकारके अनेक कार्योंका विरोध करना पड़ता है तो उसका कारण यह है कि मैं जिस बातको गलत मानता हूँ उसमें सुधार करवाना चाहता हूँ। इसलिए जिन पत्रोंकी नीतिका नियंत्रण पूरी तरह मेरे हाथमें है, यदि उनसे कोई जमानत ली गई तो उससे जनतामें विक्षोभ उत्पन्न होगा और उससे सरकारकी प्रतिष्ठाको भी कुछ-न-कुछ आँच आयेगी। यदि मेरे उक्त विचारोंसे आप सहमत हों तो मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि किसी तरहकी जमानत न माँगें और अगर आपको यह आवश्यक ही जान पड़े तो जैसा मैं कह चुका हूँ मुझे इससे कोई गलतफहमी नहीं होगी। उस हालतमें मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि यदि सम्भव हो तो आप इसके कारण जरूर स्पष्ट कर दें। यहाँ इतना और कह दूँ कि अभी हालमें जब 'नवजीवन' से जमानत माँगी गई[1] थी मैंने परमश्रेष्ठको भी एक पत्रमें ऐसा ही कुछ लिखा था और वह बात अबतक विचाराधीन है।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९२५) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-१०-१९१९।

१३१. पत्र : एन० पी० कॉवीको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
अक्तूबर ४, १९१९

प्रिय श्री कॉवी,

पिछले बुधवारको मैंने अहमदाबादके मिल-मजदूरोंसे एक लाख छिहत्तर हजार रुपयेकी वसूलीके सम्बन्धमें आपको एक तार[१] दिया था। तारमें मैंने बताया था कि मैं परमश्रेष्ठके विचारार्थ उक्त तावानकी वसूली और साथ ही जिस वर्गके मजदूरोंसे यह रकम वसूल की जा रही है या इसे वसूल किया जाना है उसपर ऐसा भारी बोझ डालनेके औचित्यके खिलाफ अपनी दलीलें भेजूंगा। ऐसा लगता है कि मजदूरोंको अहमदाबादके अमीरसे-अमीर नागरिकोंके बराबर मान लिया गया है; और इन अमीरों-के पास तो रकम एकत्र करके अदा करनेके लिए कुछ समय है, मजदूरोंसे कहा गया है कि वे १,७६,००० रुपयेकी यह भारी रकम (उनके पास) तुरन्त जमा कर दें। आशा है, यह जवाब नहीं मिलेगा कि मिल-मालिकोंके पास मजदूरोंकी जमानतकी रकम-में से अदायगी पा लेनेपर सरकारका कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है और उसके बाद मिल-मालिक चाहे जिस तरह उसे वसूल करें।

सभी जानते हैं कि मजदूर तो हमेशा आते-जाते रहते हैं। इसलिए जरूरी नहीं है कि जो लोग अप्रैलमें मजदूरीके लिए आते थे वे सितम्बरमें भी आ रहे हों। इस-लिए जिन कुछ मजदूरोंके नाम मिल-मालिकोंके खातोंमें सितम्बर महीनेमें पाये जायें उनसे इस तरहकी वसूली करना कहाँका न्याय है, यह समझमें नहीं आता।

मेरी नम्र सम्मतिमें तो न्याय यह कहता है कि जो तावान वसूल किया जाना हो वह उन मजदूरोंसे किया जाये जिनके नाम दस अप्रैलको विभिन्न मिल-मालिकोंके खातोंमें हों। मेरा यह विचार भी है कि मिलमें काम करनेवाली स्त्रियों और बच्चोंसे उसे वसूल करना भी अन्याय है। अतः मेरा निवेदन है कि एक तो जितनी रकम वसूल की जानी है उसमें कमीकी जाये; दूसरे जिनके नाम १० अप्रैलको मिलोंमें मज-दूरी करनेवालोंकी सूचीमें नहीं हैं उन्हें तथा स्त्रियों और अठारह सालसे कम उम्रके बच्चोंको भी उक्त अदायगीसे बरी कर दिया जाये; और जैसा कि मैंने अपने तारमें निवेदन किया था, वसूली पर्व-त्योहारोंके इस चालू महीनेमें न की जाये; बल्कि इसकी अदायगीके लिए काफी समय भी दिया जाये ताकि मजदूर किसी बड़ी परेशानीके बिना उसे अदा कर सकें।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९२६) फोटो-नकलसे।

१. देखिए "तार: बम्बईके गवर्नरके निजी सचिवको", अक्तूबर १-१०-१९१९।

१३२. पत्र : मगनलाल गांधीको

बुधवार [अक्तूबर ५, १९१९ या उससे पूर्व][१]

चि० मगनलाल,

एक प्रेस खरीदना है इससे चि० छोटालालको तुरन्त भेज दिया गया है। तुम डायमन्ड प्रेसवाले भाई पोपटलालके साथ प्रेस देखने जाना, [उसकी] एक तालिका बनाना। मशीन आदिकी ठीक-ठीक जाँच करना, सब मशीनें चलाकर देखना। देखना कि कहीं टाइप पुराना तो नहीं पड़ गया है। और यदि सब-कुछ ठीक लगे तो सौदा कर लेना। सौदा भाई शंकरलाल बैंकरके नामपर किया जाना है। प्रेसको छः हजार रुपयेमें बेचनेका प्रस्ताव किया गया है। उसमें एक डबल रायल मशीन, दो ट्रेडिल, एक हैन्डकेस और टाइप है। जैसा कि तारसे पता चलता है, गुजराती और अंग्रेजी टाइप इतना है कि 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' दोनों पत्र प्रकाशित किये जा सकते हैं। मैं पत्रके साथ तार[२] नत्थी कर रहा हूँ। कदाचित् मशीनकी जाँच करने यहाँसे विशेषज्ञ भी जायेगा। आये, तो उसे साथ रखना। इस पत्रके प्राप्त होते ही तुरन्त शहर जाना।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७७२) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१३३. आगामी गुजरात राजनीतिक परिषद्

स्वागत समितिने आदरणीय गोकुलदास कान्हदास पारेखको सूरतमें होनेवाले आगामी अधिवेशनमें अध्यक्ष चुना है, इसके लिए हम इन दोनोंको बधाई देते हैं। आदरणीय पारेखने गुजरातकी असाधारण सेवा की है। जिस समय सार्वजनिक सेवा करनेके लिए बहुत ही थोड़े गुजराती तैयार होते थे अथवा जब लोग अपने विचारों-को सरकारके सम्मुख प्रकट करनेमें डरते थे, उस समय आदरणीय पारेख महोदय सरकारसे जूझते और उसके सामने लोकमतको प्रस्तुत किया करते थे। आजकल हमारे यहाँ ऐसी हवा बहने लगी है कि यदि बुजुर्ग, प्रत्येक बातमें युवा और उठती हुई पीढ़ीका साथ न दे सकें अथवा उनसे अपना मतभेद व्यक्त करें तो उन्हें इस नई पीढ़ीके लोग बिल्कुल निकम्मा मान बैठते हैं और उनकी पिछली सेवाओंको भूल

१. **यंग इंडिया** साप्ताहिकका प्रथम अंक अहमदाबादसे ८ अक्तूबरको निकला था। उससे पहलेका बुधवार ५ अक्तूबर, १९१९ को पड़ता है।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

जाते हैं। हम कहना यह चाहते हैं कि बड़ोंको मान देनेकी हमारी प्रथा अमूल्य है और उसका त्याग करना देशके लिए हानिकारक है। हमारा किसी विषयपर किसीके साथ कितना ही मतभेद क्यों न हो, हम इस मतभेदको विनयपूर्वक प्रकट कर सकते हैं, लेकिन [उसके प्रति] अपनी सम्मान-भावनाको जरा भी कम नहीं कर सकते। इसलिए हम स्वागत समितिके इस निर्णयका स्वागत एक अनुकरणीय दृष्टान्तके रूपमें करते हैं तथा आदरणीय पारेख महोदयको गुजरातकी ओरसे उचित मान मिलने और उनके द्वारा की गई सेवाओंकी कद्र की जानेपर हम उन्हें भी बधाई देते हैं।

परिषद्के लिए योजना

हम इस अवसरपर स्वागत समितिको कुछ सुझाव देना चाहते हैं। हमारा अनुभव है कि हम लोग परिषदोंके दौरान कुछ अनावश्यक खर्च कर दिया करते हैं। इस सम्बन्धमें हमें प्रोफेसर पैट्रिक गेडिस[1] द्वारा प्रकट किये गये कुछ अमूल्य उद्गार मिले हैं और हमारा विचार उन्हें फिर-कभी पाठकोंके सम्मुख रखनेका है। हम हमेशा बहुतसे मामलोंमें बिना विचारे पश्चिमका अनुकरण करते हैं और देशको बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। वस्तुतः देखा जाये तो पश्चिमके सम्बन्धमें हमारी जानकारी बहुत कम है। पश्चिम अर्थात् इंग्लैंड, अमरीका, फ्रांस और जर्मनी, ये देश बहुत सम्पन्न हैं, इनके साथ हम कोई मुकाबला नहीं कर सकते। वे जिस तरह खर्च करते है, वैसा करनेमें हिन्दुस्तान किसी तरह भी समर्थ नहीं है। इसलिए हमें भारतकी आबहवा, उसकी आर्थिक स्थिति और उसके रीति-रिवाजोंका विचार करके ही परिषदोंकी योजना बनानी चाहिए। इस दृष्टिसे विचार करनेपर मण्डपों और असंख्य ध्वज-पताकाओंपर हजारों रुपया खर्च करनेकी बात तो हमें कदापि शोभा नहीं दे सकती। जहाँ स्वच्छता और सुचारु व्यवस्था हो वहाँ सहज ही सौन्दर्य आ जाता है। यदि स्वच्छ खुला मैदान हो और उसमें ठीक स्थलोंपर पर्याप्त वृक्ष हों तो इससे अच्छे किसी मण्डपकी कल्पना हम नहीं कर सकते। हम अपनी परिषदोंमें लाखों व्यक्तियोंकी उपस्थितिकी अपेक्षा करते हैं; न करते हों तो करनी चाहिए। लाखों व्यक्तियोंके इकट्ठे होनेकी बात हो तो विलायतमें भी मण्डप नहीं बनाए जाते। प्रमुख और इने-गिने नेताओंके लिए मध्यमें एक मंच बनाकर जन-समाजके लिए उसके आसपास जमीनपर बैठनेकी व्यवस्था कर दी जाती है। [बहुत] लोग थोड़ी-सी जगहमें आ सकते हैं और असंख्य व्यक्ति मंचसे दिये जानेवाले भाषणोंको सुन सकते हैं; ऐसी व्यवस्थापर बहुत कम व्यय होता है। हजारों व्यक्ति लम्बे समयतक रोके नहीं जा सकते इसलिए परिषद्के मुख्य [निर्णय] कार्य समितिमें ही हो जाने चाहिए। वहाँ निश्चित किये गये प्रस्तावों व विचारोंको, कमसे-कम शब्दोंमें, लोग समझ सकें ऐसी सरल और आडम्बररहित भाषामें, प्रकट करना चाहिए। इस प्रकार हम सवेरे सातसे नौ और शामको पाँचसे सात बजेतक इकट्ठे होकर परिषद्का कार्य पूरा करके समितिके लिए ज्यादा समय बचा सकते हैं। यदि ऐसे समय भी धूप लगनेकी आशंका हो तो बत्तियाँ लाकर शामके छः बजेसे नौ

१. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ ३१३।

बजेतक अथवा इससे भी अधिक देरतक बैठकर बहुत आसानीसे परिषद्के कामको निपटा सकते हैं।

परिषद्में प्रदर्शनी

हम एक और सुझाव भी पेश करनेकी अनुमति चाहते हैं। श्री वामनराव मुकादमने[1] परिषद्के अन्तर्गत स्वदेशी-परिषद् भी किये जानेका सुझाव दिया है। इसमें संशोधन करके हम स्वदेशी-प्रदर्शनी किये जानेका सुझाव देते हैं। इस प्रदर्शनीका आयोजन हम अपने अतिरिक्त समयमें सहज ही कर सकते हैं, ऐसी हमारी मान्यता है। अभी कुछ ही दिन पूर्व हमने अमरेलीमें एक प्रदर्शनीका आयोजन किया था और हमें बताया गया कि इसमें न केवल सब-कुछ ठीक हुआ बल्कि हजारों स्त्री-पुरुष बड़े उत्साहके साथ इसे देखनेके लिए आये। हम आशा करते हैं कि स्वागत-मण्डल और सूरतके साहसी नागरिक इन सुझावोंपर अमल करनेका भरसक प्रयत्न करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-१०-१९१९

१३४. जगत्का पिता – २

पिछले अंकमें हम किसानोंकी स्थितिके सम्बन्धमें थोड़ा विचार कर चुके हैं। अब इसपर विचार करना है कि यह स्थिति कैसे सुधर सकती है।

श्री लायनेल कर्टिसने[2], जो लखनऊकी कांग्रेसमें सामने आये, एक स्थानपर भारतके गाँवोंका हूबहू चित्रण किया है। आपका कहना है कि भारतके गाँव घूरेके बने टीलोंपर बसे होते हैं। उनके झोंपड़े टूटे-फूटे और निवासी शक्तिहीन होते हैं। जहाँ-तहाँ मन्दिर दिखाई देते हैं। इन गाँवोंकी सफाई नहीं होती। रास्ते खूब धूल-धूसरित होते हैं। सामान्य तौरपर देखनेसे ऐसा लगता है मानो गाँवकी व्यवस्थाके लिए कोई भी उत्तरदायी न हो।

इस वर्णनमें बहुत अतिशयोक्ति नहीं है; बल्कि कुछ हदतक इसमें और वृद्धि की जा सकती है। सुव्यवस्थित गाँवकी रचना कुछ नियमोंके अनुसार होनी चाहिए। गाँवकी गलियाँ चाहे जैसी होनेके बजाय एक निश्चित नक्शेके अनुरूप होनी चाहिए। और हिन्दुस्तानमें तो, जहाँ करोड़ों व्यक्ति नंगे पाँव चलते हैं, रास्ते इतने साफ होने चाहिए कि उनपर चलने अथवा सोनेमें भी किसीको कोई हिचकिचाहट न हो। गलियाँ पक्की हों और वहाँ पानीकी निकासीके लिए नालियाँ भी हों। मन्दिर और मस्जिद स्वच्छ और हमेशा ऐसे लगने चाहिए मानो अभी बने हों और उनमें जानेवाले व्यक्तिको वहाँ शान्ति एवं पवित्रताका आभास मिलना चाहिए। गाँवमें तथा उसके आसपास

१. राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्त्ता, पंचमहाल जिला, गुजरात।

२. लायनेल कर्टिस; जोहानिसबर्गके टाउन क्लार्क, १९०२-३; ट्रान्सवालमें नागरिक मामलोंके सहायक उपनिवेश सचिव, १९०३-६; सदस्य ट्रान्सवाल विधान परिषद्; देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १०।

उपयोगी वृक्ष और फल-फूलादिके पेड़-पौधे होने चाहिए। उसमें एक धर्मशाला, स्कूल और एक ऐसा छोटा अस्पताल होना चाहिए जिसमें रोगियोंकी तीमारदारी की जा सके। लोगोंके नित्य-कर्मके लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे हवा, पानी और रास्ते आदि गंदे न होने पायें। प्रत्येक गाँवके लोगोंमें अपने अन्न-वस्त्र आदि गाँवमें ही पैदा करने अथवा बनानेकी शक्ति होनी चाहिए। उनमें चोर-लुटेरों तथा व्याधियों आदिके भयसे अपनेको बचानेकी शक्ति होनी चाहिए। एक समय भारतके गाँवोंमें बहुधा ये सब गुण हुआ करते थे। यदि किसी गाँवमें उस समय ये बातें मुहैया नहीं थीं तो सम्भवतया उस समय उनकी उस गाँवमें जरूरत नहीं थी। अस्तु, मैंने ऊपर जो बातें गिनाई हैं गाँवोंमें उनकी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए, इस सम्बन्धमें किसीको शंका नहीं हो सकती। ऐसे गाँव ही आत्म-निर्भर कहलाते हैं; और यदि हमारे सारे गाँव ऐसे हो जायें तो हिन्दुस्तान अन्य दूसरी व्याधियोंसे इतना पीड़ित न रहे।

ऐसी परिस्थिति असम्भव तो है ही नहीं; बल्कि इसे जितना मुश्किल हम मानते हैं, यह उतनी मुश्किल भी नहीं है। यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तानमें साढ़े सात लाख गाँव हैं; इस दृष्टिसे प्रत्येक गाँवकी औसत आबादी ४०० है। ज्यादातर गाँवोंमें तो १००० से भी कमकी आबादी है। मेरी दृढ़ मान्यता है कि कम आबादीवाले ऐसे गाँवोंकी व्यवस्था करना अत्यन्त सहल है। उसके लिए लम्बे-लम्बे भाषणोंकी, विधान सभाकी अथवा कानून गढ़नेकी जरूरत नहीं होती। सिर्फ एक ही बातकी आवश्यकता होती है और वह है अँगुलीपर गिनने लायक शुद्ध भावसे कार्य करनेवाले स्त्री-पुरुषोंकी। वे लोग अपने आचार और सेवाभावसे प्रत्येक गाँवमें आवश्यक परिवर्तन करवा सकते हैं। उन्हें रात-दिन काममें जुटे रहना पड़ेगा, सो बात भी नहीं है। वे अपनी आजीविकासे सम्बन्धित कामको करते हुए भी सेवा-व्रत धारण कर अपने-अपने गाँवोंमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करवा सकते हैं।

ऐसे सेवकोंको बहुत-ज्यादा शिक्षाकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। बिलकुल अक्षरज्ञान न हो तो भी ग्राम-सुधारका काम हो सकता है। इसमें सरकार अथवा रियासतें हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं। और इस काममें उनकी मददकी जरूरत भी कम है। प्रत्येक गाँवके लिए ऐसे पर्याप्त स्वयंसेवक मिल जायें तो जरा भी आडम्बर या कोई बड़ा आन्दोलन किये बिना समस्त हिन्दुस्तानमें काम चल सकता है और बहुत थोड़ेसे प्रयत्नका अकल्पित परिणाम निकल सकता है। इसमें द्रव्यकी भी आवश्यकता नहीं होती, यह बात पाठक सहज ही समझ सकेंगे। जरूरत होती है सिर्फ सदाचार और धर्मवृत्तिकी।

किसानोंकी उन्नतिका यह सहलसे-सहल रास्ता है, यह बात मैं अनुभवसे जानता हूँ। इस तरहके प्रयोगमें किसी भी गाँव अथवा व्यक्तिको किसी दूसरे गाँव अथवा व्यक्तियोंकी बाट जोहनेकी आवश्यकता नहीं रहती। किसी भी गाँवमें कोई भी पुरुष अथवा स्त्री लोक-सेवाका शुद्ध विचार मनमें आते ही उसी क्षण सेवा प्रारम्भ कर सकता है और उसके इस कार्यमें समस्त भारतकी सेवाका समावेश होगा। गाँवोंमें बसनेवाले जिन लोगोंके हाथमें 'नवजीवन' का यह अंक आयेगा, मुझे उम्मीद है कि वे मेरे द्वारा बताये गये सुझावोंके अनुसार प्रयोग करेंगे और थोड़े समयमें ही अपने प्रयोगके परिणामसे

देशको अवगत करा सकेंगे। यह प्रयोग कैसे शुरू किया जा सकता है, इस सम्बन्धमें मैं कुछ अनुभव 'नवजीवन' के आगामी अंकोंमें पाठकोंके सामने पेश करूँगा। लेकिन जो लोग इस बातके महत्त्वको समझ गये हैं, मुझे उम्मीद है कि वे एक सप्ताहकी भी राह देखे बिना अपना कार्य आरम्भ कर देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–१०–१९१९

१३५. टिप्पणियाँ

श्रीमती बेसेंट चिरायु हों

श्रीमती बेसेंटने गत बुधवारको जीवनके ७३ वें वर्षमें प्रवेश किया। यह महान् महिला अभी अनेक वर्षोंतक हमारे बीच इस भूमिपर बनी रहे — हजारों भारतवासियोंने बुधवारको ईश्वरसे ऐसी प्रार्थना की होगी। ७३ वर्षकी आयुमें श्रीमती बेसेंटमें हमें जिस लगन और अध्यवसायके दर्शन होते है वैसी लगन और अध्यवसाय हम लोगोंमें ३३ वर्षकी अवस्थामें भी कदाचित् ही दिखाई पड़ता है। यह निर्विवाद है कि श्रीमती बेसेंटने हिन्दुस्तानकी जो सेवा की है वह इस देशके इतिहासमें सदा स्मरणीय रहेगी। 'होमरूल' शब्दको हिन्दुस्तानने अंगीकार कर लिया — यह इस भली महिलाका ही प्रताप है। स्थान-स्थानपर होमरूल लीगकी जो स्थापना की गई वह भी इसी महिला-की हिम्मतके कारण सम्भव हो सका। हिन्दुस्तानकी राजनैतिक शिक्षामें इन्होंने भारी हिस्सा लिया है। श्रीमती बेसेंट आजकल इंग्लैंडमें भी हिन्दुस्तानको 'होमरूल' प्रदान किये जानेके सम्बन्धमें भारी आन्दोलन कर रही हैं। शक्तिभर अपने समस्त साधनोंका उपयोग श्रीमती बेसेंट 'होमरूल' के निमित्त कर रही है। श्रीमती बेसेंटके विचारों, उनकी कार्यपद्धतिसे भले ही किसीका मतभेद हो, लेकिन हिन्दुस्तानके प्रति उनकी सेवाके सम्बन्धमें किसी मतभेदका होना सम्भव नहीं है। संसार-भरकी स्त्रियोंमें श्रीमती बेसेंट अच्छेसे-अच्छे वक्ताके रूपमें मानी जाती हैं, इतना ही नहीं बहुत कम पुरुष उनकी वक्तृत्व शक्तिकी होड़ कर पायेंगे। उनकी कलममें भी बहुत बल है। बहुत वर्षोंसे यह महिला अपनी समस्त शक्तिका उपयोग हिन्दुस्तानके निमित्त कर रही है। उसके लिए भारत उनका सदैव ऋणी रहेगा। इसलिए "श्रीमती बेसेंट चिरायु हों" यह प्रार्थना सही मानेमें तो हमारे स्वार्थकी द्योतक है।

'नवजीवन' पर घटाएँ

जिस तरह भारतमें धीरे-धीरे नवजीवनका संचार और प्रसार होता है और उसके संचार और प्रसारके मार्गमें अनेक विघ्न-बाधाएँ भी आती हैं, ठीक यही बात 'नवजीवन' पत्रपर भी लागू होती है। 'नवजीवन' को आन्तरिक और बाह्य दोनों तरहकी आपत्तियोंका सामना करना पड़ रहा है। बाह्य विपत्तिमें तो सरकारकी ओरसे किये जानेवाले उपद्रव हैं; और इनसे भयभीत होकर लोग प्रकाशन आदिके सम्बन्धमें

मदद करनेमें हिचकिचाते हैं। पाठक सरकारकी ओरसे किये जानेवाले उपद्रवोंके कुछ तथ्योंसे भली-भाँति परिचित हैं।

सरकारकी ओरसे जब पूछताछ की गई और यह कहा गया कि चूँकि 'नवजीवन' नया पत्र है, इसलिए भारत रक्षा अधिनियमकी रूसे बनाये गये विनियमोंके अनुसार इस पत्रको प्रकाशित करनेके लिए बम्बई सरकारकी ओरसे अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। श्री इन्दुलाल याज्ञिकने सरकार द्वारा किया गया अर्थ ठीक ही होगा यह मानकर 'नवजीवन' प्रकाशित करनेमें भूल हुई है यह स्वीकार कर लिया। इस अवसरपर मैं धोराजीमें था। आश्रम पहुँचकर तथा कानूनको पढ़नेके बाद मुझे लगा कि श्री इन्दुलाल याज्ञिकने भूल स्वीकार करके कुछ भूल की है। सत्याग्रहीके रूपमें उन्हें जो सत्य जान पड़ा उसे उन्होंने निर्मल हृदयसे स्वीकार कर लिया इसलिए इनके द्वारा किया गया यह काम, उनके द्वारा स्वीकार की गई भूल, उन्हें तो गौरवान्वित ही करता है; लेकिन मैंने पाया कि उन्होंने भूलसे भूल स्वीकार की। 'नवजीवन' नया पत्र कहला ही नहीं सकता; मासिक 'नवजीवन' का यह साप्ताहिक रूप है, यह सभी जानते और मानते हैं। मासिक 'नवजीवन' में "अने सत्य" इन पुनरुक्ति-सूचक शब्दोंको निकाल देनेसे ही 'नवजीवन' को नया पत्र नहीं कहा जा सकता। इसपर उनकी सम्मति लेकर मैंने यह विचार किया कि जबतक सरकार किसी निश्चयपर नहीं पहुँचती तबतक 'नवजीवन' को जनताके सामने रखा जाना बन्द नहीं किया जा सकता।

सरकारको श्री इन्दुलाल याज्ञिकका पत्र वापस लिये जानेका तार[1] देनेके बाद मैंने ३६ घंटेतक उसके उत्तरकी राह देखी और अब अंक जनताके सामने पेश कर दिया गया है। किन्तु इससे 'नवजीवन' कठिनाइयोंसे मुक्त नहीं हो जाता। सच पूछा जाये तो आपत्तियोंको तो बुलाया गया है। युद्ध-क्षेत्रमें विपत्तियोंको बुलावा देना ही पड़ता है। लेकिन 'नवजीवन' पर यदि सरकारकी कुटिल दृष्टि पड़ी तो एक गरीब प्रकाशक उसे प्रकाशित करनेकी जोखिम कैसे उठा सकता है। इस कारण 'नवजीवन' का अपना छापाखाना होना चाहिए। इसके लिए श्री शंकरलाल बैंकरने, जिन्होंने इस आर्थिक जोखिमको अपने कन्धोंपर उठाया है, एक छापाखाना खरीदा है। अब इस सम्बन्धमें मजिस्ट्रेटके सामने एक हलफनामा पेश करना होगा और बादमें एक और हलफनामा इस प्रेसमें 'नवजीवन' प्रकाशित करनेके विषयमें भी देना होगा।

हमें उम्मीद है, इन कारणोंसे तथा छपनेवाली प्रतियोंकी बड़ी संख्याकी वजहसे मशीनोंमें खराबी आ जानेके कारण जो देरी हुई है पाठक उसे दरगुजर करके धीरज रखेंगे।

(यह सब लिखे जानेके बाद हमें सरकारकी ओरसे अनुमति मिल गई है, इसके लिए मैं सरकारके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ और पाठकोंको बधाई देता हूँ।)

चरखा

स्वदेशी आन्दोलनकी सफलताका आधार ज्यादातर इस बातपर निर्भर करता है कि हम कपास ओटकर रुई तैयार करनेवाली कोई सादी और जल्दी ओट सकनेवाली

१. यह तार उपलब्ध नहीं है।

चरखी और धुनाईकी क्रिया सहल बनानेवाली कोई पद्धति निकाल सकते हैं या नहीं; और चरखे तथा खड्डियोंमें यथासम्भव सुधार कर पाते हैं या नहीं।

कुछ लोग यह मानते जान पड़ते है कि श्री गांधीके आन्दोलनमें मशीनों अथवा प्राचीन यन्त्रोंमें सुधार किये जानेकी बातके लिए कोई स्थान ही नहीं है। यह भ्रामक धारणा है। उनका विचार यह है कि यन्त्र अथवा यन्त्र सम्बन्धी सुधार ऐसे होने चाहिए जो हमारे देशके लोगोंको ठीक जान पड़ें और वे उन सुधरे हुए यन्त्रोंका उपयोग अपने घरोंमें कर सकें। इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर जितने सुधार हो सकें उतने सुधार करानेकी ओर श्री गांधीका ध्यान सदैव बना रहता है। सारे किसान और कारीगर बड़े-बड़े कारखानोंमें काम नहीं कर सकते। किसान अपने खेत नहीं छोड़ सकते। खेतीके उपरान्त उनके घरोंमें कुछ उद्योग दाखिल किये जा सकें ऐसे साधनों और उपायोंकी खोज करना तथा योजना बनाना प्रत्येक देशभक्तका कर्त्तव्य है।

अतः [इस सम्बन्धमें] श्री रेवाशंकर जगजीवन मेहताने पुरस्कार[1] देनेका जो वचन दिया है हम इस अंकमें उसकी घोषणा करते हैं और उनकी इस भेंटका स्वागत करते हैं। चरखेमें सुधार किया जाना हमारी सबसे पहली जरूरत है। सुधार न हों तो भी सूत तो काता ही जायेगा। फिर भी यह तो स्पष्ट है कि यदि चरखेमें इतना सुधार किया जा सके कि दूना सूत काता जा सके तो आन्दोलन अधिक तेजीसे चले और कातनेवालोंकी कमाई भी बढ़े। वर्तमान चरखेमें सुधार हो सकता है, इस बारेमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। कुछ स्वदेशाभिमानी सज्जन पहलेसे ही इस दिशामें काम कर रहे हैं। गोंडलके एक होशियार कारीगरने पीतलका एक हल्का-फुल्का चरखा बनाया है। उसमें कारीगरका मुख्य उद्देश्य अधिक सूत कातना नहीं है; यह चरखा इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर बनाया गया है कि वह एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ज्यादा आसानीसे ले जाया जा सके और अधिक समयतक टिक भी सके। इस चरखेमें अभी यह कारीगर और भी सुधार कर रहा है।

राजकोटमें एक कारीगर ऐसा चरखा बना रहा है जिसमें एक साथ तीन तकुए चढ़ाये जा सकें और उतने ही समयमें चौगुना सूत निकल सके। भड़ौचमें एक साथ दो तकुए चलाये जानेवाला चरखा बन चुका है। इसलिए इनामी चरखा बनानेमें मुश्किल नहीं आनी चाहिए। हमें आशा है कि हमारे पाठक इस इनामकी खबर कारीगरोंतक पहुँचायेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि [आज] शिक्षित-वर्ग द्वारा कारीगर आदि अशिक्षित-वर्गसे अलहदा होनेके बजाय उनके जीवनमें भाग लेने और अपने प्राप्त ज्ञानसे उन्हें परिचित करानेकी आवश्यकता है। देशमें कारीगरी अथवा शोधशक्तिकी कोई कमी नहीं है, लेकिन प्रोत्साहनके अभावमें देश इस शक्तिका उपयोग नहीं कर पाता। हमें आशा है कि श्री रेवाशंकर मेहताजी द्वारा घोषित इनामको अनेक होशियार कारीगर प्राप्त करनेकी कोशिश करेंगे।

१. दस तकुओंसे युक्त किसी ऐसे छोटे-से चरखेका आविष्कार करनेके लिए ५,००० रुपयेके पुरस्कारकी घोषणा की गई थी, जिसके कल-पुर्जे यथासम्भव भारतीय हों। चरखेका नमूना १ जनवरी, १९२० से पूर्व सत्याग्रह आश्रम पहुँच जाना चाहिए था।

श्मशान-सुधार

श्री छोटालाल तेजपालने हमें तीन-चार पत्र लिखे हैं और वे जो आन्दोलन चला रहे हैं, उससे सम्बन्धित कुछ साहित्य भी भेजा है। वे सब पत्र बहुत लम्बे हैं और सम्बन्धित अन्य अनेक तथ्योंसे इतने भरे हुए हैं कि हम उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकते।[1] इसलिए हम इनके उद्देश्यमात्रको यहाँ प्रस्तुत करनेका विचार रखते हैं, क्योंकि यह उद्देश्य हमें उपयोगी जान पड़ा।

मुर्दोंकी व्यवस्था करनेमें दिन-प्रतिदिन कष्ट बढ़ता चला जा रहा है। गरीबोंको खासतौरसे दिक्कतका सामना करना पड़ता है। अनेक लोगोंको तो मुर्दे उठवाने तककी सुविधा नसीब नहीं होती। देशमें समय-समयपर प्लेग आदिका प्रकोप होता रहता है और उस समय लोगोंकी स्थिति अत्यन्त करुणाजनक हो जाती है। इसके अतिरिक्त जबतक मुर्दे जलते रहें तबतक बैठे रहनेमें समय व्यर्थ ही बरबाद होता है। अनेक बार चिताकी लकड़ियाँ कुछ इस ढंगसे रची जाती हैं कि उनसे मुर्दा पूरी तरहसे ढक नहीं पाता।

इन कारणोंसे कुछ समयसे श्री छोटालाल मुर्दोंको ले जाने तथा जलानेकी क्रियामें सुधार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। हमें लगता है कि इस प्रयत्नको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इनका सुझाव यह है कि मुर्दोंको वाहनमें ले जाया जाये और श्मशानका निर्माण ऐसी शास्त्रीय पद्धतिसे किया जाये जिससे सब मुर्दोंको एक ही भट्टीमें डाला जा सके और वे तेज आगमें पड़कर तुरन्त ही राखमें परिवर्तित हो सकें। ऐसा करनेसे समय और धनकी बचत होती है तथा धार्मिक भावनाको तनिक भी ठेस नहीं पहुँचती। इतना होनेपर भी यह अधिक उचित होगा कि अभी तुरन्त ही मुर्दोंको वाहनमें ले जाने और वैज्ञानिक पद्धतिसे दाह संस्कार किये जानेकी क्रियाको अनिवार्य न बनाकर उसे लोगोंकी मर्जीपर छोड़ दिया जाये। ऐसे विषयोंमें लोक-शिक्षणकी आवश्यकता होती है। अनुचित रिवाजोंको भी धीरे-धीरे ही दूर किया जा सकता है। लोगों द्वारा ज्ञानपूर्वक अथवा श्रद्धापूर्वक लेकिन स्वेच्छासे ग्रहण किये गये परिवर्तनको ही सही अर्थोंमें सुधार कहा जा सकता है। इसलिए जहाँ-कहीं कुछ साहसी लोग हों, धनकी व्यवस्था हो और जहाँ थोड़ेसे लोग भी अग्निदाहकी नवीन पद्धतिको स्वीकार करनेको तैयार हों यदि वहाँ वाहन तथा अग्निदाहका प्रबन्ध किया जाये और वह प्रबन्ध अच्छा भी हो तो यह महत्त्वपूर्ण पद्धति थोड़े ही समयमें लोकप्रिय हो जायेगी और महामारी आदि रोगोंके फैलनेपर गरीब लोग तो इसका सहर्ष स्वागत करेंगे ही।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–१०–१९१९

१. देखिए "पत्र: छोटालाल तेजपालको", १७–९–१९१९।

१३६. तार: खजौलीकी किसान सभाको

[अहमदाबाद
अक्तूबर ५, १९१९]

तारके आधारपर सलाह देना कठिन है। आपको धीरज रखना चाहिए। ब्रजकिशोर बाबूसे परामर्श लें।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखित मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९७१ ए) से।

१३७. पत्र: हैरॉल्ड मैनको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
अक्तूबर ७, १९१९

प्रिय सर हैरॉल्ड मैन,[1]

शायद आपको ज्ञात होगा कि मैं 'नवजीवन' नामक एक गुजराती साप्ताहिक-का सम्पादन कर रहा हूँ। वह अभी केवल पाँच सप्ताहका शिशु है। लेकिन इस कम समयमें ही उसके हजारों पाठक हो गये हैं। किसान मुझे लिखते हैं कि उन्हें अच्छा और सस्ता बीज कहाँ मिल सकता है। क्या आप मुझे बता सकते हैं?

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९३७) की फोटो-नकलसे।

१३८. पत्र: बम्बईके गवर्नरके निजी सचिवको

[अक्तूबर ७, १९१९ के बाद]

प्रिय श्री कॉवी,

आपके ७ अक्तूबर[2] के पत्रके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

स्वदेशीके सम्बन्धमें मैं यह चाहता हूँ कि उत्पादन बढ़ानेके लिए — खासकर स्त्रियोंसे अपने अवकाशका समय हाथ-कताईको और पुरुषोंसे हाथ-बुनाईको देनेके लिए

१. सर हैरॉल्ड हार्ट मैन, सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्रज्ञ, चायके विशेषज्ञ तथा समाज-सेवी। बम्बई प्रान्तके कृषिसंचालक।

२. देखिए "पत्र: गवर्नरके निजी सचिवको", २५-८-१९१९ की पादटिप्पणी १।

कहकर — आज जो काम किया जा रहा है, उसके पक्षमें आप प्रकाशनार्थ प्रोत्साहन-के दो शब्द भेज दें।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६९३६) की फोटो-नकलसे।

१३९. हमसे गलतियाँ हो जाती हैं

जिस समय माननीय सिन्हा दण्डविमुक्ति विधेयक (इंडेम्निटी बिल) पर बोल रहे थे, वे शब्दोंके प्रयोगमें गड़बड़ा गये। सर जॉर्ज लाउण्डेज़ने उन्हें टोका लेकिन परमश्रेष्ठ सभापतिने यह कहकर उनका बचाव किया कि यह जबानकी चूक है। तत्पश्चात् श्री सिन्हाने ये स्पष्ट तथा शालीन शब्द कहे: "आपके लिए यह समझना कठिन है कि इस परिषद्में विदेशी जबान बोलनेमें हमें क्या कठिनाई होती है। हमसे गलतियाँ हो जाती हैं।" बात बिलकुल सही है। हमसे अपनी मातृभाषामें बोलते समय भी गलतियाँ हो जाती हैं। लेकिन वे इतनी हास्यास्पद नहीं होतीं जितनी कि जब हम विदेशी जबानमें बोलनेकी कोशिश करते हैं। प्रोफेसर यदुनाथ सरकारने[1] कहा है कि हमारे अंग्रेजीमें बोलने और सोचनेसे हमारे दिमागपर इतना बोझ पड़ता है कि हम उससे कभी पूरी तौरसे मुक्त ही नहीं हो पाते। इस बुराईका इलाज यही है कि हम स्वराज्यका आरम्भ अपनी विधान-सभाओंमें अपनी भाषाका उपयोग करके कर दें — प्रान्तीय विधान सभाओंमें प्रान्तीय भाषाओंका उपयोग हो तथा शाही परिषद् (इम्पीरियल कौंसिल) में हिन्दी और उर्दूके मिश्रण हिन्दुस्तानीका। इस सिलसिलेमें सबसे अच्छी शुरूआत यह होगी कि हम इस परिवर्तनको कांग्रेसमें तथा अपने अन्य सम्मेलनोंमें अपनायें। इन सभाओंमें अंग्रेजी माध्यमका उपयोग करके हमने उस जनताका निश्चित अहित किया है, जिसे इन वार्षिक समारोहोंके कार्यक्रमके विषयमें बहुत अस्पष्ट जानकारी है। इनकी कार्यवाही अंग्रेजीमें ही करनेकी धुनमें हमने वास्तवमें जनताकी राजनैतिक शिक्षाके मार्गमें रोड़े अटकाए हैं। मैं सोचता हूँ कि अपने ३५ वर्षके जीवनमें राष्ट्रीय कांग्रेसने अंग्रेजीके बजाय, जिसे हमारे देशवासियोंका एक अत्यन्त छोटा वर्ग ही समझता है, यदि अपनी कार्यवाही हिन्दुस्तानीमें ही की होती तो क्यासे-क्या हो गया होता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१०–१९१९

१. प्रसिद्ध इतिहासकार व लेखक।

१४०. ग्राहकों और पाठकोंसे

इस सप्ताहसे 'यंग इंडिया' एक नये दौरमें प्रवेश कर रहा है। श्री हॉर्निमैनके निर्वासन और 'क्रॉनिकल' का गला घोट दिये जानके समयसे यह पत्र अर्ध-साप्ताहिक हो गया था। लेकिन 'क्रॉनिकल' के पुन: प्रकाशनके समयसे ही मैं और सिंडीकेटके सदस्यगण भी इस बातपर विचार कर रहे थे कि इसे फिर साप्ताहिक पत्रका रूप दे देना कहाँतक ठीक होगा। मगर जब 'नवजीवन' को साप्ताहिक रूप देकर उसके सम्पादनका भार मुझे सौंप दिया गया तो उक्त निर्णय करनेमें शीघ्रता करनी पड़ी। एक अर्ध-साप्ताहिक और एक साप्ताहिकका संचालन साथ-साथ करना मेरे लिए बहुत ज्यादा भारी पड़ेगा। इसके अतिरिक्त जितना काम अर्ध-साप्ताहिक 'यंग इंडिया' कर रहा था, लगभग उतना ही साप्ताहिक से भी निकल जायेगा। हमारी कोशिश यही रहेगी कि इसमें अर्ध-साप्ताहिकके बराबर ही सामग्री दी जाये। अब वार्षिक चन्दा ८ रुपयेके बजाय ४ रुपये होगा और एक प्रतिकी कीमत डाक खर्च छोड़कर दो आनेके बदले एक आना होगी। ग्राहकगण चाहें तो इस परिवर्तनके फलस्वरूप, उनका जो अतिरिक्त चन्दा बच रहा है उसे वापस ले सकते हैं या अगले सालके खातेमें जमा भी करा सकते हैं। जिन ग्राहकोंको यह परिवर्तन नापसन्द हो वे चाहें तो अर्जी भेजकर अनुपातत: अपनी बकाया राशि वापस मँगा सकते हैं।

अच्छी व्यवस्थाके खयालसे 'यंग इंडिया' का मुख्य कार्यालय अहमदाबाद ले जाया गया है। इसका एक उद्देश्य मुझे सत्याग्रह आश्रमके लिए अधिक समय सुलभ बनाना भी था, क्योंकि मेरे लगातार अनुपस्थित रहनेके कारण इधर इसकी थोड़ी-बहुत उपेक्षा ही होती रही है। इसके अतिरिक्त दोनों पत्रोंका सम्पादन दो अलग-अलग स्थानोंसे करना हर प्रकारसे अधिक व्यय-साध्य भी था। अब इस निर्णयके कारण मुझे एक सुविधासे वंचित होना पड़ेगा; इधर जो मैं बम्बईके मित्रोंके साथ काफी रहने लगा था, अब वह न हो सकेगा। लेकिन मुझे आशा है, वे इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे, अगर नई व्यवस्थाके परिणामस्वरूप, जैसी कि मैं आशा करता हूँ, देशकी अधिक सेवा हो पाये।

'यंग इंडिया' अभीतक मुख्यत: पंजाबके मामलोंमें ही उलझा रहा है। लेकिन आशा है कि यह दु:खद छाया भविष्यमें हट जायेगी।

तब फिर 'यंग इंडिया' अपने पाठकोंके सामने क्या-कुछ प्रस्तुत करेगा? मैं स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता हूँ कि किसी अंग्रेजी अखबारका सम्पादन करना मेरे लिए कोई बहुत प्रसन्नताकी बात नहीं है। मुझे लगता है कि यह काम करके मैं अपने समयका उत्तम उपयोग नहीं कर रहा हूँ। और अगर मद्रास प्रेसीडेंसीका खयाल न होता तो मैं 'यंग इंडिया' का सम्पादन छोड़ देता। वैसे यह सच है कि मैं सार्वजनिक हितकी बातोंके सम्बन्धमें समय-समयपर सरकारको अपने विचारोंसे अवगत कराना चाहूँगा। लेकिन इस उद्देश्यसे मुझे किसी पत्रके संचालनका भार ढोनेकी जरूरत नहीं।

'नवजीवन' के सम्पादनके अनुभवने तो मेरे लिए सर्वथा नवीन रहस्यका उद्घाटन कर दिया है। जहाँ 'यंग इंडिया' के ग्राहकोंकी संख्या १,२०० से कुछ अधिक है वहाँ 'नवजीवन' के ग्राहकोंकी संख्या १२,००० है। यह संख्या २०,००० तक भी पहुँच सकती है, अगर हमें इतनी प्रतियाँ छापनेके लिए मुद्रक मिल जाये। इससे प्रकट होता है कि देशी भाषाओंके अखबारोंकी कितनी ज्यादा जरूरत महसूस की जाती है। मुझे यह सोचकर गर्वका अनुभव होता है कि किसानों और मजदूरोंके बीच मेरे पत्रके इतने अधिक पाठक हैं। भारत तो वे ही हैं। उनकी गरीबी भारतका अभिशाप और अपराध है। और उन्हींकी समृद्धि भारतको रहने लायक देश बना सकती है। भारतकी आबादी के नब्बे प्रतिशत लोग इस वर्गके हैं। अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ तो भारतकी विशाल आबादीके इस अगाध सागरका एक तट-भर छू पाती हैं।

अतः जहाँ मैं इस बातको अंग्रेजी जाननेवाले हर भारतीयका कर्त्तव्य समझता हूँ कि वह जनसाधारणके लाभके लिए उत्तम अंग्रेजी विचारोंको देशी भाषाओंमें अनूदित करे, वहाँ मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि अभी कुछ सालतक शिक्षित भारतीयोंसे, और विशेषकर मद्रासके लोगोंसे, जो-कुछ कहा जाये अंग्रेजीमें ही कहा जाये। कुछ सालसे मेरा तात्पर्य तबतक से है जबतक हम हिन्दुस्तानीको सुसंस्कृत वर्गोंके लोगोंके विचार-विनिमयके समान माध्यमके रूपमें स्वीकार नहीं कर लेते और हिन्दुस्तानी हमारे स्कूलोंमें द्वितीय भाषाकी तरह अनिवार्य नहीं हो जाती।

लेकिन मैं किसी ऐसे पत्रके सम्पादनमें शरीक नहीं होना चाहता जो अपना खर्च खुद पूरा न कर सके, और 'यंग इंडिया' तबतक अपने पैरोंपर खड़ा नहीं हो सकता जबतक इसके ग्राहकोंकी संख्या कमसे-कम २५,००० नहीं हो जाती। अगर हमारे तमिल भाई 'यंग इंडिया' को प्रकाशित होते देखना चाहते हों तो मैं उनसे ऐसा-कुछ करनेका अनुरोध करूँगा जिससे उसे आवश्यक संख्यामें ग्राहक प्राप्त हो सकें।

और यह बात इस कारण और भी आवश्यक हो जाती है कि 'यंग इंडिया' के मालिकोंने विज्ञापन लेना बिलकुल बन्द कर देनेका निश्चय किया है। मेरा तो विचार है कि अखबारोंको पूरी तरह विज्ञापनके बिना चलाना चाहिए और मैं जानता हूँ कि मालिकोंने मेरे इस विचारको पूर्णतः स्वीकार नहीं किया है, लेकिन वे मुझे प्रयोग करनेकी छूट देनेको तैयार हैं। मैं ऐसे लोगोंसे, जो 'यंग इंडिया' को विज्ञापनोंके इस अभिशापसे मुक्त देखना चाहते हैं, इस प्रयोगको सफल बनानेकी प्रार्थना करता हूँ। गुजराती 'नवजीवन'से यह सम्भावना प्रकट हो चुकी है कि किसी अखबारके पृष्ठोंको विज्ञापनोंसे भरे बिना भी उसे चलाया जा सकता है। अगर हम प्रान्तके लिए विज्ञापनका केवल एक माध्यम — निश्चय ही कोई अखबार नहीं — रखें और उसमें जनताके लिए उपयोगी चीजोंकी, बिना किसी रंग-रोगनके, सीधी-सच्ची सूचनाएँ दी जायें तो इससे देशका कितना बड़ा आर्थिक लाभ होगा। अगर हममें इस बातके प्रति अपराधपूर्ण उदासीनता न हो तो हम इन शरारत भरे विज्ञापनोंके रूपमें एक भारी अप्रत्यक्ष कर देनेसे साफ इनकार कर दें। पत्रकारिताकी शुद्धता बनाये रखनेको उत्सुक कुछ पाठकोंने अभी हालमें किसी प्रसिद्ध अखबारसे एक

अत्यन्त अश्लील विज्ञापन लेकर मुझे भेजा है। मैं उसे फिरसे छापकर 'नवजीवन' के पृष्ठोंको गन्दा नहीं करना चाहता था, इसलिए उसे नहीं छापा। लेकिन अगर कोई चाहे तो बहुत ही प्रमुख पत्रोंके विज्ञापन-पृष्ठोंको उलटकर मेरी आलोचनाकी सचाई परख सकता है।

अब दो शब्द 'यंग इंडिया' की नीतिके बारेमें भी। यह व्यक्तियोंके प्रति होनेवाले अन्यायोंकी ओर ध्यान आकृष्ट करनेका अपना कर्त्तव्य तो निभायेगा ही, साथ ही रचनात्मक सत्याग्रह और यदा-कदा परिशोधक सत्याग्रहकी ओर भी शक्ति लगायेगा। परिशोधक सत्याग्रहका मतलब है, जहाँ रौलट अधिनियम जैसे किसी दुराग्रहपूर्ण और गिरानेवाले अन्यायको दूर करानेके लिए प्रतिरोध आवश्यक हो जाये वहाँ सविनय प्रतिरोध करना।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९१९

१४१. भाषण : बड़ौदामें

[अक्तूबर ९, १९१९]

हममें उत्साह है और सद्भावनाएँ भी हैं; लेकिन इस उत्साह अथवा भावनाओंसे हमारा उद्धार होनेवाला नहीं है; हमें इनसे अपनी मनचाही वस्तु मिलनेवाली नहीं है। हम जो-कुछ करेंगे वह काम ही हमारा साथ देगा और उसीपर भविष्यका निर्माण होगा। अगर हम अपने उत्साहको अपनी कृतिमें न उतारें, उसे कोई अच्छा अंजाम न दे सकें तो हमारा उत्साह मिथ्या है। भावनाओंको जाग्रत करनेका कार्य अच्छा है, उसकी ऐसे समय आवश्यकता भी है। लेकिन लोगोंकी भावनाओंको जाग्रत करनेकी अपेक्षा यदि हम अपना कार्य करनेमें निरत हो जायें तो उसका ज्यादा असर होगा, और हम जनताकी भावनाओंको काम कर दिखानेकी दिशामें अधिक प्रेरित कर सकेंगे।

कल स्टेशनपर बड़ी अव्यवस्था थी। जहाँ व्यवस्था अच्छी होती है वहाँ चाहे कितने ही व्यक्ति क्यों न हों, सभी शान्तिपूर्वक काम कर सकते हैं। मुझे परेशानी न हो, इतना ही पर्याप्त नहीं है। मैंने देखा, कुछ लोग मुझे सुरक्षित रखनेमें लगे हुए थे। लेकिन स्थिति तो ऐसी होनी चाहिए कि किसीको भी परेशानी न हो। कितने ही लोगोंकी भीड़ क्यों न हो, यदि व्यवस्था ठीक रहे तो आसानीसे शान्ति रखी जा सकती है। यहाँ तो उसके लिए अनुकूल वातावरण भी है। यहाँ एक सुन्दर व्यायामशाला है। मैं तो सदासे यही कहता आया हूँ कि शिक्षण-पद्धतिमें व्यायामकी खास जरूरत है। लाखों व्यक्ति यदि एक निश्चित कार्यक्रमके अनुसार अनुशासनपूर्वक चलें, एक संकेत किया जाये और वे उसे समझ लें, तो सब-कुछ हो सकता है। ऐसी शक्ति हममें आनी ही चाहिए।

आजकल हमारी जो दशा है उसमें हमें कामोंको जल्दी निपटाना सीखना चाहिए। कल जलूसमें दो घंटे व्यर्थ गये। ऐसे जलूस बिलकुल ही नहीं निकाले जाने चाहिए, सो

में नहीं कहता; लेकिन हमें समयका ध्यान रखना चाहिए। इस समय हिन्दुस्तानकी जो हालत है उसमें हम जलूस और ऐसे ही दूसरे तमाशोंमें व्यर्थ समय नहीं गँवा सकते। जलूसमें भाग लेने, 'वन्देमातरम्' की पुकारों, मातृभूमिके जयघोषसे हम देशकी सेवा नहीं कर सकते। इस समय हमारा हिन्दुस्तान त्रिविध तापसे पीड़ित है। इनसे हमें मुक्त होनेके लिए जलूसोंकी नहीं बल्कि इन तापोंका उपचार कर सकनेवाले वैद्योंकी जरूरत है; तमाशेकी नहीं, योग्य उपचार करनेकी आवश्यकता है। वीर पुरुषों और वीर माताओं-की जरूरत है। जनताके नेताओंका समय जनताका समय है, वह हमें बचाना चाहिए। मेरा हिसाब तो सीधा है। कलके जलूसमें लगभग चार-पाँच हजार व्यक्ति तो होंगे ही, यदि प्रत्येक व्यक्तिके दो-दो घंटे लें तो जनताके आठ-दस हजार घंटे नष्ट हुए। ये घंटे — मेरे मनपर तो अभी चरखा ही चढ़ा हुआ है, इसलिए मैं तो यही कहूँगा — अगर खड्डियोंमें [कपड़ा बुननेमें] व्यतीत किये जाते तो कितना काम हो सकता था? इस तरह वक्त बरबाद करनेसे मैं तो कहूँगा कि मनुष्य अपनी कुटियामें बैठे-बैठे कोई सद्-विचार करे तो वह भी अच्छी तरहसे समय व्यतीत करना कहलायेगा। हम समयकी इस तरह कीमत आँकना सीखेंगे तभी हम अमरीका, जापान और यूरोपके साथ होड़ कर सकेंगे।

हममें से जिन्हें अपने देशके त्रिविध तापका ज्ञान हो उन्हें उनको कम करनेका प्रयत्न करना चाहिए। जब आग लगी हो उस समय हम उसे बुझानेके सिद्धान्तोंको ढूँढ़ने और नियम गढ़नेके लिए नहीं बैठते, बल्कि पानी लेकर आग बुझाते हैं और आग बुझा लेनेके बाद भविष्यमें तत्सम्बन्धी नियम बनाते हैं। अतएव इस समय जो सेवा करनेके लिए उत्सुक हैं और सेवाकी कुंजी जिनके हाथ लग गई है उन्हें तो लोगोंमें भावनाएँ जगानेके काममें समय खोनेके बजाय काम करनेमें ही जुट जाना चाहिए। उनका सबसे पहला, दूसरा और अन्तिम कर्त्तव्य यही होना चाहिए। कार्य करनेके बाद और उसीको करते हुए वे [जनताको] अपना सन्देश अच्छी तरहसे सुना सकेंगे।

अभिप्राय सिर्फ इतना ही है कि कल रातकी पुनरावृत्ति न हो। जननायक, जनताके सेवक हैं। यदि वे जलूसों आदिके विचारसे सेवा करनेके लिए प्रेरित हुए हैं तो उनकी सेवामें कमी है। सेवकको कोई दान नहीं चाहिए, सेवकको किसीकी पूजा-अर्चनाकी आवश्यकता नहीं। पूजाकी इच्छासे की गई सेवा, सेवा नहीं है और यदि जनताको उनकी पूजा करनी ही है तो जनताको वह भी सीखनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि पूजा कैसे की जा सकती है? उन्हें अपने नेताओंकी भावनाओंका भी सम्मान करना चाहिए।

मैंने [त्रिविध तापकी] जो बात कही वह क्या है? पहला ताप तो भुखमरी है। हम भारतकी स्थितिका मूल्यांकन बम्बईके करोड़पतियों अथवा अरबपतियोंसे नहीं कर सकते। उनकी स्थितिसे हम हिन्दुस्तानको सम्पन्न अथवा निर्धन नहीं कह सकते। बल्कि जबतक हिन्दुस्तानके साढ़े सात लाख गाँवोंमें रहनेवाले बुनकरों और किसानोंकी हालत खराब है तबतक हिन्दुस्तान खुशहाल है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मैं भारतमें जबरदस्त भुखमरी देख रहा हूँ। कितने ही लोगोंको सूखी रोटी और नमकपर निर्वाह

करना पड़ता है तथा कितने ही लोगोंको तो कभी-कभी यह भी नसीब नहीं होता; इसका कारण देशमें अनाजकी कमी है।

दूसरा ताप है कपड़ेका अभाव। उसका विचार करते हुए मेरा हृदय रोता है; और यदि मैं उसका वर्णन करने बैठ जाऊँ तो मेरा विश्वास है कि मैं आपको भी रुला सकता हूँ। कितने ही पुरुष हिन्दुस्तानमें मात्र-लँगोटी पहनकर रहते हैं। यदि वे स्वेच्छासे ऐसी स्थितिमें रहें तो दुःखकी कोई बात नहीं है। लेकिन बहुतसे लोगोंको तो वस्त्रके अभावमें ऐसी स्थितिमें रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पुरुष तो लँगोटी-में रह सकते हैं लेकिन बहनोंके सम्बन्धमें तो हम वैसा नहीं चाहते। फिर भी मैंने अनेक बहनोंको देखा है जिन्हें ऐसी स्थितिमें रहना पड़ता है। चम्पारनमें नल-दमयन्ती जैसी स्थितिवाले अनेक स्त्री-पुरुषोंको मैंने देखा है, मैंने उनके साथ बातें की हैं। दूसरे वस्त्रके अभावमें वे अपने वस्त्र धो भी नहीं सकतीं। वहाँ गंगा बहती है, इसलिए पानीका तो अभाव नहीं है। लेकिन धोकर पहनें[1] तो क्या पहनें? वस्त्रके अभावमें हम आज नग्नावस्थामें ही हैं।

तीसरा ताप इन दो तापोंके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है। भुखमरी और वस्त्राभावके कारण हिन्दुस्तान अनेक रोगोंसे पीड़ित है। लेकिन मैं उनकी बात करने नहीं आया। पहले दो तापोंका निवारण हो सके तो तीसरे तापका निवारण स्वयंमेव हो जायेगा, इसलिए मैं उसको छोड़े देता हूँ। हममें से सभी पहले तापका निवारण करनेकी दिशामें समर्थ नहीं हो सकते। अन्नाभावको दूर करनेका प्रयत्न करनेके लिए हममें किसानों जैसा बल चाहिए, खेत चाहिए और भी अनेक बातें चाहिए। ये सारी बातें हरएकके पास नहीं हो सकतीं। लेकिन दूसरे तापका निवारण तो सभी कर सकते हैं। उस दिशामें बालक-बालिका सभी मदद कर सकते हैं। एक मिलका निर्माण करनेकी अपेक्षा उतना ही कपड़ा बालकों और स्त्रियोंसे तैयार करवाना कम कठिन है। मैंने अनेक मिल-मालिकोंके साथ बातचीत की है। उनका कहना है कि सारे हिन्दुस्तानकी आवश्यकताको पूरा करने जितना कपड़ा तैयार करने योग्य मिलोंकी स्थापनामें ५० वर्ष लगेंगे। लेकिन उन्हीं मिल-मालिकोंका यह भी कहना है कि यदि स्त्रियाँ सूत कातने लगें और बुनकर बराबर बुनने लगें तो दो अथवा तीन वर्षोंमें हम अपनी जरूरतका वस्त्र बना सकनेकी स्थितिमें पहुँच जायें।

भारतमें अभी ऐसे स्थल हैं जहाँ धनाढ्य और निर्धन बहनें हाथसे सूत कातती हैं और बुनकरोंसे उस सूतके वस्त्र बुनवाकर पहनती हैं। पंजाबमें तो विवाह अथवा मांगलिक अवसरोंपर हाथ-कते सूतसे बने वस्त्र पहननेका रिवाज है। ये वस्त्र पवित्र माने जाते हैं। देशमें ऐसे और भी अनेक अंचल हैं लेकिन हमें उनकी खबर नहीं है।

अपनी जरूरतका कपड़ा खुद तैयार करना कोई मुश्किल काम नहीं है। दोष सिर्फ हमारे आलस्य और हमारी जड़ताका है। इस प्रयासमें धनकी कोई जरूरत नहीं; उत्साहकी और अपूर्व प्रेमकी आवश्यकता है और आवश्यकता है इस उत्साह और अपूर्व प्रेमके साथ ज्ञानके समन्वय की।

१. गांधीजीको यह अनुभव भीतिहरवा गाँवमें हुआ था; देखिए **आत्मकथा** भाग ५, अध्याय १८।

मैं एक बुनकरके रूपमें कहता हूँ कि प्रतिदिन आठ घंटे हाथकी खड्डीपर काम करते हुए व्यक्ति निःसन्देह एक रुपया कमा सकता है। रो-धोकर मैट्रिककी परीक्षा पास कर लेनेके बावजूद क्या एक रुपया मिलता है? तीस रुपये मासिक वेतनपर जी-तोड़ काम करनेवाले स्नातकोंको मैंने देखा है। परीक्षामें इस तरह शरीर गला देनेके बाद भी उन्हें इस तरहका दयनीय जीवन बिताना पड़ता है। इसकी अपेक्षा यह स्थिति निःसन्देह अच्छी है।

यदि भारतकी असंख्य स्त्रियाँ और लाखों विधवाएँ अपने खाली समयमें यह कार्य करना चाहें और यदि उनके मनमें राम और कृष्णका वास हो तो सूत कातना तनिक भी कठिन कार्य नहीं है। मैं भारतवासियोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे इस धर्मका पालन करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६–१०–१९१९

१४२. तार: वाइसरायके निजी सचिवको

अमरेली
अक्तूबर १०, १९१९

वाइसरायके निजी सचिव

अली भाइयोंकी माँ गम्भीर रूपसे अस्वस्थ। मुझे विश्वास है कि दोनों भाइयों को माँ के दर्शनोंकी आज्ञा मिल जायेगी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होंने वाइसराय महोदयसे उस सम्बन्धमें प्रार्थना की है।[1]

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम: पोलिटिकल: जनवरी १९२०: सं० ४९३-५०२ बी० तथा (एस० एन० १९८२६) की फोटो-नकलसे।

१. चूँकि अली भाइयोंने, जो रामपुर कारागारमें थे, जमानतपर रिहाईकी स्वयं कोई अर्जी नहीं दी थी, अतः गृह-विभागने कोई कार्रवाई नहीं की और न गांधीजीके तारका उत्तर देना ही आवश्यक समझा।

१४३. पत्र : अखबारोंको

आश्रम
साबरमती
अक्तूबर १०, १९१९

सम्पादक
[बॉम्बे] 'क्रॉनिकल'

महोदय,

लखनऊके खिलाफत-सम्मेलनने अगले शुक्रवार १७ तारीखको उपवास और ईश्वर-प्रार्थना दिवसके रूपमें मनानेका निश्चय किया है। इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर मुसलमानोंकी भावना अत्यन्त तीव्र है, इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं है। इसमें भी सन्देह नहीं है कि लीगके इरादोंपर अविश्वास किया जाता है। घोर संकटकी घड़ीमें आदमीका एकमात्र सहारा ईश्वर होता है, और भारतके लाखों मुसलमान सान्त्वना, मार्गदर्शन और राहतके लिए उसी ईश्वरकी शरण लेंगे। उस दिन लाखों कण्ठ उस सर्व-शक्तिमान्से दुआ माँगेंगे कि वह यदि चाहे तो इस आसन्न विनाशसे उन्हें बचाये। एक सच्चा मुसलमान टर्कीका विभाजन होता देखकर भी शान्त रह सके, यह उतना ही असम्भव है जितना कि किसी ईसाईके लिए उस स्थानको भ्रष्ट होते देखकर शान्त रहना जो उसे सबसे अधिक प्रिय है और उसके सबसे ज्यादा करीब है।

प्रश्न है कि हिन्दू क्या करें? मुझे लगता है कि उन्हें अपने मुसलमान भाइयोंसे पीछे नहीं रहना चाहिए। हिन्दुओं द्वारा उपवास और प्रार्थना किये जाना मैत्री और बन्धुत्व-भावनाकी सबसे सच्ची कसौटी होगी। मैं आशा करता हूँ कि प्रत्येक हिन्दू स्त्री-पुरुष १७ अक्तूबरको उसी रूपमें मनायेगा, और इस प्रकार हिन्दू-मुसलमानोंके सम्बन्धोंपर एक पवित्र मुहर लगा देगा।

उस दिन हड़ताल भी रहेगी। उसका उद्देश्य सम्राट्के मन्त्रियोंको यह जताना है कि स्थिति कितनी गम्भीर है। लेकिन हड़ताल प्रभावशाली हो, इसके लिए जरूरी है कि वह शान्तिपूर्ण और ऐच्छिक हो। बलका तनिक भी प्रयोग करनेसे हड़तालका उद्देश्य विफल हो जायेगा। यदि मुसलमान सचमुच महसूस करते हों, और यदि हिन्दू अपनी मैत्रीके दावेमें सच्चे हैं, तो स्वभावतः दोनों ही १७ अक्तूबरको स्वेच्छासे सब कारोबार बन्द रखेंगे। मैंने अपने पिछले अनुभवोंके आधारपर यह सलाह देनेका साहस किया है कि उस दिन किसी जलूस या सभाका आयोजन नहीं होना चाहिए।[1] स्वयंसेवकों और मुसलमानोंको, जो जुमा मस्जिद जायेंगे, छोड़कर बाकी सब लोग अपने घरोंमें ही रहें। तनिक भी शान्ति भंग होनेसे एक अत्यन्त शानदार अनुष्ठानको धक्का पहुँचेगा। इसलिए मैंने यह भी सुझाव दिया है कि मिल-मजदूरोंको काम रोकनेके लिए किसी

१. देखिए अगला शीर्षक।

प्रकारका प्रोत्साहन न दिया जाये और न उन लोगोंसे ही काम रोकनेको कहा जाये जो सार्वजनिक स्वास्थ्य-सफाईका काम करते हैं।

मैं यह आशा करनेकी धृष्टता करता हूँ कि सरकार इस अवसरके अनुरूप ऊपर उठनेकी कोशिश करेगी। वह यह भी कर सकती है कि जनताकी माँगको अपनी माँग बना ले और सम्राट्के मन्त्रियोंसे कह दे कि हम खिलाफतके प्रश्नको एक पवित्र जिम्मेदारी मानते हैं जिसके साथ धोखा नहीं किया जा सकता। लेकिन सरकार इतनी दूरतक जाये या न जाये लेकिन वह सभी सरकारी अधिकारियोंको यह निर्देश तो दे ही सकती है कि वे आगामी शान्तिपूर्ण प्रदर्शनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमें हस्तक्षेप न करें।[1]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-१०-१९१९

१४४. परिपत्र[2]

साबरमती
अक्तूबर १०, १९१९

आशा है आपने १७ तारीखके प्रदर्शनके सम्बन्धमें मेरा सार्वजनिक पत्र[3] और ४ अक्तूबर, १९१९ के 'यंग इंडिया' में मेरी तत्सम्बन्धी टिप्पणी देखी होगी। मैं तो सम-

१. खिलाफत-दिवसके संयोजकोंने उसी दिन एक वक्तव्य जारी किया, जिसमें कहा गया था: "महात्मा गांधीने सलाह दी है कि हिन्दुओंके लिए यह अनिवार्य है कि वे १७ अक्तूबरको अपनी दुकानें और कारोबार बन्द रखकर वह दिन प्रार्थना और विरोध-दिवसके रूपमें मनायें और इस प्रकार अपने मुसलमान भाइयोंके साथ अपनी सहानुभूति व्यक्त करें।" बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रेक्ट्स, १९१९ के अनुसार सत्याग्रह सभा उपर्युक्त पाठकी ३०,००० प्रतियाँ छपवाकर वितरित करनेके लिए तैयार कर रही थी लेकिन इन छपी हुई प्रतियोंमें १२ घंटेका उपवास रखनेकी सलाह दी गई थी।

२. यह "१७ अक्तूबरके सार्वजनिक प्रदर्शनके दिशा-निर्देशके लिए परिपत्र" के रूपमें प्रकाशित हुआ था और निम्नलिखित व्यक्तियोंको भेजा गया था: राजगोपालाचारी; कस्तूरी रंगा आयंगार; नटेसन; डॉ० राजन्, त्रिचनापल्ली; जोजेफ, बैरिस्टर, मदुरा; हरिलाल गांधी, कलकत्ता; सत्यानंद बोस, कलकत्ता; स्वामी श्रद्धानन्द; पंडित मोतीलाल नेहरू; प्रोफेसर जे० बी० कृपलानी, इलाहाबाद; राजेन्द्रप्रसाद; ब्रज-किशोर बाबू; जमशेदजी मेहता, कराची; दुर्गादास अडवानी, कराची; डा० चोयथराम गिडवानी, हैदराबाद (सिंध); कृष्णलाल ए० देसाई, दिल्ली; पंडित सुन्दरलाल, इलाहाबाद; जवाहरलाल नेहरू, बैरिस्टर, इलाहाबाद; पंडित कुंजरू, आगरा; पंडित बी० डी० शुक्ल, जबलपुर; सी० एफ० एन्ड्रयूज, लाहौर; वी० ए० सुन्दरम्, ट्रिप्लिकेन; देवदास गांधी; जी० एस० अरुंडेल; गंगाधरराव देशपांडे, बेलगाँव; खाडिलकर, केसरी कार्यालय, पूना; एस० वी० वझे, सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी, पूना; गोकर्णनाथ मिश्र, हरकर्णनाथ मिश्र, लखनऊ। यह पत्र अखबारोंको भी प्रकाशनार्थ भेजा गया था।

३. देखिए "पत्र: अखबारोंको", १०-१०-१९१९।

झता हूँ, सभी गैर-मुस्लिम लोगोंको उपवास, प्रार्थना और हड़तालमें मुसलमानोंका साथ देना चाहिए। उपवास और प्रार्थनाको मैं शुद्ध धार्मिक क्रिया मानता हूँ, वे प्रदर्शनका अंग नहीं हैं। हाँ, हड़ताल प्रदर्शनके लिए ही है। [किन्तु] वह स्वेच्छाजन्य होनी चाहिए। व्यक्तिशः मैं तो अगर बहुत ही कम हिन्दू इसमें साथ दें तो उसकी परवाह नहीं करता, और अगर कोई भयके कारण इसमें शामिल होता है तो चाहे ऐसे लोगोंकी संख्या कितनी भी बड़ी हो, मुझे बड़ा दुःख होगा। इस खयालसे कि कोई अघटनीय बात घटित न हो जाये, मैंने सुझाव दिया है कि प्रदर्शन न किये जायें, सभाएँ न बुलाई जायें, लोग अपने-अपने घरोंमें ही रहें और जो लोग अपनी दुकानें खुली रखना चाहें उनकी सुरक्षाके लिए स्वयंसेवकोंको कारोबारके ऐसे केन्द्रोंका चक्कर लगाते रहना चाहिए। मिल-मजदूरोंसे कामका नागा करनेको न कहा जाये और सफाई तथा ऐसे ही अन्य दैनिक कार्योंके लिए जिन लोगोंकी जरूरत हो उन्हें विशेष रूपसे काम बन्द न करनेकी सलाह दी जाये। अगर आप मुझसे सहमत हों तो आशा है, इस सुझावको कार्यान्वित करनेके लिए आप जो उचित समझेंगे करेंगे।

हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९८२७) की फोटो-नकलसे।

१४५. तार: सादिक अलीको

[अक्तूबर १०, १९१९ या उसके बाद]

सादिक अली
रामपुर,

[अली–] बन्धुओंको अनुमति देनेके लिए शिमला तार भेजा है। कृपया तार द्वारा [उनकी माँकी] हालत सूचित करें।

गांधी
अहमदाबाद

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९८२४) की फोटो-नकलसे।

१४६. पत्र : अब्दुल बारीको

[अक्तूबर १०, १९१९ के बाद]

प्रिय मौलाना साहब,

अगली १७ तारीखके सम्बन्धमें आपने मेरा पत्र देखा होगा।[1] मैं यह आशा कर रहा हूँ कि सभी हिन्दू उपवासादिमें शामिल होंगे और यह कार्यक्रम बहुत ही शान्तिपूर्ण ढंगसे सम्पन्न हो जायेगा। प्रदर्शन शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाये इसीमें उसकी सफलता निहित है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप सार्वजनिक रूपसे और व्यक्तिगत तौरपर भी इस आशयके निर्देश जारी करेंगे कि जो लोग अपनी भावनाको प्रकट करनेके लिए इस कार्यक्रममें शामिल हों वे अपने घरोंमें ही रहें, और जो लोग मसजिदोंमें जायें वे सर्वथा शान्तिपूर्ण ढंगसे और प्रार्थनामय मनसे जायें।

हृदयसे आपका,

तिवंगी महल
लखनऊ

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० १९८२५) की फोटो-नकलसे।

१४७. उपवास और प्रार्थना

मेरा यह विश्वास और अनुभव है कि यदि उपवास और प्रार्थना सच्चे दिल और धार्मिक वृत्तिसे किये जायें तो उससे महान् फलकी प्राप्ति हो सकती है। उपवाससे जो शुचिता प्राप्त की जा सकती है वह अन्य किसी साधनसे नहीं। लेकिन बिना प्रार्थनाका उपवास शुष्क है और उसका परिणाम रोगीको निरोग करना अथवा निरोगीको व्यर्थ ही कष्ट देना हो सकता है। यदि उपवास केवल दिखावेके रूपमें अथवा दूसरेको त्रास देनेकी खातिर किया जाये तो वह केवल पापकर्म ही माना जायेगा। इसलिए अपने ही ऊपर प्रभाव डालनेके लिए प्रायश्चित्तके रूपमें किये गये प्रार्थनायुक्त उपवासको ही धार्मिक उपवास कहा जा सकता है। प्रार्थनाका अर्थ ईश्वरसे सांसारिक सुख अथवा स्वार्थ साधनेकी अन्य वस्तुओंकी माँग करना नहीं है। प्रार्थना कष्ट सहनेवालेकी आत्माका गम्भीर नाद है। उसका संसारपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता और उस प्रार्थनाकी ईश्वरके दरबारमें सुनवाई हुए बिना नहीं रहती। व्यक्ति अथवा राष्ट्र जब किसी महान् संकटसे पीड़ित हों उस समय उस पीड़ाका शुद्ध ज्ञान ही प्रार्थना है और जब ऐसे पवित्र ज्ञानका उदय होता है तब खाना आदि शारीरिक

१. देखिए "पत्र: अखबारोंको" और "परिपत्र", १०-१०-१९१९।

व्यापार सहज ही मन्द पड़ जाते हैं। इकलौते पुत्रकी मृत्युसे माँको दुःख होता है। उसे खानेकी सुध नहीं रहती। ऐसी ही पीड़ा जब राष्ट्रके किसी व्यक्तिके दुःखी होनेपर अन्य सब लोगोंको होती है तब राष्ट्र जन्म लेता है—ऐसा कहा जा सकता है। ऐसा राष्ट्र अमरत्व भोगनेके योग्य बनता है। यह हम जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें अनेक भाई और बहनें महान् संकटमें रहते हैं इसलिए वस्तुतः देखा जाये तो हमारे लिए प्रार्थनामय उपवासका समय धीरे-धीरे समीप आता जा रहा है। लेकिन राष्ट्रीय जीवनमें [अभी] इतनी व्याकुलता, इतनी शुद्धता नहीं आ पायी है। फिर भी अनेक ऐसे प्रसंग आ जाते हैं जब हमारी आत्मा कष्टसे भर जाती है।

ऐसा एक अवसर इस्लामी भाइयोंपर आ पड़ा है। 'नवजीवन' के पाठकवृन्द उससे परिचित हैं। यदि टर्कीके टुकड़े हो गये तो खिलाफत खत्म हो जायेगी, खिलाफतके खत्म होनेसे इस्लाम निस्तेज हो जायेगा। इसे मुसलमान कभी सहन नहीं करेंगे। श्री एन्ड्रयूजने मेरे साथ अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा है कि यदि मुसलमानोंको न्याय मिलता न जान पड़े तो श्री मॉण्टेग्यु और वाइसराय महोदयको इस्तीफा दे देना चाहिए। यह उपचार आवश्यक है लेकिन यह बाह्य है, इसकी अपेक्षा असंख्य गुना बलशाली उपचार मुसलमान भाइयोंके हाथमें है। यह तय किया गया है कि १७ अक्तूबर शुक्रवारके दिन मुसलमान रोजा रखें अर्थात् चौबीस घंटेका उपवास करें; इसलिए १६ की साँझसे १७ तारीखके दिन तकका सारा समय इबादत अर्थात् प्रार्थनामें व्यतीत करें। यह विचार अत्यन्त सुन्दर है। दुःखके समय ईश-स्मरणसे जितना लाभ होता है, जितनी शान्ति मिलती है उतनी शान्ति और उतना लाभ अन्य किसी उपायसे नहीं मिलता।

ऐसे अवसरपर हिन्दुओंका कर्त्तव्य भी स्पष्ट है। हिन्दू यदि मुसलमानोंको अपना भाई मानते हैं तो उन्हें उनके दुःखमें पूरा-पूरा हिस्सा लेना ही चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंमें ऐक्य बढ़ानेका यह बड़ेसे-बड़ा और सर्वाधिक सरल उपाय है। दुःखमें भाग लेना ही भाईचारेकी खरी निशानी है। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि सारे हिन्दुस्तानमें प्रत्येक स्त्री और पुरुष १७ अक्तूबरका दिन उपवास और प्रार्थनामें व्यतीत करेगा। हिन्दुओंके लिए 'गीता' सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसे शुरूसे लेकर अन्ततक अर्थ सहित पढ़ना और पढ़ाना; इस तरह दिन पवित्रतासे व्यतीत हो सकेगा और यही हिन्दुओंकी प्रार्थना मानी जायेगी।

मुझे लगता है कि उस दिन हम निर्भय होकर हड़ताल कर सकते हैं। जो स्वतन्त्र हैं उन्हें कारोबार बन्द रखना चाहिए। नौकरों और मजदूरोंको तथा जो अस्पताल आदिमें काम करते हैं उन सबको काम बन्द करनेकी जरूरत नहीं है। उस दिन सब लोग अपने घर बैठें। जलूस बिलकुल न निकालें तो भी हानिका भय नहीं है। उपवास और प्रार्थनामें बल-प्रयोग बिलकुल ही नहीं किया जाता। यही बात काम बन्द करनेके विषयमें लागू होनी चाहिए। हड़तालका असर तो सिर्फ लोगोंकी उसके साथ सहमति होनेपर ही हो सकता है। हिन्दुओं अथवा मुसलमानोंकी भावनाओंका मूल्यांकन स्वेच्छासे की गई हड़तालसे ही किया जा सकता है। हड़ताल स्वेच्छासे हो सके, इसलिए नियुक्त स्वयंसेवक बाहर घूम-फिर सकते हैं। दुकान खुली रखनेवाले और

काम-धन्धा करनेवालोंमें से किसी व्यक्तिको कोई नुकसान न पहुँचाये, अनुचित दबाव न डाले — इन बातोंकी देखभाल करना इन स्वयंसेवकोंका कर्त्तव्य माना जाना चाहिए।

सरकार यदि समझदारीसे काम ले तो उसे इस कार्यमें प्रोत्साहन देना चाहिए। वाइसराय महोदयका धर्म है कि मुसलमान भाइयोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करनेके लिए तमाम अधिकारियोंको सूचित कर दें कि लोगों द्वारा हड़ताल किये जानेके काममें वे कोई अड़चन न डालें। यदि वाइसराय महोदय इससे आगे बढ़ें तो उस दिन [सरकारी] काम भी बन्द रखे जा सकते हैं और इस तरह जनताको भारी शान्ति प्रदान की जा सकती है। सरकार ऐसा करे या न करे, लोगोंका कर्त्तव्य तो स्पष्ट है। हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर १७ अक्तूबरका दिन उपर्युक्त कथनके आधारपर व्यतीत करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२–१०–१९१९

१४८. विधवाओंको कष्ट

सूरतकी ग्यारह बहनोंने अपने कष्टकी कहानी लिखते हुए दो पत्र लिखे हैं। "हम वैष्णव, वणिक विधवा, बाल-विधवा" इस तरह इन बहनोंने अपना पत्र शुरू किया है। अपने नाम दिये हैं लेकिन माँ-बापके नाम और रहनेके स्थानको छिपाया है। मुझे खेद है कि इन बहनोंने अपना पूरा परिचय नहीं दिया। समाचारपत्रोंका कानून ऐसा है कि छोटे-छोटे पत्रोंपर सम्पादक कोई ध्यान नहीं देता; ऐसा करना जरूरी भी है। सम्पादकका कर्त्तव्य है कि यदि लेखक अपना नाम प्रकाशित न करवाना चाहे, तो वह उसकी इस इच्छाका पूरी तरहसे सम्मान करे; लेकिन उसकी जानकारीके लिए लिखनेवालेको अपना पूरा परिचय देना ही चाहिए। ऐसा न हो तो प्रबल इच्छा होते हुए भी सम्पादक अपने समाचारपत्र द्वारा जितनी सहायता करना चाहता है, उतनी नहीं कर सकता। इन बहनोंका उदाहरण ही लीजिए यदि मुझे इनका ठौर-ठिकाना मालूम होता तो और-अधिक बातें मालूम कर सकता था और उनके दुःखमें भाग ले सकनेवालोंका पता भी लगाता। उपर्युक्त पत्रोंमें ऐसी और दूसरी त्रुटियोंके होनेपर भी कुछ-एक सामान्य बातें ऐसी हैं कि सबको उनसे परिचित होना ही चाहिए। इन ग्यारह बहनोंमें से तीन कुछ हदतक शिक्षा-प्राप्त हैं और आठ निरक्षर हैं। इनमें से एक मुश्किलसे आठ दिनोंमें 'नवजीवन' पढ़ पाती है। जात-बिरादरीके लोग दुरदुराते हैं, पति-भक्षिणी कहते हैं, उन्हें चाहे जिसके दबावमें रहना पड़ता है, वे शिक्षामें शून्य होती हैं और उन्हें घी, शक्कर आदि क्वचित् ही दिया जाता है। सूरतमें वणिकोंके बयालीस उपभेद हैं, इनमें सात सौ बाल-विधवाएँ तो अवश्य होंगी। धर्म क्या चीज है, यह कोई नहीं जानता।

> हम विधवा-धर्म समझती हैं; लेकिन उसका पालन कर सकें, ऐसे साधन हमें प्राप्त नहीं होते। हमें किसी आश्रममें रखकर अच्छी शिक्षा दी जाये

धर्मके पालनमें जबरदस्तीकी बिलकुल गुंजाइश नहीं है। इसलिए सूरतमें बाल-विधवाओंके सम्बन्धमें वैष्णवों और दूसरे हिन्दू परिवारोंको मैं तो यही सलाह देता हूँ कि वे ऐसी योजनाएँ बनायें और उन्हें अमलमें लायें जिनसे विधवाओंका मन [अच्छे कामोंकी ओर] लगा रहे और वे लोभमें न फँसें। फिर जो बाल-विधवा है उसे विवाह न करनेके लिए प्रेरित करना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी यह भी है कि यदि वह विवाह करना चाहे तो उसके मार्गमें कोई विघ्न उपस्थित न किया जाये। वैधव्यका पालन करना एक पुण्य कर्म है; लेकिन विधवा-विवाह भी सर्वथा पापकर्म तो नहीं है। यदि विभिन्न जातियाँ वर्णाश्रम धर्मको शोभान्वित करना चाहती हों, उसके [सर्वथा] लुप्त होनेकी कामना न करती हों तो वर्णाश्रम धर्ममें जो अनेक कुरीतियाँ घर कर गई हैं, उनको दूर करना पड़ेगा और उससे उत्पन्न प्रत्येक प्रश्नका धार्मिक दृष्टिसे निर्णय करना होगा। इसलिए मैं विधवाओंसे कहता हूँ: "आप अपने वैधव्यको पवित्र मानकर शोभान्वित कीजिए। हिन्दू-समाजमें ऐसे अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं।" विभिन्न जातियोंसे अनुरोध करना चाहूँगा: "यदि बाल-विधवाएँ पुनर्विवाह करना चाहें तो वे उनका तिरस्कार न करें, उनका जाति-बहिष्कार न करें।"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२–१०–१९१९

१४९. टिप्पणियाँ

जमानतसे मुक्ति

पाठकोंको याद होगा कि जब 'नवजीवन' को साप्ताहिक किया गया उस समय पाँच सौ रुपयेकी जमानत देनेका आदेश मिला था। उसके बाद जो घटाएँ छाईं और छँट गईं उसकी खबर भी हम दे चुके हैं।[1] व्यवस्थापकोंने महसूस किया कि 'नवजीवन' जैसे पत्रको, जिसे प्रकाशित करनेमें बहुत सारे जोखिम झेलनेको तैयार रहना पड़ेगा और जिसकी प्रतियाँ एक बड़ी मात्रामें नियमित रूपसे लोगोंके पास पहुँचानी होंगी, निर्विघ्न रूपसे तो अपने ही छापाखानेमें छापा जा सकता है। इस तरह बाहरी अड़चनोंको तो कमसे कम किया ही जा सकता है। इससे शंकरलाल घेलाभाई बैंकरने, जो आर्थिक सहायता देनेके लिए जिम्मेदार हैं, मनहर प्रेसको खरीद लिया है और अब यह 'नवजीवन मुद्रणालय' के नामसे पुकारा जायेगा। इसके अतिरिक्त 'यंग इंडिया' का बम्बईसे और 'नवजीवन' का अहमदाबादसे प्रकाशन करनेमें बहुत कठिनाई जान पड़ी; क्योंकि 'यंग इंडिया' की जिम्मेदारी भी 'नवजीवन' के सम्पादकपर ही है। इसलिए 'यंग इंडिया' को भी अहमदाबादसे प्रकाशित करनेका निश्चय किया गया। जिसके फलस्वरूप 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन मुद्रणालय'

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५–१०–१९१९।

के सम्बन्धमें हलफनामे लेनेकी जरूरत पड़ी। अहमदाबादके मजिस्ट्रेट महोदयके सामने ये हलफनामे लिये गये। मजिस्ट्रेट महोदयने दोनों पत्रोंके लिए जमानत न लेनेका निश्चय किया; और यही निश्चय 'नवजीवन मुद्रणालय' के सम्बन्धमें भी किया। उनके इस निश्चयके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। आज जब कि भारतके समाचार-पत्रोंपर प्रेस अधिनियमकी अन्यायपूर्ण धाराएँ तलवारके समान झूल रही हैं, ऐसे समय 'नवजीवन' अथवा 'यंग इंडिया' के इस जमानतसे मुक्त रहनेपर हमें कितनी प्रसन्नता हुई है, हम इसका वर्णन नहीं कर सकते। जमानत हमारी कलमपर किसी भी प्रकारका अंकुश नहीं लगा सकती और न उसके अभावमें हमारी निरंकुशतामें रत्ती-भर वृद्धि ही होती है, बल्कि इससे हमारा उत्तरदायित्व सहज ही बढ़ जाता है। हो सकता है कि जाने-अनजाने हम ऐसे विचार प्रगट कर जायें जिससे हम फिरसे जमानतके पात्र समझे जायें। कुछ भी हो हम विवेक और मर्यादाके साथ, निर्भयता-पूर्वक जनताके सामने अपने विचारों और मन्तव्योंको पेश करनेका प्रयत्न करते रहेंगे।

"हमारी मुसीबतोंका आप अनुमान नहीं लगा सकते"

बिहारके प्रसिद्ध पत्रकार, शाही विधान परिषद्के सदस्य माननीय सच्चिदानन्द सिन्हासे[1] दण्डविमुक्ति विधेयक (इंडेम्निटी बिल) पर बोलते समय (भाषाकी) कुछ भूल हो गई। सर जॉर्ज लॉउण्डेज़ने[2] उसे सुधारनेका प्रयत्न किया और वाइसराय महोदयने कहा यह तो चूक हो गई। माननीय सिंहने कहा, "विदेशी भाषामें बोलते हुए हमें कितनी दिक्कतका सामना करना पड़ता है, यह बात आपके ध्यानमें आ ही नहीं सकती। भूलें तो हमसे कदम-कदमपर होती हैं।" ये उद्‌गार श्री सिंहका गौरव बढ़ाते हैं। विदेशी भाषामें बोलते समय अत्यन्त बुद्धिमान सदस्योंको भी बहुत परेशानी उठानी पड़ती है और हम तत्काल कोई प्रसंगानुकूल उत्तर देनेमें चूक जाया करते हैं। यह इस कारण नहीं होता कि हमारा मामला दुर्बल होता है अथवा हमारी जान-कारी कम होती है, बल्कि विदेशी भाषामें बोलनेके कारण ही हमें अनेक बार मुँहकी खानी पड़ती है। बहुत अच्छी अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय, इंग्लैंड जानेपर वहाँके सामान्य शिक्षा प्राप्त अंग्रेज-परिवारोंसे बातचीत करते हुए हड़बड़ा जाते हैं और अनेक बार उपहासके पात्र बनते हैं। ऐसा अनुभव इंग्लैंडसे आनेवाले प्रत्येक भारतीयको होता है। प्रोफेसर यदुनाथका कहना है कि अंग्रेजी भाषामें सोचने और बोलनेके कारण शिक्षित-वर्गपर भारी बोझ पड़ता है, इतना भारी बोझ पड़ता है कि शिक्षित-वर्ग उसके कारण शक्तिहीन और रोगग्रस्त हो गया है। न्यायमूर्ति श्री रानडेने कुछ वर्ष पहले बताया था कि हमारे शिक्षित-वर्गके बहुतसे लोग अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं और आविष्कार करनेकी शक्ति तो कदाचित् ही होती है। देर-सबेर हमें ऐसी कठिन परिस्थितिका उपचार करना ही होगा, [और यह हम] जितनी जल्दी करेंगे उतना ही वह लाभकारी होगा। प्रान्तीय विधान परिषदोंमें अपने-अपने प्रान्तकी भाषामें काम

१. पटनाके मासिकपत्र **हिन्दुस्तान रिव्यूके** सम्पादक।
२. भारत सरकारके कानून-सदस्य (लॉ मेंबर)।

चलना चाहिए और शाही विधान परिषद्‌में राष्ट्रीय भाषा अर्थात् हिन्दुस्तानीमें काम-काज चलना चाहिए। इस आन्दोलनकी शुरूआत कांग्रेस और सम्मेलनोंसे होनी चाहिए। कांग्रेसको यदि अपना सन्देश करोड़ोंके पास पहुँचाना है तो वह सन्देश अंग्रेजी भाषामें कदापि नहीं पहुँचाया जा सकता, केवल हिन्दुस्तानीकी मार्फत ही पहुँचाया जा सकता है।

बारेजडीपर जुर्माना

बारेजडीमें नियुक्त की गई अतिरिक्त पुलिसके खर्चके लिए लोगोंसे ७,२०० रुपये उगाहनेका सरकारने जो आदेश दिया था उसके विरुद्ध दिया गया प्रार्थनापत्र हमने अन्यत्र प्रकाशित किया है। इस प्रार्थनापत्रको किसी वकीलने तैयार नहीं किया है, यह बात उसे पढ़नेपर साफ तौरसे समझमें आ जाती है। आवेदकोंने युक्तियुक्त उदाहरण और दलीलें पेश नहीं की हैं, बल्कि अपने उद्‌गारोंको उन्होंने जैसी भाषा उन्हें आती है वैसी ही भाषामें लिख डाला है। हम बारेजडीके लोगोंको उनके इस कार्यपर बधाई देते हैं। हम प्रार्थनापत्रकी कीमत समझते हैं। जिन लोगोंको कष्ट पहुँचता है वे लोग इसी तरह अपना आर्तनाद सरकार और जनताके कानोंतक पहुँचा सकते हैं। ऐसे कार्यमें वकीलोंकी अथवा लम्बे-चौड़े आवेदनपत्र लिखे जानेकी जरूरत नहीं है। जिसके पाँवमें काँटा चुभा हुआ हो वह अपना दुःख जितने जोरदार शब्दोंमें प्रगट कर सकता है उतना कोई और व्यक्ति नहीं कर सकता। हमें इतनी ही सावधानी बरतनेकी जरूरत है कि हम तथ्योंको उनके असली रूपमें लोगोंके सामने रखें और ऐसा करते हुए अतिशयोक्तिसे काम न लें। सत्यको शब्दाडम्बरकी क्या जरूरत?

बारेजडीका मामला सीधा है। मुद्दा छोटा और बिलकुल साफ है।

> **हमने अपराध नहीं किया; हमारे यहाँ दो बार अकाल पड़ा; हमारी स्थिति सरकार द्वारा लगाया गया जुर्माना भरने योग्य नहीं है। हमारे यहाँ अतिरिक्त पुलिसकी आवश्यकता नहीं है; इसलिए हमारे ऊपर ७,२०० रुपये-के जुर्मानेका[1] यह बोझा नहीं होना चाहिए। सरकार हमारे आचरणकी जाँच करना चाहे तो कर सकती है।**

यह सीधा न्याय है। नडियादके बारेमें विचार करते समय हम बारेजडीके विषयमें भी लिख चुके है; इसपर टीका-टिप्पणीकी आवश्यकता नहीं है। हमें उम्मीद है कि सरकार प्रार्थियोंके प्रार्थनापत्रपर पूरा-पूरा ध्यान देगी और विधान परिषद्‌में गुजरात राज्य तथा अन्य राज्योंकी ओरसे नियुक्त गैर-सरकारी सदस्य इस कार्यका बीड़ा उठा लेंगे तथा निर्दोष जमींदारोंको न्याय प्राप्त करानेमें हाथ बँटायेंगे।

रौलट अधिनियमके विरुद्ध प्रार्थनापत्र

हम अखिल भारतीय होमरूल लीग द्वारा प्रकाशित प्रार्थनापत्रकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। इस प्रार्थनापत्रमें रौलट अधिनियमके विरुद्ध उठाये गये मुख्य-मुख्य मुद्दोंको प्रकाशित किया गया है। सबसे बड़ा मुद्दा यह है कि प्रजा एकमतसे

१. देखिए "नडियाद और बारेजडीपर जुर्माना", २८-९-१९१९।

रौलट अधिनियमोंको नापसन्द करती है। इन कानूनोंको रद करवानेके लिए जनताको जो आन्दोलन करना पड़ा है और दुःख उठाने पड़े हैं, यदि ये कानून फिर भी रद नहीं किये जाते तो जनताका स्वाभिमान घटेगा और सरकारका निरंकुशतापूर्ण रवैया बढ़ेगा और लगभग असह्य हो जायेगा। हमें आशा है कि रौलट अधिनियमके विरुद्ध इस प्रार्थनापत्रपर बहुत सारे व्यक्ति हस्ताक्षर करेंगे। इसपर ब्रिटिश भारतमें बसनेवाले सभी भारतीय हस्ताक्षर कर सकते हैं और हम आशा करते हैं सभी वयस्क स्त्री-पुरुष उसपर हस्ताक्षर करके उसे होमरूल लीगके पास भेज देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२–१०–१९१९

१५०. तार : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

अहमदाबाद
अक्तूबर १३, १९१९

सी० एफ० एन्ड्रयूज
फीरोजपुर रोड
लाहौर

काठियावाड़से अभी-अभी लौटा हूँ। यदि तुम बीच नवम्बर या उसके बाद भी रवाना हो जाओ तो भी देर न होगी।[1]

गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स

१५१. भाषण : अहमदाबादके गुजरात कॉलेजमें[2]

[अक्तूबर १३, १९१९]

अध्यक्ष महोदय, बहनो और भाइयो,

जो अंग्रेज भाई और बहनें आज यहाँ आये हैं वे मुझे [इस बातके लिए] क्षमा करेंगे कि मैं अपनी ही भाषामें बोल रहा हूँ। आनन्दशंकरभाईके बारेमें मेरे लिए कुछ भी कहना मुश्किल है। उनके प्रति प्रीतिसूचक उद्गारोंको व्यक्त करना न तो मुझे अच्छा लगेगा और न उन्हें ही। फिर भी कुछ-न-कुछ कहना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। विद्यार्थियोंने उन्हें जो मानपत्र दिया है उसमें लिखा है: "हालाँकि आप

१. एन्ड्रयूजका इरादा स्थिति-निरीक्षणके लिए दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा करनेका था।

२. यह भाषण प्रोफेसर आनन्दशंकर ध्रुवके बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें सह-उप-कुलपति नियुक्त किये जानेपर उनके सम्मानमें दिये गये विदाई-समारोहके अवसरपर दिया गया था।

हमारे समक्ष और हमारे बीच इतने वर्षोंसे रह रहे हैं, तो भी हम आपको पहचान नहीं पाये हैं।" ये उद्‌गार बिलकुल सही हैं। मैं जबसे गुजरातमें आया हूँ तभीसे देख रहा हूँ कि हम लोग इस व्यक्तिको पूरी तरह नहीं पहचान सके हैं, हमने इनकी कद्र नहीं की है। इससे उन्होंने तो कुछ भी नहीं खोया, लेकिन गुजरातने बहुत-कुछ खो दिया है। इनकी विद्वत्ताके सम्बन्धमें तो वे लोग ही, जो मेरी अपेक्षा इन्हें अधिक अच्छी तरह पहचानते हैं, कह सकते हैं। मेरे लेखे तो इनका चारित्र्य, व्यवहार और रहन-सहन ही इनकी सच्ची विद्वत्ता है।

आनन्दशंकरभाई गुजरातकी अमूल्य निधि हैं। हमें इस निधिका जैसा उपयोग करना चाहिए था वैसा हम नहीं कर सके हैं। इन्होंने कितनी ही उलझनोंको अपने औदार्य, चातुर्य और कौशलसे सुलझाया है। मैंने इनके लेखोंको पढ़ा है और अब भी पढ़ता हूँ और मुझे लगता है कि हमें उनसे बहुत-कुछ सीखना है। यदि गुजरातने इनके लेखोंसे पूरा लाभ उठाया होता तो गुजरातका जीवन कितना आगे बढ़ गया होता, इसका मैं अनुमान नहीं कर सकता। गुजरातको आनन्दशंकरभाईके रूपमें सारे हिन्दुस्तानको अपनी भेंट अर्पित करनी है। यदि वे बम्बई जाते तो मुझे बम्बई [के लोगों] से ईर्ष्या होती। बम्बई जानेकी अपेक्षा अहमदाबादमें ही बने रहें, यह ज्यादा अच्छा है। बम्बईके लोग निस्सन्देह इनसे कुछ-न-कुछ जरूर ले सकते थे, लेकिन बम्बई गुजरात है और गुजरात बम्बई।

गुजरात अब आनन्दशंकरभाईको काशी भेजकर भारतको एक अमूल्य भेंट दे रहा है। भारत इस भेंटका जो लाभ उठायेगा उसके लिए हम जितना गर्व करें कम है। अंग्रेजी मुहावरेके अनुसार यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये भरपूर जवानीमें हैं। इनके परिवारने बहुत त्याग किया है।

पंडितजीने[1] आनन्दशंकरभाईकी ओर दृष्टिपात किया है। इसका कारण केवल इनकी विद्वत्ता ही नहीं है। उन्होंने इन्हें इसलिए भी चुना है कि यह दिखाया जा सके कि संस्था किस खूबीसे चलाई जा सकती है और भारतीयोंमें योजना-क्षमता और व्यवहार-कुशलता है या नहीं। हिन्दू विश्वविद्यालयकी जटिल गुत्थियोंको भारतवर्षमें यदि कोई व्यक्ति सुलझा सकता है तो वह व्यक्ति आनन्दशंकरभाई ही हैं। और अन्तमें मेरी यही शुभ-कामना है कि ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे, हिन्दू विश्वविद्यालयको उन्नतिके जिस शिखरपर चढ़ना चाहिए वह उसपर चढ़ सके और भारत तथा गुजरात उससे लाभान्वित हों।

हस्तलिखित गुजराती रिपोर्ट (एस० एन० ६४१४) से।

१. पंडित मदनमोहन मालवीय।

१५२. पंजाबकी घटनाओंका शिकार

बिहारीलाल सचदेव चौबीस वर्षका एक नवयुवक है। उसके परिवारमें उसकी युवा स्त्री और बहत्तर वर्षके वृद्ध पिता हैं। वह गुजराँवाला-जत्थेके लोगोंमें से है। उसे आजीवन देश-निकाले तथा सम्पत्तिकी जब्तीका दण्ड दिया गया था। उसने "सम्राट्के विरुद्ध युद्ध छेड़ा" था। इस्तगासेने ऐसा ही कहा और अदालतने ऐसा ही पाया है। पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयने इस दण्डको घटाकर चार वर्षका कारावास कर दिया है। इससे उस कैदीको, जो निर्दोष है या उसके पिताको जो अपने अन्तिम दिन गिन रहा है, क्या तसल्ली मिल सकती है?

और इसलिए बेचारे बिहारीलालने दूसरी अर्जी[1] पेश की है, क्योंकि "उसका खयाल है कि किसी भारी चूकके कारण ही उसके मामलेपर पूरा विचार नहीं किया जा सका होगा।" अर्जी बहुत ही युक्तिपूर्ण है। यह इतनी अच्छी तरह लिखी गई है कि सचमुच पढ़ने लायक है। यह शाब्दिक चमत्कार तथा बेकारके विशेषणोंसे लगभग पूरी तरह मुक्त है। साथ ही यह इतनी छोटी है कि व्यस्त पाठक भी इसे आसानीसे पढ़ लेगा।

अभी पिछले दिनों एक मित्रने मुझसे कहा कि वे अपने जीवनके चालीस वर्षों-तक ब्रिटिश न्यायकी प्रशंसा करते रहे लेकिन पंजाबने उनकी आँखें खोल दीं। अब वे ब्रिटिश न्याय-भावनामें विश्वास नहीं रखते। उन्होंने बड़े तैशमें कहा, "आपके सुधारों-की मुझे जरा भी परवाह नहीं है। यदि हमारा सम्मान और हमारा जीवन सुरक्षित नहीं है, यदि अन्यायपूर्वक जेलमें ठूंस दिये जानेका खतरा हमपर बराबर बना हुआ है तो हमें आपके सुधारोंसे क्या लाभ? मैं उनको जरा भी महत्त्व नहीं देता।"

जो हो, बिहारीलाल सचदेवका मामला ऐसा ही जान पड़ता है। यह मामला शायद गलत शिनाख्त का है। यह युवक एकदम निर्दोष प्रतीत होता है। उसे ४ और ५ अप्रैल या १२ और १३ अप्रैलके मजमोंसे किसी प्रकार सम्बद्ध या उनमें से किसीमें उपस्थित नहीं बताया गया है। मुख्य गवाहका बयान सुनी-सुनाई बातोंपर आधारित है। दूसरी गवाही भी गढ़ी हुई बताई जाती है, और यदि हलफिया बयान सच भी हो तो उससे कोई अपराध प्रकाशमें नहीं आता। अभियुक्तके पक्षमें प्रतिष्ठित और सम्मानित व्यक्तियों द्वारा दिये गये बयानोंकी ओर अदालतने कोई ध्यान नहीं दिया। पंजाबके मामलोंमें दिये जानेवाले फैसलोंसे पाठक इतने परिचित हो गये होंगे जिससे उन्हें विशेष अदालतोंके ऐसे रवैयेसे अब कोई आश्चर्य नहीं होगा। लेकिन आश्चर्य तो इस बातसे होता है कि अब भी, जब पंजाबमें पूरी तरहसे शान्तिका साम्राज्य स्थापित हो गया है, अन्यायके इन मामलोंकी ओर लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदय उचित

१. यह अर्जी भी **यंग इंडिया**के इसी अंकमें प्रकाशित की गई थी।

ध्यान नहीं दे रहे हैं। जैसा पंजाबकी सरकार कर रही है, उस तरह प्रजाकी स्वतन्त्रताके साथ खिलवाड़ करनेवाली किसी भी सरकारको सम्मान पानेका कोई हक नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५–१०–१९१९

१५३. पत्र : अखबारोंको[1]

[बम्बई]
खिलाफत दिवस [अक्तूबर १७, १९१९]

महोदय,

कल मुझपर निम्नलिखित आदेश-पत्र जारी किया गया।

"भारत सुरक्षा (एकीकृत) नियम, १९१५ के नियम ३ के अन्तर्गत, सपरिषद् गवर्नर-जनरलकी पूर्व स्वीकृतिसे पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरने ९ अप्रैल, १९१९ को मोहनदास करमचन्द गांधीका पंजाबमें प्रवेश निषिद्ध किया था और आज्ञा दी थी कि वे बम्बई लौट जायें और बम्बई प्रेसीडेंसीकी सीमाके भीतर निवास करें;

और चूँकि अब इस आदेशकी आवश्यकता का अन्त हो गया है;

तदनुसार अब गवर्नर जनरलकी स्वीकृतिसे लेफ्टिनेंट गवर्नर उक्त आदेशको आज, १५ अक्तूबरसे रद करते हैं।"[2]

मैं सहज ही इसके लिए कृतज्ञ हूँ क्योंकि अब मैं पंजाबका दौरा कर सकता हूँ और वहाँ भरसक जो सेवा सम्भव हो वह कर सकता हूँ। साथ ही मैं यह कहे बिना भी नहीं रह सकता कि इस मुक्ति-आदेशकी प्राप्तिपर मेरे भाव पूर्णतः आनन्दके नहीं थे। निष्कासन और नजरबन्दीके आदेशसे मेरा कोई अपयश न था, क्योंकि मेरी अन्तरात्मा बिलकुल स्वच्छ थी। जब मुझे आदेश-पत्र मिला तो मैंने उसे सरकारकी घोर मूर्खताका कार्य ही समझा। अब यह मुक्ति-आदेश सरकारके लिए श्रेयकारी है परन्तु यह उन मनुष्योंको तो जीवित नहीं कर सकता जिनकी प्राणहानिकी जिम्मेदारी

१. यह अनेक प्रमुख समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ था।

२. वास्तवमें गांधीजीपर से प्रतिबन्ध हटानेकी बातपर सितम्बरमें ही गम्भीरतासे विचार किया जाने लगा था। भारत सरकारके ८ सितम्बरके एक तार (सं० १९१७, गृह विभाग) में कहा गया था: "स्थिति अब अपेक्षाकृत सामान्य है और उनका [गांधीजीका] तुरन्त सविनय अवज्ञा आरंभ करनेका कोई इरादा नहीं लगता। शाही विधान परिषद्में गवर्नर जनरल महोदयके उद्घाटन भाषणको ध्यानमें रखते हुए भारत सरकारकी राय है कि मौजूदा आदेशोंमें ढिलाई करनेका उपयुक्त अवसर इस समय है और यह कि अब उन [गांधीजी] पर प्रतिबन्ध लगाये रखनेका कोई पर्याप्त आधार नहीं है। भारत सरकारका इरादा है कि लॉर्ड हंटरके भारत आगमनके साथ ही सारे प्रतिबन्ध हटा लिये जायें।"

उस निषेधाज्ञापर ही है। इसके अतिरिक्त जबतक रौलट अधिनियम विधान संहितामें मौजूद है, तबतक इस मुक्ति-आदेशसे मुझे कोई प्रसन्नता नहीं हो सकती। नजरबन्दीके आदेशके रूपमें मुझे सविनय-अवज्ञाका एक गढ़ा-गढ़ाया अस्त्र मिल गया था। मैं लोगोंको कहते सुनता हूँ कि सत्याग्रह तो रानी एनके समान ही मृत है[1] और श्री मॉण्टेग्यु कभी रौलट अधिनियमको रद नहीं करेंगे हालाँकि उन्हें यह भी विश्वास है कि यह कभी लागू नहीं किया जायेगा। जो लोग पहली बात कहते हैं वे जानते ही नहीं कि सत्याग्रह क्या है और उसकी कार्य-प्रणाली क्या है। जो दूसरी धारणा रखते हैं वे सत्याग्रहकी शक्तिसे अनभिज्ञ हैं। एक सरसरी निगाह डालनेवाला व्यक्ति भी देख सकता है कि सत्याग्रह धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूपसे देशमें व्यापक होता जा रहा है। जहाँ-तक श्री मॉण्टेग्युकी तथाकथित घोषणाका सवाल है, मैं कहना चाहूँगा कि दक्षिण आफ्रिकाके सबसे शक्तिशाली पुरुषको भी इस बेजोड़ शक्तिके आगे झुकना पड़ा था। सन् १९०९ में जनरल स्मट्सने जनरल बोथा और यूरोपीय जनमतका समर्थन पाकर कहा था कि यद्यपि ट्रान्सवाल एशियाई अधिनियम कभी कार्यान्वित नहीं किया जायेगा किन्तु वे उसे औपचारिक रूपसे कभी रद नहीं करेंगे। परन्तु १९१४म उन्होंने उस अधिनियम-को रद करके और वैधानिक जाति-प्रतिबन्धको प्रवास कानूनसे हटाकर अपनी सामर्थ्य-को सिद्ध किया था।[2] मुझे रत्ती-भर भी शंका नहीं है कि श्री मॉण्टेग्यु और वाइसराय महोदय उसी पुरातन शक्तिके आगे झुकेंगे और रौलट अधिनियमको अवधिकी समाप्तिसे बहुत पहले ही रद कर देंगे। परन्तु वे चाहे वैसा करें या न करें, सत्याग्रहियोंका जीवन-संकल्प अन्य अनेक लक्ष्योंके साथ उस अधिनियमको रद कराना है।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १८–१०–१९१९

१. 'रानी एनके समान मृत' अंग्रेजी मुहावरा, जिसका तात्पर्य है बात आई-गई हो जाना। सरकारी अधिकारियोंका अनुमान था कि सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त हो रहा है। बम्बई सरकारने मद्रास सरकारके मुख्य मंत्रीको एक गोपनीय पत्रमें लिखा था: "सपरिषद्-गवर्नर महोदयका मत है कि गांधीजीका सत्याग्रह आन्दोलन फिलहाल मृतप्राय: माना जा सकता है। गुजराततक में जो कि गांधीका मुख्य कार्य-केन्द्र है और जहाँ इस आन्दोलनका सूत्रपात हुआ था, स्थानीय संगठन छिन्न-भिन्न हो गये हैं। इसमें सन्देह है कि गांधी यदि चाहें तो उसे भी पहले जैसे जोशखरोशके साथ पुनर्जीवित कर सकते हैं। स्वयं गांधीका रुख यह है कि जहाँतक सविनय अवज्ञाका सम्बन्ध है यह आन्दोलन अनिश्चितकालके लिए स्थगित हो गया है . . . ।"

२. देखिए खण्ड १२।

१५४. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

आश्रम
साबरमती
अक्तूबर १८, १९१९

प्रिय गुरुदेव,

अहमदाबादमें दिसम्बरमें एक साहित्य सम्मेलन होगा। उसकी तारीखें १३, १४ और १५ दिसम्बर हैं।[1] आयोजकोंकी प्रबल इच्छा है कि आप इस अवसरको अपनी उपस्थितिसे शोभायमान करें और मैं आशा करता हूँ कि यदि आप किसी भी प्रकार समर्थ होंगे तो गुजरातको निराश नहीं करेंगे।

यह आपका सौजन्य था कि आपने एन्ड्र्यूजको दक्षिण आफ्रिका जानेकी अनुमति दी। मुझे अभी-अभी उनका तार मिला है कि वे जानेके लिए स्वतन्त्र हैं। इससे मुझे काफी तसल्ली हुई है और मुझे विश्वास है कि उनके वहाँ[2] जानेसे सर्वोत्तम लाभ होगा।

मुझे आशा है कि आप स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

हस्तलिखित मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ४६२५) की फोटो-नकलसे।

१५५. पत्र : यू० के० त्रिवेदीको[3]

[अक्तूबर १८, १९१९ के बाद]

प्रिय महोदय,

आपका पत्र[4] मिला।

मेरी सलाह है कि आप संलग्न तार[5] जोहानिसबर्ग भेज दें। मेरी यह भी सलाह है कि आप वाणिज्य और उद्योग विभागको पत्र लिखें। और उनका ध्यान आकृष्ट करें कि [प्रवासियोंको] भूमिके स्वामित्व और व्यापारके अधिकारसे वंचित करनेके

१. यह तारीख बादमें कविवरकी सुविधानुसार आगे बढ़ा दी गई थी।

२. दक्षिण आफ्रिका।

३. सहायक मंत्री, साम्राज्यीय नागरिक संघ।

४. यह पत्र १८ अक्तूबरका था। इसके साथ दक्षिण आफ्रिकासे प्राप्त अस्वातका तार संलग्न था जिसमें उन्होंने गांधीजीकी सलाह माँगी थी।

५. उपलब्ध नहीं है।

सम्पूर्ण प्रश्नकी छानबीन की जाये। यह विषय जरा नाजुक है। समस्त दक्षिण आफ्रिका-में सम्पूर्ण राजकीय और व्यापारके प्रश्नकी छानबीनके लिए जोर देना तो व्यर्थ होगा। आयोगके विषयमें चिन्ता की कोई बात नहीं क्योंकि श्री शास्त्रियरकी नियुक्ति लगभग निश्चित है।

आपका विश्वस्त,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखे मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६४८४) से।

१५६. जगत्‌का पिता – ३

मैंने [पिछले अंकमें] सूचित किया था कि ग्राम-व्यवस्था सुधारनेके सम्बन्धमें, मैं अपने कुछ अनुभव प्रकाशित करूँगा। डॉक्टर हरिप्रसादने बहन निवेदिता[1] द्वारा कलकत्तेके एक कूचेके सुधारका वर्णन करके यह सिद्ध कर दिखाया है कि यदि एक भी स्त्री अथवा पुरुष चाहे तो कितना-कुछ कर सकता है। गाँवमें ऐसे काम करना शहरोंके गली-कूचोंका सुधार करनेसे कहीं अधिक आसान है। चम्पारनमें[2] जब स्वावलम्बी पाठशाला खोले जानेका निश्चय किया गया था उस समय मैंने स्वयंसेवकोंकी माँग की थी। वहाँ आये हुए स्वयंसेवकोंमें स्वर्गीय डॉक्टर देव और बेलगाँवके श्री सोमण वकील थे। इन स्वयंसेवकोंको सिर्फ तीन काम सौंपे गये थे। जो लड़के और लड़कियाँ आयें उन्हें पढ़ाना, ग्रामवासियोंको गाँवके आसपासके रास्ते और घर आदि साफ रखनेके बारेमें समझाना-सिखाना तथा रोगियोंको दवा इत्यादि देना। श्री सोमणको भीतिहरवा नामक एक गाँवमें भेजा गया था। डॉक्टर देवको उन सभी गाँवोंमें दवाका प्रबन्ध करने-के लिए नियुक्त किया था, जहाँ हमने पाठशालाएँ खोली थीं। उन्हें भीतिहरवाकी पाठशालामें अधिक समयतक रहनेका अवसर मिला। वहाँके लोगोंको सुधारादिके सम्बन्ध-में राजी करना मुश्किल काम था। डॉक्टर देवने लोगोंको बताया कि उन्हें कौन-कौनसे सुधार करने चाहिए लेकिन ग्रामवासियोंने उनकी बात नहीं सुनी। बात रास्तोंको साफ करने और कुएँके आसपासकी सारी कीचड़ हटाकर चबूतरा बनानेकी थी। आखिरकार डॉक्टर देव और श्री सोमणने हाथमें कुदाली पकड़ी तथा कुएँके आसपास चबूतरा बनाना तथा रास्तोंको साफ करना आरम्भ किया। काम प्रारम्भ होते ही बात इस छोटेसे गाँवमें बिजलीकी तरह फैल गई। ग्रामवासियोंने डॉक्टर देवके वचनोंके मर्मको समझा। डॉक्टर देवके कार्यमें जो बल था वह उनके वचनोंमें नहीं था। ग्रामवासी स्वयं भी सफाई करनेके लिए निकल पड़े और तबसे भीतिहरवाके रास्ते और कुएँ सुन्दर दिखाई देने लगे। कूड़ेके ढेर लुप्त हो गये। इस बीच फूसकी जो पाठशाला बनाई गई थी, वह किसी उपद्रवी द्वारा जला दी गई। अब क्या किया जाये, यह एक

१. भगिनी निवेदिता (१८६७–१९११); स्वामी विवेकानन्दकी शिष्या एक अमरीकी महिला।
२. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ ९३-९४।

बड़ा प्रश्न उठ खड़ा हुआ। क्या फिरसे फूसकी पाठशाला बनाएँ और फिर उसके जला दिये जानेका जोखिम उठाया जाये ? श्री सोमण और डॉक्टर देवने ईंटकी शाला बनानेका निश्चय किया। दोनों भाषण करनेकी कला तो सीख गये थे। उन्होंने आवश्यक सामानकी भिक्षा माँगी। जहाँ जरूरत जान पड़ी वहाँ पैसे भी दिये, किन्तु दोनोंने स्वयं मजूरी करना जारी रखा। पक्की पाठशालाकी नींव उन्होंने अपने हाथसे रखी, ग्रामवासी भी सहयोग देने लगे। कारीगरोंने भी यथाशक्ति उनकी मदद की और भीतिहरवाकी शाला आज भी इस बातकी साक्षीके रूपमें मौजूद है कि एक-दो व्यक्ति भी जो चाहें सो कर सकते हैं। इस तरहका कार्य सिर्फ एक ही गाँवमें नहीं वरन् कम-ज्यादा जहाँ-जहाँ पाठशालाएँ खोली गईं उन सभी स्थानोंपर किया गया और ग्रामवासी भी शिक्षकोंके कार्यकी आकर्षण शक्तिसे प्रभावित होकर तदनुरूप काम करनेवाले बन गये। इस सेवामें बहुत ज्यादा होशियारीकी नहीं बल्कि उत्साह और धैर्यकी जरूरत थी। होशियारी और कारीगरी आदि गुण तो दूसरोंसे मिल जाते थे।

खेड़ा जिलेमें फसलका मूल्य आँका जानेको था। यह काम तबतक सम्भव नहीं था जबतक कि सारे किसान मदद न करते। हर गाँवके लिए नियुक्त स्वयंसेवकने न केवल सारी सूचना प्राप्त की बल्कि उन्होंने किसानोंके मनको भी हर लिया। मैं भिन्न-भिन्न स्थानोंके ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूँ।

अब हम देख सकते हैं कि जो व्यक्ति गाँवोंका सुधार करना चाहता है, उसे कहाँसे आरम्भ करना चाहिए। उसे सेवाके लिए वही गाँव चुनना चाहिए जहाँ वह रहता चला आया है। उसे सभी ग्रामवासियोंसे जान-पहचान कर लेनी चाहिए और बिना किसी आडम्बरके उनके दुःखमें भाग लेना चाहिए। वह गलियाँ आदि साफ रखनेमें उनकी मदद माँगे। पड़ोसी हँसी उड़ायेंगे, अपमान भी करेंगे — स्वयंसेवक यह सब सहन करेगा, और इसके बावजूद पहलेकी तरह उनके दुःखमें भाग लेगा तथा स्वयं अकेले ही गलियोंको साफ रखेगा। वह धीरे-धीरे अपनी स्त्री, माँ, बहन आदिको भी इस कार्यमें लगायेगा। पड़ोसी मदद करें या न करें तो भी गलियाँ तो साफ ही रहेंगी और अनुभवसे मालूम होगा कि ऐसा करनेमें अधिक समय नहीं देना पड़ता। अन्तमें पड़ोसी स्वयं काम करने लगेंगे और एक गलीकी सुगन्ध समस्त गाँवमें फैलेगी।

यदि यह सेवक अधिक समझदार और ठीक-ठीक पढ़ा-लिखा हुआ हो तो अपनी गलीके बच्चों और ऐसे प्रौढ़ व्यक्तियोंको भी जो निरक्षर हैं, अक्षरज्ञान करायेगा, यदि उसकी गलीमें कोई बीमार हो और वह किसी वैद्यसे अपना उपचार करवानेमें असमर्थ हो तो वह उसके लिए वैद्य खोज निकालेगा। सार-सँभाल करनेवाला कोई न हुआ तो स्वयं सार-सँभाल करेगा। ऐसा करते हुए उसे प्रत्येक पड़ोसीकी आर्थिक और नैतिक स्थितिका अच्छा ज्ञान हो जायेगा। इस ज्ञानको पानेके बाद उसे जो सुधार करने उचित जान पड़ेंगे वह उनकी योजना बनायेगा और इस तरहके सुधारोंको करते हुए वह अपने पड़ोसीकी और उसकी मार्फत सारे गाँवकी राजनैतिक स्थितिपर भी विचार करेगा। और यदि इस खयालके साथ-साथ उसमें लोगोंसे एकतासे काम लेनेकी शक्ति हुई तो ऐसा व्यक्ति लोगोंकी राजनैतिक स्थितिको भी सुधार सकेगा। आफ्रिका, चम्पारन, खेड़ा

आदि प्रदेशोंमें मैंने ऐसा देखा है कि जिन्हें हम अशिक्षित मानते हैं उन्होंने धैर्य और लोक-भावनाके बलपर बहुत सेवा की और वे जनसमाजको प्रभावित भी कर सके। जिन-जिन गाँवोंमें मैंने एक भी सचेत पुरुष अथवा स्त्रीको देखा तो मैंने उन्हें सुन्दर काम करते हुए ही पाया।

अब हम स्वच्छता तथा नैतिक, शारीरिक और आरोग्यके सम्बन्धमें कुछ नियमोंकी जाँच करेंगे। मुझे उम्मीद है कि जिन्हें वे नियम पसन्द आयेंगे वे उन विषयोंके अनुसार अपने-अपने गाँवोंमें कार्य करने लगेंगे। यदि लोगोंने उनके अनुसार काम किया तो थोड़े ही समयमें कुछ गाँवोंकी स्थितिमें बहुत-बड़ा परिवर्तन हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९–१०–१९१९

१५७. गुजरातकी भेंट

गुजरात-रत्न प्रोफेसर आनन्दशंकर बापुभाई गुजरात कॉलेजके साथ अपना सत्ताईस वर्ष पुराना सम्बन्ध तोड़कर काशी विश्वविद्यालयसे नाता जोड़ने जा रहे हैं; यह बात उनके मित्रोंको कुछ समय पहले मालूम हो चुकी थी और अब इस सप्ताह जो दो समारोह हुए उनसे यह बात सभीको मालूम हो गई है। एक समारोह साहित्य सभाकी ओरसे और दूसरा गुजरात कॉलेजके विद्यार्थियोंकी ओरसे किया गया था। दूसरे समारोहकी अध्यक्षता कॉलेजके प्रिंसिपल महोदयने की थी। इन दोनों समारोहोंमें प्रोफेसर ध्रुवको मानपत्र प्रदान किये गये। उन्हें मानपत्र देकर गुजरातियोंने स्वयं अपनेको सम्मानित किया है।

प्रो० ध्रुवमें धर्म और विद्वत्ताका जितना सुंदर समन्वय दिखाई देता है उतना सुन्दर समन्वय बहुत-कम भारतीयोंमें दिखाई पड़ता है। इन्होंने शिक्षा देनेका व्यवसाय पैसे कमानेके इरादेसे नहीं अपनाया है। अर्थात् उन्होंने अध्यापनका कार्य इस मान्यताके आधारपर सँभाला है कि इसके द्वारा वे देशकी विशेष सेवा कर सकेंगे। एक लेखकके रूपमें प्राप्त अपनी साखके प्रति वे पूरी तरह जागरूक रहे हैं। लेखककी जवाबदेही वैसे भी साधारण नहीं है, फिर उनमें भी जिन्हें प्राचीन साहित्य-सागरमें गोते लगाकर मोती निकालने हों, उनकी जवाबदेही तो बहुत ज्यादा हो जाती है। संस्कृत साहित्य समुद्रके समान है। इसकी गहराईका अन्दाज लगाना मुश्किल है। इस साहित्यका सामान्य ज्ञान बहुत-कम लोगोंको है। इसलिए इसमें आलस्य और अप्रामाणिकताकी गुंजाइश है। आधुनिक साहित्यमें हम इसके उदाहरण कदम-कदमपर देख सकते हैं। 'भगवद्गीता'के हमारे पास कितने ज्यादा अनुवाद हैं; मगर उनमें एकसे भी सन्तोष कर सकना कठिन है। गुजराती जनताके समक्ष 'मनुस्मृति'का जो अनुवाद आया है उसपर पूरी तरह भरोसा नहीं किया जा सकता। आलस्यसे, अज्ञानसे और अनेक बार जान-बूझकर की गई गलतियोंके कारण जनताको

संस्कृत साहित्यका अपूर्ण अथवा गलत अनुवाद मिलता है। ऐसे समय आनन्दशंकर-भाईने जो-कुछ दिया है वह प्रकाशस्तम्भके समान है। इनके द्वारा किये गये अर्थोंके सम्बन्धमें बेईमानी, अज्ञान, उतावली अथवा आलस्यका दोषारोपण किया जाना सम्भव ही नहीं है। उन्होंने जो-कुछ भी लिखा है वह शुद्ध बुद्धिसे — केवल सत्य मानकर निष्पक्ष और उदार मनसे लिखा है। इस कारण जनता उसे निर्भयतापूर्वक ग्रहण कर सकती है।

उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन और सार्वजनिक कार्योंमें जिस चारित्र्यका परिचय दिया है, व्यक्तिगत जीवनमें उनके सम्पर्कमें आनेवाले लोगोंको भी उसी चारित्र्यके दर्शन हुए हैं। अपने चरित्रबलके कारण वे पुरानी और नई पीढ़ीको प्रभावित कर सके हैं। प्राचीन विचारों, पद्धतियों और रूढ़ियोंका मान करते हुए भी इन्होंने आधुनिकताकी [उचित] तरंगों और उत्साहको कभी नहीं रोका। दोनोंमें से अतिशयताके दोषको निकालनेका प्रयत्न किया है। जैसा कि विद्यार्थियोंकी ओरसे दिये गये मानपत्रमें कहा गया है, गुजरात राज्यने आजतक प्रो० ध्रुवकी सेवाओंका पर्याप्त उपयोग नहीं किया। उनके पास पड़े हुए अमूल्य खजानेसे हमने पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया। हमने उन्हें पूर्णरूपेण नहीं पहचाना।

अब आप अपेक्षाकृत एक विशालतर क्षेत्रमें प्रवेश कर रहे हैं। काशी विश्वविद्यालय अभी एक बहुत-छोटा शिशु है। इसके पिता हिन्दू धर्मके आचार्य तुल्य, यथा नाम तथा गुण, देशभरमें विख्यात पं० मदनमोहन मालवीय हैं। इस एक ही पुरुषके प्रयत्नसे लगभग एक करोड़ रुपया इकट्ठा हो गया है और इस एक पुरुषके प्रयत्नसे विश्व-विद्यालय अस्तित्वमें आया है। लेकिन विश्वविद्यालय रूपी यह शिशु अभी चलना नहीं सीखा है; सिर्फ घुटनोंके बल चलता है। इसके लिए एक अभिभावककी जरूरत है। पंडितजी इसकी खोजमें थे। विश्वविद्यालय चलानेमें अनेक प्रकारके विघ्नोंका सामना करना पड़ता है; इसके अतिरिक्त जहाँ धर्मको उसका उचित स्थान दिया जाता है वहाँ धार्मिक पुरुषोंकी जरूरत बनी ही रहती है। पंडितजीको ऐसा पुरुष गुजरातसे मिला, इसके लिए गुजरात गर्वका अनुभव कर सकता है। आनन्दशंकरभाईके चातुर्य, गाम्भीर्य, प्रामाणिकता, सरलता, उदारता और उनकी शान्त प्रकृति आदि गुणोंका इस विश्वविद्यालयमें अच्छा उपयोग हो सकेगा। गुजरातकी इस अनुपम भेंटके लिए तथा विश्वविद्यालयको [इसकी प्राप्तिके लिए] हम बधाई देते हैं और हमें विश्वास है कि आनन्दशंकरभाई इस नये और विशाल क्षेत्रमें देशकी अच्छी सेवा कर सकेंगे। हमारी प्रार्थना है कि ईश्वर इन्हें दीर्घायु करे और इस कठिन कार्यको सम्पन्न करनेकी पूरी शक्ति प्रदान करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-१०-१९१९

१५८. टिप्पणियाँ

फिजूलखर्ची

हम श्री गोपालजीके पत्रकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। नववर्षकी बधाईका पत्र भेजनेका जो रिवाज पड़ गया है, उसका कोई अर्थ नहीं है; वह फिजूलखर्ची है। श्री गोपालजी कहते हैं कि यह खर्च करनेके बदले लोग उतना पैसा पंजाब-संकट निवारणमें दें। उन्होंने और उनके मित्रोंने यही किया है और उसी तरह हम सब [भी] करें तो हम अनायास ही पंजाबके दुःखमें हाथ बँटा सकेंगे।

हम नहीं कह सकते कि नववर्षके कार्ड छपवाना और भेजना, पुराना रिवाज है या नया। हम यह भी नहीं कहते कि नये रिवाजोंको नहीं अपनाना चाहिए। प्राचीन ही प्रशस्त हो, सो बात भी नहीं है। प्राचीन प्रथाका त्याग करनेसे पूर्व हमें विचार करना चाहिए। नये रिवाजोंको एकदम स्वीकार न करना बुद्धिमानी है। कार्ड भेजनेका यह रिवाज यूरोपसे आया है। यदि हम यूरोपसे मोहित न हुए होते तो बधाईका कार्ड भेजनेके रिवाजको कदापि न अपनाते। मित्र लोग ऐसे कार्डसे प्रसन्न नहीं होते। यह तो तिब्बतके प्रार्थना-चक्रके समान हुआ। तिब्बतके कुछ लोग एक ही प्रार्थना अथवा जपको लाखों बार कहनेके इच्छुक तो रहते हैं लेकिन उतना समय नहीं बचा पाते, इसलिए एक [जप-अंकित] चक्र रखते हैं और चक्र जितने फेरे लगा लेता है वे मानते हैं कि उतनी प्रार्थना हो गई। उसी तरह हम परिश्रम किये बिना अपने मित्रोंका कार्डसे अभिनन्दन करना चाहते हैं। हमें तो लगता है कि यह जंगली रिवाज है। जिन्हें हम याद करना चाहते हों, उन्हें हम विशेषरूपसे पत्र लिखें, यह बात तो समझमें आती है। [छपा छपाया] कार्ड भेज देना एक अत्यन्त सामान्य क्रिया है और उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति बाप, भाई, बहन, स्त्री, मित्र और अपनी पुत्रीको एक ही तरहके कार्ड भेजता है तो कोई इसे भले ही समभावकी निशानी मान ले; हमें तो यह सबका अपमान ही लगता है। इसलिए हम कार्ड भेजनेके रिवाजको सर्वथा नापसन्द करते हैं। लेकिन इस समय तो कार्डके बदले जो सुझाव दिया गया है, उसका सबको स्वागत करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-१०-१९१९

१५९. पत्र : वत्तलको

[अहमदाबाद
अक्तूबर २२, १९१९ के पूर्व][1]

प्रिय श्री वत्तल,

आपका पत्र बम्बईमें मिल गया था; उत्तर देनेमें देरीके लिए क्षमा करेंगे। मैंने बम्बईसे लौटकर अपने कागजात देखे कि कुछ मिलता है या नहीं। आपने मुझसे लगभग १८ साल पूर्वकी घटनासे सम्बन्धित कागजात माँगे हैं। मैंने अपनी पुरानी फाइलें देखीं, लेकिन आपने जो चाहा है वह-सब तो मुझे नहीं मिला। फिर भी, बोअर युद्धके समय भारतीय समाजके कार्योंकी दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंके मनपर क्या छाप पड़ी थी, [इन कागजोंसे] मोटे तौरपर उसका अन्दाज तो हो ही जायेगा। श्री एस्कम्ब, जिन्होंने हमें सहयोगके लिए निमन्त्रित किया, नेटालके प्रधान मन्त्री और नटाल नागरिक सेनाके कमांडर रह चुके थे, और इसी प्रकार सर जॉन रॉबिन्सन भी वहाँके एक भूतपूर्व प्रधान मन्त्री थे। मैं इन बातोंका उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि साथके कागजोंमें[2] आपको ये सारे नाम मिलेंगे। हम लोग कॉलेंजों, स्पियनकॉपकी लड़ाईमें मौजूद थे और वॉलक्रांजकी मुठभेड़में भी। हमें घायल लोगोंको डोलीपर उठाकर कोई २० मील दूर ले जाना पड़ता था और रास्तेमें उन्हें खिलाना-पिलाना, उनकी सेवाशुश्रूषा आदि करनी पड़ती थी। लेडीस्मिथके उद्धारसे सम्बन्धित जनरल बुलरके खरीतेमें मेरे नामका उल्लेख भी किया गया था। सहायक दलके अगुओंको दक्षिण आफ्रिकी युद्ध-पदक दिये गये। लेडीस्मिथपर जब एक पहाड़ीसे बोअर लोग अपनी तोपोंसे लगातार गोले बरसा रहे थे, उस समय गंगासिंह[3] नामक गिरमिटिया भारतीय उस पहाड़ीके बिलकुल सामने एक पेड़पर जा चढ़ा और वहाँसे वह, जब भी तोप चलाई जाती, उसकी कौंध देखकर घंटा बजाता और इस प्रकार लोगोंको आगाह करता कि गोला आ रहा है, उससे बचनेके लिए जहाँ जगह मिले छिप जाओ। उसने अपना यह भयानक और दुर्वह कार्य बड़ी मुस्तैदी और चौकसीसे सम्पन्न किया और उसकी इस दिलेरी और वफादारीके लिए लॉर्ड कर्जनने उसके लिए खिलअत भेजी। डर्बनके मेयरने लॉर्ड कर्जनकी ओरसे डर्बन टाउन हॉलमें उसे सार्वजनिक रूपसे यह खिलअत बख्शी थी।

१. यह पत्र अहमदाबादसे लिखा गया जान पड़ता है। सही तिथि ज्ञात नहीं है। फिर भी ऐसा लगता है कि यह तथा अगला पत्र अक्तूबर २२, १९१९ के पूर्व लिखे गये होंगे; क्योंकि उसके बाद गांधीजी पंजाब चले गये और फिर उन्हें वर्षके अन्ततक वहीं रहना पड़ा।

२. ये उपलब्ध नहीं हैं।

३. यहाँ प्रभुसिंह होना चाहिए था; देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १७९।

दु:ख है कि आपने अपने पत्रमें जिन काव्यांशोंका उल्लेख किया है वे मुझे मिल नहीं पाये। उनके लिए मैं अपने डर्बनके मित्रोंको लिख रहा हूँ। बोअर युद्धके समय हमारी संख्या १,००० थी। बोअर युद्धके विषयमें इतना ही।

फिर १९०६में जूलू विद्रोह हुआ। उस समय भी हमने सेवा करनेकी अपनी तैयारी जाहिर की। तब बहुत कम लोगोंकी जरूरत थी। निदान उसमें हममें से केवल २० लोगोंने मिलकर परिचारकों, अर्दलियों और डोलीवाहकोंका एक छोटा-सा दल संगठित किया। हमें घायलोंको लेकर एक-एक बारमें मीलों, कभी-कभी तो अश्वारोही सैनिक-दलके पीछे-पीछे ४०–४० मील प्रतिदिनके हिसाबसे, चलना पड़ता था। इस समय युद्धका क्षेत्र असीमित था। इस छोटे-से दलने युद्धकी सारी जोखिमें उठाईं। नेटालके तत्कालीन गवर्नर सर हेनरी मैक्कलमने इस दलकी सेवाओंकी प्रशस्ति करते हुए एक व्यक्तिगत पत्र लिखा था।

और तब आया यूरोपीय युद्ध। भारतीयोंने एक दल संगठित किया। सीधे जनरल स्मट्सके अधीन पूर्वी आफ्रिकामें कितने लोगोंने काम किया, यह मुझे याद नहीं आता; किन्तु मुझे अपने एक दक्षिण आफ्रिकावासी मित्रसे, जो स्वयं इस दलमें शामिल थे, मालूम हुआ है कि उन्होंने अपने कामसे अपने अधिकारीको पूरा सन्तोष प्रदान किया था। अगर और किसी जानकारीकी जरूरत हो तो मुझे लिखिए। यदि इन कागजोंको देखकर आप मुझे यथासम्भव जल्दी ही वापस भेज दें तो बड़ी कृपा हो।

हृदयसे आपका,

वत्तल
निजी सचिव
बीकानेर

हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६८५३) की फोटो-नकल से।

१६०. पत्र : एक मित्रको

[अक्तूबर २२, १९१९के पूर्व]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। इसमें क्षमा माँगनेकी कोई बात नहीं है। मेरी समझमें आप शायद यह चाहते हैं कि मैं वाइसरायको अपराधी मानकर उनकी अच्छी खबर लूँ। यदि आपका यही आशय है तो आप मेरे लेख पढ़नेपर देखेंगे कि मैंने यही किया भी है। वस्तुत: मैंने सुझाव दिया है कि छोटे कर्मचारियोंको तो छेड़नेकी जरूरत ही नहीं है।[1] वाइसराय और गवर्नरको ही निष्प्रभ करना हमारा काम है। मुरौवत, सद्भाव या सहयोग पानेकी इच्छाके कारण मैं सत्यपर पर्दा डाल देता हूँ, इस आरोपका

१. देखिए "दण्डविमुक्ति विधेयक", २०–९–१९१९।

मैं कदापि समर्थन नहीं कर सकता। मेरे लिए इन तीनोंकी कसौटी सचाई ही है। और यदि मित्रोंको ऐसा लगा हो कि मुझसे त्रुटि हुई है तो वह जान-बूझकर नहीं हुई। मैं वाइसरायको वापस बुला लेनेकी माँग करनेवालोंमें शरीक नहीं हुआ; क्योंकि मैं अपने बाण हवामें कभी नहीं छोड़ता। जितनी चिन्ता मुझे न्याय पानेकी है, उतनी वाइसरायकी वापसीकी नहीं। पैगम्बरकी जिस सुन्दर कहानीका आपने उल्लेख किया है उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ और वस्तुतः उस दृढ़ताको मैंने नम्रभावसे अपने जीवनमें उतारनेका प्रयास किया है। भले ही मुझे उसमें कभी सफलता न मिली हो। मैंने किसी धमकीसे डरकर सविनय अवज्ञा आन्दोलनको मुलतवी कर दिया है, ऐसा मानकर आप अपने और मेरे प्रति भी अन्याय करते हैं। मैंने सविनय अवज्ञाको मुलतवी किया है सत्याग्रहके ही नियम और आदेशोंके अनुसार। अलबत्ता सत्याग्रह मेरे लेखे जो-कुछ है उसके अनुसार मुझे लगता है कि आप अभीतक सत्याग्रहके सिद्धान्तोंको आत्मसात् नहीं कर सके हैं, इसीलिए आपसे इसे समझनेमें यह भारी भूल हुई है। जब बाहरी लोग सत्याग्रहीको कमजोर हो गया मानते हैं तब वह पहलेकी अपेक्षा अधिक सशक्त होता है। सविनय अवज्ञाके मुलतवी कर दिये जानेसे रौलट अधिनियम रद कर दिये जानेका दिन पास सरक आया है। कानूनकी संहितासे तो उस अधिनियमको हटवाना ही है, मात्र निलम्बित कर दिये जानेसे मुझे सन्तोष नहीं होगा। यदि उसे हटवानेके लिए मुझे प्राण भी देने पड़ें तो मैं दूँगा क्योंकि, मैं फिर कहता हूँ कि सत्याग्रह मेरा जीवन है, श्वास है। आप आश्वस्त रहिये; मैं चाहे जिन कामोंमें क्यों न लगा रहूँ, रौलट अधिनियम रद करानेका सवाल मेरे मनमें सदा बना रहता है। मुझे खुशी है कि आप स्वदेशीमें दिलचस्पी ले रहे हैं। यह जानकार दुःख हुआ कि आपको बम्बईके एक भण्डारका कुछ-अच्छा तजुर्बा नहीं हुआ। आप अपनी जरूरतका सारा कपड़ा सबसे सस्ती दरपर इस स्वदेशी भंडारसे ले सकते हैं। पता है . . .

यदि आपको कोई कठिनाई हो तो मुझे लिखियेगा। कृपया 'यंग इंडिया' के एवजमें मुझे दो उर्दू समाचारपत्र अवश्य भेजियेगा।

इमाम साहब बावजीर आजकल मेरे साथ रह रहे हैं। वे कभी-कभी उन्हें पढ़कर मुझे सुनायेंगे। मैं विज्ञापन छापनेके खिलाफ हूँ, क्योंकि वे बहुत ही झूठे होते हैं। हर अच्छे समाचारपत्रको उन पुस्तकोंका विज्ञापन निःशुल्क छापना चाहिए जिन्हें वह जनताके पढ़ने योग्य मानता है। मेरी रायमें यह समाचारपत्रोंका एक आवश्यक कर्त्तव्य है। मैं यह भी महसूस करता हूँ कि विज्ञापन छापनेके लिए हमारी एक सामान्य एजेन्सी होनी चाहिए जो कुछ शुल्क देनेपर सभी उपयोगी चीजोंको विज्ञापित कर दिया करे। परन्तु समाचारपत्र विज्ञापन छापकर पैसा कमायें, इस विचारको मैं नापसन्द करता हूँ। ऐसा करना जनताको ठगना है। अगले हफ्ते मेरे पंजाब जानेकी आशा है। यदि पंजाबमें नवम्बर-भर मेरे रहनेकी जरूरत न हुई तो निश्चय ही मैं बम्बई या अहमदाबाद आऊँगा। मुझे आपसे दुबारा मिलकर और विचारोंका आदान-प्रदान

करके खुशी होगी। यह तो आप जानते ही हैं कि आपकी स्पष्टवादिता और स्वतन्त्र भावनाकी मैं क़द्र करता हूँ। मेरा खयाल है कि इसमें आपके पत्रकी सभी बातोंका जवाब आ जाता है।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ११७०६) की फोटो-नकलसे।

१६१. सत्याग्रही वकील[1]

सत्याग्रही वकीलोंके मामलेमें उच्च न्यायालयका फैसला,[2] अगर कमसे-कम कहा जाये तो, बहुत ही असन्तोषजनक है। इसने असली सवालको टाल दिया है। इस निर्णयका तर्कसम्मत परिणाम दण्ड होना चाहिए था, इसका स्थगन नहीं। मुकदमेसे सम्बन्धित सत्याग्रही वकीलोंने अपने कार्यपर किसी तरहका पश्चात्ताप प्रकट नहीं किया था। जहाँतक लोगोंको मालूम है, वे आवश्यकता पड़नेपर सविनय अवज्ञाके लिए अब भी तैयार हैं। जब सवाल उठ ही गया था, तो वकीलोंने दयाकी भीख न माँगकर स्पष्ट निर्णय माँगा था। लेकिन अभी तो सब-कुछ जैसा है, उसमें उन्हें यही नहीं मालूम कि उनकी क्या स्थिति है।

विद्वान् न्यायाधीशोंने कानून-पेशा लोगोंके आचरणके जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं, वे हमारी विनम्र सम्मतिमें, विवादास्पद हैं। उदाहरणार्थ इसका क्या मतलब है कि "जो कानूनके द्वारा जीविका कमाते हैं उन्हें कानूनकी मर्यादाका पालन करना चाहिए।" यदि इसका मतलब यह है कि कोई भी वकील किसी भी अवस्थामें, अदालतका कोप-भाजन बने बिना सविनय अवज्ञा नहीं कर सकता, तब तो प्रगतिका मार्ग ही अवरुद्ध हो जायेगा। बुरे कानूनोंके खतरोंको समझनेकी सबसे अधिक सामर्थ्य वकीलोंमें ही होती

१. यह लेख सम्पादकीय "टिप्पणियाँ"के स्तम्भमें प्रकाशित हुआ था।

२. यह फैसला इसी अंकमें छापा गया था। जो इस प्रकार था: "अहमदाबादके सत्याग्रही वकीलोंके मामलेमें बम्बई उच्च न्यायालयके मुख्य-न्यायाधीश और न्यायाधीश हीटन तथा काजीजीने १५ अक्तूबर, १९१९ को अलग-अलग, लेकिन एक तरहके निर्णय सुनाये थे। उच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीशने अपने निर्णयके अन्तमें कहा था: 'मैं इस बातको पूरी तरह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जिन लोगोंके नाम इस उच्च न्यायालय या जिला न्यायालयोंके वकीलोंके रूपमें दर्ज किये जाते हैं वे एक साथ दो मालिकोंके नीचे काम नहीं कर सकते। हो सकता है कि हमारे इस मतपर पूरा विचार करनेके बाद प्रतिवादी इसका औचित्य समझ लें। हम उनसे सख्तीसे पेश नहीं आना चाहते और फिलहाल उन्हें चेतावनी देकर ही सन्तोष कर लेंगे। हम ऐसा इसलिए कर रहे हैं कि हमें बताया गया है कि अप्रैलके उपद्रवोंके बादसे सत्याग्रह सभा चुप है। हम इस मुकदमेमें आगे कोई कार्रवाई करेंगे या नहीं, यह पूरी तरह इस बातपर निर्भर करता है कि आगे चलकर सत्याग्रह आन्दोलन कौन-सी करवट लेता है। इसी दृष्टिसे नोटिसोंको स्थगित कर दिया जायेगा और एडवोकेट जनरल तथा प्रतिवादियों दोनों ही को यह छूट रहेगी कि यदि मौका आये तो वे इस मामलेकी सुनवाईके लिए फिरसे अर्जी दे सकते हैं।"

है और कानूनकी अपराधपूर्ण अवज्ञाको रोकनेके लिए सविनय अवज्ञा करना उनका पुनीत कर्त्तव्य होना चाहिए। वकीलको कानून और स्वतन्त्रताका संरक्षक होना चाहिए और इस हैसियतसे उन्हें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि देशकी विधान संहिता "पवित्र और शुद्ध" बनी रहे। पर बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीशोंने कुछ ऐसा दृष्टिकोण पेश किया है जैसे कि वे केवल पैसोंके लिए काम करते हैं और उन्होंने वकीलों तथा न्यायाधीशोंके कर्त्तव्योंको गड़बड़ा भी दिया है। इस निर्णयसे उत्पन्न असह्य स्थितिसे निकलनेका एकमात्र उपाय यही बच रहा है कि प्रतिवादी वकील मामलेकी फिरसे सुनवाई करानेके लिए कार्रवाई करें, उसपर फिरसे बहस करायें और अन्तिम फैसलेकी माँग करें। भाग्यकी बात है कि न्यायाधीशोंने सत्याग्रही वकीलोंके लिए कमसे-कम यह मार्ग खुला रखा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१०-१९१९

१६२. पत्र : मद्रासके गवर्नरके निजी सचिवको

अहमदाबाद
अक्तूबर २२, १९१९

प्रिय श्री ड्रॉफ,

कुमारी फैरिंगके मामलेमें उदारता बरतनेके लिए परमश्रेष्ठको मेरी ओरसे धन्यवाद देनेकी कृपा करें। कुमारी फैरिंग सत्याग्रह आश्रम पहुँच गई हैं।[1]

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९३३) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने ४ अक्तूबरको मद्रासके गवर्नरके निजी सचिवको तार भेजा था कि एस्थर फैरिंगको अहमदाबाद आनेकी शीघ्र अनुमति दी जाये।

गवर्नरके सचिवने ६ तारीखको गांधीजीके तारको प्राप्ति-सूचना देते हुए लिखा था कि अगर कुमारी फैरिंग बम्बई जानेकी अनुमतिके लिए सरकारको नियमानुसार प्रार्थनापत्र भेजें तो अनुमति देनेमें कोई असुविधा नहीं होगी।

१६३. पत्र : बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको[1]

साबरमती
अक्तूबर २२, १९१९

सेवामें
पंजीयक
उच्च न्यायालय
बम्बई

प्रिय महोदय,

आपका इसी २० तारीखका पत्र मिला, जिसका विषय है "६ अगस्तके 'यंग इंडिया' में अहमदाबादके जिला न्यायाधीश, श्री कैनेडी द्वारा लिखे एक व्यक्तिगत पत्र और तत्सम्बन्धी कुछ टिप्पणियोंका प्रकाशन।"

माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदयने मेरी पंजाब जानेकी तैयारीमें बाधा न डालनेकी जो कृपा की, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। कथित पत्रको मैंने किसी भी तरह निजी नहीं समझा और न उसका मजमून ही मुझे ऐसा लगा। यह पत्र भी मुझे उसी प्रकार मिला, जिस प्रकार सम्पादकोंको साधारण तौरपर पत्र आदि मिलते रहते हैं, और मैंने इसे प्रकाशित करनेका निर्णय तभी किया जब यह मालूम हो गया कि जिस व्यक्तिने मुझे यह पत्र दिया है उसके पास यह नियमित और खुले रूपमें ही पहुँचा था। मेरी विनम्र सम्मतिमें, कथित पत्र और तत्सम्बन्धी टिप्पणियोंका प्रकाशन मैंने एक पत्रकारकी अधिकार-सीमामें रहते हुए ही किया था। मुझे यह पत्र सार्वजनिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण जान पड़ा और मुझे लगा कि इसकी सार्वजनिक आलोचनाकी जरूरत है।

१. अक्तूबर १८को गांधीजीको बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयककी ओरसे एक पत्र मिला जो इस प्रकार था: "माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदयके आदेशानुसार मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप सोमवार यानी इसी २० तारीखको, ११ बजे दिनमें माननीय न्यायाधीशके कक्षमें पधारनेकी कृपा करें जिससे कि आप ६ अगस्तके यंग इंडियामें बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकके नाम अहमदाबादके जिला न्यायाधीश श्री कैनेडी द्वारा लिखे एक व्यक्तिगत पत्र और तत्सम्बन्धी कुछ टिप्पणियोंके प्रकाशनके बारेमें स्पष्टीकरण करनेका अवसर पा सकें।" लगता है, इसपर गांधीजीने इस आशयका तार भेजा था कि अपनी पंजाब-यात्राकी योजनाके कारण वे स्वयं उपस्थित होनेमें असमर्थ हैं, इसलिए यथा लिखित स्पष्टीकरणसे काम चल जायेगा। तारका मूल पाठ अप्राप्य है; लेकिन उसके उत्तरमें पंजीयकने इस प्रकार लिखा था: "आपके इसी २० तारीखके तारके सिलसिलेमें माननीय मुख्य न्यायाधीशके आदेशानुसार मैं सूचित करता हूँ कि माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय आपकी पंजाब जानेकी तैयारीमें बाधा नहीं डालना चाहते। इसलिए फिलहाल वे आपके लिखित स्पष्टीकरणको माननेको तैयार हैं। मुझे जो बात स्पष्ट कर देनेका आदेश दिया गया है वह यह है कि ऐसे समयमें, जब उक्त पत्रसे सम्बन्धित मामला अदालतमें विचाराधीन था इस अदालतकी अनुमतिके बिना ही यह पत्र और इसके सम्बन्धमें टिप्पणियाँ प्रकाशित की गईं।" इसीके उत्तरमें गांधीजीने यह पत्र लिखा था।

मुझे भरोसा है कि माननीय न्यायाधीश महोदयको मेरे इस स्पष्टीकरणसे सन्तोष हो जायेगा।

लाहौरमें मेरा पता होगा: मार्फत श्रीमती सरलादेवी चौधरानी।[1]

आपका,

मो० क० गांधी

हस्तलिखित मूल अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ६९५६) की फोटो-नकलसे।

१६४. पत्र: एस्थर फैरिंगको

ट्रेनमें

गुरुवार [अक्तूबर २३, १९१९][2]

रानी बिटिया,

मैं चाहता हूँ कि तुम आश्रममें लोगोंसे खूब घुल-मिलकर घरकी तरह रहो। मैं नहीं चाहता कि तुम ऐसा सोचो या तुम्हें ऐसा लगे कि तुम अजनबियोंके बीच रह रही हो। हर रोज हिन्दुस्तानीके कुछ शब्द सीखा करो तो भाषाकी बाधा अपने-आप दूर हो जायेगी।

अगर आश्रमको तुम अपना घर मानती हो तो वहाँ आवश्यक घरेलू सुविधाएँ भी जुटाओ। तुम्हें उनकी माँग करनी चाहिए। एकाध पंक्ति रोज लिख भेजा करो।

याद रखो कि प्रेममें भयकी गुंजाइश नहीं होती, इसमें कहीं कोई दुराव-छिपाव नहीं होता। इसलिए तुम सभीके साथ खुले हृदयसे व्यवहार करो, और मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं कि तुम्हें हर आदमीसे इसका अनुकूल प्रतिदान मिलेगा। प्रेमको कभी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें धैर्य और कष्टसहनकी क्षमता होती है; और प्रेमका अर्थ है सेवा, इसलिए जो प्रेम करता है वह सदा सेवामें ही सुख मानता है।

अपना स्वास्थ्य ठीक रखो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. पंजीयकने ३१ अक्तूबरके अपने पत्र द्वारा गांधीजीको सूचित किया कि मुख्य न्यायाधीशको उनका स्पष्टीकरण सन्तोषजनक नहीं लगा। साथमें उसने क्षमा-याचनाका एक प्रारूप भेजते हुए लिखा था कि गांधीजी इस रूपमें क्षमा माँग लें; देखिए "तार: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", ७-११-१९१९।

२. अन्तिम वाक्यसे ऐसा लगता है कि गांधीजीने यह पत्र अहमदाबादसे पंजाब-यात्राके लिए रवाना होनेके कुछ ही समय बाद लिखा होगा। प्रारम्भिक वाक्यसे यह भी प्रतीत होता है कि कुमारी फैरिंग उसी समय आश्रममें पहुँची थीं।

१६५. पत्र : मगनलाल गांधीको

[अक्तूबर २३, १९१९]

चि० मगनलाल,

साथवाले पत्रको[1] पढ़ लेना और कुमारी फैरिंगके लिए जो व्यवस्था करनी उचित जान पड़े सो करना। मेरा ख्याल है कि नरहरिका अन्तिम वाक्य एकदम ठीक है। उसके सम्बन्धमें मैं रास्तेमें ही तार भेजनेका इरादा कर रहा था, लेकिन वह विचार छोड़ दिया। कुमारी फैरिंगको यदि तुम सवेरे सैर करनेके लिए ले जाया करो, जैसे कि मैं तुम्हें ले जाता था, तो यह फूल और भी खिलेगा और सुगन्ध देगा।

महादेवकी देखभाल तो करते ही होगे।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७७८) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१६६. पत्र : एस्थर फैरिंगको

मार्फत सरलादेवी चौधरानी
लाहौर
अक्तूबर २४, १९१९

रानी बिटिया,

पत्र लिखनेका उद्देश्य तुम्हें सिर्फ यह बतलाना है कि मुझे सदा तुम्हारा ध्यान रहता है। मुझे यहाँ एक बड़ा आश्चर्यजनक अनुभव हुआ है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१. संभवतः यहाँ पिछले शीर्षककी ओर संकेत है।

१६७. काठियावाड़के लोगोंके प्रति

काठियावाड़के एक सज्जनने मुझे पच्चीस हजारकी रकम दी है। पहले तो वे यह चाहते थे कि मैं एक ही गाँवमें स्वदेशीके प्रचारके निमित्त उस रकमका उपयोग करूँ। मुझे यह लगा कि इतनी बड़ी रकम उस एक ही गाँवमें खर्च नहीं की जा सकती। तब उन्होंने उस रियासतके लोगोंमें [स्वदेशीका प्रचार करनेके लिए] उस रकमका उपयोग करनेका सुझाव दिया। इस बन्धनसे भी मुझे लगा कि मैं २५,००० रुपयेकी रकमका सदुपयोग नहीं कर सकूँगा; तब उन्होंने मुझे सारे काठियावाड़में उस रकमको खर्च करनेकी छूट दी है और मैंने इसे स्वीकार कर लिया है।

फिर भी उनके धनका उपयोग कुछ इस रूपमें करनेमें, जिससे उनकी उदारतामें चार चाँद लग सकें, मुझे कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं। काठियावाड़की जनता यदि मेरी पूरी तरहसे मदद नहीं करती तो मैं इस धनका सन्तोषजनक ढंगसे उपयोग नहीं कर सकता।

स्वदेशीके प्रचारमें ही इसका उपयोग किया जाना चाहिए। स्वदेशीका जो अर्थ मैंने किया, उसे उन्होंने स्वीकार किया है। वह यह है कि मुख्यतया हाथसे कताई और बुनाई करवाकर देशके कपड़ा-उत्पादनमें वृद्धि करना और इसकी वजहसे प्रति वर्ष बाहर जानेवाले करोड़ों रुपयोंको बरबाद होनेसे रोकना।

यदि कारीगर मिलें तो हाथसे कताई और बुनाई करनेके कामको प्रोत्साहन देना अत्यन्त सहल है। देशी राज्य यदि चाहें तो यह कार्य आसानीसे हो सकता है। उनको और उनके दीवानोंको मैं विनयपूर्वक [निम्नलिखित] सुझाव देता हूँ:

१. काठियावाड़में हाथसे बने कपड़ेपर यदि आपके राज्यमें चुंगी हो तो उसे हटा दीजिये।

२. काठियावाड़के बाहरसे आनेवाले हाथकते सूत अथवा देशी मिलके सूतपर चुंगी न लें।

३. किसानोंको रुई बेचनेके लिए प्रेरित न करें बल्कि उसका संग्रह करनेके लिए प्रोत्साहित करें।

४. रुईकी फसलमें सुधार करें। उसमें आसानीसे सुधार किया जा सकता है।

५. अपने ही राज्यमें कते और बुने सूतके वस्त्रको प्रोत्साहन दें; खुद भी उसीका प्रयोग करें।

६. अपने राज्योंमें देशी करघे और चरखे बनवाकर रैयतको लागत मूल्यपर दें।

७. अपनी प्राथमिक पाठशालाओंमें चरखों और करघोंको स्थान दें और लड़के तथा लड़कियोंके लिए इस हुनरके शिक्षणको पाठ्यक्रमका अनिवार्य विषय बनायें।

राजा-महाराजा और उनके मंत्रिगण यदि इस कार्यका बीड़ा उठा लें तो उपर्युक्त दानको जैसाका-तैसा रखकर दानकर्तासे उस राशिका कोई दूसरा उपयोग करनेकी माँग करनी पड़ सकती है।

लेकिन ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि सब राज्य स्वदेशी-धर्मकी महत्ताको एकदम स्वीकार कर लेंगे।

इसलिए उस राशिको जनतापर खर्च किया जा सकता है।

पुरुष यदि चाहें तो बहुत-कुछ कर सकते हैं; प्रत्येक गाँवमें बुनकरोंको ढूँढ़ निकालें तथा उन्हें प्रोत्साहन दें।

किसानोंको रुई संचित कर रखनेका सुझाव दें।

अपने सगे-सम्बन्धियोंमें स्त्रियोंको कातनेका सुझाव दें।

यह काम करनेके लिए :

(१) चरखोंकी;

(२) रुईकी पूनियोंकी; और

(३) पूनी देकर सूत लेने और पैसा चुकानेकी व्यवस्था करना आवश्यक है।

बादमें बुनाईके लिए :

(१) सूत देनेकी;

(२) उस प्रमाणमें कपड़ा लेने और उसका पैसा चुकानेकी व्यवस्था करनेकी;

(३) अन्ततः उस कपड़ेका प्रचार करने अर्थात् उसे बेचनेके लिए दूकान रखनेकी जरूरत है।

इतना काम करनेके लिए उद्योगी और ईमानदारीसे काम करनेवाले व्यक्तियोंकी आवश्यकता होगी। बिना पैसेके कोई काम नहीं कर सकता, इसलिए यदि ईमानदार व्यक्ति मिल जायें तो उन्हें जीविकाके योग्य पैसा देनेमें उपर्युक्त दानका उपयोग हो सकता है। काठियावाड़के सेवक-मण्डल इस कार्यमें पूरी सहायता कर सकते हैं। उसके लिए यदि प्रतिष्ठित लेकिन काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोंकी एक बड़ी समितिका गठन किया जाये और उसके अन्तर्गत एक उप-समिति बनाई जाये तो काम जल्दी हो सकता है। उम्मीद है कि जो लोग इस कार्यमें वेतन लेकर अथवा अवैतनिक रूपसे भाग लेना चाहते हैं वे समय रहते आश्रमके पतेपर पत्र लिखेंगे।

लेकिन जबतक स्त्रियाँ इस कार्यमें आगे बढ़कर भाग नहीं लेतीं तबतक यह कार्य जोरसे नहीं चल सकता। कातनेवाली मुख्य रूपसे तो स्त्रियाँ ही होती हैं। राष्ट्रका अक्षय भण्डार मानो उन्हींके पास है; क्योंकि उनके पास बड़ा अवकाश है। उस फालतू समयका उपयोग करते हुए यदि वे पैसे भी लें तो वह जनताकी सेवा ही होगी।

मैं जब-जब काठियावाड़ जाता हूँ मुझे बड़ा स्नेह मिलता है। इस प्रेमके चिह्न-स्वरूप — छोटे-बड़े, उच्च और सामान्य, राजा-प्रजा — सबसे शुद्ध स्वदेशी धर्मका पालन किये जानेका वचन माँगता हूँ, इस धर्मका वे सहज ही पालन कर सकते हैं।

मैं प्रतिवर्ष काठियावाड़से एक करोड़ रुपयेके कपड़ेके उत्पादनकी आशा रखता हूँ। कहनेका अभिप्राय यह है कि मेरा प्रयास काठियावाड़के लोगोंमें प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपया वितरित करनेका है। मैं २५,००० रुपयेकी उपर्युक्त रकमको इस उद्देश्यके लिए खर्च करना चाहता हूँ। काठियावाड़में चतुर स्त्रियाँ और चतुर बुनकर हैं, लेकिन उन्हें इकट्ठा करनेकी तथा उन्हें कामपर लगानेवाले व्यक्तियोंकी आवश्यकता है।

जब मैं काठियावाड़से असंख्य स्त्री-पुरुषोंको बम्बई जानेवाली हरएक गाड़ीकी तरफ पागलोंके समान भागते हुए देखता हूँ तब मुझे बड़ा दुःख होता है। वे काठियावाड़में [रोजी] नहीं कमा सकते इसलिए भाग-दौड़ करते हैं। इतने स्त्री-पुरुषोंको, जो एक वर्षके भीतर एक करोड़ रुपयेके कपड़ेका उत्पादन कर सकते हैं, काठियावाड़ छोड़नेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

हिन्दुस्तानमें थोड़े ही प्रदेश ऐसे हैं जहाँके लोगोंको जीविकाके साधनोंके अभावमें बाहर जाना जरूरी हो सकता है। हमारी रेलगाड़ियोंमें सफर करनेवाले मुसाफिरोंकी संख्या देशकी समृद्धिकी सूचक नहीं है, यह बात मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। हमने स्वदेशीका त्याग कर दिया है और यह हमारी कंगालीका एक प्रमुख कारण है। उसको पुनः अंगीकार करनेमें ही हमारी सुख-समृद्धिका मूल निहित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-१०-१९१९

१६८. टिप्पणियाँ

श्रमिक बहनें

सौभाग्यवती विद्यागौरीने[1] स्त्रियोंके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा है उसमें वैसे कोई नई बात नहीं है। लेकिन जिन बातोंको जानते हुए भी हम कोई महत्त्व प्रदान नहीं करते जब उनकी ओर हमारा ध्यान खींचा जाये तब हमें इसे नया ही मानना चाहिए। सौभाग्यवती विद्यागौरीने इस सम्बन्धमें जो उपचार सुझाये हैं उनमें से दो उपचारोंको तो स्वयं उन्होंने भी लगभग असम्भव माना है। और हमें भी वे वैसे ही जान पड़ते हैं। मालिकोंसे इस बातकी उम्मीद रखना कि वे स्त्री-श्रमिक-वर्गके प्रति दयाभाव बरतेंगे आसान बात नहीं है। हमारा तो विश्वास है कि राज-मजदूर आदि देवदूत बने विना सभ्य बन सकते हैं, श्रमिक-स्त्रियाँ अपने मानकी रक्षा करना सीख सकती हैं। तीनों वर्गोंको शिक्षित करनेकी आवश्यकता है। उन्हें उनकी दशाका भान करानेकी जरूरत है। जिस वर्गकी ओरसे हम पहले पहुँचेंगे उनमें पहले सभ्यता अथवा स्वाभिमानकी भावनाएँ विकसित की जा सकेंगी। हमें तीनों वर्गोंके पास पहुँचनेकी आवश्यकता है जो देशभक्त हैं, जो प्रत्येक वर्गके सम्पर्कमें आते हैं वे इन तीनों वर्गोंसे अनुरोध कर सकते हैं। यदि सौभाग्यवती विद्यागौरी अपने जैसी प्रौढ़ बहनोंका एक मंडल बनाकर श्रमिक-स्त्रियोंमें प्रवेश करेंगी तो उन्हें जो असम्भव जान पड़ता है वह सम्भव हो सकेगा।

मुनीमोंकी दिक्कतें

श्री पोपटलाल नानजीने हमें मुनीमों [गुमाश्तों आदि] की मुसीबतोंके सम्बन्धमें एक पत्र भेजा है। जिसमें वे लिखते हैं कि अनेक व्यापारी उनके साथ अभद्र व्यवहार

१. श्रीमती विद्यागौरी आर० नीलकंठ, एक समाज-सेविका।

करते हैं, भला-बुरा कहते हैं और बहुत काम लेते हैं। सेठोंको तो यही शोभा देता है कि वे अपने नौकरोंपर मुनीम हो अथवा दरबान, कृपा दृष्टि रखें और विवेकसे काम लें। लेकिन क्या दोष केवल सेठोंका ही है? गुलामीको बनाये रखनेमें गुलामोंका भी कुछ कम हाथ नहीं होता। नौकरकी वफादारी, उसकी प्रामाणिकता और उद्योग-शीलतामें है। वह अनुचित व्यवहारको बरदाश्त करनेके लिए बाध्य नहीं है। नौकर इतने हताश दिखाई पड़ते हैं कि नौकरीको ही अपना सर्वस्व मानने लगते हैं। उनका फर्ज है कि वे ऐसी असहाय अवस्थासे निकल जायें। हम मानते हैं कि जो मनुष्य ईमानदारीसे उद्योग करना चाहता है, जिसका शरीर स्वस्थ है और जिसे मजदूरी करनेमें शर्म महसूस नहीं होती उसे अपनी आजीविका मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। देशमें चलनेवाले अनेक आन्दोलन सच्चे एवं उद्यमी लोगोंके अभावमें ढीले पड़ जाते हैं। उसमें नौकरीपेशा लोगोंका समावेश भी किया जा सकता है। इसलिए हम सेवक-वर्गको दीनता त्यागकर सशक्त बननेकी सलाह देते हैं। जहाँ अपमान होता हो, जहाँ बहुत ज्यादा बेगार करनी पड़ती हो, जहाँ शरीर दिन-प्रतिदिन छीज रहा हो वहाँ नौकरी करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। राष्ट्रीय जीवनमें प्रगतिके लिए पहले असंख्य स्त्री-पुरुषोंको स्वाभिमानका भान होना जरूरी है।

दुनियाको दिलासा

नये वर्षके आरम्भमें दुखियोंके दुखोंको सुनना हमारा फर्ज है। उसमें हमारा स्वार्थ भी है। दुःखीको सुखी करके ही हम सुखी बन सकते हैं। उस सुखको प्राप्त करनेके लिए हमें आसपास दृष्टि डालकर, जहाँ दुःख हो वहाँ मदद पहुँचानी चाहिए।

इस समय खास तौरसे पंजाबके लोग कष्ट भोग रहे हैं और बंगालमें बाढ़से ग्रसित होनेके कारण अनेक लोग बेघर तथा वस्त्रहीन हो गये हैं। इन दोनों स्थानोंपर हमें यथाशक्ति मदद पहुँचानी चाहिए। नये वर्षके उपलक्ष्यमें यह हमारा विशेष कर्त्तव्य है। मित्रोंको भोज देनेमें, मूल्यवान उपहार तथा मिठाई भेजनेमें हम बहुत सारा पैसा खर्च करते हैं। हममें सामर्थ्य हो तो हम वैसा भी करें; लेकिन यह याद रखना हमारा फर्ज है कि पहला हक दुखियोंका है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६–१०–१९१९

१६९. गया वर्ष — नया वर्ष

(गया वर्ष)

गत वर्षका लेखा-जोखा करना मुश्किल है। युद्ध समाप्त हो गया; परिणाम बहुत-थोड़ा निकला। युद्धके समय जो आशाएँ की गई थीं वे निष्फल हुईं। इस युद्धके पश्चात् स्थायी सुलह हो जानेकी उम्मीद की जाती थी, किन्तु जो सुलह हुई है वह बरायनाम है। महाभारतसे बहुत बड़ा यह विश्व-युद्ध, इससे भी अधिक बड़े किसी युद्धका बीज [मात्र] जान पड़ता है। युद्धोपरांत अमेरिका, फ्रांस और इंग्लैंडमें जबरदस्त अशान्ति फैल गई है। यह स्थिति देखकर मन परेशान हो जाता है; समझमें नहीं आता कि इससे किस निष्कर्षपर पहुँचें।

इस ओर हिन्दुस्तानमें चारों ओर निराशा दिखाई देती है। युद्धके अन्तमें हिन्दुस्तानको कुछ ठोस चीजें मिलनेकी आशा थी, लेकिन कुछ भी नहीं मिला। एक तो सुधारोंका दिया जाना ही कठिन है; दिये भी गये तो वे लगभग व्यर्थ ही होंगे। कांग्रेस-लीग योजना और फिर उसमें भी कांग्रेसकी योजना, पता ही नहीं चलता इनका क्या हुआ। जो हो जाये गनीमत है। पंजाबपर कहर बरपा; निरपराध व्यक्ति मारे गये; अधिकारियोंने बहुत तकलीफ दी। उनके तथा लोगोंके बीच अविश्वासकी खाई और भी चौड़ी हो गई। इस सबका क्या हिसाब बैठाया जाये? कैसे तय किया जाये कि तमाम लेन-देनके बाद क्या हासिल हुआ और क्या खोया है? या हासिल कुछ नहीं हुआ है, खोया ही खोया है?

निराशाके ऐसे गहन बादलोंमें से कोई किरण फूटती दिखाई देती है अथवा नहीं? सत्याग्रहका सूर्य छः अप्रैलके दिन समस्त भारतपर चमका। बादल छँटे और किरणें स्पष्ट प्रकाशमें आईं। उसमें पंजाब और अहमदाबादपर ग्रहण लगा तथा कुछ कालिख अभीतक बाकी है। तथापि लोगोंको धीरे-धीरे सत्याग्रहकी पहचान होती जा रही है। १७ अक्तूबरको हिन्दुस्तानमें अनेक स्थानोंपर अत्यन्त शान्तिसे हड़ताल की गई। आस्तिकोंने उस दिन उपवास रखे और प्रार्थनाएँ कीं। हिन्दुओंने मुसलमानोंके दुःखमें भाग लेकर उनकी आशा और उत्साहमें वृद्धि की तथा हिन्दू-मुसलमानोंकी स्नेह-गाँठको और भी मजबूत किया। अब इसे खोल पाना बहुत कठिन होगा।

यदि कोई यह पूछे: "पिछले वर्ष हिन्दुस्तानमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात क्या हुई" तो हम यही कहेंगे कि "हिन्दुस्तानने — राजा-प्रजाने — जाने-अनजाने सत्याग्रहको थोड़े अंशोंमें स्वीकार किया, वही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात थी।" और उसके प्रमाणमें १७ अक्तूबरके उदाहरणको हम जनताके सम्मुख रखेंगे।

हिन्दुस्तानकी आशा सत्याग्रहमें ही निहित है।

(नया वर्ष)

और यह सत्याग्रह क्या है? मैं अनेक बार उसका वर्णन कर चुका हूँ। लेकिन जैसे सहस्रमुखी शेषनाग भी सूर्यका पूरा वर्णन नहीं कर सकता वैसे ही

सत्याग्रह रूपी सूर्यका वर्णन नहीं किया जा सकता। तथा सूर्यको नित्य देखनेके बावजूद जैसे हम उसके बारेमें लगभग कुछ नहीं जानते वैसे ही सत्याग्रहके वास्तविक रूपको भी हम बहुत नहीं पहचानते।

स्वदेशी, सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारोंमें सत्याग्रह छिपा हुआ है एवं जिस हदतक वे सत्याग्रहकी नींवपर प्रतिष्ठित हैं उसी हदतक वे चिरस्थायी हो सकते हैं। सत्याग्रहका मार्ग पिटी-पिटाई लकीरसे अलग है, इसलिए वह एकाएक हमें सूझता नहीं है। उस मार्गपर चलनेवाले व्यक्ति भी बहुत-थोड़े हैं और उसपर पदचिह्न भी दिखाई नहीं देते, इसीसे लोग उसपर जानेमें झिझकते हैं। फिर भी धीरे-धीरे लोग उसे ग्रहण करते जा रहे हैं — यह बात हमें स्पष्ट दिखाई देती है।

सत्याग्रह अर्थात् कानूनकी सविनय अवज्ञा, जो लोग सत्याग्रहको केवल इसी रूपमें पहचानते हैं उन्होंने सत्याग्रहको जाना ही नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि सत्याग्रहके कठिन नियमोंमें कानूनकी सविनय अवज्ञा भी आ जाती है। लेकिन जिन्होंने कानूनका पालन करना सीखा है, वही उसे तोड़नेकी कला भी जानते हैं। जो जोड़नेमें पारंगत है वही तोड़नेका हकदार हो सकता है। कविने कहा है:

'सत्यका मार्ग शूरोंके लिए है,
इसमें कायरका कोई काम नहीं।'

यह अनुभवपर आधारित है। स्वदेशी सत्याग्रह है। उसका पालन, उसका प्रचार कायर स्त्री-पुरुष नहीं कर सकते। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच भाईचारेकी भावनाका विकास भी कायर नहीं कर सकता। मुसलमान हिन्दूको अथवा हिन्दू मुसलमानको खंजर भोंके इसे चुपचाप शान्तिसे सहन कर लेना कायरका काम नहीं हो सकता। यदि ये दोनों इसे साथ लें तो स्वराज्य हस्तामलकवत् ही है। तब हमें उस मार्गपर जानेसे कोई रोक ही न सके; और दोनोंको धार्मिक प्रवृत्तिका होनेके कारण हिन्दुस्तानके सहज धर्मका लाभ भी मिले। हम नये वर्षके आरम्भमें ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं:

"हे प्रभु! तू हिन्दुस्तानको सत्यके मार्गपर ही अग्रसर करना; वैसा करते हुए उन्हें स्वदेशी धर्म [का पालन करना] सिखाना; तथा हिन्दुस्तानमें रहनेवाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी और पारसियोंके बीच शुद्ध एकताको बढ़ाना।"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६–१०–१९१९

१७०. सन्देश : अमृतसरके लोगोंको[1]

[लाहौर
अक्तूबर २७, १९१९]

लोगोंको मेरी ओरसे सूचित कर दें कि मेरे वहाँ न आनेका कारण केवल यही है कि मैं वहाँ आनेका समय नहीं निकाल पाया, क्योंकि मैं जिस कामसे आया हूँ उसके सिलसिलेमें अभी लाहौरमें मेरी उपस्थिति आवश्यक है। आशा है जल्द ही अमृतसरके मित्रोंसे मुलाकात होगी।

[अंग्रेजीसे]
लीडर, २–११–१९१९

१७१. पंजाबकी चिट्ठी – १

[अक्तूबर २७, १९१९][2]

जब मैंने अप्रैलमें पंजाब पहुँचनेका प्रयत्न किया था तब मुझे यह आशा थी कि मेरे दिल्ली और लाहौर जानेसे शान्ति हो जायेगी। दिल्लीसे मुझे स्वामी श्रद्धानन्दजीने वहाँ जानेके लिए कहा था और अमृतसरसे डॉक्टर सत्यपालने इसका अनुरोध किया था। दोनोंका उद्देश्य यह था कि वहाँ शान्ति हो जाये। इस बीच डॉ० सत्यपाल और डॉ० किचलूको मौन धारण करनेका आदेश दिया गया और अन्ततः वे गिरफ्तार भी कर लिये गये। मुझे दिल्ली पहुँचनेसे पहले रोक लिया गया और गिरफ्तार कर लिया गया। अन्तमें मुझे बम्बई प्रदेशमें ही रहने तथा पंजाबमें प्रवेश न करनेका आदेश दिया गया। परिणामसे हम परिचित हैं। यदि मुझे गिरफ्तार न किया होता तो जो अशान्ति फैली वह कभी न फैल पाती।

बादमें मेरे विरुद्ध जारी किया गया आदेश रद कर दिया गया और मैं अन्ततः पंजाब गया। २४ अक्तूबरको मैं लाहौर पहुँचा। स्टेशनपर लोगोंकी भीड़का पार न था। माननीय पंडित मालवीयजी भी स्टेशनपर उपस्थित थे। स्टेशनसे गाड़ीतक पहुँचनेमें चालीस मिनट लगे। भीड़में राह बनाना बहुत ही मुश्किल था। दो-तीन

१. गांधीजीको २७की दोपहरमें अमृतसर पहुँचना था। उसी दिन दोपहरमें मालूम हुआ कि उन्हें पंजाब जाँच-समितिकी बैठकमें शामिल होने दिल्ली जाना है, इसलिए वे अमृतसर नहीं आ रहे। आठ बजे रातमें गांधीजीने टेलीप्रिंटर द्वारा अपना यह सन्देश भेजा था।

२. अन्तिम अनुच्छेदमें गांधीजीकी लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयके साथ हुई जिस मुलाकातका उल्लेख है वह इसी तारीखको हुई थी। उस दिन सोमवार था। इस क्रमके आगेके कुछ लेख भी सोमवारको लिखे गये थे।

बार मुझे ऐसा लगा कि कोई-न-कोई तो अवश्य ही कुचला जायेगा। लेकिन जहाँ मनुष्य प्रेमके वशीभूत होते हैं वहाँ ऐसी घटनाएँ कम ही होती हैं; यहाँ भी ऐसा ही हुआ। तथापि जहाँ बहुत ज्यादा लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो वहाँ हमें [सुचारु ढंगसे] व्यवस्था करना सीखना ही होगा, इसमें सन्देह नहीं। दिन-प्रतिदिन जैसे-जैसे लोग जाग्रत होते जायेंगे वैसे-वैसे वे राष्ट्रीय कार्यमें अधिक रस लेंगे और अधिकाधिक संख्यामें इकट्ठे होने लगेंगे। एक अत्यन्त सरल नियम यदि सब लोग समझ लें तो दुर्घटनाएँ ही न हों। जब हम किसीसे मिलनेके लिए इकट्ठे हों तब पीछे और आसपास खड़े लोगोंको दूर रहना चाहिए और आगेवालोंको आगे बढ़ते जाना चाहिए। आज तो हम इस नियमके विपरीत चलते हैं। पीछेके लोग आगेवालोंको ढकेलते हैं, इससे बीचके लोगोंपर दबाव पड़ता है; धक्का-मुक्की होती है और दुर्घटना होनेका भय बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें बीचमें फँस जानेवाले व्यक्तिको बाहोंमें समेटकर उसकी रक्षा करना आवश्यक हो जाता है। सब स्वीकार करते हैं कि ऐसा नहीं होना चाहिए। जरूरत सिर्फ लोगोंको तालीम देनेकी है; लोगोंको यह तालीम स्वयंसेवकोंकी मार्फत जल्दसे-जल्द ही दी जानी चाहिए।

मैं लाहौरमें पंडित रामभजदत्तकी धर्मपत्नी सरलादेवी चौधरानीके यहाँ ठहरा हूँ। पाठकोंको याद होगा कि रामभजदत्तजी तो जेलमें हैं।

पंजाब समितिकी बैठक २९ अक्तूबरसे[1] आरम्भ हो रही है, इस कारण मेरा सूरत आनेका जो विचार था सो मुझे खेदपूर्वक रद करना पड़ा है। सरकारसे तीन माँगें करनेकी बात चल रही है: [१] समितिकी जाँचके दौरान नेताओंको रिहा कर दिया जाना चाहिए, [२] पंजाबके मामलोंकी जाँच करनेके लिए जो न्यायाधीश नियुक्त किये जायें उनमें से एक पंजाबसे बाहरका होना चाहिए और [३] यदि न्यायाधीशोंको नई गवाहियाँ लेनेकी आवश्यकता जान पड़े तो उन्हें इसका अधिकार मिलना चाहिए। यह बातचीत अभी चल रही है और पंडित मालवीयजी इस विषयपर विचार कर रहे हैं। यह भी सुननेमें आता है कि समितिके समक्ष हमारे वकील उपस्थित न हो सकेंगे।[2] अनुमान किया जाता है कि इस विषयपर भी कोई समझौता किया जायेगा। यदि यह न हो सका तो मुझे लगता है कि हम लोग समितिके सम्मुख गवाहियाँ देना स्वीकार नहीं कर सकेंगे।

अगर गवाहियाँ देनेकी बात तय हुई तो बहुत करके श्री चित्तरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू हमारे वकीलके रूपमें उपस्थित रहेंगे। इनके अतिरिक्त एक अंग्रेज वकीलको भी आमन्त्रित किया गया है। उनका नाम श्री नेविल है। ऐसा जान पड़ता है कि उक्त महोदयको विलायतसे आते-आते अभी पन्द्रह-बीस दिन लग जायेंगे।

सभी कहते हैं कि पंडित मालवीयजी तथा पंडित मोतीलाल नेहरूने पंजाबकी अनन्य सेवा की है। जिस समय लोग भयभीत थे उस समय इन दो नेताओंने उन्हें

१. तथापि समितिकी प्रथम बैठक ३१ अक्तूबरको दिल्लीमें हुई थी।

२. अन्ततः श्री चित्तरंजन दास तथा मदनमोहन मालवीयको कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करनेकी आज्ञा दे दी गई थी।

बहुत हिम्मत बँधाई। पंडित मोतीलाल नेहरूने अपनी वकालततक की उपेक्षा की। स्वामी श्रद्धानन्दजी तो पंजाबके ही हैं इसलिए उनके द्वारा की गई सेवाओंके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। पंजाबमें कितने ही अन्य नेता यथाशक्ति कार्य कर रहे हैं। श्री एन्ड्रयूजकी सेवाओंका मूल्यांकन करना तो असम्भव है। वे चुप रहकर अपना काम करते ही रहते हैं। कह सकते हैं बाँया हाथ क्या करता है — उनके दाँये हाथको इसकी खबर नहीं होती। मैं देखता हूँ कि उनके द्वारा की जानेवाली सेवा शुद्ध गुप्तदानका एक अच्छा उदाहरण है। जहाँ दूसरोंके लिए पहुँचना अत्यन्त कठिन होता है श्री एन्ड्रयूज वहाँ [सहज ही] पहुँच जाते हैं।

यहाँ सैकड़ों भाइयों और बहनोंसे हमेशा मिलना होता रहता है। हिन्दुस्तान [के लोगों] की अपूर्व श्रद्धाकी झाँकी भी यहाँ मिलती ही रहती है। अधिकारी-वर्गमें से मैं यहाँके डिप्टी कलेक्टर श्री बटलर तथा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदयसे भेंट कर चुका हूँ। जेलमें रहनेवाले नेताओंसे मिलनेका प्रयत्न कर रहा हूँ और उम्मीद है कि मेरी यह इच्छा थोड़े समयमें पूर्ण होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-११-१९१९

१७२. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर

सोमवार [अक्तूबर २७] १९१९

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मुझे मिला।

मैं यहाँ बहुत अधिक व्यस्त हूँ। शायद मैं नवम्बरके आरम्भमें न आ पाऊँ। श्री एण्ड्रयूज यहीं हैं और हम दोनों अक्सर तुम्हारे बारेमें बात करते हैं। अपना स्वास्थ्य ठीक रखना।

सस्नेह,

तुम्हारा,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१७३. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर

[अक्तूबर २८, १९१९]

रानी बिटिया,

तुम्हारे दो पत्र मिले। मैं आज ही श्री एन्ड्रयूजके साथ दिल्ली रवाना हो रहा हूँ।

यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि तुम्हें वहाँ घरकी तरह लग रहा है। मेरी उत्कट इच्छा है कि तुम अपनी सेहत बनाये रखो और पहलेसे ज्यादा स्वस्थ हो जाओ। और निस्सन्देह इसके लिए सबसे अच्छा रास्ता यही है कि किसी बातकी चिन्ता मत करो। किसी भी बातकी बहुत अधिक परवाह न करो और जो अनुकूल पड़े सो बनाओ और खाओ।

बा ने लिखा है कि तुम उसकी देख-भाल कर रही हो।

किसी पत्रमें यहाँके कामका भी वर्णन करूँगा। काम कठिन है, लेकिन साथ ही उपयोगी भी और लोगोंको इससे लाभ होता है।

अभी तो 'यंग इंडिया' के लिए मत लिखो; हालाँकि शिक्षा-पद्धतिके बारेमें लिखो तो कोई हर्ज नहीं है पर मैं सरकारको परेशान नहीं करना चाहता। फिलहाल तो अपने रहन-सहनका ढंग ही ऐसा बनाओ जिससे आसपासके लोग प्रभावित और आकर्षित हों।

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड,

१७४. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

दिल्लीके पतेपर

मार्फत प्रिंसिपल रुद्र

अक्तूबर २८ [१९१९]

प्रिय गुरुदेव,

मैं अभी-अभी पंजाब पहुँचा हूँ और इस विचारसे मुझे बड़ी खुशी है कि आखिरकार मैं इस विपदग्रस्त क्षेत्रको देखने आ सका। आज दिन-भर मैं लाहौरमें हूँ। रातको एन्ड्रयूज और मैं दोनों समितिके कामके सिलसिलेमें दिल्ली जा रहे हैं।

पत्र लिखनेका उद्देश्य आपको यह बताना है कि एन्ड्रयूजने इस प्रान्तके लोगोंकी कितनी बड़ी सेवा की है। उन्होंने ऐसा काम किया है जो अन्य कोई भी नहीं कर सकता था। और वे यश एवं कीर्तिके प्रति इतने उदासीन हैं कि अपनी निरपेक्ष सेवाके

माहात्म्यका भान दूसरोंको तो क्या स्वयं अपने-आपको भी नहीं होने देते। आपने उन्हें इस विपदके मारे पंजाबमें काम करनेके लिए मुक्त कर बड़ा अच्छा किया। अब मैं पंजाबका काम समाप्त होते ही [उन्हें] दक्षिण आफ्रिका जानेको मना रहा हूँ। वे स्वयं तो शान्तिनिकेतनसे बाहर जाना नहीं चाहते। मैं उनसे यही कहता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकाके कामके लिए वे विशेष रूपसे उपयुक्त हैं और जब जरूरत पड़े तो उनको उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यह तो उन्होंने मुझे बता ही दिया है कि आपने वे जो काम करना चाहें, करनेको मुक्त रखा है। और मुझे आशा है कि वे दक्षिण आफ्रिका जायेंगे। उन्हें वहाँ ज्यादा दिन नहीं रहना पड़ेगा। दो महीने काफी होंगे।

मैंने पूर्व बंगालके[1] कष्टोंमें सहायतार्थ एक कोष स्थापित करनेकी अपील की है। आप एक शब्द-चित्र[2] भेज दें तो कृपा हो। इससे मुझे लोगोंको समझानेमें सुविधा होगी।

आशा है, आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियामें सुरक्षित गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्रकी माइक्रोफिल्म प्रतिसे।

१७५. भाषण : लाहौरमें

[अक्तूबर २८, १९१९]

महात्मा गांधीने २८ अक्तूबरको साढ़े तीन बजे दिनमें पंडित रामभजदत्त चौधरीके घरपर इकट्ठे लाहौरके विद्यार्थियोंके एक भारी जमावके सामने भाषण किया। प्रारम्भमें उन्होंने कुछ प्रश्न पूछे — जैसे आप किन कॉलेजोंसे आये हैं, उन कॉलेजोंमें विद्यार्थियोंकी संख्या कितनी है और कितने ऐसे विद्यार्थी हैं जिनपर निष्कासनकी आज्ञा अब भी लागू है इत्यादि। सभी प्रश्नोंके उत्तर पानेके बाद उन्होंने आगे कहा कि शिक्षाका उद्देश्य मात्र डिग्रियाँ प्राप्त करना नहीं; इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य और आर्थिक स्थितिपर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। लेकिन इसका अर्थ लोग गलत न लगा लें इसलिए उन्होंने अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए बताया कि आजकी शिक्षा आवश्यकतासे अधिक सैद्धान्तिक है। अब कला और दस्तकारीकी व्यावहारिक शिक्षा देकर इस कमीको पूरा करना चाहिए, क्योंकि इसी तरीकेसे आजीविकाके

१. सितम्बर १९१९ में बंगालके एक बड़े इलाकेमें प्रचण्ड चक्रवातके कारण धन-जनकी बड़ी हानि हुई थी।

२. यह मालूम नहीं कि गुरुदेवने उक्त शब्द-चित्र भेजा था या नहीं।

मामलेमें आत्मनिर्भरता प्राप्तकी जा सकती है। अपनी आवश्यकताएँ यथासम्भव कमसे-कम कर देनी चाहिए। भारतकी आबादीके पंचानवे प्रतिशत लोग कृषक हैं; लेकिन जबतक ये अशिक्षित हैं तबतक कृषिकी हालत नहीं सुधार सकते।

महात्मा गांधीने आगे कहा कि मुझे विद्यार्थियोंको भयसे ग्रस्त देखकर बड़ा दुःख हुआ है। आप निर्भयता अपनायें, क्योंकि निर्भयता शिक्षाका एक अत्यावश्यक अंग है। आप देशकी गरीबीकी समस्याका अध्ययन करें और सभ्यताका अंधानुसरण करनेसे इन्कार कर दें, बल्कि आपको तो विश्वास योग्य और आत्मनिर्भर बनना चाहिए। उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि पहले आप यह जानिए कि दूसरोंके प्रति आपमें से प्रत्येकका कर्त्तव्य क्या है और फिर उसे पूरा कीजिए। अन्तमें उन्होंने उन्हें सत्य, अहिंसा आदि पाँचों यम-नियमोंका पालन करनेकी सलाह दी। ब्रह्मचर्यके पालनपर उन्होंने बड़ा जोर दिया और कहा कि यह निश्चय ही आपकी सारी कठिनाइयोंको दूर कर देगा।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, ३०–१०–१९१९

१७६. पंजाबसे प्राप्त मार्शल लॉका एक-और मामला

वजीराबादके श्री जमीयतसिंह बग्गाके पुत्र श्री पुरुषोत्तमसिंहने अपने पिताके मामलेका विवरण और वह चीज भी भेजी है जिसे उनके मुकदमे और निर्णयके रेकर्डकी गलत संज्ञा दी गई है। श्री जमीयतसिंह बग्गा वजीराबादके व्यापारी और महाजन हैं। उनकी अवस्था ६२ वर्ष है और उनकी आँखमें बहुत बुरे किस्मका मोतियाबिंद हो गया है। उन्हें १८ मासकी कड़ी कैद और १,००० रुपये जुर्माने या जुर्माना न देनेपर ६ मासके अतिरिक्त कारावासकी सजा दी गई थी। मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि यह फैसला हर उस व्यक्तिके सर्वथा अनुपयुक्त है जो अपनेको न्यायाधीश कहता है। इसमें तर्कका सर्वथा अभाव है और झूठे आरोपों तथा लांछनों और गलत ढंगकी युक्तियोंकी भरमार है; और अगर दण्डित व्यक्तिके पुत्र द्वारा प्रस्तुत तथ्य सत्य हैं तो जिस मजिस्ट्रेटने यह सजा दी है वह न्यायाधीशकी कुर्सीपर बैठनेके सर्वथा अयोग्य है। लगता है अदालतकी निगाहमें श्री जमीयतसिंहका दोष यह था कि वे मस्जिद-वाली सभामें उपस्थित थे और उन्होंने हड़तालकी पैरवी की थी, और वे एक धनाढ्य व्यक्ति हैं; जैसा कि मजिस्ट्रेटने फैसलेमें लिखा है कि सफाईके गवाहोंके बयानोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि "जमीयतसिंह एक धनाढ्य व्यक्ति हैं।" जिस भीड़ने सैनिकोंपर पत्थर फेंके उसमें अभियुक्तका शामिल रहना मजिस्ट्रेटकी निगाहमें पर्याप्त अपराध था और "यदि उसने लड़कोंको बाड़ तोड़नेसे रोका तो कोई और कारण रहा होगा, लेकिन वह भीड़के साथ तो था ही।" इस प्रकार मजिस्ट्रेटने अभियुक्तके पक्षकी सभी बातें जान-बूझकर अनसुनी कर दीं। इस निर्णयकी असंगतिके सम्बन्धमें मैं जो-कुछ कह रहा हूँ उसकी सत्यता जाननेके लिए पाठकोंको वह

निर्णय अवश्य पढ़ लेना चाहिए। लेकिन अभियुक्तके पुत्रने मामलेका जो विवरण दिया है उससे प्रत्यक्ष अन्यायकी भयंकरता और भी बढ़ जाती है। क्या यह सच है कि मजिस्ट्रेटने बिना-किसी पूर्व-सूचनाके अभियुक्तकी सम्पत्ति जब्त कर ली थी, घरमें रहनेवालोंके साथ, जैसा विवरणमें बताया गया है वैसा ही व्यवहार किया गया था, और यदि यह सच है तो क्या यह गैर-कानूनी काम नहीं था? क्या यह सच है कि प्रतिवादीके पक्षके गवाहोंकी पेशी नहीं की गई, कि जब अभियुक्तके खिलाफ अभियोग-पत्र तैयार किया गया तब उसके वकीलको अदालतमें मौजूद रहनेका मौका नहीं दिया गया था? इस कीमती फैसलेके बारेमें बस इतना ही कहूँगा।

प्रतीत होता है कि फैसलेके पहले तथा उसके बाद अभियुक्तके साथ किया गया व्यवहार भी अदालतकी इस कार्रवाईके सर्वथा अनुरूप ही था। अभियुक्तके हाथोंमें हथकड़ियाँ डालकर उसे बगलमें अपना बिस्तर दबाकर पैदल चलवाना अमानवीय था। इसे पढ़कर जनरल हडसनके उस भाषणका स्मरण हो आता है जो उन्होंने लोगोंको हाथों और घुटनोंके बल चलनेकी आज्ञाके सम्बन्धमें दिया था और प्रसंगवश कह दूँ कि जिसके बारेमें पं० जवाहरलाल नेहरूने सुधारकर कहा था कि इसे तो रेंगकर चलनेकी आज्ञा कहना चाहिए। स्पष्ट है कि रेंगकर चलनेकी आज्ञा देनेवाले लोगोंकी तरह ही इन अधिकारियोंकी कार्रवाईका उद्देश्य भी लोगोंके मनमें आतंक पैदा करना था। अभियुक्तके साथ जो अपमानजनक और क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया, उसका और कोई कारण समझमें आता ही नहीं। उसने विश्वयुद्धके दौरान वजीराबादमें सबसे अधिक युद्ध-ऋण देकर और रंगरूटोंकी भरती करके सरकारको जो सहायता पहुँचाई थी, उसका भी कोई खयाल नहीं किया गया। जब उसे कठघरेमें खड़ा करके उसके साथ किसी आम बदमाशके उपयुक्त व्यवहार किया गया तो सरकारकी वफादारीसे सहायता करनेकी जो सनद उसे प्राप्त थी वह भी उसके किसी काम न आई।

पंजाब सरकारने बादमें इस दण्डको घटाकर ६ मास कर दिया है, इसके लिए मैं पंजाब सरकारको मुबारकबाद नहीं दे सकता, क्योंकि अभियुक्त तो पूर्ण रूपसे रिहा किये जानेका अधिकारी था। पुरुषोत्तमसिंहके विवरणसे मालूम होता है कि अब पुनरीक्षणाधिकारी न्यायाधीशों द्वारा इस मुकदमेकी पुनः जाँच की जायेगी। मैं इस पुनरीक्षक न्यायाधिकरणके बारेमें अपनी आशंका पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। जिस ढंगसे इसका गठन हुआ है उससे किसी तरहकी आशा या विश्वास पैदा नहीं होता। यदि सरकार इस तरहकी भयंकर भूलोंको सुधार नहीं सकती और अपनी गलतियों पर पर्दा डालनेके लिए इस तरहके न्यायाधिकरणका निर्माण करती जाती है, तो वह प्रजाके आदर और विवेकपूर्ण सहयोगकी पात्र न रहेगी। जो लोग मर गये वे अब लौट नहीं सकते, लेकिन यह असह्य है कि जो लोग अकारण ही जेलोंमें सड़ रहे हैं, उन्हें ऐसे न्यायाधिकरणके समक्ष अपनी निर्दोषता प्रमाणित करनेका अवसर नहीं दिया जा रहा है, जिसपर उनको तथा जनताको पूरा विश्वास हो सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-१०-१९१९

१७७. भाषण : दिल्लीकी सभामें[1]

[अक्तूबर २९, १९१९]

श्री गांधीने कहा कि मैं तो भाषण देने या सुननेसे ऊब गया हूँ। इस समय आवश्यकता कर्म और सत्यकी है, भाषणोंकी नहीं। लोगोंसे मेरा इतना ही कहना है कि सभी सत्यपर आग्रह रखें, क्योंकि असत्यके कारण भारतीयोंमें कायरता घर कर गई है। लगता है कि वे अधिकारियोंके सामने सत्य कहनेसे डरते हैं। यह भारतीय चरित्रका एक बहुत बड़ा दोष है। आवश्कयता सिर्फ सत्य और कर्मकी ही है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३१–१०–१९१९

१७८. तार : साबरमती आश्रमको

[दिल्ली
अक्तूबर ३१, १९१९]

जबतक खिलाफतके सवालका सन्तोषजनक निबटारा नहीं होता तबतक [हम] शान्ति-समारोह नहीं मना सकते।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स।

१. स्वामी श्रद्धानन्दजीकी अध्यक्षतामें आयोजित सार्वजनिक सभामें हंटर कमेटीसे यह अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पास किये गये कि वह विभिन्न हितोंको अपने-अपने वकीलों द्वारा कमेटीके सामने अपने-अपने पक्षका प्रतिनिधित्व करनेकी अनुमति दे। सभाने कमेटीके कार्यकालतक के लिए गिरफ्तार प्रमुख नेताओंको भी छोड़ देने और पंजाबके न्यायालयों द्वारा दी गई सजाओंकी फिरसे सुनवाई करने और जिन मामलोंमें पर्याप्त सबूत न हो उनमें नये सबूत पेश करवानेके अधिकार सहित दो न्यायाधीशोंकी नियुक्तिकी माँग की थी। समाचारके अनुसार गांधीजीने अस्वस्थताके कारण बैठे-बैठे ही भाषण दिया।

१७९. पत्र : सर जार्ज बार्न्ज़को

दिल्ली

अक्तूबर ३१, १९१९

आपका इसी २१ तारीखका कृपा-पत्र पुनर्निर्देशित होकर मुझे दिल्लीमें मिला।

आप बदली हुई स्थितिके बारेमें जैसा सोचते हैं, वैसा तो मैं नहीं सोच सकता, फिर भी मैं इसे दूसरे सर्वोत्तम उपायके रूपमें स्वीकार करता हूँ और श्री मॉण्टेग्युकी मूल घोषणाको कार्यान्वित करानेके आन्दोलनको रोकनेके लिए मुझसे जो-कुछ बन पड़ेगा, करूँगा। क्या आप भारतीय सदस्यका नाम घोषित कर सकते हैं? मैंने तो श्री शास्त्रियरका नाम सुना है। इस सम्बन्धमें मैं तो कहूँगा कि उनसे अच्छा आदमी चुना ही नहीं जा सकता था। क्या आप यह भी बता सकेंगे कि सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन किस दिन जहाजसे दक्षिण आफ्रिका प्रस्थान करनेवाले हैं?

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स : ६१४०–१९

१८०. पत्र : एस्थर फैरिंगको

दिल्ली

शुक्रवार [अक्तूबर ३१] १९१९

रानी बिटिया,

तुम्हारा काम बच्चोंको[1] पढ़ना-लिखना सिखानेसे अधिक यह सिखाना होगा कि उत्तम चरित्र क्या है और उसका अर्थ क्या है। इसलिए यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि तुम्हें शीघ्र ही बच्चोंके निकट-सम्पर्कमें आनेका अवसर मिलेगा।

सुन्दरम्से पत्र लिखनेको कहना और कृष्ण तथा मणिदत्तसे भी।

अभी पखवारे-भर और मेरे लौटनेकी सम्भावना नहीं है।

श्री एन्ड्र्यूज मेरे साथ हैं और हम दोनों शान्ति स्थापित करनेकी कोशिश कर रहे हैं।

बच्चोंके आनेसे कुछ भीड़-भाड़ और असुविधा तो नहीं होती?

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. आश्रममें।

१८३. पत्र : अखबारोंको[1]

दिल्ली
नवम्बर १, १९१९

कई मित्रोंने पूछा है कि आगामी शान्ति-समारोहके बारेमें हमारा क्या रुख होना चाहिए। मैं जानता हूँ कि खिलाफत-दिवसपर कुछ सभाओंमें प्रस्ताव पास किये गये थे कि यदि खिलाफतका सवाल सन्तोषजनक ढंगसे हल नहीं हो जाता तो मुसलमान इन समारोहोंमें भाग नहीं ले सकेंगे। जबतक यह बड़ा सवाल हल नहीं हो जाता और जबतक मुसलमानोंकी भावनाओंको घातक चोट पहुँचनेका खतरा बना हुआ है तबतक भारतीयोंके लिए कोई शान्ति नहीं हो सकती। जबतक हजारों मुसलमान दुःख या अनिश्चयमें पड़े हुए हैं तबतक हिन्दुओं, पारसियों, ईसाइयों, यहूदियों और उन अन्य सभी लोगोंके लिए, जो भारतमें पैदा हुए हैं या जिन्होंने उसे अपना देश मान लिया है, इन आगामी आनन्दोत्सवोंमें हिस्सा ले पाना सम्भव नहीं। मैं समझता हूँ कि वाइसराय महोदय यदि चाहें तो महामहिम सम्राट्के मन्त्रियोंको बता सकते हैं कि जबतक खिलाफतका सवाल हल नहीं हो जाता तबतक समारोहोंमें भारतीय हिस्सा नहीं ले सकते। और मैं पूरी आशा करता हूँ कि महामहिमके मन्त्रिगण इसके पहले कि हमें शान्तिके उत्सवोंमें हिस्सा लेनेको कहें, इस सवालका सम्माननीय समझौता करवाने और उसे प्रकाशित करानेकी आवश्यकताको समझेंगे।

[अंग्रेजीसे]
लीडर, ३–११–१९१९

१८४. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिको[2]

[दिल्ली
नवम्बर १, १९१९]

यह बहुत ही खेदका विषय है कि वाइसराय महोदयको श्री मॉण्टेग्युने जो सन्देश भेजा है, उससे स्थिति बिलकुल बदल गई है। तथापि मैं महसूस करता हूँ कि आयोग-में[3] भारतीय प्रतिनिधियोंकी नियुक्तिका आग्रह करनेसे हमारे पक्षके मामलेको, जो इतना अधिक मजबूत है, नुकसान पहुँचेगा। यदि श्री शास्त्री-जैसा कोई-एक प्रतिनिधि

१. यह पत्र कई प्रमुख समाचारपत्रोंके अतिरिक्त ५–११–१९१९ के **यंग इंडिया**में भी छपा था।

२. इस भेंटका विवरण अनेक प्रमुख समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ था।

३. यह आयोग दक्षिण आफ्रिका संघकी सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था। इसका उद्देश्य दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंके व्यापार करने और भू-स्वामित्वके अधिकारके प्रश्नकी जाँच करना था।

सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनके साथ-साथ दक्षिण आफ्रिकी सरकार तथा शीघ्र ही नियुक्त होनेवाले आयोगके सामने भारतीयोंका मामला पेश करनेके लिए नियुक्त कर दिया जाये तो यह भी लगभग उतनी ही अच्छी चीज होगी। मेरी रायमें हमें इस बातपर जोर देना चाहिए कि आयोगकी जाँचका क्षेत्र समुचित रूपसे विस्तृत होना चाहिए, क्योंकि जहाँतक हमारी जानकारी है, [दक्षिण आफ्रिकी] संघ सरकारकी ओरसे बहुत ही सीमित क्षेत्र प्रस्तावित किया जायेगा। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' इस प्रश्नपर जनताकी — चाहे वह किसी वर्ग या जातिकी हो — रायको सही दिशामें मोड़ने तथा समवेत बनानेका कार्य करके सचमुच बहुत बड़ी सेवा कर रहा है। इतना ही पर्याप्त नहीं होगा कि आयोगके सामने विचारके लिए केवल व्यापारका प्रश्न रखा जाये। फिल-हाल [भारतीयोंके] राजनीतिक दर्जेका प्रश्न अलग रखते हुए १८८५ के कानून ३ पर पूरी तरह पुनर्विचार किया जाना चाहिए। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकामें वैध रूपसे बसे हुए भारतीयोंको व्यापार सम्बन्धी और सम्पत्तिके पूरे अधि-कार पुनः वापस दिलाये जायें। आस्ट्रेलियातक ने इसकी अनुमति दे दी है यद्यपि आस्ट्रे-लियाने ही एशियाई विरोधी नारा सबसे पहले बुलन्द किया था। हमें इसकी भी चौकसी रखनी है कि भारतीय प्रवासियोंको जो अधिकार पहलेसे प्राप्त हैं आयोग कहीं उनमें कोई कटौती न कर दे। न्याय या औचित्यके किसी भी नियमसे भारतीय प्रवासियोंके मौजूदा अधिकार उनसे छीने नहीं जा सकते। परन्तु यदि हम सतर्क नहीं रहते और पहलेसे ही उसका प्रबन्ध नहीं करते तो ऐसी विपत्ति आनेकी पूरी सम्भावना है। वास्तवमें ऐसा संघ संसदकी प्रवर समितिके मामलेमें हुआ, जिसकी सिफारिशोंके फलस्वरूप ही उस नये कानूनका जन्म हुआ जिसकी हम इतनी निंदा करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

न्यू इंडिया, २–११–१९१९

१८५. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश[1]

दिल्ली

कार्त्तिक सुदी ८ [नवम्बर १, १९१९]

. . . मैं माने लेता हूँ कि तुम मृत्युसे नहीं डरते। छोटे, बड़े, वृद्ध सब अपना काल आनेपर ही मृत्युको प्राप्त होते हैं। सब कोई इस देहसे ज्ञानी हो सकते हैं और वृद्ध पुरुषके शरीरमें वास करनेवाली आत्मा मूढ़ हो सकती है। ऐसी स्थितिमें किसके मरनेका शोक करें? . . .

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१. यह पत्र पानेवालेके चाचाके स्वर्गवासके प्रसंगमें लिखा गया था।

१८६. जगत्का पिता – ४

किसानोंकी दशापर हमने विचार किया। गाँवोंमें स्वच्छताके नियमोंका पालन नहीं किया जाता, यह भी हमने देखा। "पहला सुख निरोगी काया" इस कहावतमें बहुत सचाई है। बहुत ऊँची अवस्थाको पहुँचे हुए स्त्री-पुरुष भले ही रोगसे पीड़ित हों, परन्तु वे अपनी देखभाल कर सकते हैं। लेकिन हम-जैसे, जिन्हें अभी शिखरपर पहुँचना शेष है, यदि रोगग्रस्त हो जायें तो अवश्य हाँफने लगेंगे।

अंग्रेजीमें एक कहावत है "ठंडे पैरों कोई स्वर्ग नहीं जा सकता।" इंग्लैंड जैसे ठंडे मुल्कमें लोगोंके पाँव ठंडे रहें तो अकुलाहट होती है और ऐसी परिस्थितिमें ईश्वरकी ओर ध्यान ही नहीं जाता। कहावत है कि "स्वच्छता ही पवित्रता है।" हमारे लिए मलिन अथवा मलिन वातावरणमें रहनेका कोई कारण नहीं है। मलिनतामें पवित्रता नहीं होती, मलिनता अज्ञान-आलस्यकी निशानी है। इससे किसान कैसे छुटकारा पायें? आइये, हम स्वच्छताके नियमोंकी जाँच करें।

(१) हमारे अनेक रोगोंकी उत्पत्तिका मूल हमारे पाखानों अथवा हमारे 'जंगल' जानेकी आदतमें है। प्रत्येक घरमें पाखानेकी आवश्यकता है। सिर्फ स्वस्थ शरीरवाले वयस्क लोग ही 'जंगल' जा सकते हैं। दूसरोंके लिए यदि पाखाने न हों तो वे मुहल्लों, गली-कूचों अथवा घरोंमें पाखाने बनाकर जमीन बिगाड़ते हैं और वायुको विषाक्त बनाते हैं। इससे हम दो नियमोंकी रचना कर सकते हैं। यदि 'जंगल' जाना हो तो गाँवसे एक मील दूर जाया जाये; वहाँ बस्ती नहीं होनी चाहिए, मनुष्योंकी आमदरफ्त नहीं होनी चाहिए, शौचके लिए बैठते समय गड्ढा खोद लेना चाहिए और शौच-क्रिया पूरी हो जानेके बाद मैलेके ऊपर अच्छी तरह धूल डाल देनी चाहिए। खोदकर निकाली हुई सब मिट्टी मलके ऊपर डाल देनेसे मैला अच्छी तरह दब जायेगा। इतनी जरा-सी मेहनत कर लेनेसे हम स्वच्छताके एक बड़े नियमका पालन कर सकते हैं। समझदार किसान अपने खेतमें शौच करें और बिना पैसे खाद उत्पन्न करें। यह हुआ एक नियम।

इस तरह 'जंगल' जानेके बावजूद प्रत्येक घरमें शौचालय होना ही चाहिए। उसके लिए डिब्बेका उपयोग करना चाहिए। वहाँ भी प्रत्येक व्यक्तिको शौच कर चुकनेके पश्चात् काफी मिट्टी डालनी चाहिए जिससे वहाँ दुर्गंध न आये, मक्खी न भिनकें, कीड़े पैदा न हों। यह डिब्बा हर रोज अच्छी तरहसे साफ किया जाना चाहिए। जमीनमें गड्ढा खोदकर शौचालय बनाना व्यर्थ है। पृथ्वीमें अन्दरकी ओर एक फुट सीमातक जीव-जन्तु बिलबिलाते रहते हैं। उस परतमें हम जो मैला डालते हैं वह शीघ्र ही खाद बन जाता है। बहुत अधिक गहरी जमीनकी मिट्टीमें इतने जीव-जन्तु नहीं होते जो मैलेको खादका रूप दे सकें। इससे बहुत गहरेमें दबाया हुआ मैला विषैली गैसको पैदा करके हवाको बिगाड़ता है। डिब्बा लोहेका अथवा रोगन किया हुआ मिट्टीका होना चाहिए। इसमें भी पैसेका खर्च नहीं, सिर्फ मेहनतकी जरूरत है। पेशाब भी

जहाँ-तहाँ नहीं करना चाहिए। गलियोंमें पेशाब करना पाप समझना चाहिए। इसके लिए गड्ढे खुदे हुए होने चाहिए। उनमें भी यदि काफी मात्रामें मिट्टी डाली गई हो तो जरा भी दुर्गन्ध न आयेगी, छींटें न पड़ेंगे और मिट्टी भी खादमें परिवर्तित हो जायेगी। यह हुआ दूसरा नियम। प्रत्येक किसान यदि इन नियमोंका पालन करेगा तो उसके आरोग्यमें वृद्धि होगी, इतना ही नहीं उसे आर्थिक लाभ भी होगा। क्योंकि बिना मेहनतके ही उसे कीमती खाद मिलेगी।

(२) गलियोंके बीचमें थूकना नहीं चाहिए, नाक साफ नहीं करनी चाहिए। कुछ लोगोंका थूक इतना विषैला होता है कि उससे कीटाणु उड़ते हैं और क्षय रोग पैदा होता है। रास्तेमें थूकना कितने ही स्थानोंपर अपराध माना जाता है। पान और जरदा खाकर जो लोग थूकते हैं वे तो दूसरोंकी भावनाओंका तनिक भी विचार नहीं करते। थूक, बलगम आदिपर भी धूल डाल देनी चाहिए।

(३) पानीके सम्बन्धमें किसान लोग अत्यन्त लापरवाही बरतते हैं। कुएँ, तालाब आदि जिनसे पीने और खाना पकानेका पानी लिया जाता है अवश्य स्वच्छ होने चाहिए। उनमें पत्ते नहीं पड़े होने चाहिए। उसमें स्नान करना या पशुओंको नहलाना और कपड़े आदि धोना ठीक नहीं। यहाँ भी शुरूमें थोड़ी-सी मेहनत करनेकी आवश्यकता है। कुआँ साफ रखना तो एक सहज-सी बात है। तालाब साफ रखना उससे जरा कठिन है। लेकिन यदि लोगोंको [इसके सम्बन्धमें] तालीम दी जाये तो बिलकुल सहज काम है। अशुद्ध और अस्वच्छ पानी पीनेसे उबकाई आये तो हम पानीकी स्वच्छताके नियमोंका आसानीसे पालन कर सकते हैं। पानी हमेशा स्वच्छ एवं मोटे कपड़ेसे छानना चाहिए।

एक वृद्धा एक मेज साफ कर रही थी। वह उसपर साबुन लगाती और झाड़नसे पोंछती, फिर भी मेज थी कि साफ ही नहीं होती थी। वृद्धाने साबुन भी बदला, झाड़न भी बदले लेकिन मेज फिर भी वैसीकी-वैसी। किसीने कहा, "बूढ़ी माँ, झाड़नके बदले साफ कपड़ा लो तो मेज अभी साफ हो जायेगी।" वृद्धा समझी। इसी तरह हम मैले वस्त्रसे छानें अथवा पोंछें, उसकी अपेक्षा न छानना ही बेहतर है।

(४) गलियोंमें कूड़ा नहीं फेंका जाना चाहिए, इस नियमके बारेमें कुछ समझानेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। कूड़े-कचरेका क्या किया जाये इसका एक शास्त्र है। काँच, लोहे आदिको जमीनको गहरा खोदकर दबाना चाहिए। छाल और दातुनोंके चिरे हुए सिरोंको धोकर सुखानेके बाद जलानेके उपयोगमें लाया जा सकता है। चिथड़ोंको बेच देना चाहिए। जूठन और सब्जियोंके छिलके आदिको [जमीनमें] गाड़कर उनकी खाद बनाई जा सकती है। इस तरह बनाई हुई खादके ढेर मैंने देखे हैं। चिथड़ोंका कागज बनता है। गाँवमें कूड़ा ले जानेवाले व्यक्तिकी कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, कारण कि [वहाँ] कूड़ा बहुत कम होता है और वह भी मुख्यतः खाद बनाने योग्य होता है।

(५) गाँव अथवा घरोंके आसपास ऐसे गड्ढे नहीं होने चाहिए जिनमें पानी भर जाता हो। जहाँ पानी नहीं होता वहाँ मच्छरोंकी उत्पत्ति नहीं होती और जहाँ

मच्छर नहीं होते वहाँ मलेरिया कम होता है। दिल्लीके आसपास जिन गड्ढोंमें पानी भरा रहता था उनके भर दिये जानेके बाद मच्छरोंकी संख्या पहलेसे कम हो गई और मलेरिया भी कम हो गया।

मैं आशा करता हूँ कि कोई मुझसे यह न पूछेगा कि स्वच्छताके उपर्युक्त नियमोंका चित्रण मैंने इस लेखमें क्यों किया? इन नियमोंके पालनपर इक्कीस करोड़ किसानोंका स्वास्थ्य निर्भर करता है।

जो स्वयंसेवक अपने गाँवके किसानोंको इन नियमोंकी शिक्षा देगा वह अपने ग्राम-वासियोंकी जिन्दगीमें वृद्धि करेगा; रोगोंको फैलनेसे रोकनेके महा उपायमें योग देगा। यह काम सबसे मुश्किल है, क्योंकि इसमें दिलचस्पी रखनेवाले बहुत ही कम लोग हैं। फिर भी किसी-न-किसी दिन इस कार्यको हाथमें लेना ही पड़ेगा। इस धर्मके पालनमें भूलके लिए गुंजाइश नहीं। इसका जितना पालन किया जायेगा उतना ही फल प्राप्त होगा। जिसे प्रारम्भ करना हो, वह इस कामको हाथमें लेकर देखेगा कि उसने एक वर्षके भीतर ही अपने गाँवके स्वास्थ्यमें परिवर्तन ला दिया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–११–१९१९

१८७. टिप्पणियाँ

रौलट आवेदनपत्र

रौलट आवेदनपत्र[1] इस अंकके परिशिष्टके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। इसे जल्दीसे-जल्दी भेज देना आवश्यक है। इसपर अधिकसे-अधिक लोगों द्वारा हस्ताक्षर किये जाने चाहिए। ब्रिटिश हिन्दुस्तानमें रहनेवाला हर व्यक्ति, — सभी स्त्री-पुरुष — इसपर हस्ताक्षर कर सकते हैं। हस्ताक्षर करानेके काममें 'नवजीवन' का पाठक-वर्ग मदद कर सकता है। हस्ताक्षर करनेवाले व्यक्तिका नाम, व्यवसाय और पूरा पता दिया जाना चाहिए। उसमें यदि स्वयंसेवकका नाम हो तो और भी अच्छी बात है। लेकिन स्वयंसेवककी मददके बिना भी हस्ताक्षर किये जा सकते हैं। आवेदनपत्रपर हस्ताक्षर करनेके बाद, हस्ताक्षरकर्त्ता उसे 'नवजीवन' कार्यालय पहुँचा दें। यहाँसे उसे उचित स्थानपर पहुँचा दिया जायेगा। हमें उम्मीद है कि इस कार्यमें 'नवजीवन' के पाठक एकदम लग जायेंगे और पूरी सहायता देंगे।

यह सोचना कि आवेदनपत्रसे कुछ लाभ नहीं होनेवाला है — ठीक नहीं है। आवेदनपत्र एक प्रकारकी शिक्षा है। उसके द्वारा उल्लिखित विषयपर जनताका ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। जिस आवेदनपत्रके पीछे बल नहीं है, कार्य नहीं है; और जब आवेदनपत्र देनेको ही हम अपने बल अथवा कार्यका परिचायक समझते हैं उस समय वह व्यर्थ होता है। लेकिन जिस आवेदनपत्रके पीछे बल और कार्य रहता है वह बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। रौलट आवेदनपत्र ऐसा ही है। इसके पीछे सत्याग्रह-

१. देखिए परिशिष्ट ६।

का बल है। इसपर हस्ताक्षर लेनेके बाद कार्यवाहक चुप बैठनेवाले नहीं हैं। इसलिए हम आशा करते हैं कि रौलट आवेदनपत्रको अमूल्य समझकर सभी उसपर हजारों हस्ताक्षर लेनेका प्रयत्न करेंगे।

पंजाबको सहायता

गत अप्रैल महीनेमें पंजाबके दंगोंमें कुछ लोग हताहत हुए थे। कुछ लोग विभिन्न अदालतों द्वारा दण्डित भी किये गये थे। इन व्यक्तियोंके असहाय परिवारोंके लिए इस समय मद्रासमें जो कार्य चल रहा है उसका सार हम इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। कलकत्ता और बम्बईमें धनाढ्य लोग अधिक हैं, इसलिए वहाँ अधिक बड़ी रकम एकत्रित की जा सकी है। लेकिन मुख्य रूपसे, सामान्य मध्यम-वर्गसे अधिकाधिक प्रयत्न करके अच्छी-खासी राशि इकट्ठा करनेका श्रेय मद्रासको ही है। इस नगरमें इस कोषके लिए अबतक जितनी रकम आई है उसके आँकड़े भी इस अंकमें दिये गये हैं। हमें विश्वास है कि सभी सच्चे अहमदाबादी इन्हें देखकर लज्जित होंगे। और अभी अन्तिम एक-दो प्रयत्न करने बाकी ही हैं। पंजाबके मामलेपर चारों ओर लोग बातें तो बहुत दिलचस्पीसे करते दिखाई देते हैं। लेकिन लगता है कि हममें से इस दुःखी प्रान्तके हजारों निराधार पुरुषों और विशेषतया स्त्रियों और बालकोंके लिए इस शाब्दिक सहानुभूतिको व्यावहारिक रूप देनेका विचार बहुत ही कम लोगोंमें जागा है। पंजाबमें सैनिक कानूनके अन्तर्गत जो प्रशासन जारी किया गया था, उसकी जाँच करनेके लिए एक समितिकी नियुक्ति हुई है, पंजाबकी जनताका मामला उसके सामने पेश करनेके लिए पूज्य पंडित मालवीयजी और पंडित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी तथा श्री एन्ड्रचूज-जैसे महारथी अथक परिश्रम कर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें उसपर प्रस्ताव अथवा चर्चा करनेकी कोई खास जरूरत नहीं है। लेकिन सभी, गरीब और अमीर, पुरुष और स्त्री, पंजाबके निराधार कुटुम्बोंकी सेवामें सर्वस्व नहीं तो अपना कुछ-न-कुछ अर्पित कर सकते हैं। दंगोंमें भाग लेनेवाले अथवा सजायाफ्ता व्यक्तियोंके परिवारोंको मदद देनेमें हिचकिचानेकी कोई बात नहीं है। लड़ाईमें घायल हुए शत्रुओंकी भी सार-सँभाल मनःपूर्वक की जाती है, तो फिर हम यह आशा क्यों न करें कि गुनहगार व्यक्तियोंके निर्दोष परिवारोंको सहायता देनेका प्रेमधर्म सभी लोग अपनायेंगे।

तीर्थ-स्थान

डॉक्टर लक्ष्मीप्रसादने डाकोरजीका जो चित्रण किया है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यह बात हम निजी अनुभवसे जानते हैं। डाकोरजीकी हालत ऐसी है कि स्वच्छताके नियमोंका पालन करनेवाला कोई भी व्यक्ति वहाँ चौबीस घंटे नहीं टिक सकता। तालाबके आसपास लोग चाहे जैसी गन्दगी करते रहें उसके बारेमें कोई पूछने-जाँचनेवाला नहीं। तीर्थयात्री जैसे-तैसे गुजारा करते हैं। हममें डाकोरजीके सम्बन्धमें अभिमानकी भावना नहीं है, यही कारण है कि वहाँका स्टेशन भी देखनेमें खंडहर-जैसा लगता है। जहाँ प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति जाया करते हों वहाँ सुख-सुविधाके साधन न्यूनातिन्यून हैं।

डाकोरजीके भीतरी भागकी ओर नजर डालिए तो वहाँ भी हमें गन्दगी-ही-गन्दगी दीख पड़ती है। पुजारी लोग बुद्धिहीन और मूढ़ जैसे जान पड़ते हैं। उस मन्दिरके आभूषणोंके लिए एक आदाता (रिसीवर)की नियुक्ति की गई है। केवल धर्म-सम्बन्धी स्थानके मामलेको अदालतके सुपुर्द करना वैष्णव लोग कैसे सहन कर सकते हैं? जो संप्रदाय नीतिका पोषक है, जिसको नरसिंह मेहता, मीराबाई आदि भक्तोंने सुशोभित किया है, वह सम्प्रदाय आज नीतिका हनन करनेवाला बन गया दीख पड़ता है।

डाकोरजी जानेवाले कौन लोग हैं? वहाँ सरल हृदय भोले-भाले यात्री जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन यह भी असंदिग्ध है कि वहाँ पाखंडी लोग अपने पाखण्डका प्रसार करनेके लिए भी जाते हैं।

इस अनीति-अस्वच्छता रूपी अन्धकारको कैसे दूर किया जाये? वैष्णवोंका क्या कर्त्तव्य है? डाकोरजी ही एक ऐसा तीर्थ-स्थान है जो दूषित अवस्थामें हो, सो बात नहीं। काशी विश्वनाथमें भी हमें यही दशा दीख पड़ी है। वैष्णव-मतके न्यासी यदि प्रह्लादके सच्चे उत्तराधिकारी बनें तो डाकोरजीमें रहनेवाले अनेक हिरण्यकशिपुओंको निकाल बाहर कर सकते हैं। यदि वे वैष्णव-सम्प्रदायका मुख उज्ज्वल करना चाहते हैं तो अनेक सुधार कर सकते हैं। यात्रियोंमें ज्ञान आ जाये तो मुख्य सत्ता अन्यत्र नहीं — उन्हींके पास है। लेकिन यात्रियोंमें ज्ञान उत्पन्न हो इसका अर्थ यह हुआ कि करोड़ों हिन्दू अपने धर्मकी प्रौढ़ता और उसके धार्मिक-तत्त्वको समझने लगें — वह समय अभी दूर है।

भाटिया[1] पलटन वहाँ जाने लगी है। इस पलटनके सदस्योंके हृदयोंमें यदि रण-छोड़जी वास करें तो वह भी कुछ कर सकती है। उनका काम सिर्फ व्यवस्था बनाये रखकर सन्तोष करना नहीं, बल्कि जहाँ-कहीं भी अनीति दिखाई पड़े उसे निर्मूल करना है। और इसके लिए वे साहित्य तैयार करके लोगोंमें वितरित कर सकते हैं।

महाराजा[2] लोग भी बहुत-कुछ कर सकते हैं। लेकिन उनतक 'नवजीवन' पहुँचता होगा अथवा नहीं, यह हम नहीं जानते। 'नवजीवन' के पाठक इस शोचनीय अवस्थाकी ओर उनका ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। वैष्णव भक्तगण इन महाराजाओंको उनके धर्मके बारेमें बता सकते हैं।

स्वराज्यवादियोंके लिए विशेष रूपसे विचारणीय प्रश्न यह है: "यदि हम अपने तीर्थ-स्थानोंका सुधार नहीं कर सकते तो स्वराज्य मिलनेपर भला क्या कर सकेंगे?" स्वराज्य मिलनेपर ये स्थान अपने-आप सुधर जायेंगे, ऐसा विचार किसीका भी न होगा।

डाकोरजीकी नगरपालिका क्या करे — इसके सम्बन्धमें डॉक्टर लक्ष्मीप्रसादने सुझाव दिया है। नगरपालिका अर्थात् लोग। ऐसी संस्थाएँ निष्प्राण होती हैं। ये तो

१. कच्छमें बसनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग इस मंदिरमें व्यवस्था कायम रखनेके लिए स्वयंसेवकोंकी हैसियतसे जाया करते थे।

२. वैष्णव मन्दिरके मुखिया।

गाड़ीके समान होती हैं। गाड़ीवान जिधरको हाँके उधर ही जाती हैं। लोगोंकी भावनाओंके उत्तेजित होनेपर जब वे स्वच्छताकी माँग करेंगे तभी नगरपालिका स्वच्छताकी ओर ध्यान देगी। इसके अतिरिक्त नगरपालिकाकी बदौलत ही सुधार नहीं किये जाते बल्कि कुछ-एक लोगोंकी समझ-बूझ और दिलचस्पीपर भी इनका दारमदार होता है।

पुराना चरखा

इस शीर्षकके अन्तर्गत श्री बिहारीलाल काँटावालाका जो लेख हमने प्रकाशित किया है उसकी ओर हम प्रत्येक स्वदेशाभिमानी पाठकका ध्यान खींचते हैं। श्री बिहारीलालने जिस तरह मनन करके अपने विचार प्रगट किये हैं उसी तरह दूसरे लोग भी व्यक्त करें तो [चरखेमें] जो सुधार करने आवश्यक हैं वे समयपर किये जा सकेंगे।

हमारी धारणा है कि चरखेके वर्तमान ढाँचेको ज्योंका-त्यों बनाये रखकर भी उसमें कुछ सुधार किये जा सकते हैं और [उसपर] अधिक सूत काता जा सकता है। हम लेखकके इस मतसे बिलकुल सहमत हैं कि पुराने चरखेमें कातनेवालेको जिस कौशलसे काम लेना पड़ता है चरखेके नवीन रूपमें भी वह आवश्यक होना चाहिए। श्री रेवाशंकर मेहताजी द्वारा पारितोषिक[1] घोषित किया जाना उचित जान पड़ता है। जो लोग अधिक सूत कातनेका प्रयत्न कर रहे हैं उनकी मेहनत निष्फल नहीं जा सकती। श्री बिहारीलालके अनुभवका उपयोग करना चाहिए। यदि कातनेवाले उनके सुझावोंको ध्यानमें रखेंगे तो फलकी प्राप्ति शीघ्र होगी और वे व्यर्थकी मेहनतसे बचेंगे।

"हाथसे रुई नहीं धुनी जा सकती", हम इस विचारसे सहमत नहीं हैं। आज कितने ही स्थानोंमें रुई हाथसे धुन ली जाती है और यदि वर्तमान आन्दोलनके मुख्य तत्त्व कायम रहेंगे तो दिन-ब-दिन हाथसे अधिकाधिक रुई धुनी जाया करेगी, क्योंकि इस आन्दोलनमें ऐसा खयाल किया गया है कि जहाँ रुई पैदा हो वहीं मुख्य रूपसे उसका उपयोग किया जाये। मिलोंके लिए रुई मशीनों द्वारा धुनी जाती है, लेकिन अगर हाथसे सूत कातनेके लिए रुई मशीन द्वारा धुनी जायगी तो दूनी मेहनत पड़ेगी और बिनौले बरबाद जायेंगे।

रुई धुनकर आसानीसे पूनी बनानेके सरल साधन खोजनेके लिए पुरस्कार घोषित करनेके सुझावका हम स्वागत करते हैं। और जो व्यक्ति ऐसे औजार खोज निकालेंगे उन्हें हम अवश्य इनाम देंगे। इनामके लिए व्यावहारिक सुझाव प्राप्त करनेके बाद हम इनामकी निश्चित रकमकी घोषणा करनेकी भी उम्मीद रखते हैं। लेकिन हम अपने पाठकोंको सलाह देते हैं कि उन्हें इस सम्बन्धमें कारीगर-वर्गकी दिलचस्पी जाग्रत करनी चाहिए। जो कारीगरोंके सम्पर्कमें आते हैं वे उन्हें ऐसी खोजोंके लिए आसानीसे प्रोत्साहित कर सकते हैं।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-१०-१९१९।

चरखा-आन्दोलन

अहमदाबाद स्वदेशी सभाकी ओरसे चरखेका जो आन्दोलन आरम्भ किया गया है, उसके सम्बन्धमें इस अंकमें प्रकाशित किये गये तथ्यकी ओर हम पाठक-वर्गका ध्यान आकर्षित करते हैं। इनसे कुछ-एक मुद्दोंको आसानीसे सुलझाया जा सकता है। पहला तो यह कि बम्बईकी तरह अहमदाबाद शहरमें भी स्त्रियोंका एक ऐसा वर्ग है जो नित्य रुई कातकर दो या तीन आने कमाना एक उपयोगी काम मानता है; दूसरा यह कि लुनसावाड़[1] नामक मुहल्लेमें ज्यादा चरखे चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उस मुहल्लेमें अबतक हर महीने चरखोंकी संख्यामें वृद्धि होती आई है। दूसरी ओर खाडिया[2] नामक मुहल्लेमें चरखोंकी संख्यामें तीसरे महीने कुछ कमी हुई है। चरखे लेनेवाली स्त्रियोंकी जातिवार सूची तैयार करनेसे इस घट-बढ़के कारणपर कुछ प्रकाश पड़ेगा। ऊपर-ऊपरसे देखनेपर ऐसा लगता है कि लुनसावाड़में बसे हुए लोगोंके अधिक गरीब होनेकी वजहसे वहाँके लोगोंने अन्य जगहोंकी अपेक्षा अधिक चरखे चलाना शुरू किया है। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि इस अनुमानमें कुछ-न-कुछ सच्चाई जरूर है। यह भी विचारणीय है कि उक्त आँकड़ोंसे यह बात कहाँतक सिद्ध होती है, जाति और कुलका अभिमान रखनेवाली ऊँची जातियाँ गरीबीके शिकंजेमें ग्रसित होनेके बावजूद हलका काम हाथमें लेनेमें संकोच करती हैं और नीची जातियाँ आवश्यकता पड़नेपर [किसी भी] अनुकूल कामको सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं। इससे भी अधिक बोधजनक प्रश्न यह है कि [एक ओर] बम्बई, अहमदाबाद, सूरत आदि स्थानोंमें तथा दूसरी छोटी जगहोंमें जो स्त्रियाँ फिलहाल चरखा चलाती हैं वे तथा दूसरी ओर उसी वर्गकी हजारों और लाखों स्त्रियाँ, मोटे तौरपर किन-किन धन्धोंमें प्रतिदिन कितना-कितना कमाती हैं? हम हर किसीसे इस अत्यन्त बोधदायक प्रश्नके सम्बन्धमें तुरंत जानकारी प्राप्त करनेकी विनती करते हैं और आशा करते हैं कि इस बीच भिन्न-भिन्न स्थानोंपर चलाये जा रहे चरखोंके सम्बन्धमें अहमदाबादके समान ही तफसीलवार जानकारी भेजकर सब स्वयंसेवक और [स्वदेशी] सभाएँ हमें अनुगृहीत करेंगी।

टैनरियाँ

"टैनरियाँ"[3] अर्थात् चमारोंकी दुकानें और पेढ़ियाँ। एक संवाददाताका कथन है कि आजकल हिन्दुस्तानमें इस प्रकारकी पेढ़ियाँ बहुत खुल रही हैं। आगे चलकर वह लिखता है कि इस तरह भारतका व्यापार बढ़े यह वांछित नहीं है, क्योंकि इससे मवेशियोंका नाश होता है।

ऐसा लिखकर लेखकने सद्भावपूर्वक जीवहत्याके प्रश्नको उठाया है। हमें लगता है कि चमारोंकी दुकानोंसे पशु-हिंसामें कोई वृद्धि नहीं होगी। चमारोंकी दुकानोंके बढ़नेपर ज्यादा मवेशी मारे जायेंगे, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। मरे हुए ढोरोंके चमड़ेका उपयोग करना दोष-रहित है, ऐसी हमारी मान्यता है। चमारोंका धन्धा आवश्यक है। मनुष्योंका जूतों बिना गुजारा नहीं है। खेतीके धन्धेमें चमड़ेका हर समय

१ व २. अहमदाबादके मुहल्ले।

३. यहाँ गांधीजीने ही अंग्रेजी शब्दका प्रयोग किया है।

उपयोग किया जाता है। पानी भरनेकी असंख्य मशकें भी चमड़ेकी ही बनती हैं। इस धन्धेसे लाखों रुपयेकी कमाई होती है।

यह धन्धा फिलहाल चमारों और मोचियोंके हाथमें है। उनके हाथसे यह धन्धा भारी फर्मोंके हाथमें न चला जाये और चमार तथा मोची भूखे न मरने लगें इसका बन्दोबस्त भी हमें करना है।

यदि हम समयसे न चेतेंगे तो इसका परिणाम वही होगा जिसकी कि हमें आशंका है। हमने कारीगरोंके हितोंकी फिक्र ही नहीं की है। कारीगरोंको 'कमीन'[1] करार देकर उनका अनादर करना देशको नुकसान पहुँचाना है। कारीगरीको हलका मानकर और मुनीमगीरीको ऊँचा चढ़ाकर हमने गुलामीको स्वीकार किया है। राज, मोची, सुनार, लुहार, हज्जाम आदि वर्गोंको नीचा मानकर हमने उन्हें दबाया है। हमने उनके धंधोंसे तथा उनके घरोंसे विनयशीलता, विद्वत्ता, सौजन्य और सभ्यताको हर लिया है। परिणाम यह हुआ है कि उनका जीवन शुष्क बन गया है और वे लोग स्वयं भी अपने जीवनको उच्च नहीं मानते हैं। इसलिए शिक्षा प्राप्त कर लेनेपर वे अपने धन्धोंको छोड़ देते हैं, अपना धंधा करनेमें शरमाते हैं। मोची पढ़-लिखकर अपना व्यवसाय छोड़ देता है, दर्जी पढ़-लिख जानेके बाद सुईको हाथ नहीं लगाता, बुनकर खड्डीके साथ वैर ठान लेता है और फिर भंगी शिक्षा प्राप्त कर लेनेपर पाखाना साफ करे यह भला कैसे हो सकता है? यदि हमने हाथ-पैरकी मेहनतसे होनेवाले धंधोंको हेय न समझा होता तो हम ऐसी कठिन परिस्थितिमें न पड़ते और भंगी तकका धन्धा करते हुए स्नातक न शरमाता।

जीवदयाके सम्बन्धमें भी हममें विचित्र विचार फैले हुए हैं। जीवदयाकी शुरूआत हमें अपनी ही जाति अर्थात् मनुष्य जातिसे करनी चाहिए, उसके बदले पशुओंपर छुरी न चलानेमें ही हम जीवदयाकी इतिश्री मान लेते हैं। पशुओंपर दया करना जरूरी तो है, परन्तु मनुष्य जातिपर भी उतनी ही दयाकी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त जीवदयाके बहाने अथवा उसके नामपर हम बौरा न जायें, इस बातका ध्यान रखना भी जरूरी है। जो लोग मरे हुए पशुके चमड़ेके उपयोगको "जीवित पशुकी खाल उधेड़ने" जैसा मानते हैं उनकी बातमें न न्याय है और न सत्य।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–११–१९१९

१. गुजराती 'वसवाया' अर्थात बढ़ई, नाई, धोबी आदि जिन्हें गाँवोंमें लोग कामके बदले उपजका कुछ अंश तथा मांगलिक अवसरोंपर इनाम देते हैं।

१८८. सन्देश : ईसाइयोंको[1]

दिल्ली

[नवम्बर ३, १९१९ के पूर्व]

[पहला :] सभी ईसाइयों, नेताओं तथा अन्य सबको भी अपना जीवन प्रभु यीशुके जीवनके और-अधिक अनुरूप बनानेका प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरा : आप सबको ईसाइयतको किसी भी तरह दूषित किये बिना या उसके सिद्धान्तोंमें कोई ढिलाई लाये बिना उसका आचरण करना चाहिए।

तीसरा : आप सबको प्रेमके अपने मूल सिद्धान्तपर अधिक जोर देना चाहिए।

चौथा : आपको गैर-ईसाई धर्मोंका अध्ययन अधिक सहानुभूतिपूर्वक करना चाहिए और उनमें जो अच्छाइयाँ हैं उन्हें ढूंढ़नेकी कोशिश करनी चाहिए।

टाइप किये हुए अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ६९७४) की फोटो-नकलसे।

१८९. दक्षिण आफ्रिकाके विषयमें भेंटपर टिप्पणी[2]

नवम्बर ३, १९१९

उन्होंने कहा कि मुझे बहुत दुःख है कि संघ सरकार भारतके प्रतिनिधियोंको आयोगमें बैठने नहीं देना चाहती है। उन्होंने कहा कि वे वही करने जा रहे हैं जो मैंने अपने पत्रमें उनसे करनेको कहा था, यानी कि वे खुद इस विषयपर एक आन्दोलन न खड़ा करें, और अन्य लोग यदि आन्दोलन उठाएँ तो उन्हें दबानेके लिए यथा-सम्भव प्रयत्न करें। उन्होंने मुझे बताया कि पिछले एक-दो दिनोंमें उन्होंने संवाद-दाताओंको भेंट दी है और इन भेंटोंमें कहा कि वे वर्तमान स्थितिमें इसे सर्वोत्तम प्रबंध मानते हैं।

मैंने उनसे पूछा, क्या उनकी इस विषयमें कुछ निश्चित राय है कि आयोगके सामने जो बातें विचारार्थ रखी जायें उनमें व्यापारके अधिकारके अलावा अन्य अधिकारोंका भी विचार किया जाये। मैंने उनका ध्यान इस ओर भी दिलाया कि हाल ही में भारतीयों द्वारा जाँच करवानेकी कोशिशोंका ऐसा परिणाम हुआ था जिसे

१. लगता है नवम्बर ३ से पूर्व ईसाई मिशनरी रेवरेंड ई० स्टैनली जोन्सने दिल्लीमें गांधीजीसे मुलाकात की। उसी तारीखको उन्होंने गांधीजीको **कॉरिन्थियन्स** १ के अध्याय १३ के कुछ अनुच्छेदोंका मॉफेट द्वारा किया गया अनुवाद भी भेजा। गांधीजीके सन्देशका यह पाठ रेवरेंड जोन्स द्वारा ७ नवम्बरको उनके नाम लिखे एक पत्रसे लिया गया है।

२. अवश्य ही यह जॉर्ज बार्न्ज़ द्वारा लिखित उस भेंटकी रिपोर्ट है जब गांधीजी दक्षिण आफ्रिकी आयोगके सिलसिलेमें उनसे मिले थे। देखिए "पत्र : सर जॉर्ज बार्न्ज़को", ७-११-१९१९।

मौजूदा अधिकारोंमें कटौती माना जा सकता है। उन्होंने कहा कि वे आग्रहपूर्वक यह महसूस करते हैं कि जाँचके दायरेमें १८८५ का कानून भी होना चाहिए। उनके विचारमें इसकी सम्भावना नहीं थी कि आयोग द्वारा उक्त कानूनपर विचार करनेके परिणामस्वरूप मौजूदा अधिकारोंमें कटौती हो जायेगी।

मैंने अंतर्प्रान्तीय प्रवासके विषयपर उनके विचार पूछे। उन्होंने कहा:

मैं इसकी माँग नहीं करूँगा क्योंकि मैं जानता हूँ कि हमें यह हासिल नहीं होगा। प्रान्तोंमें परस्पर प्रवासकी स्वतन्त्रताका अर्थ होगा कि ट्रान्सवालसे ऑरेंज फ्री स्टेटमें जाकर वहाँ प्रवास करनेकी स्वतन्त्रता। ऑरेंज फ्री स्टेटने हमेशा भारतीयोंके प्रवेशका निषेध किया है और उस पूरे प्रान्तमें एक भी भारतीय नहीं है।

इसके बाद मैंने उनसे पूछा कि वापस आनेके इरादेसे एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जाने-आनेके बारेमें उनका क्या खयाल है। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति प्रान्तकी सीमाके बाहर रहनेवाले किसी रिश्तेदारकी अन्त्येष्टिमें शरीक होना चाहे। उन्होंने कहा:

यह बहुत-ही छोटा मामला है, और मैं समझता हूँ कि हम जनरल स्मट्सपर भरोसा कर सकते हैं कि प्रशासकीय आज्ञा द्वारा वे इसे निबटा देंगे।

उन्होंने कहा कि इसके लिए कोई कानून बनानेकी जरूरत नहीं होगी।

उन्होंने कहा कि वे (३ नवम्बरको) अमृतसरके लिए रवाना हो रहे हैं परन्तु आयोगके विचारार्थ विषय-सूचीका दायरा बढ़ानेके प्रश्नपर सावधानीसे विचार करेंगे और मुझे अपने विचारोंसे अवगत करा देंगे। उन्होंने कहा:

मैं दक्षिण आफ्रिकी लोगोंको जानता हूँ, और वहाँकी मौजूदा कठिनाइयोंको पूरी तरह समझता हूँ। मैं ऐसी माँगें रखनेकी गलती नहीं करता चाहता जो अबुद्धि-मत्तापूर्ण हों और जो कि हम जानते हैं कि पूरी नहीं होंगी।

उन्होंने मुझसे पूछा कि आयोगके सामने भारतीय प्रतिनिधि कौन होगा। मैंने उन्हें बताया कि संघ सरकारने अभीतक किसी भारतीयके प्रतिनिधि नियुक्त किये जानेपर सहमति नहीं दी है, परन्तु वाइसराय तथा उपनिवेश मंत्री दोनों ही पूरी तरह एकमतसे चाहते हैं कि एक भारतीय प्रतिनिधि भी हो, और उन्होंने आग्रह किया है कि एक प्रतिनिधि लिया जाये। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या यह सही है कि श्री शास्त्रीका नाम वाइसराय तथा उपनिवेश मंत्रीने सुझाया है। मैंने बताया कि यह सही है। उन्होंने कहा:

मैं नहीं समझता कि इससे बेहतर व्यक्ति सम्भवतः चुना जा सकता था।

श्री गांधीने आशा प्रकट की कि मैं जब भी उनकी आवश्यकता समझूँ, उन्हें बुलवाऊँगा, और यह भी कहा कि जब भी दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नपर उनकी मददकी जरूरत होगी वे लाहौर या अमृतसरसे आनेके लिए तैयार हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: ६१४० – १९।

१९०. पत्र: जीवनलाल बी० व्यासको[1]

[दिल्ली]

नवम्बर ३, १९१९

एक मन कपड़ेका कमीशन एक रुपया। वेतन चाहिए तो वह भी दिया जा सकता है। सूत तो हाथका कता हुआ ही होना चाहिए।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती (एस० एन० ६८०३) से।

१९१. पंजाबकी चिट्ठी – २

दिल्ली

सोमवार, कार्तिक सुदी ८[2] [नवम्बर ३, १९१९]

लाहौरमें मुझे स्त्री-पुरुषोंके जिस प्रेमका अनुभव हो रहा है मैं अपनेको उसका पात्र नहीं पाता। इससे हिन्दुस्तानके लोगोंकी श्रद्धा, सरलता और उदारता अवश्य प्रदर्शित होती है और वह मुझे मोहित किये हुए है। छोटे-बड़े सभी सारा दिन 'दर्शन' करने आते रहते हैं। मैं किसी भी जगह आसानीसे अकेला नहीं निकल पाता। लोगोंकी भीड़ मुझे देखते ही इकट्ठी हो जाती है और मैं इसे रोक नहीं सकता। 'दर्शन' देनेकी कोई पात्रता मुझमें नहीं है। पूजा करनेकी जो भावना लोगोंमें है वह सराहनीय हो सकती है; लेकिन किसी सेवकके 'दर्शन' करनेके लिए लोगोंके झुण्ड निकल पड़ें, यह मुझे असह्य जान पड़ता है। यदि मैं 'दर्शन' देनेसे इनकार करूँ तो मेरे सार्वजनिक काममें बाधा उपस्थित होने लगे। 'दर्शन' करनेसे लोगोंको तनिक भी लाभ होता है, यह मैं नहीं मानता। 'दर्शन' देनेवालेकी हालत तो दयनीय ही हो जाती है। एकबार एक मित्रने मुझसे पूछा "लोगोंके द्वारा मान दिये जानेसे तुममें कहीं 'घमण्ड' तो पैदा नहीं होता?" यह प्रश्न उन्होंने अत्यन्त सरलतासे किया था। मैं क्या जवाब दूँ? मैंने तो कहा, "खुदा मुझमें घमंड पैदा न करे।" ये मित्र एक प्रख्यात मुसलमान हैं। लेकिन 'दर्शन' देनेमें व्यस्त व्यक्तिपर बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। मनुष्यको 'दर्शन' देनेका कोई अधिकार नहीं है। मैं तो कह सकता हूँ कि इससे मुझे सिर्फ

१. २९ अक्तूबर, १९१९ को लिखे अपने पत्रमें जीवनलाल बी० व्यासने गांधीजीसे पूछा था कि अगर हमें पेटीका सूत खरीदकर बुनवानेकी अनुमति मिल जाये तो हम बहुत अच्छी किस्मका सूत कतवा सकते हैं। गांधीजीने उसी पत्रपर इसका उत्तर लिख दिया था।

२. यह १० होनी चाहिए।

अकुलाहट होती है और यदि मैं लोगोंकी भावनाओंको ठेस पहुँचाये बिना 'दर्शन' देना बन्द कर सकूँ तो अवश्य ही बन्द कर दूँ। किन्तु वह मुझसे हो नहीं पाता। इसका कारण या तो यह है कि मुझमें हिम्मतकी कमी है अथवा मेरी विवेक दृष्टि अभी मलिन है या फिर अहिंसा-धर्म मुझे लोगोंका जी दुखानेसे रोकता है। मैं समझता हूँ कि मुझमें उक्त दोनों दोष भी हैं और अहिंसावृत्तिका प्राबल्य भी। इस दशासे छुटकारा पानेका मैं निरन्तर प्रयत्न तो कर ही रहा हूँ। आजकल जब लोग 'दर्शन' करने आते हैं, तब भी मैं अपना लेखनादि कार्य करता रहता हूँ। अभी जब यह लिख रहा हूँ, इस समय भी लोग आ-जा रहे हैं। लेकिन मैं अपना काम बन्द नहीं करता; उन्हें नमस्कार करके अपना लिखना जारी रखता हूँ।

यह सत्य और सेवाधर्मके सहज पालनका ही परिणाम है; इस बातकी मुझे स्पष्ट प्रतीति होती रहती है। सत्यके जिस रूपसे मैं परिचित हूँ उसका मन, कर्म और वचनसे आचरण करनेका मैं दावा नहीं कर सकता। मेरा दावा इतना ही है कि मैं सत्य और सेवाधर्मका पूरा-पूरा पालन करनेका अधिकसे-अधिक प्रयत्न कर रहा हूँ और जिस अनन्य प्रेमका अनुभव कर रहा हूँ वह मुझे स्पष्टतः यह बतलाता है कि जिनमें सत्य और सेवाधर्म पूर्ण रूपसे प्रकट होता है वे लोग अवश्य ही संसारके लोगोंके हृदयोंपर शासन करते हैं और अपने मनमें निश्चित किये गये कार्योंको पूरा करते हैं। मैं यह भी देख रहा हूँ, इस विषम कालमें भी सत्य, सेवा और दयाधर्मका सहज पालन करनेसे मनुष्यको परम शान्ति मिलती है।

समितिके लिए तैयारी

लाहौरमें माननीय लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदय तथा डिप्टी कमिश्नरसे मिलनेके बाद मैं श्री एन्ड्रयूजके साथ दिल्ली गया क्योंकि वहाँ २९ तारीखको समितिकी बैठक होनेवाली थी। दिल्लीमें श्री एन्ड्रयूज और मैं लॉर्ड हंटरसे मिले और स्थानीय अधिकारियोंसे मुलाकात की। सबकी यही इच्छा दिखी कि जो सत्य हो वह प्रकाशित किया जाये। समितिकी ओरसे जो प्रश्न-पत्रक प्रकाशित किया गया है उसमें भी ऐसी व्यवस्था की गई है जिससे सभी पक्षोंके लोग उसके सम्मुख तथ्य रख सकें। अभी दो चीजें बाकी हैं: नेताओंका रिहा किया जाना तथा पंजाबसे बाहरके एक न्यायाधीशकी नियुक्ति। इसकी व्यवस्था हो रही है।

पंडित मालवीयजी

पंडित मालवीयजी रविवारको काशीसे यहाँ आ गये। वे उपर्युक्त बातोंके सम्बन्धमें माननीय लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदयको पहले ही तार दे चुके हैं। श्री सी० आर० दास सोमवारको आ गये। वे भी पंडितजीके साथ रहेंगे। इस बार दुःख सिर्फ इस बातका है कि पंडित मोतीलाल नेहरू बीमार पड़ गये हैं। उन्होंने पंजाबके मामलेमें भारी परिश्रम किया है। इस सम्बन्धमें उन्होंने जितनी जानकारी प्राप्त कर ली है उतनी शायद बहुत-थोड़े लोगोंने की होगी। इस समय वे रोगग्रस्त हैं, तथापि आशा है कि वे एक सप्ताहके भीतर स्वस्थ हो जायेंगे। वे दमेसे पीड़ित हैं।

दिल्लीमें सभा

शनिवारके दिन दिल्लीमें एक जबरदस्त सभाका आयोजन किया गया था। यह सभा मुझसे मिलनेके उद्देश्यसे तथा दिल्लीमें अप्रैलके महीनेमें जो गोलीकाण्ड हुआ था उसमें मारे गये व्यक्तियोंकी यादगारमें भवन-निर्माणके लिए पैसा इकट्ठा करनेके लिए की गई थी। सभा खुले मैदानमें बुलाई गई थी, फिर भी भीड़ इतनी ज्यादा थी कि लोग एक-दूसरेपर गिरे पड़ते थे। मुझे अध्यक्ष बनाया गया था। लोग बड़ा शोर कर रहे थे। ऐसी स्थितिमें सभा कदापि नहीं की जा सकती, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। स्थिति जैसी थी, उसमें किसीका भी भाषण नहीं सुना जा सकता था। इसलिए मैंने उस सभाको बरखास्त करते हुए [अगली बार] स्वयंसेवकोंका प्रबन्ध करनेका सुझाव दिया और लोगोंको पहलेसे ही अधिक सावधान करने तथा सभाके नियमोंको समझानेकी बात भी कही। दूसरे दिन रविवारको फिर सभा[1] हुई और उतने ही व्यक्ति लगभग ढाई घंटेतक अत्यन्त शान्तिके साथ बैठे रहे। सब भाषणोंको उन्होंने शान्त चित्तसे सुना। कहा जा सकता है कि चन्दा भी अच्छा इकट्ठा हुआ। सैकड़ों व्यक्तियोंने छोटी-छोटी रकम दी अथवा देनेका वचन दिया। मैं ये तथ्य यहाँ यह स्पष्ट करनेके लिए पेश कर रहा हूँ कि हम जैसे-जैसे सामान्य और गरीब-वर्गमें प्रवेश करते जायेंगे वैसे-वैसे सभाओंमें हजारों व्यक्तियोंकी भीड़ इकट्ठी होने लगेगी। हममें ऐसी सभाओंको शान्तिपूर्वक चलानेकी शक्ति होनी ही चाहिए। समुचित व्यवस्था हो, स्वयंसेवक होशियार हों तथा लोगोंको पहलेसे ही [सभाके नियमोंके सम्बन्धमें] समझा-बुझा दिया गया हो तो बहुत-कम प्रयत्नोंसे हम शान्ति बनाये रख सकते हैं।

प्रथम खुला अधिवेशन

समितिका पहला खुला अधिवेशन आज [सोमवारको] है।[2] यह पत्र लिखते समय-तक अभी अधिवेशन प्रारम्भ नहीं हुआ है।

आज दिल्ली प्रान्तके चीफ कमिश्नर श्री बैरनकी[3] गवाही ली जायेगी। लोगोंकी ऐसी धारणा है कि ये समझदार और सज्जन कमिश्नर महोदय यदि अप्रैलमें यहाँ न होते तो [उस काण्डके] अधिक भयंकर परिणाम होते। हमारी ओरसे साक्षी देनेवाले व्यक्ति हैं स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी, हकीम अजमल खाँ, डॉ० अन्सारी, डॉ० अब्दुर्रहमान, श्री कृष्णलाल अम्बालाल देसाई आदि। श्री कृष्णलाल स्वर्गीय दीवान बहादुर अम्बा-लालके सुपुत्र हैं। वे देशके इस भागमें व्यापार करते हैं।

चरखा

लाहौरमें जो बहनें मुझसे मिलने आईं, उनसे मैंने चरखेके सम्बन्धमें खूब बात-चीत की और सूतकी भिक्षा भी माँगी। सैकड़ों स्त्रियाँ मुझसे मिलीं। उनमें से शायद ही किसीने यह कहा कि मुझे कातना नहीं आता। मैंने सूतकी भिक्षा माँगनी शुरू की,

१. इस भाषणकी कोई दूसरी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

२. नवम्बर ३।

३. माननीय श्री सी० ए० बैरन, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०।

इससे बहनोंने सूत लाना आरम्भ कर दिया है और अनेक बहनोंने सूत कातना शुरू करनेका भी वचन दिया है। पंजाबके चरखे तथा गुजरातके पुराने चरखेमें अधिक भेद दिखाई नहीं देता। मैं जैसे-जैसे चारों ओर एक ही प्रकारका चरखा और इससे सम्बन्धित एक ही तरहकी क्रियाएँ आदि देखता हूँ वैसे-वैसे मुझे विश्वास होता जाता है कि सारा हिन्दुस्तान पहले एक ही राष्ट्र था और हिन्दुस्तानियोंको अपने एक ही राष्ट्र होनेका भान था। अभीतक ऐसी बहनें अथवा भाई तो थोड़े ही मिले हैं जो हाथसे सूत कातनेमें हानि देखते हैं।

पूर्वी बंगालमें तूफान

श्री सी० आर० दासने बताया है कि पूर्वी बंगालमें जो तूफान आया था वह इतना भयंकर था कि प्रान्तके लगभग तीन-चौथाई भागको उससे नुकसान पहुँचा है। सैकड़ों व्यक्ति बाढ़में बह गये; हजारों बेघर हो गये और बहुतोंको रोगोंने आ घेरा। उनको मदद देनेके लिए अनेक समितियाँ काम कर रही हैं। श्री दासने दो लाख रुपये एकत्रित किये हैं; तीन लाख रुपयोंकी और जरूरत है। उन्होंने तथा सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने एक अपील भी जारी की है। मुझे उम्मीद है कि बम्बईके धनाढ्य व्यक्ति इसमें मदद करेंगे। मेरी सलाह तो यह है कि हमें बम्बई प्रदेशकी ओरसे कोई विश्वास-पात्र व्यक्ति भेजकर उसकी मार्फत मददकी व्यवस्था करनी चाहिए। असंख्य धनवानों-में से यदि कोई एक व्यक्ति इस कार्यको हाथमें ले ले तो वह स्थानीय समितिकी मदद कर सकता है और पूरी जानकारी भी हासिल कर सकता है। संवत् १९५६ के[1] अकालके समय अमरीकाकी जनताने जहाजोंमें अनाज भर-भरकर हिन्दुस्तान भेजा था। इतना ही नहीं उन्होंने यह मदद एक एलची भेजकर उसके मार्फत पहुँचाई थी।

मुस्लिम लीगके अध्यक्ष

हमें आशंका थी कि शायद इस बार मुस्लिम लीगकी बैठक अमृतसरमें न हो सके। अब यह आशंका दूर हो गई है, इतना ही नहीं उसके अध्यक्षका चुनाव भी हो चुका है। दिल्लीके प्रसिद्ध हकीम श्री अजमल खाँको लखनऊकी समितिने सर्वसम्मतिसे अध्यक्ष चुना है। हकीमजीका परिवार तीन पुश्तोंसे दिल्लीमें रहता आया है। उनका परिवार पुराना और खानदानी है। हकीमजी गरीबोंको मुफ्त दवा बाँटते हैं। वे अपने व्यवसायमें इतने कुशल माने जाते हैं कि उन्हें राजे-महाराजे दवा-दारूके लिए बुलाते हैं। उन्हें यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतियोंमें बहुत दिलचस्पी है। लॉर्ड हार्डिंगके शासनकालमें उन्होंने लॉर्ड हार्डिंगसे इन दोनों पद्धतियोंके अनुसार शिक्षा देनेके लिए एक महाविद्यालयकी[2] नींव भी रखवाई थी। यह महाविद्यालय साढ़े सात एकड़ भूमिपर बनाया गया है। दिल्ली शहरसे दो मील दूर स्थित है; इमारत लगभग पूरी हो गई है। उसमें १२० रोगियोंके रहने योग्य जगह है। अंग्रेजी पद्धतिको भी इसमें स्थान दिया गया है। विद्यार्थियोंको अंग्रेजी शल्य-चिकित्साका कुछ ज्ञान देनेका भी

१. ईसवी सन्के अनुसार १९०० ।

२. तिब्बिया कॉलेज ।

हकीमजीका इरादा है। हकीमजी हिन्दू-मुसलमान दोनोंपर समभाव रखते हैं। दोनों कौम उन्हें समान आदर प्रदान करती हैं। उनके राजनैतिक विचार कांग्रेससे मेल खाते हैं। उनके चुनावसे दोनों दलोंको प्रसन्नता होनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–११–१९१९

१९२. भाषण : अमृतसरमें महिलाओंकी सभामें[1]

नवम्बर ४, १९१९

बहनो,

अमृतसर न केवल मेरे लिये वरन् भारतवासी-मात्रके लिए एक तीर्थ बन गया है। अमृतसरमें हमारे हाथों जो बुराई हुई है उसका प्रायश्चित्त होना असम्भव है। यद्यपि जलियाँवाला बागमें बहुत-से लोग मारे गये हैं; परन्तु यदि बागमें उपस्थित सभी मारे जाते तब भी हमको शान्त रहना चाहिए था। मेरे विचारसे खूनका बदला खूनसे लेना अनुचित है। हमारा धर्म हमें यह शिक्षा देता है कि किसीको दुःख न दिया जाये। मैं अमृतसरको इस लेखे तीर्थ मानता हूँ कि अमृतसर-निवासी भाइयोंने पिछले दिनों बड़े कष्ट झेले हैं। मुझे सरकारने बम्बईमें नजरबन्द कर दिया था, इसलिए मैं सोचता था कि कब मुझे स्वतन्त्रता प्राप्त हो और मैं अमृतसरके दर्शन करूँ। स्वतन्त्रता प्राप्त होनेपर आपके दर्शन करके कृतार्थ हुआ हूँ। मुझे जो करना चाहिए वह सत्कार्य जब मैं कर लूँगा तभी मुझे शान्ति प्राप्त होगी। आप माताओंमें से किसीका पुत्र, किसीका भाई तथा अन्य सम्बन्धी मारे गये तथा बन्दी हुए हैं उनका वियोग आपको कष्ट देता होगा, परन्तु आप इसे कष्ट न मानें; क्योंकि जबतक हम लोग कष्ट झेलनेके अभ्यस्त न होंगे तबतक हम दुःखोंसे मुक्त न हो पायेंगे। देशकी भलाईके लिए हमें सब प्रकारके कष्ट झेलने होंगे। यूरोपके गत युद्धमें अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए लाखों मनुष्योंको अपने प्राण बलिदान करने पड़े हैं। जबतक हम जीवनपर्यंत कष्ट झेलनेके लिए तैयार न होंगे तबतक भारत स्वतंत्र नहीं हो सकता। जो लोग मौतका सामना करनेको तैयार रहते हैं वही स्वतंत्रताका सुख भोगते हैं। १८९६–९७ में पंजाबके लाखों लोग प्लेगसे मरे थे; उस समय किसीने पंजाबको तीर्थ नहीं माना। अब अमृतसर तथा पंजाबके और कई स्थान इसलिए तीर्थ बन गये हैं कि वहाँके निवासियोंने देश-हितके अर्थ कष्ट सहन किये हैं। पंजाब भारतके उत्तरमें अवस्थित होनेके कारण भारतका मुकुट-स्वरूप है — इसलिए पंजाबियोंको स्वदेशी कपड़ेका व्यवहार न छोड़ना चाहिए, अन्य प्रान्त भले ही छोड़ दें। बम्बईमें मुझे जो पंजाबी भाई मिलते रहे हैं उनसे विदित हुआ कि पंजाबमें स्त्रियाँ चरखा

१. यह सभा अमृतसरके कांग्रेसी नेता लाला गिरधारीलालके निवास-स्थानपर हुई थी।

चलाती हैं, यह हर्षकी बात है। परन्तु मुझे पूर्ण सन्तोष तब होगा जब कि पंजाबके सभी पुरुष पंजाबके सूतका बुना हुआ कपड़ा उपयोगमें लायेंगे। अपने प्रान्तका कपड़ा न मिले तो दूसरे प्रान्तसे ले लें परन्तु विदेशी कपड़ा कदापि न पहनें, चाहे आपको बिना वस्त्र नंगे ही क्यों न रहना पड़े। भारतमें स्वदेशी वस्तुका उपयोग न होनेसे दरिद्रता बढ़ रही है। हमारे करोड़ों भाई अन्न-वस्त्रके बिना कष्ट पा रहे हैं। उनके कष्ट निवारणार्थ हमें स्वदेशी वस्तुओंका उपयोग करके देशको समृद्ध बनाना चाहिए। मैं सब पंजाबी बहनों तथा माताओंसे प्रार्थना करता हूँ कि आप सब लोग पंजाबका बना वस्त्र उपयोग करें। विदेशी कपड़े पहननेके बदले स्वदेशी कपड़े पहननेसे हमारी शोभा विशेषरूपसे बढ़ जाती है। मैं पंजाबी भाइयोंसे याचना करता हूँ कि वे सूत कातनेका प्रण करें। यदि आप इसे मंजूर करेंगे, तो मैं बड़ा कृतार्थ हूँगा।

महात्मा गांधी

१९३. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर
[नवम्बर ४, १९१९ के बाद][1]

रानी बिटिया,

तुम्हारे प्रिय पत्र मिले, परन्तु फिलहाल तुम मुझसे नियमित उत्तरकी आशा न करना। मुझे जीवनके मूल्यवान अनुभव हो रहे हैं। जब हम अपनेको स्वेच्छासे सेवा-का निमित्त बना देते हैं तो उसका पुरस्कार ऐसे आनन्दके रूपमें मिलता है जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। अधिक फिर या मिलनेपर।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१. ऐसा लगता है कि यह पत्र गांधीजीने अमृतसरकी यात्रासे लौटकर लिखा था, वहाँ जनताने उनका बहुत ही प्रेमपूर्ण स्वागत किया था।

१९४. तार : बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको

[लाहौर
नवम्बर ७, १९१९]

गत ३१ तारीखका पत्र[1] अभी लाहौरमें मिला। खेद है कि कैफियत संतोषजनक नहीं लगी। मामलेको वकीलके परामर्शार्थ[2] दे रहा हूँ। वकीलकी राय मिलनेपर उत्तर दे सकूँगा।

[अंग्रेजीसे]

बाम्बे लॉ रिपोर्टर, खंड २२,

१. पत्र इस प्रकार था: "निर्देशानुसार मैं आपके २२ तारीखके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करता हूँ और आपको यह सूचित करता हूँ कि माननीय मुख्य न्यायाधीशको खेद है कि वे आपके जवाबको संतोषजनक नहीं मान सकते। तथापि मुख्य न्यायाधीश महोदय यह माननेको तैयार हैं कि आप यह नहीं जानते कि आप एक पत्रकारके विशेषाधिकारोंकी सीमा पार कर रहे थे, बशर्ते कि आप **यंग इंडियाके** अगले अंकमें साथ भेजे जा रहे क्षमा-याचनाके पाठको इसी रूपमें प्रकाशित कर दें।"

क्षमा-याचनाकी शब्दावली इस प्रकार थी: "६ अगस्त १९१९को **यंग इंडियामें** हमने अहमदाबादके जिला न्यायाधीश श्री कैनेडी द्वारा बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको लिखा एक निजी पत्र प्रकाशित किया था और उसी तारीखको उक्त पत्रपर हमने कुछ टीका-टिप्पणी भी की थी। इस सम्बन्धमें हमारा ध्यान इस ओर दिलाया गया है कि जबतक उक्त उच्च न्यायालयमें उक्त पत्र सम्बन्धी कुछ प्रश्न विचाराधीन हैं तबतक इस पत्रको प्रकाशित करना या उसपर टिप्पणी करना मुनासिब नहीं था। अब हम इस लेख द्वारा खेद व्यक्त करते हैं और उक्त न्यायालयके माननीय मुख्य न्यायाधीश तथा न्यायाधीशोंसे इस बातके लिए क्षमा-याचना करते हैं कि हमने वह पत्र प्रकाशित किया और उसपर टिप्पणी की।" गांधीजीने ११ दिसम्बरको क्षमा-याचनाके इस पाठके बारेमें अपने विचार लिख भेजे थे; देखिए "पत्र: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", ११-१२-१९१९।

२. गांधीजीने इस सम्बन्धमें वल्लभभाई पटेलकी राय माँगी थी। महादेव देसाईने १६ नवम्बरको गांधीजीको लाहौर यह तार भेजा था: "वल्लभभाईसे मिला। उनके विचारसे पत्रका प्रकाशन विशेषाधिकारोंके अन्तर्गत ही था; तथापि जबतक मामला निर्णयाधीन है यह स्पष्टतः न्यायालयकी मानहानि है।"

१९५. पत्र : सर जॉर्ज बार्न्ज़को

२, मुजंग रोड
लाहौर
[नवम्बर ७, १९१९]

माननीय सर जॉर्ज बार्न्ज़, के० सी० बी०
सदस्य, वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्
वाणिज्य और उद्योग विभाग
[दिल्ली]

हमारी-आपकी जो बातचीत[1] हुई थी उसके संदर्भमें आगामी दक्षिण आफ्रिकी आयोगके सामने विचारार्थ विषयोंकी सूचीमें जो कमसे-कम बातें शामिल करनी हैं, उन्हें एक टिप्पणीके रूपमें संलग्न कर रहा हूँ।

इस टिप्पणीको यह मानकर लिखा गया है कि जनरल स्मट्स आयोगके सामने केवल ट्रान्सवालमें भारतीयोंके व्यापार करनेके हकोंका प्रश्न ही रखनेकी सोच रहे हैं।

यदि ऐसा है, तो यह आयोग किसी प्रकार भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंको हल नहीं करेगा।

नया कानून जमीनकी मिल्कियत और व्यापार करनेके अधिकारोंसे सम्बन्ध रखता है और उनपर विपरीत असर डालता है। इसलिए ऐसा सुझाव दिया गया है कि व्यापार करने और भू-स्वामित्वका प्रश्न, यानी कि १८८५ का कानून आयोगके विचारार्थ रखा जाये, और साथ ही कस्बा-कानून और स्वर्ण-कानून जिस हदतक कस्बों या स्वर्ण क्षेत्रोंमें भारतीयोंके जमीन रखने या व्यापार करनेके अधिकारोंपर असर करते हैं, उस हदतक आयोग उनपर भी विचार करे।

संघ सरकार तथा भारत सरकार दोनोंको यह बात स्पष्ट रूपसे समझ लेनी चाहिए कि नये कानूनमें, जिस हदतक वह भारतीयोंके मौजूदा अधिकारोंको कम करता है, परिवर्तन किया जाना चाहिए और आयोगके फैसले ऐसे नहीं होने चाहिए जिनसे भारतीयोंके मौजूदा अधिकारोंमें कोई कमी होती हो। यदि उपर्युक्त दो मामूली शर्तें पूरी नहीं की जातीं तो सम्भावना है कि आयोग मौजूदा अधिकारोंके लिए हानिकर सिद्ध होगा।

मेरा सुझाव या तो पूराका-पूरा स्वीकार किया जाना चाहिए अन्यथा इसे पूराका-पूरा अस्वीकार कर दिया जाये।

इस सुझावको पेश करते हुए मैं यहाँकी अत्यंत नरम आम रायके और जोहानिसबर्गमें हालमें हुए दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सम्मेलन द्वारा की गई माँगोंके विरुद्ध जा रहा हूँ।

१. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके विषयमें भेंटपर टिप्पणी", ३-११-१९१९।

जैसा कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने व्यक्त किया है यहाँ [भारत] का जनमत सारे संघमें व्यापारके अधिकार और जमीनकी मिल्कियतका अधिकार और अंतर-प्रान्तीय प्रवासका अधिकार दिये जानेके पक्षमें है। इसका अर्थ है कि प्रवासियोंको ऑरेंज फ्री स्टेटमें प्रवेश करने और वहाँ व्यापार करने तथा जमीन रखनेके अधिकार भी दिये जायें। [गोरी] जनताकी वर्तमान मनःस्थितिमें यदि जनरल स्मट्स स्वयं चाहते भी हों तो भी इस माँगको पूरा कर सकना कठिन होगा।

सम्मेलनकी माँगें तो और भी बृहद हैं। उसमें राजनीतिक दर्जा फिर स्थापित करने और सभी कानूनी अयोग्यताओंको समाप्त कर देनेकी माँग शामिल हैं। यद्यपि यह और यही उद्देश्य लक्ष्यमें रखना चाहिए, फिर भी मैं समझता हूँ कि यह व्यावहारिक राजनीति नहीं है कि इसे तात्कालिक लक्ष्य मानकर इसके लिए कोशिश की जाये।

परन्तु भारतीयोंकी माँगपर और 'टाइम्स ऑफ इंडिया' द्वारा व्यक्त की गई अपेक्षाकृत आसान माँगपर कोई आग्रह आयोग द्वारा न भी किया जाये, तो भी यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिए कि भारतीयोंके मौजूदा अधिकारोंमें कोई भी कमी नहीं की जानी चाहिए।

चूँकि संघ सरकारने ट्रान्सवालमें व्यापार तथा सम्पत्ति रखनेके अधिकारका प्रश्न प्रवर समिति द्वारा, और फिर हाल ही के एक कानून द्वारा उठाया है, इसलिए आयोगसे इन दोनों सवालोंपर गोरे लोगोंके पूर्वग्रहोंको झकझोरे बगैर ही विचार करनेको कहा जा सकता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि हालका कानून पास होनेके समयतक ट्रान्सवालमें भारतीयोंको उसी स्तरपर व्यापार करनेके परवाने पानेका हक था जैसे कि यूरोपीयोंको और वे मौजूदा कानूनके अनुसार बंधक स्वीकार करके या सीमित दायित्ववाली (लिमिटेड) कम्पनियाँ बनाकर वास्तवमें जमीनके मालिक बनते थे। मैं चाहता हूँ कि ट्रान्सवालमें साधारण सफाई प्रतिबन्धोंके अंतर्गत जमीनकी सीधी मिल्कियत तथा व्यापारके अधिकार कानूनन दिये जायें। यह माँग अधिक नहीं है क्योंकि इतना अधिकार तो उन्हें व्यवहारतः प्राप्त ही रहा है।

यह तो रहा आयोगके सामने विचारणीय विषयोंको रखनेके संबंधमें।

प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमका अमल असंतोषजनक ढंगका है जिसे कूटनीतिक स्तरपर कार्रवाई करके सुधारा जा सकता है और आयोगको इस बारेमें तकलीफ देनेकी आवश्यकता नहीं है। ध्यान देने योग्य मुद्दे ये हैं:

(१) भारतीय अधिवासियोंको एक प्रांतसे दूसरे प्रान्तमें बसनेके लिए नहीं बल्कि कामके सिलसिलेमें या किसी औपचारिक उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेकी या अधिवासके प्रान्तमें जानेके लिए गुजरनेकी अनुमति मिले। बिना किसी शुल्कके पूरी सुविधाएँ उन्हें दी जानी चाहिए।

(२) दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए लोगोंकी आवश्यकताएँ पूरी करनेके लिए नये भारतीयोंके प्रवेशका आधार बेहतर तथा और अधिक उदार होना चाहिए।

(३) एकाधिक पत्नियोंको अपने पतियोंके पास आनेकी अनुमति देनेमें अधिक उदारता होनी चाहिए। उनके या उनके बच्चोंके लिए कानूनी हक चाहे न हों।

(४) भारत या संघमें पारपत्र जारी करनेमें शिनाख्त सम्बन्धी या अन्य जो भी प्रतिबन्ध हैं उनमें पूरी तरह रद्दोबदल करनेकी जरूरत है।
(५) अच्छे तबकेके स्त्री या पुरुष तथा विद्यार्थियोंको दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा करनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

ये मामले यदि कूटनीतिक स्तरपर नहीं सुलझाये जा सकते तो आगामी आयोगके सामने विचारार्थ रखे जानेवाले विषयोंमें शामिल किये जाने चाहिए।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: ६१४०/१९

१९६. दक्षिण आफ्रिका

समाचारपत्रोंमें दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें जो खबर प्रकाशित की गई है वह आश्चर्यजनक और दुःखजनक है। हमने श्री मॉण्टेग्युके कहनेपर यह मान लिया था कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके अधिकारोंके सम्बन्धमें जो आयोग नियुक्त किया जानेवाला है उसमें हमारे सदस्य भी होंगे। अब श्री मॉण्टेग्युने सूचित किया है कि उनके शब्दोंका गलत अर्थ निकाला गया है; भारतकी ओरसे आयोगमें किसी भी व्यक्तिकी नियुक्ति नहीं की जायेगी अलबत्ता सर बेंजामिन रॉबर्टसनके साथ एक गैर-सरकारी अधिकारीको भेजा जायेगा और ये दोनों भारतीयोंकी बात आयोगके सम्मुख प्रस्तुत करेंगे। इस खबरसे हमें निराशा हुई है। हमारे कहनेका अभिप्राय यह है कि जनरल स्मट्सकी धारणाको कार्यरूपमें परिणत नहीं किया जा सका; और न किसी भारतीय प्रतिनिधिको आयोगमें शामिल करना सम्भव हुआ। इसलिए हम श्री मॉण्टेग्युको मामला सुधारनेके लिए तार[1] देनेको मजबूर हो गये। लेकिन आन्दोलन करके आयोगमें हम अपने व्यक्तियोंकी नियुक्ति नहीं करवा सकते। श्री मॉण्टेग्यु हमारे लिए ज्यादाकी माँग कर सकते हैं, लेकिन वह न्याय किस तरहसे दिया जाना है यह तय करना तो दक्षिण आफ्रिकी सरकारके ही हाथमें है। इसलिए हम उसे अपने आयोगमें यहाँसे किसी व्यक्तिकी नियुक्ति करनेपर विवश नहीं कर सकते, फिर भी यदि सरकार श्री शास्त्रियर जैसे योग्य व्यक्तिकी नियुक्ति करती है तो वे तथा श्री रॉबर्टसन न्याय प्राप्त करानेमें सफल हो सकेंगे।

हमें इससे भी अधिक चौंका देनेवाली खबर यह मिली है कि आयोग सिर्फ व्यापारिक परवानोंके विषयकी ही जाँच करेगा। इतनी सीमित जाँच पर्याप्त नहीं है। इस सम्बन्धमें हमें बहुत आन्दोलन करना पड़ेगा। आयोगके हाथमें अधिक सत्ता दी जानी चाहिए। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंने सभी अधिकारोंके विषयमें जाँच करनेकी माँग की है। हमारी समझमें यह स्वीकार कराना कठिन हो जायेगा; फिर भी

१. यह तार उपलब्ध नहीं है।

भू-स्वामित्वके हकोंकी जाँच करनेकी माँग तो हम कर ही सकते हैं; वह तो हमारा न्यूनतम प्राप्य है। हमें इस ओर अधिक सतर्क रहना है कि आयोगको वर्तमान अधिकारोंमें कटौती करनेका हक न मिलने पाये। नये कानूनके पास होनेसे पूर्व जो अधिकार हमें प्राप्त थे आयोगको उनमें कमी करनेका अधिकार हो ही नहीं सकता। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका आना लगभग बन्द हो गया है। गिरमिट प्रथाके बन्द हो जानेसे अब प्रश्न सिर्फ वहाँ रहनेवाले भारतीयोंके हकोंका बच गया है। उन्हें प्रामाणिक रूपसे व्यापार करने तथा जमीनकी खरीद-बिक्री करनेकी छूट मिलनी ही चाहिए। इस विषयमें मतभेदकी गुंजाइश नहीं है। भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकाके गोरे केवल मजदूरोंके रूपमें गुलाम बनाकर कदापि नहीं रख सकते।

सौभाग्यसे श्री एन्ड्रयूज हमारे भाइयोंकी मददके लिए वहाँ जानेवाले हैं। उनकी सेवाओंका मूल्यांकन तो किया ही नहीं जा सकता। जहाँ कहींसे भारतीयोंकी दु:खभरी पुकार सुनते हैं, उनकी सहायताके लिए वहाँ जा पहुँचते हैं। फीजी, लंका और पंजाब इस बातके साक्षी हैं। दक्षिण आफ्रिकामें तो वे गोरे और भारतीय दोनोंके निकट समान रूपसे परिचित हैं। इसलिए उनके दक्षिण आफ्रिका जानेसे हमारे भाइयोंमें हिम्मत आयेगी और हमें भी आशा होती है कि न्याय प्राप्त किया जा सकेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–११–१९१९

१९७. फीजी

थोड़े दिनों पहलेतक आशंका थी कि फीजीमें रहनेवाले हमारे गिरमिटिया भाइयों और बहनोंके बन्धन इस वर्षके अन्तमें भी नहीं टूट पायेंगे। फीजीकी विधान सभामें प्रस्ताव पास किया गया था कि भारतीय मजदूरोंकी गिरमिटकी अवधि अगस्तके महीनेमें समाप्त की जायेगी। जिस प्रथाके कारण हमारी स्त्रियोंकी प्रतिष्ठापर आँच आती हो उस प्रथाको हम पलभरके लिये भी सहन नहीं कर सकते। यदि श्री एन्ड्रयूज फीजी जाकर इस सड़ाँधके सम्बन्धमें हमें सूचित न करते तो हम अभीतक सचेत न हुए होते। सौभाग्यसे जो ताजा समाचार मिला है उससे गिरमिटकी अवधि बढ़नेका भय जाता रहा है और भारत सरकारको इस आशयकी सूचना मिल चुकी है कि जिन पेढ़ियोंमें श्री एन्ड्रयूज द्वारा सुझाये गये सुधार नहीं किये जा सकते, उन पेढ़ियोंमें तो गिरमिट पहली जनवरीसे ही टूट जायेगी, लेकिन जो पेढ़ियाँ उपर्युक्त सुधार करनेको तैयार हो जाती हैं वे शर्तनामेकी अवधिके पहले शर्तोंको तोड़कर मुक्त होनेका हरजाना लिये बिना बन्धन समाप्त नहीं करेंगी।

साधारण पाठक कदाचित् इस गुत्थीको न समझ सकें। फीजीके कानूनके अनुसार अनेक गोरोंके पास गिरमिटिया भारतीय मजदूर हैं। वे पाँच वर्षतक नौकरी करनेके लिये बँधे हुए होते हैं। नये गिरमिटिया मजदूरोंका जाना तो १९१७ में ही बन्द हो गया था, लेकिन श्री एन्ड्रयूजकी रिपोर्टके बाद हमने यह माँग की कि जो बन्धनमें हैं

उन्हें भी पाँच वर्ष पूरे होनेसे पहले मुक्त कर दिया जाना चाहिए। जो करार अनीति-मूलक हो अथवा जिसमें अनीतिकी गुंजाइश हो सके, वह करार समाप्त किया ही जाना चाहिए और उसके तोड़नेमें हरजाना देनेकी कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन फीजीके बागान-मालिक अपने कानूनी अधिकारोंको छोड़नेके लिये तैयार नहीं हैं। इसी कारण उक्त हरजाना देनेकी बात उठ खड़ी होती है। फीजीमें रहनेवाले भारतीय मजदूरोंको यह हरजाना देकर भी बन्धन मुक्त करवाना हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है। सवाल सिर्फ अधिकसे-अधिक २०,००० पौंड भरनेका है और मुझे उम्मीद है कि भारत सरकार उतना पैसा देकर तुरन्त उन्हें शर्तसे मुक्त करवायेगी। इस सम्बन्धमें, इस विभागके सचिव सर जॉर्ज बार्न्ज़ हमारी बधाईके पात्र हैं। उन्होंने यदि दृढ़तापूर्वक यह माँग न की होती तो हम इस समय जिस शुभ परिणामकी उम्मीद कर पा रहे हैं वह सम्भव न होता। श्री एन्ड्रयूजका तो कहना ही क्या? हम उन्हें किस तरहसे बधाई दें? उन्होंने अपना जीवन हमें अर्पित कर दिया है। हिन्दुस्तानकी सेवा करनेमें वे सुख मानते हैं। फीजीके मजदूरोंकी अन्तरात्मा उन्हें दुआ देगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–११–१९१९

१९८. टिप्पणियाँ

खिलाफत और शान्ति-समारोह

आगामी शान्ति-समारोहोंके सम्बन्धमें हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्धमें कुछ मित्रोंने पूछताछ की है। मुझे खबर है कि खिलाफत-दिवसकी कुछ-एक सभाओंमें इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया था कि यदि खिलाफतके प्रश्नका सन्तोषजनक हल न निकाला गया तो मुसलमान भाई शान्ति-समारोहोंमें भाग नहीं ले सकेंगे; क्योंकि भारतीयोंका मन उस स्थितिमें शान्त नहीं रह सकता। जबतक इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका समाधान नहीं हो जाता, जबतक मुसलमान भाइयोंकी भावनाओंको ठेस पहुँचनेका भय बना हुआ है, लाखों मुसलमान भाई दुविधाकी स्थितिमें पड़े हुए हैं तबतक हिन्दू, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि वे भाई जिन्होंने हिन्दुस्तानको स्वेच्छासे अपनी भूमि स्वीकार किया है अथवा जिनकी वह जन्मभूमि ही है, वे सभी लोग शान्ति-समारोहोंमें भाग कैसे ले सकते हैं। मैं तो यहाँतक सोचनेका दुस्साहस करता हूँ कि यदि माननीय वाइसराय महोदय चाहें तो महामहिम सम्राट्के मन्त्रियोंसे कह सकते हैं कि जबतक खिलाफतके प्रश्नका कोई निष्कर्ष नहीं निकल आता तबतक शान्ति-समारोहोंमें भारतीय भाग नहीं ले सकते; और मुझे उम्मीद है कि हमें इन समारोहोंमें भाग लेनेके लिए कहनेसे पूर्व महामहिम सम्राट्के मन्त्री इस प्रश्नका सम्मानपूर्ण हल निकालने और उसे प्रकाशित करनेके हमारे अनुरोधको स्वीकार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–११–१९१९

१९९. पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरको लिखे पत्रका सारांश[1]

[लाहौर
नवम्बर १२, १९१९ के पूर्व]

प्रथम तो सार्वजनिक संस्था या संस्थाओं द्वारा प्रमाण देनेके अधिकारको निश्चित मान्यता मिलनी चाहिए और ऐसी संस्थाओं तथा सम्बन्धित पक्षोंको वकीलकी मार्फत उपस्थित होनेकी अनुमति होनी चाहिए; और उनके वकीलोंको जिरह करके तथ्योंको निकलवानेमें मदद देनेकी इजाजत होनी चाहिए।

दूसरे इस समय जो नेता जेलमें हैं, उनमें से कुछ प्रमुख लोगोंको रिहा किया जाना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो पर्याप्त जमानत लेकर ही सही, लेकिन रिहा अवश्य किया जाये, ताकि वे अपना सबूत अपेक्षाकृत स्वतन्त्र स्थितिमें दे सकें, और गैर-सरकारी पक्षकी ओरसे भी सबल सबूत दे सकें और जनतामें अपनी उपस्थितिसे विश्वासकी भावना जाग्रत कर सकें।

तीसरे 'समरी' अदालतोंके निर्णयोंपर पुनर्विचार करनेके लिए जो न्यायाधिकरण पहले ही नियुक्त हो चुका है, उसका फिरसे गठन किया जाना चाहिए और उसकी कार्यविधि ऐसी होनी चाहिए जिसपर जनताका विश्वास जम सके।[2]

[अंग्रेजीसे]

लीडर, १४–११–१९१९

१. समाचारपत्रकी रिपोर्टमें यह भी कहा गया था : "कुछ समय पहले कांग्रेस उप-समितिने सरकारसे प्रार्थना की थी वह जाँचके बारेमें तीन बातें स्वीकार कर ले।" गांधीजीने उपर्युक्त बातोंके आधारपर एक पत्र लिखा था, जिनका "पंजाबकी चिट्ठी – ३" १७–११–१९१९ में उल्लेख हुआ है।

२. रिपोर्टके अन्तमें कहा गया था : "पहली माँग तो वास्तवमें पहले ही काफी हदतक पूरी हो गई है. . . जबतक सामने रखी गई तीनों शर्तें ज्योंकी-त्यों मान न ली जायें, उन्हें समितिका बहिष्कार करना चाहिए। गैर-सरकारी नेताओंकी सभा, जिसमें पंडित मदनमोहन मालवीय, पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री सी० आर० दास और अनेक स्थानीय नेता भाग ले रहे हैं घंटोंतक होती रही है और इस विषयपर विचार-विनिमय करती रही है परन्तु यह लिखे जानेके समयतक, किसी निश्चित निष्कर्षपर नहीं पहुँच पाई।" 'अमृतबाजार पत्रिका' के उसी तारीखके खरीतेमें लिखा है कि "आज सुबह पंडित मालवीय जेलमें हरकिशनलालसे मिलने गये परन्तु उन्हें इजाजत नहीं दी गई। इसके बाद वे पंजाब सरकारसे बातचीत कर रहे हैं; परन्तु क्या बात हुई यह विदित नहीं हो सका।"

२००. तार : रावजीभाई मेहताको

राधनपुर
नवम्बर १३, १९१९

रावजीभाई जगजीवनदास
२४, ओल्ड मोदीखाना
बम्बई

शर्तें तय हो गईं। राजासाहब १३ और १५ दिसम्बरको आपसे मिलना चाहते हैं। क्या आप फौरन आ सकते हैं?

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स

२०१. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके निजी सचिवको

लाहौर
नवम्बर १५, १९१९

आप कृपया लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयको बता दें कि कल मैंने कांग्रेस उप-समिति-के सदस्योंको सूचित कर दिया है कि उन्होंने [ले० गवर्नर महोदयने] उप-समिति द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तपर इस हदतक विचार करनेकी कृपापूर्वक स्वीकृति दे दी है, कि ६ नेता पैरोलपर उस दिन या उतने दिनोंके लिए छोड़े जा सकते हैं जिन दिनों उन्हें स्वयं दंगोंकी जाँच-समितिके सामने सबूत देने हैं। सदस्योंने माना कि इस राहतसे नाममात्रको सिद्धान्तकी रक्षा तो हो जाती है किन्तु अन्य दिनोंमें यदि उन्हें हिरासती कैदियोंकी हैसियतसे कमेटीकी बैठकोंमें भाग लेनेकी इजाजत नहीं मिलती जिससे वे अपने वकीलको ऐसी हिदायतें दे सकें जिनकी विशेष जानकारी सिर्फ उन्हींको है तो व्यावहारिक दृष्टिसे उस राहतका कोई उपयोग नहीं है। मिसालके तौरपर कहें तो इसका अर्थ होगा कि डॉक्टर किचलू व सत्यपाल लगभग पूरे अमृतसर-कांडकी सुनवाईके समय हिरासतमें रहेंगे और केवल जिस दिन या जिन दिनों उनसे जिरह की जायेगी उस दिन वे पैरोलपर छोड़े जायेंगे। मैंने महसूस किया कि जो मुद्दा उन्होंने उठाया वह काफी स्पष्ट था और पंडित मदनमोहन मालवीयको लिखे लॉर्ड हंटरके पत्रमें[1] उसका उल्लेख था, परन्तु श्री एन्ड्रयूजने उसे पूरी तरह स्पष्ट करवानेका जिम्मा लिया। किन्तु तब और भी गहरी निराशा हुई जब उन्होंने लौटकर यह कहा

१. इस पत्र-व्यवहारके लिए देखिए परिशिष्ट ७।

कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदय प्रस्तावित तरीकेके अनुसार भी नेताओंको उपस्थित होनेकी अनुमति नहीं देंगे। अतएव कांग्रेस उप-समितिके लिए इसके सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं रह गया था कि वह लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने उपस्थित न होनेके अपने निर्णयपर[1] अड़ी रहे।

मैं इस सम्बन्धमें अपना गहरा खेद व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदयने वह सुविधा देनेसे भी इनकार किया जिसे अधिकारके रूपमें माँगनेका दावा एक साधारण अपराधी भी कर सकता है।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, १९–११–१९१९

२०२. भाषण : एन्ड्रयूजकी विदाई-सभामें[2]

लाहौर
नवम्बर १५, १९१९

गांधीजीने कहा कि मेरे लिए श्री एन्ड्रयूजके बारेमें अधिक कुछ कहना सम्भव नहीं है। वे मेरे भाईके समान हैं। हमारे बीच जो पवित्र प्रेमबन्धन है वह इस अवसर-पर मुझे अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं करने दे रहा है। फिर भी मैं एक बात कहना चाहूँगा: श्री एन्ड्रयूज एक सच्चे अंग्रेज हैं। उन्होंने भारतके हितके लिए अपना सारा जीवन अर्पित किया है तथा अपने कार्यों और भारतके प्रति अपने प्रेम द्वारा वे मानो हमसे कहते रहे हैं, आप लोग ऐसा भले ही सोचते हों कि आप हमारे देशभाइयों द्वारा सताये हुए हैं परन्तु उनके बारेमें बुरा मत सोचिए, मेरी तरफ देखिए। यदि श्रोतागण श्री एन्ड्रयूजके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करना चाहते हैं तो उन्हें उनके प्रेमका अनुकरण करना चाहिए। श्री गांधीने अंधे प्रेमकी नहीं वरन् ऐसे जागरूक प्रेमकी हिमायत की जैसा कि भक्त प्रह्लादने अपने पिताके प्रति व्यवहारमें व्यक्त किया था। उन्होंने कहा, श्री एन्ड्रयूजके जीवनसे जो शिक्षा मिलती है वह यह कि यद्यपि

१. इस सम्बन्धमें कांग्रेस उप-समितिके पत्रके लिए देखिए परिशिष्ट ८।

२. **यंग इंडिया**ने गांधीजी और एन्ड्रयूजके भाषणोंके पाठ देते हुए आरम्भमें यह टिप्पणी जोड़ी थी: "१५ तारीखको लाहौरके ब्रैडलॉ हॉलमें एक अत्यन्त प्रभावशाली व भावनापूर्ण सभा श्री एन्ड्रयूजको विदाई देनेके लिए हुई जो दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना हो रहे थे. . . जब श्री गांधीसे श्री एन्ड्रयूज द्वारा पंजाबमें संकटके समय की गई अत्यंत मूल्यवान सेवाओंके लिए आभार व्यक्त करनेवाला प्रस्ताव पेश करनेको कहा गया तब गांधीजीने हिन्दीमें अपना भाषण दिया।" पंडित मदनमोहन मालवीय इस सभाके अध्यक्ष थे। सभामें उपस्थित लोगोंमें पंडित मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दास भी थे। हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है। **यंग इंडिया**में प्रकाशित अंग्रेजी विवरणसे यह अनुवाद किया गया है।

हमें जहाँ कहीं भी अन्याय और उत्पीड़न दिखे उसका विरोध और मुकाबला अवश्य करना चाहिए तथापि बुरा करनेवालेके प्रति हमें कोई दुर्भावना लेकर नहीं चलना चाहिए। सरकारने हम सभीको बड़ी ही कठिन स्थितिमें डाल दिया है। नेताओंको रिहा करनेसे मना करके सरकारने हमारे लिए लॉर्ड हण्टरकी समितिसे सहयोग करना असम्भव बना दिया है। तथापि सरकारके इस उद्दंड कार्यके बावजूद हम सरकारके सामने झुकेंगे नहीं, लेकिन साथ ही हम क्रोध भी नहीं करेंगे। श्री एन्ड्रयूजने भारतके लिए अनेक भारतीयोंसे भी अधिक काम किया है। उन्होंने [अपनी आलोचनामें] अपने देशवासियोंको बख्शा नहीं, परन्तु ऐसा नहीं है कि उनके प्रति प्रेममें कोई कमी हुई हो। और इसी प्रकार आप भी अंग्रेजोंके या सरकारके प्रति दुर्भावना रखे बिना न्यायके लिए और अपने सम्मानके लिए संघर्ष करते रह सकते हैं।[१]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-११-१९१९

२०३. पंजाबकी चिट्ठी – ३

लाहौर

सोमवार, कार्तिक बदी ११[२] [नवम्बर १७, १९१९]

अमृतसरका प्रेम

दिल्लीसे श्री एन्ड्रयूजके साथ मैं अमृतसर गया। वहाँ मुझे जो अनुभव हुआ वह अलौकिक था। लोगोंकी भीड़में से निकलना मुश्किल था। स्टेशनके बाहर सारा रास्ता अमृतसरवासियोंसे भरा हुआ था। जयघोषकी पुकारोंसे तो मैं एकदम घबरा गया। यह भारी जलूस शहरकी ओर चला। लोग फूलोंसे भरी गाड़ीमें मुझे बिठाकर एक मस्जिदमें ले गये। मस्जिद हिन्दू-मुसलमानोंसे भरी हुई थी। मस्जिदसे वापस गाड़ी-तक मैं बहुत मुश्किलसे आया और फिर सिखोंके स्वर्णमन्दिरतक पहुँचनेमें भी बहुत समय लगा। इस मन्दिरको वे लोग दरबार साहब कहते हैं। मन्दिरके बुर्ज आदि स्वर्ण-पत्रसे मंडित हैं। निकट ही एक बड़ा तालाब है। आसपासकी जगह भी प्रमाणमें विशाल कही जा सकती है। इतने लम्बे-चौड़े मैदानसे होकर मन्दिरके मुख्य भागतक पहुँचना मुझे तो असम्भव दीख पड़ा। चारों ओर सहस्रों व्यक्ति इकट्ठे थे। स्त्रियोंकी [भी] कोई कमी न थी। ऐसी खचाखच भीड़में मैंने स्त्रियोंको निर्भयतासे प्रवेश करते हुए देखा, पुरुष भी पूर्णतः मर्यादाका पालन कर रहे थे, यह देखकर मुझे हर्ष

१. इसके बाद गांधीजीने निम्न प्रस्ताव प्रस्तुत किया: "लाहौरके नागरिकोंकी यह सभा उस प्रस्ताव द्वारा आभारपूर्वक श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज द्वारा पंजाबके संकटके समय की गई बहुमूल्य सेवाओंकी लिखित रूपमें सराहना करती है और दक्षिण आफ्रिकामें उनके मानवतावादी मिशनकी सफलताकी कामना करती है।" सी० आर० दासने प्रस्तावका अनुमोदन किया।

२. यहाँ १० होना चाहिए।

हुआ। इसमें हर्षका कोई कारण नहीं होना चाहिए। लेकिन मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानमें यह स्थिति स्वाभाविक नहीं है। मैंने देखा है कि भीड़भाड़में हमारे यहाँ मर्यादा नहीं रहती। डाकोरजी जानेवाले यात्रियोंकी भीड़में मर्यादाके लोपकी बात हमने पढ़ी है। इसलिए दरबार साहबमें मर्यादाका पालन होते देखकर मुझे हर्ष हुआ। मेरी कामना है कि हम सभी जगह ऐसा मर्यादित व्यवहार करें।

कुछ देरके लिए भीड़को शिक्षा देनेका कार्य मैंने स्वयं अपने हाथमें ले लिया। व्यक्तियोंकी भीड़ आगे बढ़ती तो मैं रुक जाता। और स्त्री-पुरुषोंसे कहता कि जबतक मैं दरबार साहबतक न पहुँच जाऊँ, तबतक वे सब ज़हाँके-तहाँ रुके रहें। जितनी देरमें उनके सम्मुख खड़ा रहता उतनी देरतक तो वे बैठे रहते लेकिन जैसे ही मैं चलना शुरू करता सब लोग खड़े हो जाते और मेरे पीछे चलना आरम्भ कर देते। मैंने पाँच-छः बार कोशिश की। पीछेकी ओर लौटा भी किन्तु लोग कैसे मानते? अन्ततः वैसे ही [लोगोंसे घिरे हुए] चलना शुरू किया और लगभग एक घंटेमें थोड़ा-सा फासला पार करके दरबार साहबमें दाखिल हुआ। यह लोगोंकी जिद थी। उन्होंने अपने प्रेमपर तनिक भी अंकुश नहीं लगाया। उन्होंने अत्यन्त दुःख सहन किया था। और अब वे प्रेमरूपी जलसे अपने दुःखोंको धो रहे थे। लेकिन क्या मैं उनके इस प्रेमका पात्र था? जिन्होंने प्रेम बरसाया वे तो निस्सन्देह सुखी हैं; लेकिन जो उस प्रेमको स्वीकार करता है उसका क्या हाल होता है? अनेक स्त्रियोंका अथवा जिन लोगोंके सगे-सम्बन्धी जेलमें थे उनका यह विश्वास था कि मेरे बलपर वे सब छूट जायेंगे। लेकिन मैं छुड़ानेवाला कौन हूँ? मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि मैं उसी प्रभुके चरणोंमें इस प्रेमको अर्पित करता हूँ जिसके नामपर यह सेवा कर रहा हूँ।

दरबार साहबके दर्शन करनेके बाद मुझे उत्तरीय और पगड़ी भेंट किये गये; मैंने पगड़ी अपनी टोपीपर बाँधी और उत्तरीय को गलेमें डाल लिया। दर्शन करके वापस लौटना भी उतना ही मुश्किल था। इस तरह जलूसमें पाँच घंटे व्यतीत हो गये। फिर भी लोगोंका मन नहीं माना। मुझे लाला गिरधारीलालके यहाँ ले जाया गया। उनके घर शामके ठीक छः बजेतक हजारों व्यक्ति आते रहे और मुझे उनसे मिलनेके लिये बार-बार बाहर जाना पड़ा। स्त्री और पुरुष दोनों ही आते थे। अमृतसर-के लोगोंका कहना है कि आजतक इतनी स्त्रियाँ घरके बाहर नहीं आईं। उन्होंने 'उपदेश' सुने बिना जानेसे कतई इनकार कर दिया। इस ओर 'उपदेश सुनाइये' यह सामान्य वाक्य था। मैंने बहनोंको सबसे पहले उनके दुःखके लिये उन्हें दिलासा दिया तथा भयसे मुक्त होनेकी सलाह दी। जो जेल गये हैं उनके लिये शोक न करनेकी विनती की और कहा कि जबतक सहस्रों भारतीय निश्चयपूर्वक जेलके दुःखोंको सहन नहीं करेंगे तबतक हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसके बाद स्वदेशीकी सलाह देते हुए उसे धर्म मानकर रोज थोड़ी देरके लिये सूत कातनेका सुझाव दिया।

शक्तिका प्रपात

ये दृश्य भव्य कहे जा सकते हैं। जिस तरह नायगरा प्रपातसे शक्ति उत्पन्न करके अमेरिकाके लोग उसका उपयोग करते हैं वैसे हम भी अमृतसर आदि स्थानों-

पर व्याप्त शक्तिका उपयोग कर सकते हैं। इस समय यह शक्ति जल-प्रपातके समान व्यर्थ जाती है। उसका उपयोग किया जा सकता है। हजारों स्त्री-पुरुषोंमें देशाभिमान व्याप्त हो गया है। ये लोग यह भी समझते हैं कि इसमें धर्मका विचार भी होना चाहिए। उनके पास समय है लेकिन तालीम नहीं, जानकारी नहीं, जो टिक सके वह उत्साह और उद्योग नहीं। इन स्त्री-पुरुषोंको अक्षरज्ञानकी जरूरत है। और इससे भी पहले उन्हें उस ज्ञानकी आवश्यकता है जो मनको बदल डालता है और व्यक्तिको सेवा-परायण बना देता है। लेकिन पढ़े-लिखे और सामान्य रूपसे अशिक्षित कहे जानेवाले वर्गके बीच एक बड़ी खाई है। पढ़े-लिखे भी जलूसमें थे। वे भी स्वदेशाभिमानी तो हैं ही। लेकिन उनका जीवन अशिक्षितोंसे अलहदा है और वे मानते हैं कि जबतक अशिक्षित लोग पढ़ नहीं जाते तबतक देशका उद्धार नहीं हो सकता। देशके उद्धारके लिए देशके प्रति प्रीति, देशके निमित्त खटने, दूसरे शब्दोंमें कहें तो धर्म-ज्ञान होनेके अलावा और किसी चीजकी जरूरत नहीं है, और धर्म-ज्ञानका अर्थ हुआ कर्त्तव्यपरायणता। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने आजके कर्त्तव्यको समझकर तदनुरूप आचरण करे तो [उसके सामने] दूसरे दिनका कर्त्तव्य स्वयंमेव उपस्थित हो जायेगा।

आजका धर्म यह है कि:

१. हम किसीसे डरें नहीं;

२. सत्यका ही आचरण करें;

३. देशकी भुखमरीको दूर करनेके लिए स्वदेशी धर्म ग्रहण करें;

४. इस धर्मका सहज ही पालन किया जा सके इसके लिए घर-घरमें चरखा चालू करायें तथा हाथसे बने कपड़ेके उत्पादनको प्रोत्साहन दें और खुद भी वही कपड़ा पहनें।

ईश्वरसे डरनेवाला व्यक्ति मनुष्यसे नहीं डरता, इस कारण सरकारसे, राजासे, अमलदारसे नहीं डरता और जो डरता नहीं उसे कौन डरा सकता है? तथा जिसे कोई डरा नहीं सकता उसपर कोई भी सरकार बलात्कार नहीं कर सकती। तब सरकार आदि सत्ताएँ अपना सही स्वरूप समझें और निडर प्रजाके लिए कल्याणकारी शक्ति प्रमाणित हों। राजदण्ड भय उपजानेका साधन है। जहाँ प्रजा भयका त्याग कर देती है वहाँ राजदण्ड बेकार हो जाता है। यह निडरता भी केवल निर्दोष आचरणके द्वारा ही पैदा की जा सकती है। सत्यके बिना निर्दोषता सम्भव नहीं है। इसलिए हम सत्यका आचरण करें — यही हमारी मुक्तिका द्वार है।

अपने वस्त्रोंके लिए हम प्रतिवर्ष ६० करोड़ रुपया बाहर भेजते हैं; इस कारण हमें स्वदेशीकी आवश्यकता है। स्वदेशीका चरखे और करघे द्वारा तेजीसे प्रसार किया जा सकता है। अतएव हमारे साठ करोड़ रुपयेके व्यापारकी चाबी है ये चरखे और करघे।

सत्यके बिना निर्भयता नहीं और स्वदेशीके बिना अर्थ-लाभ नहीं। इससे सत्य और स्वदेशीको अपनानेमें ही स्वराज्य है। इन दो वस्तुओंको सिखानेके लिए यदि योग्य शिक्षक हों तो पल-भरमें जनताको इनकी शिक्षा दी जा सकती है। जिस गाँवमें ऐसे स्वयंसेवक प्राप्त हो जायें वहाँ इन दो बातोंको सिखाना शुरू कर दिया

जाना चाहिए। इसमें बड़े-बड़े मकानों अथवा बहुत ज्यादा पैसोंकी जरूरत नहीं है। मात्र तीव्र और शुद्ध इच्छाकी जरूरत है।

लाहौरके अनुभवसे मेरे मनमें समय-समयपर ऐसे विचार आते रहते हैं। मैंने उन्हें यहाँ पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है।

लाहौरमें

अमृतसरमें एक दिन रहनेके बाद हम लाहौर आये। यहाँ काम तो पड़ा ही हुआ था। पंडित द्वय अभी बाहर थे। मोतीलालजी प्रयागमें और मालवीयजी दिल्लीमें थे। इस कारण पेश की जानेवाली गवाहियोंके सम्बन्धमें मुझसे जो बन सकता था मैं उसमें लग गया। इसके साथ-साथ माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयको भी पत्र लिखा कि तीन शर्तोंमें अभी दो शर्तें बाकी हैं।

दो शर्त

एक शर्त यह है कि तुरन्त निर्णय देनेवाली अदालतों (समरी कोर्ट)के निर्णयोंकी जाँच करनेके लिए पंजाबसे बाहरके एक न्यायाधीशकी नियुक्ति की जानी चाहिए। दूसरी शर्त यह कि समितिका काम जारी रहनेतक प्रमुख कैदियोंको रिहा रखा जाये। स्पष्टीकरण करते हुए मैंने बताया कि इसके बिना ठीक-ठीक गवाहियाँ नहीं दी जा सकतीं। उनके अस्थायी रूपसे रिहा कर दिये जानेपर ही लोगोंमें गवाहियाँ पेश करनेकी हिम्मत आयेगी और सरकारकी सदाशयताके सम्बन्धमें लोगोंको विश्वास होगा।

इस बीच आदरणीय मालवीयजी तथा श्री दास दिल्लीसे तथा मोतीलालजी प्रयागसे आ पहुँचे। समितिके सदस्य भी आ पहुँचे। वे लोग अमृतसरमें जलियाँवाला बाग आदि स्थानोंको — जहाँ लोगोंको अधिकसे-अधिक कष्ट झेलने पड़े थे — देखने गये। बृहस्पतिवार १३ तारीखको समितिकी बैठक शुरू हुई और अमृतसर-काण्डके सम्बन्धमें कार्रवाई आरम्भ हो गई।

समितिका बहिष्कार

लेकिन हमारी ओरसे समितिका बहिष्कार किया गया है। सोमवार अर्थात् १० तारीखको लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयका उत्तर आया कि [दूसरी शर्तके अनुसार] पंजाब क्षेत्रसे बाहरके न्यायाधीश बिहार उच्च न्यायालयके न्यायमूर्ति मलिककी नियुक्ति हो गई है। लेकिन सरकारने तीसरी शर्तको मंजूर नहीं किया। गवर्नर महोदयने लिखा कि जिन्हें समिति बुलायेगी सिर्फ उन्हीं कैदियोंको गवाही देनेके लिए लाया जायेगा। इस आशयका एक पत्र मालवीयजीको मिला है और मुझे भी यही उत्तर मिला है। कांग्रेस उप-समितिकी बैठक हुई तथा पंडितजीने सबको स्थितिसे अवगत कराया। मुझे जो कहना था, सो मैंने कहा और खूब चर्चा हुई। अन्ततः मालवीयजीने अध्यक्षके रूपमें माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदय तथा लॉर्ड हंटरको पत्र लिखे। ये प्रकाशित हो चुके हैं। दोनों पत्रोंमें पंडितजीने स्पष्ट रूपसे कहा है कि जबतक प्रमुख नेताओंको रिहा नहीं किया जायेगा तबतक लोगोंकी ओरसे समितिका बहिष्कार जारी रहेगा। उन्होंने लॉर्ड हंटरके पत्रमें बहिष्कार करनेके कारण बताये और उनसे माँग की कि जैसे दक्षिण

आफ्रिकामें मुझे और दूसरे लोगोंको छोड़ दिया गया था वैसे ही यहाँके प्रमुख नेताओंको रिहा कर दिया जाना चाहिए। लॉर्ड हंटरकी ओरसे भी नकारात्मक उत्तर मिला है। इस बीच श्री एन्ड्रयूज माननीय गवर्नरसे मिल आये। उन्होंने भी उनसे विनती की। बादमें मैं मिला। परिणामस्वरूप वे कुछ आगे बढ़े और उन्होंने यह स्वीकार किया कि जब नेताओंको गवाही देनेके लिए लाया जायेगा तब उन्हें मुक्त रखा जायेगा। वह भी इस शर्तपर कि सोनेके लिए वे वापस जेलमें जायेंगे। इसमें हमारी माँगको कुछ हद-तक स्वीकार कर लिया गया था, सो फिरसे कांग्रेसकी बैठक हुई और उसमें विचार-विमर्श किया गया। इसमें यह निश्चय हुआ कि यदि बाकीके दिनोंके लिए कैदियोंको पैरोलपर छोड़ दिया जायेगा और वकीलकी सहायतार्थ अदालतमें आने दिया जायेगा तो हम माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयकी बातको स्वीकार कर लेंगे। भाई एन्ड्रयूज इस बातका निबटारा करवानेके लिए गये। लेकिन गवर्नर महोदयने स्पष्ट शब्दोंमें इन्कार कर दिया। इसपर पंडितजीने लॉर्ड हंटरको फिरसे पत्र लिखा है। हंटर समितिमें सरकारी वकील भी हैं। उन अधिकारियोंको, जिनके कामके बारेमें छानबीन की जा रही है, [अदालतमें] बैठनेकी अनुमति है, इनमें वकील लोग भी शामिल हैं। मालवीयजीने कहा है कि एक ओर तो वे सरकारी अधिकारी, जो अपराधीकी स्थितिमें हैं, उपस्थित हो सकते हैं और दूसरी ओर कैदमें पड़े हुए हमारे नेतागण उपस्थित होकर वकीलकी मदद भी न कर सकें—ऐसी एक पक्षीय स्थितिको कांग्रेस समिति कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। परिणामतः हमारा बहिष्कार जारी है।

हंटर समितिके सम्मुख गवाही

अभी अमृतसरके अधिकारियोंकी गवाहियाँ ली जा रही हैं। अधिकारी लोग मुख्य आरोपोंको स्वीकार करते जान पड़ते हैं। तीनों भारतीय सदस्य ठीक काम कर रहे हैं, पंडित जगतनारायण बहुत कड़ी जिरह कर रहे हैं। मुझे लगता है कि अनेक बार उनकी जिरह जितनी कड़ी होनी चाहिए उससे कहीं अधिक कड़ी होती है। जो जानते हैं वे कहते हैं, उनका तरीका ही ऐसा है। बहुत समयतक फौजदारी मामलोंको हाथमें लेनेके कारण उनकी आदत ही तीखी जिरह करनेकी पड़ गई है। सर चिमनलाल सीतलवाड भी बहुत बारीकीसे सवाल पूछते हैं, और साहबजादा सुलतान अहमद थोड़े सवाल पूछते हैं लेकिन वे मुद्देसे ही सम्बन्धित होते हैं। ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती जिससे यह लगे कि अंग्रेजी सदस्य पक्षपातपूर्ण सवाल पूछते हैं। लोगोंका यह कहना है कि समितिके सदस्य-गण भी जान-बूझकर अन्याय करें, सो बात नहीं। चाहे जो हो सब लोगोंकी यह राय है कि भारतीय सदस्य जीहजूरी करनेवाले नहीं है।

हमारी समिति

हम बहिष्कार करते हैं तो हमें उसके एवजमें कुछ करना चाहिए। कांग्रेसकी उप-समितिने पाँच कमिश्नरोंकी नियुक्ति की है। उनका काम जो गवाहियाँ अबतक इकट्ठी हुई हैं उन्हें तथा नवीन गवाहियाँ लेकर उनकी छानबीन करके एक रिपोर्ट तैयार करना है। पाँच कमिश्नर हैं: पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री चित्तरंजन दास, श्री अब्बास

तैयबजी, श्री फजल हुसैन तथा मैं स्वयं। कल श्री अब्बास तैयबजी बड़ौदासे और थोड़े दिनोंमें श्री फजल हुसैन कलकत्तेसे [यहाँ] आ जायेंगे। इन कमिश्नरोंने यहाँके वकील श्री सन्तानम्को अपना मंत्री नियुक्त किया है। यहाँके अन्य वकील भी निःशुल्क काम कर रहे हैं।

एन्ड्रयूजकी विदाई

श्री एन्ड्रयूज दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना होनेवाले थे; उनके सम्मानमें कल ब्रैडलॉ हॉलमें एक भारी सभाका आयोजन किया गया था। उसमें टिकट बेचे गये थे तथा उनसे इकट्ठी हुई दो हजार रुपयेकी रकम श्री एन्ड्रयूजको भेंट की गई। पंडित मालवीयजी अध्यक्ष थे। इस सभामें श्री एन्ड्रयूजने पंजाबकी जो सेवा की है उसकी प्रशंसा की गई और इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया कि दक्षिण आफ्रिकामें भगवान् उन्हें सफलता प्रदान करे। श्री एन्ड्रयूजने गद्गद कंठसे बड़ा ही अद्भुत भाषण दिया। सभाके सम्मुख प्रस्ताव पेश करनेकी जिम्मेदारी मुझे दी गई थी। उक्त दोनों भाषण पठनीय हैं, अतएव मैं उन्हें अगले अंकमें प्रकाशित करना चाहता हूँ। अन्य भाषण मुख्यतः औपचारिक थे इसलिए उनका सार देनेका विचार है।

पाठकोंसे क्षमा-याचना

मुझे उम्मीद थी कि 'नवजीवन' साप्ताहिकके प्रारम्भिक अंकोंमें अधिकांशतः मैं ही लिखूँगा अथवा उसके अधिकांश लेखोंमें मेरा कुछ-न-कुछ हाथ होगा। पंजाबका मामला ऐसा गम्भीर होगा अथवा मुझे इस तरह एकाएक वहाँ रुके रहना पड़ेगा इसका अन्दाज नहीं था। पंजाबसे मैं कबतक मुक्त हो सकूँगा इसका भी कुछ पता नहीं है। 'नवजीवन' पर मैं स्वयं जो मेहनत करना चाहता था उतनी फिलहाल नहीं कर सकता; आशा है इसके लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगे। मैं समझता हूँ कि प्रत्येक पाठक यही चाहेगा कि मैं पंजाबकी सेवा करूँ; और मैं पाठकोंसे आशा रखता हूँ कि वे इस बीच भाई इन्दुलाल याज्ञिक जो सेवा अर्पित कर सकेंगे, उसे स्वीकार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–११–१९१९

२०४. पत्र : जी० ई० चैटफील्डको

[नवम्बर १७, १९१९के बाद]

श्री जी० ई० चैटफील्ड, आई० सी० एस०
जिलाधीश
अहमदाबाद

प्रिय श्री चैटफील्ड,

लॉर्ड हंटरकी समितिको जो सबूत दिये जाने थे उनके बारेमें आपका पहला पत्र मुझे मिला था। १७ तारीखके आपके पत्र[1] के लिए धन्यवाद। वह मुझे गुजराँवालामें मिला। यह भी ज्ञात हुआ कि अपनी गवाहीके बारेमें आपको लिखकर भेजना जरूरी नहीं है।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९८१) की फोटो-नकलसे।

२०५. तार : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

[लाहौर
नवम्बर १८, १९१९]

एन्ड्रचूज,
[द्वारा] श्रीमती जहाँगीर पेटिट
पेडर रोड
बम्बई

निश्चय ही इंग्लैंड[2] होते हुए लौटें। मिशनके[3] पहुँचनेतक दक्षिण आफ्रिकामें ठहरें।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स

१. वह पत्र इस प्रकार था: "मुझे आपको यह सूचित करनेका निर्देश मिला है कि सरकारने अभीतक आगामी आयोगके सामने लाये जानेवाले अपने गवाहोंका चुनाव नहीं किया है। आप कृपया २८ अक्तूबर, १९१९ की इस दफ्तरी नोटिसके सं० ४० पी० ओ० एल० आई० को रद समझें। मुझे खेद है कि इस बारेमें मैंने आपको व्यर्थ ही कष्ट दिया। यदि आप गवाही देना चाहते हैं तो कृपया आप सीधे समितिको उस तरीकेसे अर्जी दें जो उसकी ओरसे प्रेस विज्ञप्तिमें निर्दिष्ट किया गया है।"

२. अपने १७ नवम्बरके पत्रमें एन्ड्रचूजने लिखा था: "मेरा विचार शास्त्रीजीका इंतजार करने और उन्हें यथासम्भव पूरी स्थितिसे अवगत करा देनेका है। इसके बाद इंग्लैंड जाकर वहाँ वस्तुस्थितिको स्पष्ट करके शीघ्र ही यहाँ आपके पास लौट आनेका है।"

३. अभिप्राय संघ सरकार द्वारा नियुक्त जाँच आयोगसे है।

२०६. भाई परमानन्द

'ट्रिब्यून'के स्तम्भोंमें श्री एन्ड्रयूजने अत्यन्त मार्मिक भाषामें भाई परमानन्दके मामलेके सम्बन्धमें लिखा है। भाई परमानन्द उन मुट्ठीभर भारतीयोंमें से हैं जिनकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है, और जिन्होंने भारतकी सेवाको ही अपना जीवन मान लिया है और खुशी-खुशी गरीबीको अपना लिया है। इसी भावनासे उन्होंने लाला हंसराजके प्रभावमें आकर लाहौरके डी० ए० वी० कॉलेजमें प्रोफेसरका पद स्वीकार कर लिया था। अपने आडम्बरहीन आचरण, परिश्रम और तेजस्वी चरित्र द्वारा वे विद्यार्थियों और शिक्षकोंके भी प्रिय बन गये। इसके बाद वे दक्षिण आफ्रिकाके दौरेपर गये और वहाँ उन्होंने जीवनके निर्माणके लिए धर्मकी आवश्यकतापर व्याख्यान दिये। सत्यनिष्ठ और उदात्त व्यक्तिके रूपमें उनकी गहरी छाप मेरे मनपर पड़ी थी। उस उप महाद्वीप [दक्षिण आफ्रिका] में अपने दौरेकी अवधिमें वे मेरे निकट सम्पर्कमें आये और लगभग एक माहतक मेरे सम्मानित अतिथि रहे थे। विविध विषयोंपर मेरी उनसे बहुत-सी बातें हुईं और मेरा विश्वास है कि उनका देशप्रेम बहुत ही ऊँची कोटिका था — ऐसा देशप्रेम जो राष्ट्रीय हितोंको साधनेके लिए हिंसाका प्रयोग हेय मानता है। वे दक्षिण आफ्रिकासे इंग्लैंड गये। वहाँ वे उस हिंसात्मक विचारधाराके सम्पर्कमें आये जिसका नेतृत्व पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा[1] कर रहे थे। तथापि विविध प्रलोभनोंके बीच भी उनके अन्तरमें सत्यकी ज्वाला उतनी ही प्रखरतासे जलती रही। अदालतके सामने दिया गया उनका स्पष्ट और निर्भीक बयान जाहिर करता है कि उन्होंने कुछ भी नहीं छिपाया है। उन्होंने ऐसी स्वीकारोक्तियाँ की हैं जो उनके लिए नुकसानदेह हैं। वे कोई भी बयान देनेको बाध्य नहीं थे, परन्तु वे पीछे हटनेवाले न थे। उन्होंने महसूस किया कि चाहे उनके बयानके कारण उन्हें सजा ही क्यों न हो जाये फिर भी उन्हें कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए। उनके बयानमें स्वत: ऐसी कोई बात नहीं है जिसके आधारपर उन्हें सजा दी जा सके। परन्तु विशेष अदालतने इस बयानमें अन्य सबूत जोड़ दिये और उन्हें सजा सुना दी।

उनकी पत्नी द्वारा दी गई युक्तियुक्त याचिकामें, जिसे हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं, सारे मामलेका बहुत ही तर्कयुक्त विश्लेषण किया गया है। मैं इस समय उसकी चर्चा नहीं करूँगा। मेरा उद्देश्य तो सिर्फ यह दिखाना है कि सरकारने एक सम्माननीय व्यक्तिके साथ एक साधारण अपराधी जैसा बरताव करके बहुत बड़ी भूल की है। उनको अपराधी मान भी लें तो भी उन्हें अंडमान भेजना अनुचित था। यदि वे शत्रु थे तो उनके साथ मानवोचित व्यवहार करके मित्र बना लेना आसान बात थी। यदि वे सचमुच ही खतरनाक व्यक्ति थे तो उन्हें उनकी स्वतंत्रतासे वंचित करना उचित था। परन्तु उन्हें साधारण कैदियोंमें रखना या अंडमान भेजना बहुत बड़ी

१. **इंडियन सोशियोलॉजिस्टके** संपादक; देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ४८९।

क्रूरता थी। मैंने लाहौर तथा अन्य स्थानोंके अनेक लोगोंसे भाई परमानन्दके बारेमें पूछा है। उनमें से कोई ऐसा नहीं था जिसे उनके अपराधी होनेका विश्वास हो। उनमें से प्रत्येक व्यक्ति मानता है कि उनपर जो अपराध लगाया गया वह उन्होंने नहीं किया है। आतंकके बलपर अपना अस्तित्व बनाये रखनेवाली सरकारको बने रहनेका कोई हक नहीं है। ऐसी सरकार बहादुर स्त्री-पुरुषोंपर नहीं बल्कि बुजदिलोंपर शासन करती है। भाई परमानन्द काफी समयसे जेलमें हैं। उनकी पत्नी व बच्चोंको (मैं समझता हूँ कि गैर-कानूनी ढंगसे) जब्तीके हुक्म द्वारा उनकी निजी सम्पत्तिसे वंचित कर दिया गया था। भाई परमानन्दके पत्रोंसे जाहिर होता है कि उनके मनमें कोई कटुता नहीं पैदा हुई है। इसके बजाय अंडमानमें वे अपना जीवन धार्मिक आत्म-निरीक्षण करते हुए व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे आदमीको कैद रखना सरकारके लिए मुनासिब नहीं है। मैं विश्वास करता हूँ कि पंजाबके माननीय लेफ्टिनेन्ट गवर्नर मामलेकी जाँच करेंगे और न सिर्फ यही बल्कि अंडमानके जेल अधिकारियोंसे भाई परमानन्दके बारेमें जानकारी प्राप्त करेंगे और उन्हें तुरन्त रिहा कर देंगे। मैं यह भी विश्वास रखता हूँ कि जनता तथा समाचारपत्र इस मामलेका अध्ययन करेंगे और सरकारसे भाई परमानन्दको रिहा कर देनेका आग्रह करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-११-१९१९

२०७. पत्र : महादेव देसाईको

गुजराँवाला
[नवम्बर २२,][1] १९१९

भाईश्री महादेव,

तुम्हारा लाला लाजपतराय-वाला तार मिला। वे पैसे कैसे मँगवा सकते हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आई। उनके पास तो बहुत पैसे हैं। तथापि मैं उनके पुत्रसे मिलूँगा और खोजबीन करूँगा। तुम्हें मेरे सब लेख मिल गये होंगे।

आज भाई नरहरिका पत्र मिला, उससे तुम्हारे सोजीत्रा जानेकी बात मालूम हुई; किसलिये जाना पड़ा, सो नहीं जान पाया।

भाई नरहरिने निर्माण-कार्यके सम्बन्धमें लिखा है, इसे पढ़कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। थोड़े मकान बन जायें तो हम दिक्कतसे बच जायें। आज दिल्ली जा रहा हूँ और मंगलवारको सवेरे लाहौर पहुँचूँगा। मेरी डायरी तो तुम 'नवजीवन'में देख ही सकोगे।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९८५६) की फोटो-नकलसे।

१. इसी तारीखको गांधीजी गुजराँवालासे दिल्लीके लिए रवाना हुए थे और मंगलवारके दिन अर्थात् २५-११-१९१९ को लाहौर पहुँचे थे।

२०८. गो-रक्षा कैसे की जाये?

गो-रक्षाके सम्बन्धमें अनेक भाई मुझे पत्र लिखते रहते हैं। जो अन्तिम पत्र मेरे नाम आया है, उसमें लिखा है कि मुझे स्वदेशी-प्रचारका त्याग करके सबसे पहले गो-रक्षाका काम ही करना चाहिए, गो-रक्षाके सम्बन्धमें बहुत वर्ष हुए मैंने अपने विचार बना लिये थे। मेरे विचार चालू प्रयासोंसे बिलकुल पृथक हैं। मेरी धारणा है कि गो-रक्षाके नामपर हम जाने-अनजाने गो-हत्या करते हैं। लेकिन इस समय गो-रक्षाके सम्बन्धमें अपने समस्त विचारोंको पाठकोंके सम्मुख नहीं रखना चाहता। मौलाना अब्दुल बारीने मुझे जो पत्र लिखा है, आज उसमें से कुछ अंश उद्धृत कर देना चाहता हूँ। ये महोदय लिखते हैं:

> **हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें खिलाफतके लिए नियत किये गये प्रार्थना-दिवसपर हमें जो सफलता मिली है उसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। आपने इस सम्बन्धमें जो रास्ता अपनाया है उसका मुसलमानोंपर, विशेषतया उन मुसलमानोंपर जो धर्मके प्रति निष्ठावान हैं, गहरा असर पड़ा है। अनेक उलेमाओंने आपको विशेष रूपसे बधाई देनेके लिए मुझे पत्र लिखे हैं। उनमें से एक फुलवारीके मौलाना सुलेमान साहब हैं। वे लिखते हैं कि उन्होंने भविष्यमें स्वयं गो-हत्या न करनेका निश्चय कर लिया है और दूसरोंको भी गो-वध न करनेके लिए समझाया है। यदि आप जैसे व्यक्ति एकताके लिए मेहनत करते रहें तो देशकी उन्नति जल्दी होगी और झगड़ेके कारण भी दूर हो जायेंगे।**

एकता स्थापित करनेमें मेरा कितना हिस्सा है, उसपर हम विचार करना छोड़ देते हैं। मैं उपर्युक्त पत्रमें से पाठकोंके समक्ष जो सार उपस्थित करना चाहता हूँ वह तो इतना ही है कि हम यदि गो-रक्षा करना चाहते हैं तो वह मुसलमान भाइयोंकी सेवाके द्वारा ही संभव होगा। एक सज्जनने मुझे सन्देश भेजा है कि मुसलमानोंके साथ गो-रक्षाके सम्बन्धमें शर्त करनेके पश्चात् ही हमें खिलाफतके बारेमें उनकी मदद करनी चाहिए। उपरोक्त पत्रमें इन सज्जनके प्रश्नका उत्तर आ जाता है। यदि हम प्रतिदान लेकर किसीकी मदद करते हैं तो उसमें न तो रस रहता है और न सार ही। खिलाफतके सम्बन्धमें मुसलमान भाइयोंने हमारी मदद नहीं माँगी है, लेकिन यदि हम उनको मित्र बनाना चाहते हों, और उन्हें भाई मानते हों तो उनकी मदद करना हमारा फर्ज है। उसके फलस्वरूप वे गो-हत्या बन्द कर दें तो यह बात अलग है। उसमें कोई अनोखापन नहीं है। लेकिन वे गो-वध बन्द करें इसी शर्तपर हम उनकी मदद करें सो नहीं हो सकता। कर्त्तव्य निबाहनेमें प्रतिदानके लिए स्थान कहाँ? लेकिन जिनके मनमें गो-रक्षाके पक्षमें तीव्र भावना हो, उनका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे खिलाफतके सम्बन्धमें मुसलमानोंकी पूरी-पूरी मदद करें।

ऐसी मददका अवसर हमें दिसम्बर मासमें पुनः प्राप्त होगा। १३ से १६ तारीखतक सुलह सम्बन्धी जशन मनाये जायेंगे। मेरा पक्का विश्वास है कि जबतक मुसलमान भाइयोंको सन्तोष नहीं होता तबतक हम उन जशनोंमें भाग नहीं ले सकते। लड़ाईके परिणाममें जिनका भारी स्वार्थ निहित है, जबतक उनकी स्थिति स्पष्ट नहीं हो जाती, जबतक उन्हें अपनी स्थितिके बारेमें पूरा भय बना हुआ है तबतक उनके लिए सुलह-सम्बन्धी उत्सवोंका कोई अर्थ नहीं हो सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–११–१९१९

२०९. भाषण : खिलाफत सम्मेलन, दिल्लीमें[1]

[नवम्बर २३, १९१९]

अध्यक्ष महोदय और भाइयो,

आप लोग मुझे बैठे रहनेके लिए क्षमा करेंगे क्योंकि मैं खड़े होकर भाषण नहीं दे सकता। यह कहा गया है कि हिन्दुओंने मुसलमानोंको उनके दुःख तथा विरोधकी भावनामें हिस्सा बँटाकर कर्जके बोझसे दबा दिया है, किन्तु मैं मानता हूँ कि उन्होंने अपना फर्ज अदा करने से ज्यादा कुछ नहीं किया है। आपने हिन्दुओंके लिए धन्यवादका एक प्रस्ताव पास किया है। परन्तु कर्त्तव्य निभाना और कर्ज चुकाना, इन दोनों बातोंमें धन्यवाद देनेकी कोई बात नहीं होती। यह तो उनका फर्ज था क्योंकि हालमें एकताकी बहुत चर्चा हुई है। परन्तु एकता तथा भाईचारेकी सच्ची भावनाकी कसौटी यह है कि एक दूसरेके दुखः-सुखमें बराबर हिस्सा बँटाया जाये। बाईस करोड़ हिन्दू उस समय कैसे शान्ति पा सकते हैं जब उनके आठ करोड़ मुसलमान भाई भयंकर व्यथासे तड़प रहे हों? आठ करोड़की व्यथा भारतके शेष २२ करोड़ निवासियोंकी भी व्यथा है। अतएव यद्यपि शान्ति-संधि हो गई है लेकिन भारतको सच्ची शान्तिका कोई अनुभव नहीं हुआ है।

आगे श्री गांधीने कहा कि मैं वाइसराय तथा सरकारको बताता रहा हूँ कि यदि उनका इरादा मुसलमानोंको सन्तुष्ट करनेका है तो टर्कीके लिए न्यायपूर्ण तथा सम्मानजनक शर्तोंपर शान्ति स्थापित की जाये और तब सभी भारतीय पूरे उत्साहसे विजयोत्सवोंमें शरीक होंगे। इसके बाद उन्होंने श्रोताओंसे आग्रह किया कि वे अपनी आत्मिक शक्तिमें विश्वास न खोयें और आशा न छोड़ें।

उन्होंने कहा, आपका पक्ष न्यायोचित है और यदि आप सफलता चाहते हैं तो बलिदानोंके लिए तत्पर रहना आपका कर्त्तव्य है, क्योंकि आपके इतने पवित्र उद्देश्यके लिए निश्चय ही बलिदानोंकी आवश्यकता होगी। आपको धर्मके साथ खिलवाड़ नहीं करना

१. इस सम्मेलनमें केवल मुसलमान प्रतिनिधियोंने भाग लिया था।

चाहिए और न ऐसे महत्त्वपूर्ण मामलोंको छोटा ही समझना चाहिए। आपको पूरी विनम्रता, दृढ़ता, ईमानदारीके साथ और सफलताके लिए कृतसंकल्प होकर अपने काममें लगना चाहिए। इसके बाद उन्होंने यह घोषणा की कि आगामी विजयोत्सवोंमें न शरीक होनेके निर्णयके बाद सभी हिन्दुओं और मुसलमानोंका यह कर्त्तव्य होगा कि अपना व्रत सच्ची श्रद्धासे निभायें। इस अवसरपर बँटनेवाली कोई भिक्षा या भोजन स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए और अगर आतिशबाजी वगैरह हो या रोशनी वगैरह की जाये तो उसे भी देखने नहीं जाना चाहिए। किन्तु जो लोग स्वेच्छासे इन उत्सवों और मेलोंमें जाना चाहें, उनके सामने किसी भी प्रकारकी रुकावट नहीं डालनी चाहिए।

श्री गांधीसे भी अपने विचार व्यक्त करनेकी प्रार्थना की[1] गई। वे बड़ी ईमानदारीसे बोले और प्रस्तावका विरोध करते हुए उन्होंने कहा कि मैं यहाँ अपने विचार धार्मिक दृष्टिसे नहीं धर्मनिरपेक्ष दृष्टिसे व्यक्त करने आया हूँ। मैं एक सत्याग्रही हूँ और मेरा धर्म विपक्षीको किसी भी तरहकी चोट पहुँचाने से रोकता है। बहिष्कारका अर्थ है आर्थिक दंड देना, और मैं हर तरहके दंडके विचारका विरोध करूँगा। मुझे निश्चित रूपसे पता है कि मौलाना हसरत व्यावहारिक कामके हिमायती हैं परन्तु इस प्रकारका व्यावहारिक काम शायद किसी भी उपयोगी नतीजेकी ओर हमें न ले जायेगा। मैं बहिष्कारके विचारके विरोधमें हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-११-१९१९

२१०. भाषण : खिलाफत सम्मेलन, दिल्लीमें[2]

नवम्बर २४, १९१९

हकीम साहिब[3] और भाइयो,

आप मुझे क्षमा करेंगे कि मैं खड़ा होकर बोलनेमें असमर्थ हूँ। मेरा स्वास्थ्य ऐसा नहीं है कि बहुत देरतक खड़ा रह सकूँ। आपके सामने बैठकर बोलनेके लिए क्षमा माँगनेमें मुझे हमेशा लज्जा आती है, आपने आज जो सम्मान मुझे दिया है उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मैं सदासे कहता और लिखता आया हूँ कि जो लोग देश-सेवा करना चाहते हैं उन्हें धन्यवादकी आवश्यकता नहीं, देशसेवा स्वयं ही अपना

१. गांधीजीसे विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारके प्रस्तावपर बोलनेको कहा गया था।

२. गांधीजीने हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्मिलित अधिवेशनकी अध्यक्षता की थी। इसमें उन्होंने हिन्दीमें भाषण दिया था, हिन्दी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। उनके भाषणकी संक्षिप्त रिपोर्ट **यंग इंडिया**के ३-१२-१९१९ और १०-१२-१९१९ के अंकमें प्रकाशित हुई थी।

३. हकीम अजमल खाँ।

पारितोषिक है। उन लोगोंको जिन्होंने अपनेको मातृभूमिकी सेवाके लिए अर्पित कर दिया है देशके प्रति अपनी भक्तिसे सुख मिलता है। उनके लिए इससे परे कोई और सुख नहीं। हम सब — ईसाइयों, पारसियों, हिन्दुओं और मुसलमानों — के इकट्ठे होनेका उद्देश्य है खिलाफतकी समस्यापर विचार करना और यह निश्चय करना कि हमें क्या करना चाहिए। कल मुसलमानोंका एक अलग सम्मेलन हुआ और उन्होंने कई प्रस्ताव पास किये। आज भारतमें पैदा हुए और रहनेवाले दूसरे सब सम्प्रदायोंके प्रतिनिधि भी उसी समस्यापर विचार करनेके लिए जमा हुए हैं। कुछ लोगोंको हिन्दुओं और मुसलमानोंके पारस्परिक सौहार्दपर आश्चर्य होता है। पर वे एक ही मातासे जन्मे हैं, एक ही धरतीपर रहनेवाले हैं — वे एक दूसरेसे प्रेम न करें तो करें क्या! जब यह कहा जाता है कि खिलाफतके प्रश्नपर हिन्दुओंको मुसलमानोंका साथ देना चाहिए तो कुछ लोगोंको आश्चर्य होता है। पर मेरा कहना है कि यदि हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई हैं तो एक दूसरेके दुःखमें हाथ बँटाना उनका कर्त्तव्य है, इस सम्बन्धमें एक ही प्रश्न उठ सकता है और वह यह है कि क्या मुसलमान ठीक रास्तेपर हैं और क्या उनका लक्ष्य न्यायसंगत है? यदि वह न्यायसंगत है तो इस धरतीके बच्चे-बच्चेका यह कर्त्तव्य है कि उनसे सहानुभूति रखे, हमें यह नहीं समझना चाहिए कि खिलाफतकी समस्यापर केवल मुसलमानोंको ही दुःख होगा। नहीं, यह प्रश्न सभी भारतवासियोंका है।

अब मैं यहाँ उपस्थित अपने हिन्दू भाइयोंसे कुछ कहूँगा। आज मुझे भाई आसफ अलीने दो पत्र लिखे हैं जिनमें उन्होंने आशा व्यक्त की है कि खिलाफत समिति गो-संरक्षणके प्रश्नको सुलझानेमें साधन बनेगी। पर मैं जोर देकर यह कहना चाहता हूँ कि यदि एक भाई कष्टमें हो तो दूसरे भाईका कर्त्तव्य है कि उसे हर प्रकारसे सहायता दे। जब हिन्दू संकटमें हों तो मुसलमानोंको उनकी सहायता करनी चाहिए और जब मुसलमान संकटमें हों तो हिन्दुओंको उनकी सहायताके लिए आगे आना चाहिए। हमें अपनी सहायता और सहानुभूतिके लिए कोई बदला नहीं चाहिए। अगर आप मुसलमान भाई सही रास्तेपर हैं तो हम आपको बिना शर्त सहायता देंगे। यह हिन्दुओंका पैतृक अधिकार है। यदि मुसलमान स्वेच्छासे किसी बातपर झुकनेको तैयार हों तो हम उसका स्वागत करेंगे, पर हम लालचके लिए लड़ने वाले सैनिकोंकी भूमिका स्वीकार नहीं करेंगे। हम जो-कुछ देंगे अपना कर्त्तव्य समझकर देंगे और उसके एवजमें केवल भगवान्से पारितोषिक माँगेंगे। मैं आप हिन्दू भाइयोंसे कह दूँ कि गाय मुझे उतनी ही प्रिय है जितनी आपमें से किसीको भी। पर हम मुसलमानोंसे लड़कर गायकी रक्षा नहीं कर सकते। आप गायकी रक्षा तभी कर सकते हैं जब आप मेरा उदाहरण सामने रखें और अपना कर्त्तव्य निभायें। (तालियाँ) मेरी बात पूरी तरह सुन लीजिए। तालियाँ बजानेका मौका नहीं है। अगर आपको उस ध्येयके न्यायसंगत होनेमें शंका हो जिसके लिए मुसलमान लड़ रहे हैं तो मैं श्री लॉयड जॉर्जको गवाहके रूपमें पेश करूँगा। जब सिपाहियों और रंगरूटोंकी जरूरत हुई तो यह आश्वासन दिया गया कि मुस्लिम प्रदेशोंपर किसीकी दृष्टि नहीं है और ये प्रदेश मुसलमानोंके पास ही रहेंगे, अब यदि मुसल-

मानोंके असंतोष और दुःखको दूर करना है तो न्याय किया जाना चाहिए। खिलाफतके सम्बन्धमें वे न्यायसंगत आधारपर लड़ रहे हैं और सब हिन्दुओं और पारसियोंको उनके दुःखमें हाथ बँटाना चाहिए। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम ब्रिटेनकी जनता, सम्राट् तथा जिम्मेदार मन्त्रियोंको दिखा दें कि हम मुसलमानोंकी भावनाका आदर करते हैं और उनके लक्ष्यको न्यायसंगत मानते हैं। यह उचित नहीं है कि आठ करोड़ मुसलमानोंको मानसिक यातना सहन करनी पड़े, वे सही मार्गपर हैं और उनकी सहायता की जानी चाहिए। १७ अक्तूबरको पंजाबको छोड़कर सारे भारतने उपवास रखा, हड़ताल और प्रार्थना की, पर यह काफी नहीं है। खिलाफतका प्रश्न बहुत बड़ा प्रश्न है और सारे भारतका प्रश्न है। उसके लिए उसी अनुपातमें सच्ची लगनकी जरूरत है। यहाँ मैं भारतीयोंसे कह दूँ कि वे हताश न हों, नैराश्य मनुष्यकी सब ताकत छीन लेता है, हम अब भी ब्रिटेनको बता सकते हैं कि इस समस्याका हम-पर कितना गहरा असर है और हमारे त्यागके लिए तैयार हुए बिना उसे हमारी बात सुननी पड़ेगी। हमारे लिए यह अभीष्ट नहीं कि हम यह आशा रखें कि हमारी इच्छा पूरी होगी। किन्तु ३० करोड़ लोगोंकी बलिदानके लिए तत्परता उनकी सब इच्छाओंको पूरा कर सकती है, न तो सरकार और न दुनियामें कोई यह कह सकता है कि हमारे भाग्यमें शान्ति है। इसके विपरीत हम एक विपत्तिकी छायामें रह रहे हैं। शान्ति है कहाँ ? मुझे तो वह नहीं दिखती, टर्कीके साथ कोई शान्ति-सन्धि नहीं हुई। और जबतक टर्कीके साथ एक सम्मानजनक शान्ति-सन्धि नहीं हो जाती तबतक मुसलमानोंके लिए उत्सवमें भाग लेना सम्भव नहीं। और यह हम सबके लिए दुःखदायी होगा।

पहले तो उनके मनमें इतना शोक है कि वे किसी हँसी-खुशीमें भाग ले ही नहीं सकते। और यदि उन्हें इसके लिए मजबूर किया भी गया तो उनकी भावनाएँ सच्ची प्रसन्नतासे कोसों दूर होंगी। इस पाखण्डपूर्ण दिखावेका कोई अर्थ नहीं निकलता, चूँकि आठ करोड़ मुसलमान टर्कीके सुलतानको अपने धर्मका अधिष्ठाता मानते हैं; अतः उनके पड़ोसियोंके नाते हमें भी उनकी भावनाओंका आदर करना चाहिए और कल जो प्रस्ताव[1] उन्होंने पास किया है उसमें उनका साथ देना चाहिए। भगवान् जानता है कि हम उनके साथ हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि उनके दुःखका समुचित कारण मौजूद है, अन्यथा हम उनके साथ न होते।

महात्माजीने आगे कहा कि अगर अल्सास और लॉरेन फ्रांसको वापस नहीं दे दिये जाते तो फ्रांसको शान्ति नहीं प्राप्त होगी, इसी तरह भारतके लोग कह सकते हैं कि जबतक खिलाफतके सम्बन्धमें आठ करोड़ मुसलमानोंकी वेदनाका शमन नहीं होता, भारतके लोगोंको उत्सवसे कोई सरोकार नहीं होगा। किन्तु यदि यह प्रश्न सन्तोषजनक रूपसे सुलझा लिया जाता है तो सभी भारतीय अपने-आप ही आदरके साथ इस खुशीमें भाग लेंगे। उन्होंने आगे कहा :

१. इस प्रस्तावमें भारतीय जनतासे अनुरोध किया गया था कि वह शान्ति-समारोहोंमें भाग न ले।

धनवान लोग कहते हैं कि अगर हम उत्सवमें भाग नहीं लेंगे तो सरकार नाराज हो जायेगी। वे रुपयेको भगवान् मानते हैं। लोगोंको भय है कि बड़े-बड़े आदमियोंके बिना वे कुछ नहीं कर सकते। वे यह नहीं समझ पाते कि अगर उनका लक्ष्य न्याय-पूर्ण है तो भगवान् उनके साथ है। यदि हम अपने उद्देश्यमें, अपनी माँगके विषयमें एक हैं तो एक दिन बड़े-बड़े लोग भी हमारे साथ होंगे। १३ दिसम्बरको[1] हम एक दूसरा ही भारत देखेंगे। श्री लॉयर्ड जॉर्जको हमारे सामने झुकना ही पड़ेगा, किन्तु यदि यह न हो तो हमें अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए। इसलिए मुसलमानोंने निश्चय किया है कि यदि सरकार उनकी न्यायोचित माँग पूरी नहीं करेगी तो वे सरकारको सहयोग देना बन्द कर देंगे। ऐसा करनेका उन्हें पूर्ण अधिकार है। सचमुच यह एक बहुत मुश्किल काम है। पर उन्होंने अपने अन्तरतमके विचार सरकारके सामने स्पष्ट शब्दोंमें रख दिये हैं। इसका अर्थ साफ-साफ यह है कि यदि आप हमारी सहायता नहीं कर सकते तो यह हमारा अधिकार है कि हम आपको सहायता देना बन्द कर दें। साफ-साफ शब्दोंमें हम यह कह दें कि हमें कुचलनेके काममें हम आपको सहयोग और सहायता नहीं देना चाहते। आप अपनी सहायता अपने ही पास रखें। हम इस बातके लिए तैयार हैं कि आपमें और हममें किसी प्रकारका आदान-प्रदान न हो। हम आपकी सहायता नहीं करेंगे और न आपसे हम सहायता चाहते हैं। मुसलमान यह महत्त्वपूर्ण निर्णय कर भी चुके हैं।

किन्तु उन्होंने एक ऐसा कदम भी उठाया है जो हास्यास्पद है, क्योंकि उन्होंने यह भी निश्चय किया है कि यदि जिसकी उन्हें आशंका है वह हो जाये तो वे धीरे-धीरे ब्रिटिश मालका बहिष्कार करेंगे। मैं उनको राय दूँगा कि वे इस निश्चयको रद कर दें। मैं उनको बता दूँ कि सहयोग वापस लेने और मालके बहिष्कारमें आकाश-पातालका अन्तर है। यह किसी भी मनुष्यका अधिकार है कि जब चाहे अपना सहयोग वापस ले ले। किन्तु कोई राजनैतिक कदम उठानेसे पहले हमें विश्वमतका खयाल कर लेना चाहिए। हम जो करना चाहते हैं वह बहिष्कारके द्वारा नहीं कर सकते। हमें दुनियाकी सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए और इसलिए मैं नम्रतापूर्वक आपसे प्रार्थना करूँगा कि सहयोग वापस लेनेके विचारको अपनाकर मालके बहिष्कारका विचार छोड़ दें। आज हमारे सामने एक ही प्रस्ताव है जो शान्ति-उत्सवमें भाग न लेनेके बारेमें है। इस प्रस्तावपर हिन्दुओंको मुसलमानोंका साथ देना चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं कि आनेवाले उत्सवमें भाग न लेनेके कारणोंमें हमें पंजाबकी वीभत्स घटनाओंको भी शामिल कर लेना चाहिए। मैं इस बातको माननेको तैयार नहीं हूँ, क्योंकि मेरी राय इससे भिन्न है। पंजाबके बारेमें जितना सन्ताप मुझे है उतना किसी औरको नहीं हो सकता। परन्तु इस सन्तापके बावजूद मैं पंजाबके प्रश्नको शान्ति-समारोहके प्रश्नसे नहीं उलझाऊँगा। शान्ति-समारोहका प्रश्न खिलाफतसे सम्बन्धित है। मैं समझता हूँ कि खिलाफतका प्रश्न शान्तिसे इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि जब-तक वह हल नहीं हो जाता, हमें यह कहनेका अधिकार है कि ऐसे उत्सवसे हमारा कोई

१. शान्ति-समारोहोंके उद्घाटनके लिए यही तारीख निर्धारित की गई थी।

सरोकार नहीं होगा जिसका सम्बन्ध एक अपूर्ण शान्तिसे है। हमें यह अधिकार भी नहीं है कि जब आज पंजाब भयानक अत्याचारके पंजेमें है तो भी हम उत्सवमें जायें। जो बात है वह यह है कि पंजाबके सम्बन्धमें जिन यातनाओंकी हम शिकायत करते हैं वे तो हो ही चुकीं। उनके घावोंको अब सिर्फ भरा जा सकता है। इस सम्बन्धमें अब हम केवल इतना ही चाहते हैं कि न्याय हो और इस उद्देश्यसे दो समितियाँ काम कर रही हैं। एक हंटर समिति है और दूसरी समिति मालवीयजीके नेतृत्वमें काम कर रही है। उनकी जाँचके परिणामोंकी प्रतीक्षा है। हमें अधिकार होगा कि उनकी जाँचपर टिप्पणी करें और कहें कि वे ठीक और न्यायसंगत हैं या नहीं, उनकी जाँचके विवरणकी हम प्रतीक्षा कर सकते हैं, किन्तु खिलाफतके प्रश्नपर हम प्रतीक्षा नहीं कर सकते। क्योंकि इस सम्बन्धमें किये गये निर्णय हमारे सामने हैं और अन्तिम समझौता होनेसे पहले हमें संसारके सामने अपनी भावनाएँ रख देनी चाहिए। हमें इस प्रश्नको तुरन्त हाथमें लेना चाहिए क्योंकि तीन महीने बीतनेसे पहले-पहले ही उसको अन्तिम रूपसे हल कर लिया जायेगा। इसलिए ये दो प्रश्न अलग-अलग हैं और आज हम मुख्यतः खिलाफतके प्रश्नपर विचार करनेके लिए इकट्ठे हुए हैं। सामान्य स्थितिके अनुसार पंजाबका प्रश्न हमारे इस सम्मेलनके दायरेसे बाहर है। इस प्रश्नपर अलगसे विचार करनेके लिए एक पृथक सम्मेलन बुलाया जा सकता है और यह निश्चय किया जा सकता है कि जबतक पंजाबका प्रश्न निश्चित रूपसे हल नहीं हो जाता तबतक शान्ति-उत्सवोंमें भाग लेनेका हमारा इरादा नहीं है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पंजाबके प्रश्नपर हमें यह कहनेका अधिकार नहीं है। किन्तु खिलाफतके प्रश्नपर हम ऐसा अवश्य कह सकते हैं। पंजाबका शान्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं, खासकर जब कि शिकायतोंको दूर करानेके लिए हमारे पास कई दूसरे साधन हैं। किन्तु जब शान्ति अपूर्ण है और उसके बारेमें कोई न्यायसंगत समझौता नहीं हुआ है तो हम उसमें साझीदार होनेसे इनकार कर सकते हैं और इस प्रकार अपनी असहमति प्रकट कर सकते हैं।

मैं अपना भाषण लगभग समाप्त कर चुका हूँ। हम यहाँ प्रसिद्ध वक्ताओंके भाषण सुननेके लिए जमा नहीं हुए हैं। हमें अक्सर भाई हसरत मोहानीके श्रेष्ठ भाषण सुननेको मिलते हैं। वे हमें हमारा कर्त्तव्य बताते हैं और अगर हम उनके हृदयमें झाँककर देखें तो वहाँ हमें हिन्दू और मुसलमानोंमें कोई अन्तर नहीं मिलेगा। वे चाहते हैं कि हम कोई व्यावहारिक सफलता प्राप्त करें और मेरी भी आपसे यही प्रार्थना है कि यह भवन छोड़ते समय आप उसे न भूलें। भगवान्‌पर भरोसा रखिए और प्रतिदिन सुबह प्रार्थना कीजिए। यदि खिलाफतका प्रश्न न्याय और नीतिपर आधारित है तो भगवान् न्याय करेगा और आपको भी चाहिए कि न्याय प्राप्त करनेके लिए जो बलिदान आवश्यक हैं उनके लिए तैयार रहें। यदि आप भगवान्‌से प्रार्थना करेंगे तो वह संसारके तमाम राजाओंको न्यायके पक्षमें कर लेगा और जब श्री लॉयड जॉर्ज समझ लेंगे कि टर्कीके साथ न्याय करनेका अर्थ भारतके ३० करोड़ हिन्दू और मुसलमानोंके साथ न्याय करना है तब वे भी झुकेंगे। कुछ प्राप्त करनेके लिए आपको सक्रिय होना है। स्वर्ग प्राप्त करनेके लिए आपको 'गीता', 'कुरान', 'बाइबिल' और 'जेन्द

अवेस्ता'को पढ़ना है। अगर आप सचमुच अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको सक्रिय होना पड़ेगा और फिर सब-कुछ ठीक होगा। आगे जो बात मैं कहने जा रहा हूँ यदि आप उसे ध्यानसे सुनेंगे और उसपर अमल करेंगे तो मैं बहुत कृतज्ञ होऊँगा। प्रश्न चाहे खिलाफतका हो या पंजाबका, याद रखिए कि जो ठीक मार्गपर होगा वह अपना अधिकार प्राप्त करेगा। आपको क्रोध नहीं करना चाहिए, अपशब्दोंका प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्रोधमें मनुष्य अपनेको गिरा देता है और अपना पक्ष ठीक होनेपर भी अपना अधिकार प्राप्त करनेमें सफल नहीं होता। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि अपने मानवीय कर्त्तव्योंको न भूलें और न धीरजको छोड़ें। याद रखिए कि केवल तलवार ही कत्ल नहीं करती शब्द भी कत्ल करते हैं। आपको न तो कथनीमें और न करनीमें ही हिंसा दिखानी चाहिए। आपको एक शब्द भी ऐसा नहीं कहना चाहिए जिसे आपने अच्छी तरह तोल और परख नहीं लिया। आप एक शब्दसे प्रेरणा दे सकते हैं और एक ही शब्दसे अपने देशके लक्ष्यको क्षति पहुँचा सकते हैं। अब मैं ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा कि वह हिन्दू और मुसलमानोंको ऐसे मार्गपर चलाये कि वे एक दूसरेकी सेवा करें। (जोरकी हर्ष-ध्वनि) और सब एक होकर अपने देशकी सेवामें और उसकी समृद्धिके लिए प्राण दे दें।[1] (देरतक करतल ध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ६-१२-१९१९

२११. पंजाबकी चिट्ठी – ४

लाहौर
नवम्बर २५, १९१९

श्री एन्ड्रयूजका भाषण

मैंने पिछले पत्रमें लिखा था कि श्री एन्ड्रयूजने लाहौरसे दक्षिण आफ्रिका रवाना होते समय जो भाषण दिया था और मेरा अपना भाषण, दोनों ही महत्त्वपूर्ण होनेके कारण, पाठकोंके सामने प्रस्तुत करूँगा। श्री एन्ड्रयूजके भाषणका सार निम्नलिखित है :[2]

> दिल्ली और पंजाबमें प्रगाढ़ मैत्रीके वातावरणमें काम करनेके बाद आपसे विदा लेना मेरे लिए बहुत कठिन प्रतीत हो रहा है। इसलिए मैं दो-चार शब्द

१. भाषणके अन्तमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया :

"खिलाफतके प्रश्नपर विचार करनेके लिए बुलाई गई मुसलमानों और गैर-मुसलमानोंकी यह सभा अपना यह मत व्यक्त करती है कि खिलाफतका प्रश्न, जो कि शान्ति-कार्यक्रमका एक अंग है और इस प्रकार एक राष्ट्रीय प्रश्न है, भारतके आठ करोड़ मुसलमानोंके हितोंको गम्भीर रूपसे प्रभावित करता है; उक्त प्रश्न अभीतक तय नहीं हुआ है अतः भारतीयोंके लिए आगामी समारोहोंमें भाग लेना सम्भव नहीं है। यह सभा भारतके महामहिम वाइसराय महोदयसे सादर अनुरोध करती है कि खिलाफतकी समस्याका सन्तोषजनक और सम्मानपूर्ण हल निकलनेतक वे शान्ति-समारोहको स्थगित कर दें।"

२. इस भाषणकी रिपोर्ट अंग्रेजीमें भी उपलब्ध है। देखिए **यंग इंडिया,** २६-११-१९१९। इस अनुवादमें प्रायः उसीका सहारा लिया गया है।

ही कहूँगा। बहुत ही जरूरी मामलोंको छोड़कर विवादास्पद मुद्दोंपर मैं चुप ही रहा हूँ; न तो अपने भाषणोंमें मैंने कुछ कहा और न समाचारपत्रोंमें ही कुछ लिखा। लेकिन चूँकि अब मैं शीघ्र ही दक्षिण आफ्रिका जा रहा हूँ, और वहाँसे वापस आनेमें मुझे कमसे-कम चार महीने लग जायेंगे, इसलिए मैंने जो-कुछ देखा और सुना है उसके बारेमें कुछ कहे बिना ही मेरा वहाँ चले जाना ठीक न होगा। मैं मुख्यतः मुख्य बातोंके सम्बन्धमें अपने विचार बिना किसी भूमिकाके, सीधे पेश कर देना चाहता हूँ। संक्षेपमें मेरी स्थिति यह है: जाँचके बाद मेरी यह दृढ़ धारणा हो गई है कि लोगोंके नाराज होनेका चाहे जितना बड़ा कारण क्यों न रहा हो फिर भी जिस कायरतापूर्ण तथा क्रूर ढंगसे अमृतसर तथा अन्य स्थानोंपर अंग्रेजोंकी हत्या की गई है वह हर प्रकारसे अक्षम्य है। यही बात गिरजाघरोंको जला डालनेके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। भारतीयोंसे प्रेम करनेवाली[1] और ईसामसीहकी सच्ची अनुगामिनी कुमारी शेरवुडपर जो घातक हमला हुआ वह तो मेरी नजरमें सबसे अधिक निन्द्य और कायरतापूर्ण कृत्य था। लेकिन जिस तरह किसी भी प्रकारका बचाव या बहाना पेश किये बिना मैं उपर्युक्त अपराधोंकी निन्दा कर रहा हूँ, ठीक उसी प्रकार बल्कि उससे कहीं अधिक तीव्र भावनाके साथ और पूर्णरूपसे मैं जलियाँ-वाला बागमें इरादतन किये गये कत्लेआमकी मलामत करता हूँ।

इंग्लैंडके इतिहासमें ग्लैंकोका[2] नरसंहार मेरे देशकी प्रतिष्ठाको जितना मलिन करता है अमृतसरमें हुए कत्लेआमसे भी हमारी प्रतिष्ठाको उतना ही बट्टा लगता है। मैं कोई सुनी-सुनाई बात नहीं कह रहा हूँ। मैंने प्रत्येक हकीकतकी, जितनी कि किसी व्यक्तिके लिए सम्भव है, पूरी सावधानीसे जाँच की है और मेरे खयालसे यह ऐसा कलंक है जो वर्णनसे परे है, अक्षम्य है और जिसके पक्षमें कुछ भी कहा जाना असम्भव है। और अब दो शब्द मार्शल लॉके अन्तर्गत हुई घटनाओंके सम्बन्धमें: जिन लोगोंको पेटके बल चलनेके लिए मजबूर किया गया था उनसे मैं मिला हूँ, जिन्हें अपमानित करनेके लिए नंगा किया गया था और जिन्हें धूलमें लोटना पड़ा था उनसे भी मिला हूँ तथा उनसे भी जिनपर चाबुकोंकी गहरी मार पड़ी थी। ईसाई धर्मग्रन्थोंमें मनुष्यको ईश्वरकी प्रतिमूर्ति कहा गया है। उसी पवित्र मानव-शरीरको ऐसे सैकड़ों कृत्योंका भाजन बनाया गया और भ्रष्ट किया गया है। जलियाँवाला बागके नरसहारके कारण मेरे देशपर जो कभी न मिटनेवाला दाग लगा है उससे फौज और पुलिसके पाशविक बलके द्वारा भारतीय मर्दानगीका इस प्रकार क्रूरतापूर्ण और जान-बूझकर किया गया अपहरण कम घृणित नहीं है। पंजाबके उपद्रवके दिनोंमें किये गये इन अंतिम क्रूरतापूर्ण कृत्योंके बारेमें एक अंग्रेजके नाते मुझे यही चन्द शब्द कहने हैं। अपने भारतीय सहयोगियोंके साथ जाँचका कार्य करते हुए मैं

१. अंग्रेजी पाठमें है "जिनसे प्रत्येक भारतीयको प्रेम था"।
२. विलियम तृतीयके राज्यकालमें घटित एक दुःखद हत्याकांड।

इस अत्याचारको कभी भूल नहीं सका, और यहाँ मैंने जो-कुछ भी मदद की है वह वास्तवमें प्रायश्चित्त तथा देशकी लाज बचानेके खयालसे की है।

लाहौरमें रहते हुए मैं नित्य प्रातःकाल सूर्योदयका दृश्य देखनेके लिए मॉण्टगुमरीके यूक्लिप्टसके वृक्षोंसे भरे हुए बगीचेमें जाता रहा हूँ। और वहाँ मैं एकान्तमें अपने दिनभरके कर्त्तव्योंके बारेमें निश्चय कर लिया करता था। इस प्रकार विचार करते हुए आज सवेरे मुझे अपने धर्मग्रंथमें लिखा यह वाक्य याद आया: "वह सज्जन और दुर्जन, दोनोंको सूर्यका प्रकाश प्रदान करता है। इसलिए हे मानव! ईश्वरकी भाँति तू भी पूर्णता प्राप्त कर।" ये शब्द मेरे प्रभु ईसामसीहने कहे थे। उन्होंने अपने अनुयायियोंको यह सिखाया था कि वैर मोल लेना या वैर करना नहीं, बल्कि क्षमा करना ही जीवनका सर्वोच्च सिद्धान्त है। मानवका उद्देश्य प्रेम होना चाहिए, घृणा नहीं। मानव-जातिकी सहायता करने और उसे तारनेके लिए अवतार लेनेवाले बुद्धदेवने भी यही शब्द कहे थे। और आज लाहौरमें अपने निवासके अन्तिम दिन, मेरे मनमें भी यही बात उतरी।

जो घाव हो चुके हैं उनका जहर पूरी तरह साफ करनेके लिए हमें गहराईतक पहुँचकर उनकी जाँच करनी होगी। लेकिन शल्य-क्रियामें अन्तिम कार्य घाव भरनेका, उसपर मरहम-पट्टी करनेका होता है न कि उनको कुरेदनेका।

आज जब आप इन कुकृत्योंकी छानबीन कर रहे हैं और वे आपके सामने आ रहे हैं तब मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप वैर-भावका पोषण न करें, क्षमा-भावका सिंचन करें, द्वेष और घृणाके अँधेरेमें न रुके रहें, प्रेमके दिव्य प्रकाशमें निकल आयें।

मेरे शब्द

यह था श्री एन्ड्रयूजका भाषण। उनके बोलनेके पहले मैं अपना भाषण दे चुका था, क्योंकि मुझे तो उनके प्रति धन्यवादका प्रस्ताव प्रस्तुत करना था। उनका भाषण मैंने पहले पढ़ा नहीं था। फिर भी चूँकि मेरे शब्दोंमें उनके भाषणकी प्रस्तावना अथवा व्याख्या मिल जाती है और चूँकि दोनों भाषण जनताके सामने एक महत्त्वपूर्ण सत्यको उद्घाटित करनेकी दृष्टिसे ही दिये गये थे इस कारण मैं अपना भाषण यहाँ पुनः दे रहा हूँ। मेरे भाषणका सार यह है:

"मेरे लिए श्री एन्ड्रयूज भाईके समान हैं। उनके विषयमें कुछ भी कहना मुझे कठिन प्रतीत हो रहा है। हमारे बीचका पवित्र सम्बन्ध मुझे कुछ कहनेसे रोकता है। फिर भी मैं इतना तो कह सकता हूँ कि श्री एन्ड्रयूज एक पक्के अंग्रेज हैं लेकिन उन्होंने अपना जीवन भारतको अर्पित कर रखा है। वे अपने कृत्योंसे हमसे यह कहते जान पड़ते हैं: 'यदि आपको यह लगे कि मेरे देशवासी आप लोगोंपर जुल्म करते हैं तो आप उनके बारेमें कटुताका भाव अपने दिलमें न लाइये, मेरी ओर निहारिये।' यदि हमारे मनमें श्री एन्ड्रयूजके प्रति आदरकी भावना हो तो हमें उनके प्रेमका अनुकरण करना चाहिए। हमारा प्रेम अन्धा न होना चाहिए बल्कि वैसा हो जैसा

प्रह्लादने अपने पिताके प्रति रखा था। श्री एन्ड्रचूजका जीवन हमें सिखाता है कि अत्याचार और अन्यायका विरोध करना हमारा कर्त्तव्य है, लेकिन हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि हम अत्याचारीके प्रति द्वेष या वैरका भाव न रखें। सरकारने हमें विषम स्थितिमें डाल दिया है। उसने कैदियोंको अस्थायी रूपसे छोड़नेतक से इनकार कर दिया है। हम लॉर्ड हंटरकी समितिके सम्मुख गवाहियाँ पेश करना चाहते थे, लेकिन सरकारने हमारे लिए वैसा कर सकना अशक्य कर दिया। सरकार द्वारा उठाये गये इस अविवेकपूर्ण कदमके जवाबमें हमें क्रोध नहीं करना चाहिए। श्री एन्ड्रचूजने भारतके हितमें इतना कार्य किया है जितना अनेक भारतीयोंने न किया होगा। उन्होंने अपने देश-भाइयोंके बारेमें बोलनेमें कुछ कसर नहीं रखी है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें अंग्रेजोंके प्रति कम प्रेम है। उसी तरह हम भी अंग्रेजों अथवा सरकारके प्रति द्वेष-भाव रखे बिना न्याय और अपने आत्मसम्मानके लिए लड़ सकते हैं।

हमारा कर्त्तव्य

"श्री एन्ड्रचूजने तो भारतके लिए अपनेको उत्सर्ग ही कर दिया है। वे सामान्य कोटिके अंग्रेज नहीं है। वे विद्वान् हैं, कुलीन परिवारमें उत्पन्न हुए हैं, कवि एवं धर्मशास्त्रके ज्ञाता हैं। अगर वे चाहते तो एक उच्चाधिकारी होते, अगर उन्होंने चाहा होता तो किसी बड़े कालेजके प्रधानाध्यापक बन सकते थे या अगर उनकी अभिलाषा होती तो वे एक बड़े पादरी हो सकते थे। लेकिन उन्होंने धनकी आकांक्षा नहीं की, उच्च पदकी परवाह भी नहीं की और आज अपरिग्रही संन्यासीकी तरह भारतका भ्रमण किया करते हैं। ऐसे अंग्रेजके प्रति हमारा कर्त्तव्य क्या है? जबतक अंग्रेज जातिमें एक भी एन्ड्रचूज है तबतक हम उनकी खातिर ही सही अंग्रेजोंके प्रति द्वेष नहीं रख सकते। यह बात तो स्पष्ट है कि यदि हम अंग्रेजोंसे घृणा करें तो श्री एन्ड्रचूजके प्रति हमारा शुद्ध प्रेम नहीं हो सकता और हमें उनकी सेवाको स्वीकार करनेका भी अधिकार नहीं रह जाता। अब सवाल यह है कि जब जलियाँवाला बाग-जैसा कत्लेआम हो, अंग्रेज सिपाही हमें गालियाँ दें, ठोकरें मारें, रेलगाड़ियोंमें अपने साथ बैठने न दें, अंग्रेज अधिकारी सब अधिकारोंको स्वयं ही भोगना चाहें, अंग्रेज व्यापारी हिन्दुस्तानके मुख्य व्यापारको अपने ही हाथोंमें रखनेके इच्छुक हों तो हमें उनपर क्रोध आये बिना कैसे रह सकता है? हमारे दिलोंमें उनके प्रति प्रेमभाव कैसे रह सकता है? यह कठिनाई तो स्पष्ट है। जिस ओर दृष्टिपात करें वहीं द्वेष, क्रोध, तिरस्कार और झूठ नजर आता है। जब भारतीय लोग आपसमें एक दूसरेसे प्रेमभाव नहीं बनाये रख सकते तो हम उनसे अंग्रेजोंके प्रति प्रेम बरतनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? इन शंकाओंके मूलमें नास्तिकता है। बुद्धिके द्वारा ईश्वरके अस्तित्वको स्वीकार करने भरसे कोई व्यक्ति आस्तिक नहीं बन जाता। ईश्वरके प्रति श्रद्धा तो हो लेकिन लोगोंके प्रति प्रेम न हो, ये परस्पर विरोधी बातें हैं। आस्तिकता अर्थात् सत्य और प्रेम इत्यादि गुणोंका होना, यदि ये गुण हममें पूरी तरहसे पुष्पित और पल्लवित हो जायें तो समझिये कि हम स्वयं ही ईश्वर-रूप हो गये।

"इस सत्यको स्वीकार करके हमें उसकी दिशामें अग्रसर होना चाहिए। श्री एन्ड्रचूजके जीवनसे यही शिक्षा मिलती है, उनका प्रायश्चित्त भी इसी निमित्त है और उनकी गूढ तपस्याका भी यही अभिप्राय है। मैंने उन्हें लोगोंके घरोंमें घंटों चुपचाप बैठे देखा है। हमने उनकी अवगणना भी की है तो भी उन्होंने कभी क्रोध प्रदर्शित नहीं किया। मैंने उन्हें हमारे घरोंमें जो-कुछ मिला उसे सन्तोषके साथ खाते हुए देखा है। मैंने उन्हें स्वर्गीय श्री गोखले द्वारा क्षणिक सूचना देनेपर दक्षिण आफ्रिकाके[1] लिए रवाना होते हुए देखा है। यह उनकी मौन और सच्ची तपस्या है। दक्षिण आफ्रिका तथा अन्य देशोंमें उनके द्वारा हमारे लिए किया गया कार्य ऐसी तपश्चर्याका है जिसे हम स्पष्ट देख सकते हैं और इसलिए उसे तो हम जानते हैं। लेकिन जो तपश्चर्या वे अदृश्य रूपमें करते हैं वह इसकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान है।

"लेकिन श्री एन्ड्रचूजके प्रति सम्मान-भाव होनेके कारण ही हमें अंग्रेजोंके प्रति अपनी तिरस्कार-भावनाका त्याग कर देना चाहिए — ऐसा नहीं है। यदि हम ऐसा करते हैं तो उससे हमारी कार्यसिद्धि भी शीघ्र होनेकी पूरी सम्भावना है। क्योंकि हम यदि उनके समान क्रोध किये बिना, धीरजसे, सावधानीके साथ सत्यका पालन करते हुए निरन्तर अपना कार्य करते रहें तो अंग्रेजोंको हमपर अपनी दुर्भावपूर्ण मनोवृत्तियोंका प्रयोग करनेका कोई कारण ही न रह जायगा और जैसे वे अकेले होते हुए भी अनेक व्यक्तियोंका काम कर सकते हैं वैसे ही एक भारतीय भी उनके रास्तेपर चलकर अनेक व्यक्तियोंका काम कर सकेगा और भारतकी प्रगतिको तीव्रतर बना सकेगा।

गुजराँवाला

पिछले सप्ताह में गुजराँवाला गया था। यह तीस हजार लोगोंकी आबादीवाला एक छोटा कस्बा है। वहाँ भी मैंने अमृतसरके समान ही प्रेमका अनुभव किया। वहाँ मुझे गवाहियोंकी जाँच करनी थी, इसी कारण श्री पुरुषोत्तमदास टंडन[2] तथा डॉक्टर परसरामको साथ ले गया था। हम लोग दीवान मंगलसेनके यहाँ, जो इस समय जेलमें हैं, ठहरे थे। इससे मुझे उनकी धर्मपत्नीके दर्शनका लाभ मिला और उनके आतिथ्य-सत्कारको पाकर उनका ऋणी बना। लाहौरमें मैं श्रीमती सरलादेवीके यहाँ ठहरा हुआ हूँ और उनकी अनन्य प्रेम-सरितामें अवगाहन करता रहता हूँ। सरलादेवीसे मैं १९०१में मिला था, वे प्रख्यात ठाकुर परिवारकी हैं। उनकी विद्वत्ता और सरलताका प्रमाण मुझे अनेक रूपोंमें मिला करता है। अमृतसरमें मैं डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपालकी धर्मपत्नियोंसे भी मिला था — ये सब बहनें अपने दुःखोंको बड़े धीरजके साथ सहन कर रही हैं।

गुजराँवालामें एक स्त्रियोंकी और एक पुरुषोंकी दो बड़ी-बड़ी सभाएँ हुई थीं। मैंने स्त्रियोंको चरखेके महत्त्वसे अवगत कराया और उन्होंने सूत कातनेका वचन दिया।

१. दिसम्बर १९१३ में।

२. इलाहाबादके प्रसिद्ध वकील; प्रख्यात हिन्दी-प्रेमी और देशभक्त।

गुजराँवाला रणजीतसिंहकी जन्मभूमि है। जिसमें वे जन्मे और पले उस मकानको भी मैंने देखा। इस स्थानको लोगोंने बहुत नुकसान पहुँचाया है, मैंने इसकी ओर उनका ध्यान भी आकर्षित किया। मेरा अनुभव यह है कि किसी भी स्थानपर मुझे लोगोंको उनकी गलतियोंकी प्रतीति करानेमें कोई परेशानी नहीं उठानी पड़ी। हमसे भूल हुई है — यह सब स्वीकार करते हैं। गुजराँवालामें अधिकारियोंने प्रतिशोध लेने तथा क्रूरता बरतनेमें कोई कमी नहीं छोड़ी। उसका वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-११-१९१९

२१२. भाषण : कसूरमें

[नवम्बर २६, १९१९]

उस दुर्भाग्यपूर्ण घटनाका[1] जिक्र करनेके बाद श्री गांधीने बताया कि कांग्रेस उप-समितिने हंटर कमेटीको भविष्यमें सहयोग न देनेका निश्चय क्यों किया है; इसके बाद जिन लोगोंने उप-समितिके सामने अभी बयान नहीं दिये थे, श्री गांधीने उन्हें निमन्त्रण दिया कि वे अब अपने बयान दें, उन्होंने भीड़ द्वाराकी गई ज्यादतियोंकी भी भर्त्सना की और कहा कि भारतकी मुक्ति धैर्य और शान्तिसे यातना सहते हुए बुराईका प्रतिरोध करके ही हो सकती है। उन्होंने कहा कि सब प्रकारकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए सत्य और निर्भयता आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१२-१९१९

२१३. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

लाहौर

मार्गशीर्ष सुदी ५ [नवम्बर २७, १९१९][2]

भाईश्री वालजी,

इसमें शक नहीं कि आपके ऊपर दुःखका पहाड़ टूट पड़ा है — आपको क्या आश्वासन दूँ? आपका ज्ञान आपकी मदद करे — करेगा ही — अपने भाईके उन सब

१. खिलाफतके नोटिस लगानेके कारण कसूरके सब डिविजनल ऑफिसर श्री मार्सडनने दो भारतीयों-की पिटाई की थी। मार्सडनको बादमें मालूम हुआ कि नोटिस आपत्तिजनक नहीं थे। उसने माफी माँगी और आहतोंमें से एकको १०) हर्जानेके रूपमें दिये। गांधीजीने घटनाके सम्बन्धमें मार्सडनसे बातचीत की और सभामें बताया कि मार्सडनने अपनी गलतीके लिए "समुचित रूपसे" क्षमा माँगी है।

२. श्री वालजीके बड़े भाई सुन्दरजी गोविन्दजी देसाईका ८ और २२ नवम्बर, १९१९ के बीच देहावसान हो गया था, यह पत्र उसके तुरन्त बाद लिखा गया था।

गुणोंको जिनका आप बखान करते हैं, यदि वे गुण आपमें नहीं हैं तो उन्हें अपने जीवनमें उतारें और इस तरह अपने भाईको अपनेमें सदा जीवित रखें। लेकिन मैं आपको क्या सीख दूँ? अब क्या करनेका विचार है? अहमदाबादमें ही रहेंगे अथवा आजीविकाके अन्य साधनकी तलाश करेंगे? आप यदि बच्चोंमें से किसीको राष्ट्रीय शालामें भेजना चाहते हों तो भेज सकते हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१६५) की फोटो-नकलसे।

२१४. पंजाबकी चिट्ठी – ५

[दिसम्बर १, १९१९ के लगभग][1]

खिलाफतकी सभा

गुजराँवालासे हम सीधे दिल्ली गये। २३ नवम्बरको दिल्लीमें केवल मुसलमानोंकी और २४ तारीखको एक सार्वजनिक सभा हुई थी जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों उपस्थित थे। २३ तारीखकी सभा खानगी थी और उसमें मुसलमानोंके अलावा दूसरे लोग थोड़े ही थे। मुझे विशेष रूपसे आमन्त्रित किया गया था, इस कारण मैं उसमें उपस्थित था। माननीय मौलवी फजलुल हक इस सभाके अध्यक्ष थे। इस बातकी जान-कारी सब लोगोंको होगी कि ये महोदय पंजाबके कार्यके लिए भी आयुक्त नियुक्त किये गये हैं। सभामें बहुतसे प्रस्ताव पास किये जानेवाले थे। इन प्रस्तावोंको निश्चित करनेके लिए विषय [निर्धारिणी] समिति बनाई गई। इस समितिकी बैठक ४ बजेसे रातके साढ़े नौ बजे तक हुई। इसमें खूब बहस होती रही। प्रस्तावोंमें से एकमें हिन्दुओंके प्रति आभार प्रकट किया गया था; यह सर्वसम्मतिसे पास कर दिया गया। दूसरा प्रस्ताव सुलहके उपलक्षमें मनाये जानेवाले उत्सवोंमें भाग न लेनेके सम्बन्धमें था, वह भी स्वीकार कर लिया गया। तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव बहिष्कार करनेके बारेमें था। इसपर खूब बहस हुई अनेक व्यक्तियोंने तीखे भाषण दिये और बहिष्कारके सम्बन्धमें इस आशयका प्रस्ताव पेश किये जानेपर यह चर्चा भी हुई कि यूरोपके अन्य देशोंका माल भी न लिया जाये — लेकिन यह बात तो किसीने भी स्वीकार नहीं की। इस विषयमें मेरी राय पूछी गई। मैंने जो-कुछ कहा उसे सब लोगोंने बहुत ध्यानपूर्वक और नम्रताके साथ सुना और अनेक सदस्योंने अपनी स्वीकृति दी। मैंने बताया कि बहिष्कार विष है और वैरका भाव है। उससे काम बननेके बजाय बिगड़ेगा; यह प्रस्ताव बहुमतसे स्वीकार कर लिया गया।

१. गांधीजीने पत्रमें उल्लिखित कसूर आदि स्थानोंकी २६ नवम्बर, १९१९ को यात्रा की थी। सम्भवतः यह पत्र उन्होंने आनेवाले सप्ताहके सोमवारको जो इस तारीखको पड़ा था लिखा था।

मैंने सुझाव दिया कि यदि उनमें ताकत हो तो बहिष्कारकी सलाह देनेके स्थान-पर वे सरकारके साथ सहयोग न करनेका प्रस्ताव पास करें। इस प्रकारके प्रस्ताव पास करनेका हमें हक है और यह हमारा कर्त्तव्य भी हो सकता है। यह प्रस्ताव भी सबको अच्छा लगा और सर्वसम्मतिसे पास हुआ।

अन्ततः रातको एक विशाल [आम] सभा हुई। उसमें विषय-समिति द्वारा निश्चित किये गये प्रस्तावोंको पास किया गया और बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्तावपर गरमागरम बहस हुई। सामान्यतः विषय-समिति द्वारा निश्चित किये गये प्रस्तावोंपर आम सभामें चर्चा नहीं की जाती लेकिन इस अवसरपर वाद-विवाद करनेकी पूरी छूट दे दी गई थी। माननीय श्री रजाअली, श्री अब्दुल्ला हारून, श्री सैयद हुसैन और मैं बहिष्कार-के विरोधमें बोले। लोगोंपर प्रभाव अच्छा पड़ा। भाषणोंको सबने शान्तिपूर्वक सुना। और अन्तमें प्रस्ताव बहुमतसे स्वीकृत हो गया। यह सभा रातके तीन बजेतक चली। इसमें हाजी-उल-मुल्क हकीम अजमलखाँ, डॉक्टर अन्सारी, मौलाना अब्दुल बारी साहब आदि अनेक प्रख्यात मुसलमान उपस्थित थे।

हिन्दू-मुसलमानोंकी सभा

दूसरे दिन हिन्दू-मुसलमानोंकी सम्मिलित सभा हुई जिसमें संवाददाताओंको आमन्त्रित किया गया था और 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के श्री शैपर्ड भी उपस्थित थे। इस सभामें मुझे अध्यक्षपद दिया गया था; सभा संगम थियेटरमें हुई थी; सभा-भवन खचाखच भर गया था उसमें उपस्थित होनेके लिए टिकट बेचे गये थे। इसमें संन्यासी स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी, सहारनपुरके श्री बोमनजी, सिन्धके डॉक्टर चोइथराम[1], प्रयागके श्री कृष्णकान्त मालवीय आदि उपस्थित थे। आदरणीय पंडित मालवीयजी, पंडित मोती-लाल नेहरू, श्री चित्तरंजन दास आदिकी ओरसे तार प्राप्त हुए थे जिनमें उपस्थित न हो सकनेके लिए खेद प्रकट किया गया था और सभाकी सफलताके लिए मंगलकामना की गई थी।

सम्मेलनके मंत्री श्री आसफ अलीने जो पर्चे प्रकाशित किये थे उनमें उन्होंने सूचित किया था कि इस सभामें गोरक्षा तथा पंजाबके प्रश्नपर भी विचार किया जायेगा। इन दोनों बातोंके सम्बन्धमें अनेक लोगोंको आशा थी कि इन विषयों-पर बहस जरूर होगी। दोनों विषयोंपर मेरे विचार पूर्व निश्चित थे। यदि गोरक्षाके सवालपर चर्चा करने दूँ तो उद्देश्यको हानि पहुँचेगी। यदि पंजाबको चर्चाका विषय बनने दूँ तो पंजाबको और उसी प्रकार खिलाफतके प्रश्नको ठेस पहुँचेगी। मुझसे यह होगा नहीं। इस कारण मेरी स्थिति विषम हो गयी थी। मुझपर ऐसा उत्तरदायित्व आ पड़ा था जिससे मैं अपने परिचितोंको दुःख पहुँचाये बिना नहीं रह सकता था। इसलिए मुझे अपने भाषणमें इन सब बातोंका उल्लेख करना पड़ा। मैं [यहाँ] उस भाषणका सार देता हूँ ताकि पाठक मेरा मतलब समझ सकें। मेरा जो भाषण अंग्रेजीमें प्रकाशित किया गया है उसे भी मैंने ही तैयार किया था लेकिन

१. डॉक्टर चोइथराम गिडवानी।

उसमें मैंने सब दलीलें पेश नहीं की थीं। मेरे तथा अन्य सब लोगोंके भाषण सिर्फ उर्दूमें थे, और मुझे यह दिखाई पड़ रहा था कि श्रोतागण सब-कुछ समझ रहे हैं।

मेरा भाषण

"आपने कल समस्त हिन्दू जाति और विशेषतया मेरे प्रति धन्यवादका जो प्रस्ताव पास किया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मुझे यह भी कहना चाहिए कि खिलाफतके सम्बन्धमें हिन्दुओं और अन्य लोगोंने जो मदद की है वह सिर्फ कर्त्तव्य समझकर की है और फर्ज तो कर्जके सदृश है, उसका बदला कैसा? भाई आसफ अलीने इस सभाके सम्बन्धमें जो पत्र लिखे थे उसमें उन्होंने गोरक्षाके प्रश्नकी ओर इशारा किया था। मेरी नम्र राय यह है कि इस स्थानपर गोरक्षाके सवालको हिन्दू उठा ही नहीं सकते। यदि हम एक राष्ट्र हैं, यदि हम आपसमें भाई-भाई होनेका दावा करते हैं तो हिन्दू, पारसी, ईसाई, यहूदी जो भी भारतमें जन्मे हैं, उनका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे अपने देशभाई मुसलमानोंकी, उनके दुःखमें, मदद करें। जो सहायता बदला पानेकी इच्छासे की जाती है वह भाड़ेकी सहायता है। इस तरहकी सहायता भाईचारेकी निशानी नहीं मानी जा सकती। जिस तरह मिलावट किये गये सीमेन्टसे चिनाई नहीं की जा सकती उसी तरह भाड़ेकी मददसे भाई-बन्दी नहीं पनपती। हिन्दुओंको अपनी उच्च परम्पराके अनुसार मुसलमान भाइयोंकी मदद करनी चाहिए। मुसलमानोंकी परंपरा यदि उन्हें हिन्दुओंके दुःख दूर करनेको प्रेरित करती है तो हम खिलाफतमें मदद करें अथवा न करें, तो भी वे गो-हत्या बन्द कर सकते हैं, इसीलिए यद्यपि मैं गायके प्रति पूज्य भाव रखनेवाले किसी भी हिन्दूसे कम नहीं हूँ तो भी मैं शर्तके साथ खिलाफत सम्बन्धी प्रश्नपर हरगिज मदद करना नहीं चाहता। मैं तो मानता हूँ कि बिना किसी शर्तके मदद करनेमें ही गायकी अधिक रक्षा है। जब हम शर्तोंका विचार किये बिना ही एक-दूसरेकी सेवा किया करेंगे तभी और उसी गतिसे हममें प्रेम और भ्रातृ-भावना बढ़ेगी और गो-रक्षाका मार्ग सरल होगा। इसलिए मुझे उम्मीद है कि सब हिन्दू किसी प्रकारकी बिना शर्तके खिलाफतके प्रश्नको अपना ही प्रश्न मानेंगे।

"हमारी दूसरी समस्या पंजाबका प्रश्न है। कुछ सज्जनोंने यह माँग की है कि पंजाबके दुःखके कारण भी हमें शांति सम्बन्धी समारोहोंमें भाग नहीं लेना चाहिए। इस बारेमें भी मेरा मतभेद है। पंजाबके लोगोंके दुःखोंकी मैंने बहुत जाँच की है, उनसे जितना मैं दुःखी हुआ हूँ संभव है अन्य लोग भी उतने ही दुःखी हुए हों, लेकिन कोई मुझसे अधिक दुःखी हो सकता है, इस बातको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसा होनेपर भी मैं यह मानता हूँ कि हम खिलाफतके प्रश्नके साथ इस प्रश्नको नहीं मिला सकते। मेरा तो विश्वास है कि पंजाबको चाहे कैसे ही कष्ट क्यों न सहन करने पड़े हों तो भी हम स्थानीय कारणोंको लेकर पूरे साम्राज्यसे सम्बन्धित समारोहोंसे अलग नहीं रह सकते। पंजाबपर जो दुःख पड़ा उसको प्रकट करनेके लिए हमारे पास दूसरे साधन भी हैं। पंजाबके मामलेमें हमें न्याय नहीं मिला ऐसा कहकर भी हम शान्ति-समारोहोंमें भाग लेनेसे नहीं रुक सकते, क्योंकि हमें न्याय मिलनेकी आशा है। उसके लिए हंटर समिति बैठी है, उसके लिए हमारे आयुक्त महोदय काम कर रहे हैं। समझौतेसे ही

उत्पन्न हुए प्रश्नपर यदि हमें असन्तोष अथवा सन्देह हो तभी हम उन समारोहोंमें भाग लेनेसे पीछे हट सकते हैं। केवल खिलाफत ही एक ऐसा मामला है। वह यद्यपि समझौतेका एक भाग है; फिर भी एक तो हमें उसकी कोई सूचना नहीं है और दूसरे हमें पूरा अंदेशा है कि इस प्रश्नका निपटारा हमारे लिए सन्तोषप्रद रूपमें नहीं किया जायेगा। इसलिए हमें सिर्फ खिलाफतके मसलेको लेकर ही इन समारोहोंका त्याग करना चाहिए। यदि हम पंजाबके प्रश्नको इसमें मिलाते हैं तो हमपर अविचारी होने और असन्तुलित विवेक बुद्धि रखनेका आरोप लगाया जायेगा तथा इससे खिलाफत और पंजाबके प्रश्नोंको धक्का पहुँचेगा। खिलाफतका प्रश्न अत्यन्त गम्भीर है और हमें इसके लिए तुरन्त ही कोई उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिए। इसपर थोड़े ही समयमें निर्णय होनेवाला है, इसलिए हम इस समय उसके साथ अन्य प्रश्नोंको जोड़कर उसे नुकसान पहुँचानेका खतरा नहीं उठा सकते। अतएव मैं आशा करूँगा कि इस अवसरपर हम पंजाबके प्रश्नको नहीं उठायेंगे।

"अब सवाल यह है कि खिलाफतके प्रश्नपर मुसलमान भाई न्यायपर हैं अथवा नहीं। यदि उनकी माँग न्यायोचित न हो तो हम हिन्दू अथवा अन्य लोग उनकी मदद नहीं करेंगे। वे मददकी ख्वाहिश भी नहीं कर सकते और मदद मिल भी गई तो सफलता नहीं मिलेगी। लेकिन मुसलमान भाइयोंकी माँगके औचित्यपूर्ण होनेके साक्षी रूप तो इंग्लैंडके प्रधानमन्त्री स्वयं तथा भारतके कुछ भूतपूर्व वरिष्ठ अधिकारी भी हैं। इस कारण हमें शांति सम्बन्धी समारोहोंमें भाग न लेनेका अधिकार है। जबतक टर्कीके भविष्यके सम्बन्धमें कुछ नहीं बताया जाता तबतक मुसलमानोंके लिए, और इसी कारण हम सबके लिए, सुलहका कोई अर्थ ही नहीं है। यदि एल्सास लॉरेनके सम्बन्धमें कोई निर्णय न हो पाया तो शान्ति-उत्सवोंमें फ्रांसके भाग न लेनेपर आश्चर्यकी कोई बात न होगी। मुसलमानोंके लिए खिलाफतका प्रश्न ठीक उसी प्रकारका है। मैं आशा करता हूँ कि वाइसराय महोदय स्वयं ही, टर्कीके बारेमें फैसला होनेके समयतक, शान्ति-समारोहको स्थगित रखेंगे।

"कल रात मुसलमान भाइयोंने एक और महत्त्वपूर्ण निश्चय किया है। यदि शान्तिकी शर्तें, भगवान् न करे, उनके विरुद्ध गईं तो वे सरकारको सहायता देना बन्द कर देंगे। मुझे लगता है कि यह प्रजाका हक है। सरकारी खिताब लेने या उसकी नौकरी करनेके लिए लोग बँधे हुए नहीं हैं। यह खुशीका सौदा है। यह बात स्पष्ट है कि जिसके हाथसे अपना भला न हो उसकी मदद करनेके लिए हम बँधे हुए नहीं हैं। हम सरकारी नौकरी आजीविकाके लिए, और यदि हममें जनकल्याणकी भावना हो तो जनताके हितके लिए करते हैं। लेकिन यदि हमें खिलाफत-जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धार्मिक प्रश्नके सम्बन्धमें सरकारके हाथों नुकसान पहुँचता है तो ऐसी स्थितिमें हम उसकी सहायता कैसे कर सकते हैं? इसलिए यदि खिलाफतका निर्णय हमारे विरुद्ध जाये तो सहायता न करनेका हमें हक है।

"लेकिन यदि सहायता न करनेकी बातसे हम ब्रिटिश मालके बहिष्कारपर आते हैं तो वह हाथीकी सवारी छोड़कर गधेकी सवारी करने जैसा है। सहायता न करना

हमारा हक है, और उससे हम बड़े परिणामोंकी प्राप्ति भी कर सकते हैं। परन्तु बहिष्कार करनेका हक हमें नहीं है और उसका परिणाम बुरा ही होगा। हक न होनेका कारण यह है कि वैसा करके हम ब्रिटिश जनताको सजा देनेका इरादा रखते हैं, और ऐसा इरादा त्याज्य होना चाहिए। हमारी फरियाद सरकारसे है। इसका परिणाम भी उल्टा होगा क्योंकि हम खिलाफत-जैसे प्रश्नका सन्तोषप्रद निर्णय समस्त संसारके जनमतको अपनी ओर करके ही प्राप्त कर सकते हैं, और बहिष्कारके कारण जनमत हमारे विरुद्ध हो जायेगा इस बातकी पूरी सम्भावना है। अतएव [हमारे लिए] जिस हदतक सहायता न देनेके व्रतका पालन करना उचित है उसी हदतक बहिष्कार भी त्याज्य है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजोंमें व्यापारकी बहुत बड़ी शक्ति होती है। वे लोग अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे अपना माल [हमारे देशमें] पहुँचा सकते हैं। जापानकी मार्फत माल पहुँचानेका ढंग अंग्रेजोंको खूब आता है। इसलिए बहिष्कार-का परिणाम अंग्रेजी मालको बन्द करके अपने देशमें दूसरे देशोंकी सत्ताको दाखिल होने देनेके समान होगा।

"बहिष्कार क्रोधकी निशानी है, सहायता न देना हमारी दृढ़ताका सूचक है। बहिष्कार हमारी दुर्बलताका परिचायक है, सहायता न देना हमारी शक्तिको प्रकट करता है। खिलाफत-जैसी महान् समस्याका समाधान हम अपनी निर्बलतासे नहीं वरन् अपनी शक्तिके द्वारा ही कर सकेंगे।

"इसलिए मैं जनतासे सादर निवेदन करता हूँ कि यदि हम चाहते हैं कि इस प्रश्नका परिणाम शुभ हो तो हमें धैर्य, दृढ़ता, सत्य, निर्भयता आदि गुणोंका पालन करना होगा। एक अच्छा कार्य उसके कर्ताकी अशक्ति, अज्ञान, मूर्खता, उतावलेपन और रोषके कारण बिगड़ जाया करता है; अपने हाथसे हम खूँरेजी न करें — इतना ही पर्याप्त नहीं है। हमने जबानसे भी खून होते हुए देखे तथा सुने हैं। इसलिए जिस तरह हमारे लिए हाथ-पैरोंको अपने वशमें रखनेकी आवश्यकता है उसी तरह हमें अपनी जबानको भी वशमें रखनेकी जरूरत है। हमारी लड़ाई सच्ची है और जहाँ सत्य है वहाँ विजय है। मुझे भरोसा है कि यदि हम इस विश्वासको लेकर डटे रहेंगे तो इस प्रश्नका अच्छा परिणाम अब भी निकल सकता है।"

सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव

मुझे लगा कि इस भाषणका बहुत अच्छा असर हुआ। सभामें अनेक बाधाएँ उत्पन्न होंगी, यह आशंका गलत निकली; विरोधमें एक भी शब्द कहे बिना प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हो गया। प्रस्तावका समर्थन सबने खड़े होकर सहर्ष किया। प्रस्ताव यह था कि खिलाफतका प्रश्न सुलहका एक अंग होने तथा उसके साथ हिन्दुस्तानकी एक चौथाई आबादी, अर्थात् मुसलमानोंका गहरा और घनिष्ठ सम्बन्ध होने, और यदि दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह सवाल जनताका होनेके कारण हिन्दुस्तान-भरकी जनता शान्ति-समारोहोंमें भाग लेनेमें असमर्थ है। इसलिए वह माननीय वाइसराय महोदयसे प्रार्थना करती है कि जबतक खिलाफतके प्रश्नका सन्तोषजनक हल नहीं निकल आता तबतक वे शान्ति-सम्बन्धी इन समारोहोंको मुल्तवी रखें।

एक पैसा ५०१ रुपए लाया

सभामें उपस्थित लोगोंमें भारी उत्साह देखनेमें आया। शान्ति-समारोहोंमें भाग न लेनेके अभिप्रायसे [जनताको] प्रशिक्षित करनेके लिए एक समिति नियुक्त की गयी। मैंने उसके खर्चके निमित्त धन इकट्ठा करनेका सुझाव दिया। उसके लिए मुझसे एक पैसा देनेके लिए कहा गया, मेरे पास तो वह भी न था। यह पैसा ख्वाजा साहब हसन निजामीने दिया। भाई सैयद हुसैनने उसे नीलामपर चढ़ाया और मियाँ छोटाणीने इसे ५०१ रुपएमें खरीद लिया। इसी सभामें लगभग दस मिनटके अन्दर दो हजार रुपये आ गये। इसमें वे रकमें शामिल नहीं हैं जिन्हें बादमें भेज देनेका वचन देते हुए लोगोंने नाम लिखाये थे। प्रस्तावपर हकीम अजमलखाँ, स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी, भाई कृष्णकान्त मालवीय, भाई बोमनजी आदि बोले थे। इन सबके भाषण शान्त किन्तु जोरदार थे।

मौलाना अब्दुल बारी साहब

इसके उपरान्त मौलाना अब्दुल बारी साहब अध्यक्षको धन्यवाद देनेके लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा :

> **महात्मा गांधीजी गोरक्षाके प्रश्नको आजकी कार्यवाहीमें सम्मिलित करनेके बारेमें जो-चाहें सो कहें, इसमें उनकी और हिन्दू भाइयोंकी शोभा है। लेकिन यदि मुसलमान हिन्दू भाइयोंकी मददको भूल जायें तो वे अपने परम्परागत सौजन्यको खो देंगे। मैं तो यह कहता हूँ कि खिलाफतके प्रश्नपर हमें उनकी मदद मिले चाहे न मिले तो भी हम और वे एक ही मुल्कके हैं, इसलिए हमारे लिए गो-वध बन्द करना उचित है। मैं एक मौलवीकी हैसियतसे कहता हूँ कि यदि हम अपनी मर्जीसे गो-वधका त्याग करते हैं तो उसमें हम अपने धर्मके विपरीत तनिक भी नहीं जाते। खिलाफतके प्रश्नपर हिन्दू भाइयोंने अपनी उदारताका जो परिचय दिया है उससे हम दोनोंके बीच भाईचारेकी जैसी वास्तविक भावना प्रस्फुटित हुई है वैसी किसी अन्य प्रश्नसे नहीं हुई है। मैं खुदासे दुआ माँगता हूँ कि दोनों कौमोंके बीच यह मुहब्बत हमेशा कायम रहे।**

सभामें उपस्थित लोगोंने इन शब्दोंका "आमीन" कहकर स्वागत किया। इसके उपरान्त बारी साहबने खिलाफतके प्रश्नपर अत्यन्त भावनापूर्ण भाषण दिया और उसका लोगोंपर गहरा असर पड़ा।

हिन्दुओंका कर्त्तव्य

इस तरह खिलाफतकी सभा समाप्त हुई लेकिन इससे सब-कुछ समाप्त नहीं हो गया, प्रत्युत हम सबकी जिम्मेदारी बढ़ गई है। लेकिन इस समय मैं हिन्दुओंको ही लक्ष्य करके कुछ शब्द लिखना चाहता हूँ। वे इस मामलेमें बहुत मदद कर सकते हैं और ऐसा करके मुसलमानोंके दिलोंको वे जितना समीप ला सकेंगे उतना किसी और साधनसे नहीं। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच एकता स्थापित होना — कोई छोटी-सी बात

नहीं है। आठ करोड़ लोग बाईस करोड़ लोगोंके प्रति सच्ची मैत्रीके भाव रखें, यह अत्यन्त वांछित स्थिति है। यह भी स्पष्ट है कि उनका एक-दूसरेसे दबकर रहना हितकर न होगा। इसलिए हमें स्वतन्त्रतापूर्वक और समानताके स्तरपर रहकर पारस्परिक प्रेमकी वृद्धि करनी है। ऐसे अवसर 'खिलाफत' ही प्रदान करता है। १३ से १६ दिसम्बर तक हमें तथा हमारे बालबच्चोंको आतिशबाजी अथवा रोशनीमें भाग नहीं लेना चाहिए, हमें अपने घरोंमें बैठे रहना चाहिए। यदि बड़े लोग इस दिन उपाधियाँ लेना अस्वीकार कर दें तो [उनका] यह कार्य बहुत सराहनीय माना जायेगा। मौलाना अब्दुल बारी साहबने यह स्पष्ट कर दिया है कि गो-रक्षाके निमित्त मुसलमानोंके साथ झगड़ा करने अथवा बहुत धन व्यय करनेकी अपेक्षा यह मार्ग कहीं सीधा और सुगम है।

कसूरकी यात्रा

दिल्ली पहुँचनेपर मुझे कसूरसे इस आशयका तार मिला कि वहाँके डिप्टी कलक्टरने एक मुसलमानको बहुत बुरी तरहसे मारा-पीटा है। उसका कारण यह था कि उसने उस अधिकारीके मकानकी दीवारपर खिलाफत सम्मेलनका एक नोटिस चिपका दिया था। नोटिस नितान्त निर्दोष था और उसे इस व्यक्तिने चिपकाया भी नहीं था। मुझे उस अधिकारीका यह कार्य बहुत ही अनुचित लगा। ब्रिटिश अधिकारी कानूनको अपने हाथमें ले लें, यह स्थिति मुझे असह्य जान पड़ी। इसलिए मैं डॉक्टर परसरामको, जो उस स्थानसे अच्छी तरह परिचित हैं, लेकर दिल्लीसे कसूर चला गया। वहाँ उस मुसलमान तथा एक अन्य मुसलमानकी, जिसपर भी मार पड़ी थी, गवाहियाँ लीं। इस बीच मुझे डिप्टी कलक्टर श्री मार्सडनकी चिट्ठी मिली जिसमें उन्होंने मुझे बातचीतके लिए बुलाया था। मैं उनसे मिला; बातचीत बहुत देरतक हुई। बातचीतके दौरान मुझे बताया गया कि उन्होंने उपर्युक्त मुसलमानसे क्षमा माँगी है और उसे दस रुपए दिये हैं। मैंने उनसे कहा कि उन्होंने निर्दोष व्यक्तिको बुरी तरह पीटा है इसलिए उन्हें सार्वजनिक रूपसे क्षमा-याचना करनी चाहिए; ब्रिटिश अधिकारियोंके हाथों जनतापर मार पड़े ऐसा नहीं होना चाहिए। इसपर उन्होंने मुझे इस बातकी अनुमति दी कि उनकी क्षमा-याचना सार्वजनिक रूपसे प्रकट कर दी जाये। वह नोटिस उन्होंने फिरसे उस दीवारपर चिपकवा ही दिया था। इस मुलाकातके बाद मुझे तो तुरन्त ही एक सार्वजनिक सभामें जाना था। वहाँ तीन-चार हजार व्यक्ति एक मैदानमें इकट्ठे हो गये थे। उसमें जितने पुरुष थे उतनी ही स्त्रियाँ थीं। मैंने मार्सडन महोदयकी स्पष्ट शब्दोंमें की गयी क्षमा-याचनाको सभामें आये हुए लोगोंके सामने प्रकट कर दिया; लोग बहुत प्रसन्न हुए। कसूर लाहौरसे पैंतीस मील दूर है, इसकी जनसंख्या २०,०००के लगभग है। वहाँ लोगोंने अप्रैल मासमें बहुत ही निन्दनीय कार्य किये थे। उनके बारेमें मैंने सभामें जिक्र किया और चूँकि स्त्रियोंसे मुझे फिर मुलाकात करनेका अवसर न मिल पायेगा इसलिए मैंने उनसे चरखा चलानेके सम्बन्धमें भी निवेदन किया।

वजीराबाद

वहाँसे हम लोग दूसरे दिन वजीराबाद गये। वहाँ मार्शल लॉके दिनोंमें क्या गुजरी थी उसके सम्बन्धमें जाँच करनी थी। वजीराबाद एक छोटा नगर है लेकिन जंकशन स्टेशन है। वहाँसे होकर मेन लाइनकी गाड़ियाँ भी जाती हैं। यह नगर लाहौर-से पचास मीलसे कुछ ज्यादा दूरीपर बसा हुआ है। वजीराबादमें लोग इतने आतंकित थे कि हमें कुछ स्थानोंमें ठहरने नहीं दिया गया और अन्तमें हमें एक गुरुद्वारेमें जगह मिल पाई। फिर भी लोगोंमें पहलेकी भाँति अदम्य उत्साह भरा हुआ था। लोग पूरा दिन 'दर्शनों' के लिए आते ही रहते थे। अब तो मैं 'दर्शन' से बुरी तरह ऊब उठा हूँ; एक ओर काम करूँ और दूसरी ओर दर्शन दूँ, यह सम्भव नहीं है। अन्तमें मुझे दरवाजे बन्द करके बैठना पड़ा। पूरा दिन लोगोंके कष्टोंकी रामकहानी सुननेमें निकल गया।

निजामाबादकी यात्रा

वजीराबादसे निजामाबाद पौन मील भी नहीं है। वहाँके लोगोंका और वजीरा-बादके लोगोंका अपराध एक जैसा ही माना गया है। निजामाबाद तंग गलीवाला एक छोटा-सा गाँव है। उसमें दो हजारकी बस्ती है। उसमें मुख्यतया मुसलमान बसे हुए हैं। मुसलमानोंमें अधिकांश लुहार हैं और हिन्दुस्तानमें अच्छेसे-अच्छे चाकू यहीं बनते हैं। मैंने दुकानोंको देखा। लगभग सभी औजार पुराने थे परन्तु माल एकदम चमक-दार और बढ़िया तैयार होता है। बहुत अच्छी किस्मकी लकड़ीवाली मूठें भी यहाँ तैयार की जाती हैं और बढ़ियासे-बढ़िया बन्दूकें हाथसे बनाई जाती हैं। मैंने एक दो-नली बन्दूक भी देखी, उसपर बहुत नफीस नक्काशी भी थी। कारीगरने मुझे बताया कि वैसी एक बन्दूक बनानेमें उसे एक महीना लगा था। उसकी कीमत उसने दो सौ रुपये बतायी। यह कारीगरी देखकर मुझे भारतीयोंके हुनरपर गर्व हुआ और भारतीयोंके स्वदेशीके प्रति उदासीन रहनेपर अत्यन्त दुःख हुआ। जब ऐसे हुनरका हम पूरा उपयोग नहीं करते तब हम भुखमरीके सिवा और किस बातकी आशा कर सकते हैं? निजामाबादकी कारीगरीकी सारे हिन्दुस्तानको खबर होनी चाहिए। मुझ जैसे स्वदेशीके उत्कृष्ट प्रेमीतक ने इस छोटेसे गाँवके विषयमें कुछ नहीं सुना था।

हमारी गन्दगी

लेकिन जैसी निजामाबादकी कारीगरी थी वैसी ही उसकी गन्दगी भी थी। उसमें एक ही गली है। उसकी गन्दगी देखकर मुझे वहाँ जो पन्द्रह मिनट व्यतीत करने पड़े वे मुझे सजाके समान जान पड़े। गलीके मध्यमें एक नाली थी जिसमें सारी गन्दगी बह रही थी। गलीमें कूड़ा-ही-कूड़ा नजर आता था।

इसी गलीसे होकर हम निजामाबादके एक सज्जनके घर गये। वहाँ साक्षियोंकी जाँच की। बादमें लोगोंकी ओरसे भाषणकी माँग की गई। मैंने वहाँकी गन्दगी और स्वदेशी-की बात कही। उन लोगोंके बारेमें जिनकी गलियाँ गन्दी और दुकानें साफ-सुथरी हों क्या सिद्ध होता है, यह प्रश्न मेरे मनमें उठा। मैं अपना घर तो साफ करूँ पर

कूड़ा-करकट गलीमें फेंक दिया करूँ; अपने घरका शौचालय स्वच्छ रखकर गलीको गन्दा करूँ — इससे तो यही प्रगट होता है कि मुझे अपने पड़ोसीकी भावनाओंकी कोई परवाह नहीं है, उसके प्रति मेरे मनमें न तो दया है और न प्रीति। तो फिर मैं जनताके साथ एक होनेका दावा कैसे कर सकता हूँ? जिनकी गलियाँ साफ नहीं भला उनका दिल साफ रह सकता है? मुझे नफीस कारीगरी आती है लेकिन अगर मेरी कारीगरीका प्रभाव मेरी गलीपर नहीं होता तो यही कहा जायेगा कि मेरे स्वार्थीपनकी कोई सीमा नहीं है। निजामाबादकी गली इतनी सँकरी और छोटी है कि उसे हर रोज पन्द्रह मिनटमें साफ किया जा सकता है। यदि इतने मेहनती लोग इतनी भी व्यवस्था नहीं कर सकते तो यह माना जायेगा कि वे अपने छोटे-छोटे मामलोंको सुलझानेके योग्य भी नहीं है, फिर बड़े मामलोंको कैसे सुलझायेंगे? स्वराज्य तो हमारी गलियोंसे शुरू होना चाहिए। इसलिए मैंने यह कहकर अपने भाषणको समाप्त किया कि मैं जब फिर निजामाबाद आऊँ तो आशा करता हूँ कि मुझे उसकी गली, उसकी दुकानें और उनमें रखा हुआ माल साफ हालतमें मिलेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७–१२–१९१९

२१५. दुर्गादास अडवानी

दुर्गादास अडवानी उन उत्तम कार्यकर्त्ताओंमें से हैं जिनसे मुझे आजतक मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। १९१५में भारतमें लौटकर आनेके तुरन्त बाद मेरा उनके साथ प्रथम परिचय पत्र-व्यवहार[1] द्वारा हुआ था। जिस अवसरपर उनसे पत्र-व्यवहार हुआ था उसीसे मुझे उनके चरित्रका परिचय मिल गया था। सिन्ध प्रदेशमें वे बड़े ही उत्साही कार्यकर्त्ता रहे हैं। उन्होंने वहाँ कई वर्षतक अनवरत परिश्रम और ईमानदारीसे कार्य किया है। अभी हालमें ही उन्हें एक वर्षकी कड़ी सजा हुई है। अपील-अदालतके फैसलेपर मुझसे मत माँगा गया है। मेरी समझमें फैसलेमें कोई दम नहीं है। अदालतने 'न्यू कॉल' नामक परचेको राजद्रोहपूर्ण माननेमें भूल की है और उसने अडवानीको दोषी ठहरानेके लिए गवाहियोंके विश्लेषणमें काफी खींचतान की है। पर सम्भव है कि ऐसी राय देनेमें मैं स्वयं ही दुर्गादासके प्रति कुछ पक्षपात कर रहा होऊँ। जहाँतक मेरा विश्वास है मैं दृढ़तासे कह सकता हूँ कि वे जेलसे बचनेके लिए झूठ बोलनेवालोंमें से नहीं हैं। पर सम्भव है कि गवाहियोंसे वही अर्थ निकलता हो जो अपील-अदालतने लगाया है।

सच्चे सत्याग्रही और घनिष्ठ मित्रके नाते मैं इस दण्डाज्ञापर न तो दुर्गादासके लिए खेद प्रकट कर सकता हूँ और न उनके परिवारके प्रति समवेदना ही प्रकट कर सकता हूँ। दुर्गादासने खूब सोच-समझकर सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा ली थी। इस अवसरसे लाभ उठाकर

१. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ३५२।

में अपने पाठकोंके सामने ऐसे मामलोंके विषयमें अपना मत रखना चाहता हूँ। मुकदमे-बाजी और अपीलोंमें हम लोग बेहिसाब धन फूँक देते हैं। हम लोग जेलके नामसे ही थर्रा उठते हैं। मुझे इसमें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं कि यदि न्यायालयोंपर हम लोग इतना अधिक निर्भर रहना छोड़ दें तो समाजकी अवस्था कहीं अधिक उन्नत और स्वस्थ हो जायेगी। अच्छेसे-अच्छे वकीलकी तलाश करना भी अशोभनीय है। और इस कामके लिए जब सार्वजनिक धनका उपयोग किया जाये तो वह अक्षम्य हो जाता है और जब सत्याग्रही भी इस प्रकार मुकदमेबाजी और अच्छेसे-अच्छे वकीलोंकी तलाशमें अपव्यय करते हैं तो वे घोर पाप करते हैं। इसलिए मुझे यह सुनकर वेदना हुई कि दुर्गादासके मुकदमेमें अपील की गई थी। यदि हमने गुनाह किया है तो हमें उसे स्वीकार कर लेना चाहिए और उसके लिए जो उचित दण्ड हो उसे भोगनेके लिए तैयार रहना चाहिए। यदि दोषी न होनेपर भी किसीको अपराधी करार दिया जाये तो जेल जाना उसके लिए अप्रतिष्ठाका कारण नहीं हो सकता। और यदि वह सत्याग्रही हो तो उसके लिए जेल-जीवनकी यातनाओंसे किसी तरह भी भयभीत होनेकी गुंजाइश नहीं रहती।

हमारे देशमें एक तो वातावरणमें सन्देह और अविश्वासका बोलबाला है, दूसरे यहाँ एक ऐसा खुफिया विभाग हावी है जिसकी तुलना दुरंगेपन और बेईमानीके मामलेमें संसारके अन्य किसी भी खुफिया विभागसे नहीं की जा सकती। इसलिए यदि हम उस विभागका सुधार करना चाहते हैं और अविश्वास तथा सन्देहको दूर करना चाहते हैं तो हमें जेल-जीवनका अभ्यस्त बनना पड़ेगा।

यदि इस तरहके अविश्वास और खुफिया पुलिस विभागसे देशका उद्धार करना है तो सबसे उत्तम और शीघ्र फलदायी उपाय यही होगा कि लोगोंके हृदयोंसे मिथ्या भय तथा हिंसाकी प्रवृत्ति दूर की जाये। पर जबतक वह सुदिन नहीं आता तबतक मुठ्ठीभर सत्याग्रहियोंको जेलको ही अपना घर बना लेना चाहिए।

इसलिए मुझे आशा है कि दुर्गादासके मित्र क्षमा-याचनाकी सलाह न तो उन्हें और न उनकी पत्नीको देंगे; और न उनकी पत्नीके साथ सहानुभूति प्रकट कर उनकी सुख और शान्तिमें बाधा पहुँचायेंगे। हमारा कर्त्तव्य तो ठीक इसके विपरीत उन्हें यह समझाना है कि वे अपना हृदय कड़ा करें और इस बातका हर्ष मनायें कि उनके पतिको बिना किसी दोषके, अकारण जेल भेजा गया है। हम लोगोंका परम कर्त्तव्य दुर्गादासकी पत्नीको आर्थिक या अन्य प्रकारकी आवश्यक सहायता देना है। हमें विदित हुआ है कि दुर्गादासके मुकदमेमें प्रायः १५,०००) रुपये व्यय हुए। इन रुपयोंका किसी अच्छे काममें भी प्रयोग हो सकता था। जहाँ हम लोग न्यायकी सम्भावना नहीं देखते वहाँ व्यर्थकी लड़ाई लड़कर दरिद्र बन जाना मेरी दृष्टिमें बुद्धिमानी नहीं है। राज-नैतिक अभियोगके लिए जरूरतसे ज्यादा चिन्तित होना मर्दानगी नहीं है, क्योंकि उससे किसी तरहका लांछन नहीं लगता।

पंजाबमें मैंने विदीर्ण-हृदय माताओंको अपने पुत्रोंके लिए जार-जार रोते देखा है, क्योंकि उन्हें अकारण जेल भेज दिया गया। मुझे विदित है कि मैं लाचार हूँ। पर

उन्हें सान्त्वना देना कठिन है। उनको झूठी आशा दिलाना पाप होगा। उन्हें यह समझानेसे उनको सान्त्वना नहीं मिलती कि जो होना था सो हो गया, अब जिसका प्रतिकार नहीं हो सकता उसे धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए। इसलिए मैं एक दुःसाध्य कार्य करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। मैं उनसे अपने अन्दर इस हदतक सत्याग्रहियोंकी भावना पैदा करनेके लिए कह रहा हूँ जिससे वे यह महसूस करने लगें कि अपने प्रियजनोंके जेल जानेपर क्रोधित, उत्तेजित और चिन्तित होकर तो हम ऐसी राजनीतिक सजाओंको और अधिक स्थायित्व प्रदान करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कर रहे हैं। यह खुलासा करनेकी आवश्यकता तो नहीं ही है कि मैं यहाँ वास्तविक उपद्रवों या हत्याओंके लिए दी जानेवाली सजाओंकी बात नहीं कर रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–१२–१९१९

२१६. पत्र: एस्थर फैरिंगको

लाहौर

दिसम्बर ४, १९१९

रानी बिटिया,

तुम बीमार क्योंकर हो गईं? तुम्हें अपने जिम्मे ऐसे काम नहीं लेने चाहिए थे जो तुम्हारे बसके बाहर हैं। तुम तीसरे दर्जेमें बम्बई जानेके योग्य नहीं हो। वास्तवमें तुम्हें बम्बई जानेकी जरूरत ही नहीं थी। खैर, जिस प्रकारकी सुविधाकी जरूरत हो वह माँग लो और जल्दीसे अच्छी हो जाओ। तुम्हें हुआ क्या था? श्री महादेवने तुम्हारी बीमारीके बारेमें कुछ तो मुझे बताया है। मुझे कृपया इसके बारेमें पूरी बात लिखो।

प्रेम और मंगलकामनाओं सहित,

तुम्हारा,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

२१७. पंजाबकी चिट्ठी – ६

शेखूपुरा
मार्गशीर्ष सुदी १५ [दिसम्बर ७, १९१९]

अन्य स्थानोंका दौरा

वजीराबादसे हम अकालगढ़ गये और वहाँसे रामनगर। ये दोनों गाँव पास-पास हैं। रामनगर अकालगढ़से चार-एक मील दूर होगा। अकालगढ़की आबादी चार हजारसे अधिक नहीं होगी। कदाचित् इससे भी कम हो। रामनगरकी तीन हजार होगी। ये दोनों नगर किसी समय खूब खुशहाल थे और इन्हें महाराजा रणजीतसिंहका अनुग्रह प्राप्त था। ये दोनों नगर इतने छोटे हैं कि उनमें कोई भी व्यक्ति दस मिनटमें चक्कर लगाकर आ सकता है। अकालगढ़में मुल्तानके प्रसिद्ध नाजिम दीवान मूलराजके पौत्र रहते हैं। दोनों गाँव इस समय तो गिरी हुई हालतमें हैं। रामनगर देखकर मेरा हृदय भर आया। रामनगरमें रणजीतसिंहके एक गवर्नरका सुन्दर महल और बगीचा है। उसमें आज सिर्फ पक्षी रहते हैं। महल धीरे-धीरे ध्वस्त होता जा रहा है। उस महलकी एक मंजिल बिलकुल गिर गई है, बाकी हिस्सा क्रमशः ढहता जा रहा है। बगीचा वीरान-सा लगता है। ऐसे ही अन्य अनेक खंडहर भी दिखाई पड़ते हैं। रामनगरमें घी भरनेके चमड़ेके कुप्पे बनानेका भारी व्यवसाय होता था। एक पूरी गली तो ऐसे कुप्पे बनानेवालों की ही थी। वह मुहल्ला आज उजाड़ पड़ा हुआ है। उसमें अब कुप्पे बनानेवाला एक ही कारीगर रहता है। कुप्पोंकी जगह टीनके डिब्बोंने ले ली है, इसलिए उनका पैसा हिन्दुस्तानके बाहर चला जाता है।

इसी तरह रामनगरमें पहले अनेक बुनकर रहते थे। उनका अस्तित्व अभी पूरी तरहसे नहीं मिटा है। थोड़ी-सी खड्डियाँ आज भी चालू हैं। लेकिन उनके धन्धेका ह्रास होता जा रहा है। एक समय रामनगर अपनी जरूरतका सारा कपड़ा खुद ही तैयार कर लिया करता था और दूसरोंकी आवश्यकताकी पूर्ति भी किया करता था। उसी रामनगरके लोग आज अपने वस्त्र विदेशसे मँगवाते हैं। फिर भी रामनगर और अकालगढ़ आदि नगरोंमें बहादुर और सेवा करनेवाले लोग न रहते हों सो बात नहीं है। आज सबके मनमें यह खयाल पैदा हो गया है कि वस्त्र तो विदेशोंसे ही आते हैं, घी तो टीनके डिब्बोंमें ही भरा जाता है। [वे मानते हैं कि] यदि कोई राजनैतिक आन्दोलन चल रहा हो, तो लोगोंको फैशनके तौरपर उसमें भाग लेना चाहिए। प्लेग आदि फैलनेपर लोगोंकी मदद करनी चाहिए और यदि बन पड़े तो धन एकत्रित करके एक पाठशाला खोलनी चाहिए और फिर बादमें उसके बारेमें भूल जाना चाहिए। फलस्वरूप काम करनेवाले लोग अपना समय ऐसे ही कामोंमें लगाया करते हैं।

लेकिन इससे उन्हें कोई सन्तोष नहीं होता, जब मैं सत्य, निडरता, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षाकी बातें करता हूँ तो जिन लोगोंको यह अच्छा लगता है

वे मेरी बातोंको ध्यानपूर्वक सुनते हैं। लोगोंको मेरे पाससे हटना अच्छा नहीं लगता और यदि मैं सारा दिन 'दर्शन' दिया करूँ तो वे मेरे पास बैठे रहनेको सहर्ष तैयार हैं। स्त्रियों और पुरुषों दोनोंकी यही हालत है।

अकालगढ़ और रामनगरके लोग प्रेमसे पागल हो उठे थे, उन्होंने पुष्प-वर्षा करके मुझे ढक दिया था और मैंने बयान लेनेके बाद दोनों स्थानोंपर स्वदेशी आदिके सम्बन्धमें उनसे खूब बातचीत की।

सूतकी मालाएँ

फूलोंसे और फूलोंके व्यर्थके खर्चसे मैं घबरा उठा हूँ। इसीसे अब मैंने हाथसे कते सूतकी मालाओंकी माँग आरम्भ की है और अब मुझे ऐसी मालाएँ मिलने लगी हैं। अकालगढ़के लोगोंने कुलीन परिवारकी महिलाओं द्वारा काते गये सूत तथा सूतसे बुने हुए वस्त्रोंका मेरे सामने ढेर लगा दिया। उनमें खादीकी सुन्दर चादरें और तौलिये आदि हैं।

ये निरपराध नगर

मेरे मनपर यह छाप पड़ी है कि अकालगढ़ और रामनगरके लोग बिलकुल निरप-राध हैं — इन दोनों नगरोंके अच्छेसे-अच्छे व्यक्तियोंको पकड़ा और परेशान किया गया है, उन्हें जेलमें डाल दिया गया है। उनका अपमान किया गया है, उन्हें गालियाँ दी गई हैं और उनपर जुर्माना किया गया है। यहाँ कुछ ऐसी बातें देखनेमें आई हैं जिनकी बम्बई प्रदेशमें लोग कल्पना भी नहीं कर सकते।

हाफिजाबाद

लेकिन आज मैं पाठकोंके समक्ष पंजाबके दुःखसे सम्बन्धित और अधिक बातें नहीं रखना चाहता। हम इन दोनों नगरोंके प्रति मोह-ममताका भाव हृदयमें रखकर हाफिजाबाद पहुँचे। हाफिजाबाद अपेक्षाकृत बड़ा नगर है। वहाँ धान कूटनेकी मिलें हैं और दूसरा व्यापार भी अच्छा चलता है इसलिए देखनेमें वह गाँवकी अपेक्षा नगर ही लगता है और समृद्धिशाली प्रतीत होता है। यहाँके लोगोंको बिलकुल निर्दोष तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी दोषके प्रमाणमें बहुत ज्यादा कड़ी सजा दी गई है। मालूम होता है कि अधिकारी एक ही पाठ सीखे हैं। उनका खयाल है कि नेताओं-को अपमानित किया जाये और यदि बन सके तो उनका नाश कर दिया जाये।

ईश्वरेच्छा प्रबल है

लेकिन मनुष्यका सोचा हुआ हमेशा नहीं होता। इस प्रसंगमें नरसिंह मेहताका एक गीत[1] याद आ रहा है जिसका भावार्थ यह है "अगर मनुष्यके प्रयत्न सफल हों तो कोई भी दुःखी न रहे।" अधिकारियोंने समझा था कि लोगोंको दबाकर वे अब बिलकुल निरंकुश हो जायेंगे। लेकिन दबानेका परिणाम विपरीत निकला, नेतागण डरे

१. नीपजे नरथी तो कोई न रहे दुखी।

नहीं, लोगोंने उनका साथ नहीं छोड़ा और धीरे-धीरे जनताका भय दूर होता गया। इस प्रकार मनुष्यने सोचा तो कुछ था परन्तु ईश्वरने किया कुछ और ही।

मुझे तो ऐसा लग रहा है कि अधिकारी-वर्ग भी पछता रहा है; भले ही वह प्रकट रूपसे पछतावा न कर रहा हो। जनरल डायर जो चाहें सो बोलें, फिर भी वे शर्मिन्दा हैं। —उन्हें कुछ-कुछ लगने लगा है कि हमने भूल की है और मेरा विश्वास है कि यदि हमारा कार्य [करनेका तरीका] स्वच्छ रहेगा तो प्रकट रूपसे पश्चात्ताप करनेका समय भी आयेगा।

हाफिजाबादमें मुझे चन्द विद्यार्थियोंके सम्मुख भी बोलनेका अवसर मिला। उनसे मैंने कहा कि आप लोगोंकी शिक्षा केवल मानसिक होनेके कारण अधूरी है। मानसिक, हार्दिक और शारीरिक तीनों प्रकारकी शिक्षाएँ एक साथ मिलें तो मन, आत्मा और शरीर तीनोंका पोषण होता है। वैसी शिक्षा हिन्दुस्तानके लिए हितकर होगी। चित्तका विकास अपनी भाषाके द्वारा ही हो सकता है, हृदय और आत्माका विकास केवल धर्मसे होता है; धर्म जब शिक्षकोंके आचरणमें, उनके बोले हुए प्रत्येक शब्दमें, उनके प्रत्येक कार्यमें दीख पड़े तभी विद्यार्थी उसे ग्रहण करता है। बालकोंको खेती तथा बुनाईका काम सिखाकर और उसके द्वारा उनके शरीरको सुगठित करके शारीरिक शिक्षा दी जा सकती है। इस कामकी शुरूआत, प्रत्येक शिक्षक प्रत्येक पाठशाला तथा प्रत्येक गाँवके द्वारा, जिसको भी सूझ पड़े, की जा सकती है। इसके लिए दूसरोंकी अथवा स्वराज्य-प्राप्तिकी प्रतीक्षा करनेकी जरूरत नहीं है। किसी स्थानपर बीज रोपा जाये और उसमें फल आने लगें—तो इसका प्रभाव दूसरोंपर भी पड़ेगा ही। मुख्याध्यापकने अपनी पाठ-शालामें ऐसा प्रयोग करनेका इरादा किया है।

स्त्रियोंकी सभा

हाफिजाबादकी स्त्रियाँ पुरुषोंकी सभामें न आ सकीं, क्योंकि उनके लिए समय और स्थान दोनों ही अनुकूल न थे। इससे उन्होंने अलग सभाकी माँग की। मैंने स्वीकृति दे दी; परिणाम यह हुआ कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ कहीं अधिक संख्यामें आईं। स्त्रियोंके सम्मुख मैं हमेशा दो ही बातोंकी चर्चा करता हूँ। एक तो यह कि उनको जेलमें पड़े अपने प्रियजनोंके लिए प्रयत्न करना चाहिए, लेकिन चिन्ता या रुदन करना त्याग देना चाहिए। दूसरी बात यह कहता हूँ कि चरखेको धर्म मानकर [अपने जीवनमें] स्थान देना चाहिए। भाषणके अन्तमें मेरे सम्मुख हाथकते सूतका ढेर लग गया। उनमें सूतकी बहुत सी मालाएँ भी थीं। कुछ-एक स्त्रियोंने हाथके बुने कपड़े ही पहननेका व्रत लिया।

गुजराती बहनोंसे निवेदन

गुजराती बहनोंको पंजाबकी बहनोंसे बहुत-कुछ सीखना है। पंजाबकी स्त्रियोंमें बहुत ज्यादा सादापन है। बहुत ही थोड़ी स्त्रियाँ आभूषण पहने हुए दिखाई दे रही हैं। थोड़ी ही स्त्रियोंके वस्त्रोंमें गोटा लगा हुआ होता है और सब स्त्रियाँ सूत कातना जानती हैं। ये सबकी-सब गरीब नहीं कही जा सकतीं। गुजराती बहनोंके पास जितना

पैसा है उतना ही उनके पास होना सम्भव है। लेकिन उन्हें चरखेका शौक है, उन्हें सादगी भाती है। उनकी स्वतन्त्रता और उनकी मर्यादा मुझे बहुत अच्छी लगती है। पुरुष उनके प्रति बहुत आदर-सम्मानका भाव रखते हैं। मैं जब रामनगर पहुँचा तब एक मील इर्दगिर्दके स्त्री-पुरुष मुझसे मिलने आये थे, स्त्रियोंको पुरुष लोग हमेशा रास्ता दे देते थे। मैं इस विवेक और मर्यादाके सम्बन्धमें पहले लिख आया हूँ, वह अनुभव अभी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। गुजरातकी जिन बहनोंको चरखेकी उपयोगिताके सम्बन्धमें सन्देह हो उनसे मैं पंजाबकी बहनोंका अनुकरण करनेकी प्रार्थना करता हूँ और पुरुषोंसे, पंजाबियोंके मनमें स्त्रियोंके प्रति जो आदर-भाव है, उसका अनुकरण करनेका अनुरोध करता हूँ।

साँगला हिल

हाफिजाबादसे रवाना होकर हम साँगला हिल आये। साँगला हिल एक नया गाँव है, इसलिए मुझे यहाँके लोगोंमें उपर्युक्त अन्तिम तीन गाँवोंके लोगोंके गाम्भीर्यके दर्शन नहीं हुए। लोग पुराने और प्रौढ़ निवासी नहीं, बल्कि नये बसे हुए-से जान पड़े। लेकिन उनके प्रेम-भावमें कोई कमी न थी। हम वहाँ रातको पहुँचे। हमने देखा कि सारा गाँव नन्हीं-नन्हीं मोमबत्तियोंसे जगमगा रहा था। प्रत्येक गलीमें हजारों मोमबत्तियाँ जल रही थीं।

हमें ठाकुरद्वारेमें ठहराया गया था। लोगोंने यह मान रखा है कि मेरा स्वागत मन्दिरमें किया जाना अधिक अच्छा होगा। जिस कारणसे मुझे वजीराबादमें मन्दिरमें ठहराया गया था, साँगला हिलमें वह कारण नहीं था; वहाँ तो उनका उद्देश्य मुझे धर्म-स्थानमें ठहराकर मेरे प्रति अधिक श्रद्धा प्रकट करनेका था। यद्यपि लोगोंके दिलोंमें मेरे प्रति मिथ्या मोह होनेकी बात मुझे खटकी तो भी मुझे यह सब बहुत प्रिय लग रहा था।

अकालगढ़ और रामनगरकी भांति साँगलाके लोगोंका कोई अपराध न होनेपर भी उन्हें कष्ट देनेमें कोई बात नहीं उठा रखी गई थी।

लाहौरमें

साँगलासे हम एक दिनके लिए लाहौर हो आये थे। वहाँ पंडितजीके साथ भेंट करना जरूरी था। अचानक श्री उत्तमलाल त्रिवेदी अपनी पत्नी और भांजेके साथ आ पहुँचे। वे प्रेसीडेंसी एसोसिएशनकी ओरसे यह जाननेके लिए आये थे कि यहाँकी कांग्रेस समितिने हंटर समितिका बहिष्कार क्यों किया है। उनके साथ [मेरी] बातचीत हो सकी; पंडितजी तो उनसे बात कर ही चुके थे।

श्री नेविलसे मुलाकात

श्री नेविलको उप-समितिने [यहीं] बुलाया है। वे इंग्लैंडके प्रसिद्ध सॉलिसिटर हैं और गवाहियाँ एकत्रित करनेके लिए आये हुए हैं। मेरी उनसे भी मुलाकात हुई। वे लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयसे मिल आये हैं और हंटर समितिकी कार्यवाहीको भी देख चुके हैं। फिलहाल तो वे पंजाबमें ही रहेंगे। पंडित मोतीलालजी स्वस्थ होकर यहाँ

आ गये हैं। उन्होंने अपने लिए अलग घर ले लिया है और उसमें सपरिवार रह रहे हैं। वे कांग्रेसके अध्यक्ष नियुक्त किये जा चुके हैं, इसलिए अपना भाषण तैयार करनेमें व्यस्त हैं।

शेखूपुरा

लाहौरमें छत्तीस घंटे रुककर हम शेखूपुरा गये। यह चिट्ठी मैं शेखूपुरासे लिख रहा हूँ। शेखूपुरा एक छोटा-सा गाँव है और लाहौरसे लगभग पच्चीस मील दूर है। यहाँ भी साँगला हिल जैसी स्थिति है। लोग निर्दोष हैं। गुजराँवाला आदि जिन गाँवोंके नाम मैंने गिनाये हैं वे सब एक जिलेके हैं, इसलिए एक ही अधिकारीकी सत्ताके अधीन हैं, और ऐसा लगता है कि वह अधिकारी न्याय-अन्याय दोनोंमें कोई भेद नहीं करता। इसलिए शेखूपुरामें भी अकालगढ़ आदि गाँवों जैसी दशा है। जैसा अत्याचार उन गाँवोंमें हुआ है वैसा ही यहाँ भी देखनेमें आ रहा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–१२–१९१९

२१८. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर
[दिसम्बर ७] १९१९

रानी बिटिया,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। जिनमें वह विस्तृत पत्र भी है। तुमने वह पत्र भेजकर अच्छा किया।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ तुम आश्रममें अपनी ईसाइयत खोने नहीं वरन् उसे पुष्ट और पूर्ण करने आई हो।

यदि प्रार्थना-सभाओंमें तुम ईश्वरकी उपस्थिति महसूस नहीं करतीं तो यह याद रखो कि राम और कृष्ण उसीके नाम हैं जो तुम्हारे लिए यीशु है।

निश्चय ही तुम्हें इन प्रार्थना-सभाओंमें शरीक नहीं होना चाहिए। तुम्हें अपने निजी कक्षमें जाकर प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना-सभाओंका यह प्रयोजन नहीं कि किसीको एक विशेष स्थितिमें जबरदस्ती रखा जाये। ये तो उन स्त्री-पुरुषोंके लिए हैं जो स्वतन्त्र हैं। बच्चोंको जरूर शामिल होना चाहिए। जो केवल आलस्यवश नहीं आते उन्हें अवश्य शरीक होना चाहिए। तुम्हारी अनुपस्थितिके बारेमें किसीको भी गलतफहमी नहीं हो सकती। इसलिए तुम तो वही करो जो तुम्हें सबसे अधिक शान्ति देता हो। यदि आश्रममें रहकर तुम्हें दिन-प्रतिदिन ईश्वरका स्पष्टतर अनुभव नहीं होता तो फिर आश्रम ही क्या हुआ। यदि प्रति रविवार या किन्हीं अन्य दिनोंमें तुम गिरजाघर जाना चाहो तो अवश्य जाओ।

मुझे बहुत ही खुशी है कि तुमने मुझे इतना लम्बा और सुन्दर पत्र लिखा जिससे मैं तुम्हारे दिलकी गहराईमें और-अधिक प्रवेश कर सका। तुम्हारा आना मेरे लिए हर्षकी बात है। अपने अनुभवके बाद यदि तुम्हें ऐसा लगे कि आश्रममें रहनेसे शान्ति, स्वास्थ्य और वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है, और यदि अन्य ईसाई लोग यह जान सकें कि ईश्वर और ईसाइयत ऐसी संस्थाओंमें भी पाये जा सकते हैं जो अपने-को ईसाई संस्थाएँ नहीं कहतीं तो मुझे और भी अधिक खुशी होगी। बिल्लौरी काँच-पर परावर्तित किरण बहुरंगी दिखाई पड़ती है ठीक उसी प्रकार सत्य भी कुछ समयके लिए भले ही विविधरूप जान पड़े परन्तु वास्तवमें सभी धर्मोंमें उसका एक ही स्वरूप प्रतिष्ठित है।

तुम्हारी तरह मैं भी महसूस करता हूँ कि तुम्हें इतनी जल्दी मद्रास जानेकी जरूरत नहीं है, भले ही कुमारी पीटर्सनसे मिलनेके लिए ही क्यों न जाना हो। क्या वे आश्रम नहीं आयेंगीं? उन्हें आना चाहिए। वे आयें और इस नये स्थानमें आश्रमको देखें और जानें कि कुछ प्रगति हुई है या नहीं। उन्हें मेरा स्नेह देना।

मुझे पूर्ण आशा है कि अब तुम पूरी तरह स्वस्थ हो गई होगी। तुम्हें अपने शरीरसे खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। तुम वह सब आसानीसे नहीं कर सकतीं जो यहाँ जन्मे लोग कर सकते हैं। इसलिए तुम्हारे शरीरको जिन सुविधाओंकी जरूरत है उनका तुम्हें अवश्य आग्रह रखना चाहिए।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

२१९. पत्र: मगनलाल गांधीको

चुड़खाना
रविवार [दिसम्बर ७, १९१९][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मुझे यात्राके दौरान मिला। मैं परसों मंगलवारको लाहौर वापस पहुँच जाऊँगा। हरिलालका तार आया है कि वह मुझसे मिलने आ रहा है।

बा के विषयमें तुमने जो लिखा है वस्तुतः बात वैसी ही है, मुझे इसी बातका दुःख है। जबतक वह तुम सबको हरिलालके समान नहीं मानने लगती तबतक उसका आश्रममें रहना व्यर्थ ही हुआ। लेकिन यह स्थिति हमारे लिये अपरिहार्य है इसलिए इसे भोगने तथा बा पर तरस खानेके सिवा और कोई चारा नहीं है।

१. यह पत्र १० दिसम्बरको प्रापकको मिला था। उसीके आधारपर यह तारीख निश्चित की गई है।

सन्तोकको भेजे बिना काम नहीं चल सकता था। तुम आशान्वित जरूर हो लेकिन ऐसे परिणामकी उम्मीद नहीं करता क्योंकि यह कार्य अत्यन्त कठिन है; प्रयत्न भले ही जारी रखा जाये। अपने लिये आश्रमके बाहर घर बनाना मुझे पसन्द नहीं होगा। मैं यह मानता हूँ कि आश्रममें ही ऐसे घरका बनाया जाना, जिसमें एकांत मिल सके, वांछनीय है और यह तो अपनी योजनामें आता भी है। यदि वह पुस्तकालयका एक हिस्सा हो तो पर्याप्त है।

चि० आनन्दलालको जो-कुछ कहना हो वह सुन लिया जाये, इस उद्देश्यसे मैंने तार भेजा है। मुझे नहीं लगता कि भावोंमें कुछ फेरफार किया जा सकता है। आनन्दलाल काठियावाड़के भावोंके बारेमें विचार करते होंगे। फिर भी जान लेना ठीक ही होगा।

रसोईके सम्बन्धमें — हमें सब्जियाँ बनानेकी जरूरत नहीं है। यदि हम इसके बिना काम चला सकें और तबीयत अधिक अच्छी रख सकें तो इसमें फायदा ही है। अन्तिम स्थिति तो यही होनी चाहिए। जिस तरह हम शौच जाते समय किसी साथीकी तलाश नहीं करते उसी तरह भोजनमें भी साथी नहीं खोजना चाहिए। अगर हम इसे शौच-जैसी क्रिया ही मान सकें तो हम वस्तुतः उसे भी अकेले ही करें। स्वादकी खातिर अलग रसोई पकाना हमारे लिए शर्मकी बात है। लेकिन मैं जानता हूँ कि हमारा प्रयोग, ऊपर जिन आदर्शोंकी चर्चा की गई है, उनसे प्रेरित नहीं है। इसलिए यदि इससे कुछ दुखद परिणाम निकलें तो हमें चाहिए कि हम वह प्रयोग बन्द कर दें।

अपना कार्यक्रम तुम स्वयं ही निर्धारित करना। हम केवल इतना चाहते हैं कि हम हर उचित उपायसे अपने उद्देश्यकी पूर्ति करें।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८०) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

२२०. स्वदेशीमें स्वराज्य

बहु-चर्चित सुधार विधेयक कुछ ही दिनोंमें देशमें कानूनके रूपमें प्रतिष्ठित हो जायेगा और यथासमय पुरानी विधान-परिषदोंका स्थान नई विधान-परिषदें ले लेंगी। वाइसराय महोदयने घोषणा की है कि वे बड़ी निष्ठाके साथ नई योजनाका पालन करेंगे और इसे सफल बनानेका प्रयास करेंगे। मैंने संयुक्त समितिके प्रतिवेदनके बारेमें अपनी राय अभीतक इसलिए जाहिर नहीं की क्योंकि मुझे उसमें उतनी दिलचस्पी नहीं है। एक ऐसी चीजके बारेमें हृदयमें उत्साह पैदा नहीं हो पाता जिसकी छानबीन करनेपर उसमें जनताके लाभकी कोई गुंजाइश दिखाई न दे। इसलिए जहाँतक सुधार योजनाका सम्बन्ध है मैं इतना ही कहूँगा कि हमें उसका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए और उसे वाइसरायकी भाँति, सफल बनानेके लिए निष्ठापूर्वक काम करना चाहिए। यह मूल विधेयकसे बेहतर है — ऐसा तो सभी मानते हैं।

परन्तु भारतको जिस वास्तविक सुधारकी अपेक्षा है, वह है सच्चे मानोंमें स्वदेशीका पालन। हमारे सामने तात्कालिक समस्या यह नहीं है कि देशकी सरकार कैसे चलाई जाये बल्कि यह कि हम अपने लिए भोजन और वस्त्र कैसे जुटायें। हमने १९१८में वस्त्र खरीदनेके लिए साठ करोड़ रुपये भारतसे बाहर भेजे थे। यदि हम इसी रफ्तारसे विदेशी वस्त्र खरीदते जायें तो हम भारतीय बुनकरों और कताई करनेवालोंको प्रतिवर्ष इतनी राशिसे वंचित करते रहेंगे और "इसके बदले उनके लिए लगभग कोई भी काम नहीं जुटायेंगे।"[१] फिर इसमें आश्चर्य ही क्या कि हमारे यहाँकी जन-संख्याका दशांश बुरी तरह भुखमरीका शिकार है और शेष जन-संख्याका अधिकांश जरूरतसे काफी कम भोजन प्राप्त कर पाता है। जिनके भी आँखें हैं वे खुद देख सकते हैं कि "मध्यमवर्गके लोगोंको जरूरतसे बहुत ही कम भोजन मिल पाता है और हमारे बच्चोंको पर्याप्त मात्रामें दूध भी नहीं मिल पाता।"[२] यह सुधार योजना कितनी ही उदारतापूर्ण क्यों न हो, वह निकट भविष्यमें समस्याका समाधान करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। परन्तु स्वदेशीसे "अभी इसी समय"[३] यह समस्या हल हो सकती है।

पंजाबने तो मेरे तईं इसे और भी स्पष्ट कर दिया है कि समस्याका यही एक हल है। ईश्वरके प्रति हमें कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए कि पंजाबकी महिलाओंने रूप-सौन्दर्यके साथ-साथ अपने हाथके हुनरको भी बनाये रखा है। वे किसी भी वर्गकी हों, सभी कताईकी कलामें निपुण हैं। अन्य अनेक गुजराती महिलाओंकी तरह उन्होंने अभीतक अपने चरखे आगमें नहीं झोंके हैं। वे जब सूतके गोलेपर-गोले मेरी गोदमें फेंकती चलती हैं तो मेरे हर्षकी सीमा नहीं रहती। वे स्वीकार करती हैं कि उनके पास कताईके लिए काफी समय रहता है। वे मानती हैं कि उनके हाथके कते सूतसे बुना खद्दर मशीनोंके कते सूतसे बने वस्त्रसे कहीं उत्तम होता है। हमारे पूर्वज विदेशी बाजारोंका मुँह ताके बिना ही अपने लिए कहीं कम मेहनत और बड़ी आसानीके साथ अपनी वस्त्रोंकी आवश्यकता पूरी कर लेते थे।

यदि हम समय रहते नहीं चेतेंगे तो यह सुन्दर कला — जो साथ ही इतनी सरल भी है — लुप्त भी हो सकती है। पंजाब इस कलाकी सम्भावनाओंको सिद्ध करता है। परन्तु पंजाब भी बड़ी तेजीसे इस मामलेमें पिछड़ता जा रहा है। वहाँ भी हाथके कते सूतका उत्पादन हर वर्ष घटता जा रहा है। इसका मतलब है हर परिवारकी निर्धनता और बेकारीमें वृद्धि। जिन महिलाओंने कताईका काम बन्द कर दिया है वे इससे बचनेवाले समयका कोई सदुपयोग नहीं कर पातीं, गपशप करनेके अलावा उनके पास कोई काम ही नहीं रहता।

इस बुराईको दूर करनेका केवल एक ही मार्ग है। आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक शिक्षित भारतीय अपने परिवारकी महिलाओंको एक चरखा भेंट करना और कताई सीखनेकी सुविधायें जुटाना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझने लगें। तब फिर हर रोज कई लाख गज सूत तैयार किया जा सकता है। और यदि प्रत्येक शिक्षित भारतीय हाथकते सूतका वस्त्र पहननेके लिए तैयार हो जाये तो वह भारतके इस एकमात्र कुटीर उद्योगको बढ़ावा देगा और उसकी सहायता करेगा।

१, २ और ३. मूलमें ये अंश रेखांकित हैं।

कुटीर उद्योगके अभावमें भारतीय किसानका भविष्य अन्धकारमय है। भूमिकी उपजपर ही उसका गुजारा नहीं हो सकता। उसके लिए एक अनुपूरक उद्योग जरूरी है। और कताई ही उसके लिए सबसे सुलभ, सस्ता और सर्वोत्तम उद्योग है।

मैं जानता हूँ कि इसका मतलब है अपने पूरे दृष्टिकोणमें एक क्रान्ति करना। और यह एक क्रान्ति ही है, इसलिए कि मेरा दावा है कि स्वराज्य पानेका मार्ग स्वदेशी ही है। एक राष्ट्र जो प्रतिवर्ष ६० करोड़ रुपये बचा सकता है और उस विशाल राशिको कताई और बुनाई करनेवालोंमें बाँट सकता है, उसमें इतनी संगठनात्मक और औद्योगिक क्षमता आ जायेगी कि वह अपने विकासके लिए सभी कुछ कर सकेगा।

ऊँचे-ऊँचे स्वप्न देखनेवाले सुधारक कहते हैं: "उत्तरदायी शासन मिलने तक रुको, तब हम भारतके उद्योगका आरक्षण कर लेंगे और हमारे घरोंकी महिलाओंको कताई-बुनाई भी नहीं करनी पड़ेगी।" विचारशील लोगोंने सचमुचमें यह बात कही है। मेरा सुझाव है कि — यह प्रस्ताव दो गलत तर्कोंपर आधारित है। भारत आरक्षण शुल्क लगाये जाने तक इन्तजार नहीं कर सकता और आरक्षणसे वस्त्र-उत्पादनकी लागत कम नहीं होगी। दूसरी चीज यह कि मात्र आरक्षणसे भूखों मरती जनताको लाभ नहीं होगा। उनकी सहायता करनेका तरीका तो यही है कि उनके लिए एक ऐसा अनुपूरक उद्योग जुटाया जाये जिससे उनकी आय बढ़ सके। ऐसा उद्योग कताई ही है। इसलिये हम आरक्षण शुल्क लगायें या न लगायें, हमें कताई उद्योगका पुनरुद्धार करना ही पड़ेगा और हाथ-बुनाईको तरजीह देनी ही पड़ेगी।

युद्ध-कालमें अमरीका और इंग्लैंडके जहाज बनानेवाले कारखानोंके सभी लोगोंको जहाज तैयार करनेके काममें जुटा दिया गया था और उन्होंने सारा काम बड़ी आश्चर्य-जनक शीघ्रतासे पूरा कर दिखाया था। यदि मेरी चले तो प्रत्येक भारतीयके लिए कताई-बुनाई सीखना अनिवार्य बना दूँ और उसे हर रोज एक निश्चित समयतक कताई-बुनाई करनी पड़े और चूँकि स्कूल और कॉलेजके रूपमें बनी-बनाई संगठित इकाइयाँ मौजूद हैं, इसलिए मैं स्कूल और कॉलेजोंसे ही यह काम शुरू करूँगा।

मिलोंकी संख्या बढ़ानेसे समस्या हल नहीं होगी। जो रुपया देशसे बाहर जाता है उसकी पूर्ति करनेमें उनको काफी अधिक समय लग जायेगा और वे हमारे घरोंके लिए ६० करोड़ रुपयेकी राशि सुलभ नहीं बना सकेंगी। वे तो चन्द उद्योगपतियोंके हाथोंमें ही धन और श्रमको केन्द्रित कर देंगी और उससे समस्या और भी लाइलाज हो जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१२-१९१९

२२१. पत्र : मगनलाल गांधीको

लाहौर
बुधवार [दिसम्बर १०, १९१९][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

छोटालाल आजकल चलने-फिरनेमें असमर्थ है। उसकी जाँघमें फोड़ा हो गया था। शुरूमें तो वह फुंसी ही थी। अब उसमें चीरा लगा दिया गया है। एक-दो दिनमें ठीक हो जायेगा। मुझे कोई दिक्कत नहीं हो रही है।

हरिलाल यहाँ आया हुआ है। कल जायेगा। व्यापारके सम्बन्धमें ही मिलने आया था।

आश्रमवासियोंका स्वास्थ्य अभी ऐसा नहीं हो पाया है जिससे मुझे सन्तोष हो सके। इससे मेरे मनमें चिन्ता उत्पन्न होती है। अपने शरीरकी मैं पूरी सँभाल रखता हूँ; इस बारेमें मुझे जरा भी शक नहीं है। मेरी धारणा है कि यदि मैं विशेष संयमका पालन करूँ तो और भी अधिक अच्छा हो सकता हूँ। मैं दोनों जून खाता हूँ क्योंकि ऐसा करके ही शरीरको स्वस्थ रख सकता हूँ। अपने शरीरके बारेमें मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि जिन दिनों काम अधिक रहता है या यात्रा करनी पड़ती है उन दिनों कम खानेसे शरीरको कोई नुकसान नहीं पहुँचता। जो कार्य अनायास ही हमारे जिम्मे आ जाता है उसे हम छोड़ नहीं सकते। हमें अपनी जानकी जोखिम उठाकर भी जलते हुए व्यक्तिकी मददके लिए दौड़ पड़ना चाहिए। यदि कोई साँप बच्चेको काटनेको दौड़े तो हमें अपने शरीरकी आहुति देकर भी उसे बचाना चाहिए। इस तरह कसौटीपर कसी देह ही काम आती है। आश्रमवासियोंका कर्त्तव्य है कि वे अपने शरीरको स्वस्थ रखें। मैंने तो अपने स्वास्थ्यको बिगड़ने नहीं दिया है। अब इस शरीरसे सावधानीसे काम ले रहा हूँ। इससे काम लेते हुए यथासंभव स्वास्थ्यको बनाये रखना ही ठीक है। यदि मैं अब भी और अधिक नियमोंका पालन करते हुए संयमसे काम लूँ और समयकी बचत करूँ तो तबीयत और भी अच्छी हो सकती है। ऐसा करनेमें बहुत हिम्मतकी जरूरत है। [मुझे] लोगोंसे कठोरतापूर्वक कहना पड़ेगा कि अब बस करो। ऐसे हमेशा नहीं चल सकता। इतनी . . .[2]

मनमें आई हुई सब आवश्यकताओंको पूरा करना मैं आवश्यक और अनुचित समझता हूँ। विशेष विचार तो तुम स्वयं ही कर लोगे।

१. हरिलालके उल्लेखसे पता चलता है कि गांधीजीने यह पत्र रविवार, ७ दिसम्बरके बाद बुधवारको लिखा था। देखिए "पत्र : मगनलाल गांधीको", ७-१२-१९१९।

२. इसके बादका एक पृष्ठ उपलब्ध नहीं है।

मेरा ख्याल है कि कृष्णअम्मासे हमें पैसे मिला करते थे, न कि हम उन्हें दिया करते थे। उन्हें १६ रुपये देनेमें मुझे कोई हर्ज नहीं दिखाई पड़ता। आश्रमके खातेसे ही देना। मणीन्द्रको भी आश्रमके खातेसे ही दिया करना। लेकिन जो प्रेसमें काम करते हैं उनके बारेमें नोट बना लेना और [भुगतान करनेकी] निश्चित दरके अनुसार पैसा निकालना, जिससे मीजान मिलता रहे। किसी व्यक्तिको उसकी कमाईके अतिरिक्त जो-कुछ देना हो, वह आश्रमसे देना।

मैं समझता हूँ कि शामलदासको प्रतिमास ९० रुपयेसे अधिक नहीं दिया जाना चाहिए। [इस सम्बन्धमें] उसने मुझे अभीतक कोई पत्र नहीं लिखा है। जबतक उसका पत्र न आयेगा, तबतक मैं भी न लिखूँगा। तुम्हें जैसा उचित लगे वैसा करना। तुम चाहोगे तो मैं जरूर लिखूँगा।

मकानोंके बारेमें समझ गया हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७०२१) से।

२२२. पत्र : नरहरि परीखको

लाहौर
बुधवार [दिसम्बर १०, १९१९][1]

भाईश्री नरहरि,

आपका पत्र मिला। आपका रसोइयेसे पिण्ड छूट गया इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। लड़कोंको भी हाथसे रसोई पकानेकी थोड़ी-बहुत तालीम मिलनी चाहिए। भाई द्वारकानाथ अगर रसोईका काम भी हाथमें ले लें तो अधिक अच्छा हो। उनके नीचे [काम करनेके लिए] भले ही नौकर रख दो। द्वारकानाथ तो ब्राह्मण नहीं हैं। लेकिन यह तो मेरे शेखचिल्लीके जैसे विचार हैं। तुम्हें जैसा ठीक लगे वैसा करना। रसोईके कामके लिए क्या पढ़ा-लिखा ब्राह्मण नहीं मिलता? हमारी — राष्ट्रकी — नैया ही उलटी दिशामें जा रही है।

भाई गिरजाशंकरसे कहना कि मैं भोजनालयके बारेमें भूला नहीं हूँ, बल्कि समय ही नहीं मिल पाया है।

अब तो मुझे लगता है कि हम थोड़े दिनों बाद मिलेंगे। भाई किशोरलालसे कहना कि उन्हें बम्बईमें भी शालाके कामको भूल नहीं जाना है तथा [इसके अलावा] वे स्वदेशीका काम तो कर ही सकेंगे।

बापूके आशीर्वाद

१. इस पत्रमें बादमें जोड़े गये हिस्सेसे पता चलता है कि सम्भवतः गांधीजीने यह पत्र उसी दिन लिखा था जिस दिन "पत्र : मगनलाल गांधीको", १०-१२-१९१९ लिखा। उस पत्रमें गांधीजीने आश्रमवासियोंके असन्तोषजनक स्वास्थ्यकी चर्चा की थी।

बालकृष्ण

आयरन, आर्सेनिक और कुनैन।[1] खानेके आधे घंटे बाद दो गोलियाँ निगल जाओ। एक छोटी चम्मच माल्टीन[2] दूधमें डालकर दिनमें तीन बार पियो।

कसरतके रूपमें घूमना-फिरना।

दुर्गा

लिकर आर्सेनिकलिस ऐसिडस[3]

खानेके बाद दो बूँद एक गिलासमें — आधी छटाँक पानीके साथ — दिनमें दो बार। चार बूँदतक बढ़ाना। आठ दिनोंके बाद चार दिनोंके लिए छोड़ देना।

कसरत बहुत कम, घूमने जा सकती हो, [कुएँसे] पानी न भरना।

प्रभुदास

इंजेक्शन फिरसे लो। एक महीनेके बाद थोड़ी कसरत शुरू करो। पढ़ाई-लिखाई बहुत नहीं।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७०१४) से।

२२३. पत्र : बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको[4]

[दिल्ली]
दिसम्बर ११, १९१९

सत्याग्रही वकीलोंसे सम्बन्धित अहमदाबादके जिला न्यायाधीशके पत्रके प्रकाशनके बारेमें आपका पत्र प्राप्त हुआ। इस सम्बन्धमें निवेदन है कि मैंने कानूनदाँ मित्रोंकी सलाह ली है और मुख्य न्यायाधीश महोदयके सुझावपर गम्भीर चिन्तन किया है। किन्तु मुझे दुःख है कि मैं उनके द्वारा सुझाई गई क्षमा-याचना प्रकाशित नहीं कर सकता। उक्त दस्तावेज मेरे हाथमें सामान्य क्रममें आया था और चूँकि वह बहुत ही सार्वजनिक महत्त्वका था अतः मैंने उसे प्रकाशित करने और उसपर टिप्पणी करनेका निश्चय किया। अपनी तुच्छ रायमें मैंने ऐसा करके एक उपयोगी सार्वजनिक कर्त्तव्य निभाया और ऐसे समय यह कर्त्तव्य निभाया जब तनातनी बहुत बढ़ी हुई थी और न्यायपालिका भी प्रचलित पूर्वग्रहसे प्रभावित हो रही थी। कहना न होगा कि ऐसा करनेमें मेरा उन मसलोंपर पूर्वनिर्णय देनेका कोई विचार नहीं था जिनपर माननीय न्यायाधीशोंको फैसला देना था।

मैं मुख्य न्यायाधीश महोदयको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि जब मैंने वह दस्तावेज प्रकाशित करनेका निश्चय किया, उस समय मैं पत्रकारिताकी प्रतिष्ठाके प्रति जागरूक था और मुझे यह भी याद था कि मैं बम्बई वकील मंडलका सदस्य हूँ और इस

१, २ और ३. यहाँ गांधीजीने अंग्रेजी नामोंका प्रयोग किया है।

४. यह १०-३-१९२० के **यंग इंडिया**में भी प्रकाशित हुआ था।

नाते मुझे उसकी परम्परासे अवगत होना चाहिए। किन्तु जो-कुछ हुआ उसकी रोशनीमें जब मैं अपने कार्यको देखता हूँ तो मैं यह नहीं कह सकता कि फिर वैसी ही परिस्थितिमें मेरा आचरण उससे भिन्न होगा जो तब था जब मैंने श्री कैनेडीका पत्र प्रकाशित करने और उसपर टिप्पणी करनेका फैसला किया था। इसलिए मुख्य न्यायाधीश महोदयके सुझावपर अमल करनेकी तीव्र इच्छा होते हुए भी मैं सोचता हूँ कि मैं सच्चे दिलसे अपने कार्यके लिए क्षमा-याचना नहीं कर सकता। यदि मुख्य न्यायाधीश महोदयको मेरा यह जवाब नाकाफी लगे तो मैं नम्रतापूर्वक वह दण्ड स्वीकार करूँगा जो मुख्य न्यायाधीश महोदय मुझे देना चाहेंगे।

आपके पत्रका उत्तर देनेमें मुझसे जो विलम्ब हुआ उसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। मैं पंजाबमें लगातार दौरेपर हूँ और अगले मासके प्रारम्भसे पहले मुझे फुरसत नहीं मिल सकेगी।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे लॉ रिपोर्टर, खण्ड २२

२२४. सुधार

इस लेखके प्रकाशित होनेतक नये सुधारोंके सम्बन्धमें कानून[2] बन चुका होगा अथवा बननेकी स्थितिमें होगा। इन सुधारोंका हम क्या करें? इस प्रश्नका उत्तर इस बातपर निर्भर करता है कि ये सुधार कैसे हैं।

यदि कांग्रेस-लीग योजनाकी दृष्टिसे इन सुधारोंको कसौटीपर कसें तो हमें उनको छोड़ देना चाहिए। यदि हम कांग्रेसके पिछले अधिवेशनमें पास किये गये प्रस्तावोंकी दृष्टिसे देखें तो हमें कांग्रेसके प्रस्तावों और सुधारोंके बीच काफी अन्तर दिखाई देगा।

त्याग कर देनेका क्या अर्थ है? अर्थात् हम इन सुधारोंका उपयोग न करें; वोट न दें, वोटर न बनें और किसीको सदस्य भी न बनने दें। इतना त्याग करनेके लिए कोई तैयार नहीं है। हमने ऐसी तैयारी भी नहीं की है। जो शिष्ट-मंडल[3] विलायत गये थे उन्होंने भी इस ओर कोई संकेत नहीं किया।

१. पंजीयकने पत्र पानेके पहले उसी दिन अदालतमें अर्जी पेश कर दी थी कि "श्री गांधी और महादेव देसाईके खिलाफ प्रारम्भिक आदेश जारी कर उनसे यह जवाब तलब किया जाए कि उक्त पत्रको प्रकाशित करनेके कारण उनके खिलाफ अदालतकी मानहानिका मुकदमा क्यों न चलाया जाये।"

२. भारत सरकार अधिनियम, १९१९ जिसमें संवैधानिक सुधारके लिए मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड प्रस्ताव सन्निहित थे।

३. कॉमन्स सभामें जुलाई १९१९ में भारत विधेयक पेश किया गया था। इस विधेयकको लेकर भारतमें विभिन्न राजनीतिक दलोंमें जो प्रतिक्रिया हुई थी उसे व्यक्त करनेके लिए कुछ शिष्टमण्डल ब्रिटेन गये थे। यह संकेत सम्भवतः उसी ओर है। ये शिष्टमण्डल थे नरमदलीय शिष्टमण्डल, अखिल भारतीय होमरूल लीगके विभिन्न विचारोंको व्यक्त करनेके लिए दो होमरूल शिष्टमण्डल और कांग्रेस शिष्टमण्डल। कांग्रेस शिष्टमण्डलके सदस्य थे: विट्ठलभाई पटेल, लोकमान्य तिलक, बी० सी० पाल और वी० पी० माधवराव।

हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि जनता ऐसे त्यागके लिए तैयार नहीं है। इस तरहकी राजनैतिक शिक्षा अभी लोगोंके हृदयोंमें स्थान नहीं बना पाई है। कोई भी वस्तु हमें जब इस हदतक नापसन्द हो कि हमें उसको स्वीकार करने मात्रसे अपनी आत्माका हनन होता जान पड़े तब हमें उस वस्तुका त्याग करनेका अधिकार है और वह हमारा फर्ज है। इस तरह बहिष्कार करके ही हम शीघ्रसे-शीघ्र अपनी उन्नति कर सकते हैं — इन विचारोंने अभी जड़ नहीं पकड़ी है।

संशयशील व्यक्तिका तो नाश ही होता है;[1] इस सूत्रके आधारपर हमारे मनोंमें उपर्युक्त विचारके प्रति शंका है और इस प्रकार हम इस महान् त्यागके लिए तैयार नहीं हैं। छोटी-छोटी बातोंमें त्यागके ऐसे प्रयोग करके देखे जा सकते हैं। छोटी अर्थात् जिनमें हम अपने त्यागके परिणामको तुरन्त देख सकते हैं जिससे हमें किसी बड़ी विपत्तिमें पड़नेकी सम्भावना नहीं होती। यदि हम सुधारोंको अस्वीकार करते हैं तो इस बातकी बहुत-अधिक सम्भावना है कि हमें तुरन्त किसी लाभकी प्राप्ति न हो। इसलिए हमारे द्वारा सुधारोंको अस्वीकृत किया जाना उचित नहीं माना जायेगा।

हम सुधारोंकी आलोचना करें; लेकिन यह आलोचना मर्यादित होनी चाहिए और उससे सुधारोंके प्रति हमारी निराशा व्यक्त होनी चाहिए। हम यह कह सकते हैं कि हम इनसे अधिक लेनेकी कोशिश करेंगे। हमें यही कहना चाहिए।

लेकिन ज्यादा जरूरत तो इस बातकी है कि हम यह जान लें कि हमें जो सुधार प्राप्त हुए हैं उनका हम अच्छेसे-अच्छा उपयोग किस रूपमें कर सकते हैं। और उसीके अनुसार हमें उनका उपयोग करना चाहिए।

यहाँ हमें यह बात तो स्वीकार करनी ही चाहिए कि कॉमन्स सभामें जो विधेयक पेश किये गये हैं, उनमें सुधार किये गये हैं और हमें महत्त्वपूर्ण हकोंकी प्राप्ति हुई है। पहले हमें इन हकोंके मिलनेकी बहुत कम आशा थी। एक समय तो यह भी कहा जाता था कि सुधार-सम्बन्धी कानून फिलहाल पास ही नहीं होगा। इसकी जगह अब विधेयक ठीक संशोधनोंके साथ पारित होने जा रहा है। इन बातोंसे हम पर्याप्त सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन सुधारोंका श्रेय तो श्री मॉण्टेग्युको ही है। इन सुधारोंसे सम्बन्धित कानून थोड़े ही दिनोंमें पास हो जायेगा, इस बातका श्रेय भी आपको ही जाता है।

सुधारोंका अध्ययन करनेके बाद जनताको धारा सभाओंमें प्रामाणिक और समझदार प्रतिनिधि भेजनेके प्रयत्न करने चाहिए। प्रतिनिधियोंमें मानकी जितनी कम इच्छा होगी, पद और उसके साथ धनप्राप्तिका [जितना कम] लोभ होगा, प्रतिनिधि होनेमें जिस हदतक लोगोंकी सेवा करना ही मुख्य उद्देश्य होगा उस हदतक सुधारोंका उपयोग अच्छी तरह हो सकेगा। इतना ही नहीं, हम जल्दी ही सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सँभालनेके योग्य हो जायेंगे और शीघ्र ही उत्तरदायित्व प्राप्त कर सकेंगे।

किन्तु रौलट विधेयक और पंजाबके बारेमें क्या करें? यदि हम सुधारोंका परित्याग करनेमें समर्थ होते तो हमारे पास उनके उत्तमसे-उत्तम उपाय थे। अब हमें

१. संशयात्मा विनश्यति, **भगवद्गीता** ४, ४०।

२२६. पत्र : एडमंड कैंडलरको

२, मुजंग रोड
लाहौर
दिसम्बर १५, १९१९

प्रिय श्री कैंडलर,

आपके १२ तारीखके पत्रके[1] लिए धन्यवाद, उसमें निहित मित्रताकी भावनाकी मैं कद्र करता हूँ और आपका यह आश्वासन पूरी तरह स्वीकार करता हूँ कि मुझे चोट पहुँचानेका आपका कतई इरादा नहीं था।

उक्त लेखकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया गया और मुझे लगा भी कि सचमुच ही उसकी शब्दावली बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं थी। मुझे यह भी लगा कि मेरा जैसा विकृत खाका खींचा गया है उससे हिन्दू और मुसलमान दोनोंको बुरा लगेगा। किन्तु आपके इस पत्रके बाद अब विरोधी आलोचनाके लिए कोई कारण नहीं रह जाता। निश्चय ही आधुनिक पत्रकारिता इस बातको अनुचित नहीं मानती कि जिन लोगोंकी नीतिकी आलोचना की जाये आलोचक उनके दुर्बल माने जानेवाले पहलुओंपर चोट करे और मैं मान लेता हूँ कि इससे अधिक कुछ करनेका आपका इरादा नहीं था। आपने जो प्रश्न उठाये हैं मैं उनके लिए भी आपको धन्यवाद देता हूँ। इन प्रश्नोंसे मुझे अपनी स्थिति, जिसे मैं अपने लेखों और भाषणोंसे जितना स्पष्ट कर सका हूँ, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तारसे समझानेका मौका मिला है।

आपके पहले प्रश्नका उत्तर यह है कि मैं यह नहीं चाहता, न मैंने कभी चाहा है कि सरकारको उलझनमें डाल दूँ और मैंने किसी भी उद्देश्यके लिए कभी भी कोई ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन नहीं भड़काया। मेरा निजी धर्म इन दोनोंमें से एकपर भी चलनेकी इजाजत नहीं देता। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि मनुष्यका धर्माचरण भी उन लोगोंको उलझनमें डाल देता है जो फिलहाल उसे ठीक नहीं समझते और इस अर्थमें मैं स्वीकार करता हूँ कि किसी भी अन्य सुधारककी तरह मेरे आचरणसे भी कुछ लोगोंको उलझन हुई होगी। किन्तु पक्षपातका आरोप मुझपर नहीं लगाया जा सकता। सत्यकी अनवरत साधना और तदनुरूप आचरणसे मेरे सबसे प्रिय कुटुम्बियोंको यहाँतक कि मेरी स्त्री और मेरे बच्चोंको भी उलझन हुई है, किन्तु जिस प्रकार मैं अपने प्रियजनोंका विरोधी नहीं था वैसे ही ब्रिटिश विरोधी भी नहीं हूँ। मुझे सैकड़ों अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंकी मित्रता या उनकी शुभैषिताका गौरव प्राप्त है। यदि मैं अपने मनमें ब्रिटिश विरोधी भावनाएँ रखूँ तो मैं उनकी मित्रता और सदिच्छाओंका योग्य पात्र नहीं होऊँगा। ब्रिटिश सरकारके किन्हीं कार्योंका जो मैं दृढ़तासे विरोध करता हूँ उसे अमैत्री मान लेना भूल होगी, भारतमें मित्रता और वफादारीके सम्बन्धमें ऐसी अजीब

१. देखिए परिशिष्ट ९।

धारणाएँ व्याप्त हैं कि सरकारके किसी कार्यसे उत्पन्न अप्रसन्नताकी किसी भी जोरदार अभिव्यक्तिको गैर-वफादारीका नाम दे दिया जाता है। आप मुझसे सहमत होंगे कि ऐसे वातावरणमें सच्ची वफादारी जिसके कारण अप्रिय सत्य कहनेका भी साहस किया जा सकता है एक दुर्लभ गुण ही होगा।

अब आपका दूसरा प्रश्न लेता हूँ: मैं स्वीकार करता हूँ कि तुर्कोंकी माँगके प्रति मेरी सम्मानकी भावना, मेरे मनमें अपने देशवासियों — मुसलमानों — के प्रति जो सम्मानकी भावना है उसीका फल है। यदि ऐसे हर सवालपर जिसका उनसे गहरा सम्बन्ध है मेरे मनमें उनके लिए सहानुभूति नहीं होगी — बशर्ते कि उनका उद्देश्य न्याय-संगत हो — तो उन्हें अपना देशवासी कहनेका मेरा अधिकार जाता रहेगा। मेरे देशकी शान्ति खतरेमें पड़ सकती है, किन्तु मुस्लिम भावनाको ठीक रास्तेपर चलानेके मेरे प्रयत्नसे नहीं। हाँ, वह ब्रिटिश मन्त्रियोंके विवेकहीन और मूर्खतापूर्ण कार्यके कारण जरूर खतरेमें पड़ेगी। मैं यह दावा करनेका साहस करता हूँ कि भारतीय मुसलमानोंको यह राय देकर कि वे अपनी भावनाएँ संयमपूर्वक प्रदर्शित करें और हिन्दुओंको यह राय देकर कि वे उनका साथ दें, मैंने सेवाका कार्य ही किया है।

ग्लैडस्टन, मॉर्ले और ब्राइस — जिनके लिए मेरे मनमें बहुत सम्मान है — की रायके प्रतिकूल चलनेकी बुद्धिमानीपर आपकी शंका ठीक है। किन्तु प्रश्नकी आवश्यकता आपके टर्कीके पक्षमें मुसलमानोंकी माँगको न समझनेके कारण है। मैं आपको उनके दृष्टिकोणका अध्ययन करनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। वे ऐसी कोई चीज नहीं माँगते जो दूसरे देशोंको नहीं दी गई है या जिसे उन्हें देनेका वचन स्वयं ब्रिटेनके मन्त्रियोंने नहीं दिया है। उनकी माँगको, जैसा आप जानते होंगे, भूतपूर्व गवर्नरोंके बहुमत और दूसरे सम्भ्रांत आंग्ल-भारतीयोंका समर्थन प्राप्त है। खिलाफतके-प्रश्न यानी टर्कीकी अखण्डता और इस्लामी तीर्थ-स्थानोंपर टर्कीके नियन्त्रणसे, शासित जातियोंके प्रति टर्कीके व्यवहार या दुर्व्यवहारका क्या सम्बन्ध? क्या शासित जातियोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए टर्कीसे कुस्तुंतुनिया छीन ही लिया जाना चाहिए? यदि आप एक पत्रकार और एक अंग्रेजके नाते भारतकी शान्तिको सुरक्षित रखना चाहते हों और चाहते हों कि भारत युद्धकी समाप्ति और शान्तिका उत्सव सच्चे दिलसे मनाये तो आपको चाहिए कि आप भारतवासी अंग्रेजोंसे कहें कि वे मुसलमानोंका समर्थन करें और ब्रिटिश मन्त्रियोंको भारतकी सच्ची भावना जता दें ताकि समय रहते न्याय किया जा सके।

चूँकि आपने मुझे अपना पत्र छापनेकी अनुमति दे दी है अतः मैं आपका पत्र और यह उत्तर छपनेके लिए भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, १८-१२-१९१९

२२७. पंजाबकी चिट्ठी – ७

[दिसम्बर १५, १९१९ के लगभग][1]

चुड़खाना

मैंने अपना अन्तिम पत्र शेखूपुरासे लिखा था। शेखूपुरा बादशाह जहाँगीर द्वारा बसाया हुआ नगर है। इसमें एक किला और एक विशाल मन्दिर आदि हैं। वे देखने लायक माने जाते हैं। मुझे तो उन्हें देखने जानेका समय नहीं मिला। कहते हैं कि अमृतसरका स्वर्णमंदिर इसीकी नकल है और इसकी अपेक्षा छोटा है।

शेखूपुरासे हम चुड़खाना गये। यह गाँव स्टेशनसे कुछ दूर है। लेकिन हमें काम तो चुड़खानाकी 'मंडी' में था। बाजारको यहाँ मंडी कहते हैं। लेकिन गुजराती बाजार और पंजाबकी मंडीमें भेद है। यहाँ मंडीका अर्थ है एक बड़ा चौक और उसके आस-पासके घर। चौकमें अनेक तरहका माल आता है और आसपास दुकानें होती हैं। चुड़खानाकी मंडी अपेक्षाकृत बड़ी है और वहाँ हजारोंका माल रहता है। चुड़खानासे कुछ बड़ी नहरें निकलती हैं। इसलिए उसके आसपास कपास आदिकी बहुत अच्छी फसल होती है। हमने देखा कि लोगोंने चुड़खानाके स्टेशनमें आग लगायी थी तथा दूसरी तरहसे भी नुकसान पहुँचाया था। अन्य स्थानोंकी भाँति यहाँ भी मंडीके समीप एक भारी सभाका आयोजन किया गया था। चुड़खाना स्टेशनपर बहुतसे व्यक्ति जमा हो गये थे और हमें सब लोगोंके साथ चलकर उस स्थानपर पहुँचना था जहाँ हमें ठहराया गया था। लेकिन सब लोग मेरी ओर इस तरह धँसते चले आ रहे थे कि चलना मुश्किल हो गया। मेरा बचाव करनेमें तो आसपासके व्यक्तियोंने कोई त्रुटि न रखी, फिर भी मेरे नंगे पाँव कुचले तो गये ही। प्रत्येक व्यक्तिको 'दर्शनों' का अतिशय लोभ था। गाँवोंके आसपास धूल तो होती ही है, इससे मुँह, नाक और कानोंमें कुछ कम धूल नहीं गई। शोर भी बहुत ज्यादा हो रहा था। इस कारण सभामें मैंने लोगोंसे अनुशासनकी कमीके सम्बन्धमें काफी बातकी। [मैंने कहा] लोग जिन्हें बड़ा मानते हैं उनका वे आदर-सत्कार करें यह तो ठीक है, लेकिन यह भावना यदि शुद्ध स्वरूप धारण न करे तो इससे देशका नुकसान ही होता है। और फिर जहाँ पहलेसे कुछ बन्दोबस्त नहीं होता, जहाँ लोगोंको पहलेसे ही तालीम नहीं दी गई होती वहाँ अधिक तकलीफ हो जाती है। औरोंको मार्ग देते हुए चलें, जिन्हें मान देते हों उनके पीछे चलें, उनसे थोड़ी दूर चलें, व्यर्थका शोर न करें, मुखियाकी बात सुनें — ये सब ऐसी बातें हैं जो आसानीसे सीखी जा सकती हैं।

१. पत्रमें गांधीजीकी दिल्ली यात्राका उल्लेख है जो ११ दिसम्बरको हुई थी। सम्भवतः उन्होंने यह पत्र आनेवाले सोमवारको लिखा था जो इस तारीखको पड़ा था।

सभामें गड़बड़

सभा शुरू हुई उस समय अव्यवस्थाकी हद न थी। सब शोर मचा रहे थे। यह स्थिति मुझे असह्य लगी। मैंने तुरन्त ही लोगोंको विनयपूर्वक बताया कि यदि वे शान्तिपूर्वक बैठ नहीं जायेंगे तो जिसे सुननेके लिए वे इतना शोर कर रहे हैं, उसे सुन नहीं पायेंगे। लोग बैठ गये और बिलकुल शान्त हो गये। स्टेशनके आगे प्रेमके वशीभूत हो लोगोंने जो भूलें की थीं उन्हें बतानेके बाद जब सभा बरखास्त हुई उस समय लोग वहाँसे शान्तिपूर्वक विदा हुए; उन्होंने मेरे आसपास अथवा आगे भीड़ नहीं की। लोगोंमें समझ, विचारशक्ति आदि गुण कम नहीं हैं, लेकिन उन्हें राह दिखानेवालेकी ही जरूरत है। इस सभामें मैंने बताया कि मकान आदि जलानेमें जो भूलें हुई हैं, वे भी तालीमकी कमीके कारण ही हुई हैं। अनेक लोगोंके मनमें मकान आदि जलाने का विचारतक न था। फिर भी जब किसी एक व्यक्तिने मकान जलाना आरम्भ किया तो दूसरोंने भी उसका अनुकरण किया। यदि लोगोंको विचारपूर्वक कदम उठानेकी, उत्तरदायी व्यक्तिकी बात सुननेकी शिक्षा मिली होती तो जो घटनाएँ घटीं वे कभी न हुई होतीं।

दिल्लीमें एक दृश्य

मुझे ११ दिसम्बरको थोड़े समयके लिए दिल्ली हो आनेका अवसर आया था। वहाँ मुझे दक्षिण आफ्रिकाके कामके सिलसिलेमें जाना था, लेकिन मैंने वहाँके प्रसिद्ध बैरिस्टर श्रीराम द्वारा स्थापित सेवा-मंडलके उत्सवकी अध्यक्षता करना भी स्वीकार कर लिया। लोगोंने सुना कि मैं अध्यक्ष बननेवाला हूँ, इस कारण बिना निमन्त्रणके हजारों व्यक्ति आ पहुँचे। उन्होंने ठेलमठेल की और वे दरवाजेसे जबरदस्ती भीतर घुस आये। ऐसे अवसरपर वे लोग यह बात सहन न कर सके कि इसमें केवल टिकटवाले लोग ही जा सकते हैं। सब लज्जित हुए, मुझे भी लज्जा आई। मुझे देखने और मान प्रदान करनेके लिए आनेवाले लोगोंसे इतनी मर्यादाका भी पालन नहीं हो सका, यह कितनी अनुचित बात है?

नेतागण और जनता

लेकिन यह कोई उद्धतता न थी। जिसके 'दर्शन' करने हों उसकी ओर जाते हुए हमें धकेलनेकी जो आदत पड़ गई है वह अनुचित है — ऐसी शिक्षा ही हमें कहाँ मिलती है? तीर्थक्षेत्रोंमें तो नहीं मिलती। "जो जल्दी आये सो पहले पाये", "जिसकी लाठी उसकी भैंस" इन्हीं सूत्रोंपर मन्दिर अथवा हवेलीमें भी अमल किया जाता है। शिक्षित अथवा बड़े लोगोंने इन स्थानोंका त्याग कर रखा है अथवा जब हम इन स्थानोंमें जाते हैं तब उसके लिए अनुकूल प्रबन्ध कर लेते हैं। बुराइयाँ जैसी-की-तैसी चलती रहती हैं। सेवा-मंडलने प्लेगके समय मदद की, मुर्दे जलाये, दवाएँ बाँटीं। वैसा करनेकी आवश्यकता थी। हिन्दुस्तानमें स्थान-स्थानपर यदि इतना भी न किया गया होता तो हम कबके मिट गये होते। लेकिन उतना पर्याप्त नहीं है। यह तो अल्प सेवा है। सेवा-मंडल [की सभा] में पदक और प्रमाणपत्र भेंट किये जानेवाले थे।

वे सब अंग्रेजीमें थे! अब मैं लोगोंकी धक्का-मुक्कीकी बातको समझ सका। नेता और आम जनतामें निकटका सम्बन्ध ही नहीं है। लोगोंको बिलकुल आवश्यक तालीम देनेकी भी हमें गरज नहीं है, हमने उसके साधन भी प्राप्त नहीं किये हैं। जिन्होंने धक्का-मुक्की की थी वे अंग्रेजी नहीं जानते थे। उन्हें हमने दवा तो दी, लेकिन जब वे स्वस्थ हो गये तब उन्हें प्रजातन्त्रमें कैसे भाग लेना चाहिये — यह बात हमें बतानी न आयी। [हमारा ऐसा खयाल है कि] उसके लिए वे अंग्रेजी सीखें तभी तैयार हो सकते हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि हम भी वैसे ही तैयार हुए हैं। इसलिए सामान्य-वर्गने तो अपनी सामान्य आदतके अनुसार धक्का-मुक्की की। यह बात मैंने सभाके सम्मुख रखी। सभा समझी, लज्जित हुई। देशमें जाग्रति आई है। सामान्य जन भी सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेना चाहते हैं, बलिदान करनेके लिए तैयार हैं, लेकिन दिशा नहीं जानते और जबतक लोगोंकी भाषामें हम उन्हें नहीं समझायेंगे तबतक लोग क्या समझें? कैसे समझें?

लायलपुर

अब मैं पुनः चुड़खानापर आता हूँ। चुड़खानासे हम लायलपुर गये। लायलपुर अलग जिला है। जिन पाँच जिलोंमें मार्शल लॉ लगाया गया था उनमें से यह एक है। जिलेका नाम लायलपुर शहरके नामपर पड़ा है। लायलपुर बिलकुल नया शहर है। उसका नाम सर चार्ल्स लायलके[1] नामपर रखा गया है। यह शहर १८९६ में बसाया गया था। शहरके मध्यमें एक गोल चबूतरा है जिसपर एक बड़ा घंटाघर है। यहाँसे आठ रास्ते निकलते हैं। इन रास्तोंपर दुकानें तथा रहनेके मकान हैं। ये सब नये बने हैं — यह हम देख सकते हैं। मुख्य नहर कॉलोनीके नामसे विख्यात इलाका यही है। अच्छेसे-अच्छे गेहूँ तथा कपासकी पैदावार इस नहरवाले प्रदेशमें ही होती है और यहाँके लोग काफी खुशहाल हैं। लायलपुरकी आबादी ३०,००० की होगी। यहाँ मार्शल लॉ के दिनोंमें कहर बरस रहा था। लोगोंने कुछ भी नुकसान नहीं किया था, फिर भी बड़े-बड़े लोगोंको पकड़कर व्यर्थ ही परेशान किया गया था। यहाँ एक भारी सभा भी आयोजित की गई थी। स्त्रियोंकी अलग सभा की गई थी और पुरुषोंकी सभा शहरसे दूर होनेपर भी उसमें बहुत स्त्रियाँ आई थीं। लायलपुरमें हुई सभाका बन्दोबस्त अपेक्षाकृत अच्छा था। जहाँ-जहाँ लोगोंको थोड़ी-बहुत भी शिक्षा मिली है वहाँ-वहाँ उसका प्रभाव तुरन्त दिखाई पड़ता है। मुझे ऐसी खबर दी गई है कि लायलपुरमें चरखेका काम अच्छी तरह चल सकता है।

दस तकुओंवाला चरखा

लुधियानेसे एक कारीगर मुझे दस तकुवोंवाला चरखा दे गया है। युक्ति बहुत ही अच्छी, सस्ती और सहल है। लेकिन वह कारीगर दसों तकुओंपर एक ही समयमें

१. सर चार्ल्स जेम्स लायल (१८४५–१९२०); अंग्रेज प्राच्य-विद्या-विशारद; बंगाल सिविल सर्विसके अधिकारी; मध्यप्रदेशके चीफ कमिश्नर (१८९५–१८९८); भारत कार्यालयमें न्याय और लोक विभागोंके मंत्री (१८९८–१९१०)।

सूत नहीं कात सका। उसमें बुद्धि है लेकिन अनुभवका अभाव होनेके कारण वह आगे नहीं बढ़ सका। समझानेपर वह समझ गया और फिर प्रयत्न करनेके लिए कह गया है। इस चरखेको देखनेके बाद मेरे मनमें यह आशा बँध गई है कि कदाचित् हम हिन्दुस्तानमें दस तकुओंवाला चरखा देख सकेंगे। कानपुरसे भी एक सज्जनने समाचार भेजा है कि उन्होंने ऐसा चरखा तैयार किया है। मुझे आशा है कि जो कारीगर यह काम जानते हैं वे मेहनत करेंगे और एक निश्चित अवधिके बीच ऐसा चरखा तैयार कर सकेंगे जो इनाम प्राप्त कर सकेगा।

यात्राका अन्त

लायलपुरकी यात्रा मेरी यात्राका अन्तिम भाग था। अभी गुजरात जिला बाकी है। लेकिन अब मैंने यह समय रिपोर्ट लिखनेमें लगानेका निश्चय किया है; इस पर एक सप्ताह लगानेके बाद मैं गुजरात जिलेके दौरेपर जानेकी आशा करता हूँ।

श्री जयकरका आगमन

श्री जयकर[1] कांग्रेस उप-समितिकी मदद करनेके लिए बम्बईसे आये हैं। वे फिलहाल श्री अब्बास तैयबजीकी[2] मदद कर रहे हैं। श्री चित्तरंजन दास अमृतसरमें काम पूरा करनेके बाद लाहौर आ गये हैं। पंडित मोतीलाल नेहरूने कांग्रेसका अध्यक्ष-पद स्वीकार कर लिया है। इसलिए कमिश्नरके पदसे उन्होंने त्यागपत्र दे दिया है जिसे पंडित मालवीयजीने स्वीकार कर लिया है। माननीय फजलुल हक बंगाल गये हैं, वे अभी वहाँसे वापस नहीं लौटे हैं। पंडित मोतीलाल नेहरू अपना भाषण तैयार करनेमें लगे हुए हैं। ऐसी उम्मीद की जाती है कि वे अपना भाषण उर्दू-हिन्दीमें देंगे। उसका अंग्रेजी अनुवाद तैयार रहेगा और उन्हें दे दिया जायेगा जो हिन्दी या उर्दू नहीं जानते। हालाँकि उप-समिति की रिपोर्ट जल्दी तैयार हो जायेगी फिर भी उसे लॉर्ड हंटरकी समितिकी रिपोर्ट पेश हो चुकनेके बाद प्रकाशित किया जायेगा। यही उचित भी है क्योंकि लॉर्ड हंटर द्वारा रिपोर्ट पेश किये जानेसे पूर्व अपनी रिपोर्टको प्रकाशित करना अविनयपूर्ण कहा जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१–१२–१९१९

१. डॉ० मुकुन्दराव रामराव जयकर, बैरिस्टर; बम्बई विधान परिषद्के सदस्य; १९१९ में पंजाब दमन-चक्रकी जाँच करनेके लिए जो कांग्रेस समिति बैठी थी उसमें गांधीजीके साथ काम किया; १९३७-३९ में संघीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) के न्यायाधीश; पूना विश्वविद्यालयके उप-कुलपति।

२. अब्बास तैयबजी, गांधीजीके मित्र और भारतमें आरम्भिक सविनय अवज्ञाकी लड़ाईके प्रबुद्ध सैनिक।

२२८. पूर्वी आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थिति[1]

लाहौर,
दिसम्बर १६, १९१९

स्थितिका वर्णन करते हुए श्री गांधीने कहा :

पूर्वी आफ्रिकामें भारतीय विरोधी आन्दोलन नितान्त सिद्धान्तहीन है। दक्षिण आफ्रिकामें इसी किस्मका जो आन्दोलन हुआ था वह देखनमें कुछ युक्ति-युक्त प्रतीत होता था; लेकिन इसमें तो वह बात भी नहीं है। दक्षिण आफ्रिकाका यूरोपीय उपनिवेशी दक्षिणी आफ्रिकाको अपना घर मानता है और यह दावा करता है कि वहाँ आकर बसनेवालोंमें वह अग्रणी है। लेकिन पूर्वी आफ्रिकाका यूरोपीय इस तरहका कोई दावा नहीं कर सकता, उसका तो वहाँ एक ही स्वार्थ है—शोषण। वहाँ बसनेवालोंमें अग्रणी अगर कोई है तो भारतीय लोग ही हैं जो वहाँ तब पहुँच चुके थे जब किसी भी यूरोपीयके पैर वहाँ नहीं पड़े थे। पूर्वी आफ्रिकाके ऊँचे मैदानोंको जबतक भारतीयोंने अपने श्रमसे विकसित नहीं कर दिया तबतक यूरोपीयोंके स्वार्थ पनपनेकी वहाँ कोई गुंजाइश नहीं थी। चूँकि नैरोबीका जलवायु सुन्दर है और शिकार खेलनेकी वहाँ काफी गुंजाइश है अतः भारतीय व्यापारी और भारतीय भूस्वामीको यूरोपीय सहन नहीं कर सकते। पूर्वी आफ्रिकामें बसने और वहाँके राजनीतिक जीवनको प्रभावित करनेके अपने अधिकारोंमें किसी तरहकी कमी हम बरदाश्त नहीं कर सकते। हमें आशा है कि भारत सरकार और शाही सरकार पूर्वी आफ्रिकामें भारतीयोंके अधिकारोंकी पूरी तरह रक्षा करेगी और भारतकी समस्त सार्वजनिक संस्थाएँ इस प्रश्नपर अपनी भावनाएँ साफ-साफ शब्दोंमें व्यक्त करेंगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १७–१२–१९१९

२२९. विदेशोंमें भारतीय

दक्षिणी आफ्रिका, पूर्वी आफ्रिका और फीजी आज हमारे लिए समस्याएँ प्रस्तुत करके उनका समाधान माँग रहे हैं और हमारी राष्ट्रीय क्षमताको चुनौती दे रहे हैं। जबतक अपने छोटेसे-छोटे देशवासीके लिए भी हमारे मनमें वैसा ही दर्द नहीं होगा जैसा कि अपने लिए है तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे अन्दर राष्ट्रीय चेतना है। हमारे वे देशवासी जो संसारके विभिन्न भागोंमें जाकर बस गये हैं नेतृत्व, सहायता और रक्षाके लिए हमारी ओर आँखें लगाये हुए हैं।

१. पूर्वी आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थितिके सम्बन्धमें सी० एफ० एण्ड्रयूज द्वारा नैरोबीसे प्रेषित तार (अगले शीर्षकमें उद्धृत) पर गांधीजीकी टिप्पणी। यह कई समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुई थी।

और इस अवसरपर जैसी परीक्षा राष्ट्रीयताकी हो रही है ठीक वैसी ही साम्राज्यवादी भावनाकी भी हो रही है। यदि साम्राज्यवादका कोई अर्थ है तो वह यही है कि उसमें अपने उन सभी हितोंकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य है जो साम्राज्यके अंग हैं। इस कसौटीके अनुसार वे भारतीय जो विदेशोंमें जाकर बस गये हैं हमसे और शाही सरकारसे दुहरी सुरक्षाकी माँग करते हैं। किन्तु अभी तो ऐसा लगता है कि दोनों ही उनके इस विश्वासको सार्थक करनेमें असफल रहे हैं।

यद्यपि हम उम्मीद कर सकते हैं कि साल खत्म होते-होते अन्तिम घोषणा कर दी जायेगी कि गिरमिटिया प्रथा हमेशाके लिए समाप्त हो गई है, किन्तु यह हमारे या शाही सरकारके लिए श्रेयकी बात नहीं है कि यह भ्रष्ट और अनैतिक प्रथा इतने सालोंतक चलती रही, और यदि हमें अपने उद्देश्यमें सफलता मिल जाती है तो इसका श्रेय मुख्यत: दो अंग्रेज महानुभावों, श्री एन्ड्रयूज और श्री पियर्सनके एक मनसे किये गये प्रयासको है। लेकिन अभी और भी बहुत-कुछ करना बाकी है। फीजी सरकारने इन अभागे मजदूरोंकी खुशहालीके प्रति इतनी लापरवाही बरती है कि उन्हें शिक्षाकी भी उचित सहूलियत नहीं मिल पाई। वे ऐसे लोगोंकी तलाशमें हैं जो उन्हें शिक्षा दें और उनका नेतृत्व करें। सच कहें तो भारतमें ऐसे आदमी पर्याप्त संख्यामें नहीं हैं जो सेवाके रूपमें इस कार्यको करनेके लिए तैयार हों।

पूर्वी आफ्रिकाकी समस्या अधिकाधिक गम्भीर हो चली है जैसा कि नैरोबीसे श्री एन्ड्रयूज द्वारा श्री गांधीको भेजे गये निम्नलिखित तारसे प्रकट होता है:

> **पूर्वी आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थिति अब बहुत नाजुक और खतरनाक हो गई है क्योंकि यूरोपीय संघों द्वारा संगठित प्रयत्न हो रहा है कि भविष्यमें पूर्वी आफ्रिकाका दरवाजा भारतीयोंके लिए बिलकुल बन्द कर दिया जाये और भारतीयोंसे मताधिकार छीन लिया जाये। मुख्य कारण यह बताया जाता है कि भारतीयोंके सम्पर्कमें आकर आफ्रिकी लोगोंका चारित्रिक पतन होता है जबकि पश्चिमी ईसाई सभ्यताके सम्पर्कसे उनका उत्थान होता है। हाल ही में छपी सरकारी आर्थिक आयोगकी रिपोर्टमें यही रवैया अख्तियार किया गया है और भारतीयोंके चारित्रिक पतनका उल्लेख करते हुए दक्षिणी आफ्रिकी [भारतीयों] को अलग रखनेकी नीतिका समर्थन किया गया है। स्थानीय भारतीय कांग्रेसकी एक सभामें, जो अपने प्रभाव और संख्याकी दृष्टिसे उल्लेखनीय थी, इसपर तीव्र रोष प्रकट किया गया है। मैंने भारतीयोंकी प्रार्थना-पर जनवरीतक यहाँ रहनेका निश्चय किया है। मेरे सुझावपर स्थानीय कांग्रेस समितिने जर्मन पूर्वी आफ्रिकामें विशेष अधिकार दिये जानेकी अपनी माँगको छोड़नेका निश्चय किया है, लेकिन यह माँग की है कि उनके वर्तमान सब अधिकार ज्योंके-त्यों बरकरार रखे जायें। यह तार कांग्रेसके सामने और समाचारपत्रोंमें प्रस्तुत करते हुए स्थितिको स्पष्ट कीजिए।**

इस तारसे पता चलता है कि भारतीयोंके विरुद्ध आन्दोलन कितना सिद्धान्तहीन है। जो लोग ईसाई सभ्यताका ढिंढोरा पीटते हैं वे ईसाइयतकी सीखसे अनभिज्ञ हैं और कतई नहीं जानते कि वहाँ बसनेवाले भारतीयोंने किस प्रकार आफ्रिका-

वासियोंको उन्नत किया है। वे इतिहासके इस तथ्यकी अवहेलना करते हैं कि जब पूर्वी आफ्रिकामें एक भी यूरोपीय नहीं था उस समय भारतीय उस भूभागके अन्दरतक पहुँच गये थे और वहाँकी जनताके रीति-रिवाजों और तौर-तरीकोंपर लाभकारी प्रभाव डाल चुके थे। जो भारतीय पूर्वी आफ्रिका गये उन्होंने आफ्रिकियोंपर अपने रीति-रिवाज कभी नहीं थोपे न वे एक हाथमें शराबकी बोतल और दूसरे हाथमें बन्दूक लेकर वहाँ गये, क्योंकि पूर्वी आफ्रिका जानेमें उनका उद्देश्य वहाँके बर्बरोंको "सभ्य बनाना" नहीं था। वे वहाँके लोगोंकी अनुमति लेकर उनसे केवल व्यापार करनेके लिए वहाँ गये और उन्होंने उसी प्रकार वहाँ अपनी सभ्यताकी छाप छोड़ी जिस प्रकार दो भिन्न-भिन्न जातियोंके लोग प्रच्छन्न रूपमें एक दूसरेके आचारसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। यह कहना कि पूर्वी आफ्रिकियोंके बीच भारतीयोंकी किसी भी रूपमें उपस्थिति उनके लिए हानिप्रद है, सुविदित तथ्योंको तोड़ना-मरोड़ना है।

इस सिद्धान्तहीन आन्दोलनके प्रहारसे बचनेके लिए हम क्या करें? पूर्वी आफ्रिकामें यूरोपीयोंके पास वह युक्तिसंगत तर्क भी नहीं है जो दक्षिण आफ्रिकामें उनके पास है — अर्थात् वे यह भी नहीं कह सकते कि वे वहाँ आकर बसनेवालोंमें अग्रणी हैं, क्योंकि पूर्वी आफ्रिकामें अग्रणी वे नहीं बल्कि भारतीय हैं। पूर्वी आफ्रिकाके विकासका श्रेय भारतीय मजदूरोंको है जिन्होंने अपने स्वास्थ्यका खतरा उठाकर भी वहाँ काम किया। यदि सम्राट्की सरकार यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वियोंके स्वार्थपूर्ण आन्दोलनके कारण भारतीयोंके अधिकारोंका एक क्षुद्र-सा अंश भी अर्पित करती है तो यह भारतीयोंके साथ विश्वासघात होगा। श्री एन्ड्रयूजने वहाँ बसे भारतीयों द्वारा विशेष दर्जेके दावेका जिक्र किया है। इस दावेको छोड़कर भारतीयोंने बुद्धिमानी ही की है। यह दावा उन्होंने इसलिए नहीं छोड़ा है कि उनके विरोधियोंके मापदण्डसे वे इसके अधिकारी नहीं हैं बल्कि इसलिए छोड़ा है ताकि स्थिति शान्त बनी रहे और इसलिए कि वे अपनी परिस्थिति बिलकुल न्यायसंगत बनाये रखना चाहते हैं। यदि हम अपने-अपने दावोंको उचित सिद्ध करना चाहते हैं तो यह हमारे और सम्राट्की सरकारके लिए एक और समस्या है।

फिर दक्षिणी आफ्रिकाका सवाल रहता है। और यह सवाल सचमुच सबसे ज्यादा कठिन है। इस अंकमें हम जनरल स्मट्सका वह सहानुभूतिहीन उत्तर[1] छाप रहे हैं जो उन्होंने उनसे मिलनेवाले भारतीय शिष्टमण्डलको दिया है। किसी भी जातिको कभी ऐसा विषम युद्ध नहीं लड़ना पड़ा जैसा कि दक्षिण आफ्रिकाके हमारे देशवासियोंको लड़ना पड़ रहा है। अपने प्रतिद्वन्द्वियोंकी तुलनामें वे निर्धन हैं। उनके पास कोई राजनैतिक शक्ति नहीं है और सन् १८८० से वे सम्मानके साथ जीवित रहनेके अधिकार — एक ऐसा अधिकार जिससे कोई सभ्य सरकार किसी अजनबीको भी वंचित नहीं रखेगी — की रक्षाके लिए लड़ रहे हैं। जिस प्रकार वे डटे रहे वह उनके साहस और उनकी सूझबूझका परिचायक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१२-१९१९

१. देखिए परिशिष्ट १०।

२३०. पत्र: सर जॉर्ज बार्न्ज़को

[दिसम्बर १९, १९१९ के बाद]

[सर जॉर्ज जार्न्ज़,
वाणिज्य और उद्योग विभाग
भारत सरकार
नई दिल्ली]

प्रिय सर जॉर्ज बार्न्ज़,

डाक-विभागके कई क्लर्क मुझसे आकर मिले हैं। वे सन् १९१८ से वेतनवृद्धिकी माँग कर रहे हैं पर अभीतक कुछ भी वेतनवृद्धि स्वीकार नहीं हुई है। उन्हें हाल ही में मालूम हुआ है कि तार-कर्मचारियोंको कुछ वेतनवृद्धि दी गई है। सबसे अन्तिम उत्तर जो उन्हें मिला है उसपर पंजाबके पोस्टमास्टर जनरलके हस्ताक्षर हैं और वह इस प्रकार है:

डाक और तार-विभाग
विशेष परिपत्र संख्या ११

लाहौर
दिसम्बर १९, १९१९

पंजाब और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त क्षेत्रके
सभी सुपरिंटेंडेंटों, हेड और सब-पोस्टमास्टरोंको

मुझे क्लर्क-वर्गके वेतनमें वृद्धिके सम्बन्धमें कर्मचारियोंके कई तार और प्रार्थनापत्र मिले हैं। इन प्रार्थनापत्रोंसे लगता है जैसे इस सम्बन्धमें अभीतक कुछ हुआ ही न हो। ऐसी बात नहीं है। वर्षके प्रारंभमें ही डायरेक्टर जनरल महोदयने यह सवाल हाथमें लिया था और उनके सुझाव भारत सरकारके सामने रखे गये थे। योजना बड़ी है और इस समय भारत मंत्रीके सामने है। यह आशा की जाती है कि इस मासके अन्ततक उनकी आज्ञा प्राप्त हो जायेगी और नये वेतन-क्रम पीछेकी तिथिसे लागू होंगे। जो देरी हुई है, और जिसके लिए डायरेक्टर जनरल महोदय जिम्मेदार नहीं हैं, उसके लिए मुझे दुःख है, और इस बीच भारत सरकार और वाइसरायको तार और प्रार्थनापत्र भेजना धन तथा समय नष्ट करना है।

पी० जी० रॉजर्स,
पोस्टमास्टर जनरल,
पंजाब और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त क्षेत्र

इस उत्तरसे वे लोग तो क्या सन्तुष्ट होंगे जिनके पास दो जून रोटीके लिए भी पैसे नहीं है। मैंने बाबुओंसे धैर्य रखनेको कहा है। किन्तु मुझे आशा है कि आप इस प्रश्नको तात्कालिक समझकर कोई दिलासा देनेवाली घोषणा करेंगे।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखी मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०८२) से।

२३१. टिप्पणीका अंश[1]

[दिसम्बर १९, १९१९ के बाद]

किन्तु देशके लिए श्री शास्त्रीके[2] कामका मुख्य भाग प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ रहा हैं। लेकिन जब इन सुधारोंका इतिहास लिखा जायेगा तब देश देखेगा कि जो हम सबको प्रिय है उस उद्देश्यकी सिद्धिमें श्री शास्त्रीकी भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण थी। अभी बहुत कुछ . . .

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०८२) की फोटो-नकलसे।

२३२. पंजाबकी चिट्ठी–८

लाहौर
रविवार [दिसम्बर २१, १९१९][3]

जलियाँवाला बाग

माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयजी तथा श्री नेविलके साथ मैं अमृतसर, जलियाँवाला बाग और वे गलियाँ जहाँ लोगोंको पेटके बल रेंगकर चलाया गया था देखने गया था। हम मोटरमें गये थे, रास्तेमें खालसा कॉलेज आता है, इसलिए उसे देखनेके लिए उतरे। कॉलेज एक विशाल मैदानमें है। इसमें मुख्तया सिख विद्यार्थी ही पढ़ते हैं। कॉलेजका एक छात्रालय भी है। इस कॉलेजकी भूमि एक सौ एकड़ है। कॉलेजके भवनका अभी पूरी तरहसे निर्माण नहीं हो पाया है। इसके प्रिंसिपल श्री वायन हैं। यहाँ विद्यार्थियोंको खेती-बाड़ीकी शिक्षा भी दी जाती है। उन्हें खेतीकी जो शिक्षा दी जाती है वह व्यावहारिक शिक्षा है। इस बारेमें मैं किसी दूसरे अवसरपर अधिक जानकारी देनेका विचार रखता हूँ।

१. यह स्पष्ट नहीं है कि ये पंक्तियाँ किसी लेखका अंश हैं या किसी पत्रका। यह पिछले शीर्षक "पत्र: सर जॉर्ज बार्न्सको", के पिछले हिस्सेपर लिखी हुई थीं।

२. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री।

३. यह पत्र स्पष्टतः कांग्रेस-अधिवेशनसे पूर्व रविवारको लिखा गया था।

यहाँसे हम जलियाँवाला बाग देखने गये। इसका नाम बाग रखा गया है, यह गलत है। 'जलिया' शब्द उपनाम है — उसके मूल मालिकका। यह 'बाग' फिलहाल चालीस हिस्सेदारोंकी मिल्कियत है। यह बाग नहीं बल्कि एक घूरा है। इसके चारों ओर घरोंका पिछला भाग पड़ता है, और पीछेकी खिड़कीसे लोग अपने घरोंका कूड़ा इसमें फेंकते हैं। इसमें तीन पेड़ और एक छोटीसी कब्र है। यह बिलकुल मैदान है और एक सँकरी गलीमें से इसमें प्रवेश किया जा सकता है। इस गलीमें से जनरल डायरने प्रवेश किया। इसीलिए १३ तारीखको जो लोग इस बागमें एकत्रित हुए थे वे फँस गये। इस 'बाग' में से तीन-चार जगहोंसे निकला जा सकता है लेकिन यह दीवार कूदकर ही सम्भव हो सकता है, इस तरह कूदकर ही हजारों व्यक्ति उस दिन अपनी जान बचा सके थे।

इस बागमें निरपराधी व्यक्तियोंके लहूकी नदी बही, इससे अब यह स्थान पवित्र बन गया है। इस स्थानको राष्ट्रके लिए प्राप्त करनेके प्रयत्न चल रहे हैं, यदि उसमें असफलता मिली तो यह हमारे लिए शर्मकी बात होगी।

कांग्रेसकी तैयारी

जब यह पत्र प्रकाशित होगा उससे पूर्व कांग्रेसकी पहली बैठक तो हो चुकी होगी। सब तैयारियाँ हो रही हैं। हजारों व्यक्तियोंके आनेकी आशा है। पंडित मोती-लालजी अपना व्याख्यान तैयार कर रहे हैं। स्वामी श्री श्रद्धानन्दजीने अपना व्याख्यान तैयार कर लिया है, वह हिन्दीमें है।

विविध

श्री जयकर यहाँ आये हुए हैं और उन्हें पंडित मालवीयजीकी एवजमें कमि-श्नर[1] नियुक्त किया गया है।

हंटर समितिका यहाँका काम लगभग पूरा हो गया है। अहमदाबादमें जनवरीकी ५ तारीखको उसकी बैठक आरम्भ होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८–१२–१९१९

१. कांग्रेस द्वारा नियुक्त जाँच-समितिका सदस्य।

२३३. भाषण : अखिल भारतीय मानव-दया सम्मेलनमें

अमृतसर

दिसम्बर २८, १९१९

सभा विसर्जित करनेसे पहले महात्मा गांधीने कहा कि इतने शोरगुल और गड़बड़ीकी स्थितिमें सभाका कार्य चलाना असंभव है और सभाको ऐसी स्थितिमें जारी रखना क्रूरता होगी। उन्होंने कहा कि यह बात मेरे लिए सबसे अधिक दुर्भाग्यकी है क्योंकि इस समय सभाकी जो हालत है उसे देखते हुए मैं भाषण नहीं दे सकता। उन्होंने प्रार्थनाकी कि यदि लोगोंके दिलोंमें मेरे प्रति कुछ भी सम्मान हो तो वे शाकाहारी बनें और किसी भी प्राणीकी हत्या न करें। मुझे बताया गया है कि पंजाबके लोग मांसाहारी हैं। वह महान् दिन होगा जब पंजाबी भी शाकाहारका महत्त्व समझ लेंगे। उन्होंने विस्तारसे अहिंसाकी भी व्याख्या की और दुधारू और जिन्होंने दूध देना बन्द कर दिया है ऐसे पशुओंको जो कि भारतकी वास्तविक सम्पत्ति हैं, सुरक्षित रखनेका महत्त्व बताया। इसके बाद उन्होंने सभा समाप्त होनेकी घोषणा की।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, ३१-१२-१९१९

२३४. भाषण : अमृतसर कांग्रेसमें[1]

दिसम्बर २९, १९१९

तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच महात्मा गांधी उठे और दूसरा प्रस्ताव पेश करते हुए उन्होंने कहा कि जो प्रस्ताव[2] उन्हें सौंपा गया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। सभी भारतीय इस बारेमें एक मत हैं कि भारत उत्तरदायी सरकारका अधिकारी है। यदि ऐसा है तो हमें अपने उन भाइयों और बहनोंकी सहायता करनी चाहिए जो इस समय दक्षिणी आफ्रिकामें यातनाके शिकार हैं। इस साल पंजाबमें हमारे भाइयोंपर जो अत्याचार किये गये वे हृदयको बींधनेवाले हैं। भारतमें एक भी ऐसा आदमी नहीं है जो उनके दुःखसे दुःखी न हो, किन्तु दक्षिणी और पूर्वी आफ्रिकामें परिस्थितियाँ उससे

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका यह अधिवेशन २७ दिसम्बर, १९१९ से १ जनवरी, १९२० तक अमृतसरमें हुआ था। गांधीजीने अस्वस्थताके कारण बैठे-बैठे अपना भाषण पहले हिन्दीमें दिया था। भाषणकी हिन्दी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है; अतः उसका अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया है।

२. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रवासियोंसे सम्बन्धित यह प्रस्ताव और इसका दूसरा भाग पूर्वी आफ्रिकाके भारतीयोंकी दशाके बारेमें था।

भी बुरी हैं और तुरन्त ध्यान देनेकी आवश्यकता है। महात्मा गांधीने बताया कि किस प्रकार गिरमिटिया प्रथाका आरम्भ भारत सरकारसे भारतीय श्रमिकोंकी माँगकी जानेपर नेटालके गोरोंकी प्रार्थनासे हुआ। उन्होंने कहा कि भारतकी जेलोंमें कैदी जैसा जीवन बिताते हैं, यह प्रथा उससे भी कहीं ज्यादा बुरी है। सर विलियम हंटरने उसे दास प्रथा कहा है। हमारे भारतीय भाई इस प्रथाके अन्तर्गत दक्षिण आफ्रिका गये थे।[1] व्यापारके क्षेत्रमें भारतीयोंकी सफलताने उन निरंकुश अत्याचारोंको जन्म दिया जिसके वे आज शिकार हैं। उनका व्यापार कुचल दिया गया। आज्ञा दे दी गई कि गिरमिटिया मजदूर किसी किस्मका व्यापार नहीं कर सकते और उन्हें [सदा] गिरमिटिया मजदूर ही रहना पड़ेगा। कहा गया कि भारतीयोंकी आदतें गन्दी हैं और चूँकि उनकी सभ्यता गोरोंकी सभ्यतासे भिन्न है अतः गोरे उनके साथ नहीं रह सकते। उनपर झूठे आरोप लगाये गये और उन्हें भारत वापस भेजनेका प्रयत्न किया गया। दक्षिण आफ्रिका वह जगह है जहाँ भारतीय अपने देशके सम्मानकी रक्षाके लिए बढ़े और बीस हजार[2] आदमियोंको इसके लिए जेल जाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें वहाँ बसे रहने दिया गया। १९१४ में भारतीयोंको अनेक अधिकार प्रदान किये गये। [नेटालकी ही भाँति] ट्रान्सवालमें भी वैसा ही हुआ। ट्रान्सवालके भारतीय वहाँ अचल सम्पत्तिके स्वामित्व और व्यापारका अधिकार चाहते थे। किन्तु इससे उन्हें वंचित रखा जा रहा था। वे चाहते थे कि भारत सरकार उन्हें ये अधिकार दिलाये और भारतके सम्मानको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करे। प्रस्तावका दूसरा भाग पूर्वी आफ्रिकासे सम्बन्धित था। भारतीय लोग वहाँ गिरमिटिया प्रथाके अन्तर्गत नहीं, बल्कि व्यापारके लिए गये थे। अनेक मुसलमान भाई जंजीबार गये और वहाँ व्यापारमें इतने सफल हुए कि आफ्रिकी लोग भी उनके प्रभावमें आ गये। उन्हें उन स्थानोंमें पहुँचनेके लिए घने और खतरनाक जंगलोंको पार करना पड़ा और वहाँके निवासियोंसे प्रेमका व्यवहार करते हुए उन्होंने व्यापार शुरू किया। कुछ समय पश्चात् गोरोंने भी उन इलाकोंमें जानेका साहस किया। उन्होंने भारतीयोंको सहायताके लिए बुलाया। हमारे सिख भाई युगांडा आदि प्रदेशोंमें गये और भारतीय मजदूरोंके श्रमसे ही वहाँ रेल-मार्गका निर्माण सम्भव हुआ। यह सब हो चुकनेके बाद गोरोंने भारतीयोंको उस स्थानसे, जिसे उन्होंने अपने श्रमसे रहने योग्य बनाया था, निकालना चाहा। भारतीयोंने भारत सरकारसे, जो भारतके हितोंकी संरक्षक है, तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे, जो भारत राष्ट्रकी प्रतिनिधि संस्था है — कहा कि वे इस मामलेमें हाथ डालें और आफ्रिकामें कष्ट भोग रहे अपने भाइयोंकी रक्षा करें।

१. **लीडर, ट्रिब्यून** और **न्यू इंडिया**में प्रकाशित भाषणकी रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने इस जगह अली बकर अहमदका दृष्टान्त दिया, जो ट्रान्सवालमें जाकर बस गये थे और खूब सम्पन्न तथा समृद्ध हो गये थे।

२. निश्चय ही यह संख्या गलत है। जैसा कि समाचारपत्रोंकी रिपोर्टमें दिया गया है, सही संख्या २,००० थी।

तत्पश्चात् महात्मा गांधीने प्रस्ताव पढ़ा जो इस प्रकार था :

(अ) यह कांग्रेस दक्षिणी आफ्रिकामें वहाँके भारतीयोंको स्वामित्व तथा व्यापारके अधिकारोंसे — जिनका वे अबतक उपयोग करते रहे हैं — वंचित करनेके प्रयत्नोंके प्रति विरोध प्रकट करती है और आशा करती है कि भारत सरकार हाल ही में बनाये गये कानूनको रद करवायेगी और वहाँ बसनेवाले भारतीयोंकी मर्यादाकी रक्षाके दूसरे उपाय भी करेगी।

(ब) इस कांग्रेसका मत है कि पूर्वी आफ्रिकामें चलनेवाला भारत विरोधी आन्दोलन नितान्त सिद्धान्तहीन है और वह आशा करती है कि भारत सरकार भारतसे पूर्वी आफ्रिकाके लिए निर्बाध तथा अमर्यादित प्रवासके अधिकारकी तथा पूर्वी आफ्रिका — जिसमें जर्मनीसे जीता गया इलाका शामिल है — में बसनेवाले भारतीयोंके सभी नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारोंकी रक्षा करेगी।

अंग्रेजीमें बोलते हुए महात्मा गांधीने कहा :

यह वह पत्र है जो श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने कांग्रेसको लिखा है। जैसा कि आप जानते हैं, इस समय वे पूर्वी आफ्रिकामें हैं और स्थितिकी जाँच कर रहे हैं। वे लिखते हैं :

> भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके महानुभावो, आप उस गहरे दुःख और रोषका अनुमान लगा सकते हैं जो पूर्वी आफ्रिकाके निवासी भारतीयोंको वहाँके यूरोपीय निवासियों द्वारा दी गई चुनौतीसे मुझे हुआ है। इस पत्रके अन्तमें मैं इस विषयसे सम्बन्धित दो महत्त्वपूर्ण दस्तावेजोंकी नकल नत्थी कर रहा हूँ। जबसे मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे यह देखा कि भारतीयोंके चरित्रपर किया गया प्रहार कितना अनुचित है तबसे मेरा रोष और भी गहरा हो गया है। यदि इस चुनौतीका आधार केवल आर्थिक होता तो इस आक्रमणका सामना बिना किसी प्रकारके रोषके किया जा सकता था। दूसरे लोगोंसे अधिक परिश्रमी और मितव्ययी कहलाये जानेमें किसी प्रकारका असम्मान नहीं है और अबतक भारतीय आव्रजनको रोकनेके लिए, खुले रूपमें, यही एक आधार बताया जाता था। किन्तु पूर्वी आफ्रिकामें यह नई चुनौती बिलकुल भिन्न प्रकारकी है।[1] यहाँ हमला मुख्यतः भारतीय चरित्रपर है। खुल्लमखुल्ला यह कहा जाता है कि भारतीय अपने चाल-चलनमें इतने पतित हैं कि उन्हें पूर्वी आफ्रिकाको अपने सम्पर्कसे गंदा करनेकी छूट नहीं दी जा सकती। मैं उन दो दस्तावेजोंसे उद्धरण दूँगा जिनमें हमपर यह भद्दा आरोप लगाया गया है। पहला एसोसिएसन्स ऑफ ईस्ट आफ्रिका नामकी एक संस्थाके — जो देशकी सबसे महत्त्वपूर्ण गैरसरकारी संस्था है और जिसे गोरोंकी संसद कहा जाता है — सम्मेलनमें की गई एक घोषणा है। घोषणाका आरम्भ इस प्रकार होता है: "यह सम्मेलन सरकारको

१. **न्यू इंडिया**की ३०-१२-१९१९ की रिपोर्टमें यह वाक्य इस प्रकार है: किन्तु पूर्वी आफ्रिकाने एक नई चुनौती दी है और यह चुनौती बिलकुल भिन्न प्रकारकी है।

बताना चाहता है कि भारतीयोंसे सम्बन्धित प्रार्थना-पत्रपर और साथ-साथ इस देशके मूल निवासियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य प्रार्थना-पत्रोंपर विचार-विमर्शके समय उसे चार धर्म प्रचारकोंकी सहायता उपलब्ध थी, जिनमें एक रोमन कैथोलिक था और तीन उस धर्म प्रचारक परिषद्के सदस्य थे, जो इस सम्मेलनके समय नैरोबीमें चल रही थी।"

घोषणामें आगे कहा गया है: "चूँकि ज्ञान-विज्ञान और प्रगतिके हमारे राष्ट्रीय आदर्श हमारी ईसाई और पश्चिमी सभ्यतामें मूर्त हुए हैं और हमारा कर्त्तव्य है कि हम यह ध्यान रखें कि इसमें जो-कुछ उत्तम है वह आफ्रिकाकी जाग रही जनताको, उसकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए, आसानीसे मिलता रहे, और चूँकि इस देशका अस्तित्व केवल गोरोंके चरित्र बल और प्रतिष्ठापर आधारित है, और चूँकि कुछ भारतीय यहाँ व्यापारियों, बाबुओं और सहायकोंके रूपमें घुस आये हैं और चूँकि ये लोग सब तरहसे एक ऐसी सभ्यताका अनुगमन करते हैं जो पूर्वी है और कई प्रकारसे हमारी सभ्यताके प्रतिकूल है आदि।" तो यह है उनका मुख्य आरोप जो यहाँ कुछ अशिष्ट भाषामें रखा गया है। अन्तमें यह अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। घोषणामें आगे कहा गया है: "इस भू-भागको जर्मनीको वापिस दे दिये जानेके अतिरिक्त हम किसी कार्यको इतना अनैतिक और खुद अपने ही सिरपर टूट पड़नेवाला नहीं मानते जितना कि आफ्रिकी जनताके एकभागको — जिनका भाग्य हमारे हाथोंमें है और जो इस समय स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते — धोखा देकर एशियाइयोंके सुपुर्द कर देना। हमारा निवेदन है कि भारतीय या दूसरे-किसी आन्दोलनके लिए आफ्रिकी जनताके हितोंको दाँवपर लगाना न तो बुद्धिमानी है और न सम्मानजनक।"

दूसरा दस्तावेज इससे भी अधिक व्यावहारिक महत्त्वका है। इसको हर प्रकारसे एक सरकारी दस्तावेज माना जा सकता है। यह दस्तावेज उस आर्थिक आयोगकी रिपोर्टका एक अंग है जिसके अध्यक्ष एक प्रमुख सरकारी अधिकारी थे। आयोगके निर्णय सर्वसम्मत थे। मैं उसमें से निम्नलिखित अंश उद्धृत कर रहा हूँ:

"दुर्भाग्यकी बात है (मैं फिर घोषणासे उद्धरण दे रहा हूँ) कि भारतीयोंको यहाँ अथवा आफ्रिकाके किसी भी अन्य भागमें न आने देनेके इससे भी सबल कारण हैं। किसी भारतीयका सम्पर्क हितकर नहीं है क्योंकि सफाई और शारीरिक स्वच्छताके नियमोंसे वह बिदकता है। भारतीयोंकी चरित्रहीनता आफ्रिकियोंके लिए और भी अधिक हानिकारक है, जो कमसे-कम अपनी स्वाभाविक अवस्थामें पूर्वकी सबसे कुत्सित बुराइयोंसे अपरिचित हैं। भारतीय जुर्म और हिंसाको बढ़ावा देता है।[1] हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस देशपर आधिपत्य जमानेका जो

१. समाचारपत्रोंके विवरणमें यह वाक्य नहीं है।

सबसे बड़ा औचित्य हमारे सामने है वह यह कि हम यहाँके निवासियोंको अपनी सभ्यताके अनुरूप बदल सकते हैं। यह आफ्रिकियोंके प्रति विश्वासघात होगा यदि हम उन्हें यूरोपीय जीवनदर्शनसे भिन्न एशियाई जीवनदर्शनके प्रतिकूल प्रभावमें आने दें तो इस कामको और उलझा देंगे।"

भारतीय प्रश्नपर अल्पमतकी एकमात्र रिपोर्ट (श्री एन्ड्रचूज लिखते हैं) श्री कॉबकी अतिरिक्त टिप्पणी थी। वे कहते हैं कि भारतीयोंके बारेमें जो उद्धरण उन्होंने दिया है वह आयोगके सभी सदस्योंने मिलकर तैयार किया था किन्तु अन्तिम बैठकमें उसको छोड़ दिया गया। किन्तु श्री कॉबको इससे सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने अपने हस्ताक्षरके साथ उसको रिपोर्टमें शामिल कर लिया। श्री कॉबकी टिप्पणी बहुत मानों में 'कन्वेंशन ऑफ एसोसिएशन्ज' की घोषणासे मिलती-जुलती है और सिद्ध करती है कि भारतीय प्रश्नपर सरकारी और गैर-सरकारी यूरोपीय लोगोंमें कोई भेद नहीं है। श्री कॉबका उद्धरण आप देख ही लें। वह इस प्रकार है:

"आयुक्तगण (रिपोर्टके) अध्याय ७ में बता चुके हैं कि हमारी रायमें आफ्रिकियोंके — जिनके भाग्यका उत्तरदायित्व हमपर है, किसी भी भागको धोखेसे एशियाइयोंके सुपुर्द न करनेके कौन-कौनसे मूल कारण हैं — भू-भागको जर्मनीको वापस कर देनेके अतिरिक्त (यह श्री कॉबका सुझाव है) यदि भारतको फैलावके लिए स्थानकी आवश्यकता है तो एशियामें विशाल, रीते भू-भाग हैं जो विकासकी प्रतीक्षामें हैं और जिनपर अपनी शक्ति केन्द्रित करना भारतके लिए अधिक उपयोगी होगा।"

कांग्रेसके महानुभावो, (श्री एन्ड्रचूज अपनी बात समाप्त करते हुए कहते हैं) यदि भारतीयोंके चरित्रपर इस हमलेके लिए कोई आधार होता तो मैं तथ्योंको प्रकाशमें लानेसे कभी न हिचकता। उससे पहले एक बार फीजीमें मुझे यही करना पड़ा था। वहाँ भारतीय लोग गिरमिटिया प्रथाके अन्तर्गत काम कर रहे थे। जैसा आप सब जानते हैं, मैंने उस समय साफ और सच्ची बात कह देनेमें आनाकानी नहीं की थी। किन्तु पूरी स्थितिका मौकेपर निरीक्षण कर चुकनेके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि यहाँके भारतीयोंपर लगाया गया आरोप मूलतः निराधार है। मैंने युवा गुजरातियोंको — जो कि पूर्वी आफ्रिका आनेवाले भारतीयोंका मुख्य भाग हैं — ऐसा गृहस्थ और सामाजिक जीवन बिताते पाया है जिससे भारतका मान बढ़ता है। मैं इस पत्रमें इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता कि जिस निष्कर्षपर मैं पहुँचा हूँ उसे जोरदार शब्दोंमें व्यक्त कर दूँ। यदि सम्भव होता तो मैं स्वयं वापस आकर स्थितिको आपके सामने रखता। किन्तु मुझे तुरन्त दक्षिण आफ्रिका जाना है। सज्जनो, मुझे विश्वास है कि आप स्वयं यह चुनौती स्वीकार करेंगे और भारतकी

सन्तानके चारित्रिक मानकी रक्षा करेंगे। मेरा यह भी विश्वास है कि भारतीयों-पर चरित्र-भ्रष्टताका आरोप लगाकर उन्हें पूरे आफ्रिकासे निष्कासित करनेके जो प्रयत्न हो रहे हैं उनके प्रति आप स्वयं कांग्रेसके समक्ष और मुस्लिम लीगके समक्ष तथा भारतके कोने-कोनेमें विरोध प्रकट करेंगे।

मैं दोनों प्रस्तावोंको कांग्रेसके सामने रखता हूँ और आशा करता हूँ — मुझे इसमें रत्ती-भर भी शंका नहीं है — कि आप इस चुनौतीको स्वीकार करेंगे और पूर्वी आफ्रिकाके गोरोंको समुचित उत्तर देंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३१ दिसम्बर, १९१९को अमृतसरमें हुए चौंतीसवें अधिवेशनकी रिपोर्ट।

२३५. शाही घोषणा

दिसम्बर २४को सम्राट्ने जो घोषणा-पत्र जारी किया है अंग्रेजोंको उसपर गर्व होना पूर्णतया उचित है और प्रत्येक भारतीयको उससे सन्तोष होना चाहिये। लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने जो गवाहियाँ दी गई हैं और उनसे जो बातें प्रकट हुई हैं उनके बाद ऐसे घोषणा-पत्रसे अंग्रेजोंके वास्तविक चरित्रका पता लगता है। जहाँ घोषणा-पत्र अंग्रेजोंके चरित्रके उज्ज्वल पक्षको प्रकट करता है वहाँ जनरल डायरकी अमानुषिकताके बुरेसे-बुरे पक्षको भी प्रकट करता है। घोषणा-पत्रसे प्रकट होता है कि सम्राट्के हृदयमें न्याय करनेकी सदिच्छा है और जनरल डायरकी करतूत इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मनुष्य भय और उत्तेजनामें पड़कर शैतानका रूप धारण कर लेता है। इस तरहकी इन दो घटनाओंका एकके बाद दूसरीका घटित होना मात्र संयोगकी बात है। सम्राट्ने जिस महान् विधेयकको स्वीकृति दी, यह घोषणा-पत्र उसीका एक अनिवार्य परिणाम है। इसे उसकी चरम परिणति कहना चाहिए। सुधार अधिनियम तथा घोषणा-पत्रको साथ मिलाकर पढ़ने और विचार करनेसे स्पष्टतः विदित हो जाता है कि ब्रिटिश लोग भारतके साथ न्याय करनेकी सदिच्छा रखते हैं। इसलिए इस सम्बन्ध-में जिन लोगोंके हृदयमें किसी तरहकी आशंका हो वह इसे देखकर दूर हो जानी चाहिए। पर इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं कि हमें हाथपर-हाथ रखकर शान्त होकर बैठे रहना चाहिए कि अब तो हमें सभी वांछित फल मिल जायेंगे। ब्रिटिश संविधान प्रणालीका यही रहस्य है कि कठिन संघर्ष किये बिना उससे किसी वस्तुकी प्राप्ति नहीं हो सकती। पार्लियामेंटमें बार-बार ऐसे वक्तव्य दिये जाते रहे हैं कि ये सुधार भारतीय आन्दोलनके कारण मंजूर नहीं किये गये हैं, पर उनपर किसीको

१. प्रस्तावका अनुमोदन दक्षिण आफ्रिकाके नादिरशाह कामा और समर्थन **इंडियन सोशल रिफॉर्मरके** सम्पादक क० नटराजन्ने किया।

विश्वास नहीं होता। हमें कांग्रेसके इस अधिवेशनके सभापतिकी बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिए कि आन्दोलनके बिना हमें कुछ भी नहीं मिल सकता। यदि जनताके अधिकारोंके लिए कांग्रेस इस तरह आन्दोलन न करती तो आजतक हमें कुछ भी प्राप्त न होता। आन्दोलनका मतलब इतना ही है कि हम लोग जो चाहते हैं उस दिशामें बढ़नेका प्रयत्न करना। जिस प्रकार प्रत्येक गतिके माने प्रगति नहीं होते उसी तरह प्रत्येक आन्दोलनके माने भी सफलता नहीं है। अनुशासनरहित आन्दोलन — जिसे वाणी और कर्मकी हिंसाका ही रूप कह सकते हैं — राष्ट्रीय विकासमें बाधक होता है और कभी-कभी इसके फलस्वरूप जलियाँवाला बागके कत्लेआम जैसी प्रतिहिंसापूर्ण घटनायें हो जाती हैं। राष्ट्रीय विकासकी पहली शर्त अनुशासनयुक्त आन्दोलन जारी करना है। इसलिए सर्वाधिक उचित आन्दोलन वही है जिसमें आन्दोलन करनेवालोंकी कार्रवाई सर्वथा उचित हो। इसलिए शाही घोषणा तथा शासन सुधारोंके कारण हमारे आन्दोलनकी गति रुकनी या कम नहीं पड़नी चाहिए; बल्कि हमें और अधिक आन्दोलन और सही ढंगकी कार्रवाईके लिए तैयार रहना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं कि शासन सुधार अधूरे हैं। उनसे हमें यथेष्ट नहीं मिला है। हमें इससे अधिक मिलना चाहिए था। क्योंकि हम इससे अधिक पानेकी योग्यता रखते हैं। पर ये सुधार ऐसे नहीं हैं जिनको हम अस्वीकार कर दें। बल्कि ये सुधार ऐसे हैं जिनको स्वीकार करके हम प्रगति कर सकते हैं। इसलिये हमारा कर्त्तव्य यही है कि हम शान्तचित्त होकर इनको पूरी तौरसे सफल बनानेके लिये काम करना शुरू कर दें और इस प्रकार उस दिनको निकट लायें जब हम पूर्ण उत्तरदायी शासन सौंपे जानेके योग्य समझे जायेंगे। इसलिए हमें अब आत्मसुधारका आन्दोलन करना चाहिए। हमें अधिकसे-अधिक चेष्टा करनी चाहिए कि सामाजिक बुराइयाँ हममें से दूर हो जायें, हम एक शक्तिशाली निर्वाचक मंडल तैयार करें और परिषदोंमें हम उन्हीं लोगोंको भेजें जो नाम और पदके भूखे न हों और जो देशसेवाके खयालसे वहाँ जायें।

अंग्रेजों और भारतीयोंके बीच घोर अविश्वास रहा है। जनरल डायर मनुष्यकी मर्यादाको भूल गया और पशुवत् आचरण कर बैठा, इसलिए कि उसके हृदयमें अविश्वास और तज्जनित भय घुसा था। उसे भय था कि कोई उसपर आक्रमण न कर बैठे। सुधारोंकी अपेक्षा शाही घोषणामें ऐसी बातें हैं जो अविश्वास दूर करके विश्वास जमाती हैं। अब देखना केवल यह है कि क्या विश्वासकी यह भावना सिविल सर्विसमें भी पैदा हुई है या नहीं। पर हमें मान लेना चाहिए कि ऐसी भावना पैदा होगी और इसी विश्वाससे हमें काममें जुट जाना चाहिए। इस तरह तत्परता दिखानेमें मुझे कोई गलती प्रतीत नहीं होती। विश्वास करना गुण है। अविश्वासका कारण दुर्बलता है। विना किसी तरहके वैमनस्यके, नेकनीयतीके साथ आचरण करके ही हम अपना सन्तोष सबसे अधिक प्रकट कर सकते हैं। हम लोग जितनी तत्परता, विश्वास तथा ईमानदारीसे काम करेंगे, अपने लक्ष्यतक उतनी ही जल्दी पहुँचनेकी आशा कर सकते हैं।

इन कतिपय वर्षोंसे भारतके कल्याणके लिए अनवरत् प्रयत्न और चेष्टा करनेवाले यदि कोई व्यक्ति हैं तो वे भारत मन्त्री श्री मॉण्टेग्यु ही हैं। इनके पहले भी

अनेक व्यक्ति भारत मन्त्रीके पदपर रह चुके हैं, पर यह पद जितना श्री मॉण्टेग्युको शोभा देता है उतना किसीको नहीं। श्री मॉण्टेग्यु भारतके सच्चे मित्रोंमें से हैं। वे हमारी कृतज्ञताके पात्र हैं। और लॉर्ड सिन्हा? उन्होंने तो भारतका मुँह उज्ज्वल कर दिया है। भारतको उनपर जो गर्व है वह सर्वथा उचित है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१–१२–१९१९

२३६. पत्र : विद्यार्थियोंको

[१९१९][1]

विद्यार्थी अर्थात् विद्याका भूखा। विद्या अर्थात् जानने योग्य ज्ञान। जानने योग्य तो केवल आत्मा ही है, इसलिये विद्या अर्थात् आत्मज्ञान। लेकिन आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित आदि जानना चाहिए। य सब साधन रूप हैं। इन विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अक्षर-ज्ञान होना आवश्यक है। अक्षर-ज्ञानके बिना भी इन विषयोंको जाननेवाले व्यक्ति हमने देखे हैं। जो व्यक्ति इतना जानता है वह अक्षर-ज्ञान अथवा साहित्यादिके ज्ञानके पीछे दीवाना नहीं होगा, वह तो आत्मज्ञान ही के पीछे पागल रहेगा। आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें जो विषय विघ्न-रूप हैं, उनका त्याग करेगा और जो सहायक हैं, उनका पालन करेगा। इस बातको समझनेवाले व्यक्तिका विद्यार्थी-जीवन कभी समाप्त नहीं होता और वह खाते, पीते, सोते, खेलते, खोदते, बुनते, कातते कोई भी काम करते समय ज्ञान-प्राप्ति करता ही रहता है। इसके लिए पर्यवेक्षण-शक्तिको विकसित करना चाहिए। उस व्यक्तिको सर्वदा शिक्षकोंके समूहकी आवश्यकता नहीं होती बल्कि वह समस्त विश्वको शिक्षकके रूपमें मानकर उससे गुण ग्रहण करता रहता है।

बापू

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९८२) से।

1. इस पत्रकी तारीख उपलब्ध नहीं है।

२३७. भाषण: अमृतसर कांग्रेसमें सुधार प्रस्तावपर[1]

जनवरी १, १९२०

श्री गांधीने हिन्दी[2] में बोलते हुए कहा कि मुझे श्री दास द्वारा प्रस्तावित और श्री तिलक द्वारा अनुमोदित प्रस्तावके विरोधमें बोलते हुए दुःख हो रहा है। मैं बहुत हदतक प्रस्तावसे सहमत हूँ परन्तु मैं सुधारोंको 'निराशाजनक'[3] माननेको तैयार नहीं हूँ।

"निराशाजनक" कहनेसे तात्पर्य है कि उस सम्बन्धमें कोई व्यक्ति कुछ कर सकनेमें समर्थ नहीं था। परन्तु वे लोग जिन्होंने सुधारोंको "निराशाजनक" बताया है, कह चुके हैं कि हम अपने उम्मीदवारोंसे परिषद्को भर देंगे। श्री गांधीने कांग्रेससे इस बातपर विचार करनेको कहा। उन्होंने कहा यदि वे लोग सुधार कानूनका उपयोग करना चाहते हैं तो उसे "निराशाजनक" क्यों कहते हैं?

इसके बाद उन्होंने अपना संशोधन रखा जो कलकी विषय-सूचीमें प्रकाशित रूपसे भिन्न था। श्री गांधीके इस परिवर्तित संशोधनमें "निराशाजनक" शब्द दिया गया था, और अब वह इस प्रकार था:

उत्तरदायी शासन स्थापित होनेतक यह कांग्रेस शाही घोषणामें व्यक्त इन भावनाओंका निष्ठापूर्वक स्वागत-समर्थन करती है कि "इस (नये युग) का प्रारम्भ मेरी जनता तथा मेरे अधिकारियोंके बीच इस समान दृढ़-संकल्पके साथ हो कि वे मिल-जुलकर एक सामान्य उद्देश्यके लिए काम करेंगे" और (कांग्रेस) आशा करती है कि अधिकारी तथा जनता दोनों परस्पर सहयोग करते हुए सुधारोंको इस तरह अमलमें लायेंगे जिससे पूर्ण उत्तरदायी सरकारकी शीघ्र स्थापना हो सके, और साथ ही यह कांग्रेस माननीय

१. गांधीजी चित्तरंजन दास द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावपर बोले जो इस प्रकार था:

(क) "यह कांग्रेस पिछले सालकी अपनी इस घोषणाको दुहराती है कि भारत पूर्ण उत्तरदायी सरकारके योग्य है और ऐसी सभी पूर्वगृहीत धारणाओं और कथनोंका खंडन करती है जिनमें इस बातको अस्वीकार किया गया हो।

(ख) कि यह कांग्रेस संवैधानिक सुधारोंके विषयमें दिल्ली कांग्रेस द्वारा पास किये प्रस्तावपर दृढ़ है और इसका मत है कि सुधार अधिनियम अपर्याप्त, असन्तोषजनक और निराशाजनक हैं।

(ग) कि यह कांग्रेस आग्रह करती है कि पार्लियामेंट भारतमें स्वशासनके सिद्धान्तोंके अनुसार पूर्ण उत्तरदायी सरकार स्थापित करनेके लिए शीघ्र ही कदम उठाये।"

एस० सत्यमूर्ति, हसरत मोहानी, पंडित रामभजदत्त चौधरी और चन्द्रवंशी सहायने इसका अनुमोदन किया। यह रिपोर्ट ३-१-१९२० के *ट्रिब्यून*से ली गई है।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

३. लोकमान्य तिलकने अपने भाषणमें कहा था कि "अपर्याप्त, असन्तोषजनक और निराशाजनक" शब्द सर्वथा नये नहीं हैं। कांग्रेसके पहले अधिवेशनोंमें भी हम इन शब्दोंका प्रयोग कर चुके हैं और अब भी हमें वही आपत्तियाँ हैं। कुछ लोग 'निराशाजनक' शब्दको निकाल देना पसन्द करते हैं। मैंने इसका कोई कारण नहीं पाया। इस बीच कुछ भी ऐसा नहीं हुआ जिससे हमारे विचार बदल जाते।"

ई० एस० मॉण्टेग्युको इन सुधारोंके सम्बन्धमें किये गये परिश्रमके लिए हार्दिक धन्यवाद देती है।[1]

मेरे प्यारे मित्रो,

मैं हिन्दीमें बोल चुका हूँ। इस कांग्रेसके अध्यक्ष महोदयकी, जिन्होंने इन तमाम चिन्तापूर्ण दिनोंमें ऐसी जबरदस्त कठिनाइयोंके बीच — जिनका आप अनुमान भी नहीं लगा सकते — हमारे लिए इतने परिश्रमपूर्वक काम किया है, अनुमतिसे मैं आपका थोड़ा-सा समय और लूँगा और उन मित्रोंसे अन्तिम बार अपील करूँगा जो इस मामलेमें मेरी बात नहीं समझ पाये हैं। आपने उनकी बात सुनी जो अंग्रेजीमें बोले हैं। मुझे उनको अपना संशोधन पढ़कर सुनानेकी जरूरत नहीं है। मेरे नामसे जो संशोधन प्रस्तुत हुआ है उसे आपने देख लिया है। मैं आपको पूरा-पूरा आश्वासन देना चाहता हूँ कि इससे ज्यादा खुशीकी बात मेरे लिए दूसरी कोई न होती यदि मैं इस सभामें परस्पर मतभेद पैदा करनेके लिए आपके समक्ष न आता। परन्तु जब मैंने देखा कि कर्त्तव्य मुझसे अपेक्षा करता है कि मुझे दो शब्द कहने ही चाहिए, चाहे वे मेरे देशके पूज्य भाइयोंके विरुद्ध हों या उनके विरुद्ध जिन्होंने देशके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है, और जब मैंने पाया कि उनकी बातोंने मेरे दिल-दिमागको पूरी तरह प्रभावित नहीं किया है और मुझे लगा कि उनके सुझावोंमें निहित स्थितिको स्वीकार करना देशके लिए हितकर नहीं होगा, तब मैंने अनुभव किया कि मुझे कमसे-कम अपनी बात कहनी ही चाहिए और देशके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट रख देनी चाहिए। अपने जीवनमें बराबर मैंने समझौतेका सिद्धान्त समझा है; लोकतन्त्रकी भावनाको समझा है। दोनोंके बारेमें मेरा आदरभाव किसीसे कम नहीं है। लेकिन जीवन-भर मैंने यह भी पाया है कि जो व्यक्ति अपनी अन्तरात्माकी आवाजके अनुसार, ईश्वरके अटल नियमोंके अनुसार अपना जीवन ढालना चाहता है, ऐसे व्यक्तिके जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं जब उसे अपने प्रियतम मित्रोंकी जुदाईको उसी प्रकार गले लगाना चाहिए जिस प्रकार वह अपने भाईको गले लगाता है, और ठीक ऐसा ही अवसर मेरे सामने आजसे दो दिन पहले आ खड़ा हुआ। यह एक शब्दको इधरसे उधर हटानेका मामला नहीं है। यदि मैं 'निराशाजनक' शब्दको रख सकता तो सच मानिए मैं इस सभाके सामने खड़ा न होता और आपका तथा राष्ट्रका बहुमूल्य समय एक शब्दपर अड़कर बर्बाद न करता। मैं तो आपसे यह कह रहा हूँ कि 'निराशाजनक' शब्द रखना ठीक नहीं है। आपने कल मेरे नामसे एक संशोधन[2] देखा जिसे मैंने वापस

१. इसके बाद गांधीजी अंग्रेजीमें बोले।

२. संशोधन यह था: "कांग्रेसकी रायमें हालाँकि सुधार अधिनियम भारतकी मौजूदा परिस्थितिमें उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति नहीं करता इसलिए अपर्याप्त और असन्तोषजनक है तथापि कांग्रेस इसे उत्तरदायी सरकारकी दिशामें एक निश्चित कदम मानती है, और इस अधिनियमकी भारी कमियोंको दूर करानेके लिए अवसर मिलते ही आन्दोलन करनेका अपना अधिकार सुरक्षित रखते हुए जनतासे अपील करती है कि सुधारोंको सफल बनानेमें अधिकारियोंके साथ सहयोग करे; और माननीय ई० एस० मॉण्टेग्यु तथा लॉर्ड सिन्हाने भारतकी ओरसे इन सुधारोंके सम्बन्धमें जो परिश्रम किया उसके लिए यह कांग्रेस उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती है।"

ले लिया है। वह मेरी रायको अधिक सौम्य भाषामें व्यक्त करता था: मैं अधिक अच्छी अंग्रेजी जाननेका दावा नहीं कर रहा हूँ, लेकिन उस शब्दावलीपर मैं मुग्ध था, और उसके सम्बन्धमें मेरा अब भी ऐसा ही विचार है। मेरे मतसे वह संशोधन उसी बातको ज्यादा सुन्दर शब्दोंमें व्यक्त करता है, किन्तु मैं अपने मनसे कहता हूँ, और कल मैंने अपनेको समझाया कि "भाषाकी सुगढ़ताकी चिन्ता मत करो। अगर किसी दूसरी शब्दावलीसे तुम्हें वही सार-तत्त्व प्राप्त होता है तो तुम उसे स्वीकार कर लो।" इसलिए मैंने प्रस्तावके तीनों अनुच्छेदोंको ज्यों-का-त्यों ले लिया है, केवल 'निराशाजनक' विशेषण छोड़ दिया है क्योंकि यह शब्द भी मेरी भावनाओंको व्यक्त करता है। मैं श्री तिलक महाराज, श्री दास तथा अन्य मित्रोंकी तरह ऐसा मानता हूँ कि हम आज पूर्ण उत्तरदायी सरकारके योग्य हैं। (हर्ष-ध्वनि) मैं यह भी मानता हूँ कि हमें आज जो मिल रहा है वह कांग्रेसके आदर्शसे कहीं कम है। (हर्ष-ध्वनि) मैं यह मानता हूँ कि हमें यथासम्भव शीघ्रसे-शीघ्र उत्तरदायी सरकार चाहिए। मैं उनसे सहमत हूँ। फिर क्या हो? वह सब तो खत्म हो गया। परन्तु हमें अपना भविष्य कैसे बनाना है, यही एक ऐसा प्रश्न है जिसपर उन्होंने विचार किया और मैंने भी विचार किया। उनका निष्कर्ष यह रहा कि देशको जिस रास्ते जाना है, जाने दो। हम इस मंचसे देशको नेतृत्व नहीं प्रदान करेंगे। इसका क्या अर्थ था? इसका जो अर्थ मैंने समझा वह यह था कि हमारी नीति रुकावट डालनेवाली नहीं होनी चाहिए, हमारे दिमागमें 'सहयोग'की भावना हो, लेकिन उसे प्रकट न किया जाये। यदि किन्हीं निश्चित शर्तोंपर हमें सहयोग करना है तो मैं कहता हूँ कि हमें उन शर्तोंको निर्धारित कर लेना चाहिए। परन्तु हमें अपना मुद्दा पूर्णतः स्पष्ट कर देना चाहिए। फिर उनका यह भी कहना था कि हमें अपने सेवकको क्यों धन्यवाद देना चाहिए? आखिरकार श्री मॉण्टेग्यु क्या हैं? वे हमारे सेवक हैं। यदि उन्होंने अपना कर्त्तव्य थोड़ा-सा निभा दिया तो आप उन्हें धन्यवाद क्यों देना चाहते हैं? यह ऐसा रुख है जिसे यदा-कदा माना तो जा सकता है, परन्तु मैं इस विशाल सभासे कहूँगा कि यह रुख आपको शोभा नहीं देता। यदि आप अपने सच्चे दिलसे कह सकते हैं कि श्री मॉण्टेग्युने भारत-मन्त्रित्वके अपने समूचे कार्यकालमें एक काम किया है, और वह यह कि लॉर्ड सिडेनहम और उनके साथियों द्वारा इस विधेयकके विरोधका सामना किया है, और उसकी उदार व्यवस्थाओंमें हेरफेर करवानेकी कोशिशोंको नाकामयाब कर दिया है, यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि ऐसी व्यवस्थाएँ विधेयकमें काफी कम हैं, तो मैं कहता हूँ कि इस हदतक और सिर्फ इसी हदतक श्री मॉण्टेग्यु हमारे सम्पूर्ण हृदयसे धन्यवादके पात्र हैं। (तुमुल हर्ष-ध्वनि) मेरे संशोधनका केवल इतना ही प्रयोजन है।

मेरे संशोधनका यह भी अर्थ है कि हम यह न कहें कि ये सुधार उस अर्थमें 'निराशाजनक' हैं जिस अर्थमें उस शब्दका प्रयोग यहाँ हुआ है। मैं आपसे यह निवेदन करता हूँ कि यदि एक व्यक्ति मेरे पास आता है और मुझे निराश करता है तो मैं उससे सहयोग नहीं करता। यदि मुझे खट्टी पाव रोटी मिलती है तो मैं उसे

अस्वीकार कर देता हूँ; उसे नहीं लेता। परन्तु यदि मुझे ऐसी पाव रोटी मिलती है जो पर्याप्त नहीं है या जिसमें पर्याप्त रुचिकर तत्त्व नहीं हैं, तो मैं यह कोशिश करूँगा कि बादमें उसमें रुचिकर तत्त्व मिलाये जायें, परन्तु मैं एक ग्रास चखकर देखता हूँ; तो वह 'निराशाजनक' नहीं लगती। अतएव मेरे संशोधनका प्रयोजन इससे अधिक या कम कुछ भी नहीं है। आज देशके सम्मुख जैसी स्थिति है, उसी रूपमें उसका सामना करना और जैसा कि मैं कहता हूँ यदि तिलक महाराज आपसे कहते हैं कि हम सुधार कानूनका उपयोग करने जा रहे हैं, जो उन्हें जरूर करना चाहिए, और जैसा कि उन्होंने श्री मॉण्टेग्युको पहले ही बताया है, जैसा कि उन्होंने देशको बताया है कि हम सुधारोंका पूरा लाभ उठाने जा रहे हैं, तो मैं कहता हूँ कि आप अपने प्रति सच्चे रहें, देशके प्रति सच्चे रहें और देशको बताइए कि हम यही करने जा रहे हैं। परन्तु यदि आप यह कहना चाहते हैं कि वहाँ जानेके बाद आप कोई रुकावट डालेंगे, तो वह भी बताइये। परन्तु रुकावटके औचित्यके प्रश्नपर तो यह कहूँगा कि भारतीय सभ्यताकी माँग है कि हम उस व्यक्तिका भरोसा करें जिसने दोस्तीका हाथ बढ़ाया है। सम्राट्ने दोस्तीका हाथ बढ़ाया है। (हर्ष ध्वनि) मैं आपसे कहता हूँ कि श्री मॉण्टेग्युने दोस्तीका हाथ बढ़ाया है और यदि उन्होंने दोस्तीका हाथ बढ़ाया है तो उनके इस मैत्रीके हाथको मत ठुकराइए। भारतीय संस्कृति विश्वास, पूर्ण विश्वासकी अपेक्षा रखती है और यदि हम पर्याप्त पौरुष सम्पन्न हैं, तो हम भविष्यसे भयभीत नहीं होंगे, वरन् पुरुषोचित ढंगसे भविष्यका सामना करेंगे और कहेंगे ठीक है, श्री मॉण्टेग्यु, ठीक है, नौकरशाही-के सभी अधिकारियो, हम आपका विश्वास करने जा रहे हैं; इस तरह हम आपको एक कठिनाईमें डाल देंगे, और जब आप हमें रोकेंगे, जब आप देशकी प्रतिक्रिया को रोकेंगे तो आप ऐसा अपनी जोखिमपर करेंगे? यह है वह पुरुषोचित रुख जिसे मैं आपसे अपनानेको कह रहा हूँ। इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि आप अपने सच्चे दिलसे यह महसूस करते हैं कि ये सुधार आपको अपने लक्ष्यकी ओर आगे बढ़नेमें सहायक हैं, यदि आपका विश्वास है कि इन सुधारोंका उपयोग पूर्ण उत्तरदायी सरकारके लिए सोपानकी तरह हो सकता है तो श्री मॉण्टेग्युको उनका प्राप्य दीजिये और उनसे कहिये कि 'हम आपको धन्यवाद देते हैं।' और जब आप श्री मॉण्टेग्युसे कहते हैं कि 'हम आपको धन्यवाद देते हैं' तो उसका स्वाभाविक अर्थ यह भी है कि हम उनके साथ सहयोग करेंगे। यदि आप श्री मॉण्टेग्युसे कहते हैं कि 'हम आपको धन्यवाद नहीं देते, हम जानते हैं कि आपके सुधार क्या हैं, हम आपके इरादे समझते हैं, हम उन इरादोंको हर कदमपर आपके काममें बाधा डालकर विफल करेंगे;' यदि आपका रुख ऐसा है तो उसे संसारके सामने स्पष्ट रखिए और वैसा ही काम कीजिए। मैं इस रुखको चुनौती दूँगा। और भारतके एक छोरसे दूसरे छोरतक जाऊँगा और कहूँगा कि हम अपनी संस्कृतिमें अनुत्तीर्ण हो जायेंगे और हमारी संस्कृति जो अपेक्षा करती है कि हम अपनी ओर बढ़ाये गये मैत्रीके हाथका स्वागत करें उस कर्त्तव्यको यदि हम नहीं निभाते तो हम अपने स्थानसे नीचे गिर जायेंगे। उनका अविश्वास करनेसे मैं इनकार करता हूँ और मैं कहता हूँ कि जहाँतक देशकी भलाईको बढ़ावा

मिलता है वहाँतक हम सहयोग करेंगे। यदि किसी भी प्रकारसे किसी भी स्वरूपमें आपका उद्देश्य भारतके गौरवको कम करना है, तो हम आपके काममें बाधा डालेंगे, आपको विफल करेंगे और आपके उद्देश्यको परास्त कर देंगे। यही संशोधन मैं आप लोगोंके सामने रखने आया हूँ। मैं फिर तिलक महाराजसे अपील करता हूँ और श्री दास तथा आपमें से हर एकसे अपील करता हूँ—अपनी सेवाके बलपर नहीं, और न अपने अनुभवके बलपर वरन् अकाट्य तर्कोंके बलपर अपील करता हूँ। यदि आप अपनी सभ्यताको स्वीकार करते हैं, मैं 'भगवद्गीता'की टीकाके[१] रचयितासे कहता हूँ कि यदि वे 'भगवद्गीता'की शिक्षा मानते हैं, तो उन्हें श्री मॉण्टेग्युके प्रति मित्रताका हाथ बढ़ाना चाहिए। (हर्षध्वनि और तालियाँ)।[२]

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३४ वें अधिवेशनकी रिपोर्ट।

२३८. तार: हबीबुद्दीनको[३]

[अमृतसर]
जनवरी ३, १९२०

आना असम्भव। आपके प्रतिनिधिको सब समझा दिया है।

पेंसिलसे लिखे हुए अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०२४) से।

२३९. पत्र: बम्बई उच्च न्यायालयके उप-पंजीयकको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
जनवरी ४, १९२०

श्री घरडा
उप-पंजीयक
बम्बई

प्रिय श्री घरडा,

मैं अभी-अभी पंजाबसे आया हूँ और आपका कैफियत तलबीका आदेश मुझे दे दिया गया है। मैं मान लेता हूँ कि मेरा इस सम्बन्धमें दिल्लीसे आपके नाम लिखा

१. **गीता रहस्य** जिसे तिलकने बर्माकी मांडले जेलमें अपने बन्दी-कालमें लिखा था।

२. प्रस्तावका अनुमोदन मो० अ० जिन्नाने किया था और पंडित मदनमोहन मालवीय, डॉ० पट्टाभि सीतारामैया तथा सी० एस० रंगा अय्यरने समर्थन किया था। सुधार-कानून प्रस्तावपर विस्तृत विवरणके लिए देखिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३४ वें अधिवेशनका प्रस्ताव।

३. गांधीजीको एक हड़तालके सिलसिलेमें जमशेदपुर आनेका निमंत्रण दिया गया था।

पत्र[1] मिल गया है। यह जाहिर है कि आदेश लगभग उसी समय जारी किया गया जब मैंने दिल्लीसे अपना पत्र लिखा था।[2] मैं देखता हूँ कि मुझे आपका नोटिस मिलनेके इक्कीसवें दिन या उसके एक दिन बाद अदालतमें मौजूद होना है। नोटिस मुझे इसी २ तारीखको दिया गया। क्या इसका यह अर्थ है कि मामलेकी सुनवाई २३ तारीखको नहीं होगी? मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि मैंने अभी पंजाबमें अपना काम समाप्त नहीं किया है। उम्मीद है कि मैं २० तारीखके लगभग पंजाबमें होऊँगा और वहाँ करीब २ महीने रहूँगा। इसलिए यदि मुख्य न्यायाधीश महोदय इतने दिनोंकी मोहलत दे सकें तो मैं अनुगृहीत होऊँगा।

मैं यह भी उल्लेख कर दूँ कि मैं वकील नहीं खड़ा करना चाहता और न अपने बचावमें कोई सफाई देना चाहता हूँ। मैं सिर्फ एक वक्तव्य देना चाहता हूँ जो मेरे दिल्लीसे लिखे ११ दिसम्बर, १९१९ के पत्रमें निहित आशयके अनुसार होगा। यह भी चाहता हूँ कि सुनवाईकी तारीख जनताको विदित न हो। अतएव आप कृपया मुख्य न्यायाधीश महोदयसे मिलकर मुझे सूचित करें कि क्या सुनवाईकी कोई तारीख अप्रैलमें रखी जा सकती है?[3]

मैं समझता हूँ कि प्रकाशक श्री देसाईके विरुद्ध मामलेकी सुनवाई भी उसी दिन होगी जिस दिन मेरे विरुद्ध मामलेकी।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७१२८-ए) की फोटो-नकल से।

२४०. वक्तव्य : उपद्रव जाँच समितिके सामने

[साबरमती
जनवरी ५, १९२०]

पिछले तीस वर्षसे मैं लोगोंको सत्याग्रहकी सीख देता रहा हूँ और स्वयं भी उसपर आचरण करता रहा हूँ और आज मैं इसे जिस रूपमें जानता हूँ उसके आधारपर कह सकता हूँ कि सत्याग्रहके सिद्धान्त सतत् विकासशील हैं।

१. देखिए "पत्र: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको", ११-१२-१९१९।

२. वास्तवमें पंजीयकने गांधीजीका ११ दिसम्बरका पत्र मिलनेसे पहले ही उनके खिलाफ एक कैफियत तलबीका आदेश जारी करानेकी अर्जी दी थी जिसमें उनसे कैफियत माँगी गई थी कि "उन्होंने उक्त पत्रको प्रकाशित करके अदालतकी जो मानहानि की है, इसके लिए उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई क्यों न की जाये।" यह अर्जी न्यायाधीश शाह और न्यायाधीश क्रम्पने उसी दिन (११ दिसम्बरको) मंजूर कर ली थी, लेकिन कैफियत तलबीका आदेश वास्तवमें १९ दिसम्बरको जारी किया गया था।

३. २७ फरवरीको गांधीजीने पंजीयकको फिर एक पत्र लिखा और इसके साथ ही अपना और महादेवभाई, दोनोंके वक्तव्य भी भेजे। कैफियत तलबीकी सुनवाई ३ मार्च तकके लिए स्थगित कर दी गई। ३ मार्चको गांधीजी और महादेव देसाई अदालतमें उपस्थित हुए। अदालतने उन्हें अदालतकी मानहानिका दोषी पाया किन्तु भविष्यमें सावधानी बरतनेकी चेतावनी देकर छोड़ दिया। देखिए खण्ड १७, "क्या यह न्यायालयकी मानहानि थी?", १०-३-१९२०।

सत्याग्रह और अनाक्रामक प्रतिरोधमें जमीन-आसमानका अन्तर है। जहाँ अनाक्रामक प्रतिरोधकी कल्पना कमजोर लोगोंके अस्त्रके रूपमें की गई है और उसमें अपने उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए शारीरिक शक्ति या हिंसाका निषेध नहीं किया गया है, वहाँ सत्याग्रहकी कल्पना सबलसे-सबल लोगोंके अस्त्रके रूपमें की गई है और उसमें किसी प्रकारकी हिंसाके लिए कोई गुंजाइश नहीं रखी गई है।

इस सत्याग्रह शब्दको मैंने ही दक्षिण आफ्रिकामें उस शक्तिको अभिव्यक्ति देनेके लिए गढ़ा था जिसका प्रयोग वहाँके भारतीयोंने पूरे आठ वर्षतक किया और इसे गढ़नेका उद्देश्य उस समय इंग्लैण्ड और दक्षिण आफ्रिकामें अनाक्रामक प्रतिरोध नामसे जो आन्दोलन चल रहा था, उससे सत्याग्रह आन्दोलनका भेद स्पष्ट कर देना था।[१]

व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे सत्याग्रहका अर्थ है सत्यपर दृढ़ रहना, अर्थात् सत्यबल। इसे मैंने प्रेमबल या आत्मबल भी कहा है। सत्याग्रहपर अमल करते हुए प्रारम्भिक अवस्थामें ही मुझे पता चल गया कि सत्यके पालनमें अपने प्रतिपक्षीके प्रति किसी प्रकारकी हिंसा करनेकी गुंजाइश नहीं बल्कि उसे धैर्य और सहानुभूतिके बलपर गलत रास्तेसे हटाना है। कारण यह है कि जो चीज एकको सत्य लगती है वही दूसरेको असत्य लग सकती है। और धैर्यका मतलब है कष्टोंको अपने ऊपर ओढ़ लेना। इस प्रकार इस सिद्धान्तका अर्थ हुआ सत्यके पक्षकी स्थापना — लेकिन अपने प्रतिपक्षीको कष्ट देकर नहीं, बल्कि स्वयं कष्ट उठाकर।

लेकिन राजनीतिक क्षेत्रमें, जन-संघर्षके तौरपर इसका अर्थ मुख्यतः अन्यायपूर्ण कानूनोंके रूपमें की गई गलतियोंका विरोध करना ही होता है। जब आप प्रार्थनापत्र आदि देकर कानून बनानेवालोंको उनकी गलती समझानेमें असमर्थ हो जाते हैं तो आपके सामने, अगर आप उस गलतीके सामने झुक जानेको तैयार नहीं हैं तो, एक ही उपाय रह जाता है — या तो आप उस गलत कानून बनानेवाले व्यक्तिको शारीरिक बलसे अपने सामने झुकनेको बाध्य करें या फिर कानूनको तोड़नेके लिए जो दण्ड-जुर्माना भोगना पड़ेगा उसे आमन्त्रित करके अपनेको कष्टमें डालें और इस प्रकार उस व्यक्तिको अपने सामने झुकायें। इसीलिए सत्याग्रहको आम लोग मुख्यतः सविनय अवज्ञा या सविनय प्रतिरोधके रूपमें ही देखते हैं। यह सविनय इस मानेमें है कि इसमें अपराध जैसी कोई चीज नहीं है।

कानून तोड़नेवाला कानूनको चोरी-छिपे तोड़ता है और उसके दण्डसे बचनेकी कोशिश करता है — लेकिन सविनय प्रतिरोधी ऐसा नहीं करता। वह जिस राज्यमें रहता है उस राज्यके कानूनोंका बराबर पालन इसलिए करता है कि उन्हें वह समाजके हितकी दृष्टिसे अच्छा समझता है — इसलिए नहीं कि उस कानूनके पीछे जो सत्ता है उससे वह डरता है। हालाँकि बहुत कम ऐसा होता है लेकिन कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं जब सत्याग्रही कुछ कानूनोंको इतना अन्यायपूर्ण मानता है कि उनका पालन करना अपमानकी बात हो जाती है। तब वह खुल्लम-खुल्ला और विनयपूर्वक उन कानूनोंको तोड़ता है और उन्हें तोड़नेपर जो दण्ड-जुर्माना दिया

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १२६-७ और **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय १२।

जाता है उसे चुपचाप सह लेता है। और कानून बनानेवालोंकी कार्रवाईके प्रति अपना विरोध व्यक्त करनेके लिए वह यदि चाहे तो ऐसे अन्य कानूनोंकी भी अवज्ञा कर सकता है जिनका उल्लंघन करनेमें कोई नैतिक बाधा नहीं है।

मेरे विचारसे सत्याग्रह कुछ इतनी सुन्दर और सक्षम चीज है तथा उसका सिद्धान्त इतना सीधा-सादा है कि बच्चोंको भी इसकी सीख दी जा सकती है। इसकी सीख मैंने आम तौरपर गिरमिटिया भारतीय कहे जानेवाले हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चोंको दी, और उसका परिणाम बहुत शानदार रहा।

जब रौलट विधेयक प्रकाशित किये गये तो मुझे लगा कि ये तो मानवीय स्वतंत्रतापर इतने अधिक बन्धन लगा देते हैं कि उनका अधिकसे-अधिक विरोध किया जाना चाहिए। और मैंने यह भी देखा कि भारतीयोंमें इन विधेयकोंके प्रति विरोधकी भावना सर्वव्यापी है। मैं नम्रतापूर्वक कहूँगा कि कोई राज्य चाहे कितना भी निरंकुश हो, उसे ऐसा कानून बनानेका कोई अधिकार नहीं है जो सारे जनसमुदायके लिए अरुचिकर हो — और संवैधानिक प्रणालियों तथा पूर्वोदाहरणोंसे मार्गदर्शन ग्रहण करनेवाली भारत सरकारके लिए तो यह बात और भी लागू नहीं होती। मुझे यह भी लगा कि इसके परिणामस्वरूप जो आन्दोलन उठ खड़ा होनेवाला है, उसे अगर बिना किसी परिणामके दब जाने या हिंसात्मक मार्ग अपनानेसे रोकना है तो कोई निश्चित ढंगका निर्देश देना जरूरी है।

इसलिए मैंने देशके सामने सत्याग्रहका उपाय रखनेका साहस किया, जिसमें मैंने उसके सविनय प्रतिरोधवाले पक्षपर विशेष बल दिया। और चूँकि यह आन्दोलन विशुद्ध रूपसे अन्तरकी चीज है और इसका उद्देश्य मनुष्यके मन-प्राणको पवित्र बनाना है, इसलिए मैंने एक दिनके लिए — यानी छः अप्रैलको — उपवास, प्रार्थना और सारा कारोबार बन्द रखनेको कहा। इसके लिए कोई संगठित योजना नहीं बनाई गई थी और न पहलेसे कोई बड़ी तैयारी ही की गई थी। फिर भी सारे भारतमें — यहाँ तक कि छोटे-छोटे गाँवोंमें भी — लोगोंने मेरे आह्वानका बड़ा अच्छा उत्तर दिया। यह योजना मनमें आते ही मैंने इसे जनताके सामने रख दिया। ६ अप्रैलको लोगोंने कोई हिंसात्मक कार्रवाई नहीं की और न पुलिससे ही उनकी कोई ऐसी टक्कर हुई जिसका उल्लेख किया जा सके। हड़ताल सर्वथा स्वेच्छाजनित और स्वयंस्फूर्त थी। मैं साथमें वह पत्र[1] भी नत्थी कर रहा हूँ जिसमें इस योजनाकी घोषणा की गई थी।

६ अप्रैलके कार्यक्रमके बाद सविनय अवज्ञा प्रारम्भ होनेको थी। इस उद्देश्यसे सत्याग्रह सभाकी समितिने उल्लंघनार्थ कुछ राजनीतिक कानून चुन लिये थे। फिर हमने निषिद्ध किन्तु सर्वथा स्वस्थ ढंगके साहित्यका, उदाहरणार्थ मेरे द्वारा होमरूलपर लिखी गई पुस्तक[2] [हिन्द स्वराज्य], रस्किनके 'अन्टु दिस लास्ट' का अनुवाद [सर्वोदय] तथा 'डैथ ऐंड डिफेंस आफ़ सार्क्रेटिस' आदिका, वितरण प्रारम्भ किया।

१. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ १५०–५१।

२. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६–६९।

लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि ६ अप्रैलको भारत एक अभूतपूर्व प्राण-शक्तिसे उद्वेलित हो उठा। जो लोग भयभीत रहा करते थे, उनके मनसे सत्ताका भय बिलकुल दूर हो गया। इसके अतिरिक्त अभीतक जनसाधारण तन्द्रामें पड़ा हुआ था। दरअसल नेताओंने उसे जगानेका प्रयास नहीं किया था; उसमें अनुशासनका अभाव था। जनताको एक नई शक्ति प्राप्त हो गई थी, लेकिन वह नहीं जानती थी कि यह शक्ति क्या है और इसका उपयोग कैसे किया जाये।

दिल्लीमें जो लोग अभीतक बिलकुल निश्चल पड़े हुए थे, उन्हें नियन्त्रणमें रखना नेताओंको कठिन जान पड़ा। अमृतसरमें डॉ० सत्यपालको यह चिन्ता लगी हुई थी कि मैं वहाँ जाकर लोगोंको सत्याग्रहका शान्तिपूर्ण स्वरूप समझाऊँ। दिल्लीसे स्वामी श्रद्धानन्दने और अमृतसरसे डॉ० सत्यपालने मुझे लिख भेजा कि मैं लोगोंको शान्त करने और सत्याग्रहका स्वरूप समझानेके लिए दिल्ली और अमृतसर जाऊँ। मैं पहले कभी अमृतसर नहीं गया था और सच तो यह है कि पंजाब भी नहीं गया था। इन दोनों सन्देशोंको अधिकारियोंने देखा और इस प्रकार वे इस बातसे अवगत हो गये कि मुझे उक्त दोनों जगहोंमें शान्तिपूर्ण उद्देश्यसे बुलाया गया है।

मैं दिल्ली और पंजाबकी यात्राके लिए ८ अप्रैलको बम्बईसे रवाना हुआ और डॉ० सत्यपालको मैंने टेलीफोन भी कर दिया कि वे मुझसे दिल्लीमें मिलें। इससे पहले हम लोग कभी नहीं मिले थे। लेकिन मथुरासे आगे निकलनेपर मुझे एक आदेश दिया गया, जिसमें मुझे दिल्ली प्रान्तमें प्रवेश करनेसे मना किया गया था। मुझे लगा कि इस आदेशकी अवहेलना मुझे करनी ही चाहिए और इसलिए मैं अपनी यात्रापर आगे बढ़ा। पलवलमें मुझे पंजाबमें प्रवेश करने और बम्बई प्रान्तसे बाहर जानेसे मना करते हुए एक आदेश दिया गया। मुझे पुलिसके एक दलने गिरफ्तार करके उसी स्टेशनपर ट्रेनसे उतार लिया। जिस पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टने मुझे गिरफ्तार किया था, उसने मेरे साथ बड़ा शिष्ट व्यवहार किया। जो गाड़ी सबसे पहले मिल सकी उसीसे मुझे मथुरा ले जाया गया और वहाँसे एक मालगाड़ीमें बैठाकर सुबह सवाई माधोपुर पहुँचाया गया। वहाँ मुझे पेशावरसे आनेवाली बम्बई मेलमें बैठाया गया और सुपरिन्टेन्डेंट बाउरिंगकी देख-रेखमें रखा गया। १० अप्रैलको बम्बईमें मुझे छोड़ दिया गया।

लेकिन अहमदाबाद तथा वीरमगाँवके लोगोंको, बल्कि आम तौरसे सारे गुजरातके लोगोंको, मेरी गिरफ्तारीकी खबर लग गई थी। वे अपना आपा खो बैठे, दुकानें बन्द कर दी गईं, भीड़ जमा होने लगी और फिर खून-खराबी, आगजनी, लूटपाट, तार काटने तथा गाड़ियोंको पटरीसे उतारनेके प्रयत्नोंका सिलसिला चल पड़ा।

इससे कुछ ही दिन पहले मैंने खेड़ाकी प्रजाके बीच काम किया था और हजारों स्त्री-पुरुषोंसे मिला था। मैंने अनसूयाबेन साराभाईके कहनेपर उन्हींके साथ अहमदाबादके मिल-मजदूरोंके बीच भी काम किया था। मिल-मजदूर उनके परोपकार-कार्यकी कद्र करते थे और उनके प्रति उन लोगोंके मनमें बड़े पूज्य भाव हैं। सो जब यह गलत अफवाह उड़ी कि वे भी गिरफ्तार कर ली गई हैं तो अहमदाबादके मजदूरोंके क्रोधकी कोई सीमा न रही। हम दोनों वीरमगाँवके मिल-मजदूरोंसे उनके कष्टकी घड़ीमें

मिले थे और उनके लिए बीच-बचाव किया था। और मेरा पक्का खयाल है कि जो-कुछ अति हुई वह मेरी गिरफ्तारी तथा अनसूयाबेन साराभाईकी गिरफ्तारीकी अफवाहको लेकर फैलनेवाली क्षोभकी भावनाके कारण ही हुई।

मैं प्रायः सारे भारतके सामान्य लोगोंसे मिला हूँ और उनसे खुलकर बातें भी की हैं। मैं यह नहीं मानता कि इन हिंसात्मक उपद्रवोंके पीछे कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन काम कर रहा था। इन उपद्रवोंको तो "विद्रोह" की संज्ञाका गौरव भी नहीं दिया जा सकता।

और मेरे विचारसे सरकारने अपराधियोंपर शासनके विरुद्ध युद्ध छेड़नेके आरोपमें जो मुकदमे चलाये, वह उसकी गलती थी। इस तरह जल्दबाजीमें उसने जो रुख अपनाया उसके कारण या तो उन लोगोंको कष्ट उठाने पड़े हैं, जो उसके पात्र नहीं थे, या लोगोंको जितना चाहिए था, उससे अधिक कष्ट उठाना पड़ा। बेचारे अहमदाबादवासियों पर जो जुर्माना ठोका गया वह बहुत भारी था, और जिस ढंगसे इसे मजदूरोंसे वसूल किया गया वह अनावश्यक रूपसे सख्त और तकलीफदेह था। मजदूरोंपर १,७६,००० (एक लाख छिहत्तर हजार) रुपयेका जुर्माना ठोक देनेके औचित्यमें मुझे सन्देह है। बारेजडीके किसानों तथा नडियादके बनियों और पाटीदारोंसे जो हर्जाना वसूला गया वह बिलकुल अनुचित था — बल्कि प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित था। मेरा खयाल है कि अहमदाबादमें मार्शल लॉ लागू करना भी अनुचित था और इसपर जिस विवेकहीन ढंगसे अमल किया गया उसके कारण अनेक निर्दोष लोगोंको अपने प्राण गँवाने पड़े।

लेकिन साथ ही इस सम्बन्धमें मैंने जिन सीमाओंका उल्लेख किया है, उनको ध्यानमें रखते हुए मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि बम्बई प्रान्तमें अधिकारियोंने ऐसे समयमें, जब वातावरणमें पारस्परिक सन्देह और अविश्वासका जोर था, और जो गाड़ी शान्ति स्थापित करनेके लिए सैनिकोंको ला रही थी उसे उलट देनेके प्रयत्नके कारण अधिकारीगण स्वभावतः क्रुद्ध हो उठे थे, काफी संयमसे काम लिया।[1]

[अंग्रेजीसे]

एविडेंस बिफोर द डिसऑर्डर्स इन्क्वायरी कमेटी : खण्ड २

१. इस वक्तव्यके साथ तीन कागज और संलग्न थे। संलग्न कागजात 'ख' और 'ग' के लिए देखिए खण्ड १५ के क्रमशः पृष्ठ २२८-३२ और २१४-१६। 'घ' उपलब्ध नहीं है। यह वक्तव्य **यंग इंडिया**के १४-१-१९२० के अंकमें भी प्रकाशित हुआ था।

२४१. पत्र : उपद्रव जाँच समितिके मंत्रीको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
[जनवरी ५, १९२०][1]

प्रिय महोदय,

मैं उपद्रव जाँच समितिके विचारार्थ इस पत्रके साथ अपना वक्तव्य[2] भेज रहा हूँ। यदि समिति मेरा बयान लेना चाहे तो वह मुझे कोई हालकी तारीख देनेकी कृपा करे ताकि मैं अपने अन्य कार्यक्रमोंके लिए मुक्त रह सकूँ। मैं इसका अनुग्रह मानूँगा।

वक्तव्य भेजनेमें विलम्ब हुआ, इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। अन्य कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण ही यह विलम्ब हुआ। मैं कल ही अहमदाबाद लौटकर आ पाया हूँ।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ६९८८) की फोटो-नकलसे।

२४२. कांग्रेस

कांग्रेसका अधिवेशन इस बार हममें से बहुतोंके लिए एक तीर्थयात्रा थी, क्योंकि वह अमृतसरमें हुआ था। हजारों प्रतिनिधि और दर्शक कांग्रेस सप्ताहमें तीर्थयात्रीकी भावनासे जलियाँवाला बाग देखने गये थे। कहा जाता है कि कुछने बागकी खूनसे सनी मिट्टीपर अपना माथा टेका और कुछ उसमें से थोड़ी-सी मिट्टी पवित्र निधिके रूपमें रखनेके लिए अपने साथ ले गये। कुछ लोगोंने उसे विभूतिकी तरह अपने माथेपर मला। सभी लोग अपना पुनीत कर्त्तव्य समझकर बागमें गये। इसमें सन्देह नहीं कि बहुतसे लोग कांग्रेसमें उन लोगोंके प्रति सम्मान प्रकट करने गये थे जो वहाँ निरपराध मारे गये थे।

स्वागत समितिके अध्यक्ष स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी और माननीय पं० मोतीलाल नेहरूके भाषण संजीदगीके नमूने थे। वे सचाईकी भावनासे ओत-प्रोत थे। दोनों ही भाषणों-पर वक्ताके व्यक्तित्वकी छाप थी। स्वामीजीके भाषणमें धार्मिकताका पुट था और वह मानव-जातिके प्रति सद्भावनासे पूर्ण था। उन्होंने कहा : "यदि हमें एन्ड्रयूज, वेडरवर्न, ह्यूम, हार्डिंग और ऐसे ही अन्य व्यक्तियोंसे प्रेम है तो हम अंग्रेजोंसे घृणा कैसे कर सकते

१. मूलमें तारीख ५ अप्रैल है जो स्पष्टतः भूल है।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

हैं? हमें अंग्रेजोंको अपने प्रेमसे जीतना चाहिए।" पण्डितजीकी भाषा बहुत शिष्ट और संयत होते हुए भी कटु हो जाती है। जब वे पंजाबके दु:खद काण्डके किस्से बताते हैं तो आँखोंमें बरबस आँसू भर आते हैं। उन्होंने अपनी पैनी कानूनी दृष्टिसे पंजाबकी घटनाओंका विश्लेषण किया है और उनका मन बहुत कठोर हो गया है। उनकी माँग है कि अपराधियोंको कड़ा दण्ड दिया जाये।

अध्यक्षका भाषण अंग्रेजीमें था इसलिए उसके प्रभावमें कमी रही। उन्हें लगभग १५,००० लोगोंके सामने एक विदेशी भाषामें अपना भाषण पढ़ते देखकर दु:ख होता था। उपस्थित लोगोंमें से सातवाँ भाग भी उनकी अंग्रेजीको नहीं समझ सकता था। कांग्रेसकी कार्रवाईसे यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो गया है कि पूरी नहीं तो अधिकांश कार्रवाई हिन्दीमें चलायी जानी चाहिए। यदि हम जन-साधारणके लिए काम करना और उन्हींमें से प्रतिनिधि लेना चाहते हैं तो हमारे सामने यही मार्ग रह जाता है। मध्य प्रदेश, संयुक्त प्रदेश, दिल्ली, पंजाब और बिहारमें केवल हिन्दुस्तानी ही बोली जाती है और मद्रास प्रेसीडेन्सीके अलावा भारतके दूसरे भागोंमें हिन्दी सामान्यत: समझी जाती है, क्योंकि इस भाषा और अन्य प्रान्तोंकी देशी भाषाओंका स्रोत एक ही है। कठिनाई एकमात्र मद्रासके कारण उत्पन्न होती है। उस प्रेसीडेंसीके कुछ सौ प्रतिनिधियोंके लिए उन हजारों प्रतिनिधियोंपर, जो अंग्रेजी नहीं समझ सकते किन्तु जो थोड़ी या बहुत हिन्दुस्तानी समझ सकते हैं, जोर-जबरदस्ती करना उचित न होगा। एकमात्र सीधा, कम खर्चीला और राजनीतिक दृष्टिसे उचित मार्ग यही है कि कांग्रेसकी कार्रवाई मुख्यत: हिन्दुस्तानीमें चलाई जाये और द्राविड़ भाषाएँ बोलने-वाले सदस्योंको अंग्रेजी या तमिल-तेलगूमें बोलनेकी स्वतन्त्रता हो। मैं मानता हूँ कि कुछ सालतक विषय-समितिकी कार्रवाई अंग्रेजीमें चलती रहे; परन्तु यदि हम कांग्रेसके द्वारा देशको ठीक तरहकी राजनीतिक शिक्षा देना चाहते हैं तो प्रत्येक व्यक्तिको यह बात स्पष्टत: समझ लेनी चाहिए कि यह कार्य केवल हिन्दीके माध्यमसे ही किया जा सकता है। इसलिए मेरा विश्वास है कि मद्रासके जो लोग अखिल भारतीय सार्वजनिक कार्य करना चाहते हैं और कांग्रेसके प्रतिनिधि होनेकी महत्त्वाकांक्षा रखते हैं, वे जल्दी ही हिन्दी सीख लेंगे। उन्हें मद्रास प्रेसीडेन्सीमें हिन्दी सीखनेकी सुविधाएँ प्राप्त हैं और यदि वे हिन्दी पढ़ना अभी आरम्भ कर दें और प्रति दिन कमसे-कम एक घंटा नियमित रूपसे खर्च करें तो सालके अन्ततक वे सामान्यत: कांग्रेसकी कार्रवाई-को समझ सकेंगे। अवश्य ही सभी यह मानेंगे कि प्रतिनिधि हर साल हिन्दुस्तानीकी जो माँग करते हैं उसका अब अधिक विरोध नहीं किया जा सकता।

एक दूसरी खराबी, जो अधिकाधिक बढ़ती जाती है, दूर की जानी चाहिए। अध्यक्ष अपना भाषण पढ़ रहे थे; किन्तु उनके भाषणको बहुत कम लोग समझ सके। अच्छेसे-अच्छा नेता भी अपने श्रोताओंका ध्यान एक घंटेसे अधिक समयतक नहीं खींचे रह सकता। अध्यक्षका भाषण लम्बा था, परन्तु वह अनिवार्य था। वह छपे हुए अड़तीस फुलस्केप पृष्ठोंमें आया था। गनीमत है कि पण्डित [मोतीलाल] नेहरू पढ़ते समय कई पृष्ठ छोड़ गये। यदि उन्होंने पूरे अड़तीस पृष्ठोंको पढ़नेका आग्रह किया होता तो उन्हें तीन घंटेसे कम न लगते। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्वागत-

समितिके अध्यक्ष और कांग्रेस अध्यक्षके भाषण, हिन्दुस्तानी (देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों) में, अंग्रेजीमें और जिस प्रान्तमें कांग्रेस हो वहाँकी स्थानीय भाषामें छपाये जायें और द्वारपर लागत-मात्रपर या मुफ्त बाँटे जायें। जैसा कि प्रायः होता है वे पंडालमें न बाँटे जाने चाहिए क्योंकि इससे सभीको असुविधा होती है। स्वागताध्यक्ष और कांग्रेस अध्यक्ष उनका सार या तो पढ़ दें या जबानी सुना दें जिसमें प्रत्यक्षतः तीस मिनटसे अधिक समय न लगे।

तीसरी खराबी है एक विशाल पंडाल बनानेमें की जानेवाली रुपयेकी भयंकर बर्बादी। यह बढ़ती ही जाती है। भारतीय जलवायुमें सभाएँ खुलेमें की जा सकती हैं। परन्तु मैं इस मामलेमें कुछ अधिक नहीं कहूँगा, क्योंकि कांग्रेस महासमितिने कांग्रेसके पूरे संविधानपर विचार करनेके लिए एक उप-समिति नियुक्त कर दी है जिसके सर्वश्री केलकर, आई० बी० सेन, ए० रंगास्वामी आयंगार, माननीय वी० जे० पटेल और मैं सदस्य हैं।

कांग्रेसके प्रस्तावोंसे प्रकट होता है कि कांग्रेसमें तीव्र मतभेद हैं और समय पाकर इसमें दलोंका बन जाना अनिवार्य है। अबतक कांग्रेस केवल एक दलीय संस्था रही है; किन्तु यदि इसमें से साल-दर-साल अधिकाधिक लोगोंको अलग नहीं होने देना है तो वह अब एक दलीय संस्था नहीं रखी जा सकती। उसमें सब दलोंको प्रतिनिधित्व देनेके उपाय निकाले जाने चाहिए; उसके वार्षिक अधिवेशनका सच्चा राष्ट्रीय स्वरूप तभी कायम रह सकता है।

अब प्रस्तावोंपर विचार करें। ज्यादतियोंकी निन्दाकी बात लीजिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रस्तावके बिना कुछ प्रस्ताव बिलकुल बेजान और महत्त्वहीन हो जाते। यदि हम खुद अपनी ज्यादतियोंकी निन्दा करनेके लिए तैयार नहीं होते तो हमारा अधिकारियोंकी निन्दा करना और इसलिए जनरल डायर या सर माइकेल ओ'डायर या वाइसरायको वापस बुलाये जानेकी माँग करना उचित नहीं होता। अप्रैल-में भीड़ने जो पागलपन-भरा रोष दिखाया, यह प्रस्ताव उसका प्रायश्चित है। यदि हमें कोई व्यवस्थित प्रगति करनी है तो हमें किसी भी रूपमें की गई लोगोंकी हिंसाको स्पष्ट शब्दोंमें गलत बतलाना चाहिए। यह सच है कि पश्चिममें जनता प्रायः हिंसाका आश्रय लेती है; किन्तु इसके विरुद्ध प्रबल लोकमत बनाकर हमें भारतमें ऐसी हिंसाको असम्भव बना देना चाहिए। बहुत कम लोग इस बातसे इनकार करेंगे कि छः अप्रैलको भारतमें एक नई शक्ति, एक नई स्फूर्ति संचरित हो गयी थी। और यदि सत्य हमारे पक्षमें होता तो उस शक्तिको कोई रोक नहीं सकता था। यह मेरा पक्का विश्वास है कि यदि अप्रैलमें हमारी अपनी मूर्खतासे सत्याग्रहकी प्रगति रुक न गई होती तो रौलट अधिनियम न केवल विधि संहितामें से ही हटा दिया जाता बल्कि हमें एक अंग्रेज जनरलके पागलपनका अपमानजनक और तिरस्कारपूर्ण दृश्य भी न देखना पड़ता। असलमें जब अपने राष्ट्रीय मामलोंपर हमारा पूरा नियन्त्रण हो जायेगा तब आत्मसंयमके बिना देशका शासन चलना भी हमें असम्भव लगेगा। भारत जैसे विशाल देशमें, जहाँ लोग सामान्यतः शान्तिप्रिय हैं, यदि जन-समुदायकी मनमानी आमतौरपर चलने लगे तो हमारे लिए देशका शासन चलाना असम्भव हो जायेगा। उस प्रवृत्ति-

को रोकनेके लिए शरीर-बलके प्रयोगकी अपेक्षा लोकमत ज्यादा बड़ा और सक्षम साधन है। इसलिए अपने व्यवहारके औचित्यके प्रतीकस्वरूप और देशके मार्गदर्शनके लिए मैं इस प्रस्तावको महत्त्वकी दृष्टिसे प्रथम स्थान देता हूँ। कांग्रेसके ये प्रस्ताव, जिनपर मुख्यतः लोगोंको कोई कार्रवाई करनेकी जरूरत है, लोकमतके निर्माणके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। और मुझे आशा है कि कार्यकर्त्ता इस प्रस्तावके पीछे जो सत्य है उसकी पूरी शक्तिको समझते हुए उचित समयपर लोगोंको समझायेंगे कि उन्हें हिंसासे बचनेकी जरूरत है।

निन्दाके इस प्रस्तावके बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव सुधारोंके सम्बन्धमें था। यद्यपि मैं इस कथनसे पूर्णतः सहमत हूँ कि भारत अब उत्तरदायी शासनके योग्य है, किन्तु मैं एक क्षणके लिए भी यह विश्वास नहीं करता कि हम इसे उद्योग किये बिना प्राप्त कर सकते हैं। यह उद्योग या तो प्रतिरोधके तरीके अपनाकर कर सकते हैं या सहयोग करके। स्वस्थ प्रतिरोध हमारे अस्तित्वकी एक शर्त है। हमें असत्य, अन्याय और बुराईका हमेशा प्रतिरोध करना चाहिए। मैं यह नहीं मानता था और अब भी नहीं मानता कि सुधार बुरे हैं या अनुचित हैं, मैं उन्हें उत्तरदायी शासन-की ओर ले जानेवाला एक कदम समझता हूँ। इसलिए मैं यह नहीं मानता कि वे निराशाजनक हैं, भले ही वे अपर्याप्त और असन्तोषजनक हों। मैं श्री बिपिनचन्द्र पालकी इस रायका समर्थन करता हूँ कि मैं सुधारोंको निराशाजनक नहीं समझता; इसका अर्थ यह है कि मुझे उनके पास होनेकी आशा नहीं थी। मुझे बेशक यह आशंका थी कि [ब्रिटिश संसदमें] वे शायद ही पास हो सकें लेकिन वे पास हो गये; और इसी तरह जिस रूपमें वे पहले-पहल प्रकाशित हुए थे उस रूपमें कोई और सुधार हो सकेगा, इसकी आशा भी में नहीं करता था। संशोधनके विरोधियोंने स्वीकार किया कि जब देशके हितके लिए सहयोग करना आवश्यक होगा तब वे सहयोग करेंगे और जब रुकावट डालना उसके हितमें होगा तब वे रुकावट डालनेमें न हिचकिचायेंगे। मैंने जिस संशोधनको हाथमें लिया था निस्सन्देह उसका एकमात्र अभिप्राय यही था। परन्तु विरोधियोंको यह श्रेय देना ही चाहिए कि उन्होंने संशोधनका शक्ति-भर विरोध किया, क्योंकि वे स्पष्ट कहते थे कि बदली हुई परिस्थितियोंमें भी उनका नौकरशाही-पर विश्वास नहीं है। मेरी रायमें यह एक गलत रुख है। राजकीय घोषणा अत्यन्त उदार भावनासे तैयार की गई है। वह उदारताकी भावनासे परिपूर्ण है, इसलिए सम्राट्की सहयोगकी अपीलका उत्तर न देना कांग्रेसके लिए अनुचित होता। मानव-स्वभावमें मेरा विश्वास अक्षय है और अत्यन्त विपरीत स्थितियोंमें भी मैंने अंग्रेजोंको युक्ति और, अनुनय-विनयको मानते देखा है। किन्तु वे जब वस्तुतः अन्यायपर होते हैं तब भी अपनेको सदा न्यायपर दिखाना चाहते हैं, इसलिए उनको लज्जित करके दूसरोंकी अपेक्षा उनसे ठीक काम करा लेना अधिक सुगम होता है। परन्तु कुछ भी हो, घोषणाके रूपमें हमारी ओर मैत्रीका जो हाथ बढ़ाया गया है उसे ग्रहण न करना विवेकहीनता होगी और उससे हम अपनी संस्कृतिसे गिरेंगे। यदि हम शक्तिवान हैं तो सहयोग करनेमें हमारी कोई हानि न होगी। समान उद्देश्यके लिए सहयोगकी तैयारी दिखानेसे हम नौकरशाहीको तुरन्त अनुचित स्थितिमें डाल देंगे।

श्री मॉण्टेग्युको सुधारोंके सम्बन्धमें की गई उनकी सेवाओंके लिए धन्यवाद देना भी हमारे लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण था। इसीलिए माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, श्री जिन्ना और मैंने यह अनुभव किया कि मतभेदका खतरा मोल लेकर भी हम इस संशोधनको पास करानेपर पूरा जोर देनेके लिए बाध्य हैं। अन्तमें समझौता हो गया; इससे लोकमान्य तिलक और श्री दासके स्वभावकी अच्छाई प्रकट होती है। दोनों अपने विचारोंपर दृढ़ रहते हुए इस बातके लिए चिन्तित रहे कि सभामें मतभेद न हो। उनके इस प्रयत्न और मंचपर इतने लोगोंको समझौता करानेके लिए प्रयत्नशील देखकर प्रसन्नता होती थी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७–१–१९२०

२४३. पत्र : जी० ई० चैटफील्डको

सत्याग्रह आश्रम
जनवरी ८, १९२०

प्रिय श्री चैटफील्ड,

आश्रमके प्रबन्धक, श्री मगनलाल गांधीने कुछ समय हुआ आश्रमकी गैर-इनामी जमीनपर गोशाला बनानेकी अनुमतिके लिए अर्जी दी थी; लेकिन यह अनुमति अभी-तक नहीं मिली है। इस गोशालाका उपयोग मवेशी रखनेके लिए होगा। मवेशियोंका क्या उपयोग किया जायेगा, इस विषयमें शायद कुछ पूछ-ताछ की गई है। अगर यह बात समझ ली गई होती कि इस बस्तीमें हमारा मुख्य काम खेतीका है तो यह प्रश्न पैदा ही न होता। हमारी सारी जमीनका जो इस्तेमाल किया जा रहा है उससे यह बात बिलकुल स्पष्ट है। इस समय हमारे पास मवेशी काफी संख्यामें हैं। उन्हें ज्यादा दिनोंतक बाड़ेकी उचित व्यवस्था किये बिना रखना खतरेसे खाली नहीं है। अतः आप तुरन्त अनुमति प्रदान कर सकें तो मैं आपका आभारी होऊँगा। आप जब चाहें हम आपको इस बातका इतमीनान करा सकते हैं कि हम मवेशियोंका उपयोग व्यापारके लिए नहीं कर रहे हैं। इन मवेशियोंको हम खेतकी जुताईके लिए, उनसे प्राप्त होनेवाली खाद और खादके अतिरिक्त अपने ही लिए गाय और भैंसोंसे मिलनेवाले दूधके लिए पालते हैं।[1]

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०३७) की फोटो-नकलसे।

१. चैटफील्डने इस पत्रका उसी दिन निम्नलिखित उत्तर दिया: "अगर बात केवल इतनी ही है कि आप अपनी खेतीवाली जमीनका इस्तेमाल गौशाला या मवेशियोंके बाड़े बनानेके लिए करना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। वस्तुतः यदि मवेशी आपकी अपनी जमीनपर इस्तेमालके लिए हैं तो ऐसी इमारतें फार्मकी इमारतें होती हैं, और मालगुजारी कानून [एल० आर० ए०] के अन्तर्गत मेरी अनुमतिकी कोई आवश्यकता नहीं है।

२४४. उपद्रव जाँच समितिके सामने गवाही[1]

[अहमदाबाद
जनवरी ९, १९२०]

श्री मो० क० गांधी, बैरिस्टर, अहमदाबाद

अध्यक्षके प्रश्नोंके उत्तरमें :

प्र० : श्री गांधी, हमें बताया गया है कि सत्याग्रह आन्दोलनके प्रणेता आप ही हैं ?

उ० : ठीक ही बताया गया है, श्रीमन्।

कृपया आप हमें यह समझाइए कि इस आन्दोलनका मतलब क्या है।

इस आन्दोलनका उद्देश्य [कार्यसिद्धिके] हिंसात्मक तरीकोंकी जगह अहिंसात्मक तरीकोंको स्थापित करना है। यह आन्दोलन पूर्णरूपसे सत्यपर आधारित है। इस आन्दोलनकी मेरी जो कल्पना है, उसके अनुसार यह कौटुम्बिक जीवनके नियमका राजनीतिक क्षेत्रमें प्रसार है, और अपने अनुभवोंके आधारपर मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि वास्तविक या काल्पनिक शिकायतोंको दूर करनेके तरीकेके तौरपर, भारतके एक छोरसे दूसरे छोरतक फैली हुई हिंसाकी सम्भावनाओंसे यह और केवल यही आन्दोलन भारतको बचा सकता है।

जहाँतक इसका हमारी जाँचसे कोई सरोकार है, आपने उसे रौलट विधेयकोंके विरोधके सिलसिलेमें अपनाया है ?

जी हाँ।

१. उपद्रव जाँच समितिकी अध्यक्षता लॉर्ड हंटरने की थी। इस समितिमें न्यायमूर्ति रैंकिन, डब्ल्यू० एफ० राइस, मेजर-जनरल सर जॉर्ज बैरो, पं० जगतनारायण, टॉमस स्मिथ, सर चि० ह० सीतलवाड और सरदार साहबजादा सुलतान अहमद खाँके अलावा एन० विलियमसन भी शामिल थे, जो समितिके मंत्री थे। समितिकी पहली बैठक दिल्लीमें ३१ अक्तूबर, १९१९ को हुई और फिर ३ नवम्बरसे १० नवम्बर-तक। इसके बाद १३ नवम्बरसे २१ नवम्बरतक और तदुपरान्त ११ दिसम्बरको समितिने लाहौरमें गवाहियाँ लीं। दिल्लीमें जिन गैर-सरकारी गवाहोंसे पूछताछ की गई उनमें हकीम अजमल खाँ, प्रिंसिपल एस० के० रुद्र, लाला शंकरलाल और स्वामी श्रद्धानन्द शामिल थे। ब्रिगेडियर-जनरल डायरकी पेशी समितिकी लाहौरकी बैठकमें हुई। अहमदाबादकी बैठक ५ जनवरीसे १० जनवरीतक चली। वहाँ जिन गैर-सरकारी गवाहोंने गवाहियाँ दीं उनमें गांधीजीके अलावा जिला स्थानिक निकायके अध्यक्ष हरिभाई देसाईभाई देसाई, होमरूल लीगकी अहमदाबाद शाखाके मंत्री जीवनलाल व्रजराय देसाई, गुजरात सभाके मंत्री कृष्णलाल एन० देसाई, अहमदाबाद नगरपालिकाके अध्यक्ष रमणभाई एम० नीलकण्ठ, सत्याग्रह सभाके मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल, अम्बालाल साराभाई और अनसूयाबेन साराभाईके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। गांधीजीकी यह लम्बी गवाही ९ जनवरीको शुरू हुई और ९ को ही समाप्त हो गई। १५ तारीखको समितिकी एक बैठक बम्बईमें भी हुई। गांधीजीकी गवाही सार-रूपमें **यंग इंडिया**में भी प्रकाशित हुई थी।

और इस सम्बन्धमें आपने लोगोंसे वह प्रतिज्ञा लेनेको कहा जिसे हम सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाके नामसे जानते हैं?

जी हाँ, मैंने कहा था।

सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाके बारेमें मेरी कल्पना इस प्रकार है: आप बताइये क्या वह सही है? रौलट विधेयकोंके आपत्तिजनक अनुच्छेदोंके विवरणसे प्रारम्भ करके सत्याग्रही यह प्रतिज्ञा लेते हैं कि वे रौलट अधिनियम और ऐसे अन्य अधिनियमोंकी सविनय अवज्ञा करेंगे, जिनके बारेमें इस उद्देश्यसे गठित की जानेवाली समिति वैसा निश्चय करेगी। आपका इरादा क्या यह था कि इसके लिए आप जितने सत्याग्रही तैयार कर सकें, करें?

जी हाँ, जहाँतक इससे आन्दोलनको ठीक ढंगसे चलानेमें कोई बाधा पहुँचनेका भय नहीं है। मतलब यह कि अगर मुझे ऐसे दस लाख लोग मिल जायें जिनमें सत्यको समझने, उसपर आचरण करनेकी क्षमता है और जो हिंसात्मक कार्रवाईसे बिलकुल अलग रह सकते हैं तो मैं दस लाख लोगोंको भी इसमें बेहिचक शामिल कर लूँगा।

तो क्या आपको जितने लोगोंके बारेमें यह भरोसा हो जायेगा कि वे इस आन्दोलनके स्वरूपको समझते हैं, उतने लोगोंको आप सत्याग्रहीके रूपमें शामिल कर लेंगे?

जी हाँ।

क्या आपका आन्दोलन तत्त्वतः सरकार-विरोधी नहीं है? क्या आप सरकारकी इच्छाके स्थानपर इस समितिके निश्चयको प्रतिष्ठित नहीं कर रहे हैं?

जहाँतक मैं समझता हूँ ऐसा नहीं है। इस आन्दोलनकी कल्पना इस रूपमें नहीं की गई है और साथ ही यह भी कि जहाँ-कहीं यह आन्दोलन मेरे नेतृत्वमें चलाया गया है वहाँ जनताने इसे इस रूपमें नहीं समझा है।

श्री गांधी, इसपर आप तनिक सरकारके दृष्टिकोणसे तो सोचकर देखिए। अगर आप ही सरकार हों और कोई व्यक्ति ऐसा आन्दोलन छेड़ दे कि आपके किसी भी कानूनका पालन नहीं किया जायेगा और उसके बदले किसी समितिकी इच्छाका ही पालन किया जायेगा तो आप उसके विषयमें क्या कहेंगे?

लेकिन इस उदाहरणमें तो सत्याग्रहियोंका पक्ष पूरी तरह पेश नहीं होता। मैं इसे यों कहना चाहूँगा। अगर किसी देशकी सरकारका जिम्मा मेरे हाथोंमें हो और मैं अपने सामने किसी ऐसे जन-समूहको डटा पाऊँ जो सत्यको ढूँढ़नेके लिए कृत-संकल्प हो, जिसने हिंसा, उपद्रव और आगजनी आदिका सहारा लिये बिना अन्यायपूर्ण कानूनोंका निराकरण करानेका निश्चय कर लिया हो तो मैं उस जन-समूहका स्वागत करूँगा और समझूँगा कि जो लोग उस समूहमें शामिल हैं वे तो सर्वोत्तम विधानवादी हैं — शासककी हैसियतसे मुझे इस सम्बन्धमें सलाह और सहायताके लिए उनसे बढ़कर और कोई नहीं मिलेगा क्योंकि वे मुझे बराबर सही रास्तेपर आरूढ़ रखेंगे।

आज सुबह ही मैं इस विषयपर चर्चा कर रहा था। यह प्रतिज्ञा या इसका यह अंश वास्तवमें एक अंकुशका काम करता है। अगर आप इसे फिर पढ़ें तो देखेंगे कि उस प्रतिज्ञा या उसके उक्त अंशका उद्देश्य, जहाँतक कानून भंग करनेका सवाल है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर अंकुश लगाना है; और चूँकि मैं इसे एक सार्वजनिक आन्दोलनका रूप देना चाहता था इसलिए मैंने सोचा कि ऐसा-कुछ करना[1] आवश्यक है, जिससे, जहाँतक सत्याग्रहियोंका सम्बन्ध है, कोई व्यक्ति सर्वसाधारणको मनचाहे ढंगसे न नचाने लगे। इसलिए मेरे मनमें यह योजना आई कि समिति ही यह कह सकनेकी स्थितिमें हो कि इस कानूनका सामूहिक रूपसे उल्लंघन किया जाये।

कहावत है कि जितने वैद्य उतने उपचार, और श्री देसाईने जो कहा है उससे मैं ऐसा समझा हूँ कि कुछ ऐसी ही बात सत्याग्रहियोंके सम्बन्धमें भी है?[2]

मुझे तो इसमें कोई सन्देह नहीं है और इसका मुझे दुःखद अनुभव है।

अब मैं आपके सामने उदाहरणार्थ एक मसला रखता हूँ। मान लीजिए किसी सत्याग्रहीको इस बातका पूरा सन्तोष हो कि अमुक कानून न्यायसंगत है और उसका पालन होना चाहिए लेकिन सत्याग्रहियोंकी समिति कहती है कि 'इस कानूनकी अवज्ञा करो' तो जिस सत्याग्रहीने ऐसी प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर किये हों, वह क्या करेगा?

जिसे वह अन्यायपूर्ण नहीं मानता, उस कानूनकी अवज्ञा करनेका उसपर कोई बन्धन नहीं है और हमारे बीच ऐसे बहुत-से सत्याग्रही थे।

मैं तो समझता हूँ कि प्रतिज्ञाकी शर्तोंके अनुसार वह ऐसे कानूनकी भी अवज्ञा करनेको बँधा हुआ है?

नहीं, इस प्रतिज्ञाको जिस रूपमें मैंने समझा है और इसकी मैंने जो व्याख्या की है उसके अनुसार तो वह बँधा हुआ नहीं है। अगर समिति यह कहेगी कि प्रतिज्ञाका जो अर्थ मैं लगाता हूँ, वह गलत है तो मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि जब दूसरी बार सत्याग्रह-संघर्ष आरम्भ करूँगा तब इस भूलको सुधार लूँगा।

श्री गांधी, मैं आपको कोई सलाह नहीं देना चाहता, और मैं जानता हूँ कि अगर दूँगा भी तो आप स्वीकार नहीं करेंगे। लेकिन यह सत्याग्रह खतरनाक किस्मका आन्दोलन है।

काश मैं सचमुच समितिके इस विचारको कि यह एक खतरनाक आन्दोलन है, उसके मनसे दूर कर सकता! यदि आप इस संघर्षको देशके हिंसावादियोंसे मुक्त करनेके प्रयासके रूपमें देखें तो मेरी तरह आपको भी यह चिन्ता होगी कि जिस

१. **यंग इंडिया**में प्रकाशित रिपोर्टके अनुसार, तात्पर्य 'सत्याग्रह समिति' जैसी किसी समितिके गठनसे है।

२. तात्पर्य होमरूलकी अहमदाबाद शाखाके मंत्री और सत्याग्रह सभाके एक सदस्य बैरिस्टर जीवनलाल व्रजराय देसाईके उस विचारसे है जो ८ जनवरीको समितिके सामने गवाही देते हुए उन्होंने व्यक्त किया था कि सत्याग्रह आन्दोलनको "निरपवाद रूपसे शिक्षित-वर्गतक ही सीमित रखा जाना चाहिए।"

कीमतपर भी हो, देशमें इस प्रकारका आन्दोलन जारी रहना चाहिए ताकि वह देशके वातावरणको विशुद्ध बनाता रहे।

रौलट विधेयकोंके सम्बन्धमें हमें बताया गया है कि भारतमें इनका बड़े व्यापक और विस्तृत पैमानेपर विरोध किया जा रहा है। इन विधेयकोंपर, भारतीय या यूरोपीय दृष्टिकोणको अलग रखकर, तनिक स्वतन्त्र रूपसे विचार कीजिए। क्या आप इनके विरुद्ध संक्षेपमें अपनी आपत्तिका सार बतायेंगे?

जब मैं रौलट कमेटीकी रिपोर्ट पढ़ते-पढ़ते उसके अन्तमें पहुँचा और मेरी समझमें आया कि ये कानून जिनका उसमें पूर्वाभास दिया गया था, कैसे होंगे तो मुझे लगा कि समितिने जो तथ्य दिये हैं, उनकी रोशनीमें तो इन कानूनोंकी जरूरत नहीं है। और जब मैंने स्वयं उन कानूनोंको पढ़ा तो महसूस किया कि ये मानव-स्वातन्त्र्यको इतना अधिक प्रतिबन्धित कर देते हैं कि कोई भी आत्मसम्मानी व्यक्ति या राष्ट्र इस बातको बरदाश्त नहीं कर सकता कि ऐसे कानून उसकी स्थायी विधि-संहितामें स्थान प्राप्त करें। और जब मैंने इसपर विधान-परिषद्में हुई बहसका हाल पढ़ा तो मुझे लगा कि इसके प्रति विरोधकी भावना बहुत ही व्यापक है और जब मैंने यह देखा कि उस भावना या विरोधकी सरकार उपेक्षा कर रही है तो मुझे लगा कि एक आत्मसम्मानी व्यक्ति और इस विस्तृत साम्राज्यके सदस्यके रूपमें अब इस कानूनका अपनी शक्ति-भर विरोध करनेके अलावा मेरे लिए और कोई रास्ता नहीं रह गया है।

जहाँतक इस कानूनके उद्देश्यका सम्बन्ध है, क्या आपको इसमें कोई सन्देह है कि उसका उद्देश्य सिर्फ क्रान्तिकारियों और अराजकतावादियोंके अपराधोंको रोकना ही है?

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उद्देश्य ऊँचा है।

तो क्या आप यह स्वीकार करते हैं कि इसका उद्देश्य काफी ऊँचा है?

पूरी तरह।

तो आपकी शिकायत निश्चय ही इसके लिए अख्तियार किये गये तरीकोंके खिलाफ होगी?

बिल्कुल ऐसा ही है।

अगर मैंने आपकी बातको ठीक समझा है तो आपको जिस बातकी शिकायत है वह यह कि कार्यपालिका (एक्जीक्यूटिव) को, वह अबतक जितनी सत्ताका उपयोग करती रही है, उससे अधिक सत्ता दे दी गई है।

हाँ, बात ऐसी ही है।

मेरा खयाल है कार्यपालिकाको भारत रक्षा अधिनियमके अन्तर्गत ये अधिकार यूरोपीय युद्धके दौरान भी प्राप्त थे?

हाँ, यह सही है। भारत रक्षा अधिनियम एक आपातिक विधान था। भारत रक्षा अधिनियमका उद्देश्य उस समय किसी भी विचारधाराके पोषकों द्वारा हिंसात्मक कार्रवाई करनेका जो खतरा था उसे दबानेके लिए हर आदमीका सहयोग प्राप्त करना था, और लोगोंने वास्तवमें बहुत ही अरुचिके साथ उस अधिनियमको स्वीकार किया था, लेकिन जैसा कि मैंने समझा, रौलट कानून बिलकुल भिन्न प्रकारका है। इसके

अतिरिक्त इस अवसरपर लोगोंको भारत रक्षा कानूनको व्यवहार-रूपमें देख चुकनेके अनुभवका लाभ भी प्राप्त था।[1]

अब मान लीजिए, रौलट अधिनियमको कार्य-रूप दिया जानेको है; तो सबसे पहले तो स्थानीय सरकारको इस बातकी पूरी प्रतीति हो जानी चाहिए कि यहाँ सचमुच अराजकताकी स्थिति वर्तमान है, और दूसरे भारत सरकारको भी यह प्रतीति कर लेनी होगी। क्या आपको तब भी इसमें कोई गम्भीर आपत्ति होगी?

बहुत ही गम्भीर! विधायककी हैसियतसे मैं यह अधिकार एक ऐसी कार्यपालिकाके हाथोंमें कभी नहीं दूँगा जिसे मैंने बार-बार अपने कर्त्तव्यमें चूकते देखा है। मैंने देखा है कि भारत सरकारकी कार्यपालिकाने कई बार पागलोंकी-सी कार्रवाइयाँ की हैं। मैं ऐसी किसी सरकारको कभी भी ऐसी कोई निरंकुश सत्ता नहीं दूँगा।

तब आपकी आपत्ति सचमुच यह है कि आप मानते हैं, भारत सरकारने एक अच्छे उद्देश्यकी पूर्तिके लिए गलत उपाय अपनाया। उस हालतमें उसका हल ढूँढ़नेका, संवैधानिक दृष्टिकोणसे, क्या यह उचित उपाय नहीं है कि सरकारको इस कानूनकी अनुपयुक्तताकी प्रतीति करायी जाये और इसमें सुधार करवा दिया जाये?

ऐसा करानेकी कोशिश करके तो मैंने देख लिया। लॉर्ड चैम्सफोर्डसे और जिन अन्य अंग्रेज अधिकारियोंसे मिलनेका मुझे अवसर मिला उन सबसे मैंने हाथ जोड़कर मिन्नतें कीं और मैंने उनके सामने अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। और मुझे यह कहते हुए हर्षका अनुभव हो रहा है कि उनमें से कुछने मेरे दृष्टिकोणको स्वीकार भी किया, लेकिन उन्होंने कहा कि ये सिफारिशें रौलट समितिने की हैं और हम लोग इसमें कुछ नहीं कर सकते। मेरा खयाल है, हमने सभी दरवाजे खटखटाकर देख लिये।

लेकिन अगर कोई ईमानदार विरोधी आपके विचारोंसे सहमत नहीं है, तो आप उसे अपने दृष्टिकोणके सही होनेकी प्रतीति एकाएक करवा देनेकी आशा नहीं कर सकते। आपको तो ऐसा धीरे-धीरे ही करना होगा?

जी हाँ।

लेकिन इस कानूनका या अन्य जिन कानूनोंको आप चाहें उनका पालन करनेसे इनकार करना क्या उस उद्देश्यकी पूर्तिका बहुत सख्त तरीका नहीं है?

मैं आदरपूर्वक कहूँगा कि नहीं। अगर मेरे पिता भी मुझपर कोई ऐसा नियम लाद दें जिसे मेरी अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करती तो मैं समझता हूँ उनसे मेरा विनयपूर्वक यह कह देना तो कमसे-कम सख्त तरीका होगा कि "पिताजी, मैं इसका पालन करनेमें असमर्थ हूँ।" और वैसा करके मैं अपने पिताके साथ न्याय ही करूँगा, और कुछ नहीं। अगर समितिकी शानमें यह गुस्ताखी न मानी जाये तो मैं कहूँगा कि मैंने इसी नियमका पालन अपने घरेलू जीवनमें भी किया है और मैंने देखा कि वह अधिकसे-अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। मैंने यह बात भारतीयों और अन्य हर

१. *यंग इंडिया*में यह वाक्य इस प्रकार दिया गया था :- "... अब पिछले अधिनियमके अमली रूपके अनुभवसे रौलट अधिनियमके विरुद्ध मेरी आपत्तियाँ और भी पुष्ट हो गई हैं।"

आदमीके सामने स्वीकारार्थ रखी है। अपने पितासे नाराज होनेके बदले मैं विनयपूर्वक उनसे कहूँगा कि "मैं इसका पालन करनेमें असमर्थ हूँ।" इसमें मुझे कोई गलती नहीं दिखाई देती। और अगर अपने पितासे ऐसा कहना गलत नहीं है तो किसी मित्र अथवा सरकारसे ऐसा कहनेमें तो कोई गलती हो ही नहीं सकती।

रौलट कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह चलानेमें आपने सारे भारतमें एक हड़ताल करवानेका निश्चय किया था?

जी हाँ।

और हड़तालके दौरान सरकारकी कार्रवाईके विरुद्ध नाराजगी जाहिर करनेके लिए सारा कारोबार बन्द रखनेकी बात थी?

जी हाँ।

तो हड़तालका मतलब है देश-भरमें कारोबारका ठप हो जाना?

जी हाँ।

अगर इस तरह सारा कारोबार थोड़े समयके लिए बन्द रहे तब तो शायद कोई हानि न हो। लेकिन अगर यह सिलसिला लम्बी अवधितक चले तो क्या उससे जनताको बहुत हानि नहीं होगी?

बहुत अधिक।

आपकी हड़तालके लिए तो मार्चकी ३० तारीख निश्चित थी?

मैंने सिर्फ इतना ही कहा था कि [वाइसरायकी स्वीकृतिके] प्रकाशनके बाद पड़नेवाले दूसरे रविवारको।

दूसरा रविवार तो ६ अप्रैलको पड़ा। लगता है कि कुछ लोगोंको गलतफहमी हो गई थी?

जी नहीं, कोई गलतफहमी नहीं हुई। जिन लोगोंको, वाइसरायकी स्वीकृति मिलनेके तुरन्त बाद उसकी सूचना मिल गई, उनके लिए वह दिन ३० मार्चको पड़ता था। यह बात मद्रासके लोगोंके ध्यानमें लाई गई थी। मैंने तुरन्त ६ अप्रैलकी तारीख निश्चित करते हुए एक तार भेजा, लेकिन जिस दिन दिल्लीमें वाइसरायकी स्वीकृति देनेके बाद पड़नेवाले दूसरे रविवारकी तिथि निश्चित करते हुए यह पत्र[1] प्रकाशित हुआ उस दिन शामतक सारे भारतको तार भेजे जा चुके थे। दुर्भाग्यवश हड़ताल समयके पूर्व ही कर दी गई।

और जब दिल्लीमें हड़ताल हुई तो दुर्भाग्यवश वहाँ बहुत जबरदस्त दंगे भी हुए?

जी हाँ।

अब जहाँतक हड़तालकी बात है, आपका यही मत है न कि कारोबारसे अलग रहनेका ढंग बिलकुल अनाक्रामक हो?

बिलकुल।

१. गांधीजीने २३ मार्च, १९१९ के इस पत्रका पाठ अखबारोंमें प्रकाशित कराया था और यह गांधीजीके लिखित वक्तव्यके उपबन्ध 'क' के रूपमें उद्धृत किया गया था। देखिए "वक्तव्य: उपद्रव जाँच समितिके सामने", ५-१-१९२०।

तब तो हड़तालियोंका दूसरे लोगोंसे हड़ताल करनेका ऐसा अनुरोध, जिसे सक्रिय अनुरोध कहा जा सकता हो, निन्दनीय माना जायेगा?

बिलकुल; बशर्ते कि यह सक्रिय अनुरोध हड़तालके दिन ही किया गया हो। वह तो हर हालतमें अनुचित माना जायेगा। लेकिन अगर लोगोंको हड़तालके लिए तैयार करनेके उद्देश्यसे पर्चे बाँटे गये हों और उनसे सभाओंमें या अलग-अलग उनके घर जाकर भी, यह कहा गया हो कि हड़ताल करना आपके लिए बिलकुल उचित काम है तो उसे अनुचित नहीं माना जायेगा।

हम यह तो निश्चित तथ्यके रूपमें जानते हैं कि आपके आन्दोलनके सिलसिलेमें बहुत-सी सभाएँ की गईं, और उन सभाओंमें आपके विचारोंसे सहानुभूति रखनेवाले सज्जनोंने लोगोंको आम तौरसे यह समझानेकी कोशिश की कि आप जो रास्ता बता रहे हैं, उसे अपनाना बिलकुल उचित होगा; और उस आम आन्दोलनके परिणामस्वरूप देश-भरमें आपके विचारोंके अनुसार हड़ताल करनेके पक्षमें बड़ा व्यापक प्रचार किया गया। यह तो सच है न?

जी हाँ।

लेकिन अब अगर मैं आपकी बातको ठीक समझ रहा हूँ तो हड़तालियोंकी, हड़तालके दिन, लोगोंको अपने ताँगों या मोटरगाड़ियोंसे उतारनेकी कोशिश आपकी दृष्टिमें गलत थी?

यह बात सुनकर मुझे बड़ा सदमा पहुँचा था।

तो यह तो आपके सिद्धान्तके बिलकुल विरुद्ध था?

जी हाँ, बिलकुल विरुद्ध।

और अगर ऐसी कोई बात हुई हो तो हिंसा और दंगा-फसाद होना भी लाजिमी था?

जी हाँ, लाजिमी ही था।

तो क्या मैं यह मानूँ कि जो लोग हड़तालमें शामिल थे और दूसरोंको भी शामिल होनेके लिए जबरदस्ती मजबूर कर रहे थे, पुलिस या असैनिक अधिकारियोंका उन्हें रोकना आप तबतक अनुचित नहीं समझेंगे जबतक कि पुलिसने पर्याप्त आत्मसंयम और सहिष्णुतासे काम लिया हो?

जी हाँ, मैंने देखा कि पुलिसके सामने वैसा करनेके अलावा और कोई रास्ता ही नहीं था।

और अगर आपका विचार ऐसा है तो जो-कुछ घटित हुआ उसके अनुसार मैं तो मानता हूँ कि आप इस बातको और भी ज्यादा स्वीकार करेंगे कि जिन लोगोंने दुकानदारोंके पास जाकर उनसे अपनी दुकानें बन्द करनेको कहा, उनका यह कार्य अनुचित था?

जी हाँ, हड़तालके दिन उनका ऐसा करना बहुत अनुचित था।

और जो अभागे दुकानदार अपनी दुकानें बन्द करनेको तैयार नहीं थे उनके साथ जबरदस्ती करना सत्याग्रहके दृष्टिकोणसे और भी अधिक अनुचित था?

जी हाँ, मैं तो इसे अपराधपूर्ण कार्रवाई मानता हूँ।

६ तारीखकी हड़तालके सिलसिलेमें कोई हिंसात्मक कार्रवाई नहीं हुई, लेकिन हमें इस बातके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि जब भी हड़ताल हुई है लोगोंसे हड़ताल करनेके लिए आग्रह किया गया है?

हाँ, ऐसा तो किया गया।

यह कार्य तो अनुचित था?

निश्चय ही।

दिल्लीमें आपके नायब स्वामी श्रद्धानन्द हैं . . . ?

उन्हें अपना नायब कहनेका साहस तो मैं नहीं कर सकता। उन्हें मैं अपना समादृत सहयोगी ही कह सकता हूँ।

उन्होंने आपको हड़तालके विषयमें एक पत्र लिखा था। और उसमें उन्होंने आपको यह संकेत दिया था कि दिल्लीमें —— और मैं समझता हूँ पंजाबमें भी —— जो-कुछ हुआ है, उसके बाद यह स्पष्ट है कि अगर आप आम हड़ताल करवाना चाहते हैं तो हिंसाकी सम्भावनाको किसी तरह टाला नहीं जा सकता। यह सच है न?

मैं नहीं समझता, उन्होंने ये बातें इतने स्पष्ट शब्दोंमें कही हैं। मुझे उस पत्रका मजमून भी याद नहीं।[1]

उसमें बातें तो बहुत हदतक इसी आशयकी कही गई थीं न?

मेरा खयाल है, वे और आगे बढ़ गये थे; उन्होंने कहा था कि हिंसाके खतरेके बिना यह सम्भव नहीं। हाँ, यहाँ उनका आशय हड़तालसे नहीं बल्कि कानूनभंग करनेके आन्दोलनसे था। उन्होंने यह कहा था कि जन-साधारणके बीच सत्याग्रह आन्दोलन बेहिचक नहीं चलाया जा सकता, लेकिन दरअसल उनके और मेरे विचारोंमें एक अन्तर है। जब मैंने सविनय अवज्ञा स्थगित की तो उनका यह विचार था कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए, लेकिन जब लोगोंको हिंसासे रोकनेके लिए उनपर पर्याप्त नियन्त्रण नहीं कर पानेके कारण मुझे सविनय अवज्ञा स्थगित करना आवश्यक जान पड़ा तो उन्होंने कहा: "अगर आप यह स्थिति अपनाते हैं तो उससे मैं यही सीख लूँगा कि सत्याग्रह कभी भी सार्वजनिक आन्दोलनके रूपमें नहीं किया जा सकता।" मेरा खयाल है, यही उनके पत्रका आशय है। इसपर मुझे उनके साथ बातचीत भी करनी पड़ी थी।

१. यह पत्र गांधीजी ढूँढ़ नहीं पाये। स्वामी श्रद्धानन्द ५ नवम्बरको दिल्लीमें समितिके सामने गवाही देते हुए इसका एक मसविदा ही दिखा सके। उन्होंने गांधीजीको लिखे अपने पत्रका संक्षिप्त आशय इन शब्दोंमें बताया था: "मुझे लगा कि श्री गांधी द्वारा प्रारम्भ किया गया सत्याग्रह —— यानी कानूनकी सविनय अवज्ञा —— उपयुक्त चीज नहीं है। सत्याग्रहके एक अंगके रूपमें श्री गांधी द्वारा छेड़ा गया सविनय अवज्ञा सम्बन्धी आन्दोलन इस देशकी परिस्थितियोंके अनुकूल नहीं है।"

क्या वे आपसे सहमत हुए ?

मैं नहीं जानता कि अब भी उनका विचार वैसा ही है या नहीं। सम्भव है, तथ्योंको देखते हुए उनका विचार बदल गया हो। मुझे तो लगता है कि प्रसंग आने-पर सविनय अवज्ञाको स्थगित कर देना उतना ही आवश्यक है जितना कि उसे चलाना।

लेकिन जरा एक बातकी ओर ध्यान दीजिए; अगर आप एक ही साथ पूरी हड़ताल भी करवा देते हैं और निठल्ले लोगोंके समूहके बीच कानूनकी सविनय अवज्ञाके सिद्धान्तको भी लागू कर देते हैं, तो उस हालतमें क्या अनाक्रामक और आक्रमक प्रतिरोधमें भेद करना बहुत मुश्किल नहीं हो जायेगा ?

यहाँ मैं आपसे, हड़ताल और सच्चे सत्याग्रहके बीच जो बहुत गहरा भेद है उसकी ओर ध्यान देनेका निवेदन करूँगा। हड़तालका स्वरूप कभी सत्याग्रह-सम्मत हो भी सकता है और कभी नहीं भी हो सकता। इस मामलेमें तो सविनय अवज्ञाका हड़तालसे कतई कोई सम्बन्ध नहीं था। हड़तालके दो उद्देश्य थे: एक तो जनता और सरकार, दोनोंका ध्यान आकर्षित करना, लेकिन दूसरा था जो लोग सविनय अवज्ञा करनेवाले हैं, उन्हें अनुशासनकी शिक्षा देना। भारतके मनको समझनेके लिए कोई ऐसा प्रभाव-शाली तरीका अपनानेके अलावा मेरे सामने और कोई उपाय नहीं था। अगर मैंने सिर्फ उपवासकी ही बात कही होती तो मुझे यह नहीं मालूम हो पाता कि कितने लोगोंने उपवास किया और केवल प्रार्थना करनेको कहा होता तो यह नहीं मालूम हो पाता कि कितने लोगोंने प्रार्थना की। इस बातका अन्दाज कर पानेका समुचित साधन हड़ताल ही थी कि मैं अपने सिद्धान्तको कहाँ तक कार्यान्वित कर सकता हूँ।

दोनोंका भेद मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ। लेकिन अगर हड़ताल उसी समय की गई हो जब लोगोंको सत्याग्रहके सिद्धान्तकी शिक्षा दी जा रही हो तब ? और इसकी शिक्षा तो लोगोंको सार्वजनिक सभाओंमें दी जा रही थी ?

जी हाँ, और ठीक उसी दिन।

लेकिन ऐसा करके क्या आपने शान्ति-सुव्यवस्थाके लिए बहुत खतरनाक स्थिति पैदा नहीं कर दी ?

जी नहीं, बल्कि मैंने उसके लिए अनुकूल स्थिति पैदा की। और ६ अप्रैलको मैंने स्वयं वैसा किया, क्योंकि उस दिन मैं बम्बईमें ही था और कुछ ऐसी आशंका थी कि लोग स्वयं ही हिंसापर उतर आयेंगे। और मैं आपसे कह सकता हूँ कि लोगोंने ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की जिसे हिंसात्मक, सचमुच हिंसात्मक कहा जा सके, और इसका कारण यह था कि उन्हें सत्याग्रहके सच्चे स्वरूपसे अवगत कराया जा रहा था। हजारों लोग एकत्र थे, लेकिन मैंने आश्चर्यचकित होकर देखा कि उनका व्यवहार बिलकुल शान्तिपूर्ण है। बात ऐसी नहीं हुई होती, अगर लोगोंको सही मौकेपर सत्याग्रहके सिद्धान्तका स्वरूप नहीं समझाया जाता। सब-कुछ इस बातपर निर्भर करता है कि लोगोंको सचमुच सत्याग्रहकी सीख दी जा रही है या सत्याग्रहके रूपमें घृणा की। **लेकिन** सत्याग्रहको कार्य-रूप देना एक बात है और जो लोग हड़ताल कर रहे हैं

उनसे कानून तोड़नेको कहना दूसरी बात और मैं इसी अन्तरको स्पष्ट करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

अब हम उन घटनाओंकी बात लें, जिनसे स्वयं आपका भी सम्बन्ध था। आप दिल्ली और पंजाब जाना चाहते थे, लेकिन पलवलमें आपको रोक लिया गया और वहाँसे बम्बई लाया गया — है न?

जी हाँ।

जैसा मुझे मालूम हुआ है, आप औपचारिक तौरपर ही तो गिरफ्तार किये गये थे?

जी नहीं, मुझे औपचारिक तौरपर भी गिरफ्तार किया गया था और तत्त्वत: भी — गिरफ्तारीके पूरे अर्थोंमें। और यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कई अवसरोंपर लोगोंने कहा कि बात ऐसी नहीं[1] है। गाड़ी मथुरा और पलवलके बीच रुकी और जब हम सीमापर पहुँचे तब मुझपर हुक्म तामील किया गया। पुलिस अधिकारीने मुझसे बहुत ही शिष्टतापूर्वक बातें करते हुए कहा कि इस मामूलीसे स्टेशन-पर आपको गिरफ्तार करते हुए हमें बहुत बुरा लगेगा; यहाँ तो हमें कोई मजिस्ट्रेट भी नहीं मिल सकता और मैं यह भी नहीं जानता कि हमें क्या कार्रवाई करनी चाहिए। हम पलवल स्टेशन पहुँचे। वहाँ मैंने पुलिस अधीक्षकको देखा — मेरा खयाल है, वह दिल्लीका पुलिस अधीक्षक था। उसके अलावा कर्मचारियोंका भी एक दल वहाँ मौजूद था। मेरा खयाल है, वे सब कांस्टेबल थे — वैसे ठीक-ठीक नहीं बता सकता कि वे कौन थे। अधिकारीने मेरे कंधोंपर हाथ रखते हुए कहा कि "श्री गांधी, मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।" उसने मुझपर दो हुक्म तामील किये और अपना बिस्तर-बक्सा अलग करनेको कहा। यह काम उसने खुद मुझसे नहीं करवाया, बल्कि दूसरोंसे कर-वाया और मुझे यह बतानेको कहा कि क्या-क्या अलग करना है। फिर उसने पूछा कि क्या कोई ऐसा आदमी है जो मेरे साथ चलना चाहता हो, इसपर एक मित्र मेरे साथ हो लिए। मुझपर पुलिसका पहरा लगा दिया गया। मैं अपना गला साफ करनेके लिए प्लेटफार्मपर जाना चाहता था, लेकिन पुलिसने मुझे रोक दिया। उन्होंने ठीक ही किया। बाकायदा गिरफ्तारीके लिए जो-कुछ जरूरी था, सब किया गया।

और मैंने सुना है, उसमें कुछ ज्यादती भी की गई थी?

जी नहीं, मैं यह नहीं कहता कि वह कुछ ऐसी बुरी चीज थी। पुलिसको — जैसा कि स्वयं उन लोगोंका कहना था — एक दु:खद कर्त्तव्य निभाना पड़ा, लेकिन

१. नवम्बर ५ को जब दिल्लीके मुख्य आयुक्तकी गवाही ली जा रही थी तो उनसे पूछा गया कि क्या गांधीजीको सचमुच गिरफ्तार नहीं किया गया था। लेकिन प्रश्नको टालते हुए उन्होंने जवाब दिया कि "उन्हें निगरानीमें ले लिया गया था"। गांधीजीको निषेधाज्ञा कोसीमें दी गई थी, जिसे माननेसे उन्होंने इनकार कर दिया था। पलवलमें उन्हें हिरासतमें ले लिया गया और वहाँसे पुलिसकी चौकसीमें मथुरा लाया गया और उस रात उन्हें वहीं रखा गया। दूसरे दिन सुबह उन्हें बम्बईके लिए एक विशेष गाड़ीमें बैठाया गया।

उसने यह सब उतनी भद्रता और शिष्टताके साथ किया जितनी भद्रता और शिष्टताकी किसी भी सज्जन व्यक्तिसे अपेक्षा की जा सकती है।

क्या आप ऐसा नहीं मानते कि सरकारके आदेशकी रू से आपसे बस इतनी ही अपेक्षा की जाती थी कि आपको दिल्ली या पंजाब नहीं जाना था बल्कि वापस बम्बई लौट आना था?

जी हाँ, और जहाँ गाड़ी रोकी गई,[1] वहाँ पुलिसने भी ठीक यही बात कही थी। लेकिन गिरफ्तार होनेके समयतक मैं सचमुच अपराध कर चुका था। इसलिए मुझे गिरफ्तार कर लिया गया। जिस अधिकारीने मुझे गिरफ्तार किया था उसे यह नहीं मालूम था कि मेरे साथ क्या कार्रवाई करनी है। मथुरा आनेपर मुझे और भी आदेश प्राप्त हुए।

और इन आदेशोंमें आपसे वापस बम्बई जानेको कहा गया था?

जी नहीं, बिलकुल नहीं। मुझे पहरेमें ले जाया गया। व्यवस्थामें दो बार परिवर्तन हुआ। यह जो पहला पुलिस अधिकारी था, उसे तो यह भी नहीं मालूम था कि क्या करना है। उसने कहा कि मुझे सीधे सेक्रेटरीके पास ले जाया जायेगा। और इसलिए मुझे इस आदेशकी प्रतीक्षा करनी होगी कि मेरे बारेमें अधिकारियोंको क्या करना है। इसके बाद सवाई माधोपुरमें, जहाँ पेशावरवाली गाड़ीका बम्बईवाली गाड़ीसे मेल होता है, उसने श्री बाउरिंगसे कुछ बात की। मुझे कमिश्नरके पास ले जाया गया। उसके पास कुछ आदेश पड़े थे और उसीके आदेश प्रस्तुत करनेपर मुझे बम्बई ले जाया गया। लेकिन स्वयं श्री बाउरिंगको इस बातकी कोई जानकारी नहीं थी कि मुझे बम्बई ले जानेके बाद क्या करना है। मेरा खयाल है, सूरतमें उनसे एक अधिकारी मिला जो बम्बईसे आया था। उसने मुझसे कुछ बातचीत की। सुबहका समय था। इस अधिकारीसे बातें करनेके बाद श्री बाउरिंगने कहा कि मुझे बम्बईमें स्वतंत्र कर दिया जायेगा।

इसका तो इतना ही मतलब हुआ कि सरकारके एक आदेशके द्वारा आपको यह स्पष्ट कर दिया गया था कि आपको दिल्ली या पंजाब नहीं जाने दिया जायेगा, लेकिन अगर आप बम्बईमें रहेंगे तो आपको पूरी स्वतंत्रता होगी — यही न?

जी, बम्बई प्रान्तमें तो निश्चय ही।

तब तो यह बात इससे तनिक अलग है न कि आपको पकड़कर जबरदस्ती जेलमें डाल दिया गया?

मुझे नहीं मालूम कि किसीने सरकारपर ऐसा कोई आरोप लगाया कि मुझे जबरदस्ती जेलमें डाल दिया गया था। सभीने यही पूछा कि जब मैं गिरफ्तार किया गया, उस समय सचमुच क्या किया गया। मुझे तो ऐसा याद नहीं कि किसीने इस बातको लेकर सरकारकी शिकायत की हो। हाँ, यह अवश्य कहा गया कि सरकारको मुझे अपने शान्ति-कार्यसे विमुख करनेकी कोई जरूरत नहीं थी, और यह तो सरकार जानती थी कि मेरा उद्देश्य वही था और मैं उसके लिए कृतसंकल्प था।

१. कोसीमें।

लेकिन आप यह तो मानेंगे कि आपके और सरकारके बीच मतभेद की गुंजाइश है? —— ऐसे मतभेदकी जिसके पीछे कोई दुरभिसन्धि नहीं है?

जी हाँ, वह तो मैंने स्वीकार किया है।

तब सही या गलत, अगर उसने सोचा कि आपको अपने सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए दिल्ली जाने देनेसे दंगे आदिका खतरा है तो उसने जो-कुछ किया, वह उचित ही तो था?

हाँ, सरकारके दृष्टिकोणसे उचित ही था; और उस दृष्टिसे तो मेरी कोई शिकायत है ही नहीं।

आपकी गिरफ्तारीके बाद दिल्ली और पंजाब तथा यहाँ अहमदाबादमें बहुत दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ घटीं? लेकिन यहाँ हमारा सम्बन्ध सिर्फ अहमदाबादकी घटनाओंसे है। जैसा कि हमें बताया गया है, अहमदाबादमें मिल-मजदूरोंके बीच आपकी बड़ी ख्याति है, चूँकि एक बार आपने उनके एक विवादमें सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया था[1] लगता है, आपकी गिरफ्तारीसे वे बहुत क्षुब्ध हो उठे, और बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि फिर ११ और १२ तारीखको उनकी यही भावना अहमदाबाद और वीरमगाँवकी भीड़में भी भड़क उठी। इन घटनाओंका सम्भवतः आपको व्यक्तिशः तो कोई ज्ञान है नहीं?

जी नहीं, व्यक्तिशः तो मुझे कोई ज्ञान नहीं है।

लेकिन क्या उसके सम्बन्धमें ऐसी कोई बात है जिसके बारेमें आप अपने विचार देना चाहें? अगर ऐसा कर सकें तो हमें अपना मत स्थिर करनेमें बड़ी सहायता मिले?

इन दंगोंके सम्बन्धमें मैं एक बात जरूर कहना चाहूँगा। मेरे विचारसे अहमदाबाद और वीरमगाँव, दोनों स्थानोंमें भीड़की कार्रवाई बिलकुल अनुचित थी, और समझता हूँ, उनका आत्मसंयम खो बैठना बहुत अफसोसकी बात थी।[2] मैं भीड़की कार्रवाईका कोई बचाव नहीं करना चाहता, लेकिन साथ ही मैं यह कहना चाहूँगा कि जो लोग मुझे, सही या गलत, चाहते थे उनके लिए सरकारने, जिसे जरा अधिक समझदारी दिखानी चाहिए थी, एक असह्य तनावकी स्थिति पैदा कर दी थी। मेरा खयाल है, सरकारने वस्तुस्थितिको समझनेमें अक्षम्य भूल की, और वैसी ही भूल भीड़ने भी की। हाँ, भीड़की भूल सरकारकी भूलके मुकाबले अधिक अक्षम्य अवश्य थी। सत्याग्रहीकी हैसियतसे मैं यह भी कहना चाहूँगा कि भीड़ने ऐसा कोई काम नहीं किया जिसके पक्षमें मैं कुछ कह सकूँ या जिसे उचित मान सकूँ। चाहे कितना भी उत्तेजित क्यों न किया गया हो, लेकिन लोगोंने जो-कुछ किया उसे किसी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता। मुझसे कहा गया है कि जिन लोगोंने यह सब किया उनमें से कोई भी सत्याग्रही नहीं था। और यह बात सच भी है। लेकिन उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलनमें शामिल होनेका निश्चय

१. तात्पर्य फरवरी-मार्च, १९१८ के अहमदाबादके मिल-मजदूरोंके वेतन-वृद्धिसे सम्बन्धित विवादसे है; देखिए खण्ड १४।

२. अप्रैल १०, ११ और १२ को भीड़ने अपने क्षोभका प्रदर्शन करते हुए बहुत-सी हिंसात्मक कार्रवाइयाँ कीं — उसने सरकारी दफ्तरों और रेलवे स्टेशनोंको जलाया, परिवहन-व्यवस्थामें व्यवधान उपस्थित किये और यूरोपीयों तथा सरकारी अधिकारियोंको चोटें पहुँचाईं और कुछको मार भी डाला।

किया और इस प्रकार सत्याग्रहके अनुशासनके अधीन आ गये। मैंने लोगोंसे भी ऐसे ही शब्दोंमें बात की है और इस समितिके सामने अपना यह निश्चित मत रखते हुए मैं दुःखी होकर भी प्रसन्न हूँ। मैंने अन्यत्र भी ऐसा कहा है। और मुझे जो-कुछ मालूम हुआ है, उसके आधारपर और भी कहना चाहूँगा।

हाँ, हाँ, जरूर कहिए।

यहाँ आते ही मुझे उस समय जिन शरारतों और गलतियोंका आभास मिला, मैंने उन्हें दुरुस्त करनेकी भरसक कोशिश की। मैंने यह बात लोगों और अधिकारियोंके सामने भी रखी, और श्री प्रैट तथा अन्य अधिकारियोंसे मेरी लम्बी बातचीत हुई। मैं उन लोगोंकी अनुमतिसे एक सभा करनेवाला था; मेरा खयाल है १३ तारीखको उस अवसरपर श्री रॉबर्टसन भी मौजूद थे; लेकिन मैंने सोचा कि उस दिन मेरे लिए सभा करना सम्भव नहीं होगा। उस समय वहाँ सैनिक कानून लागू रहा हो या जो भी हो लेकिन यह कोई मुख्य बात नहीं थी; कठिनाई तो यह थी कि मेरे सहयोगी लोगोंतक पहुँच नहीं पाये थे; उन्होंने सूचनाएँ बँटवानेके लिए स्वयंसेवक भेजे। मैंने श्री प्रैटसे सलाह की और उन्होंने कह दिया कि "हाँ, आप १४ को सभा कर सकते हैं।" इस प्रकार सभा १४ तारीखको हुई। मुझे जो-कुछ महसूस हुआ था, मैंने सभामें कहा। उसमें ऐसा भी हुआ कि मैंने "युक्तिपूर्वक" और "पढ़े-लिखे" शब्दोंका प्रयोग किया, जिन्हें मेरे और आम लोगोंके विरुद्ध भी इतना अधिक उद्धृत किया गया है।[1] मेरे विरुद्ध इनका प्रयोग किया जाये तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन अगर आम लोगोंके विरुद्ध किया जाये तब तो यह बात विचारणीय हो जाती है। भाषण गुजरातीमें दिया गया था। अगर आप उसे पढ़ें तो — लेकिन आप तो नहीं ही पढ़ पायेंगे — हाँ, सर चिमनलाल अवश्य पढ़ लेंगे। इस सम्बन्धमें वे समितिका मार्गदर्शन करेंगे और अगर मैं इन शब्दोंका अर्थ गलत लगाऊँगा या उन्हें गलत रूपमें पेश करूँगा तो वे सुधार देंगे। मैंने एक गुजराती शब्द 'शीखेला' का अनुवाद किया है, जिसका मतलब है वह व्यक्ति जो पढ़ना और लिखना जानता हो, और उस समय मुझे जैसा सूझा उसके अनुसार मैंने "भणेला" शब्दका प्रयोग किया। इस सम्बन्धमें मुझे जो प्रमाण मिले होंगे उन सबको इकट्ठा करनेका मेरे पास समय नहीं था। मैंने "भणेला" शब्दका प्रयोग "मुखिया" — "वह व्यक्ति जो पढ़ और लिख सकता हो" — के अर्थमें किया था। मैंने "संगठन" — जैसी किसी चीजकी चर्चा नहीं की; हाँ, यह कहा होगा कि "संगठित ढंगसे किया गया।" मैं उसमें से एक शब्द भी वापस नहीं लेना चाहता। लेकिन अगर मैं समझा सकूँ तो इस समितिको यह समझाना चाहता हूँ कि मैं सिर्फ अहमदाबादकी घटनाओंका ही जिक्र कर रहा था। तबतक मुझे इस बातकी कोई जानकारी ही नहीं थी कि वीरमगाँवमें क्या हुआ है। लेकिन जहाँतक अहमदाबादकी बात है

१. तात्पर्य भाषणमें कहे इन वाक्योंसे है: "मुझे लगता है कि जो काम अहमदाबादमें हुए वे युक्तिपूर्वक हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि उनके पीछे कोई योजना रही है। इसलिए मैं निश्चित रूपसे यह मानता हूँ कि उनमें किसी पढ़े-लिखे आदमी या आदमियोंका हाथ होना चाहिए।" देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २२८-३१।

पूरी तसवीरको देखते हुए और लोगोंसे बातचीत करनेके बाद — मैंने बहुत सारे लोगोंसे बातचीत की और सभाके दौरान ही नहीं बल्कि उससे पहले भी — मुझे लगा कि यह काम संगठित रूपसे किया गया है और अब भी मेरी यही धारणा है। मैंने निःसंकोच यही बात श्री गाइडरसे[1] और यही बिना किसी संकोचके श्री चैटफील्डसे[2] भी कही थी और अब भी मैं उस बातको दुहरानेको तैयार हूँ। मेरे विचारसे यह काम संगठित ढंगसे किया गया था — लेकिन इतना ही, इससे आगे कुछ नहीं। यह जो सारे देशमें गहरे षडयंत्र या संगठनकी बात की जाती है, जिसका यह एक हिस्सा था, सो उसका तो कोई सवाल ही नहीं था। यह संगठन मौकेपर तुरत-फुरत तैयार किया गया था; यह संगठन वैसा नहीं था जिसे सचमुच संगठन कहा जा सके। मेरा कथन यही था कि "यह काम संगठित ढंगसे किया गया है।" मुझे और जो तथ्य प्राप्त होते गये उन्हें देखनेपर मेरी धारणा और भी पक्की होती गई। मैं अपनी स्थिति समितिके सामने भी रखना चाहता हूँ। जब मैं उतने अधिक लोगोंके सामने बोल रहा था, उस समय मुझे यह चिन्ता नहीं थी कि सरकार इसपर क्या कार्रवाई करेगी बल्कि मेरे लिए लोगोंके सामने वस्तु-स्थितिका निदान करना जरूरी था। उस समय मेरे सामने पुलिसको कोई जानकारी देनेकी बात नहीं थी और जब श्री गाइडर मेरे पास आये तो मैंने कहा, "यह कोई मेरा काम नहीं है। मैं तो मात्र एक सुधारक हूँ और अगर मैं लोगोंको उनके गलत आचार-व्यवहारसे विमुख कर सका तो मेरी कार्रवाई उचित है और वहीं मेरा कर्त्तव्य भी समाप्त हो जाता है; अगर आप मुझसे कोई नाम बतानेकी आशा रखते हैं तो यह आपकी भूल ही है।" मैंने कहा कि मैं एक नागरिककी हैसियतसे अपने सिर बहुत गम्भीर जिम्मेदारी ले रहा हूँ और मैं उस जिम्मेदारीको भलीभाँति समझता भी हूँ। तो आप मेरे शब्दोंका समुचित मूल्यांकन करें। उस शब्दको किसी संगठनके साथ जोड़ना — चाहे वह संगठन वास्तविक हो या काल्पनिक — उसका सही मूल्यांकन नहीं है। अगर मैं उस शब्दको केवल अहमदाबादतक — अहमदाबादके उस अनपढ़ जनसमुदाय-तक — सीमित रखूँ, जो कोई सूक्ष्म अन्तर करनेमें असमर्थ होगा तो आपको इस बातका आभास मिल जायेगा कि वह संगठन क्या है। मैंने ठीक यही विचार उनके सामने व्यक्त किया था और यह विचार समितिके सामने व्यक्त करते हुए भी मुझे कोई संकोच नहीं। फिर बहकावेमें आये हुए वे बेचारे मजदूर थे जिनकी एकमात्र आकांक्षा मुझे और अनसूयाबाईको स्वतंत्र देखनेकी थी। इसमें तो मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि किसी व्यक्तिने जानबूझकर यह शरारत-भरी अफवाह उड़ाई थी। इन बातोंके घटित होते ही लोगोंने सोचा कि इसके पीछे कुछ-न-कुछ जरूर होगा। फिर थे अर्ध-शिक्षित, अधकचरे नौजवान। और दुःखके साथ कहना पड़ता है कि यह उन्हींका काम था। इन नौजवानोंके दिमागमें सिनेमा आदि देखकर तथा बेकारके उपन्यासों और यूरोपके

१. जे० ए० गाइडर, बम्बईकी सी० आई० डी० पुलिसके डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल। अहमदाबादके दंगेकी जाँचका कार्य उन्हींको सौंपा गया था।

२. जी० ई० चैटफील्ड, अहमदाबादके जिला मजिस्ट्रेट।

राजनीतिक साहित्यको पढ़कर झूठे विचार मनमें जम गये हैं। इस विचारधाराके लोगोंको मैं जानता हूँ। इन लोगोंसे मिलकर मैंने इन्हें ऐसे विचारोंसे विमुख करनेका भी प्रयत्न किया है। और मैं समितिके सामने कह सकता हूँ कि इसके फलस्वरूप आज अगर सौ नहीं तो बीस लोग तो ऐसे हैं ही जिन्होंने हिंसात्मक विचारधाराका परित्याग कर दिया है। लेकिन यह संगठन इसी ढंगका था। मेरा खयाल है, मैंने जो-कुछ कहा उसका पूरा मतलब अब बता चुका हूँ। मैं उन लोगोंको जान-बूझकर इससे अलग रख रहा हूँ, जो डिग्री या विश्वविद्यालय स्तरके विद्यार्थी हैं। मैं समितिसे यह तो कह ही नहीं सकता कि ये लोग ऐसा नहीं कर सकते। सच तो यह है कि विश्वविद्यालयके छात्रोंने भी ऐसी बातोंमें अक्सर भाग लिया है, लेकिन अहमदाबादमें नहीं, कमसे-कम इस काममें नहीं। मुझे ऐसे एक भी विश्वविद्यालय स्तरके छात्रके बारेमें मालूम नहीं, जिसका इस आगको भड़कानेमें हाथ रहा हो।

संगठन करनेके सम्बन्धमें आपका खयाल यही है न कि उसकी शुरूआत १० तारीखको हुई थी?

श्री चैटफील्डने ऐसा ही कहा है?[1] दरअसल मैंने इस सम्बन्धमें विशेष सोचा नहीं है, लेकिन यह संगठन या प्रयत्न जो भी कहें — दंगेके पूर्व ही किया गया था।

इस सम्बन्धमें मैं आपसे किसी व्यक्तिका नाम बतानेको नहीं कह रहा हूँ। लेकिन आपने जो-कुछ कहा उससे स्पष्टतः आपका विचार तो यही था कि जो लोग १० और ११ तारीखकी घटनाओंके प्रवाहमें बह गये, वे एक सर्वसामान्य उद्देश्यसे प्रेरित थे?

मैं यह तो नहीं कहूँगा कि वे एक सर्वसामान्य उद्देश्यसे प्रेरित थे, क्योंकि ऐसा कहना मेरे खयालसे बातको दूसरी ओर बहुत दूरतक खींच ले जाना होगा। ऐसा नहीं कि पूरी भीड़ एक सर्वसामान्य उद्देश्यसे प्रेरित थी, लेकिन श्रीमन् मेरे इस विचारसे शायद सहमत होंगे कि कोई सर्वसामान्य उद्देश्य दो-तीन व्यक्तियोंतक भी सीमित रह सकता है, और वे पूरी भीड़को प्रभावित कर सकते हैं, किन्तु एक बार जब वे लोगोंको अपने विचारोंसे प्रभावित कर लेते हैं तब हालाँकि मूलतः जिम्मेदारी उन दो या तीन आदमियोंकी होती है, लेकिन प्रभाव तमाम लोगोंपर पड़ता है।

तो इस विशेष अवसरपर यानी १०, ११ और १२ तारीखको, इस प्रवाहने जो रूप लिया वह था सरकारकी पूरी सत्ताका उच्छेदन; है न?

मेरा खयाल है यह सरकार-विरोधी तो निश्चय ही था, लेकिन अबतक मैं यह निश्चय नहीं कर पाया हूँ कि इसका स्वरूप यूरोपीय-विरोधी भी था या नहीं। दरअसल इस सम्बन्धमें मैं समितिकी सहायता करनेकी स्थितिमें नहीं हूँ। वैसे मैं तो यही मानना चाहूँगा कि उसका स्वरूप यूरोपीय-विरोधी नहीं था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस अन्धकारमें प्रकाशकी कुछ क्षीण रेखाएँ भी थीं।[2] लेकिन अगर मुझे

१. ५ जनवरीको जाँचके दौरान चैटफील्डने कहा था: "श्री गांधीने मुझे निजी बातचीतमें बताया कि वे जानते हैं कि इसका संगठन १० तारीखकी रातको किया गया था और वे यह भी जानते हैं कि यह संगठन किसने किया था।"

२. उदाहरणार्थ ऐसे कुछ यूरोपीय धर्म-प्रचारक थे, जिनके साथ भीड़ने कोई बुरा सलूक नहीं किया।

ऐसा पता चला कि इसका स्वरूप यूरोपीय विरोधी भी था तो सचमुच यह मेरे लिए बड़े दुःखकी बात होगी। फिर भी अगर मुझे ऐसा कुछ मालूम हुआ तो मैं उसे समितिके सामने अवश्य रख दूँगा।

मैं नहीं जानता, आप इस प्रश्नका उत्तर देना चाहेंगे या नहीं। फिर भी पूछ लेता हूँ कि सत्याग्रहके सिद्धान्तके अनुसार क्या यह ठीक है कि जिन लोगोंने अपराध किया है उन्हें गैर-सैनिक अधिकारी सजा दें?

मैं नहीं कह सकता कि यह चीज गलत है, लेकिन इसके लिए इससे अच्छा तरीका भी है। इस सवालका जवाब देना तो सचमुच बड़ा कठिन है, क्योंकि आप बाहरसे किसी दबावकी आशा तो नहीं रखते। लेकिन मेरे विचारसे कुल मिलाकर यह कहना ठीक होगा कि अपराधियोंको दी गई सजाका सम्भवतः कोई सत्याग्रही विरोध नहीं कर सकता और उस हालतमें वह सरकार-विरोधी भी नहीं हो सकता।

लेकिन स्पष्टतः यह तो सत्याग्रहके सिद्धान्तके विरुद्ध है न कि कोई सरकारको ऐसी जानकारी दे जिससे अपराधियोंको सजा दी जा सके, और इस प्रकार वह सरकारकी सहायता करे?

सत्याग्रहके [सिद्धान्तके] अनुसार आप कह सकते हैं कि यह बात असंगत है।

अच्छा, यह असंगत है?

जी, असंगत ही होगी।

क्यों?

बस इस कारण कि सत्याग्रहीका काम यह नहीं है कि पुलिसके सामने जो तरीका हो या वह जिस तरीकेको अपनाये, उस विशेष तरीकेसे सत्याग्रही उसकी सहायता करे; लेकिन वह लोगोंको अधिक विधिचारी और सत्ताका आदर करनेवाला बनाकर अधिकारियों और पुलिसकी सहायता अवश्य करता है। लेकिन जब वह खामियाँ देखता है तब वह पुलिसकी कार्रवाइयोंके साथ-साथ अपना सुधार-कार्य भी जारी कर दे, यह कोई उसका काम नहीं है। ये दोनों चीजें परस्पर विरोधी और असंगत हैं। मैं जानता हूँ कि श्री गाइडर इस बातसे सहमत नहीं हैं।[1]

आपने श्री गाइडरको तो कुछ जवाब दिया है? उसी जवाबके आधारपर मैं आपसे यह सवाल पूछ रहा था?

जी हाँ, जवाब तो दिया है लेकिन वे मुझे अपनी मान्यतासे डिगा नहीं सके हैं।[2] और मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मैं भी उनसे उनकी मान्यता बदलवा नहीं पाया हूँ।

१. गाइडरने १७ अप्रैलको गांधीजीसे मुलाकात की थी। ७ जनवरीको गाइडरने जाँच-समितिके सामने बयान दिया कि गांधीजीने उन्हें बताया था कि "उन्हें [गांधीजीको] कुछ बातोंकी जानकारी थी, लेकिन जिन व्यक्तियोंने वह जानकारी उन्हें दी थी, उनकी अनुमतिके बिना वे सब बातें बता देनेके लिए तैयार नहीं।" देखिए खण्ड १५, पृष्ठ ३१०।

२. गाइडरने इस बातकी सूचना चैटफील्डको दी और चैटफील्डने मईके अन्तमें गांधीजीसे मुलाकात की, लेकिन वे उनसे कोई जानकारी प्राप्त नहीं कर पाये। कमिश्नर प्रैटने भी गांधीजीसे उक्त जानकारी प्राप्त करनेके कई विफल प्रयत्न किये।

मान लीजिए किसी सत्याग्रहीने इन दंगोंके दौरान किसीको कोई बहुत गम्भीर अपराध करते देखा है और अपने सामने करते देखा है तो क्या पुलिसको उसकी सूचना देना उसका कर्त्तव्य नहीं है?

इसका जवाब तो मैंने श्री गाइडरको भी दिया है और मेरा खयाल है मुझे यहाँ भी जवाब देना चाहिए। मैं देशके नौजवानोंको गुमराह नहीं करना चाहता, लेकिन मेरा कहना है कि अगर मैं ऐसा न करूँ तब भी वे अपने भाईके विरुद्ध जाकर गवाही नहीं दे सकते, और जब मैं भाईकी बात कहता हूँ तब उसमें आप देशका या ऐसा अन्य कोई भेद न समझें।

आपकी सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाको जैसा मैंने समझा है, उसके अनुसार तो उसमें भारतीय या यूरोपीय राष्ट्र-जैसा कोई भेद नहीं रखा गया है?

जी नहीं, बिलकुल नहीं। और मैं यह कहना चाहूँगा कि यह चीज इसमें बिलकुल सहजात ही है। वह एक ही साथ दो विपरीत काम तो नहीं कर सकता। मैं कई वर्षोंसे जघन्यसे-जघन्य अपराध करनेवाले अपराधियोंसे मिलता आ रहा हूँ। और मैं जानता हूँ कि मैं उन्हें इस दुर्वृत्तिसे विमुख करानेमें कुछ हदतक ही सही, लेकिन फिर भी सहायक सिद्ध हुआ हूँ। अगर मैं एक आदमीका भी नाम बता दूँ तो मैं उनका विश्वास खो बैठूंगा। मेरा कर्त्तव्य तो वहीं समाप्त हो जाता है। अगर मुझमें साहस हुआ तो जो आदमी कोई अपराध-कर्म करने जा रहा है, उसे विमुख करनेके लिए मैं अपनी जानकी बाजी लगा दूँगा, लेकिन इतना कर चुकनेके बाद या ऐसा करनेमें अपने-आपको असमर्थ पानेके बाद मुझपर दूसरे कर्त्तव्यका दायित्व नहीं आ जाता — यानी मेरे लिए यह जरूरी नहीं होगा कि मैं सीधे पुलिसके पास जाऊँ और उसे सारी बातोंसे अवगत करा दूँ।

लेकिन श्री गांधी, क्या आप यह नहीं मानते कि अगर कोई आपका विश्वास करके आपको कोई जानकारी देता है और आप जाकर उसकी सूचना पुलिसको दे देते हैं तो यह एक बात है और जो अपराध आपके सामने किया गया है उसके सम्बन्धमें कुछ कहना बिलकुल दूसरी बात है? और आप यह कहते हैं न कि पुलिसको सहायता देना सत्याग्रहीका कर्त्तव्य नहीं है?

जी नहीं, मेरा कहना है कि सत्याग्रहीका यह बिलकुल सीधा-सादा कर्त्तव्य है कि वह पुलिसकी सहायता न करे और किसी ऐसे अपराधके सिलसिलेमें भी, जो बिलकुल उसके सामने किया गया हो और जिसे रोकनेकी उसने खुद कोशिश की हो, वह अदालतमें कोई गवाही न दे। लेकिन मैं इस सिद्धान्तको उस खतरनाक सीमातक नहीं खींच ले जाना चाहता। मेरा खयाल है, इसकी छूट बहुत थोड़ेसे मामलोंमें ही हो सकती है, लेकिन अगर कोई सत्याग्रही प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करके अपने आपको अपराधियोंको दण्डित करानेके दायित्वसे मुक्त कर लेनेकी सोचता है तो यह सत्याग्रहके सिद्धान्तके साथ बलात्कार करना होगा; और फिर सत्याग्रहकी प्रतिज्ञामें ऐसी कोई बात कही भी नहीं गई है। लेकिन अगर किसीने अपने जीवनको सत्याग्रहकी मेरी विनम्र कल्पनाके अनुसार ढाला हो तो मेरा खयाल है उसके लिए ऐसा करनेकी कोई

गुंजाइश नहीं है। लेकिन इस खयालसे कि कहीं मुझे गलत न समझ लिया जाये, आज तो मैं यह नहीं कह सकता कि मैं किसी ऐसे आदमीके विरुद्ध कोई जानकारी नहीं दूँगा — जिसे मैंने अपनी आँखोंसे अपराध करते देखा हो। कारण यह है कि मैं अपने आपको सर्वांगपूर्ण सत्याग्रही कहनेका साहस नहीं करता; हाँ, वैसा बननेकी कोशिश अवश्य कर रहा हूँ और जब वैसा बन जाऊँगा तब ईश्वर मेरे मार्गमें, शायद कभी भी ऐसा कोई प्रलोभन नहीं रखेगा। लेकिन अगर प्रलोभन हुए तब भी मैं निश्चय ही गवाही नहीं दूँगा। लेकिन आज तो मैं अपने बारेमें यह कहनेमें असमर्थ हूँ कि मैं वैसा नहीं करूँगा।

अब एक दूसरी बात है जिसपर आप शायद अपने विचार व्यक्त करना चाहें। **दंगोंको दबानेके लिए सरकारने जो कार्रवाइयाँ कीं, उनके बारेमें आपको क्या कहना है?**

अहमदाबादके बारेमें तो मेरा यह खयाल है कि वहाँ प्राविधिक रूपसे चाहे सैनिक कानून लागू रहा हो या नहीं, लेकिन श्री प्रैट तथा वहाँ उपस्थित अन्य सज्जनोंकी बातोंसे तो मेरे दिमागपर यही छाप पड़ी है कि वहाँ सैनिक कानून लागू था। मुझे लगता है कि सैनिक कानून लागू करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, लेकिन दरअसल तो मुझे इस सम्बन्धमें कोई निर्णय देनेका अधिकार नहीं है। मेरा खयाल है कि अत्यन्त गंभीर उत्तेजनात्मक स्थितिके बावजूद सरकारने अधिकसे-अधिक आत्मनियंत्रणसे काम लिया। अगर उपद्रवको दबानेके लिए रेलगाड़ीसे कोई फौजी टुकड़ी आ रही हो और उस गाड़ीके पटरीसे उतार दिये जानेका खतरा हो तथा वह खतरा किसी प्रकार टल गया हो तो मैं समझ सकता हूँ कि उस टुकड़ीके सैनिक क्रोधोन्मत्त होकर किस प्रकार तबाही-बर्बादी मचा देंगे।[1] वैसे लोग तो इसे पागलपन ही कहेंगे, लेकिन क्रोधातिरेकमें किये गये ऐसे कार्योंको मैं अपने मनमें क्षम्य मानूँगा। इसलिए मैं समझता हूँ कि सरकारने तथा जो लोग सचमुच मौकेपर परिस्थितिका सामना कर रहे थे उन लोगोंने भी आत्मनियन्त्रणसे काम लिया। लेकिन साथ ही मेरा यह भी विचार है कि जिन शब्दोंमें सैनिक नोटिस तैयार किया गया था, उनपर बहुत ही गम्भीर आपत्तियोंकी गुंजाइश है। मेरा खयाल है सेनाको जिस परिस्थितिका सामना करना पड़ रहा था, उसमें ऐसा कुछ करना बिलकुल अनावश्यक था, और मेरा विश्वास है कि उसके परिणामस्वरूप बहुत-से निर्दोष लोगोंको अपने प्राण गँवाने पड़े। अगर सैनिक अथवा अर्ध-सैनिक शासन कुछ लम्बी अवधि-तक लागू रखा गया होता तो न जाने क्या-कुछ हो जाता।

क्या आपको ऐसे किसी मामलेकी जानकारी है, जिसमें भीड़से पहले तितर-बितर हो जानेको कहे बिना ही गोलियाँ चलाई गई हों?

मेरे सामने जो बयान दिये गये, उनपर अगर मैं विश्वास करूँ तो मेरा खयाल है, ऐसा हुआ है और अगर ऐसा हुआ है तो मुझे निश्चय ही उसपर कोई आश्चर्य नहीं

१. एक फौजी गाड़ीको, जो बम्बईसे कुमुक ला रही थी, ११ अप्रैलको नडियादमें पटरीसे उतार दिया गया था; एक दूसरी गाड़ीको बारेजडी स्टेशनपर पटरीसे उतारनेकी कोशिश असफल रही।

होगा। जिन सैनिकोंको मौकेपर तैनात किया गया था उन्हें मैंने देखा था। उनमें से कुछ तो बिलकुल कच्ची उम्रके छोकरे थे। श्री प्रैटने जो-कुछ कहा था, उससे इस खतरे-की मुझे और भी स्पष्ट प्रतीति हो गई थी। उन्होंने कहा था कि ये आदेश जारी करना एक बात है और जिस भावनासे ये जारी किये गये थे, उसी भावनासे इनपर अमल करना दूसरी बात है। उन्होंने यह भी कहा था कि इस खतरेका अनुमान तो उन्होंने पहले ही लगा लिया था कि ये नौजवान सिर्फ लोगोंकी जानके साथ खिलवाड़ करेंगे और आगसे खेलेंगे; और मुझे भी लगता है कि ऐसा-कुछ घटित अवश्य हुआ है।

तो आपका खयाल है कि सम्भवतः ऐसा-कुछ घटित हुआ होगा?

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि ऐसा घटित "हुआ होगा", मेरा खयाल है इस तरहकी कुछ बातें घटित हुई हैं। मैं समझता हूँ जो लोग मेरे पास आये उन्होंने बातको बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहा। मैंने उनसे बड़ी सख्तीके साथ जिरह की और उन्होंने कहा कि "नहीं, हमें कोई चेतावनी नहीं दी गई।" अगर ९ आदमियोंका कोई समूह है तब तो कोई बात नहीं, यह कोई अपराध नहीं है; लेकिन ऐसे ही एक दसवाँ आदमी आता है जिसका कोई इरादा दसवाँ व्यक्ति बननेका नहीं है, और सैनिक गोलियाँ चलाना शुरू कर देते हैं। और फिर जिन लोगोंको कुछ मालूम नहीं है उनको चेतावनी देनेका भी क्या महत्त्व है?

लेकिन निःसन्देह उस आदेशका उद्देश्य तो लोगोंको सामूहिक रूपमें एकत्र होने और हिंसात्मक कार्रवाई करनेसे रोकना ही था?

मेरा खयाल है कि वैसा करनेका कहीं बेहतर तरीका भी था।

कौन-सा बेहतर तरीका?

बेहतर तरीका यह था कि गोलियाँ न चलाई जातीं। गैर-जिम्मेदार नौजवानोंको निर्देश देना हद दर्जेकी भूल थी।

अगर ऐसी कोई शिकायत की जाये कि किसी गैर-जिम्मेदार नौजवानने, उसे जैसे निर्देश दिये गये थे, उनके विपरीत काम किया तो हम उस घटनाविशेष तथा उससे सम्बन्धित तथ्योंके बारेमें तो जानना चाहेंगे न?

आपका कहना बिलकुल ठीक है। लेकिन मैं तो आपको सिर्फ अपनी धारणा ही बता सकता हूँ। कुछ सिद्ध करनेमें मैं असमर्थ हूँ और मैं समझता हूँ इसकी जिम्मेदारी मुझपर ही है; लेकिन अगर आप मेरी धारणा जानना चाहें तो कहूँगा कि ऐसी कुछ बातें अवश्य ही घटित हुई होंगी। मैं जो सोचता हूँ वह यह कि किसी गैर-सैनिक अधिकारीको यह महसूस होना चाहिए था कि इन परिस्थितियोंमें ऐसी बातें अवश्यम्भावी हैं।

इस सम्बन्धमें कुछ और कहना है?

जी हाँ, मैंने अपने बयानमें कहा है और उसे एक बार फिर दुहरा देना चाहता हूँ कि मैं नहीं जानता कि लोगोंको पर्याप्त सजा नहीं दी गई, हालाँकि मैं फिर कहूँगा और बड़े हर्षके साथ कहूँगा कि यहाँ सैनिकोंने जो-कुछ किया वह सभ्य समाजके न्यायके नियमोंके अनुरूप ही था। उसके विरुद्ध कहनेको कुछ नहीं था। मैं पहले ही कह चुका

हूँ कि कानूनके जिन खण्डोंके अधीन मुकदमे चलाये गये उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए था। उसकी कोई जरूरत नहीं थी और जब सुनवाई हुई उस समय तो निश्चय ही नहीं थी।

आपका मतलब सरकारके विरुद्ध लड़ाई छेड़ देनेसे सम्बन्धित खण्डोंसे ही है न; लेकिन यह तो आखिरकार एक कानूनी सवाल है?

जी हाँ, सो तो है; लेकिन मैं इसे समितिके सामने इसलिए रख रहा हूँ कि उसे सरकार द्वारा की गई कार्रवाइयोंका, मेरे प्रयत्नोंसे जहाँतक सम्भव हो वहाँतक, सही अन्दाजा हो जाये। और यद्यपि मैंने सरकारकी संयम-सहिष्णुताके लिए उसकी उचित सराहना की है, लेकिन इसका मतलब यह न समझ लेना चाहिए कि उसने जो-कुछ किया, मैं उस सबका अनुमोदन करता हूँ; और इसीलिए मैं समितिको, प्रशासन द्वारा परिस्थितियोंको इतने प्रशंसनीय ढंगसे सँभालनेके बावजूद उसमें जो त्रुटियाँ हुईं उन्हें यथासम्भव विनम्रसे-विनम्र ढंगसे समझानेकी कोशिश कर रहा हूँ।

लेकिन यह क्या बहुत-कुछ ऐसा नहीं लगता जैसे आप सरकारी वकीलके खिलाफ यह शिकायत कर रहे हों कि उसने सही आरोपको नहीं समझा?

मेरा तो खयाल है बात इससे भी आगे जाती है। उक्त खण्डको सिर्फ सरकारी वकीलने ही चुना हो, ऐसा नहीं है; हालाँकि प्राविधिक तौरपर देखें तो है भी। लेकिन जो-कुछ हुआ, इस तरह नहीं हुआ। मुझे इसका व्यक्तिगत और बिलकुल सही अनुभव है। कोई भी वकील कोई खण्ड चुननेकी पूरी जिम्मेदारी अपने सिर नहीं ले सकता; उसका रवैया तो प्रशासनकी तत्कालीन प्रवृत्तिपर निर्भर करेगा और सरकार उसे यानी अपने वकीलको, उक्त खण्ड न चुननेकी हिदायत दे सकती थी; लेकिन मैं अपने-आपसे पूछता हूँ कि क्या अहमदाबादपर इतनी बड़ी रकम अदा करनेका बोझ लाद देना सरकारके लिए जरूरी था।[1] लेकिन मुझे जो बात सबसे ज्यादा चुभती है, वह यह है कि इतना सख्त जुर्माना उसने मिल-मजदूरोंके ऊपर किया और इस तरीकेसे किया। और जिस प्रकार वह जुर्माना वसूल किया गया वह मेरे विचारसे अक्षम्य था।

इस सम्बन्धमें श्री अम्बालाल साराभाईने एक वक्तव्य दिया था?[2]

जी हाँ, और उनके और उनकी न्यायप्रियताके प्रति सम्मान-भाव रखते हुए भी मैंने उनसे असहमति प्रकटकी थी। मेरा खयाल है कि उन्होंने अपराध — घोर अपराध किया और सो भी अपने ही लोगोंके प्रति — बेचारे मजदूरोंके प्रति।

मुझे तो लगता है कि आप हमारी जाँचके मुद्दोंसे शायद कुछ बाहर जा रहे हैं?

जी हाँ, लेकिन आपने मेरे सामने एक बहुत ही चुभनेवाली बात रखी है।

१. अहमदाबादके लोगोंपर दण्डस्वरूप ९ लाख रुपयेका जुर्माना ठोक दिया गया था, जिसका उद्देश्य ऊपरी तौरपर दंगेमें धन-सम्पत्तिकी जो बर्बादी हुई थी उसकी क्षतिपूर्ति करना था।

२. साराभाईने अन्य बातोंके साथ-साथ यह भी कहा था कि "जिस प्रकार यह जुर्माना किया गया है, वह यद्यपि न्यायसंगत नहीं है और न किसी तरह उसे उचित ही ठहराया जा सकता है, फिर भी मेरे विचारसे उसमें कोई क्षोभ-जनक बात नहीं है।"

निःसन्देह मालिकों और मजदूरोंके बीच मतभेद हो सकता है, लेकिन हमें तो उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

मैंने यह बात पूरी तरह समझ ली थी और श्री अम्बालालकी कठिनाइयोंको मुझसे अधिक कोई नहीं समझ सकता। और मैं अपने बयानके इस हिस्सेको यह कहकर समाप्त करना चाहता हूँ कि मेरे खयालसे नडियाद और बारेजडीवाले मामलेके सम्बन्धमें सरकारकी कार्रवाई बिलकुल अनुचित थी, और मैं समितिसे गवर्नर और नडियादके कलक्टरके बीच हुए पत्र-व्यवहारको पढ़नेका अनुरोध करूँगा।[1] उसमें आप देखेंगे कि इस जुर्मानेको लादनेके लिए जो तर्क दिय गये हैं वे वस्तुस्थितिसे बिलकुल असम्बद्ध हैं।

यह सवाल तो दरअसल भारतके कानूनोंका है, लेकिन क्या यह बात उन कानूनों-को देखते हुए संगत नहीं है कि अगर किसी विशेष जिलेके लिए अतिरिक्त पुलिस दस्ता रखना पड़े तो उसका खर्च उस जिलेको चुकाना पड़ेगा?

निश्चय ही सरकार ऐसा करनेको बँधी हुई नहीं है। सरकारको लोगोंसे खर्च वसूल करनेकी पूरी छूट है; उसे इस बातकी भी छूट है कि वह चाहे तो इसके लिए किसी वर्ग-विशेषको चुन ले; लेकिन उस कानूनको पढ़कर मेरी जो धारणा बनी है, उसके अनुसार सरकारको अपने विवेकके प्रयोगका ऐसा विस्तृत अधिकार कहीं नहीं दिया गया है और वह यह खर्च आम जनतासे वसूलनेको बँधी हुई नहीं है।

लेकिन वह इस सबपर खर्च कहाँसे करेगी?

सामान्य राजस्व वसूल करके। अगर उसे लगता है कि किसी विशेष जिलेमें पुलिस-व्यवस्था अपर्याप्त है, तब तो वह ऐसा करती ही है। उसका खर्च वह सामान्य राजस्वसे पैसे लेकर ही तो पूरा करती है। और नडियाद तथा बारेजडीके लोगोंके सम्बन्धमें अपनी जानकारीके आधारपर मेरा यह निश्चित विचार है कि वहाँ अतिरिक्त पुलिस रखनेकी कोई जरूरत नहीं थी। नडियादके लोगोंने कठिनसे-कठिन परिस्थितियोंमें भी बहुत ही आत्म-संयमका परिचय दिया, और मैंने कलक्टर श्री केरके साथ मिलकर उस मामलेकी अपने तईं अधिकसे-अधिक सम्यक् जाँच की, और मैं समितिसे कहूँगा कि मेरा यह सुचिंतित मत है कि जो लोग गाड़ीको पटरीसे उतारने गये थे उनसे नडियादके लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं था, बल्कि उन्हें रोकनेके लिए उनसे जो-कुछ बन सकता था, उन्होंने किया और कलक्टरने इसके लिए उनकी बड़ी सराहना की थी तथा उनकी सहायताके लिए उनका आभार माना था। और यही बात मैं बारेजडीके लोगोंके बारेमें भी कहूँगा।

मेरा खयाल है कि आप जो मुद्दे हमारे ध्यानमें लाना चाहते हैं इसका सम्बन्ध उनसे है।

मैं ऐसा ही समझता हूँ, महोदय।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

माननीय न्यायमूर्ति श्री रैंकिन द्वारा पूछताछ :

श्री गांधी, आपने हमें अपने सविनय अवज्ञा सम्बन्धी विचार बताये और मैं बिलकुल नहीं चाहता कि आप मुझे फिरसे यह बात समझायें। लेकिन अगर आप बता सकें तो मैं कुछ तथ्यों और तारीखोंके सम्बन्धमें मोटी-मोटी जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरा खयाल है कि सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा फरवरीके तीसरे हफ्तेके आसपास लेना तय हुआ था?

मैं समझता हूँ, आप लगभग ठीक ही कह रहे हैं।

और मेरा खयाल है कि जिसे आपका हुक्म कहा गया है, वह २३ फरवरीके आसपास जारी किया गया था?

जी हाँ।

तबतक रौलट विधेयक संख्या २ पास नहीं हुआ था और वह बादमें मार्चके महीनेमें पास हुआ?

शायद।

प्रतिज्ञा[1] जिस छपे रूपमें हमारे सामने है उससे तो प्रकट होता है कि यह बात ज्ञात थी कि विधेयक पास हो जायेगा, हालाँकि अभीतक वह पास नहीं हुआ था?

जी हाँ।

और मेरा खयाल है कि २३ फरवरीके कुछ पहलेसे ही, लगता है भारतके अखबारोंके पृष्ठ, इन कानूनोंके पास हो जानेपर इनके खिलाफ किस प्रकारसे विरोध प्रकट किया जाये, इस आशयके सुझावोंसे रँगे रहते थे। वैसे उस समय इस सबकी जानकारी प्राप्त करना कोई मेरा काम नहीं था, लेकिन जो कागजात हमारे सामने रखे गये हैं उनसे ऐसा ही लगता है। और मैं कह सकता हूँ कि विरोध-प्रदर्शनका स्वरूप क्या हो, इसके बारेमें किसी निश्चित निष्कर्षपर पहुँचनेसे पूर्व आपके सामने इस सम्बन्धमें बहुत सारे सुझाव आये थे, जिनपर आपको विचार करना पड़ा था और आपको जिन सुझावोंपर विचार करना पड़ा था उनमें से भारत-भरमें प्रसिद्ध एक सुझाव इस आशयका भी था कि अगर लोग लगान और कर देना बन्द कर दें तो यह विरोधका एक अच्छा तरीका होगा? मेरा खयाल है कि आपको बहुत सारे सुझाव गैर-जिम्मेदार लोगोंकी ओरसे भी प्राप्त हुए थे और आपने फरवरीके तीसरे हफ्तेमें सत्याग्रहकी जो प्रतिज्ञा निर्धारित की वह उस समय यही सोचकर निर्धारित की थी कि यह विरोधका सबसे अच्छा तरीका है?

जी हाँ।

और चूँकि आपने एक भाषण दिया था, जिसे शायद मैंने भी पढ़ा था, इसलिए आपसे यह पूछ रहा हूँ कि क्या आपको ऐसे किसी सुझावपर भी विचार करना

१. यह सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा थी, जिसे बम्बई सरकारने समितिके सामने दिये गये अपने बयानमें उद्धृत किया था।

पड़ा, यानी किसीने आपके विचारार्थ कोई ऐसा सुझाव भी पेश किया था कि कुछ ऐसा निश्चित कर दिया जाये या नहीं कि दण्ड-विधानके अन्तर्गत, स्थानीय मजिस्ट्रेटों द्वारा दिये गये आदेशोंकी अवज्ञा की जाये?

जी हाँ, निःसन्देह ऐसा सुझाव मेरे सामने रखा गया था।

और आपने इस सुझावको बिलकुल स्वीकार नहीं किया? आपने सोचा कि यह शायद ठीक नहीं होगा?

जी हाँ, और मैंने उसे न केवल अस्वीकार किया बल्कि मैंने उसका जोरदार विरोध भी किया।

क्या इस विषयपर, समझ लीजिए ८ अप्रैलतक, आपने पक्षविपक्षमें कोई विचार प्रकट किया था?

जी हाँ, ८ अप्रैलतक तो मैंने इस सम्बन्धमें अपना विचार विस्तृत रूपसे व्यक्त कर दिया था, क्योंकि मेरे मित्र मुझसे यह आग्रह कर रहे थे कि हमें जलूस आदिसे सम्बन्धित कानूनोंका उल्लंघन करना चाहिए, किन्तु मैंने कहा था कि हम शायद ऐसा नहीं कर सकते और न हमें ऐसा करना ही चाहिए। बल्कि मैंने तो इस आशयके निर्देश भी जारी किये थे कि पुलिसके सभी आदेशोंका निष्ठापूर्वक पालन और निर्वाह करना चाहिए।

क्या आप ऐसे किसी निर्देशकी तारीख बता सकते हैं, जिसे इस सम्बन्धमें आपने या बम्बई-सभाने सार्वजनिक रूपसे जारी किया हो?

मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यह निर्देश ६ तारीख और वास्तवमें जिस दिन सविनय अवज्ञा शुरू की गई, उसके बीच जारी किया गया था। इस सम्बन्धमें समिति-से मैं यही निवेदन कर सकता हूँ कि अगर समिति चाहे तो मुझे जो भी कागजात मिलेंगे, मैं भेज दूंगा।

यों मैं आपको कोई अनावश्यक कष्ट नहीं देना चाहता, लेकिन अपनी ओरसे इतना कहूँगा कि अगर आप मुझे कोई ऐसा कागज दे सकें जिससे यह प्रकट होता हो कि आपने स्थानीय मजिस्ट्रेटोंकी अवज्ञाके विचारको अस्वीकार कर दिया था तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

अगर होगा, तो मैं वैसा कागज अवश्य भेजूंगा।[1]

मैं आपसे यह जाननेको जरा उत्सुक हूँ कि ठीक-ठीक वह क्या बात थी जिसके कारण आपको दिल्लीकी यात्रा करनी पड़ी, हालाँकि आपको वहाँ जानेसे बीचमें ही रोक दिया गया। क्या आप संक्षेपमें अपने ही ढंगसे वे बातें कहेंगे जिनको लेकर आपको वैसा करना पड़ा और यह भी कि दिल्ली पहुँचकर आप सचमुच क्या-कुछ करना चाहते थे?

बात १ अप्रैल या उससे कुछ पहलेकी ही होगी। मुझे अमृतसरसे डॉ० सत्य-पालका एक पत्र मिला था। उसमें उन्होंने लिखा था कि मैं सत्याग्रह आन्दोलनको बड़े

१. गांधीजीने "पत्र: न्यायमूर्ति रैंकिनको", ११-१-१९२० के साथ कुछ कागजात भेजे थे। वे उपलब्ध नहीं हैं।

ध्यानसे देखने-समझनेकी कोशिश करता आया हूँ, मैं इसका मूल्य समझता हूँ और यह मुझे बहुत पसन्द भी है, लेकिन इसे पूरी तरह न तो कभी मैं समझ पाया हूँ और न लोग ही। आगे उन्होंने लिखा था कि क्या ही अच्छा होता अगर आप अमृतसर आकर मेरा आतिथ्य स्वीकार करते और सत्याग्रहके सिद्धान्तपर प्रकाश डालते हुए कुछ भाषण देते —— क्योंकि लोग ऊपरसे इसे जितना समझ पाये हैं, उतनेसे तो वे इस-पर मुग्ध हैं। चूँकि मैं पुलिस अधिकारियों द्वारा दी गई जानकारीके आधारपर यह जानता था कि रास्तेमें इस पत्रकी जाँच-पड़ताल करके इसकी प्रतिलिपि तैयार कर लेनेके बाद यह मुझे दिया गया है, इसलिए मैंने डॉ० सत्यपालसे कह दिया कि मैं अवसर मिलते ही जल्दसे-जल्द ऐसा करूँगा। इसी बीच मुझे स्वामी श्रद्धानन्दकी एक चिट्ठी मिली, जिसमें उन्होंने मुझसे दिल्ली आनेको कहा था। दिल्लीके लोग वहाँके नेताओंके काबूसे बाहर हुए जा रहे थे। भारतके सभी बड़े नगरोंकी अपेक्षा दरअसल दिल्लीके लोगोंकी अनुकूल प्रतिक्रिया कभी हुई ही नहीं। कमसे-कम मेरी तो यही मान्यता है और मुझे जानकारी भी ऐसी ही दी गई है। उन्होंने लिखा था कि अगर आप यहाँ (अर्थात् दिल्ली) आ जायें —— चाहे एक दिनके लिए ही सही —— तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। उन्होंने एक नहीं, दो या तीन तार भी भेजे, जिनमें से कमसे-कम दोके[1] बारेमें तो मुझे याद है।

ये तार किस तारीखको भेजे गये? क्या दिल्लीकी ३० तारीखकी घटनाओंके बाद?

जी हाँ, ३० मार्चकी घटनाओंके बाद और ६ तारीखकी हड़तालसे पहले, और इसलिए मैंने शायद उन्हें एक तार[2] भेजकर सूचित किया कि मैं आऊँगा, लेकिन हड़तालके तुरन्त बाद। बम्बईमें सब-कुछ ठीक-ठीक निभ जाये, इसके लिए मैं बहुत उत्सुक था, और आखिर ऐसा ही हुआ। मैं इस बातके लिए भी अत्यन्त उत्सुक था कि अपनी योजनाके अनुसार सारी व्यवस्था हो जानेपर हमें सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। अतः एक दिन पूरा हमने इसीमें लगाया और ८ तारीखको गाड़ी पकड़कर मैं रवाना हो गया। लेकिन उनका पहला तार मुझे ३० मार्च और ६ अप्रैलके बीच मिला।

मैं इस सम्बन्धमें भी आपको कोई कष्ट नहीं देना चाहता, लेकिन क्या ये तार या इनकी प्रतियाँ आपके पास होंगी?

अगर होंगी तो मैं निश्चय ही आपकी सेवामें प्रस्तुत कर दूँगा। वैसे आम तौर-पर तो मैं ऐसे कागजात नष्ट कर दिया करता हूँ, और कारण सिर्फ इतना है कि

१. स्वामी श्रद्धानन्दने समितिको दिये गये अपने लिखित बयानमें इन तारोंकी चर्चा की थी। पहला तार भेजते हुए उन्हें "पूरा विश्वास था कि लोगोंके साथ गांधीजीके व्यक्तिशः सम्पर्कमें आनेके फलस्वरूप उन्हें सत्याग्रहके सिद्धान्तोंसे अनुप्राणित करनेमें हमें सुविधा होगी।" दूसरे तारमें गांधीजीको दिल्ली आनेके लिए राजी हो जानेपर धन्यवाद दिया गया था।

२. स्वामी श्रद्धानन्दके अनुसार गांधीजीने उत्तर भेजा था कि वे मंगलवारकी शाम यानी ८ तारीखको बम्बईसे चलेंगे। उस दिन उन्होंने फिर तार भेजा: "कल शाम वहाँ पहुँच रहा हूँ। कृपया मेरे आनेकी बात अपनेतक ही रखें। किसी प्रकारका प्रदर्शन नहीं चाहता।"

मैं बेकार ही इन सबका भार ढोते रहना नहीं चाहता। लेकिन सम्भव है ये तार मेरे पास हों। अगर होंगे तो मैं आपको दे दूंगा।[1]

जैसा कि मैं समझता हूँ, आपको पत्र लिखनेमें स्वामीजीका खयाल यह था कि आपके दिल्ली आनेसे सत्याग्रह आन्दोलनको यह लाभ हो सकता है कि उसके प्रभावका और भी विस्तार हो और इसलिए वे चाहते थे कि आप दिल्ली आयें?

अवश्य।

तो वे आपको दिल्ली आनेका निमन्त्रण उत्तेजित और बेकाबू जन-समुदायको शान्त करनेके स्पष्ट उद्देश्यसे नहीं बल्कि सत्याग्रहके प्रचारके सामान्य क्रममें दे रहे थे?

हाँ, लेकिन उस तरीकेसे नहीं जिस तरीकेसे मेरे अमृतसर जानेकी व्यवस्था की गई थी। उन्होंने यह स्पष्ट लिखा था कि "ऐसा भी हो सकता है कि हम भीड़को नियन्त्रणमें न रख सकें।" उन्होंने कहा था कि "अबतक तो मैंने अपने तईं अधिक-से-अधिक कोशिश की है। लेकिन हो सकता है, सफल न होऊँ और इसलिए मैं चाहता हूँ आप आ जायें। आपकी उपस्थितिका असर बड़ा शमनकारी होगा।" अगर मुझे वे पत्र मिल गये तो आपको देनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।[2]

क्या मेरा यह मानना ठीक है कि जहाँतक आपकी बात है, पहली बार दिल्ली जानेमें आपका कोई ऐसा इरादा नहीं था कि सत्याग्रहके हकमें आप अधिकारियोंसे टक्कर लें?

जी नहीं, मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं था।

मेरा खयाल है, आप उस समय जानते थे कि स्वामीजीको दिल्लीके जन-समुदायको अपनी राह ले जानेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी और पुलिस-अधिकारी भी इसके कारण बहुत चिन्तित थे?

जी हाँ।

तो आपका कहना यही है न कि दिल्लीको प्रस्थान करनेमें आपका इरादा स्थितिको बिगाड़ना नहीं बल्कि सुधारना था।

मैं दिल्लीके अधिकारियोंकी मदद करनेको जा रहा था।

अब मैं आपसे एक-दो बातोंके बारेमें पूछना चाहूँगा। श्री गांधी, वैसे मैं भाषण आदिको उद्धृत करनेमें विश्वास नहीं रखता। मेरे सामने कुछ रिपोर्टें हैं, लेकिन उन्हें पूरा पढ़ना मेरे लिए सम्भव नहीं है, लेकिन मैं १३ अप्रैलको अहमदाबादमें दिये गये आपके भाषणकी कुछ पंक्तियाँ पढ़कर सुनाता हूँ।

१३ को या १४ को?

१. मूलमें यहाँ एक पादटिप्पणी है: "न श्री गांधीको मिल पाये और न अन्यत्र हो।" स्पष्ट ही यहाँ स्वामी श्रद्धानन्दके लिखित बयानकी ओर ध्यान नहीं दिया गया।

२. देखिए पृष्ठ ४१२ की पादटिप्पणी १।

१४ को। आप गुजरातीमें बोल रहे थे और यह वह भाषण[1] है, जिसे आपने इस तरह शुरू किया था: "अहमदाबादमें जो घटनाएँ पिछले ४ दिनोंमें हुई हैं उससे अहमदाबादकी बड़ी बदनामी हुई है।" इस रिपोर्टके अनुसार आपने जो-कुछ कहा, वह कुछ ऐसा जान पड़ता है: "इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अहमदाबादमें हुई घटनाओं-से कुछ भी लाभ नहीं हुआ, इतना ही नहीं सत्याग्रहको भारी नुकसान पहुँचा है। यदि मेरे पकड़े जानेके बाद लोगोंने केवल शान्ति रखकर आन्दोलन किया होता तो अबतक या तो रौलट विधेयक उड़ जाते या उड़नेके करीब होते। अब यदि इन कानूनोंके रद होनेमें देर हो तो जरा भी आश्चर्यकी बात न होगी। शुक्रवारके दिन जब मैं छूटा तब मेरा यह इरादा था कि मैं रविवारको वापस दिल्लीकी तरफ चल दूँ और गिरफ्तार होनेका प्रयत्न करूँ। इससे सत्याग्रहको अधिक बल मिलता। अब तो दिल्ली जानेके बजाय मेरा सत्याग्रह अपने ही लोगोंके विरुद्ध होगा।" तो आपने जो यह फिर गिरफ्तार होनेकी बात कही वह इसलिए कि मनमें एक विचार आया और कह दिया या आपने शान्तिपूर्वक सोच-समझकर फिर दिल्ली जाकर गिरफ्तार होनेका निश्चय किया था?

मैंने सोच-समझकर ही ऐसा निश्चय किया था। पुलिस कमिश्नर श्री ग्रिफिथसे मैंने कहा था कि अगर कोई गम्भीर बात बीचमें न हो गई तो मेरा इरादा ऐसा ही करनेका है।

आपका मतलब श्री जेफरीजसे है?

जी नहीं, बम्बईके पुलिस कमिश्नर श्री ग्रिफिथ। यह बात मैंने श्री प्रैटसे भी कही थी।

मैंने अबतक तो उनके बारेमें कुछ नहीं सुना है। वे हमारे लिए नये आदमी हैं। खैर, अब यदि यह मान लें कि आपको दिल्ली जानेसे अन्यायपूर्वक रोक दिया गया तो दुबारा गिरफ्तार होनेके लिए दिल्ली जानेमें आपका क्या उद्देश्य था?

सत्याग्रहीके रूपमें, एक बार गिरफ्तार करके छोड़ दिये जानेपर, यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम दुबारा गिरफ्तार होनेकी कोशिश करें और कारावासको बार-बार आमन्त्रित करें। यही मेरा उद्देश्य था और कुछ नहीं।

वैसे मैं तो नहीं जानता और मुझसे ज्यादा अच्छी तरह आप ही जानते होंगे, लेकिन हमेशा जेल जाते रहना ही तो सत्याग्रहीका कर्त्तव्य नहीं है?

जी हाँ, हमेशा तो नहीं है।

तब आपके विचारसे, आप जो दुबारा गिरफ्तार होना चाहते थे, उसका क्या कारण था?

स्वयं आगे बढ़कर कष्ट उठाना। अगर मैं सविनय अवज्ञा-भंगका संघर्ष छेड़ता हूँ तो यही एकमात्र रास्ता है, जिसपर चलकर मैं यह संघर्ष कर सकता हूँ।

१. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २२८-३२।

क्या आपका ऐसा खयाल था कि दिल्ली जाकर अगर आप गिरफ्तार हो जाते तो उससे देश-भरमें या उसके कुछ हिस्सोंमें उत्तेजना फैलेगी और यह बात रौलट विधेयकका पास होना रोकनेकी दृष्टिसे अधिक प्रभावकारी होगी?

जी नहीं, बिलकुल नहीं। अगर बात ऐसी होती तो मैं सीधे दिल्लीके लिए प्रस्थान कर जाता और तनिक भी संकोच-विकोच या सोच-विचार न करता। यहाँ मैं बस अपनी बातको पुष्ट करनेके खयालसे इतना कह देना चाहता हूँ कि उस समय मुझे इसका कोई आभास नहीं था कि अमृतसरमें या अन्यत्र क्या-कुछ घटित हुआ है।

अमृतसरकी घटना १० तारीखको हुई[1], जब आप गाड़ीमें वापस आ रहे थे। आप ठीक-ठीक कब बम्बई पहुँचे?

११ तारीखको।

मैं समझता हूँ, उस समय अहमदाबाद आनेके लिए आपके पास बहुत फौरी तकाजे आ रहे थे?

जी हाँ।

क्या वे लोग आपके अपने स्थानपर पहुँचनेके तुरन्त बाद आपसे मिले?

नहीं। जहाँतक मुझे याद है, मेरा कोई मित्र मुझसे नहीं मिला।

क्या बम्बई पहुँचते ही आपको अहमदाबाद आनेका कोई सन्देश मिला?

सन्देश मुझे दूसरे दिन मिला। मैं ११को पहुँचा और सन्देश मुझे १२को मिला।

तो आपके पास, उन दिनों देशमें जो-कुछ हो रहा था, उससे अपने-आपको अवगत रखनेके साधन अच्छे नहीं थे, और फलतः आपको यह मालूम नहीं हो रहा था कि देशमें क्या-कुछ हो रहा है?

जी हाँ, ऐसा ही है।

वह आपके फिरसे दिल्ली जानेकी जो बात है उसे मैं फिर आपके सामने ला रहा हूँ, क्योंकि यह आपके गिरफ्तार करके लौटा दिये जानेके सिर्फ चन्द दिनों बादकी बात है। मेरा खयाल है आपका कहना यही था कि जब आप पहली बार दिल्ली गये उस समय आपका उद्देश्य यह नहीं था कि पुलिससे झगड़ा मोल लें, बल्कि आप वहाँकी स्थिति सुधारनेको ही गये थे?

जी हाँ।

मैं नहीं समझता कि जिसे लोग सविनय अवज्ञाके नामसे जानते हैं, उसे रोकनेके लिए आपने जो कार्रवाईकी, उसके सम्बन्धमें मेरे सामने कोई आधिकारिक तथ्य प्रस्तुत हैं। लेकिन मेरा खयाल है आपने अपने-आपको सविनय अवज्ञा अस्थायी तौरपर स्थगित रखनेकी सलाह देनेको विवश महसूस किया और मेरे सामने जो कागजात हैं उनके अनुसार यह बात १८ अप्रैलको की गई।

जी हाँ।

१. भीड़ने आगजनी, लूट-पाटके अलावा कुछ यूरोपीयोंकी हत्या भी कर डाली थी।

यह काम आपने अहमदाबादसे लौटकर किया, और आपने सभाके मन्त्रियोंके नाम एक पत्र[1] लिखा, जिसमें आपने कहा कि "बड़े दुःखके साथ मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलनको अस्थायी रूपसे स्थगित रखनेकी सलाह देनेको बाध्य हुआ हूँ। मैं यह सलाह इसलिए नहीं दे रहा हूँ कि उसकी सफलतामें अब मेरा विश्वास कुछ कम हो गया है; परन्तु इसलिए दे रहा हूँ कि उसमें मेरा विश्वास और अधिक दृढ़ हो गया है। सत्याग्रह-सिद्धान्तके मेरे बोधने ही मुझे ऐसा करनेको विवश किया है। मुझे खेद है कि जब मैंने सार्वजनिक आन्दोलन आरम्भ किया उस समय मैंने अमांगलिक शक्तियोंके प्रभावको कम कूता इसलिए अब मुझे रुककर यह विचार करना है कि परिस्थितिका सामना भली-भाँति कैसे किया जा सकता है।" वहाँ तो लगता है, आपने बहुत स्पष्ट लिखा है कि जब २३ फरवरीको आपने सार्वजनिक आन्दोलनके रूपमें सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा प्रारम्भ की उस समय आपने अशुभ शक्तियोंको बहुत कम करके आँका था, और मैं समझता हूँ, बीचके समयमें भारतको जिन अनुभवोंसे होकर गुजरना पड़ा उनके कारण आपको यह मानना पड़ा कि इस रूपमें तो यह लाभके बजाय हानि ही अधिक पहुँचा रहा है — है न?

जी हाँ।

और मेरा खयाल है, उस दिन यानी १८ अप्रैलके बाद आपसे समय-समयपर यह बतानेका अनुरोध किया जाता रहा है कि आन्दोलन फिर आरम्भ किया जायेगा या नहीं; क्या सचमुच इसे फिर आरम्भ कर दिया गया है?

नहीं।

तो उस तारीखसे आपने इसे स्थगित ही रखा है?

और तब एक नोटिस जारी किया गया कि यह — जहाँतक मुझे याद है — फिर १ जुलाई या १ अगस्तको प्रारम्भ किया जायेगा। आगे चलकर — याद नहीं किस महीनेमें — मैंने देखा कि अब स्थिति काफी नियन्त्रणमें है, लेकिन यह समझकर कि भारत सरकारको इसकी अधिक जानकारी होगी, मुझे लगा कि एक सच्चा सत्याग्रही होनेका अपना दावा सिद्ध करनेके लिए मुझे झुक जाना चाहिए और मैं झुक गया। बात यह थी कि लॉर्ड चैम्सफोर्डकी यही इच्छा थी; उन्होंने बम्बईके गवर्नर महोदयके जरिये इसे मुझतक पहुँचाया था। बम्बईके गवर्नर महोदयने भी मुझे यही सलाह दी थी।

मेरा खयाल है आपके हस्ताक्षरोंसे युक्त एक पत्र[2] भी है, जिसमें आपने यह बात इस प्रकार कही है कि "जबतक हम सत्यका पालन करते हैं और दूसरोंको वैसा ही करनेको कहते हैं, तबतक सत्याग्रह कभी बन्द हुआ नहीं कहलाएगा। यदि सभी सत्यका पालन करें और किसीके जान-मालका नुकसान करनेसे परहेज रखें, तो

१. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २५१-५२।

२. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २७४-७५।

हम जो माँगते हैं तुरन्त मिल जाये। परन्तु जब सभी ऐसा करनेको तैयार नहीं हैं और जब सत्याग्रही लोग मुट्ठी-भर ही हैं, तब हमें सत्याग्रहके सिद्धान्तसे फलित हो सकनेवाले दूसरे उपाय ढूँढ़ने पड़ते हैं। ऐसा एक उपाय कानूनकी सविनय अवज्ञा है। मैंने यह पहले ही समझा दिया है कि हमने थोड़े समयके लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन क्यों स्थगित किया है। जबतक हम जानते हैं कि सविनय अवज्ञा आन्दोलनसे दंगे और हिंसा फैल जानेकी बहुत सम्भावना है, बल्कि लगभग निश्चय है, तबतक कानूनका पालन न करना सविनय अवज्ञा नहीं कहला सकता। बल्कि ऐसी अवज्ञा तो विचारहीन, विनयहीन और सत्यरहित कहलायेगी।" **अनुभवसे यह जान लेनेके बाद कि दूसरे लोगोंके लिए सविनय अवज्ञा और अन्य प्रकारकी अवज्ञाके बीच कोई निश्चित रेखा खींच सकना, आप जितना समझे थे उससे भी कठिन है, आपने इसे स्थगित कर दिया?**

जी हाँ।

मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ श्री गांधी। आप सारे भारतकी राजनीतिमें दिलचस्पी लेते रहे हैं, मैं चाहता हूँ आप यथासम्भव इस विषयके सम्बन्धमें सारे भारतकी बात बतायें। पंजाब और दिल्ली तथा अन्य स्थानोंमें जो-कुछ घटित हुआ, उसकी ओर मुड़कर देखनेसे क्या आपको ऐसा लगता है कि सत्याग्रहके सिद्धान्तोंको गलत रूपमें समझनेके फलस्वरूप गत वर्ष अप्रैल और मई महीनेमें सारे भारतमें अराजकताके प्रति एक अनुचित ढंगकी सहानुभूति रखनेकी प्रवृत्ति और पर्याप्त रूपसे कानूनकी सत्ता माननेकी आवश्यकताको न देख पानेकी प्रवृत्ति रही है?

जहाँतक मैं जनताकी भावनाकी थाह ले पाया हूँ, मैं नहीं समझता कि ऐसा कहना ठीक होगा।

क्या आप अपने-आपको सत्याग्रह आन्दोलनके द्वारा ऐसा-कुछ करनेका अपराधी समझते हैं जिससे भारतीय जनताकी कानून माननेकी प्रवृत्तिको क्षति पहुँची हो?

मैं अपनेको कुछ-एक लोगोंकी हदतक इस प्रवृत्तिको अस्थायी तौरपर क्षति पहुँचानेका अपराधी मानता हूँ। मैं इसे महसूस करता हूँ, लेकिन मुझे क्षण-भरको भी यह नहीं लगता कि इस अवधिमें जनता आम तौरपर अराजकताकी भावनासे ग्रस्त रही है।

हाँ, इस देशके कुछ हिस्सोंमें अन्य हिस्सोंकी अपेक्षा उत्तेजनाके अधिक बड़े कारण मौजूद थे। इसका एक उदाहरण तो पंजाब है और अन्य उदाहरण भी हैं, जिनका उल्लेख करनेकी जरूरत नहीं। लेकिन मैं इसको इस रूपमें समझता हूँ या कहिये पेश करता हूँ कि जहाँ-जहाँ लोग ज्यादा उत्तेजित हुए वहाँ-वहाँ आपके मन्तव्यको गलत रूपमें समझनेकी सम्भावना ज्यादा थी?

मेरा खयाल है कि जहाँ लोगोंने सत्याग्रहके सिद्धान्तको नहीं समझा, वहीं उसकी गलत व्याख्या करनेकी सम्भावना ज्यादा थी। मैं यह देखकर दंग रह गया कि पहली

ही बार पंजाबके लोगोंने स्वयं आकर मुझसे कहा, “ओह, अगर हमने सत्याग्रहके सिद्धान्तको समझा होता तो हमारा आचरण कितना भिन्न हुआ होता।”

और फिर यह भी है, है न, कि फरवरीके तीसरे हफ्तेमें जब आपने यह विशेष आन्दोलन प्रारम्भ किया, उससे काफी पहलेसे ही एक प्रचार-आन्दोलन चल रहा था, जिसमें सारे भारतके अखबारोंमें कानूनकी अवज्ञाकी बातको एक प्रमुख स्थान दिया गया था?

जी हाँ, जी हाँ, निश्चय ही।

और आपका विचार एक समिति नियुक्त करनेका था जो यह निर्धारित करती कि किन कानूनोंकी अवज्ञा करनी है...?

जी हाँ, बात ऐसी ही है; और हमने अपनी बैठकोंमें अक्सर इस बातपर विचार-विमर्श किया और मैंने इसे अपने तईं अधिकसे-अधिक स्पष्ट कर दिया।

आप चाहते थे, बम्बई और अहमदाबाद दोनोंके लिए बम्बईमें एक समिति हो, यही न?

जी हाँ, और बस इतना ही।

और निस्सन्देह आपका इरादा यह था कि यह सविनय अवज्ञा भारतके कुछ हिस्सोंमें चलाई जाये जहाँ इस तरहकी 'सभाएँ' हों। क्या आप यह चाहते थे कि हर स्थानकी अपनी अलग सभा हो, जो यह निर्धारित करे कि किन कानूनोंकी अवज्ञा करनी है?

हाँ, ऐसा किया गया था, लेकिन मेरा खयाल है नाम-मात्रको ही; क्योंकि जहाँ कहीं ऐसा किया गया उन सभी जगहोंकी सभाओंने मुझे अध्यक्ष नियुक्त कर दिया था। कारण यह था कि उन्हें लगा, और ऐसा लगना स्वाभाविक ही था, कि इस सम्बन्धमें उन्हें मुझसे मार्ग-दर्शन लेना चाहिए। मद्रासमें एक स्थानीय समिति गठित की गई थी और उसने मुझे अध्यक्ष बनाया। यह विचार मुझे कुछ अच्छा भी लगा और ऐसा ही संयुक्त प्रांत[1]में भी किया गया। खयाल यह था कि हमारी नीति सर्वत्र एक-सी हो।

क्या आपके मनमें कुछ ऐसा विचार भी आया कि विभिन्न क्षेत्रोंके लिए उल्लंघनार्थ अलग-अलग कानून निर्धारित किये जायें?

हाँ, यह विचार मेरे मनमें अवश्य आया था कि जरूरत पड़े तो ऐसा किया जाये, लेकिन अन्यथा नहीं।

आपके भाषणोंमें मैं देखता हूँ, आपने अपने आन्दोलनकी चर्चा कभी “सविनय अवज्ञा” कहकर की है और कभी “अनाक्रामक प्रतिरोध” [सत्याग्रह] कहकर। यह पहला मुहावरा तो स्पष्टतः थोरोसे लिया गया है लेकिन दूसरेसे अंग्रेज लोग भी काफी वाकिफ हैं। अब अगर किसी व्यक्तिको सरकारकी ओरसे या किसी और सूत्रसे कोई आदेश प्राप्त होता है, और उसकी अन्तरात्मा कहती है कि यह ठीक नहीं है, तो

१. वर्तमान उत्तर प्रदेश।

यह बात उसकी इच्छापर निर्भर कर सकती है कि अगर वह उसका पालन न करे तो उस सम्बन्धमें और भी कुछ न करे, लेकिन सविनय अवज्ञा तो इससे कहीं आगे जाती है। जाती है न?

बेशक।

अव्वल तो एक प्रचार-साधनके रूपमें, जैसा कि आपने दक्षिण आफ्रिकाके बारेमें बोलते हुए कहा था, सविनय अवज्ञा सरकारको जनताकी इच्छाके आगे झुकानेका एक उपाय है?

जी हाँ, निस्सन्देह।

दूसरे, अवज्ञाका स्वरूप सक्रिय भी हो सकता है और निष्क्रिय भी, लेकिन तब भी आपके सत्याग्रहके सिद्धान्तके अनुसार उसमें विनय होनी ही चाहिए?

जी हाँ।

और तीसरे, यह भी हो सकता है कि समिति उल्लंघनार्थ ऐसे कानून निर्धारित न कर पाये जो किसीकी अन्तरात्माके विरुद्ध हों या इस उद्देश्यसे ऐसे कानून निर्धारित कर दे जो किसीकी अन्तरात्माके विरुद्ध न हों?

अवश्य।

जैसा मैंने समझा, आपका कहना यह है कि इस भेदको आप अपने पहले प्रचारके अनुभवसे समझ पाये और यही अनाक्रामक प्रतिरोधके सिद्धान्तको कार्यरूप देनेका आपका ढंग है?

यही कारण है कि मैंने इसे निष्क्रिय सिद्धान्त नहीं कहा है, क्योंकि इसमें निष्क्रियता-जैसी कोई चीज है ही नहीं। यह सक्रिय है, लेकिन शारीरिक अर्थोंमें नहीं।

उदाहरणके लिए, अगर कोई ऐसा कानून हो जिसमें कहा गया हो कि बिना पंजीयन करवाये आप कोई अखबार नहीं निकाल सकते और तब भी आप निकालते हैं, तो यह निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं होगा —— यही न?

जी हाँ, यह सक्रिय प्रतिरोध है और प्रबल रूपसे सक्रिय प्रतिरोध है।

इसी प्रकार आपसे यह कहा जाता है कि आप दिल्ली न जायें और तब भी वहाँ जाकर आप गिरफ्तार हो जाते हैं तो यह सक्रिय प्रतिरोध होगा?

अवश्य।

अब मैं आपसे जानना यह चाहता हूँ कि आप इस बातको समझते हैं या नहीं कि सविनय अवज्ञाकी आपकी कल्पनामें और जिसे सत्याग्रह कहा जाता है, उसमें अन्तर है? वैसे मुझे तो लगता है कि दोनोंमें अन्तर है?

मैं भी इस अन्तरको स्वीकार करता हूँ। दोनोंमें एक बुनियादी भेद है।

आपने कहा कि इस घरेलू नियमको राजनीतिक क्षेत्रमें लागू करना है, अर्थात् जो बात किसीकी अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करती उसे अस्वीकार करनेका उसे हक है?

हाँ, यह सत्य है?

सर चि० ह० सीतलवाड द्वारा पूछताछ :

रौलट विधेयकोंके बारेमें आपकी राय पूछी गई थी और आपको बताया गया कि जो रौलट अधिनियम पास किया गया है उसमें दरअसल किस हदतक भारत रक्षा अधिनियमकी धाराओंको ही दुबारा पास किया गया है। भारत रक्षा अधिनियमकी धाराएँ केवल आपत्कालीन उपायके रूपमें युद्धकी अवधितक के लिए ही स्वीकार की गई थीं, लेकिन इसीसे इन धाराओंको युद्ध समाप्त हो जानेके बाद भी बनाये रखनेका औचित्य नहीं सिद्ध होता। इस विधेयकके प्रति एक आपत्ति यही थी न?

जी हाँ।

और तब यह बताया गया था कि रौलट अधिनियम जिस रूपमें पास किया गया है, उस रूपमें उसे किसी प्रान्त-विशेष या स्थान-विशेषमें तभी लागू किया जा सकता है जब भारत सरकार उसका क्षेत्र-विस्तार करके उसे उस प्रान्त या स्थानमें लागू कर दे। क्या आपने ऐसा नहीं देखा है कि सरकार द्वारा बनाये गये अन्य अधिनियमोंके अन्तर्गत इसी प्रकारके क्षेत्र-विस्तार ऐसे कारणोंके आधारपर किये गये हैं जिन्हें लोगोंने अपर्याप्त माना है?

जी हाँ।

और यह भी सच है न कि रौलट विधेयकोंके विरुद्ध प्रमुख आपत्ति यह नहीं, बल्कि यह थी कि इसमें न्यायपालिकाके नियंत्रणोंसे मुक्त कार्यपालिकाके हाथोंमें बहुत विस्तृत अधिकार देनेकी कोशिश की गई है?

जी हाँ।

और साथ ही समस्त गैर-सरकारी सदस्योंके सम्मिलित विरोधके बावजूद विधान परिषद्में यह अधिनियम जिस तरह पास कर दिया गया — और सो भी ऐसे अवसर-पर जब लोगोंको खासे परिमाणमें स्वशासन दिया जानेको था — उसके कारण सारे देशमें बहुत ही उग्र ढंगका क्षोभ फैल चला?

जी हाँ।

अब आपके सत्याग्रहके सिद्धान्तके बारेमें जहाँतक मैं समझता हूँ, उसमें सत्यके पालनकी बात है?

जी हाँ।

और सत्यका पालन करते हुए कष्टोंको आगे बढ़कर स्वीकार करने और दूसरेके साथ किसी प्रकारकी हिंसात्मक कार्रवाई न करनेकी बात भी है?

जी हाँ।

मेरा खयाल है कि सत्याग्रहका मूल सिद्धान्त यही है?

जी हाँ, यही है।

अब उस सिद्धान्तके अनुसार, क्या सत्य है इसे कौन निश्चित करेगा? क्या स्वयं सत्याग्रही?

जी हाँ, स्वयं वही।

तो जो-कोई भी इस सिद्धान्तको अपनाता है उसे स्वयं ही यह निश्चित करना होगा कि वह कौन-सा सत्य है, जिसका वह पालन करेगा?

निश्चय ही ऐसा है।

और तब ऐसा करते हुए इस सम्बन्धमें अलग-अलग लोगोंके विचार भी अलग-अलग ही होंगे कि वह कौन-सा सत्य है जिसका पालन करना चाहिए?

अवश्य।

तो इस प्रकार इससे बहुत उलझन भी पैदा हो सकती है?

जी नहीं, मैं इससे सहमत नहीं हूँ। अगर आप यह मान लें कि कोई व्यक्ति ईमानदारीके साथ सत्यकी खोजमें लगा हुआ है और वह दूसरे सत्याग्रहीके विरुद्ध हिंसाका प्रयोग नहीं करेगा तो इससे कोई उलझन पैदा होनेकी आशंका नहीं है। फिर उलझनकी कोई सम्भावना ही नहीं रहती।

कोई आदमी सत्यकी खोज ईमानदारीसे कर सकता है, लेकिन वह चाहे जितनी भी ईमानदारीसे सत्यकी खोज करे, फिर भी सत्यके सम्बन्धमें उसकी मान्यताएँ कुछ दूसरे लोगोंकी तत्सम्बन्धी मान्यताओंसे भिन्न होंगी या उसके बौद्धिक संस्कार इस ढंगके हो सकते हैं कि सत्यके सम्बन्धमें उसका निष्कर्ष किसी अन्य व्यक्तिके तत्सम्बन्धी निष्कर्षसे बिलकुल उलटा हो?

ठीक इसी कारणसे लॉर्ड हंटरके प्रश्नके उत्तरमें मैंने कहा था कि अहिंसाको अंगीकार करना तो सत्याग्रहका सिद्धान्त स्वीकार करनेका एक आवश्यक परिणाम है।

मैं यह समझता हूँ कि अहिंसाका तत्त्व सभीमें समान रूपसे उपस्थित है, लेकिन किसी व्यक्ति-विशेषको किस सत्यका अनुगमन करना चाहिए, इस प्रश्नपर तो बड़ा मतभेद होगा।

अवश्य।

श्री गांधी मेरा खयाल है कि आप यह तो मानेंगे कि कोई सत्याग्रहके सिद्धान्तका, जिस रूपमें आपने उसका वर्णन किया है उस रूपमें और जैसा आप सोचते हैं ठीक उसी तरह, सच्ची भावनासे पालन करे; इसके लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति बहुत ही उच्च कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त हो?

निश्चय ही जो व्यक्ति स्वतन्त्र रूपसे सत्यका अनुगमन करना चाहता है, उसके लिए उच्च कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त होना आवश्यक है।

अब क्या आप किसी साधारण व्यक्तिसे इस कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंकी अपेक्षा करते हैं?

मेरे लिए यह आवश्यक नहीं कि जो लोग इस सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं वे सभी इसी कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त हों। उदाहरणके लिए अगर 'क' ने सोच-विचारकर सत्यकी अपनी एक अलग कल्पना की है और 'ख' और 'ग' तथा ५० अन्य लोग उसे चुपचाप पूरी तरह स्वीकार कर लेते हैं तो मैं जिस उच्च स्तरकी अपेक्षा 'क' से करूँगा उसी स्तरकी अपेक्षा अन्य लोगोंसे करनेकी मुझे कोई

जरूरत नहीं, लेकिन फिर अन्य सभी लोग सत्यके उस स्वरूपका अनुगमन करेंगे। वे यह तो जानेंगे ही कि उन्हें किसीके प्रति हिंसा नहीं करनी है, और इस प्रकार सत्याग्रहियोंका बहुत बड़ा दल तैयार हो जायेगा।

तो मतलब यह कि मैंने जिन उच्च कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंकी चर्चा की है उन संस्कारोंसे युक्त एक या एकाधिक व्यक्ति किसी विशेष निष्कर्षपर पहुँचेंगे और तब एक बड़ी संख्यामें अन्य लोगोंको उनका अंधानुसरण ही करना होगा?

जी नहीं, अंधानुसरण नहीं। मैं इसे अंधानुकरण तो नहीं कहूँगा लेकिन साथ ही मैं अन्य लोगोंसे उसी स्तरके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंकी अपेक्षा भी नहीं करूँगा जिस स्तरके संस्कारोंकी अपेक्षा 'क' से करूँगा।

मैंने तो समझा था, आप इस बातपर मुझसे सहमत हैं कि कोई आपके सत्याग्रहके सिद्धान्तका सच्ची भावनासे अनुगमन करे, इसके लिए उसका उच्च कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त होना आवश्यक है, लेकिन आप तो कहते हैं कि सभी लोगोंसे उसी स्तरकी माँग करना आवश्यक नहीं, क्योंकि उन्हें तो बस, उतनी उच्च कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त व्यक्तिने जो-कुछ तय किया है, उसका अनुसरण-भर करना है?

आप चाहें तो ऐसा कह सकते हैं। लेकिन मैं सिर्फ यह समझाना चाहता हूँ कि हर व्यक्तिको, जबतक कि वह सत्यका पालन स्वतन्त्र रूपसे ही करना न चाहता हो, तबतक वैसा करनेकी कोई जरूरत नहीं है। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि अगर कोई एक व्यक्ति अपने मनमें जीवनकी एक योजना निश्चित करता है तो उसके अनुसार चलनेके लिए सबका वैसे ही बौद्धिक एवं नैतिक संस्कारोंसे युक्त होना आवश्यक नहीं है। मैंने जो-कुछ कहा है, उससे अगर आपने ऐसा समझा हो तो मुझे आगे कुछ नहीं कहना है।

तो मैं मान लेता हूँ कि अपनी योजनाके सम्बन्धमें आपका जो विचार है उसके अनुसार उसमें यह निश्चय करना कि कौन-सा रास्ता सही और सच्चा है, उच्च कोटिके बौद्धिक एवं नैतिक संस्कारोंसे युक्त लोगोंका काम है और एक भारी संख्यामें दूसरे लोगोंका काम, जो अपने अपेक्षाकृत निम्न कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंके कारण स्वयं ऐसे ही निष्कर्षोंपर पहुँचनेमें असमर्थ हैं, उनका अनुगमन करना है?

मैं तो ऐसा नहीं मान सकता, क्योंकि मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा है। मैं यह नहीं कहता कि उन्हें अपनी विवेक-बुद्धिका उपयोग नहीं करना है; मैं तो इतना ही कहता हूँ कि वे अपनी विवेक-बुद्धिका उपयोग करें, इसके लिए उनका भी वैसे ही मानसिक एवं नैतिक संस्कारोंसे युक्त होना आवश्यक नहीं।

क्या इस कारणसे कि उन्हें उन लोगोंका निर्णय स्वीकार करना है जो अपनी विवेक-बुद्धिका ज्यादा अच्छी तरहसे उपयोग कर सकते हैं और जो अपेक्षाकृत अच्छे नैतिक तथा बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त हैं?

स्वभावतः, लेकिन मेरा खयाल है कि यह बात मानव-स्वभावका अंग है; मगर किसी सामान्य व्यक्तिमें मुझे जो-कुछ मिल सकता है, उससे अधिककी मैं उससे अपेक्षा नहीं रखता।

मैं इसको दूसरी तरहसे कहूँगा। आपके प्रचारकी सफलता अनिवार्यतः इस बात-पर निर्भर करती है कि एक बहुत बड़ी संख्यामें सामान्य-जन ऐसे लोगोंके निष्कर्षोंको स्वीकार करें जिनमें उनका विश्वास है और जिन्हें उच्च कोटिके बौद्धिक एवं नैतिक संस्कारोंसे युक्त होनेका सौभाग्य प्राप्त है। अगर हर व्यक्ति, उन नैतिक और बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त हुए बिना, अपने लिए यह तय करने लग जाये कि कौन-सा रास्ता सही है, तो फिर उलझन ही होगी। इस प्रकार अपनी योजनाकी सफलताके लिए यह आवश्यक है और उसमें यह बात आती है कि पहले तो अमुक संख्यामें कुछ लोग, जो उच्च कोटिके नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त हैं, सत्यका अनुगमन करेंगे और यह निश्चित करेंगे कि सत्य क्या है, और फिर बहुत सारे लोग, जो ऐसे संस्कारोंसे युक्त नहीं हैं, उनके निष्कर्ष को स्वीकार करके उनका अनुगमन करेंगे?

इस निष्कर्षको मैं सहज नहीं मानता कि इस आन्दोलनकी सफलता उसी बात-पर निर्भर करती है। जहाँ सत्याग्रह है, वहाँ तो इस आन्दोलनकी सफलता एक ही सर्वांगपूर्ण सत्याग्रहीके अस्तित्वपर निर्भर करती है। एक सत्याग्रही भी इस ढंगसे और ऐसे अर्थोंमें सफलता प्राप्त कर सकता है जिस ढंगसे और जिन अर्थोंमें किसी हिंसात्मक योजनाके अन्तर्गत बहुत-सारे लोग भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

श्री गांधी, मैंने तो यह समझा कि इसका पहला हिस्सा यह है कि यह, जिस अर्थमें आपने कहा है उस अर्थमें, सत्यके पालनका सिद्धान्त है और इसे ठीक ढंगसे व्यवहारमें वही उतार सकता है जो उच्च कोटिके ऐसे नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त है जो जनसाधारणको नसीब नहीं हैं।

मैं तो कहूँगा, जो ऐसे नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंसे युक्त हो, जिनके बलपर वह सत्यका स्वतन्त्र रूपसे अन्वेषण कर सकता हो।

और इसलिए जहाँतक सामान्य जनोंका सम्बन्ध है, उन्हें ऐसे लोगोंके निष्कर्ष स्वीकार करने हैं जो वैसा करनेमें सक्षम हैं?

हाँ, लेकिन अपने विवेकका पूरा उपयोग किये बिना नहीं।

लेकिन वे तो अपनी स्वल्प विवेक-शक्तिका ही उपयोग कर सकते हैं?

निस्सन्देह।

और जैसा कि आपने कहा है, आपके द्वारा बताये गये ढंगसे सत्यका सच्चा पालन करनेके लिए ऐसे नैतिक एवं बौद्धिक संस्कारोंकी आवश्यकता है जो साधारण मनुष्यके लिए दुर्लभ हैं?

जी हाँ, हर मौलिक चीजके साथ ऐसा ही है।

मैं कोई इस आन्दोलनकी आलोचना करनेके खयालसे यह नहीं कह रहा हूँ। मैं तो सिर्फ सही स्थिति समझना चाहता हूँ।

शायद मैं आपके शब्दोंसे जितना मतलब निकालनेका मुझे अधिकार है, उससे ज्यादा मतलब निकाल रहा हूँ।

मेरे प्रश्नोंको आप अनावश्यक सन्देहकी दृष्टिसे न देखें?

यहाँ सवाल सन्देहका नहीं है, सर चिमनलाल, लेकिन मैं नहीं चाहता कि समिति या आप मेरी स्थितिको गलत समझें। बस।

तो मैं समझता हूँ, आपका कहना है कि आप अभीतक अपनेको एक पूर्ण सत्याग्रही नहीं समझते?

जी हाँ, नहीं समझता।

अगर ऐसी बात है तब तो श्री गांधी, सामान्य लोगोंके लिए वैसा हो पाना लगभग असंभव ही है।

लेकिन मैं तो किसी तरह अपनेको कोई असाधारण आदमी नहीं मानता।

आप भले ही अपनेको ऐसा न मानें, लेकिन आपके जीवन और आपके स्वभावको देखकर लोग यह जानते हैं कि आप असाधारण आदमी हैं और सत्याग्रह-जैसे सिद्धान्तका पूर्णतासे पालन कर सकते हैं। लेकिन क्या ऐसे बहुत-सारे लोग नहीं हैं जिनके बारेमें यह आशा करना लगभग असम्भव है कि वे बिलकुल सही ढंगसे इसका पालन करेंगे?

उस हालतमें तो सचाई यह होगी कि वे शायद सत्याग्रहका अभिप्राय समझे ही नहीं हैं। इसका मतलब यह होगा कि वे इस चीजसे बिलकुल ऊब गये हैं। अब उदाहरणके तौरपर आप दक्षिण आफ्रिकाके ४०,००० भारतीयोंको लें, जो सर्वथा असंस्कृत और अशिक्षित हैं, लेकिन ये लोग कभी भी ऐसे किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँचे।

हो सकता है मैं गलतीपर होऊँ। लेकिन जब आप दक्षिण आफ्रिकाके ४०,००० लोगों की बात कहते हैं तो मैं समझता हूँ, उन्होंने आपके नेतृत्वका अनुसरण-भर किया?

जी हाँ, मेरे नेतृत्वका अनुसरण-भर — लेकिन स्थितिको देख-परखकर। अगर आपके पास समय हो और आप मेरे साथ एक बार दक्षिण आफ्रिकाकी गलियोंमें घूम लें तो आपको मालूम हो जायेगा कि आपके देशभाई वैसा इसलिए कर पाये क्योंकि उन्होंने मेरा अन्धानुसरण नहीं किया।

हाँ, लेकिन वहाँ दक्षिण आफ्रिकामें तो आपके सामने एक बड़ा और सीधा-सादा उद्देश्य था?

जी हाँ।

और वह एक ऐसा सवाल था जिसके सम्बन्धमें सभ्य संसारकी सहानुभूति उन लोगोंके साथ थी जो सत्याग्रहका पालन कर रहे थे और इतने से ही उस स्थितिमें और यहाँ जो स्थिति है उसमें बहुत अन्तर पड़ जाता है?

सत्याग्रहियोंके नियन्त्रणकी ठोस मिसाल लें, तो कोई भेद नहीं था। दक्षिण आफ्रिकामें मुझे अपने पक्षका समर्थन करनेवाली जितनी जानकारी संचित करनी पड़ी थी, उसकी अपेक्षा यहाँ कहीं ज्यादा करनी पड़ी है। दक्षिण आफ्रिकामें वे दो विरोधी शिविरोंमें बँटे हुए थे।

यह हो सकता है, लेकिन फिर भी वहाँ आपके सामने एक साफ-सीधा सवाल मौजूद था?

और वही बात यहाँ भी है।

आप कहते हैं कि यहाँ इस अवसर विशेषपर तो आपके सामने रौलट विधेयककी बात थी, लेकिन जब एक बार सत्याग्रहके इस सिद्धान्तको आप भारत-जैसे देशमें राजनीतिक आन्दोलनों और गति-विधियोंके क्षेत्रमें लागू कर देते हैं तो उससे कोई एक साफ-सीधा सवाल हमारे सामने उपस्थित नहीं हो सकता। आपके सामने तो तब तरह-तरहकी और उलझी हुई स्थितियाँ होंगी जिनपर आपको यह सिद्धान्त लागू करना होगा?

मैं इस सिद्धान्तको जीवनकी हर स्थितिमें लागू नहीं करता। मैं तो सत्याग्रहको एक ऐसे साधनके रूपमें प्रस्तुत करता हूँ जो हिंसाकी तुलनामें असीम शक्तिशाली और कहीं अधिक पवित्र है।

तो मेरा खयाल है, आप इस बातसे सहमत होंगे कि यह कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसका आप हर शिकायतको दूर कराने या सामने आनेवाली प्रत्येक स्थितिका सामना करनेके लिए उपयोग करेंगे?

बिलकुल नहीं। और कुछ नहीं तो सिर्फ इस सिद्धान्तकी सहज सीमाओंके कारण, और इस कारण कि हर आदमी कष्टसहनके लिए तैयार नहीं रहता। हर आदमी चाँटेके बदले चाँटा मारनेको तैयार है।

आप कहते हैं कि साधारण आदमी तो हमेशा वार करनेको तैयार रहता है, इसलिए आपके सिद्धान्तमें वह पूर्णतः वर्जित है, और इसके विपरीत, कष्ट भोग रहे लोग कष्ट उठाते जाते हैं। अब इसके लिए क्या सामान्य मानवीय आवेगोंपर बहुत ही असामान्य नियन्त्रण रखनेकी जरूरत नहीं है?

जैसा मेरा अनुभव है, उसके अनुसार तो नहीं। दरअसल कष्ट उठानेके लिए आप जैसा सोचते हैं, वैसे असाधारण नियन्त्रणकी जरूरत नहीं होती। हर माँ कष्ट उठाती है, लेकिन वह किसी असाधारण गुणसे सम्पन्न नहीं होती।

अब साधारण जीवनका एक उदाहरण लें। अगर कोई आपपर वार करता है और आप अपने सिद्धान्तके अनुसार उसे बरदाश्त कर लेना तय करते हैं तो निश्चय ही उसके लिए सामान्य मानवीय आवेगोंपर असाधारण नियन्त्रणकी जरूरत तो होगी ही?

तब मैं कहूँगा कि आपके देशभाइयोंको इतने असाधारण आत्म-नियन्त्रणका वरदान प्राप्त है।

क्या आप सोचते हैं, उन्होंने इन सभी स्थानोंमें ऐसे आत्म-नियन्त्रणसे काम लिया या ऐसे आत्म-नियन्त्रणका परिचय दिया?

जी हाँ, उन्होंने बहुत बड़ी हदतक इसका परिचय दिया है।

अच्छा तो अहमदाबादकी ही बात लें। क्या आप मानते हैं कि आपकी गिरफ्तारीका समाचार सुनकर उनका उबल पड़ना और ऐसा बर्बर आचरण करना जिसकी स्वयं

आपने स्पष्ट शब्दोंमें भर्त्सना की, आत्म-नियन्त्रणका ही परिचय देना था? क्या आप मानते हैं कि उन्होंने यह आत्म-नियन्त्रण और आत्म-संयमका परिचय दिया?

मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि भारत-भरमें जहाँ आपको इक्के-दुक्के ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं, वहीं ऐसे असंख्य उदाहरण भी हैं, जिनमें लोग अत्यन्त अनुकरणीय आत्म-संयमका परिचय देते हैं। और इसीलिए हमें "सौम्य हिन्दू" कहा गया है।

मैं कह सकता हूँ कि बहुतसे लोगोंने इन उपद्रवोंमें कोई भाग नहीं लिया और उस अर्थमें यह आत्म-संयम ही कहा जायेगा। लेकिन सवाल तो यह है कि आपकी गिरफ्तारीका समाचार सुनकर, जो उनके लिए उत्तेजनाका पहला कारण था, वे किस तरह उबल पड़े। अहमदाबादमें जो ये बर्बर कार्य किये गये, वे लगभग उसके तुरन्त बाद ही हुए?

मुझे तो इससे इतनी-सी बात समझमें आती है कि हम भी इस दिशामें बहुत दूरतक नहीं जा पाये हैं। मैंने खेड़ाके ७ लाख लोगोंको जगाया, आन्दोलित किया; वे लोग हैं भी बड़े दिलेर, फिर भी उन्होंने खेड़ा-संकटके समय, जो एक-दो दिन नहीं बल्कि छः महीनेतक जारी रहा था, बहुत ही गम्भीर उत्तेजनाके बावजूद अत्यन्त कठोर आत्म-संयमसे काम लिया।

मतलब यह कि विभिन्न हिस्सोंमें जो ये इतनी सारी हिंसात्मक कार्रवाइयाँ हुईं उन्हें आप संयोग मात्र या ऐसी कोई अस्थायी चीज मानते हैं जिसकी पुनरावृत्तिकी सम्भावना नहीं है?

मैं ऐसा तो नहीं कहता लेकिन निश्चय ही ऐसी बातें बहुत कम होंगी और देशको अब सत्याग्रहका जो एक स्पष्ट बोध हो गया है उसको देखते हुए तो और भी कम। इस बातमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

क्या आप ऐसा समझते हैं कि आपने देशके सामने जो उच्च आदर्श प्रस्तुत किये हैं, देशको अब उनकी प्रतीति हो गई है?

पूरे अर्थोंमें तो नहीं, लेकिन देशको इस उच्च आदर्शकी इतनी प्रतीति तो हो ही गई है कि मुझ-जैसे लोग इसको फिर आजमा कर देखें, और अगर कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई जिसमें इस तरहका संयम बरतना आवश्यक हो तो इसे फिरसे आजमानेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं होगी, लेकिन जैसा कि मैंने कहा है, हर रोज़ तो कोई कानून तोड़ना नहीं चाहता।

क्या आपको भरोसा है कि अगर आप इसे फिर आरम्भ करें तो ऐसे उपद्रव फिर कहीं नहीं होंगे?

ऐसी स्थितिमें पहलेसे कुछ कह सकना तो बहुत कठिन है, लेकिन मुझे इस बातका पूरा भरोसा है कि सत्याग्रहकी आगसे गुजर चुकनेके कारण यह देश अब अधिक पवित्र, अधिक सौम्य हो गया है।

अब, आपकी बातोंसे जैसा मैं समझता हूँ उससे तो यही लगता है कि राजनीतिक क्षेत्रमें सत्याग्रहके सिद्धान्तका प्रयोग अन्यायपूर्ण कानूनोंको तोड़नेके लिए ही किया जाता है?

जी हाँ।

और उसके प्रयोगका तरीका है कानूनको तोड़ना और उसमें तदर्थ विहित दण्डको आगे बढ़कर स्वीकार करना। और आपका कहना है कि आपका सिद्धान्त ऐसी सीख उन कानूनोंके सम्बन्धमें देता है जिनका पालन करना अपमानजनक है और आप यहाँतक कहते हैं कि किसी भी कानूनके प्रति आपके द्वारा बताया गया विरोध व्यक्त करनेके लिए सम्बन्धित व्यक्तिको सरकारके साथ सहयोग करना बिलकुल बन्द कर देनेका अधिकार है?

मैंने यह तो नहीं कहा है कि "वह सरकारके साथ सहयोग करना बन्द कर दे"। लेकिन मैं इस प्रस्थापनाको भी स्वीकार कर लूँगा, अगर स्थिति ऐसी हो गई हो जिसमें राज्यके साथ सहयोग करना पूर्ण रूपसे बन्द कर देना उचित हो।

लेकिन मैं मानता हूँ कि सामान्यतः आपका सिद्धान्त सरकारके साथ सहयोग करनेका ही है?

जी हाँ।

मेरा मतलब है, स्वयं देशके हितमें देशके सुव्यवस्थित विकासकी दृष्टिसे ही, क्योंकि इसके लिए सहयोग करना जरूरी है?

जी हाँ।

और यह भी कि यथासम्भव हर प्रकारका प्रजातिगत विद्वेष या प्रजातिगत भावना अथवा इस प्रकारकी कटुतापूर्ण दूसरी बातोंको दूर करना चाहिए?

जी हाँ।

इस दृष्टिसे देखनेपर तो जब आपका सिद्धान्त किसी विशेष कानून या कानूनोंको लेकर कष्ट उठाने और उन्हें तोड़कर जेल जानेको कहता है तब आप यही आशा करते हैं न कि उससे आखिरकार सत्ताधारी लोगोंके मनमें सहानुभूतिके भाव जागेंगे और वे इस चीजको सही रूपमें देख सकेंगे?

इस वाक्यमें से मैं 'आशा' शब्द निकाल देना चाहूँगा। यह 'आशा' इसका कोई आवश्यक तत्त्व नहीं है।

अगर मैं भूल नहीं रहा हूँ तो मेरा खयाल है, अपने बयानमें आपने इसका जिक्र किया है?

हाँ, जब मैं लोगोंके सम्मुख यह सिद्धान्त प्रस्तुत करता हूँ तो इस आशाका भी जिक्र करता हूँ, लेकिन यह इस सिद्धान्तका कोई आवश्यक हिस्सा नहीं है। आवश्यक हिस्सा तो यह है कि जिस कानूनका पालन करना अपमानजनक हो उसे स्वीकार न किया जाये और उसका पालन न किया जाये, और इस प्रकार इस परिस्थितिमें ऐसा करना हमारे लिए आवश्यक हो जाता है, लेकिन यह अपने आपमें तो एक ईमानदारी भरी कार्रवाई द्वारा विरोध व्यक्त करना है, जिससे ऐसा करनेवाले व्यक्तिको दुनियाकी सहानुभूति प्राप्त होती है और वह कानून रद कर दिया जाता है। यह तो उस कार्रवाईकी एक शर्त-भर है। कोई व्यक्ति यह भी कह सकता है कि "नहीं, सारी दुनिया मेरे खिलाफ उठ खड़ी होगी", लेकिन उसे अपना विरोध तो तब भी प्रकट करना ही होगा।

ठीक है, लोग चाहे प्रतिज्ञा लें या न लें, लेकिन आप चाहते थे कि वे मनसे सत्याग्रही बन जायें, सत्याग्रह आन्दोलनके सिद्धान्तोंका पालन करें?

जी हाँ, लेकिन मैं उनसे इस आन्दोलनके उसी हिस्सेमें शामिल होनेकी अपेक्षा रखता था जिसका सविनय अवज्ञासे सम्बन्ध नहीं था, मतलब यह कि मैं उन्हें पहलेसे बता देता था और जो सभाएँ आदि होनेको होतीं उनमें शामिल होनेको तो आमन्त्रित करता था लेकिन कानूनके सविनय भंगमें शामिल होनेको नहीं, और न ही मैं उनसे कभी यही कहता था कि जो लोग इसमें शामिल नहीं होना चाहते उन्हें वे जबरदस्ती शामिल करें।

तो क्या आपका मंशा कभी भी यह नहीं था कि जनसाधारण इस आन्दोलनके सविनय अवज्ञावाले हिस्सेमें भाग ले?

हाँ, तबतक नहीं जबतक कि लोग निश्चित रूपसे सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा न ले लें। लेकिन प्रतिज्ञा ले लेनके बाद तो मैं जनसाधारणको भी शामिल करनेको तैयार था।

लेकिन आप यह चाहते थे कि ऐसे लोग सत्याग्रहके सिद्धान्तका अनुसरण करें?

बेशक। आपको शायद याद होगा, मैंने इन हिंसात्मक कार्रवाइयोंके बाद प्रतिज्ञाका एक दूसरा प्रारूप भी तैयार किया था जिसपर सभीको हस्ताक्षर करने थे। उसमें सविनय अवज्ञाका कोई जिक्र नहीं किया गया था, बल्कि सिर्फ इतना कहा गया था कि हर हालतमें सत्यका पालन किया जाये और दूसरोंसे भी ऐसा ही करनेको कहा जाये। उसमें तो मैंने स्वेच्छया कष्ट-सहनका भी कोई उल्लेख नहीं किया।

इसपर कौन लोग हस्ताक्षर करनेवाले थे?

इस प्रतिज्ञापर ऐसे बहुत-सारे लोग हस्ताक्षर करनेवाले थे जो मेरे दायरेसे बाहर हैं और सविनय प्रतिरोधी भी नहीं हैं।

तो आपका खयाल यह है कि जनसाधारणसे या काफी बड़ी तादादमें लोगोंसे सविनय अवज्ञाका धर्म अपनानेको नहीं कहना चाहिए?

मैं यह तो नहीं कह रहा हूँ। मैं तो सिर्फ यह कह रहा हूँ कि हिंसात्मक आन्दोलनके विरोधमें मैंने दूसरी प्रतिज्ञा जारी की जिसके पीछे मंशा यह था कि जो-कोई भी चाहे इसपर हस्ताक्षर कर दे। इससे हस्ताक्षरकर्त्तापर सिर्फ इतना बन्धन लगता था कि वह अपने सारे व्यवहारमें सत्यका पालन करे और किसीके प्रति हिंसा न करे। अर्थात् सविनय अवज्ञा और इस प्रकार स्वेच्छया कष्ट-सहनकी बात इसमें से निकाल दी गई थी।

इसलिए न कि आपने सोचा, सविनय अवज्ञाके कारण अवज्ञा करनेवाले को जो कष्ट सहना पड़ता है उसके कारण वह जनसाधारणके लिए पूरी तरह उपयुक्त चीज नहीं है?

जी नहीं, सो बात नहीं है। दरअसल उस समय मैंने आन्दोलन स्थगित कर दिया था लेकिन साथ ही देशके सामने कोई प्रवृत्ति रखना चाहता था। स्वभावतः कोई नेता कभी अपने प्रचारके एक पक्षपर जोर देता है तो कभी दूसरे पक्षपर। इस बार जब मैंने देखा कि लोगोंने उसके सविनय अवज्ञा पक्षको गलत समझ लिया

है, तो उसे स्थगित कर दिया, लेकिन मैं इस सिद्धान्तपर — उसके एक पक्षपर — उसके अहिंसा पक्षपर जोर देना चाहता था, और इसलिए मैंने सविनय अवज्ञा समाप्त कर दी — और समाप्त कुछ इसलिए नहीं कर दी कि वह सर्वसाधारणके उपयुक्त नहीं थी बल्कि इसलिए कि वह अवसरके उपयुक्त नहीं थी। दूसरे शब्दोंमें लोगोंको उसकी सीख देनेका यह उचित अवसर नहीं था।

तो आप अप्रैल महीनेकी घटनाओंके अनुभवसे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि सविनय अवज्ञाका प्रचार अवसरके उपयुक्त नहीं है?

आप जैसा मानते है, वैसे किसी निष्कर्षपर मैं उस कारणसे तो नहीं पहुँचा।

नहीं, मेरे कहनेका मतलब यह नहीं, लेकिन आप इस निष्कर्षपर तो पहुँचे कि परिस्थितियोंको देखते हुए इस समय सत्याग्रह करना अनुपयुक्त है?

जी हाँ।

और इसलिए आपने उसे स्थगित कर दिया?

जी हाँ।

और आप उस निष्कर्षपर इसलिए पहुँचे कि घटनाओंने आपको यह दिखा दिया कि सविनय अवज्ञासे आपका क्या मतलब है, इसे लोगोंने सचमुच समझा नहीं है?

जी हाँ।

और इस प्रकार उन्होंने अपने-आपको गुमराह किया था?

जी हाँ।

जब आपने पहले-पहल सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें निर्णय किया तो मेरा खयाल है, वह रौलट अधिनियमके संदर्भमें ही किया था?

जी नहीं, जब प्रतिज्ञापर पहले-पहल हस्ताक्षर किये गये उस समय अहमदाबाद आश्रममें पहली बैठकमें ही सारी बातें सोच ली गई थीं।

रौलट अधिनियम तथा अन्य कानूनोंको भी भंग करनेकी बात सोच ली गई थी?

जी हाँ।

ऐसा है श्री गांधी कि मैं अपनी जानकारीको जरा दुरुस्त-भर कर लेना चाहता हूँ।

जी हाँ, सचमुच बहुत-से लोगोंका खयाल रहा है कि दूसरे कानूनोंके उल्लंघनकी बात बादमें जोड़ी गई। लेकिन बात ऐसी है नहीं।

अगर मैं भूल नहीं रहा हूँ तो यह प्रतिज्ञा सबसे पहले श्रीमती बेसेंटने ली?

अब इस सम्बन्धमें दो तरहकी बातें कही जाती हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा ली भी और नहीं भी ली। मुझे यह बताया गया कि उन्होंने वास्तवमें समिति सम्बन्धी धाराको निकालकर शेष पूरीकी-पूरी प्रतिज्ञा ली। वे समितिके प्रभुत्वको स्वीकार नहीं करना चाहती थीं। जैसा कि आपने देखा है, यहाँ सवाल सिर्फ एक मर्यादा निश्चित कर देनेका था, लेकिन उन्होंने उसे गलत समझा।

क्या ऐसा नहीं हुआ कि उन्होंने लोगोंका ध्यान इस बातकी ओर दिलाया कि जबतक आप राजद्रोही और अराजकतावादी बनकर ऐसी स्थिति पैदा नहीं कर देते जिससे आपपर रौलट अधिनियमकी धाराएँ लागू हो जायें तबतक उसका उल्लंघन करना सम्भव नहीं है?

मुझे याद है मैंने अखबारमें यह बात पढ़ी थी, लेकिन जहाँतक मुझे याद है, यह बात उनके तार और बातचीतसे पहले की है।

उन्होंने इस ओर लोगोंका ध्यान तो दिलाया?

निःसन्देह यहाँ उन्होंने उस कानूनका गलत अर्थ लगाया, लेकिन उन्होंने ऐसा कहा जरूर।

मैं जानना यह चाहता हूँ कि दूसरे कानूनोंके उल्लंघन करनेका निर्णय क्या तब लिया गया जब उन्होंने, मैंने जो कुछ बताया है, उस बातकी ओर लोगोंका ध्यान दिलाया?

जी नहीं, बिलकुल नहीं। जब श्रीमती बेसेंटने, जो-कुछ आपने बताया है, वह बात लिखी तब प्रतिज्ञाको प्रकाशित हुए कमसे-कम कुछ दिन तो बीत ही गये थे। जब प्रतिज्ञापर अहमदाबादमें हस्ताक्षर किये गये उस समय श्रीमती बेसेंट उसके बारेमें कुछ नहीं जानती थीं।

मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि जो-कुछ मुझे याद है वह ठीक है या नहीं। उन्होंने वही तो बताया था कि इस अधिनियमका स्वरूप भी ऐसा है कि इसकी अवज्ञाकी गुंजाइश नहीं रहती, लेकिन अन्य कानूनोंकी अवज्ञामें शामिल होनेसे उन्होंने इसलिए इनकार कर दिया कि उससे अव्यवस्था फैलती?

जी हाँ, मुझे मालूम है कि उन्होंने यह दलील दी थी और जहाँतक इस आन्दोलनका अन्य कानूनोंकी अवज्ञासे सम्बन्ध था, उन्होंने इसका बचाव किया था, लेकिन मुझे यह नहीं मालूम कि उन्होंने आखिरकार किन कारणोंसे उसमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया।

लेकिन कारण तो उन्होंने अपने अखबारमें बताया था?

हाँ, उन्होंने अपने 'न्यू इंडिया' में इस आशयका एक लेख तो अवश्य लिखा था।

और उसमें यह कहा गया है कि इस तरहसे कानूनोंकी अवज्ञा करनेका अवश्यम्भावी परिणाम होगा अव्यवस्था?

जी हाँ।

अब विभिन्न कानूनोंकी सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें यह जानना चाहूँगा कि क्या इसके पीछे किसी हदतक कुछ ऐसा विचार काम कर रहा था कि कानूनोंके उल्लंघन करनेका परिणाम यह होगा कि सरकार परेशान होगी या सुव्यवस्थित शासन असम्भव हो जायेगा। और तब सरकारको रौलट विधेयकके सम्बन्धमें जनताकी इच्छाके आगे झुकना पड़ेगा और इस प्रकार वह चीज प्राप्त हो जायेगी जिसे आपने खुद ही

सरकारको जनताकी इच्छाके सामने झुकाना कहा है। क्या उसके पीछे कोई ऐसा विचार था?

जी नहीं, यह सरकारको परेशान करना नहीं है, बल्कि इसके पीछे जो विचार है वह है जिस सरकारपर से हमारा विश्वास उठ गया है, जिसके प्रति हमारे मनमें कोई आदर नहीं रह गया है उसके साथ सहयोग करनेसे अपना हाथ खींच लेनेके अपने अधिकारका उपयोग करना, और इस अधिकारके उपयोगका सवाल पूरी तरह इस बातपर निर्भर करेगा कि सरकारने कहाँतक विश्वास खो दिया है।

अब इस विशेष मामले अर्थात् रौलट अधिनियमको लें जिसपर हम अभी विचार कर रहे हैं। रौलट अधिनियमके पास हो जानेसे क्या आप और आपके सहयोगी कार्य-कर्त्ता इस निष्कर्षपर पहुँचे कि सरकारका यह आचरण ऐसा था जिसके कारण उसने अपना विश्वास खो दिया और इस तरह सहयोग प्राप्त करनेका समस्त अधिकार भी?

नहीं, नहीं, ऐसा तो बिलकुल नहीं है।

मैं स्पष्ट जानना चाहता हूँ?

निर्णायक तथ्य यह था कि रौलट कानून तो ऐसा नहीं है जिसकी सक्रिय अवज्ञा-की हर समय गुंजाइश हो, और इसलिए अगर हम सरकारको प्रभावित करना चाहते हैं तो हमें दृढतापूर्वक कोई और रास्ता अपनाये रखना चाहिए, और यह काम हमने ऐसे दूसरे कानूनोंका सक्रिय उल्लंघन करके किया जिनके उल्लंघनमें नैतिक अध:पतनकी कोई बात नहीं थी।

अब, अगर आप सचमुच दूसरे कानूनोंको तोड़ते हैं तो क्या आप यह मानेंगे कि इसके परिणामस्वरूप सुव्यवस्थित शासन किसी हदतक असम्भव हो जायेगा?

जी नहीं, मैं ऐसा नहीं कहूँगा। जहाँ अपराधकी वृत्तिसे सर्वथा मुक्त लोग रहते हों वहाँ सुव्यवस्थित शासन असम्भव हो ही नहीं सकता। स्वभावत: हमें ऐसा मानकर ही चलना है कि लोगोंमें अपराधी प्रवृत्तिका सर्वथा अभाव है।

आपने उल्लंघनार्थ जो कानून निर्धारित किये, वे क्या ऐसे कानून थे जिनका आप तथा अन्य लोग अबतक पालन करते आये थे?

जी हाँ।

जब वे कानून बनाये गये उस समय तो आपने उन्हें इतना अन्यायपूर्ण नहीं समझा कि लगे कि उनकी अवज्ञा करनी चाहिए। लेकिन जिन कानूनोंका आप इतने वर्षोंसे पालन करते आये हैं, अब उन्हींकी अवज्ञा करनेका निश्चय करनेसे क्या ऐसा आभास नहीं मिलता कि इसका उद्देश्य सुशासनको असम्भव बना देना है?

हाँ, इससे ऐसा आभास तो मिलेगा, लेकिन तभी जब यह क्षेत्र काफी विस्तृत हो। और शासन चलाना असम्भव बनानेकी कोशिश तो मैं तब करूँगा जब यह देख लूँगा कि सरकारने विवेक-बुद्धिसे अपना नाता बिलकुल तोड़ लिया है।

श्री गांधी उस दिन १० अप्रैलको आप अहमदाबादमें नहीं थे?

जी नहीं।

आप उस समय बम्बई जा रहे थे?

जी हाँ, मैं बम्बई वापस लौट रहा था।

आप बम्बई कब पहुँचे?

११ को।

९ तारीखको आपको पलवलमें गिरफ्तार किया गया और उसी दिन आपने एक सन्देश भेजा?

गिरफ्तार होनेसे पहले ही मैंने यह सन्देश[1] बोलकर लिखवा दिया था।

क्या आपको यह मालूम है कि १० तारीखको अहमदाबादमें एक सभा आयोजित की गई जिसमें आपका सन्देश पढ़ा गया?

जी हाँ, मालूम है।

उस सन्देशमें आपने लोगोंसे हिंसा न करनेका अनुरोध किया था?

जी हाँ।

और मेरा खयाल है वह सन्देश सभामें उपस्थित लोगोंको समझाया भी गया था?

जी हाँ।

यह अहमदाबादकी एक बहुत-ही जबरदस्त सभा थी?

हाँ, सुना तो ऐसा ही है।

लेकिन लोगोंको आपका सन्देश, जिसमें आपने उनसे हिंसा न करनेका अनुरोध किया था, सुनानेके बावजूद ११ तारीखको भीड़का आवेग हिंसाके रूपमें फूट पड़ा?

जी हाँ।

श्री गांधी तो क्या इससे यह नहीं प्रकट होता कि सर्वसाधारणकी जैसी स्थिति है, उस स्थितिमें उसे यह अहिंसा और स्वयं कष्ट सहनेका सिद्धान्त समझा पाना बहुत कठिन है?

हाँ, इसमें जो कठिनाई है उसे तो मैं भी स्वीकार करता हूँ।

उस सिद्धान्त अर्थात् अहिंसा तथा स्वयं कष्ट सहनेके सिद्धान्तपर आचरण करना भी उनके लिए बहुत कठिन है?

हिंसात्मक तरीकोंके आदी हो जानेपर लोगोंके लिए आत्मसंयम बरतनेमें कठिनाई होती ही है।

तो अपनी वर्तमान परिस्थितियोंमें उनके लिए आत्मसंयम द्वारा हिंसाकी वर्जना करना बहुत कठिन है?

निश्चय ही।

१. यह गांधीजीके लिखित बयानके साथ संलग्न किया गया था। देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २१४-१६।

इसका दूसरा हिस्सा समझ पाना तो बहुत आसान है अर्थात् यह कि उन्हें किसी कानूनका या उस कानूनका सरकार द्वारा प्रयोग करनेका विरोध करना है। यह चीज तो साधारण बुद्धिके लोग बहुत आसानीसे समझ लेते हैं ?

मेरा खयाल है आप ठीक ही कह रहे हों; लेकिन मैं नहीं मानता, मुझे लोगोंको यह समझाना इतना आसान जान पड़ा हो कि अन्यायपूर्ण कानूनोंका विरोध करना बहुत कठिन है। सच तो यह है कि उन्हें यह बात समझानेमें मुझे काफी शक्ति और श्रम लगाना पड़ा है।

मेरे कहनेका मतलब यह है कि अगर आप लोगोंसे कहते हैं कि रौलट कानून या कोई अन्य कानून अन्यायपूर्ण है और इसलिए हमें उसका विरोध करना ही चाहिए तो यह एक ऐसी बात होगी जिसे असाधारण बुद्धिके लोग आसानीसे ग्रहण कर लेंगे और समझ जायेंगे ?

जी हाँ, बेशक।

और अगर इसके साथ-साथ आप उनसे यह भी कहें कि वे कानूनोंका विरोध तो करें लेकिन हिंसासे हाथ खींचे रहें तो अभी इस बातको ग्रहण करने और समझनेकी उनमें जितनी शक्ति है उसे देखते तो यह दूसरा पक्ष बहुत कठिन होगा ?

निःसन्देह।

तो आप अहमदाबाद १२ तारीखको पहुँचे ?

जी नहीं, १३ को।

आपने अध्यक्ष महोदयको यह बताया कि आपके इस आशयके जिस वक्तव्य देनेकी खबर है कि इस कार्रवाईकी योजना पढ़े-लिखे लोगोंने तैयार की थी उसके पीछे आपका मतलब क्या था। आपने हमसे कहा है कि उसके पीछे आपका मतलब यह था कि कोई आम साजिश नहीं थी, लेकिन इसकी योजना १० तारीखको तैयार की गई और जिन लोगोंने इसकी योजना तैयार की, वे पढ़ और लिख सकते थे। तो आपका मतलब यह है कि इसमें ज्यादा पढ़े-लिखे लोगोंका हाथ नहीं था ?

जी हाँ, ऐसा ही है।

आप कहते हैं, इस कार्रवाईकी किसीने पहलेसे योजना तैयार कर ली थी। अपने इस कथनके समर्थनमें क्या आपके पास कोई प्रमाण है ?

जी हाँ, उस वक्तव्यके समर्थनमें मेरे पास प्रमाण हैं।

मेरा खयाल है, उसे आप न तो अधिकारियोंके सामने रखना चाहते हैं और न इस समितिके सामने ?

मैं सूचना देनेवाले लोगोंके नाम बतानेको तैयार नहीं हूँ।

मैं उनके नाम चाहता भी नहीं हूँ। लेकिन उन्होंने आपको कुछ तथ्य, कुछ सामग्री तो दी ही होगी, जिसके आधारपर आप इस निष्कर्षपर पहुँचे कि इसकी योजना

१० तारीखको तैयार की गई। क्या समितिके सामने वह सामग्री पेश करनेमें भी आपको कोई आपत्ति है?

मैं नहीं जानता कि सामग्रीसे आपका मतलब क्या है, लेकिन १० तारीखको या जब भी भीड़से यह कहा गया हो कि इस सम्बन्धमें उसे क्या करना चाहिए, उस समय जो-कुछ हुआ वह बतानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। कुछ लोगोंने भीड़से पुलिस चौकियाँ जलानेको कहा और कुछने तरकीबें सुझाईं कि ऐसा किस तरह किया जाये।

अब हम जरा बातोंको सिलसिलेवार ढंगसे लें। आप १० तारीखकी योजनाके विषयमें जो-कुछ जानकारी देनेको तैयार हैं, उसके सम्बन्धमें मैं जानना चाहूँगा कि क्या १० तारीखको कोई बैठक भी हुई थी जिसमें लोगोंसे ऐसा करनेको कहा गया?

मुझे इस बातका तो कोई प्रमाण नहीं मिला है कि किसी घरमें कोई बैठक या ऐसा ही कुछ और हुआ, लेकिन जिन लोगोंसे यह कहा गया कि उन्हें क्या करना है, उनका साक्ष्य अवश्य प्राप्त है।

क्या यह १० तारीखकी बात है?

मुझे इतना ज्यादा तो याद नहीं है, लेकिन अगर मैंने श्री चैटफील्डसे कहा कि यह १० तारीखकी बात है तो यह १० तारीखकी ही बात होगी।

इस सम्बन्धमें मैं स्पष्ट जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ। हमें बताया गया है कि ११ तारीखको मौकेपर ही लोगोंको बहुत-सारे काम करनेको कहा गया। यह बात तो इससे भिन्न है न कि पिछली रात लोगोंको अमुक कार्रवाइयाँ करनेको कहा गया?

जी हाँ। मैं इस अन्तरको समझता हूँ। ११ तारीखके सम्बन्धमें भी यह बात उतनी ही लागू होती है।

अब हम पहले १० तारीखकी शामकी बात लें। क्या आपको अपने वक्तव्यके प्रमाणस्वरूप कोई जानकारी प्राप्त है?

जी हाँ, है।

१० तारीखको कुछ लोग — चाहे वे कोई भी रहे हों — पहलेसे निश्चित कार्य-क्रमको सम्पन्न करनेको आम जनतासे कहते फिरे। क्या यह सच है?

मैं कदाचित् इतने कड़े शब्दोंका तो प्रयोग नहीं करूँगा: उस समय मेरे मनमें जो धारणा बनी उसके अनुसार मैं इस बातको इस तरह रखूँगा: मुझे बताया गया कि उस रात कुछ ऐसे लोग थे, जिन्होंने कहा: "आप सब मूर्ख हैं। आपको यह बात करनी चाहिए और इस तरह करनी चाहिए।" पूरी बातचीत तो मैं आज ज्योंकी-त्यों दुहरानेमें असमर्थ हूँ, क्योंकि मैंने उस समय कुछ नोट नहीं किया। मेरे सामने जिस बातचीतका वर्णन किया गया उसका आशय कुल मिलाकर यह था कि जो लोग उनके पास थे उन्हें उन्होंने सुझाव दिया कि आपको अमुक-अमुक काम करना है।

क्या यह सच है कि इस उद्देश्यसे कुछ लोग १० तारीखकी रातको जहाँ-तहाँ घूमते फिरे थे?

मैं यह बात भी इतने स्पष्ट शब्दोंमें नहीं कहूँगा। क्योंकि मेरे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन जब और जैसे उन्हें कोई अवसर मिला, उन्होंने उस अवसरका उपयोग अवश्य किया।

यह अवसर १० तारीखको था?

उदाहरणके लिए मान लीजिए, मैं अपनी दूकानमें था और मैंने लोगोंको अपने आसपास एकत्र होते देखा, तो वह दिन जैसा था वैसे दिन स्वभावत: कुछ बहस-मुबाहिसा होगा ही और यह सब कैसे करना है और क्या करना है, इस सम्बन्धमें बहस करते हुए लोगोंकी भीड़ भी जमा होगी ही। उनमें से कोई कहेगा, "अरे, आप नहीं जानते कि आपको क्या करना है? यह है वह तरीका जिससे इस तरहके काम किये गये हैं और आपको अमुक-अमुक काम करना है।" मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि जहाँतक मुझे पता है, किसीने भी किसीकी जानको हानि पहुँचानेका सुझाव नहीं दिया, लेकिन निश्चय ही सम्पत्तिको हानि पहुँचानेका सुझाव दिया गया।

तो यह काम निश्चय ही १० तारीखके दिन और १० तारीखकी रातमें किया गया होगा?

मुझे १० तारीखके दिनकी बात तो मालूम नहीं है। अलबत्ता १० तारीखकी शामके बारेमें मैं जानता हूँ, लेकिन ११ के बारेमें मेरे पास अपेक्षाकृत अधिक और स्पष्ट प्रमाण हैं।

अभी हम ११ तारीखकी भी बात करेंगे, लेकिन पहले १० की बात खत्म कर लें। आप कहते हैं, १० तारीखकी शामको यह सब इस तरह हुआ कि लोग कहीं दुकानोंके आसपास या किसी और स्थानपर जमा हो गये, और किसी एकने उनको बताया कि "अब आपको इस तरीकेसे आगे कार्रवाई करनी है।" यह तो तभी होगा जब लोग संयोगसे वहाँ आ जायें और किसी एक व्यक्तिको अवसर मिल जाये। आम तौरपर ऐसा कोई संयोग, इस तरहसे, शामको या रातमें तो नहीं आयेगा। हाँ, दिनमें ऐसा हो सकता है, है न?

मुझे नहीं मालूम।

अगर ऐसी कोई बात शामको या रातमें हो तब तो यही माना जायेगा कि यह ज्यादा सुनियोजित ढंगसे किया गया, क्योंकि लोग जान-बूझकर दूसरे लोगोंसे यह कहते फिरे कि उन्हें क्या करना चाहिए?

अगर यह बात सच भी हो कि कुछ लोग जान-बूझकर जगह-जगह जाकर यह सब कहते फिरे हों तब भी मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा। मैं ऐसी सम्भावनाकी कल्पना कर सकता हूँ, लेकिन मेरे पास इस निष्कर्षपर पहुँचनेके लिए कोई प्रमाण नहीं है कि कुछ लोग सचमुच जगह-जगह जाकर ऐसी बातें कहते फिरे। हाँ, इस बातका मेरे पास अकाट्य प्रमाण है कि कुछ व्यक्तियोंने सचमुच आम लोगोंको इस तरहकी हिंसाके लिए उत्तेजित किया।

क्या १० तारीखको?

जी हाँ, १० को ही।

जिसे आप अकाट्य प्रमाण कहते हैं उसमें कितना बल है, यह तो सबसे अच्छी तरह आपको ही मालूम होगा। क्या यह कोई ऐसा प्रमाण है जिससे कोई साधारण व्यक्ति, साधारण जीवनमें, किसी प्रकारका निष्कर्ष निकाल सके।

जी हाँ, मैं तो समझता हूँ कि है। इसे स्वीकार करनेसे पूर्व मैंने कोई विशेष तर्कबुद्धिका उपयोग नहीं किया है। इसके विपरीत मेरा खयाल है कि ऐसे किसी प्रमाण-को मैं खूब ठोक-बजाकर ही स्वीकार करूँगा।

जिन लोगोंने आपको यह जानकारी दी उन्होंने क्या सचमुच यह बात सुनी या होते देखी थी अथवा किसी औरसे सुनी थी?

मेरे पास उन भ्रमित हो जानेवालोंका भी प्रमाण है, जिनसे यह बात कही गई और कुछ ऐसे लोगोंका भी है जो यह बात जानते भी थे।

यानी उनका, जिन लोगोंने यह बात कहते सुनी?

स्वयं उनका जिनसे ऐसा करनेको कहा गया और मेरे पास कुछ ऐसे लोगोंका प्रमाण भी है जिन्होंने स्वयं ऐसा किया भी।

ऐसा बहुत बड़े पैमानेपर किया गया या कुछ छुट-पुट ढंगसे?

यह कहना तो कठिन है कि यह बड़े पैमानेपर किया गया या नहीं, एक तरहसे तो मैं यह कहनेको तैयार हूँ कि बड़े पैमानेपर किया गया। निश्चय ही, कुछ छुट-पुट मामले भी हुए। इन लोगोंने इतना ज्यादा तो नहीं किया कि एक छोरसे दूसरे छोरतक लोगोंसे ऐसा करनेको कहते फिरें, लेकिन निश्चय ही उन्होंने लोगोंकी उत्तेजनाका लाभ उठाकर उनके दिमागमें यह बात भर दी। मैं जो-कुछ कह रहा हूँ उसके असली माने यही हैं।

आप जो-कुछ कह रहे हैं वह तो असलमें यह है कि १० तारीखको आपकी गिरफ्तारीका समाचार सुनकर लोग उबल पड़े?

जी हाँ।

तो क्या उससे पहले उनकी कोई योजना नहीं थी?

जी नहीं, कोई नहीं।

कुछ व्यक्तियोंने भीड़को उस तरहसे उत्तेजित देखा और देखते ही उन्होंने तुरन्त उस अवसरका लाभ उठाया और उन्हें बरगलाकर या गुमराह करके उनसे यह सब करवाया?

जी हाँ, मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

आपका कहना है कि इस सम्बन्धमें आपको प्रत्यक्ष प्रमाण मिले हैं?

जी हाँ, मिले हैं।

यानी ऐसे लोगोंके प्रमाण जिन्होंने दूसरोंको ऐसा करते देखा या स्वयं ऐसा किया।

जी हाँ, ऐसे लोगोंका ही।

तो मेरा खयाल है, आपके सिद्धान्त आपको अधिकारियों या समितिके सामने यह जानकारी रखनेसे रोकते हैं?

जिन लोगोंने ऐसा किया मैं उनके नाम उसी प्रकार नहीं दे सकता, जिस प्रकार अगर मैं उनका वकील होता तब नहीं देता। मेरे सिद्धान्त और नियम भी मुझे वैसा करनेसे रोकेंगे, और दुर्भाग्यवश उनके साथ मेरा जो सम्बन्ध है वह किसी वकीलके सम्बन्धसे अधिक पवित्र है। मेरे पास कुछ ऐसे लोग भी आते थे जो स्वामिनारायण मन्दिरसे प्राप्त तलवारें मुझे समर्पित कर देना चाहते थे, लेकिन दुर्भाग्यवश उन्होंने वैसा करनेका साहस और दिलेरी नहीं दिखाई।

क्या आपके सामने ऐसे प्रमाण भी हैं जिनसे सिद्ध होता हो कि ११ तारीखको कुछ लोगोंने भीड़का नेतृत्व किया या उससे कहा कि उसे क्या करना चाहिए?

मेरे पास लोगों द्वारा भीड़का नेतृत्व करनेका तो कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन १० तारीखकी वारदातसे सम्बन्धित प्रमाणके समान ही सबल, बल्कि शायद उससे भी अधिक सबल, प्रमाण मुझे इस बातका प्राप्त है कि किशोरों और नौजवानोंने उन लोगोंको बड़ा फटकारा जो चुपचाप बैठे हुए थे और ध्वंसात्मक कार्रवाईमें हाथ नहीं बँटा रहे थे।

आपको इस बातकी भी निश्चित जानकारी है कि वे लोग कौन थे?

मैं यह तो नहीं कह सकता कि मुझे निश्चित जानकारी प्राप्त है, लेकिन उन लोगोंके नाम मुझे अवश्य बताये गये हैं। मैं उन्हें व्यक्तिगत रूपसे जानता भी नहीं। हो सकता है, उन्हें मैंने देखा भी हो, लेकिन मैं उन लोगोंकी यानी जिन लोगोंने ऐसा कहा उनकी शिनाख्त भी नहीं कर पाऊँगा। मैं तो यह भी नहीं जानता कि आज इतने दिन बाद मैं उन लोगोंको भी पहचान पाऊँगा या नहीं, जिन्होंने मुझे इस सम्बन्धमें जानकारी दी।

तो आप उन लोगोंको पहचान सकते हैं जिन्होंने आपको इस सम्बन्धमें जानकारी दी?

जी नहीं, नहीं पहचान सकता। यह बात मुझसे किसी एक व्यक्तिने नहीं कही। उदाहरणके लिए एक गाँवसे लोगोंका एक समूह आया और उन्हें देखते ही मैंने कहा, "तो आप लोगोंने यह सब किया और मेरे सन्देशका यही अर्थ लगाया।" इसपर उन सभीने क्षमा माँगी। १४ तारीखको यही बात हुई। उन्होंने कहा कि हम सबको अत्यन्त खेद है, लेकिन आप फिर कभी हमें ऐसा आचरण करते नहीं पायेंगे। अगर आप मुझे उन सबकी शिनाख्त करनेको कहें तो मैं न कर पाऊँगा, क्योंकि मैं उन्हें नामसे तो जानता नहीं हूँ। मैंने उन्हें कुछ ज्यादा देरतक कभी देखा भी नहीं है। लेकिन हाँ, जिन लोगोंने मुझे इस सम्बन्धमें जानकारी दी, उनमें से कुछको पहचान सकता हूँ।

यानी आप १० तारीखकी घटनाओंकी सूचना देनेवाले लोगोंको पहचान सकते हैं?

११ तारीखके बारेमें सूचना देनेवालोंको ज्यादा अच्छी तरह पहचान सकता हूँ, लेकिन मेरा खयाल है, १० तारीखके बारेमें सूचना देनेवाले कुछ लोगोंको भी पहचान सकता हूँ।

आप कहते हैं, कुछ ग्रामीण लोग आपके पास आये?

जी हाँ, काफी लोग आये।

और आपने ऐसा काम करनेपर उन्हें फटकारा?

खूब आड़े हाथों लिया; पूछा कि "आपने उसे रोका क्यों नहीं? आपने अपनी आँखोंके सामने ऐसी बातें क्यों होने दी?"

और तब उन्होंने कहा कि उन्हें भड़काया गया था या दूसरे लोगोंने उनसे ऐसा करनेको कहा था?

जी नहीं। उन्होंने कहा, यह सब "प्रेम"ने करवाया। उन्होंने ठीक इसी शब्दका प्रयोग किया था — प्रेमका। उन्होंने बताया कि "आपके प्रति हमारे प्रेमने यह सब करवाया।" फिर मेरे पूछनेपर उन्होंने बताया कि यह सब कैसे किया।

जहाँतक आपने बताया है, उससे तो सिर्फ यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने कहा कि यह सब उन्होंने किया और किसी दूसरे व्यक्तिने उनसे ऐसा करनेको नहीं कहा?

मैंने आपको तीन उदाहरण दिये हैं। एक तो उन लोगोंका जो इस बातको जानते थे, लेकिन जिनसे यह करनेको नहीं कहा गया; दूसरा उन लोगोंका जिन्होंने यह सब होते, यानी लोगोंको उत्तेजित करते तथा उपद्रव मचाते देखा, लेकिन स्वयं इस सबके मूक प्रेक्षक ही बने रहे; और तीसरा उन लोगोंका जिन्होंने खुद यह सब किया लेकिन दूसरोंको भड़काया नहीं। लोगोंको भड़कानेवाले किसी व्यक्तिका साक्ष्य या दोष-स्वीकृति मुझे प्राप्त नहीं हुई है।

भले ही ऐसे लोगोंकी दोष-स्वीकृति आपको प्राप्त न हो, लेकिन अगर आप कुछ लोगोंको अमुक काम करनेके लिए फटकारेंगे तो वे स्वभावतः सब चीजोंकी जिम्मेदारी दूसरेपर फेंकनेकी कोशिश करेंगे और कहेंगे कि "यह ठीक है कि मैंने यह किया, लेकिन मुझे किसी औरने यह सब करनेको कहा था।"

वे ऐसा कह सकते हैं, लेकिन मेरा खयाल है, मुझे उनके ऐसा कहनेका और असलियतका भेद समझ पाना चाहिए।

तो आपने यह सब सुनकर अपने ही निष्कर्ष निकाले?

हाँ, मैं इतना ही कह सकता हूँ।

और आप अब भी अपने निष्कर्षोंपर दृढ़ हैं?

जी हाँ, मैं अब भी अपने निष्कर्षोंपर दृढ़ हूँ और मैं रोज-ब-रोज जैसे-जैसे अनुभव प्राप्त करता जा रहा हूँ, वैसे-वैसे इन निष्कर्षोंमें मेरा विश्वास दृढ़से दृढ़तर होता जा रहा है।

मुझे मालूम हुआ कि खेड़ाके उपद्रवों और ट्रेन उलटनेके मामलोंके बारेमें भी आपको कुछ सूचनाएँ थीं?

जी हाँ।

क्या आप मानते हैं कि वह भी कोई संगठित आन्दोलन था?

जी नहीं, वह संगठित नहीं था, और यह सब निश्चय ही एक खास दलके लोगोंने किया था, जिनमें से कुछ लोग तो सचमुच शराबी थे। वे लोग स्टेशन गये। वहाँ वे इसी इरादेसे गये या नहीं, इसके बारेमें मेरे पास कोई साफ सबूत नहीं है, लेकिन स्टेशन पहुँचकर उन्होंने कहा कि "आओ, हम ऐसा करें।"

यह संगठित इस मानेमें नहीं था कि शहरके लोग इसके पीछे थे?

जी नहीं, इसके विपरीत, मेरा विश्वास है कि अगर शहरके लोगोंको ऐसी किसी चीजका पता चल गया होता तो उन्होंने मौकेपर पहुँचकर उन लोगोंको भगा दिया होता। हो सकता है मैं गलत होऊँ, लेकिन मेरा विचार यही है और यह विचार उन लोगोंके साक्ष्यपर आधारित है जिनके बारेमें मेरे मनमें बड़े ऊँचे खयाल हैं। मैं नहीं समझता, वे लोग मुझे जान-बूझकर धोखा देंगे।

जिन लोगोंके बारेमें आपको यह खबर दी गई कि उन्होंने गाड़ीको उलटनेमें भाग लिया, उनपर कभी मुकदमा नहीं चलाया गया?

मुझे नहीं मालूम कि उनपर या किसी और पर मुकदमा चलाया गया, क्योंकि मुझे लोगोंके नाम मालूम नहीं हैं।

तो श्री गांधी ये उपद्रव होनेके बाद आपने सविनय अवज्ञाकी हदतक अपना सत्याग्रह-प्रचार बन्द कर दिया। यह बात १८ अप्रैलकी है न?

जी हाँ।

मेरा खयाल है यह नोटिस जारी करते हुए आपने ऐसा महसूस किया कि वर्तमान परिस्थितियोंमें सार्वजनिक आन्दोलनके रूपमें सविनय अवज्ञा चलाना बुद्धिमानी-का काम नहीं है?

उन परिस्थितियोंमें उस समय यह चीज अवसरोचित नहीं थी। मैं भीड़की हिंसात्मक प्रवृत्तिको रोक नहीं पा रहा था।

तो मौजूदा परिस्थितियोंमें आपको लगा कि इस आन्दोलनको सार्वजनिक रूपमें चलाना बुद्धिमत्ताका काम नहीं है?

जी हाँ।

और तब उस परिस्थितिमें आपने यह आन्दोलन सिर्फ स्थगित कर दिया और अगर मैं भूल नहीं रहा हूँ तो यह नोटिस जारी किया कि आप फिर जुलाई महीनेमें इसे शुरू करना चाहते हैं — यही न?

जी हाँ, १ जुलाईको।

क्या उस समय आपने जो नोटिस जारी किया, वह आपके पास है?

जी हाँ, है तो, लेकिन अभी साथमें नहीं है। मगर न्यायमूर्ति श्री रैंकिनके पास है।

तो आपने सोचा कि दो महीनेमें लोग अपेक्षित स्तरतक ऊँचे उठ जायेंगे और सरकारकी सैनिक व्यवस्था भी पूरी हो जायेगी?

ऐसा तो मैं कह चुका हूँ। यही बात मैंने अपने पत्रमें लिखी है।

तो आपने उसे इस आशामें जुलाई तकके लिए स्थगित कर दिया कि इस बीच जनसाधारण सत्याग्रहके असली सिद्धान्तोंकी शिक्षा प्राप्त कर लेगा और तब सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर प्रारम्भ करनेमें कोई खतरा नहीं रहेगा?

आंशिक रूपसे यह कथन सही है। मैंने जो महसूस किया वह यह था कि अगर मैं इस चीजको दो महीनेके लिए स्थगित कर दूँ तो मैं इसकी जो गलत व्याख्या की गई है और इसे जो गलत रूपमें समझा गया है उसपर काबू पा लूँगा। और मैं जनता तथा सरकारके सामने स्थितिको जितना स्पष्ट कर पाया हूँ या जितना स्पष्ट मैं तब कर सकता था उससे अधिक स्पष्ट कर सकूँगा।

अभी एक मिनटमें मैं सरकारकी बात भी लूँगा। पहले मैं यह समझना चाहता हूँ। जब आपने इसे स्थगित किया तो आपका खयाल था कि लोगोंने आपके प्रचार या मतको पूरी तरह नहीं समझा है और वे तबतक सत्याग्रह तथा निश्चय ही उसके सविनय अवज्ञावाले पक्षपर, जिस तरह आप चाहते थे सचमुच उस तरह, अमल करने योग्य नहीं बन पाये हैं, और आप मानते थे कि दो महीनेमें वे इसके योग्य बन जायेंगे — यही न?

जी नहीं, मैं यह नहीं मानता था कि वे दो महीनेमें इसके योग्य बन जायेंगे।

इस सम्बन्धमें उस समय आपने ठीक-ठीक किन शब्दोंमें अपना विचार व्यक्त किया, मैं जानना चाहता हूँ।

(पढ़ते हैं) "मुझे खेद है कि जब मैंने सार्वजनिक आन्दोलन आरम्भ किया उस समय मैंने अमांगलिक शक्तियोंकी ताकतको कम कूता। इसलिए अब मुझे रुककर यह विचार करना है कि परिस्थितिका सामना भली-भाँति कैसे किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करते हुए मैं यह कहना चाहता हूँ कि अहमदाबाद और वीरमगाँवकी शोकजनक घटनाओंकी सावधानीपूर्वक जाँच करनेसे मुझे यह विश्वास हो गया है कि भीड़ द्वारा की गई हिंसासे सत्याग्रहका कोई सम्बन्ध नहीं था। उपद्रवी भीड़के झंडेके नीचे बहुतसे लोग ज्यादातर इसलिए इकट्ठे हो गए कि अनसूयाबाई और मेरे ऊपर उनका अत्यन्त प्रेम है। यदि सरकार अदूरदर्शितापूर्वक दिल्लीमें प्रवेश करनेसे रोककर मुझे अपनी आज्ञाओं-का उल्लंघन करनेपर बाध्य न करती तो मुझे पूरा विश्वास है कि अहमदाबाद और वीरमगाँवमें गत सप्ताह जो भयंकर कांड हुए वे न होते। दूसरे शब्दोंमें इन उपद्रवोंका कारण सत्याग्रह नहीं है। इसके विपरीत सत्याग्रह तो पहले ही से मौजूद उपद्रवी तत्त्वोंको नियन्त्रित करनेमें — यह नियन्त्रण कितना भी कम क्यों न हो — सहायक ही हुआ है। जहाँतक पंजाबकी घटनाओंका सम्बन्ध है यह स्वीकार किया गया है कि सत्याग्रह-आन्दोलनसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

"दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रहकी लड़ाईके दौरान कई हजार गिरमिटिया भारतीयोंने हड़ताल कर दी थी।[1] वह हड़ताल सत्याग्रहसे प्रेरित थी, इसलिए उसका स्वरूप बिलकुल ऐच्छिक और शान्तिपूर्ण रहा। जब यह हड़ताल जारी थी उसी समय यूरोपीय खान मजदूरों, रेलवे कर्मचारियों आदिने भी हड़ताल कर दी।"

१. यह हड़ताल अक्तूबर १९१३ में हुई थी। देखिए खण्ड १२।

आप उस अंशको लीजिए जिसमें आपने इसे दो महीनेतक स्थगित रखनेके कारणकी चर्चा की है।

मैं उसीपर आ रहा हूँ।

"उस समय मुझसे अनुरोध किया गया था कि मैं उनके साथ हो जाऊँ। एक सत्याग्रहीकी भाँति मुझे ऐसा न करनेका निर्णय करनेमें एक क्षणकी भी देर न लगी। मैं इतना ही करके चुप नहीं रह गया, परन्तु इस डरसे कि हमारी हड़ताल भी यूरोपीयोंकी उन हड़तालोंकी श्रेणीकी ही न मान ली जाये, जिनमें कि हिंसा और शस्त्र-प्रयोगको बहुत प्रमुख स्थान प्राप्त था, हम लोगोंकी हड़ताल स्थगित कर दी गई। उस समयसे दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंने सत्याग्रहको सम्मानास्पद और सच्चा आन्दोलन, जनरल स्मट्सके शब्दोंमें 'वैध आन्दोलन', मान लिया। इस नाजुक समयमें मैं उससे कम कोई चीज नहीं कर सकता। यदि मैं अपने किसी कार्यसे सत्याग्रह आन्दोलनका उपयोग हिंसाकी आग और भड़काने तथा अंग्रेज और भारतवासियोंके सम्बन्धोंको कटु बनानेके लिए होने दूँ तो मैं सत्याग्रहके प्रति सच्चा नहीं होऊँगा। इसलिए इस समय हमारे लिए सत्याग्रहका अर्थ यही होना चाहिए कि हम सत्याग्रही होनेके नाते शान्ति स्थापित करने और गैरकानूनी कामोंको रोकनेके लिए सब तरह और अविश्रान्त भावसे अधिकारियोंको सहायता दें। यदि हम जनतासे सत्याग्रहके बुनियादी सिद्धान्तोंपर अमल करानेमें समर्थ हुए तो आज जो दुःखद घटनाएँ हमारी आँखोंके सामने हो रही हैं, उनका कुछ सदुपयोग हो जायेगा।

"सत्याग्रह तो सहस्रों शाखाओंवाले बरगदके वृक्षके समान है। सविनय अवज्ञा तो उसकी एक शाखा मात्र है। सत्य और अहिंसा इस वृक्षका तना है जिसमें से सब शाखाएँ फूटती हैं। कटु अनुभवसे हमने देखा है कि अराजकताके वातावरणमें सविनय अवज्ञाको तो तुरन्त अपना लिया जाता है किन्तु सत्य और अहिंसाके प्रति कुछ भी सम्मान नहीं दिखाया जाता जब कि सच्ची सविनय अवज्ञा तो सत्य और अहिंसाकी नींव-पर ही खड़ी हो सकती है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य बहुत विकट है। परन्तु हम इससे मुख नहीं मोड़ेंगे। हमें निर्भयतासे सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंका प्रचार करना चाहिए तब और केवल तभी हम लोग व्यापक रूपसे सार्वजनिक सत्याग्रह आन्दोलन कर सकेंगे। रौलट कानूनके प्रति मेरा भाव पहले जैसा ही अपरिवर्तित है। वास्तवमें मैं अन्य बहुतसे कारणोंमें वर्तमान अशान्तिका एक कारण रौलट कानूनको भी मानता हूँ, परन्तु इस उत्तेजनापूर्ण वातावरणमें मैं उन कारणोंपर सविस्तार विचार नहीं करूँगा। इस पत्रका प्रधान और एकमात्र उद्देश्य सभी सत्याग्रहियोंको यह सलाह देना है कि वे कुछ समयके लिए सविनय अवज्ञा स्थगित कर दें, सुव्यवस्था स्थापित करनेमें सरकारके साथ सक्रिय सहयोग करें तथा अपने वचन और आचरणसे [सत्याग्रहके] उपर्युक्त बुनियादी सिद्धान्तोंमें जनताकी आस्था पैदा करें।"[1]

"बहुतसे लोग मुझसे पूछते हैं कि 'सत्याग्रह फिर कब शुरू होगा?' इसके दो उत्तर हैं। एक तो यह कि सत्याग्रह बन्द तो हुआ ही नहीं है। जबतक हम सत्यका

१. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २५१-५२।

पालन करते हैं और दूसरोंको वैसा ही करनेको कहते हैं, तबतक सत्याग्रह कभी बन्द हुआ नहीं कहलायेगा। यदि सभी सत्यका पालन करें और किसीके जान-मालका नुकसान करनेसे परहेज रखें तो हम जो माँगते हैं वह तुरन्त मिल जाये। परन्तु जब सभी ऐसा करनेको तैयार नहीं हैं और जब सत्याग्रही लोग मुट्ठी-भर ही हैं, तब हमें सत्याग्रहके सिद्धान्तसे फलित हो सकनेवाले दूसरे उपाय ढूँढ़ने पड़ते हैं। ऐसा एक उपाय कानूनकी "सविनय अवज्ञा" है। मैंने यह पहले ही समझा दिया है कि हमने थोड़े समयके लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन क्यों स्थगित किया है। जबतक हम जानते हैं कि सविनय अवज्ञा आन्दोलनसे हिंसा और दंगे छिड़ जानेकी बहुत सम्भावना है, बल्कि लगभग निश्चय है, तबतक कानूनका पालन न करना सविनय अवज्ञा नहीं कहला सकता। बल्कि ऐसी अवज्ञा तो विचारहीन, विनयहीन और सत्यरहित कहलायेगी। सत्याग्रही कानूनकी ऐसी अवज्ञा कभी नहीं करेगा। इतनेपर भी सत्याग्रही अपना कर्त्तव्यपालन पूरी तरह करने लगें, तो वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन जल्दी आरम्भ करनेमें सहायक हो सकते हैं। सत्याग्रहियोंके प्रति मेरा विश्वास मुझे यह माननेको प्रेरित करता है कि हम लगभग दो महीनेमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर आरम्भ करनेके योग्य हो जायेंगे। अर्थात् यदि इस बीच रौलट कानून रद न हुआ, तो हम जुलाईके आरम्भमें कानूनकी सविनय अवज्ञा शुरू कर देंगे। फिलहाल यह मीयाद तय करनेमें मैं नीचे लिखे कारणोंसे प्रेरित हुआ हूँ: एक तो यह कि इस अवधिमें हम अपना यह सन्देश देश-भरमें फैला चुकेंगे कि जबतक सविनय अवज्ञा स्थगित है तबतक कोई भी मनुष्य सत्याग्रहकी आड़में या सत्याग्रहकी सहायता करनेके बहाने दंगा या मारकाट न करे। आशा की जाती है कि जब लोगोंको यह विश्वास हो जायेगा कि देशका सच्चा हित-साधन इस सन्देशका पालन करनेसे ही हो सकेगा, तब वे शान्ति रखेंगे। इस प्रकार स्वेच्छापूर्वक रखी गई शान्ति भारतकी प्रगतिमें बहुत बड़ा हाथ बँटायेगी। परन्तु यह हो सकता है कि भारत इस हदतक सत्याग्रहका रहस्य न समझ सके। वैसी दशामें हिंसाको फूट निकलनेसे रोकनेकी एक और आशा है। हाँ, जिस शर्तपर यह आशा आधारित है, वह हमारे लिए बहुत ही अपमानजनक है। फिर भी इस शर्तसे भी सत्याग्रही लाभ उठा सकते हैं। इतना ही नहीं, एसी परिस्थितियोंमें सत्याग्रह शुरू करना सत्याग्रहियोंका फर्ज हो जाता है। इस समय जो सैनिक-व्यवस्था कायम हो गई है, उससे स्वाभाविक रूपमें ही हिंसाका फूट निकलना, जो कि देशके लिए बहुत हानिकारक है, असम्भव हो गया है। हाल ही में फूट पड़नेवाले दंगे इतने अचानक हुए थे कि सरकार तुरन्त उनसे निपट सकनेके लिए तैयार नहीं थी। परन्तु इन दो महीनोंमें सरकारकी तैयारी पूरी हो जानेकी आशा है। इसलिए सार्वजनिक शान्ति-भंगका भय और सत्याग्रहका जान-बूझकर या अनजानेमें दुरुपयोग करना लगभग असम्भव हो जायेगा। ऐसी परिस्थितिमें सत्याग्रही दंगोंके किसी डरके बिना सविनय अवज्ञा कर सकते हैं और ऐसा करके यह दिखा सकते ह कि हिंसासे नहीं बल्कि केवल सत्याग्रहसे ही न्याय प्राप्त किया जा सकता है।"[१]

१. देखिए खण्ड १५, पृष्ठ २७४–७५।

तो आपको यह आशा थी कि लोग दो महीनेमें असली सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करनेके योग्य बन जायेंगे। क्या आपकी यह आशा फलीभूत हो पाई है?

खुद मैं तो यह समझता हूँ कि यह आशा फलीभूत हो जाती अगर मैंने उस समय सत्याग्रह फिर आरम्भ कर दिया होता। यह बिलकुल दुस्साहसपूर्ण प्रयोग मैंने १७ अक्तूबरको किया। वास्तवमें यह आशा फलीभूत नहीं हो पाई है। अगर सभी लोग सत्याग्रहके सिद्धान्तपर अमल करने योग्य बन जायें — क्षमा कीजिएगा, यह बात मैंने अपने पत्रमें नहीं कही है। मैंने जो कहा है वह यह कि हमें लोगोंकी अप्रत्यक्ष सहायता प्राप्त होगी; वे दूसरोंको हिंसा करनेको उत्तेजित नहीं करेंगे और खुद भी हिंसा नहीं करेंगे।

अगर मैंने आपकी बातें ठीकसे सुनीं तो आपने यही तो कहा था कि "दो महीनेमें हम सत्याग्रह आरम्भ करनेके योग्य हो जायेंगे।"

यहाँ मैंने उस अर्थके बारेमें बताया है जिस अर्थमें 'योग्य' शब्दका प्रयोग किया गया है। योग्य होंगे, क्योंकि तबतक लोगोंको सत्याग्रहका सन्देश मिल चुका होगा और वे आन्दोलनमें भाग तो नहीं लेंगे लेकिन उससे सहानुभूति रखेंगे और साथ-साथ आन्दोलन भी चलता रहेगा।

प्रथम तो आपने यह बताया कि लोगोंने आपके मतकी अन्तःप्रकृतिका अनुभव नहीं किया, और इसलिए सविनय अवज्ञामें हिंसा आगई और इसलिए आप इस निष्कर्षपर पहुँचे कि देशके हितमें — अमन और कानूनके हकमें इसे स्थगित कर देना बहुत जरूरी है, यही न?

इस सम्बन्धमें सवाल किये गये हैं कि इसे फिर कब प्रारम्भ किया जायेगा। उत्तरमें आपने कहा, आप १ जुलाईको ऐसा कर पायेंगे। कारण बताते हुए आप कहते हैं "इस अवधिमें लोग इस योग्य हो चुकेंगे।"

सत्याग्रहका सन्देश पाकर।

आपका मतलब यह था कि तबतक लोग सत्याग्रहकी वास्तविक अंतःप्रकृतिको अनुभव कर लेंगे और इस प्रकार वे सविनय अवज्ञाका आचरण कर सकेंगे?

मैं लोगोंसे सत्याग्रहकी अन्तःप्रकृतिको अनुभव करनेकी तो अपेक्षा नहीं करूँगा, लेकिन यह अनुभव करनेकी अपेक्षा अवश्य करूँगा कि फिर आन्दोलनमें शामिल होना या कमसे-कम आन्दोलनकी प्रगतिमें व्यवधान न डालना भी उनके लिए ज्यादा अच्छा है।

लेकिन यह तो इस कथन कि "मैं लोगोंके इस योग्य होनेकी आशा करता हूँ आदि"से बिलकुल भिन्न बात है?

यहाँ शब्द 'योग्य'से ही इस अर्थका बोध होता है, और मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि इस शब्दका जो अर्थ मैं लगाता हूँ उसे आप स्वीकार करें। मेरा तो खयाल है आपको यहाँ यह अर्थ मिल जायेगा; अगर नहीं, तो यही इस शब्दकी व्याख्या है।

इसके बाद आप अपनी यह आशंका व्यक्त करते हैं कि हो सकता है, जैसा अभी आपने स्पष्ट किया है, लोग उस ढंगसे उसके योग्य न हो पायें, लेकिन उस हालतमें भी सविनय अवज्ञा पुनः प्रारम्भ करनेसे कोई हानि नहीं होगी क्योंकि तबतक सैन्य-व्यवस्था इतनी अच्छी तरह सम्पन्न कर दी जायेगी कि हर प्रकारकी हिंसात्मक कार्रवाईका सफलतापूर्वक सामना किया जा सकेगा; और इसलिए जैसा कि आप चाहते हैं उस ढंगसे लोग सविनय अवज्ञाके योग्य न भी हो पाये हों तब भी आप इसे पुनः प्रारम्भ कर देनेकी वकालत करते हैं — यही न?

जी हाँ, बेशक।

लेकिन जरा ध्यान दीजिए कि उसका मतलब क्या होता है। उस हालतमें तो सिर्फ इसलिए कि कुछ लोग कतिपय कानूनोंको तोड़नेका आनन्द उठायें और किसी प्रकारकी हिंसा न होने पाये, अतः देशके सभी हिस्सोंमें या कमसे-कम कुछ हिस्सोंमें सेनाको तैयार करना पड़ेगा? क्या उसका मतलब यही नहीं है?

मतलब जो लगा लें, लेकिन इस पत्रकी ऐसी व्याख्या करनेकी कोई जरूरत नहीं दिखाई देती है। मेरा वैसा कोई मतलब भी नहीं था। मैं तो सिर्फ यह कहता हूँ कि मैं सैन्य-व्यवस्था होते देख रहा हूँ। और उस चीजका लाभ उठानेका मुझे हर अधिकार प्राप्त है।

आप जरा पत्रको दुबारा पढ़नेकी कृपा करेंगे। उसमें आप दो कारण देते हैं — दो परिस्थितियाँ जिनके आधारपर आप फिर १ जुलाईको आन्दोलन प्रारम्भ करनेकी आशा करते हैं। एक तो आपकी यह आशा है कि लोग इसके योग्य हो जायेंगे और इस प्रकार हिंसाकी सम्भावना नहीं रह जायेगी; और दूसरे यह कि अगर वे इसके लिए इतने योग्य न भी हो पायें और हिंसा करनेको पहलेकी तरह ही तत्पर रहें तब भी देशमें जो सैन्य व्यवस्था की जा रही है वह दो महीनेमें इतनी पूर्ण हो जायेगी कि अगर इस ढंगसे सत्याग्रहके योग्य न हो पाये लोगोंने किसी तरह हिंसाका सहारा लिया भी तो उससे अमन और कानूनको कोई बड़ी हानि नहीं हो पायेगी, क्योंकि उनपर अंकुश रखनेके लिए सैन्य-व्यवस्था तो रहेगी ही?

लेकिन यह तो इस बातसे बिलकुल भिन्न है कि मैंने सैन्य-व्यवस्थाको पूरी तरह दुरुस्त रखनेकी कामना की।

लेकिन आपके कहनेका मतलब तो यही है। मैंने यह तो नहीं कहा कि आपने ऐसी कामना की?

तब आपका कहना ठीक है।

चाहे आप इसकी कामना करें या न करें, लेकिन वास्तवमें आप कहते हैं कि दो महीनेमें सैन्य-व्यवस्था इतनी पूरी हो जायेगी कि तब आप लोगोंके बिलकुल उसके योग्य न हो पानेपर भी, बिना किसी अव्यवस्थाकी आशंकाके, सविनय अवज्ञा पुनः प्रारम्भ कर सकेंगे, क्योंकि उस हालतमें किसी बड़ी क्षति या हिंसाकी सम्भावना न होगी — इसलिए कि उसका सामना करनेके लिए सेना तैयार रहेगी।

मेरा मतलब यही था।

मैं जो-कुछ कह रहा हूँ, आप उसपर तनिक ध्यान दें और देखें कि उसका क्या मतलब है। उसका मतलब यह मान लेना है कि अगर लोग दो महीनेके भीतर इसके लिए इतने अधिक योग्य नहीं हो पाये तो सरकार देशके विभिन्न हिस्सोंमें इस प्रकारकी सैन्य-व्यवस्था कर रखे ताकि जिन लोगोंने प्रतिज्ञा ले रखी है, उन थोड़ेसे लोगोंको और थोड़े-से लोगोंको ही — कानून तोड़नेका कुछ आनन्द प्राप्त हो सके। इससे आगे इसका मतलब होता है महज इस खयालसे कि प्रतिज्ञा लेनेवाले ये थोड़े-से लोग समाजको कोई गम्भीर क्षति पहुँचाये बिना कुछ कानूनोंको तोड़ सकें, काफी खर्च उठाकर भी इस तरहसे जगह-जगहपर सैनिक टुकड़ियाँ रखी जायें और इस सबका खर्च उस निरीह जनसाधारणको भरना पड़े जिसका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका परिणाम तो यही होगा?

यह परिणाम तभी निकलेगा जब सत्याग्रही होनेका दावा करनेवाला आदमी सचमुच बुद्धि-विवेकको नमस्कार कर ले। अन्यथा यह परिणाम नहीं निकल सकता।

आपने तो खुद यह आशंका व्यक्त की है कि सम्भव है दो महीनेमें लोग इतने योग्य न हो पायें कि वे हिंसासे अलग रहें। लेकिन तब भी १ जुलाईको अनाक्रामक सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर दी जायेगी या कर दी जानी चाहिए, क्योंकि अगर लोगोंमें हिंसाकी प्रवृत्ति होगी भी तो उन्हें उस प्रभावकारी सैन्य-व्यवस्थाके बलपर हिंसा करनेसे रोक दिया जायेगा?

बिलकुल सही है। लेकिन यहाँ तो मैं एक ऐसी परिस्थितिका लाभ उठा रहा हूँ जो, मैं चाहे कुछ करूँ, मेरे सामने स्वयं ही प्रस्तुत हो रही है। लेकिन मैं समझता हूँ, अगर मैं स्थितिको स्पष्ट किये दे रहा हूँ तो, इसके बाद इस सम्बन्धमें कोई सवाल पूछनेकी जरूरत नहीं रह जायेगी। सत्याग्रहीकी हैसियतसे मैं कभी नहीं कहूँगा, मैं ऐसा कोई काम करनेका अपराध नहीं करूँगा, कि सिर्फ इसलिए कि मैं मुट्ठी-भर लोगोंके साथ कानूनोंको तोड़ता रहूँ, सरकारको देशपर सैन्य-बल थोपना पड़े। लेकिन तब मैं यह समझूँगा कि इस सिद्धान्तको ग्रहण करनेके लिए अभी वातावरण ठीकसे तैयार नहीं हो पाया है और इसलिए मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए।

तो मैं मान लेता हूँ कि आपने जो-कुछ कहा उसमें इस हदतक सुधार कर दिया?

जी हाँ, सुधार तो कर दिया है। मैंने १ जुलाईको आन्दोलन फिरसे प्रारम्भ करनेका विचार किया था लेकिन शुरू नहीं किया। और इस बातसे मेरे साथी कार्य-कर्त्ताओंको, जिनका इस २ मईके पत्रमें भी हाथ था, बहुत निराशा भी हुई। मैंने आन्दोलन इसलिए शुरू नहीं किया क्योंकि गवर्नर जनरल महोदय तथा बम्बईके गवर्नर महोदयको ऐसा लगा कि मेरे पास पर्याप्त आँकड़े नहीं हैं और यह बात उन्होंने मुझसे इस प्रकार कही : "क्या आप भारतको सैन्य-शिविर बना देना चाहते हैं?" मैंने कहा, "नहीं।" "अगर नहीं तो फिर आप सत्याग्रह स्थगित क्यों नहीं कर देते?" इसपर मैंने इसे स्थगित कर दिया।

इससे प्रकट होता है कि आपसे जो आवेदन-निवेदन किया गया उसके फल-स्वरूप आपने इस घोषणापत्रमें जो स्थिति अपनाई थी उसमें परिवर्तन कर दिया?

जी हाँ, बेशक। मैंने उस समय सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

तो अब आप फिर सविनय अवज्ञा तब प्रारम्भ करेंगे जब आपको यह विश्वास हो जायेगा कि लोग इसके योग्य हो गये हैं, कि इसके परिणामस्वरूप हिंसाका खतरा ही नहीं रह गया है?

या फिर तब जब मेरे सामने स्वयंमेव कोई ऐसी परिस्थिति आ जायेगी जिसके कारण इस सिद्धान्तका प्रचार सम्पन्न हो चुका हो।

लेकिन अगर लोग इसके योग्य नहीं हो पाते और अगर हिंसाको रोकनेका एकमात्र उपाय सैनिक संगठन ही रह जाता है तब तो आप उसे फिर प्रारम्भ नहीं करेंगे?

हाँ, अगर सैनिक संगठन उसी उद्देश्यसे किया गया हो तो नहीं करूँगा।

अहमदाबादकी १० और ११ तारीखकी घटनाओंके बारेमें आप कहते हैं कि भीड़का आचरण निस्सन्देह अनुचित था और उसका किसी तरह बचाव नहीं किया जा सकता, लेकिन साथ ही सरकारके बारेमें भी आप कहते हैं कि उसने वैसा निर्णय कर अक्षम्य अपराध किया। क्या आप सरकारकी उन कार्रवाइयोंके बारेमें स्पष्ट रूपसे बता सकेंगे जिन्हें आप इस श्रेणीमें रखते हैं?

मैंने कहा कि सरकारने मेरी गिरफ्तारीका निर्णय करके एक ऐसी भूल की जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता। मेरा मतलब उसीसे है। मैं इस स्थानपर सरकार द्वारा की गई किसी भूलकी बात नहीं कर रहा हूँ। मैंने सुना है कि उन दो व्यक्तियोंने — नाम याद नहीं आ रहे हैं — कुछ ऐसा आचरण किया जिससे भीड़में उत्तेजना फैली; लेकिन मैंने यह नहीं माना कि इसी कारण भीड़ द्वारा कानूनको अपने हाथोंमें ले लेना कुछ उचित सिद्ध हो जाता है।

तो अहमदाबादमें सरकारने जो कदम उठाये उनमें आप निर्णयकी कोई भूल नहीं मानते?

मैं इतना ज्यादा तो नहीं कह पाऊँगा। मैं यह कहनेको तैयार नहीं हूँ कि यहाँ कोई निर्णयकी भूल हुई ही नहीं। दरअसल मैंने इस सम्बन्धमें सच्चाई जाननेकी कभी चिन्ता ही नहीं की। जब मैंने एक बार अपने मनमें तय कर लिया कि लोगोंके एक भी अनुचित कार्यको क्षम्य नहीं मानना है तो फिर मुझे दोनोंकी गलतियोंको तुलापर चढ़ाकर तोलनेकी जरूरत ही नहीं रह गई थी। मैं यह कहनेको तैयार नहीं हूँ कि यहाँ सरकारने निर्णयकी कोई भूल की या नहीं।

मुझे मालूम हुआ है, आपको मुआवजेके तरीके और सम्पत्तिको क्षति पहुँचानेके कारण हर्जाना वसूल करनेके ढंगके खिलाफ शिकायत है?

जी हाँ, जहाँतक मजदूरोंसे वसूल करनेका सम्बन्ध है।

क्या आपका यह भी कहना है कि यह रकम कभी सितम्बर या अक्तूबर महीनेमें मुहर्रमके समय वसूल की गई?

जी हाँ।

क्या यह सत्य है कि उस समय कामपर लगे जिन मजदूरोंसे उनकी आठ-आठ दिनोंकी मजदूरी जबरदस्ती वसूल की गई, उनमें से बहुत सारे लोग ऐसे भी थे जो अप्रैल महीनेमें अहमदाबादमें थे ही नहीं?

जी हाँ, ऐसे बिलकुल नये लोगोंसे रकम वसूल की गई जो गाँवोंसे बादमें यहाँ आये थे और जो अहमदाबाद नगरके निवासी नहीं थे, और जो लोग जब ये घटनाएँ घटीं उन दिनों अहमदाबाद नगरमें नहीं थे और जिन्होंने अहमदाबादके बाहरसे आकर नया-नया ही मिलोंमें काम करना शुरू किया था।

और आप इस चीजको बहुत गलत मानते हैं कि उस समय हुई घटनाओंके सिलसिलेमें इन लोगोंकी मजदूरी छीनी जाये?

जी हाँ, और इतना ही नहीं, मैं साथ ही यह भी कहना चाहता हूँ और मैं यह बात आज भी सिद्ध कर सकता हूँ कि जब इस तरहका आन्दोलन चल रहा था, उस समय काफी लोग अहमदाबादसे बाहर चले गये थे और उन्होंने उसमें कोई हिस्सा नहीं लिया था। लेकिन उन्हें भी यह मुआवजा और हर्जाना देनेको मजबूर किया गया है।

इसके सम्बन्धमें तो यह कहा जा सकता है कि इन अनुचित कार्रवाइयोंकी जिम्मेदारी सामूहिक रूपसे अहमदाबादमें रहनेवाले मिलसे सम्बन्धित लोगोंपर है, भले ही उनमें से कुछ लोग व्यक्तिगत रूपसे इसके लिए जिम्मेदार नहीं रहे हैं, लेकिन बादमें आनेवाले लोगोंके सम्बन्धमें तो किसी प्रकारकी सफाई देनेकी गुंजाइश ही नहीं है। यही है न आपकी शिकायत? मिल-मजदूरोंके सम्बन्धमें आपकी दूसरी शिकायत क्या है?

दूसरी शिकायत यह है कि वसूल करनेका तरीका बहुत ही बुरा था और जो रकम वसूल की गई वह भी बहुत भारी थी। मेरा खयाल है, यह जुर्माना प्रति व्यक्तिके हिसाबसे लगाया गया था। मिल-मजदूरोंके लिए सप्ताह-भरकी मजदूरी दे पाना बहुत कठिन था। इसी तरहसे इसका हिसाब लगाया गया था बल्कि मुझे तो उसमें ऐसा-कुछ दिखाई ही नहीं दिया कि हिसाब लगाया भी गया था।

आपकी बात मैं समझ नहीं पा रहा हूँ?

मैंने कहा, हर व्यक्तिसे उसकी सप्ताह-भरकी मजदूरी वसूल की गई। अब सुधारकर कह रहा हूँ कि प्रथम तो इसमें रकम नहीं निर्धारित की गई। यह अहमदाबाद नगरकी सारी आबादीको देखकर प्रति व्यक्तिके हिसाबसे निर्धारित की गई थी। यह बात बहुत बुरी थी कि एक मजदूरको भी व्यक्तिगत रूपसे उतना ही देना पड़े जितना कि स्वयं मिल-मालिकको। क्या अब मेरी बात स्पष्ट हुई?

अगर आपकी बात मैंने ठीक समझी है तो आप इस रकमके प्रभाव-क्षेत्रकी चर्चा कर रहे हैं, यानी कि मजदूरों और अपेक्षाकृत धनिक-वर्गके लोगोंको एक-सी

रकमें देनी पड़ीं? क्या सचमुच बात ऐसी ही है? और इसके अतिरिक्त आयकर देनेवाले लोगोंसे वसूली हुई है?

जी हाँ, लेकिन मैं यह बात सुधार करके कह रहा हूँ। पहले तो मेरे मनपर जो छाप पड़ी वह वही थी। मैं इस विषयका अध्ययन करके इसपर अपनी राय देनेको तैयार हूँ, लेकिन समितिके सामने मैं इतना ही निवेदन करना चाहता था कि मजदूरोंपर जो जुर्माना लगाया गया वह बहुत भारी था और जैसा कि आपने बताया है, यह जुर्माना वहाँ बहुत-से ऐसे लोगोंसे ऐंठा गया है जो उस घटनाके अवसरपर वहाँ थे ही नहीं और जुर्माना वसूल करनेके लिए जो समय चुना गया वह बहुत ही अनुचित था। और यहाँ मैं यह कहना चाहता हूँ कि ऐसा समय चुननेके लिए अधिकारीगण दोषी नहीं हैं। उन्होंने यह समय कुछ इसलिए नहीं चुना कि यह मुहर्रमका अवसर था; यह तो एक संयोगकी बात थी। उनके लिए परिवर्तन करनेका अवसर नहीं रह गया था, लेकिन जैसा भी था, मजदूरोंके लिए यह समझ पाना बहुत मुश्किल था कि यह समय जान-बूझकर नहीं चुना गया है। इस प्रकार जो समय चुना गया वह गलत था और मजदूरोंसे उनकी हफ्ते-भरकी मजदूरी लेना ठीक चीज नहीं थी।

क्या यह उनके लिए बहुत भारी था?

जी हाँ, मुझे तो ऐसा ही लगा।

क्या आपको, जिस तरह छूट दी गई, उसपर भी कोई आपत्ति है?

छूटके सम्बन्धमें तो मैं कुछ नहीं कहना चाहूँगा। इस सम्बन्धमें अधिकारियोंको अपनी विवेक-बुद्धिका प्रयोग करनेका जो अधिकार प्राप्त है, उसपर मैं कोई आपत्ति करनेको तैयार नहीं हूँ। मैं यह भी नहीं कह सकता कि उसमें मुझे अन्यायके बहुत स्पष्ट उदाहरण देखनेको नहीं मिले हैं। साथ ही अगर मैं इस बातकी ताईद न करूँ कि अहमदाबादके मौजूदा कलक्टरने, उनके सामने जो भी बात आई है, उसे किस तरह सुन्दरसे-सुन्दर ढंगसे निपटाया है तो यह शायद उचित नहीं होगा। उनसे जहाँ-कहीं निर्णयकी कोई भूल हुई है और मुझे वे चीजें भूल-जैसी लगी हैं, वहाँ अंशतः उसका स्पष्टीकरण कर दिया गया है, और इसलिए मजदूरोंपर लगाये गये इस करके बारेमें भी शिकायत करना मेरे लिए ठीक चीज नहीं है। लेकिन ऐसा जो हो गया वह मजदूरोंका दुर्भाग्य ही था। किन्तु यदि उसमें दोष-जैसी कोई चीज थी तो कलक्टर महोदयने अत्यन्त नम्रता और भद्रताके साथ यह दोष अपने ऊपर ले लिया। ये हैं उनके शब्द: "यह मेरा काम है; अतः मुझे ही इसकी सारी जिम्मेदारी भी लेनी चाहिए।" लेकिन एक नागरिककी हैसियतसे मैं यहाँ यह कहनेको मौजूद हूँ कि बहुत ही जिम्मेदार लोगोंसे निश्चित ढंगकी जानकारी प्राप्त करनेके बाद उन्होंने सोचा कि सिर्फ इसी तरीकेसे वे मजदूरोंसे वसूली कर सकते हैं और उनसे इतनी रकम वसूल करना ठीक होगा।

माननीय पंडित जगतनारायणके प्रश्नोंके उत्तरमें:

आपसे रौलट अधिनियमके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न पूछे गये हैं। क्या मैं भी इस विषयमें एक-दो प्रश्न पूछ सकता हूँ? आपने कहा है कि सरकारके अराजकता

फैलानेवाले अपराधोंको दबानेपर आपको कोई आपत्ति नहीं है। ऐसा करना सरकारका कर्त्तव्य है। फिर आपसे पूछा गया कि रौलट विधेयकोंके प्रति आपको क्या आपत्ति है और आपने उसके कुछ कारण बताये हैं। मैं अब यह जानना चाहूँगा कि क्या रौलट विधेयक सं० २ में किसी नये अपराधकी परिभाषा की ही नहीं गई है और वह एक विधि-मात्र है?

रौलट विधेयक संख्या १से एक नये अपराधकी परिभाषा होती थी। संख्या २का सम्बन्ध अराजकतावादी अपराधोंसे है। मैंने लोगोंको ऐसा ही कहते सुना। दरअसल इन अराजकतावादी अपराधोंके लिए देशके साधारण कानूनके अधीन भी लोगोंको दण्डित किया जा सकता था और किया जाता था। यह तो केवल युद्धके ३ वर्षोंमें ही हुआ कि इन अपराधोंके लिए दण्ड देनेके लिए एक विशेष कानून — यानी भारत-रक्षा कानून — पास किया गया . . .

और आपको लगा कि युद्धकालमें यद्यपि सारे देशने वफादारी दिखाई फिर भी यह कानून पास किया गया। युद्ध समाप्त हो जानेके बाद सामान्य कालमें भी यह विधि अपनाई जा सकती थी। तो कुल मिलाकर यही समझना चाहिए कि आपको आपत्ति इस बातपर नहीं थी कि अराजकतावादी अपराधोंके लिए सजा क्यों दी जाती है बल्कि इस बातपर थी कि इस कानूनमें न्यायके उन बुनियादी सिद्धान्तोंको तिलांजलि दे दी गई थी जिनका अनुगमन सारे सभ्य देश करते हैं।

दूसरे मुद्देके सम्बन्धमें आपने समितिके सामने कहा है, और आपके भाषणोंसे मुझे भी यही मालूम होता है कि पिछले ८–१० वर्षोंमें भी सरकारके पास सुरक्षाकी ऐसी ही व्यवस्थाएँ रही हैं।

अब विधेयक संख्या २ के बारेमें आपका क्या कहना है?

रौलट विधेयकमें की गई सुरक्षात्मक व्यवस्थाओंको मैंने निश्चय ही, कोई छल-पूर्ण ही नहीं, बल्कि खतरनाक फन्दे माना है। रौलट अधिनियममें जो सुरक्षात्मक व्यवस्थाएँ की गई हैं उनके बारेमें मेरे मनपर यही छाप पड़ी है। मैं सचमुच ऐसा महसूस करता हूँ कि यह कार्यपालिकाको और भी अधिक जिम्मेदार बना देता है, क्योंकि वह इस भ्रमपूर्ण विश्वासको लेकर चलता है कि वह इस [विधेयकके जरिय] प्रजाको सुरक्षा प्रदान कर रही है जब कि उसमें दरअसल ऐसी कोई सुरक्षात्मक व्यवस्था है ही नहीं। यही मेरा विचार है।

चूँकि आप सत्याग्रह आन्दोलनके मूल स्रोत हैं, इसलिए मैं आपसे एक-दो सवाल और पूछूँगा। मैं सत्याग्रह आन्दोलनके सिर्फ राजनीतिक पक्षको ही लूँगा। आप यह तो मानेंगे कि हर राजनीतिक आन्दोलनकी सफलता उस आन्दोलनके अनुगामियोंकी संख्यापर निर्भर है?

जी हाँ, हर राजनीतिक आन्दोलन की।

मैं यहाँ केवल सत्याग्रह आन्दोलनके राजनीतिक पक्षकी बात कर रहा हूँ।

जी हाँ, उसकी सफलता तो उसके अनुगामियोंकी संख्यापर जरूर निर्भर करती है।

तो सत्याग्रह आन्दोलनके जिस हिस्सेका सम्बन्ध राजनीतिक मामलोंसे है, उस हिस्सेकी हदतक स्वाभाविक विचार तो यही होगा कि जहाँतक हो सके, उसके अधिकसे-अधिक अनुगामी बनाये जायें?

जी हाँ।

और काफी बड़ी संख्यामें अनुगामी तैयार करनेके पीछे उद्देश्य यही है कि अगर किसी कामको एक-दो व्यक्ति नहीं बल्कि बहुत सारे लोग करते हैं तो सरकारका ध्यान उस ओर अवश्य आकृष्ट होगा?

यहाँ मैं आपसे सहमत नहीं हूँ।

उदाहरणके लिए मैं हड़तालकी बात लेता हूँ। मान लीजिए सिर्फ एक-दो व्यक्ति ही हड़ताल करते हैं तो क्या आप कहेंगे कि वह सफल हो जायेगी? या कोई वास्तविक परिणाम उत्पन्न करनेके लिए क्या बहुत सारे लोगोंका हड़ताल करना आवश्यक नहीं है?

मैं इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता। जब आप किसी ऐसे राजनीतिक आन्दोलनमें जुटे हुए हैं जो नैतिकताके कठोरतम सिद्धान्तोंपर आधारित है तो सत्कार्यका कुछ-न-कुछ प्रभाव होना निश्चित है — चाहे यह सत्कार्य कोई बहुत बड़ा आदमी करे या बहुत छोटा। यह मेरा सुचिन्तित विचार है।

इसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आपने यहाँ बताया है कि आपका विचार सब-कुछ आध्यात्मिक शक्ति या आत्मबलके आधारपर हासिल करनेका था; यही मूल भावना थी। लेकिन किसी राजनीतिक लक्ष्यकी सिद्धिके लिए तो संख्याका बल प्राप्त होना आवश्यक है?

यदि आप मुझसे 'हाँ' कहनेको ही कहते हैं तो कहूँगा कि किसी नैतिकतासे विच्छिन्न राजनीतिक आन्दोलनके साथ ऐसी बात है, लेकिन किसी ऐसे आन्दोलनके साथ नहीं जो प्रबल रूपसे नैतिक आन्दोलन है और जिसे राजनीतिके मंचपर इसलिए जाना है कि वहाँ गये बिना काम ही नहीं चल सकता।

जहाँतक इसके नैतिक पक्षका सम्बन्ध है, मेरा खयाल है, वह सत्यके अनुगमनमें निहित है। मान लीजिए बात ऐसी ही है तब आप इसकी सफलताके लिए इसके अनुगामियोंकी जबरदस्त संख्यापर निर्भर करेंगे या नहीं? यदि एक व्यक्तिका आत्मबल किसी चीजको दो महीनेमें हासिल करता है तो १०,००० व्यक्तियोंका आत्मबल तो उसे कदाचित् १० दिनोंमें हासिल कर लेगा?

जी नहीं, किसी ऐसे बलका अनुमान लगानेके लिए आप गणितके नियमोंको लागू नहीं कर सकते। इस सवालका सम्बन्ध साधारण सिपाहियोंसे नहीं है कि कह दें, अगर एक व्यक्ति १० लोगोंको गोलियोंसे उड़ा सकता है तो उसी तरहके १० व्यक्ति १०० लोगोंको उड़ा देंगे।

जो भी हो, लेकिन १०० व्यक्ति, अगर उनमें से प्रत्येक उसी एककी टक्करका हो, तो १० से अधिक लोगोंको तो गोलियोंसे उड़ा सकेंगे?

तो समझ लीजिए कि अगर वैसे ही समर्थ १० सत्याग्रही काम कर रहे हों तो निश्चय ही वे एक व्यक्तिकी तुलनामें अधिक कर दिखायेंगे।

अपने यहाँके या इंग्लैंडके संविधानका पूरा खयाल रखते हुए, मैं समझता हूँ, आप मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि इस 'एम्बैरेसमेंट'[1] शब्दसे भागनेकी कोशिश करना बेकार है, क्योंकि इस शब्दका उपयोग किया गया है और आपने ऐसा कहा है?

बिलकुल नहीं।

आप यह तो मानेंगे कि सत्ताके विरुद्ध चलाये गये किसी भी आन्दोलनसे, यदि वह वफादारीकी अधिकसे-अधिक भावना रखते हुए पूरी तरह संवधानिक ढंगसे चलाया जाये तो उससे भी अधिकारियोंको परेशानी होगी ही। यद्यपि यह हो सकता है कि आप अपना सत्याग्रह आन्दोलन आत्मबलके आधारपर चला रहे हैं, फिर भी इसका एक परिणाम यह तो है ही कि आप सरकारको परेशान कर रहे हैं, और आप इस बातसे इनकार भी नहीं कर करते?

यहाँ किसी बातसे इनकार करने-न-करनेका सवाल नहीं है। जब मैं 'परेशानी' शब्दके उपयोगकी बातपर आपत्ति कर रहा था तो मेरा मतलब यह था कि उसमें कोई वैसा मंशा नहीं था। मेरा खयाल है 'परेशानी' शब्दका महत्त्व आँकनेमें मंशाका ध्यान भी निश्चित रूपसे रखना चाहिए।

आप यह तो नहीं कहते कि किसी भी राजनीतिक आन्दोलनसे सरकारको परेशान नहीं होना चाहिए?

नहीं, मैं ऐसा तो बिलकुल नहीं कहता।

लेकिन आपके अनुसार, इसका संचालन सत्य और अहिंसाका पालन करते हुए करना चाहिए?

लेकिन मैं यहाँ एक भेदकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिलाना चाहूँगा। वह यह कि जहाँ साधारण राजनीतिक आन्दोलन सरकारको परेशान करनेके निश्चित इरादेसे छेड़ा जाता है, वहाँ सत्याग्रह आन्दोलन कभी भी किसी व्यक्तिको परेशान करनेके इरादेसे नहीं छेड़ा जाता, लेकिन अगर उसका परिणाम परेशानीके रूपमें प्रकट होता है तो उसे इस चीजको झेलना पड़ता है।

तो मतलब यह कि सवाल चाहे आत्मबलका हो या संख्या-बलका, परिणाम हर हालतमें परेशानी ही होगा, यही है न?

मैं यह कह रहा हूँ कि सत्याग्रही इस भयसे भागेगा नहीं, लेकिन साथ ही परेशान करना उसका उद्देश्य नहीं होगा।

लेकिन अब वही हड़तालवाला उदाहरण लीजिए। मुझे हड़तालोंका कोई ज्यादा अनुभव नहीं है लेकिन कुछ तो है ही। क्या आप मानते हैं कि ऐसी कोई हड़ताल कभी सफल हुई है जिसमें मिल-मालिकोंके केवल एक-दो विरोधियोंने कहा हो कि वे काम नहीं करेंगे? क्या ऐसी हड़ताल कभी सफल हुई है?

अवश्य, मैं इसके बीसों उदाहरण दे सकता हूँ, और मेरा खयाल है कोई भी मिल-मालिक यहाँ आकर यह कह देगा कि अगर कोई ऐसा प्रमुख आदमी, जो एक विभागका संचालक हो, हड़ताल कर दे तो मिल-मालिकको झुकानेके लिए यह काफी होगा।

१. अर्थात परेशानी।

लेकिन यहाँ भी तो उसके पीछे संख्याका बल है ही। मैं यह तो समझता हूँ कि अगर कोई गांधी हड़ताल करेगा और जेल जायेगा तो हो सकता है, उससे सारा देश आन्दोलित हो उठेगा, लेकिन मान लीजिए कोई साधारण आदमी, ऐसा साधारण आदमी भी जो हिंसाका सहारा नहीं लेगा और सत्यका पालन करेगा, वह आदमी कहे कि वह कर नहीं देगा, और वह जेल चला जाये तो क्या आप कह सकते हैं कि वाइसराय, गवर्नर जनरल या राजाधिराजको इसकी सूचना तक मिलेगी ?

मैं निश्चय ही भारतके ऐसे कई वाइसरायोंके नाम बता सकता हूँ जिन्हें अगर कोई ऐसा आदमी मिल जाता जिसे वे विशुद्ध रूपसे उसकी कठोरतम नैतिकता, ईमानदारी और सचाईके कारण मूल्यवान समझते तो उस आदमीको खोना न चाहते, और अगर वह आदमी हड़ताल करता तो वे यही चाहते कि भले ही लाखों व्यक्ति हड़ताल करें लेकिन उस एक व्यक्तिको हड़ताल करनी पड़े ऐसा कोई कारण न रहने दिया जाये।

आप यह तो मानेंगे कि ऐसा तो लाखोंमें शायद एक ही होगा जिसकी ओर वाइसराय या राजाधिराजका ध्यान आकृष्ट होगा ?

मैं यह तो नहीं जानता, लेकिन यह अवश्य मानता हूँ कि अगर कोई आदमी पक्का नैतिक आचरण करनेवाला है और वह किसी ऐसे क्षेत्रमें काम कर रहा है, जिससे वाइसरायका सम्बन्ध है तो वह निश्चय ही उनके मनपर असर डालेगा — वैसे ही जैसे लॉर्ड विलियम बेंटिकके शासन-कालमें उनपर केशवचन्द्र सेनने असर डाला था।

आप फिर भारतके योग्यतम सपूतोंकी बात कर रहे हैं ?

हाँ, लेकिन ऐसा किये बिना मैं रह भी नहीं सकता। हर नागरिककी यही इच्छा होनी चाहिए कि भारतमें ऐसे योग्य व्यक्ति अधिकाधिक उत्पन्न हों।

सर चि० ह० सीतलवाड: पण्डितजी यह भूल रहे हैं कि श्री गांधीने तीन दिनोंका उपवास करके ही मिल-मालिकोंको घुटने टेकनेको मजबूर कर दिया था।[1]

माफ कीजिएगा, मुझे इस बातसे बड़ी आत्मग्लानि होती है कि मैंने अपने उपवास द्वारा मिल-मालिकोंको झुकनेपर मजबूर किया।

मान लीजिए, कोई ऐसा आदमी जो लोगोंको आपके-जितना प्यारा हो या कोई अनसूयाबेन जैसा व्यक्ति फिर गिरफ्तार कर लिया जाये तो उस स्थितिके सम्बन्धमें क्या आप यह कह सकते हैं कि पिछले चार-पाँच महीनोंमें आपने अहमदाबाद और बम्बईके लोगोंको इतना योग्य बना दिया है कि अगर वे ऐसी गिरफ्तारीकी खबर सुन भी लेंगे तो कोई उथल-पुथल नहीं मचेगी ?

जी नहीं, मचेगी और खूब मचेगी। और मेरा खयाल है अगर नहीं मचेगी तो इससे मुझे भी और अनसूयाबेनको भी घोर निराशा होगी, लेकिन उस उथल-पुथलका स्वरूप बिलकुल भिन्न होगा।

१. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ २५२–५३।

आपका खयाल यह है कि उस उथल-पुथलका स्वरूप होगा, शोक मनाना और उपवास करना, लेकिन हिंसा करना नहीं —— यही न ?

मैं पूरे विश्वासके साथ तो ऐसा नहीं कह सकता, लेकिन यह अपेक्षा अवश्य रखता हूँ कि हम लगभग उस स्थितिमें पहुँच गये हैं।

और निश्चय ही मेरा खयाल है, आप मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि जहाँतक भारतका सम्बन्ध है, यहाँके शिक्षित लोगोंका अनुपात देखते हुए यह कहना बहुत कठिन है कि जो अशिक्षित लोग आपको इतना प्यार करते हैं वे अपने आवेशपर नियन्त्रण रख सकेंगे और वस्तुस्थितिको दार्शनिक भावसे देख सकेंगे ?

जी नहीं, बिलकुल नहीं, सत्याग्रहके प्रचारके लिए मुझे जिस ढंगकी शिक्षाकी जरूरत है वह उससे भिन्न है जिसकी आप बात कर रहे हैं।

काल-क्रमसे हो सकता है, आप उन्हें उसके लिए तैयार कर दें, लेकिन मैं तो वर्तमानकी बात कह रहा हूँ ?

मैं यह नहीं कहूँगा कि हमारी निरक्षरताके कारण सत्याग्रहके सिद्धान्तका प्रचार यहाँ कुछ ज्यादा कठिन है। हमारे देशभाइयोंमें साक्षरताकी जो स्थिति है उसे मैं शोचनीय मानता हूँ, लेकिन यह नहीं मानता कि सत्याग्रहके प्रचारमें निरक्षरता कोई व्यवधान है। अगर मुझे उस खतरेकी आशंका है तो वह अर्ध-शिक्षित लोगोंसे है।

अब मैं 'निरक्षर' शब्दको छोड़ता हूँ। क्या आप यह कह सकते हैं कि किसी ३००,००० से अधिक आबादीवाले नगरको और बम्बई नगरको, जिसकी आबादी १,२००,००० से अधिक है, नियन्त्रणमें रखना बहुत आसान है ? मान लीजिए ये सभी लोग आपके प्रति श्रद्धा रखते हैं प्यार करते हैं और आपका सम्मान करते हैं तो क्या आपकी गिरफ्तारीको वे चुपचाप खड़े हुए दार्शनिक भावसे देख सकेंगे ?

इस कार्यमें जो कठिनाई निहित है, उसे मैं स्वीकार कर चुका हूँ, लेकिन मैं यह नहीं मानता कि यह बात असम्भव है, और न यही समझता हूँ कि यह कार्य इतना कठिन है कि इसे लगभग असम्भव ही मानना चाहिए। मैं इसे कठिन तो मानता हूँ लेकिन इतना कठिन नहीं कि इसे साधा ही न जा सके।

तो मैं यह मान लेता हूँ कि हड़ताल किसी भी तरह सत्याग्रह आन्दोलनका कोई अंग नहीं है ?

वह उसका कोई अभिन्न अंग नहीं है।

और इसलिए जहाँतक हड़तालका सम्बन्ध है, सत्याग्रह आन्दोलनके प्रचारके लिए यह जरूरी नहीं कि हर दूसरे दिन या हर महीने हड़ताल करनेका आदेश दिया जाता रहे ?

जी हाँ, बिलकुल नहीं।

और हमें जो अनुभव प्राप्त हुए थे या हुए हैं, उनका खयाल रखते हुए यह सम्भव है कि सत्याग्रह आन्दोलन बिना हड़तालके ही जारी रहेगा ?

हाँ, अगर जरूरी हुआ तो मैंने हड़ताल करानेका विचार पहले भी किया है, और श्री हॉर्निमैनके सम्बन्धमें तथा खिलाफत आन्दोलनके सिलसिलेमें इसे आजमा देखनेके

खयालसे मैंने हड़ताल करनेका आदेश दिया, और दोनों ही अवसरोंपर हमें पूरी सफलता प्राप्त हुई, हालाँकि हड़ताल बहुत बड़े पैमानेपर की गई थी और भारतके कई स्थानोंमें यह अपने ढंगसे पूरी तरह की गई थी।

हो सकता है मुझे तथ्योंकी ठीक जानकारी न हो, लेकिन क्या मेरी यह मान्यता सही है कि दक्षिण आफ्रिकामें आपके आन्दोलनकी सफलताका कारण लोगोंका बहुत बड़ी तादादमें जेल जाना था?

हाँ, बल्कि यों कहें कि उसका कारण यह था कि उन्होंने किसी तरहकी हिंसाका सहारा नहीं लिया।

और साथ ही वे लोग काफी बड़ी तादादमें जेल भी गये?

निःसन्देह।

तो आप जो-कुछ चाहते थे वह आपको महज इसलिए प्राप्त नहीं हुआ कि उनमें से मुट्ठी-भर लोग ही जेल गये?

हम जो-कुछ चाहते थे वह हमें जिस समय मिला उस समय लोग उतनी बड़ी तादादमें जेलमें नहीं थे जितनी बड़ी तादादकी आप कल्पना कर रहे हैं। मैं इस बातसे इनकार नहीं करता कि जेल जानेवाले लोगोंकी भारी संख्याका समुचित असर हुआ। इस सम्बन्धमें तो दक्षिण आफ्रिकाके राजनयिक लोग अधिक अधिकारपूर्वक कह सकते हैं, लेकिन खुद मेरी धारणा यह है कि दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंमें जो इस आन्दोलनके इतने अधिक समर्थक मिले उसका कारण यह था कि यह आन्दोलन बहुत ठीक ढंगका था। आखिरकार हम लोग तो मुट्ठी-भर थे और अगर हम सही रास्तेसे सूत-भर भी अलग हट जाते तो हमारा अस्तित्व ही मिटा दिया जाता।

पता नहीं आप मेरे इस विचारसे सहमत हैं या नहीं कि संख्याकी गुरुता इस सफलताका एक बहुत बड़ा कारण थी?

मैं कहूँगा कि इसका जितना चाहिए उतना प्रभाव तो हुआ ही था।

अब आपने एक बात और उठाई है जिसे मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, क्योंकि देखता हूँ, आपने अपने मद्रासके भाषणमें उस बातकी चर्चा की है। सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करनेमें आपका एक उद्देश्य यह था कि आपने देखा कि भारतमें एक उग्रवादी वर्ग है, एक ऐसा वर्ग जो हिंसा और अराजकतापर उतारू है, और आपका उद्देश्य इस वर्गके लोगोंके लिए काम करनेका एक अच्छा मंच, यानी अधिक शुद्ध और नैतिक मंच प्रस्तुत करना था — था न?

जी हाँ, निःसन्देह।

सर सीतलवाडने आपसे एक सवाल किया था और चूँकि मैं उनसे सहमत नहीं हूँ, इसलिए आपके विचार जानना चाहता हूँ। मान लीजिए अलग-अलग व्यक्ति अपनी-अपनी समझके अनुसार क़ोई भी कानून तोड़नेके लिए तैयार हैं, तो मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि उससे किसी व्यक्तिको परेशानी क्यों होनी चाहिए। मान लीजिए मैं किसी नगरपालिकाकी सीमामें रहता हूँ और कोई ऐसा कर लगाया गया है जिसे

मैं अच्छा नहीं मानता और अगर उस सत्यका पालन करते हुए मुझे जेल जाना पड़ता है तो मैं नहीं समझता कि उसके लिए मुझे किसी नैतिक प्रशिक्षणकी जरूरत है। अगर किसी आदमीको अपनी अन्तरात्माके आदेशपर जेल जाना पड़ता है तो उसे किसी नैतिक प्रशिक्षणकी जरूरत क्योंकर होनी चाहिए? मेरा तो खयाल है कि जो ऐसा करता है वह सबसे अच्छा नागरिक है। क्या आप मेरे इस विचारसे सहमत हैं कि महज इस बातसे, कि अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग हिस्सोंमें अलग-अलग कानून तोड़कर जेल जाते हैं, सम्भवतः कोई भी सरकार परेशान नहीं हो सकती, बशर्ते कि यह आन्दोलन कोई सार्वजनिक आन्दोलन न हो?

हाँ, ऐसा तो है।

इससे कोई निराशाजनक स्थिति तो उत्पन्न नहीं होगी?

नहीं, निश्चय ही नहीं, लेकिन साथ ही मैं यह भी नहीं कहूँगा कि अगर वह कोई सार्वजनिक आन्दोलन है तो उससे निराशाजनक स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

मेरे कहनेका मतलब यह कि इसमें मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती। मैं समझता हूँ यह तो सबसे उच्च सिद्धान्त है जिसकी शिक्षा लोगोंको दी जा सकती है और अगर मैंने आपके भाषणोंको सही समझा हो तो मेरा खयाल है, सत्याग्रह आन्दोलनके पीछे एक बुनियादी कारण यह था कि आपने देखा कि वर्तमान भारत जिस एक बुराईसे बुरी तरह ग्रस्त है वह यह है कि अपनी दीर्घकालीन दासताके कारण यहाँके लोग अपने अधिकारोंके लिए खड़े नहीं हो सकते और गुलामोंकी तरह ऐसे कार्य करते हैं जो उनकी अन्तरात्माके आदेशके विरुद्ध हुआ करते हैं और मैंने ऐसा कहते सुना है कि आप चाहते हैं, वे अधिक निर्भीक हों और नैतिकताकी राहपर अधिक चलें। निर्भीक लोगों और जो लोग सिर्फ कानून तोड़नेका मजा लेनेके लिए कानून तोड़ते हैं उनके बीच आप एक अन्तर तो मानते हैं?

मेरा तो खयाल है, यह बात स्पष्ट ही है।

मेरा खयाल है यह आपका सिद्धान्त है?

कानूनकी सत्ता को बिलकुल अस्वीकार कर देने और अपने अधिकारोंका दावा करनेमें मैं बहुत बड़ा अन्तर मानता हूँ।

आपपर असंगतिका आरोप लगाया गया है और मैं वह आरोप आपके सामने रखूँगा तथा आपसे उसका स्पष्टीकरण चाहूँगा। ऐसा लगता है कि अधिकारियोंके सामने आपने यह वक्तव्य दिया कि आप मिल-मजदूरोंको इस आन्दोलनमें नहीं घसीटना चाहते थे?

जी हाँ, दिया तो था।

और साथ ही, अपने एक भाषणमें आपने कहा है कि मिल-मजदूरोंको आपकी सभाओंमें आना चाहिए, लेकिन उन्हें पहले मिल-मालिकोंकी अनुमति ले लेनी चाहिए, और इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि श्री गांधी एक ओर तो कहते हैं कि वे

मिल-मजदूरोंको इस आन्दोलनमें नहीं घसीटना चाहते और दूसरी ओर वे उन्हें अपनी सभाओंमें आने और सत्याग्रही बननेके लिए उकसाते हैं?

मैं उन अंशोंको देखना चाहूँगा। मुझे दोनों अवसर याद हैं। एक अवसरपर तो मैंने यह कहा था कि मैं नहीं चाहता कि मिल-मजदूर इस आन्दोलनमें शामिल हों।

और दूसरे अवसरपर आपने कहा कि जबतक अनुमति न प्राप्त कर लें, वे सभाओंमें न आयें?

बिलकुल सही, और दरअसल इन दोनों स्थितियोंके बीच मुझे कोई असंगति नहीं दिखाई देती क्योंकि मैं यह चाहता था कि मिल-मजदूर हमारे पास रेलेमें न आयें; मैंने कहा एक भी मिल-मजदूर न आये। सत्याग्रह-सभाके मन्त्रियोंको जो निर्देश दिये गये थे उनमें कहा गया था कि वे तबतक किसी भी मिल-मजदूरसे सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा न करवायें जबतक कि खुद मैं या, इससे भी अच्छा हो, अनसूयाबेन उनसे मिल न लें। अनसूयाबेनका मिलना ज्यादा अच्छा इसलिए होगा कि उन्हें यह मालूम होगा और वे इस बातकी गारंटी देंगी कि वह आदमी स्थितिको समझता है और वह ऐसा कर सकेगा।

फिर एक दूसरी बात है आपका गवाही देकर अधिकारियोंकी सहायता करनेके सम्बन्धमें। आपकी आपत्ति नाम बतानेपर ही तो है?

जी हाँ, इसी बातपर है।

और प्रमाण जुटानेमें अधिकारियोंकी सहायता करनेमें आपको कोई और आपत्ति नहीं थी। दरअसल मैं यहाँ देखता हूँ कि आप जेलमें भी कुछ लोगोंसे मिलने गये थे?

जी हाँ, गया था।

और आपने उनसे अपना अपराध स्वीकार कर लेनेको कहा था?

इतना ही नहीं, अगर दो दुर्घटनाएँ न हो गई होतीं तो मैं उन्हें मनानेमें लगभग सफल हो गया था। जिन लोगोंने तार काटे थे, उनमें से तो प्रत्येकसे मैं उसका अपराध स्वीकार करवा लेता। लेकिन मैं तो उनसे श्री केरके साथ मिला था। उस समय रातके ११ बजे थे और उनका सहायक भी वहाँ उपस्थित था। लोगोंने कहा अगर उन्हें पहरेमें या किसी अन्य रूपमें लोगोंके बीच भेज दिया जाये तो वे असली अपराधियोंको पकड़वा देंगे और अगर स्वयं उन लोगोंमें से कुछने यह काम किया होगा तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे।

और इसलिए आपने यह सुझाव रखा कि उन्हें सब बातें साफ-साफ बता देनी चाहिए और अधिकारियोंकी सहायता करनी चाहिए?

ऐसा करनेकी कोशिशमें मैं इससे भी आगे गया। मैं यह काम समाप्त करनेके लिए नडियाद जाना चाहता था, लेकिन अधिकारियोंकी सहायता करनेसे सम्बन्धित उतने ही जरूरी एक दूसरे काममें फँस गया और मुझे बम्बईमें ही रह जाना पड़ा। इस बीच इधर कुछ कानूनी कार्रवाइयाँ की गईं और तब मैंने फिर तीसरी बार भी कोशिश की, लेकिन उसमें उन लोगोंपर कानूनके जिन खण्डोंके अधीन मुकदमा चलाया जा रहा था उनके कारण, वास्तवमें कोई सफलता नहीं मिल पाई। लोग इतने डर

गये कि जब मैंने उनसे अपराध स्वीकार करनेको कहा तो उन्होंने मेरी एक न सुनी। हाँ, इस बार मैं उनसे खुद नहीं मिला था, लेकिन मेरे एक साथी कार्यकर्त्ता श्री वल्लभभाई पटेलने उनसे मिलकर उन्हें समझानेकी कोशिश की। उन्होंने मुझसे सन्देश लिया, खुद उन लोगोंसे मिले लेकिन सफल नहीं हो पाये।

मेरा खयाल है, आप मेरे इस विचारसे सहमत होंगे कि अगर सर्वसाधारणके मनसे कानूनके प्रति सम्मानका भाव दूर कर दिया जाता है तो यह एक बहुत ही बुरी स्थिति होगी, चाहे कानून कितने ही अच्छे या बुरे या अच्छाई-बुराईसे परे हों ?

मैं यह नहीं कहूँगा। अमन और कानूनके प्रति सम्मान-भावका मतलब होता है ऐसे अमन और कानूनके प्रति सम्मान-भाव जिससे राष्ट्रका हित-साधन होता हो; लेकिन इसमें लोगोंकी ओरसे अपने विवेकके उपयोगकी बात निहित है। लोग कानूनकी सत्ता माननेसे इनकार करेंगे; और युगोंसे इनकार करते आये हैं। उस सवालके जरिये मैं जिस बातकी ओर ध्यान देना चाहता था वह यह थी कि क्या उन्हें कानूनकी सत्ता माननेसे आगे भी उसी ढंगसे इनकार करते जाना चाहिए जिस ढंगसे वे आजतक इनकार करते आये हैं, यानी कि या तो वे चोरी-छिपे कानून तोड़ें और अगर गिरफ्तार हो जायें तो हर तरहसे अपना बचाव करें या वे छिपे तौरपर अथवा खुले तौरपर हिंसाका सहारा लें, हालाँकि इनमें से शायद किसी भी बातसे समाजका कल्याण नहीं हो सकता।

मेरे कहनेका मतलब यह है कि परिस्थितियोंका खयाल रखते हुए तत्कालीन सरकारके कानून एक प्रकारसे अनुल्लंघनीय हो जाते हैं ?

मेरे विचारसे तो ऐसा नहीं है।

मैं यह तो नहीं कहता कि वस्तुस्थितिको इस दृष्टिकोणसे दार्शनिक लोग देखते हैं ?

मैं तो इसको व्यावहारिक व्यक्तिके दृष्टिकोणसे देखता हूँ।

तो क्या यह सर्वसाधारणपर सबसे अच्छा अंकुश नहीं है ?

जी नहीं, आँख मूँदकर कानूनका पालन करना ऐसा कोई अंकुश नहीं है। इसका कारण यह है कि या तो वे आँख मूँदकर इसका पालन करते हैं या हिंसात्मक कार्रवाई करते हैं। दोनों ही स्थितियाँ अवांछनीय हैं।

मतलब कि जबतक प्रत्येक व्यक्ति स्वयं निर्णय लेनेके योग्य नहीं बन जाता तबतक उसे किसी-न-किसीका अनुसरण करना है ?

निःसन्देह, उसे ऐसा करना है। बिलकुल स्पष्ट है कि सर्वसाधारणको अपने नेता चुनने पड़ेंगे।

मान लीजिए आपके अपने ही मन्त्री कोई कानून पास करते हैं, तो क्या हर किसीको उस कानूनको तोड़नेकी छूट होगी ?

आपने यह फरमाया कि सर्वसाधारणको इसकी छूट होगी या नहीं ? मेरा तो खयाल है कि जब भारतमें उसके अपने ही मन्त्री होंगे तब सर्वसाधारणको कानून तोड़नेकी ज्यादा छूट रहेगी, क्योंकि अंग्रेज मन्त्रियोंके पक्षमें इतनी बात तो हो सकती

है कि वे वस्तुस्थितिसे अनभिज्ञ हैं, जबकि हमारे अपने मन्त्रियोंके पास कोई ऐसा बहाना नहीं होगा।

क्या इसका उपाय यह नहीं है कि उन मन्त्रियोंको ही निकाल दिया जाये, लेकिन कानून न तोड़ा जाये?

जो देश सबसे अधिक जनतांत्रिक हैं वहाँ भी मैं ऐसे मन्त्रियोंको जानता हूँ जिन्होंने किसी-न-किसी तरहसे अपनी स्थिति ऐसी बना ली है कि उन्हें हटाया नहीं जा सकता। इस हालतमें प्रतिष्ठित होते हुए भी बेचारे अल्पमतके लोग क्या कर सकते हैं? यह अल्मपत दृढ़तापूर्वक सविनय प्रतिरोध करके बड़ेसे-बड़े मन्त्रीको पदच्युत कर देगा और मुझे ऐसा आभास होता है कि भारतमें ऐसी स्थिति आयेगी।

आपको तकलीफ तो होगी लेकिन कहूँगा कि आपकी यह बात मैं समझ नहीं पाया। मान लीजिए आपका अपना ही मन्त्री, आपकी अपनी प्रतिनिधि सरकार कोई कानून पास करती है और चूँकि यह कानून ऐसा मन्त्री या ऐसी सरकार पास करती है इसलिए इस कानूनका अच्छा होना निश्चित है। क्या आपका मतलब यह है कि उस स्थितिमें भी आपके सत्याग्रह सिद्धान्तके अधीन किसी जन-संगठनके लोगोंको उन कानूनोंको तोड़नेकी सीख देने और स्वयं उन्हें तोड़नेकी छूट होगी? या इसका उपचार उन मन्त्रियोंको निकाल देना है?

कोई सत्याग्रही तो इसके लिए हर सम्भव उपायको आजमायेगा, लेकिन मैंने तो आपको केवल एक जनतन्त्रके अन्तर्गत किसी मन्त्रीके अपने-आपको अपरिहार्य बना लेनेका उदाहरण-भर दिया था और वह अपनेको इस तरह अपरिहार्य बनायेगा कि वह, जिन लोगोंकी अन्तरात्मा जागरूक है, उनकी बात ही नहीं सुनेगा। तब फिर वे लोग क्या करेंगे जिनकी अन्तरात्मा जागरूक है? यद्यपि यह उनका घरेलू और अपनी ही सरकारका मामला है, फिर भी उन्हें न केवल ऐसा करनेकी छूट होगी, बल्कि सत्याग्रहियोंके एक संगठनका यह कर्त्तव्य हो जायेगा कि वह सविनय अवज्ञा करे। लेकिन जब ये लोग मन्त्रीको निकाल सकते हों तब तो स्वभावतः इन्हें ऐसा करने देना होगा। अगर मैं लॉर्ड चैम्सफोर्डको निकाल सकता तो कहता कि "लॉर्ड चैम्सफोर्ड, अगर आप रौलट अधिनियमको नहीं हटा सकते तो खुद ही हट जाइए," और फिर मैं इंग्लैंडसे कोई और वाइसराय बुलवाता।

मेरा खयाल है कि आप गवाही देने बम्बई नहीं जा रहे हैं?

क्या समिति यहाँ दोनों जगहोंसे सम्बन्धित प्रश्न करना चाहती है? मैं गवाही देने बम्बई तो नहीं जा रहा हूँ।

मैं आपसे बम्बईके सम्बन्धमें एक बात पूछना चाहता हूँ जिसे आपने अपनी आँखोंसे देखा था।

हाँ, हाँ, एक क्यों, बम्बईके बारेमें जो-कुछ पूछना हो, सब पूछें। अगर समिति इस सम्बन्धमें मुझे बम्बईसे बाहर भी कहीं चलनेको कहे तो मैं उसके लिए भी तयार हूँ।

मुझे तो मालूम हुआ है कि वास्तवमें आपका स्वास्थ्य बहुत ठीक नहीं रहता है?

हाँ, फिलहाल तो बहुत ठीक नहीं है।

पिछले दो-तीन वर्षोंसे ऐसा है?

हाँ, दो वर्षोंसे।

और कभी-कभी आपका स्वास्थ्य इतना बुरा रहा कि आप अपने भाषण पढ़नेमें भी असमर्थ थे?

जी हाँ।

और आपने दूसरोंको अपने भाषण पढ़नेको कहा?

जी हाँ।

और आप कोई बहानेबाजी नहीं कर रहे थे?

खयाल तो ऐसा ही है।

जब बम्बईमें इनमें से कुछ घटनाएँ घट रही थीं, उन दिनों आप वहीं थे?

जी हाँ, वहीं था।

और आप एक सभा करके उसमें बोलना चाहते थे?

जी हाँ।

किस तारीखको?

६ तारीखको मैं कई सभाओंमें बोला।

और इसके बाद किसी सभामें?

हाँ, ११ को दिल्लीसे लौटकर मैं फिर एक सभामें बोला।

और आपको वहाँके अधिकारियोंकी स्वीकृति मिल गई?

जी हाँ, बेशक।

लेकिन सैनिक या पुलिसके लोग सड़कोंपर जमे हुए थे और आप उनसे परवाना लिये बिना उधरसे गुजर नहीं सकते थे?

जी नहीं, मैं नही समझता कि सैनिक या पुलिसके लोग सड़कोंपर जमे हुए थे।

यानी वे उन सड़कोंपर नहीं जमे हुए थे जिनसे होकर आपको गुजरना था?

जी हाँ, भीड़ चौपाटीपर जमा थी।

मैं पायधुनीकी बात कर रहा हूँ।

जी हाँ, वे वहाँ तो थे।

और जब आपकी गाड़ी उस सड़कसे गुजरी तो अधिकारियोंसे आपको गाड़ी ले जानेकी अनुमति मिल गई थी?

जी नहीं, मुझे अनुमति नहीं मिली थी। मैं तो वहाँ सिर्फ इसलिए गया था कि वहाँ लोगोंके हिंसापर उतर आनेका खतरा था। मेरे घर पहुँचते ही मेरे पास सन्देश भेजे गये। इसपर मैंने कुछ मित्रोंको भीड़को यह सूचित करनेके लिए भेजा कि मैं छूट गया हूँ; लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला। मेरा खयाल है, शायद श्री हंसराजने आकर मुझसे कहा कि मैं वहाँ जाऊँ अन्यथा भीड़ शान्त नहीं होगी।

क्या आप भीड़को शान्त कर सके?

मेरा खयाल है, भीड़ खुद ही बहुत शान्त थी।

अगर ऐसा है तब तो यह कोशिश बेकार गई?

मैं नहीं समझता कि भीड़को संयत करनेकी मेरी कोशिश बेकार गई। भीड़ उस सड़कसे गुजरनेका आग्रह कर रही थी, और उसका रास्ता सेना या पुलिस, जिस विभागके भी अधिकारी थे, रोक रहे थे। मैं गाड़ीमें आगे ही अनसूयाबेनके साथ बैठा हुआ लोगोंको समझा-बुझा रहा था। मैं लोगोंके इतना निकट था कि वे मेरी बात साफ सुन सकते थे। मैं उनसे उस गलीसे जानेको कह रहा था जो पुलिसने बताई थी और वे लोग भी उधरको मुड़ रहे थे। इस बीच पुलिसने नाकेबन्दी तोड़ दी थी और परिणामतः भीड़का एक हिस्सा उस ओरको भी बढ़ रहा था। लेकिन मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि पुलिसने नाकेबन्दी इसलिए तोड़ी थी कि वह ऐसा करना चाहती थी। मेरा खयाल है, दरअसल पुलिसके लोगोंपर भीड़का दबाव इतना बढ़ गया था कि उन्हें नाकेबन्दी तोड़ देनी पड़ी। इसी समय एकाएक घुड़सवार सैनिक या घुड़सवार लोग भीड़पर चढ़ आये।

लेकिन ऐसा कहा जाता है कि श्री गांधीको रोक लिया गया, भीड़ बहुत क्रुद्ध थी और पुलिस अधिकारियोंने घुड़सवार सैनिकोंको जमे हुए देखकर अपने विवेकका उपयोग किया और श्री गांधीको जाने दिया?

मुझे जाने दिया? मैं नहीं जानता उन्होंने क्या किया, लेकिन निश्चय ही मैं वहाँ-से गुजरा जरूर। गाड़ी एक मिनटके लिए भी नहीं रुकी।

और जब घुड़सवार सैनिकोंने उत्तेजित भीड़को देखा तो वे उसपर चढ़ आये?

वे भीड़पर चढ़ अवश्य आये लेकिन मैंने जिस स्थानका जिक्र किया उसी स्थानपर।

क्या आपने इस बातकी किसीसे शिकायत की?

जी हाँ, की।

आपके विचारमें क्या वह कार्रवाई उचित थी?

एक तमाशबीनकी हैसियतसे तो मेरा विचार यह है कि इस कार्रवाईको टाला जा सकता था। भीड़पर चढ़ आना उनके लिए जरूरी नहीं था, क्योंकि वह दूसरी दिशाकी ओर मुड़ रही थी।

आपकी जानपर भी खतरा था और आपको अपनी गाड़ी छोड़नी पड़ी?

जी नहीं।

यहाँ तो कहा गया है कि "यह बड़ी दिलचस्प बात है कि जब कि गांधी सभाओं-में भाषण देते समय बराबर एक आकर्षक रुग्ण व्यक्तिके रंग-ढंग अपनाते रहे हैं, लेकिन इस अवसरपर जो व्यक्ति सशस्त्र पुलिसकी कमान सँभाले हुए था उसका कहना है कि जब घुड़सवार सैनिक धावा बोल रहे थे उस समय गांधीने बचनेके लिए अपनी गाड़ीसे निकल भागनेमें आश्चर्यजनक चुस्ती और फुर्ती दिखाई।"

जो भी, हो यह बात सच्ची नहीं है।

१० तारीखको शामकी इस योजनाबद्ध कार्रवाईके सम्बन्धमें आपके पास जो भी जानकारी थी, वह आप दे चुके हैं और साथ ही सैनिक कानूनके आदेशोंके अधीन जो गोलियाँ चलाई गईं उनके बारेमें भी। आपने कहा है कि आपके विचारसे इसमें कुछ निर्दोष लोग भी गोलियोंसे घायल हुए या मारे गए। क्या मैं यह मान लूँ कि आपके अनुसार ये दोनों ही तथ्य समान रूपसे विश्वसनीय हैं?

मेरा तो खयाल है कि आप ऐसा मान सकते हैं।

आप उस गवाहीपर भी उसी तरह विश्वास करते हैं जिस तरह षड्यंत्र और योजनासे सम्बन्धित गवाहीपर करते हैं?

जी हाँ, मेरा तो यही खयाल है।

आप दो प्रकारकी परिस्थितियोंमें कोई भेद नहीं करते?

जी नहीं।

सरदार साहबजादा सुलतान अहमदखाँके प्रश्नोंके उत्तरमें:

श्री गांधी, मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ। हम एक बार फिर जरा रौलट अधिनियमकी बात लें। आपको निस्सन्देह यह बात मालूम है कि युद्धसे पूर्व भारतमें काफी अराजकतावादी अपराध किये जा रहे थे?

मैं यह तो नहीं कहूँगा कि भारतमें काफी अराजकतावादी अपराध किये जा रहे थे।

लेकिन इतना तो होता ही था कि बंगालमें सरकारका भय न रखनेवाले लोग डकैतियाँ और खून-खराबी करते थे। दिल्लीमें वाइसरायपर एक बार बम भी तो फेंका गया था?

जी हाँ, फेंका गया था।

और बंगालमें इस सम्बन्धमें बहुत-से मुकदमे चलाये गये थे?

जी हाँ, यह भी हुआ था।

और इन्हीं वारदातोंके कारण तथा देशमें शान्ति-सुव्यवस्था कायम रखनेके उद्देश्यसे तीन न्यायाधीशोंका एक आयोग नियुक्त किया गया था जिसके अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री रौलट थे?

जी हाँ।

उन्होंने बहुत ध्यानसे इस सवालकी जाँच की और सारे मामलेकी बहुत सावधानीके साथ छीनबीन करनेके बाद उन्होंने सरकारके सामने एक रिपोर्ट पेश की और उस रिपोर्टमें, मेरा खयाल है, उन्होंने कुछ खास ढंगके कानून बनानेके लिए कुछ सिफारिशें कीं। मैंने सुना है, आपने कहा कि आप उस रिपोर्टके निष्कर्षोंसे सहमत नहीं हैं?

जी हाँ, मैंने ऐसा कहा है।

उस कानूनसे सहमत न होनेके लिए आपके पास क्या आधार हैं?

यह कि रौलट कमेटीकी रिपोर्टमें दिये गये तथ्य ऐसे नहीं थे जिनसे मैं सहज ही इस निष्कर्षपर पहुँच जाता कि ऐसे किसी कानूनकी कोई जरूरत है। इसके

विपरीत इन तथ्योंके आधारपर मैं ऐसी रिपोर्ट तैयार करता जो रौलट रिपोर्टसे बिलकुल विपरीत होती। मेरे मनपर उसकी यही छाप पड़ी।

लेकिन आप इस बातसे तो इनकार नहीं करते कि जहाँतक सरकारको प्राप्त जानकारीका सवाल था, यह सच है कि देशमें गम्भीर ढंगके अपराध किये जा रहे थे?

उससे अधिक गम्भीर नहीं जितने गम्भीर अपराध दूसरे देशोंमें किये जाते हैं और निश्चय ही भारतमें कोई गम्भीर अपराध नहीं किया जा रहा है। विशेष रूपसे अराजकतावादी कार्रवाई बंगालतक ही सीमित रही है। अन्यत्र तो ऐसी कार्रवाईका कोई जोर देखनेमें नहीं आया, और रही बंगालकी बात सो आप बंगालको ही तो भारत नहीं मान सकते।

तो अराजकता और अपराधवृत्ति बंगालमें जोरोंसे फैली हुई थी?

मैं इसके महत्त्वको कभी घटाकर नहीं आँकूँगा। ये चीजें वास्तवमें चल रही थीं और इतनी गम्भीर भी थीं कि सरकारको उनके लिए कड़े उपाय करनेकी जरूरत थी। मैं इस बातसे कतई इनकार नहीं करता। लेकिन जिस समय रौलट कमेटीने अपनी रिपोर्ट तैयार की और गवाहियाँ लीं उस समय, मैं यह कहनेकी धृष्टता करूँगा कि कमेटीको जो सामग्री उपलब्ध थी, उससे जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वे निष्कर्ष नहीं निकलते। हो सकता है मैं गलत होऊँ, लेकिन रौलट कमेटीकी रिपोर्टमें एक बहुत गम्भीर भूल है कि जो शहादतें ली गईं वे प्रायः गुप्त रूपसे ली गईं और वे थीं भी सरकारी।

अब दलीलके लिए अगर यह मान लिया जाये कि रौलट कमेटी द्वारा संकलित तथ्योंके आधारपर, कमेटीने जो रिपोर्ट तैयार की, वह ठीक नहीं थी, तो क्या आप यह कहते हैं कि बंगालमें स्थिति ऐसी थी कि ऐसे सख्त कदम उठाना जरूरी था और रिपोर्टकी बात छोड़ भी दें तो क्या आप यह स्वीकार करते हैं कि ऐसे सख्त कदम उठाना आवश्यक था?

हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ।

तो आपके विचारसे सरकारको परिस्थितिका सामना करनेके लिए कौन-से कदम उठाने चाहिए थे?

लेकिन सरकारने वास्तवमें जो कदम उठाये हैं उनसे मैं पूरी तरह सहमत नहीं हूँ। मैं तो सिर्फ यह कह रहा हूँ कि इस तरहके अपराधोंका मूलोच्छेद करनेके लिए सरकारको सख्त कदम उठानेका अधिकार है, बल्कि यह उसका कर्त्तव्य है। इस प्रश्नके उत्तरमें कि सरकारको कौनसे कदम उठाने चाहिए, मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि रौलट अधिनियम बनाने-जैसे कदम नहीं उठाने चाहिए। वैसे तो सचाई यह है कि सरकारको कौनसे कदम उठाने चाहिए, यह सुझानेका अधिकार मुझे नहीं है, लेकिन अगर मुझे यह बताना हो कि सरकारको कौनसे कदम उठाने चाहिए तो मैं जो-कुछ भी बताऊँगा वह सुधार करनेके ढंगकी चीज होगी, लोगोंका दमन करनेके ढंगकी चीज नहीं होगी। लेकिन सरकारके सारे कदम दमनकारी ढंगके थे।

आप निश्चय ही यह तो स्वीकार करेंगे कि अभी मानव-स्वभाव ऐसा है कि सरकारको, जिसके लिए शान्ति-सुव्यवस्था कायम रखना आवश्यक है, दमनकारी कानून बनाने ही पड़ते हैं, चाहे यह चीज उसकी इच्छाके कितनी भी विरुद्ध हो?

अवश्य। और इसलिए जिस तरह मेरा जीवन गढ़ा गया है उसके अनुसार मैं केवल यही कहूँगा कि मैं ऐसे किसी भी उपायकी परीक्षा करने और उसकी आलोचना करनेको तैयार हूँ जो सरकार पेश करे। लेकिन मेरे लिए यह कहना सम्भव नहीं है कि सरकारको कौनसे उपाय अपनाने चाहिए, क्योंकि यह सवाल सामने आते ही मेरा दिमाग अपराधियोंको सजा देनेकी ओर नहीं बल्कि उन्हें सुधारनेकी ओर चलने लगेगा। अगर मुझे उसके लिए कोई कानून बनाना होगा तो वह उसी ढंगका होगा, लेकिन मैं किसी सरकारके दमनकारी उपाय अपनानेके अधिकारसे इनकार नहीं कर सकता।

जब आप सरकारके दमनकारी उपाय अपनानेके अधिकारको स्वीकार करते हैं और सरकारने जो उपाय विशेष अपनाये हैं उनकी आलोचना करते हैं तो निश्चय ही मुझे यह पूछनेका हक है कि आपके विचारसे सरकारको परिस्थितियोंका सामना करनेके लिए कौनसा दमनकारी कानून बनाना चाहिए था?

इसका उत्तर देना मेरे लिए बहुत कठिन है। मैं तो इसका निषेधात्मक उत्तर ही दे सकता हूँ। निश्चय ही मैं रौलट अधिनियम नहीं बनाऊँगा, और मैं इसके कारण भी बता सकता हूँ। वाइसरायको रौलट अधिनियमके बिना भी इतने अधिकार प्राप्त हैं कि विधान-संहितामें कोई ऐसा कानून दाखिल करके उसे निरूपित करनेकी कोई जरूरत नहीं है। अगर कोई ऐसा व्यक्ति जो कभी भारतमें न रहा हो, विधान संहिताको खोलकर रौलट कानूनको देखे तो उसका सहज निष्कर्ष यही होगा कि भारतमें निश्चय ही अराजकताका साम्राज्य है। और मैं क्षण-भरको भी यह नहीं मानता कि भारतमें अराजकताका साम्राज्य है। इसलिए मेरा विश्वास है कि वाइसरायको जो अधिकार प्राप्त हैं वे अराजकताको दूर करनेके लिए पर्याप्त हैं, और अगर वाइसराय उस अधिकारका उपयोग नहीं करते और दूसरे अधिकार प्राप्त करते हैं तो मेरा खयाल है, उनका यह काम गलत है। उन्हें आपत्कालीन कानून बनानेका अधिकार है और मेरा खयाल है कि यही करना सही है।

आपका मतलब है कि वे अध्यादेशोंके सहारे ऐसा करें?

जी हाँ, मेरा खयाल है उनका ऐसा करना उचित होगा। मैं यह क्यों मानता हूँ उसके कारण भी बताऊँगा, क्योंकि मैंने इस बातपर लोगोंसे पूरी तरह विचार-विमर्श किया है और मैंने इस विचारमें कई रातें बिताई हैं कि लॉर्ड चैम्सफोर्ड-जैसे समझदार व्यक्ति इस जालमें कैसे फँस गये। उन्हें यह आपत्कालीन कानून बनानेका अधिकार प्राप्त है; वे इन अधिकारोंका उपयोग कर सकते थे और बिना-किसी संकोच-विकोचके कर सकते थे तथा उन्हें इसके लिए विधान परिषद्का सहारा लेनेकी भी जरूरत नहीं थी। पहले तो उन्हें जरूरतके मुताबिक कोई जिम्मेदारी-भरा कदम उठाना है और बादमें विधान परिषद् या देशके सामने या देशमें आज जैसा भी जनमत है उसके सामने उसका औचित्य सिद्ध करना है, न कि घटनाओंकी पूर्व-कल्पना करके ऐसे किसी

कानूनको देशकी विधान-संहितामें दाखिल कर देना है। मेरा खयाल है, यहाँ कार्यपालिका, तथ्योंको देखते हुए जितना जरूरी था, उससे बहुत आगे निकल गई।

मुझे रौलट अधिनियम पढ़नेका सुयोग नहीं मिला है, लेकिन मेरा खयाल है कि यह तो मात्र एक समर्थकारी कानून है, अर्थात् इसे पास करके भारत सरकार इसे व्यवहारमें भी ले आई हो, यह जरूरी नहीं है। इसे व्यवहारमें तो तभी लाया जा सकता है जब सपरिषद् गवर्नर जनरल ऐसा करना जरूरी समझें?

हाँ, सिवा इस हिस्सेको छोड़कर।

गवर्नर जनरल यह प्रमाणित करते हैं कि इस कानूनको एक खास क्षेत्रमें लागू करना जरूरी है, लेकिन क्या आप यह नहीं मानते कि यह सुरक्षाकी पर्याप्त व्यवस्था है?

जी नहीं, बिलकुल नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह कानून किस तरह बनाया गया है। इसका उद्‌भव ही वास्तवमें इसे एक दूषित कानून बना देता है। इसके उद्‌भवका स्रोत है एक अदना-सा पुलिस अधिकारी या पुलिस अधिकारी भी क्यों, वास्तवमें कोई अदना-सा पुलिसका सिपाही। वह अपने वरिष्ठ अधिकारीसे जाकर कहता है कि 'अरे, यहाँ तो अमुक-अमुक बातें हो रही हैं।' अब पुलिस अधिकारी बातोंकी गहरी छानबीन कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता और अगर करेगा भी तो वह पुलिसके उसी आदमीकी आँखोंसे करेगा जिसने उसे यह जानकारी दी है। और इसके बाद, इसके मूलमें जो दोष रह जाता है, वह ऊपर वाइसरायके स्तर-तक पहुँच जाता है। अब इस जाँचमें, जो इतनी दूषित है, जितनी भी औपचारिक पवित्रता लाई जाये, मैं कहता हूँ यह गलत है और इसलिए वाइसरायको आमतौर-पर इन बातोंकी घोषणा करनेका अधिकार नहीं लेना चाहिए था। अगर वे अपने-आपको जिम्मेदार बनाना चाहते हों तो विधान परिषद् नहीं, बल्कि वे स्वयं यह कानून बनायें।

क्या आपके कहनेका मतलब यह है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण मामलोंमें, महज इसलिए कि किसी चीजका प्रारम्भ पुलिसके किसी सिपाहीने कर दिया है, उसे उस सिपाहीसे लेकर ऊपर वाइसरायतक सभी अधिकारी स्वीकार कर लेंगे और अपने अनुभव और ज्ञानके आधारपर उस चीजकी खुद ही भलीभाँति परीक्षा करके यह पता नहीं लगायेंगे कि जिस बातकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया है वह सही है या गलत?

मैं यह नहीं कहता कि और कोई रास्ता हो ही नहीं सकता। हमारी सरकारका जैसा गठन है उसके अन्तर्गत तो बस यही करना सम्भव है, लेकिन इस चीजको जानते हुए मैं तो कार्यपालिकाको एक ऐसे अपराधके सिलसिलेमें, जो भारतीय जीवनमें कोई आम चीज नहीं बन गया है, इतने जबरदस्त अधिकार नहीं दूँगा। अगर अराजकता भारतके एक छोरसे लेकर दूसरे छोरतक इस देशके जीवनकी एक आम बात हो गई होती तो शायद मैं रौलट अधिनियमके विरुद्ध इतना अधिक नहीं कहता; उस हालतमें मैं इस कानूनकी तफसीलोंकी जाँच करनेको सहमत हो जाता। लेकिन आज तो मैं उसके लिए सहमत नहीं हूँ, क्योंकि इसके पीछे जो सिद्धान्त काम कर रहा है,

चाहिए थी। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ और अब भी मेरा यही विचार है कि मुझे यह काम संवैधानिक तरीकेसे करनेकी छूट तो थी, लेकिन यह तरीका बिलकुल व्यर्थ होता। उस तरीकेसे मैं रौलट अधिनियम रद नहीं करवा सकता।

क्यों?

अपने राजनीतिक अनुभवके आधारपर। भारतमें किसी प्रार्थनापत्रका सारी प्रक्रियाओंसे गुजरनेके बाद भी कोई समुचित परिणाम निकला हो यह मैं नहीं जानता।

अतः आपका खयाल है कि आपके सामने एक ही उपाय था और वह था सत्याग्रह आन्दोलन?

जी हाँ, मेरे सामने जो एक-मात्र अन्य सम्मानजनक उपाय था वह यही था। इसमें कोई शक नहीं।

अगर मैंने ठीक सुना तो आपने ऐसा कहा है कि आपको अशिक्षासे भी अधिक भय अर्ध शिक्षासे है। क्या मैंने ठीक सुना?

जी हाँ, बिलकुल सही।

मैं यह जानना चाहूँगा कि आप किन कारणोंसे ऐसा मानते हैं?

कारण यह है कि सारे भारतका भ्रमण करके मैंने देखा है कि जिन नौजवानोंने शिक्षाको सही रूपमें ग्रहण नहीं किया वे आम अशिक्षित लोगोंकी अपेक्षा अधिक गैरजिम्मेदार और विचारहीन हैं। मैं समझता हूँ, देशके अर्धशिक्षित नौजवानोंकी तुलनामें आम अशिक्षित लोग अधिक सन्तुलित हैं और मेरा खयाल है कि ये अर्धशिक्षित नौजवान जिस बुराईमें पड़ गये हैं, अगर इन्हें उससे विमुख किया जा सके तो भारतके सामने जो समस्या है वह आजकी अपेक्षा बहुत अधिक आसान हो जाये।

आप अर्धशिक्षित किन्हें कहेंगे?

उदाहरणके लिए आप एक ऐसे लड़केको लें जिसने हाईस्कूलकी परीक्षा पास की है और उसे अंग्रेजीका बहुत-थोड़ा ज्ञान है और उससे भी थोड़ा ज्ञान अंग्रेजी इतिहासका है। वह अखबार पढ़ता है, लेकिन उसे आधा ही समझता है और इस प्रकार अपनी मूल भ्रमित प्रवृत्तियोंको नियन्त्रित करनेके बदले उन्हें और बढ़ावा देता है। ऐसा आदमी भारतकी शान्ति और कल्याणके लिए अशिक्षित जनसाधारणकी तुलनामें बहुत अधिक खतरनाक है।

फिर आप स्थितिको सँभालेंगे कैसे?

मैं स्थितिको सँभालनेकी कोशिश करता रहा हूँ, और मुझे कुछ ऐसा भ्रम भी है कि इस दिशामें मैंने आशातीत सफलता प्राप्त की है।

सो किस तरह?

इस तरह कि जब आप ऐसे लोगोंको समझाते हैं तो ये अशिक्षित लोगोंकी तुलनामें आपके धैर्यकी अधिक परीक्षा भी लेते हैं, लेकिन अगर आप उनके साथ काफी धैर्यसे काम लें तो निश्चय ही उन लोगोंमें बातको समझ लेने और नियन्त्रणको स्वीकार कर लेनेकी अधिक सम्भावना है।

क्या आप यह कह रहे हैं कि जो लोग हाई स्कूलोंसे निकल चुके हैं उनमें आगे कुछ सीखनेके लिए पर्याप्त धैर्य होता है, लेकिन जब आप उन्हें सही रास्तेपर लानेकी कोशिश करने लगते हैं तो आपके धैर्यकी परीक्षा हो जाती है?

मेरा खयाल है कि आज भारतमें शिक्षा-पद्धतिकी नींव ही इतनी कमजोर है कि कोई आदमी शिक्षा समाप्त कर लेनेपर भी सन्तुलनका पाठ नहीं सीख पाता। दरअसल भारतमें इतने उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति हैं ही नहीं कि किसी व्यापक निष्कर्षपर पहुँचा जा सके, और इसलिए मुझे इस सम्बन्धमें कोई निश्चित निष्कर्ष निकालते हुए भय नहीं लगता, क्योंकि मेरे पास काफी तथ्य मौजूद हैं, मेरे साथ काम करनेवाले काफी लोग हैं और ऐसे लोग भी काफी हैं जिनका निर्देशन मुझे करना होता है और इसलिए मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि हमारी शिक्षा-पद्धति भीतरसे सड़ी हुई है और इसे पूरी तरह दुरुस्त करनेकी जरूरत है।

मैं उस शिक्षा-पद्धतिके बड़े-बड़े दोषोंके बारेमें जानना चाहता हूँ।

एक दोष तो यह है कि स्कूलमें कोई वास्तविक नैतिक या धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। दूसरा दोष यह है कि चूँकि शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी है, और उसे सीखनेमें नौजवानोंकी बौद्धिक क्षमतापर इतना अधिक बोझ पड़ता है, इसलिए उन्हें स्कूलमें जिन अत्यन्त उदात्त विचारोंकी शिक्षा दी जाती है उन्हें वे ग्रहण ही नहीं कर पाते हैं। उनमें से होशियारसे-होशियारको भी तोतेकी तरह रटाया ही जाता है।

फिर बदलेमें आप क्या व्यवस्था करेंगे? आपके विचारसे शिक्षा का माध्यम देशभाषा होनी चाहिए और धार्मिक शिक्षाको भी दाखिल करना चाहिए?

मेरा खयाल है इन दो दोषोंको तो अवश्य दूर करना चाहिए। फिर बात रहेगी व्यक्तिगत तत्त्वकी। शिक्षकोंमें अपनेपनके भावकी भी कमी है। आज जैसे शिक्षक हैं उनकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे दर्जेके शिक्षकोंकी जरूरत है, जिनके पीछे अपेक्षाकृत अच्छी परम्पराओंका बल हो। ये तीन बातें करनेसे निश्चय ही आवश्यक सुधार हो जायेगा।

क्या मेरा यह खयाल सही है कि सत्याग्रह आन्दोलनका ध्येय प्रधानतः या अधिकांशतः, इसके अनुयायियोंकी संख्याका खयाल रखे बिना सचाई और उच्च नैतिकताको अन्तःप्रतिष्ठित करना है?

जी हाँ, निश्चय ही इसके पीछे यही भावना है।

यानी संख्यासे अलग, इस चीजका तत्त्व स्वयं इसीमें निहित है?

हाँ, इसके दो सदस्य हों या एक इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

क्या यह आन्दोलन पंजाबमें भी फैला है?

मेरा खयाल है, पंजाबमें यह बहुत अधिक फैला है। मैं अँगुली उठाकर यह तो नहीं बता सकता कि अमुक व्यक्तिने सत्याग्रहकी प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर किये हैं, लेकिन मैं इस निष्कर्षपर अवश्य पहुँचा हूँ कि इस सिद्धान्तको ग्रहण करने और इसका उत्साहपूर्ण उत्तर देनेमें पंजाब, अगर भारतके अन्य हिस्सोंसे अधिक नहीं तो कम

सक्षम भी नहीं है। हो सकता है मेरा यह खयाल गलत हो, लेकिन निश्चय ही पंजाब भी इस दृष्टिसे उतना ही ग्रहणशील है जितना कि भारतका कोई और हिस्सा।

बम्बई सरकारके कानूनी सलाहकार श्री कैम्पके प्रश्नोंके उत्तरमें :

श्री गांधी, मैं सत्याग्रह आन्दोलनके सम्बन्धमें बहुत ज्यादा सवाल पूछकर आपके धीरजकी परीक्षा नहीं लेना चाहता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आपने जो-कुछ कहा है, उससे मेरी शंकाओंका तनिक भी समाधान हो पाया है। उसे जाने दीजिए; मेरा खयाल है, रौलट समितिकी सिफारिशोंके सम्बन्धमें आपका जो विचार है, उसपर भी हममें सहमति नहीं दिखाई देती। मैं आपसे दो बातें अवश्य ही स्पष्ट कर देनेको कहूँगा। एक तो यह कि आप कहते हैं कि १२ तारीखका फौजी कानूनका आदेश सर्वथा अनुचित था। इस सम्बन्धमें क्या आप यह जानते हैं कि यह आदेश किन परिस्थितियोंमें दिया गया था?

मैं १२ तारीखको यहाँ था तो नहीं, लेकिन मैंने इसके बारेमें सुना अवश्य।

हाँ, आप १२ को यहाँ नहीं थे, १३ को आये। १२ की रातमें क्या-कुछ हुआ, वह आप मुझसे जान सकते हैं। हुआ यह कि जिस व्यक्तिके जिम्मे सेनाकी कमान थी वह हर चीजका विचार करनेके बाद इस निर्णयपर पहुँचा कि जो-कुछ हो रहा था उससे गड़बड़ी पैदा हुए बिना न रहेगी। भीड़पर नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता, अन्यत्र कहीं भी दंगा शुरू हो सकता है, और तब वह और उस समय उपलब्ध उसके अधीनस्थ लोग उस स्थितिका ठीकसे सामना नहीं कर पायेंगे। अतः उसने ऐसे आदेश जारी किये, जो परिणामकी दृष्टिसे बड़े सफल सिद्ध हुए। इस सम्बन्धमें आप क्या कहना चाहेंगे?

मैं इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना चाहूँगा, क्योंकि जैसा मैंने कहा, जब मैं इसके सम्बन्धमें एक बाहरी आदमीकी हैसियतसे बोला तब तो मैंने यही कहा कि यह चीज मुझे जँची नहीं, इसकी जरूरत भी समझमें नहीं आई और जो आदेश जारी किये गये, वे तो बिलकुल पसन्द नहीं आये।

पसन्द नहीं आये 'एक बाहरी आदमीकी हैसियतसे', यही न?

जी हाँ, बाहरी आदमीकी हैसियतसे, गैर-सैनिक आदमीकी हैसियतसे; स्वभावतः जिन अधिकारियोंको परिस्थितिका सामना करना है, मैं उन्हें तो इस मामलेमें काफी छूट दूंगा ही।

मान लीजिए मैं और आप वहाँ मौकेपर मौजूद सैनिकोंके अधिकारी होते, तब क्या आप इस आदेशको उचित मानेंगे?

इस सम्बन्धमें अपनी राय बता देना मैं काफी मानता हूँ — फिर उसकी जो भी कीमत हो। हाँ, यह माननेकी सावधानी तो बराबर बरतूँगा कि स्थितिकी परख सेना ज्यादा अच्छी तरह कर सकती थी। लेकिन अगर परिस्थितियों और तथ्योंकी जाँच-परख करनेके बाद मुझे अपना विचार व्यक्त करनेकी अनुमति दी जाये तो मैं यही कहूँगा कि इन तथ्योंके कारण ऐसा आदेश जारी करनेकी जरूरत नहीं थी।

इन तथ्योंसे आपका मतलब क्या उन तथ्योंसे है जो आपको दूसरों द्वारा दी गई सूचनाके आधारपर प्राप्त हुए थे और सेनाके अधिकारियोंके दिमागमें जो तथ्य थे उनसे भिन्न हैं?

सेनाके अधिकारियोंके दिमागमें जो तथ्य थे, उन तथ्योंसे भिन्न -- ऐसा तो मैं नहीं कहता; लेकिन अब मैंने जो-कुछ सुना है और जो थोड़ा-बहुत पढ़ा है उसके आधारपर मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि अगर मुझे कोई सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त होता तो इन तथ्योंके आधारपर मैं निश्चय ही ऐसे आदेश जारी नहीं करता।

मैं देखता हूँ यहाँ भी हम एक-दूसरेसे सहमत नहीं हैं?

जी हाँ, मुझे भी लगता है कि यहाँ तो हम सहमत नहीं हैं।

अब एक ही बात रह जाती है और वह है इस आदेशके अधीन विवेकशून्य ढंगसे और मनमाने तौरपर १२ तारीखको गोलियाँ चलाई जानेके सम्बन्धमें।

मैंने इन सारे विशेषणोंका प्रयोग तो नहीं किया है, सिर्फ यह कहा है कि . . .

मेरा खयाल है, आपने यह कहा कि बहुत-से निर्दोष लोगोंपर गोलियाँ चलाई गईं?

हाँ, यह तो कहा।

लेकिन किस आधारपर ऐसा कहा?

उन लोगोंकी साक्षीके आधारपर जो सीधे घटनास्थलसे आये थे।

यानी जो घायल हो गये थे, उनकी साक्षीके आधारपर?

हाँ, घायल लोगोंकी साक्षीके आधारपर भी। मैं होस्टेल गया था और मैंने हर घायल व्यक्तिको देखा था।

जरा आप इस बातपर तो विचार कीजिए कि लोगोंके मनमें वह कौन-सी प्रेरणा रही होगी जिससे कि वे आपको अपने जख्मी होनेके सम्बन्धमें सच्ची बात कह देते। जब आपने इन लोगोंको घायल स्थितिमें देखा, उस समय ऐसी कौन-सी चीज थी जिससे कि वे आपसे पूरी तरह सच्ची-सच्ची बातें कह देते?

जब वह मुझसे बातें कर रहा होगा, उस समय मैं तो निश्चय यही मानूँगा कि उसके लिए सबसे अधिक स्वाभाविक चीज विशुद्ध सत्य कहना ही होगा।

क्या यह कहकर कि वह सही था, वह कुछ भी नहीं पा सकता था और यह कहकर कि वह सही नहीं था वह कुछ पा सकता था?

मैं जानता हूँ कि यह मुद्दा ध्यान देने लायक है, लेकिन मैं अपने निष्कर्षपर आँख मूँदकर सिर्फ उन्हीं लोगोंके साक्ष्यपर नहीं पहुँचा हूँ, जिन्होंने मुझे यह सब बताया। मेरे पास उन लोगोंके भी साक्ष्य थे, जिन्होंने अपनी आँखों गोलियाँ चलते देखा था और मुझे कुछ ऐसा भी याद है कि मैंने श्री प्रैटका ध्यान एक उदाहरणकी ओर आकृष्ट किया था।

क्या आपको याद है कि १४ अप्रैलको आपने श्री चैटफील्डको पत्र लिखते हुए उन्हें सूचित किया था कि आपने सुना है, एक-दो स्त्रियाँ और कुछ पुरुष भी सैनिकों

द्वारा मारे गये? क्या आप मुझे इस सम्बन्धमें विशुद्ध तथ्योंसे अवगत करायेंगे, क्योंकि मैं स्वयं यह जाननेको बड़ा उत्सुक हूँ कि यह सब किन परिस्थितियोंमें हुआ या कि सचमुच ऐसा हुआ भी या नहीं? श्री चैटफील्डने उत्तरमें आपसे तत्सम्बन्धी जो भी सामग्री आपके पास हो देनेको कहा था और यह भी लिखा था कि अगर सम्भव हो तो ये लोग उनके पास जाकर उन्हें इस सम्बन्धमें सब-कुछ बतायेंगे?

हाँ, मुझे याद है, उन्होंने ऐसा लिखा था।

लेकिन श्री चैटफील्ड तो इस सम्बन्धमें अब भी अन्धकारमें ही हैं?

कारण सिर्फ यह था कि हम उनके सामने प्रस्तुत करनेके लिए पर्याप्त सामग्री नहीं जुटा पाये थे और तबतक आदेश वापस ले लिये गये और मैं इस बातको अधिक तूल नहीं देना चाहता था।

क्या आप घायल हुए लोगोंमें से कुछ के नाम बता सकते थे?

हाँ, अगर मुझे याद दिलाया गया होता तो मैं दे सकता था।

लेकिन श्री चैटफील्डने तो आपसे कहा था; कहा था न?

हाँ, लेकिन जब मैंने देखा कि ये आदेश वापस ले लिये गये हैं तो फिर मुझे बातको और आगे बढ़ानेकी कोई इच्छा नहीं रह गई, क्योंकि मैं जानता था कि इस तरहकी बातोंमें किसी हदतक आकस्मिक रूपसे भी बहुत-कुछ हो गया होगा; जिसका खयाल रखना जरूरी है, और मैं इस मामलेमें आगे कोई और जाँच-पड़ताल नहीं करना चाहता था। और न उसके बाद मैं अहमदाबादमें कुछ खास समयतक रहा ही।

आपके पास जो जानकारी है उसके इस अंशके सम्बन्धमें मैं आपसे बस इतना कहना चाहता हूँ कि १० तारीखकी जैसी योजनाओंसे सम्बन्धित दूसरी गवाहियोंमें आपने जो-कुछ कहा, उसके पीछे तो आपका मतलब ठीक वही कहनेका था जो-कुछ आपने हमसे कहा है। लेकिन मैं यहाँ जरा यह भी कह देना चाहता हूँ कि आप उसके लिए जिस साक्ष्यका आधार लेते हैं वह उस साक्ष्यसे भिन्न है जिसे आपने बिना-किसी उचित कारणके लोगोंके घायल कर दिये जानेके इन उदाहरणोंका आधार बनाया है। सो इसलिए कि आपके पास आकर यह कहनेवाले लोगोंको कि उन्होंने योजनापूर्वक मामूली ढंगके कुछ दंगे करवा दिये, आपसे केवल धिक्कार और तिरस्कार ही मिलता, लेकिन आपके पास आकर जो लोग यह कहते कि वे इस काममें घायल हो गये, उन्हें तो किसी तरहके धिक्कार-तिरस्कारका भय नहीं हो सकता था?

नहीं, नहीं हो सकता था।

तो दोनों वर्गोंके साक्ष्योंमें यह अन्तर है। मेरा खयाल है, आपने वह बात इस आधारपर कही कि . . .

दोनों वर्गोंके साक्ष्योंका अलग-अलग मूल्यांकन करना मेरा काम नहीं है। मेरे कहनेका मतलब यह है कि ऐसा नहीं हो सकता कि कोई आदमी सीधे मेरे पास आकर किसी घटनाका, उसने जैसा देखा है, उससे भिन्न चित्र प्रस्तुत करने लगेगा।

मुझे तो लगता है कि अब हम इस बातकी और ज्यादा चर्चा नहीं कर सकते?

हाँ, लेकिन दरअसल मैं तो खुद आपसे भी और समितिसे भी कहूँगा कि ऐसा बिलकुल नहीं मानना चाहिए कि मैं अपनी इस बातको आगे बढ़ाना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि यह बात वहाँ कोई शिकायतके रूपमें कही गई है, लेकिन चूँकि इस सम्बन्धमें मुझे अपना मत देना ही है, इसलिए दे दिया है।

फिर एक दूसरा मुद्दा यह है कि आपने सैनिकोंकी ओरसे कुछ नहीं सुना। अगर आपको सैनिक पक्षकी परिस्थितियाँ भी मालूम होतीं तब कहीं आप यह कह सकते थे कि उन्होंने किसी व्यक्तिपर गोलियाँ चलाईं या नहीं। ऐसा भी तो हो सकता है कि कोई इक्की-दुक्की गोली (किसी चीजसे) टकराकर समकोणपर मुड़ जाये और इस तरह उधर खड़ा कोई व्यक्ति घायल हो जाये। लेकिन ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा कि यह सैनिकोंकी गलती थी?

नहीं, जिस तरहसे आप कह रहे हैं उस तरहसे तो नहीं ही।

और मेरा तो खयाल है कि यह बात इसी तरह कही जानी चाहिए।

लेकिन मैं समितिके ध्यानमें जो मामला लाया हूँ और जिस मामलेके आधार-पर मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन आदेशोंका पालन किया गया, वह मामला यह है कि इनमें से कुछ नौजवानोंने लोगोंके एक दलपर — चाहे उसमें १० व्यक्ति शामिल रहे हों या ११ या १० से भी कम — सचमुच गोलियाँ चलाईं और उन्हें इस तरहसे आगाह भी नहीं किया जिससे वे समझ पाते कि उनसे क्या करनेको कहा जा रहा है।

हाँ, लेकिन जैसा कि मेरा कहना है, आप इसका कोई वास्तविक उदाहरण तो नहीं दे सकते?

उदाहरण तो नहीं दे सकता, क्योंकि मुझे इस बातको आगे बढ़ानेकी इच्छा नहीं है। अगर होती तो मैं तैयार होकर आता। लेकिन जिस बड़े आन्दोलनमें सर-कारने अपने लिए सिर्फ यश ही अर्जित किया है उस आन्दोलनमें मैं एक छोटी-सी बातको बढ़ाकर बहुत बड़ा रूप नहीं देना चाहता। मैं इस घटनाको बढ़ा-चढ़ाकर नहीं दिखाना चाहता था और न श्री चैटफील्डको इस बारेमें आगे और कष्ट ही देना चाहता था।

अध्यक्षसे: बम्बईके इस मामलेके सम्बन्धमें केवल एक बात और रह गई है। इस समय इस मामलेमें सरकारका पक्ष प्रस्तुत करनेके लिए कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं है, क्योंकि मालूम नहीं था कि यह मामला भी उठाया जायेगा, और परिणामतः किसीको भी श्री गांधीसे इस सम्बन्धमें प्रश्न पूछनेका निर्देश नहीं दिया गया।

अध्यक्ष: श्री गांधीने जितना साक्ष्य अबतक दिया है, उससे कुछ बहुत अधिक बात तो नहीं निकलती।

श्री कैम्प: उन्होंने इसी एक बातपर ज्यादा जोर दिया कि घुड़सवार सैनिकोंने लोगोंपर घोड़े दौड़ाये लेकिन यह तो वे सिद्ध नहीं कर पाये।

अध्यक्ष : उस मामलेमें कोई व्यक्ति हताहत भी हुआ या नहीं यह मेरे सुननेमें नहीं आया ?

उस मामलेमें हताहत होनेकी बात नहीं कही गई है। प्रदर्शनके दौरान एक-दो व्यक्ति [शायद] कुचल गये, लेकिन यदि [भीड़पर] घोड़े दौड़ाये गये हों तो ऐसा होना स्वाभाविक ही है। मेरा खयाल है कि कोई भी व्यक्ति हत नहीं हुआ और कुचले गये लोग भी, जहाँतक मैं जानता हूँ, कोई गम्भीर रूपसे घायल नहीं हुए थे। जब सारी घटना हो चुकी थी तब मैं घुड़सवार दस्ता भेजनेके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए श्री ग्रिफिथके पास गया। और मैंने जो "घुड़सवार दस्ता"— शब्दोंका प्रयोग किया, इसपर उन्होंने आपत्ति भी की, लेकिन चूँकि मैं कोई सेनाका आदमी नहीं था, इसलिए यह नहीं जानता था कि वह सचमुच क्या था।

गुजरात सभा, अहमदाबादके कानूनी सलाहकार श्री जीवनलाल बी० देसाईके प्रश्नोंके उत्तरमें :

महात्माजी, आपने बम्बई ८ अप्रैलको छोड़ी ?

हाँ, उस दिन शामको।

आपको आदेश कब दिया गया ?

९ की शामको, पलवल और मथुराके बीच। यह पहला आदेश था।

मेरा खयाल है, आदेशमें आपको पंजाब या दिल्लीमें प्रवेश करनेसे मना किया गया था ?

मैं भूल रहा हूँ कि किस प्रदेशके बारेमें मनाही थी, लेकिन मेरा खयाल है, वह दिल्लीके बारेमें थी।

उसके बाद अगले स्टेशनपर आपको एक दूसरा आदेश दिया गया ?

हाँ, अगले स्टेशनपर दो और आदेश दिये गये।

लगभग किस समय ?

शायद साढ़े सात या ८ या कदाचित् ९ बजेके बीच कभी।

फिर आपने एक सन्देश लिखाया ?

हाँ, पलवल पहुँचनेसे पहले यह जाननेके बाद कि मैं पलवलमें गिरफ्तार कर लिया जाऊँगा।

और जिन सज्जनने[1] यह सन्देश लिखा वे कला और कानून, दोनों ही विषयोंके स्नातक हैं ?

हाँ।

आपने जो सन्देश लिखाया उसे लिखनेमें उनसे कोई गलती नहीं हुई ?

नहीं, कोई गलती नहीं हुई, क्योंकि मैंने स्वयं वह लिखा हुआ सन्देश पढ़ लिया।

१. तात्पर्य महादेव देसाईसे है।

आपने उस सन्देशमें अपने आश्रमवासियोंसे वह दिन खुशीके दिनके रूपमें मनानेका अनुरोध किया, बस इतना ही?

केवल उन्हींसे नहीं बल्कि हर व्यक्तिसे।

आप यह नहीं चाहते थे कि आश्रमके लोग या आगन्तुक हड़ताल करें? लगता है उसमें "दूने उत्साहके साथ" इन शब्दोंका उल्लेख किया गया था और उसका अर्थ कुछ भिन्न लगाया गया था?

हड़तालके सम्बन्धमें तो मेरे वक्तव्यमें कुछ भी नहीं है। लेकिन अगर आप मेरी मानसिक स्थितिके बारेमें जानना चाहते हैं तो कहूँगा कि उस समय मैं यह नहीं कहना चाहता था कि मैं हड़ताल चाहता हूँ या नहीं।

क्या आपके सन्देशका ऐसा भी अर्थ लगाया जा सकता था कि लोगोंको हड़ताल करनी है और सड़कों तथा गलियोंमें शरारतें करते फिरना है?

निश्चय ही इसका ऐसा कोई अर्थ नहीं लगाया जा सकता था।

क्या आपको मालूम है कि इस अंशका आश्रमवासियों अथवा सत्याग्रह सभाने कभी ऐसा अर्थ नहीं लगाया?

मुझसे कहा तो ऐसा ही गया। श्री वल्लभभाई पटेलने मुझसे जोर देकर कहा कि उन्होंने लोगोंसे स्पष्टतः हड़ताल न करनेको कह दिया था।

अब, आपको ११ तारीखको बम्बई लाया गया?

हाँ।

गाड़ी मैरीन लाइन्स स्टेशनपर रोकी गई?

वह तो संयोगसे वहाँ रुक गई थी, और तब मैंने श्री बाउरिंगसे कहा कि कोलाबामें कोई प्रदर्शन वगैरह न हो इस खयालसे मुझे मैरीन लाइन्समें ही उतर जाना चाहिए।

और बम्बईमें किसीको यह मालूम नहीं था कि आप उस गाड़ीसे जा रहे थे?

नहीं।

जब आप मैरीन लाइन्स स्टेशन पहुँचे तो वहाँ कोई आदमी आपसे मिलनेके लिए नहीं आया था?

स्वाभाविक ही कोई नहीं था।

और आप पाससे गुजरती हुई बग्घीमें यों ही जाकर बैठ गये?

नहीं, मेरे एक मित्र वहाँसे बग्घीमें गुजर रहे थे। उन्होंने मुझे देखा और गाड़ीमें बैठा लिया।

और आप बम्बईमें यथाशक्ति किसी भी प्रकारके प्रदर्शनको टालना चाहते थे?

जी हाँ।

और जब आपको उपद्रवकी खबर लगी तो आप लोगोंको शान्त करने पहुँचे?

जी हाँ, बेशक।

आपने अहमदाबादकी घटनाओंके बारेमें कब सुना, १२ की सुबहको?

हाँ, मेरा खयाल है पहले-पहल १२की सुबह ही एक मित्रने आकर बताया कि वहाँ कुछ उपद्रव हुआ है। नहीं-नहीं, अब याद आ रहा है, मुझे स्वयं श्री ग्रिफिथसे ही कुछ मालूम हुआ, क्योंकि वे मुझसे इस परिस्थितिपर विचार कर रहे थे और उन्होंने कहा, "आपको मालूम है कि देशमें क्या-कुछ हो रहा है?" मैंने कहा, "नहीं।" उन्होंने बताया कि अहमदाबादमें कुछ गड़बड़ी हुई है, लेकिन तार कट जानेके कारण वे मुझे उसके सम्बन्धमें तफसीलसे कुछ नहीं बता सके। लेकिन उन्होंने मुझे इसका आभास अवश्य दे दिया था कि अहमदाबादमें कोई बहुत गलत बात हो गई है।

आपने जैसे ही सुना कि वहाँ आपकी जरूरत है, आप पहुँच गये?

जी हाँ, जो गाड़ी सबसे पहले मिली उसीसे।

क्या स्टेशनपर आपसे मिलनेके लिए कुछ नागरिक आये थे?

मैं तो नहीं समझता, वहाँ कोई भाई आये थे। हाँ, श्री बॉयड[1] तथा कुछ अन्य अधिकारी, जिनके नाम मैं नहीं जानता, अवश्य थे।

फिर स्टेशनसे आप श्री अम्बालालके घर गये?

सीधे कमिश्नर साहबके यहाँ गया।

और मेरा खयाल है कि आप उनके साथ कोई दो घंटे रहे।

हाँ, शायद।

और श्री प्रैटके यहाँसे आप अम्बालालके घर गये?

हाँ, मेरा खयाल है कुछ मिनटके लिए मैं उनके यहाँ गया था।

जब आप वहाँसे लौट रहे थे, उस समय क्या आपके साथ सैनिक अधिकारी भी थे?

हाँ, लेकिन सिर्फ मेरी सुरक्षाके लिए।

इसलिए कि वहाँ सैनिक कानून लागू था?

हाँ, इस खयालसे कि पहरेदार लोग मुझे रोक सकते थे।

आपने १३ तारीखको सब-कुछ शान्त-व्यवस्थित पाया?

हाँ।

उस दिन आप एक सभा करना चाहते थे?

हाँ।

और आपने श्री वल्लभभाई पटेल तथा अन्य लोगोंसे, अगर सम्भव हो तो, एक सभाका आयोजन करनेको कहा था?

हाँ।

लेकिन सैनिक कानून लागू होनेके कारण उसका आयोजन नहीं किया जा सका?

केवल इसी कारण नहीं। दूसरी कठिनाइयाँ भी थीं। कहा गया कि कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण शायद हम ज्यादा लोगोंको इकट्ठा नहीं कर सकेंगे, और ज्यादा लोगोंके न रहनेपर मैं [जनतातक] अपना सन्देश नहीं पहुँचा सकूँगा।

१. आर० आर० बॉयड, अहमदाबादके पुलिस-सुपरिंटेंडेंट।

तो इसलिए आपने उनसे दूसरे दिन सभा की व्यवस्था करनेको कहा?

हाँ।

और तब आप यह नहीं जानते थे कि सैनिक कानून वापस ले लिया जायेगा?

बेशक, मैं नहीं जानता था।

१३ तारीखको आपने सर्वश्री वल्लभभाई पटेल तथा अन्य व्यक्तियोंसे कहा कि वे लोगोंको आश्रम जानेका एक विशेष रास्ता दिखा दें ताकि वे फौजी सिपाहियोंसे बचकर बगलकी गलियोंसे वहाँ पहुँच सकें?

हाँ।

उस दिन आप किस समय आश्रम गये?

मेरा खयाल है १३ तारीखको मैं २ बजे आश्रम पहुँच गया होऊँगा।

फिर अन्य गैर-सरकारी व्यक्तियोंके साथ आप श्री वल्लभभाई पटेल तथा दूसरे लोगोंसे मिले?

हाँ।

सभामें जानेके बाद श्री वल्लभभाई पटेलसे पूर्व आप किसी औरसे भी मिले?

नहीं।

आपने अपना भाषण कब दिया?

रातमें किसी समय।

आश्रम जानेके बाद क्या बहुत-से लोग आपसे मिलने आये?

नहीं, १३ तारीखको तो नहीं।

मेरा खयाल है, आपने १३ तारीखके भाषणमें जो-कुछ कहा वह, कमोबेश आपके मनपर इन बातोंकी जो छाप पड़ी थी, उसीकी अभिव्यक्ति थी?

मेरा खयाल है, उस भाषणमें इस बातको इसी रूपमें पेश किया गया है।

यह जानकर कि कहीं कुछ तार तोड़ दिये गये हैं तथा मकानात जला दिये गये हैं, आपके मनपर यह छाप पड़ी कि इसके पीछे किसी तरहका एक योजनाबद्ध प्रयत्न था?

हाँ।

क्या दंगाइयोंमें से किसीने आपके सामने विशेषरूपसे कुछ कहा?

मैं यह तो नहीं कहूँगा कि १३ तारीखको दंगाइयोंमें से किसीने मेरे सामने ऐसा-कुछ कहा, लेकिन मैंने जो विचार व्यक्त किया, उस समय लोगोंने उसका कुछ समर्थन-जैसा अवश्य किया था। और मैंने अपने-आपसे कहा कि "तो लगता है, यह इस तरह हुआ है।" और जब मैंने इस विषयपर वहाँ आये मित्रोंसे बातचीत की तो उन्होंने मेरी मान्यताका प्रतिवाद करनेके बजाय कहा, "हाँ, ऐसा ही है।"

यह मनपर पड़ी छापकी बात थी या जानकारी की?

मैंने उनसे जिरह नहीं की जिससे जान सकता कि वे जो-कुछ बोल रहे हैं वह उनके मनपर पड़ी छापसे सम्बद्ध है या उन्हें उस सबकी जानकारी है। मैं यह तो नहीं कह सकूँगा, लेकिन निश्चय ही उन्होंने मेरे विचारोंका समर्थन किया।

लेकिन हो सकता है, यह सिर्फ मनपर पड़ी छापकी बात ही रही हो?

हाँ, हो सकता है।

१४ की सुबह जिला अदालत भवनमें श्री प्रैट, श्री चैटफील्ड और कमांडिंग अफसरके साथ आपकी एक प्रकारकी मन्त्रणा हुई। और उसमें यह तय किया गया कि यह सैनिक कानून नामकी चीज वापस ले ली जाये?

मुझसे कहा गया कि वह वापस ले लिया जायेगा।

और इसीके परिणामस्वरूप दोपहर बादकी आश्रमवाली सभामें श्रोतागण खासी संख्यामें जुट पाये?

जी नहीं, इसलिए नहीं कि आदेश वापस ले लिये गये।

आपने यह देखा कि ६ तारीखको जो भीड़ आपके आश्रमको जा रही थी वह काफी व्यवस्थित थी?

मेरा तो खयाल है कि वह बिलकुल व्यवस्थित थी, और मैं समझता हूँ, वहाँ मैंने रेवरेंड गिलिस्पीको भी देखा?

हाँ, और आपके भाषणको श्री वल्लभभाई पटेलने पढ़ा, क्योंकि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था?

उस समय मेरी आवाज श्रोताओंतक नहीं पहुँच सकती थी।

आप श्री चैटफील्डसे किस समय मिले? सभाके पहले या बादमें?

१३ तारीखको उससे पहले और १४को ९ बजे सुबह।

और आपने श्री गाइडरसे कब मुलाकात की?

उन्होंने सभाके बाद किसी दिन मेरे यहाँ पधारकर मुझे अनुग्रहीत किया।

उस मुलाकातके दौरान आपकी बातचीत बिलकुल स्पष्ट और प्रमाणिक ढंगपर हुई। आपकी ओरसे कहीं कोई दुराव-छिपाव तो नहीं था?

निश्चय ही, न तो मेरी ओरसे और न उनकी ओरसे ही कोई दुराव-छिपाव था।

लेकिन इस मुलाकातमें जो-कुछ हुआ उसकी रिपोर्टमें तो श्री गाइडर कहते हैं कि "उनकी बातोंसे मुझे ऐसा लगा कि यद्यपि वे अपने लाभके लिए, यानी अपने अनुगामियोंकी संख्या बढ़ानेके उद्देश्यसे, दंगाइयोंकी भर्त्सना करनेको तैयार थे, लेकिन अधिकारियोंके सामने उनकी भर्त्सना करनेका उनका कोई इरादा नहीं था।"

अब इस आधारपर तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि श्री गाइडरने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है (भले ही इरादतन न किया हो)।

अध्यक्ष : आपका मतलब है, आपके सत्याग्रह सिद्धान्तके साथ?

जी हाँ।

श्री देसाई : आपने उनसे कहा कि भीड़में कुछ ऐसे लोग थे जो उन सबको सचमुच उसमें शामिल होनेको आमन्त्रित कर रहे थे?

क्या कर रहे थे?

वहाँ उन नेताओंमें से कुछ लोग मौजूद थे जिन्होंने भीड़को दंगेके लिए उकसाया था।

लेकिन मुझे तो स्पष्ट याद है कि मैंने श्री गाइडरसे कहा था कि नेतागण वहाँ भीड़को काबूमें करनेकी कोशिश कर रहे थे। मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।

१४ तारीखकी इस सभाके बाद आपने अपने गणों [?] के माध्यमसे गलियोंमें बहुत-सी सभाओंमें भाषण किये?

जी हाँ।

और आपने अपने भाषण लिखकर उन्हें अपने नगरमें कई श्रोताओं द्वारा लोगोंके समक्ष पढ़वाया, जिसका उन सबके दिमागपर बड़ा शमनकारी प्रभाव पड़ा?

जी हाँ।

और यह ११ तारीखसे शुरू होकर फिर सभाओंपर पाबन्दी लगनेतक चलता रहा?

जी हाँ।

और जिन्हें हम अहमदाबादके पढ़े-लिखे लोग कह सकते हैं, उन लोगोंने क्या इस प्रचार-कार्यमें कोई सक्रिय हिस्सा लिया?

हाँ, उनमें से कुछने तो लिया।

अब तो आप एक खासे अर्से, ५ साल, से अहमदाबादमें रह रहे ह। यहाँके पढ़े-लिखे लोगोंके बारेमें आपका क्या विचार है? क्या वे ऐसे दंगे-फसादवाले आन्दोलनोंमें शामिल होकर अहमदाबादमें मकानात जलाया करते हैं और तार वगैरह काटा करते हैं।

मैंने तो उन्हें ऐसा कुछ करते नहीं देखा।

अलबत्ता वे भाषण देकर तथा रौलट विधेयक और ऐसे ही अन्य कानूनोंकी आलोचना करके सरकारकी स्थितिको खतरेमें डाल देनेको तत्पर रह सकते हैं। लेकिन इसके बावजूद वे आपको शान्त ढंगके लोग लगे?

जी हाँ।

अब आपको यह तो मालूम है कि १९१८ में मिल-मजदूरों और मिल-मालिकोंके बीच कुछ तकरार हो गई थी?

हाँ, मेरा खयाल है, १९१८ में ही हुई थी।

और रोज-ब-रोज ये मिल-मजदूर भारी संख्यामें इकट्ठे हुआ करते थे और तब आप और आपकी ही तरह अनसूयाबेन तथा अन्य लोग भी इन्हें उपदेश दिया करते थे।

जी हाँ।

उन दिनों हजारों मिल-मजदूर एक साथ जमा होते रहे, और जब मजदूरीका सवाल एक बहुत ही क्षोभजनक मुद्देके रूपमें उपस्थित था तब भी वे अन्ततक बहुत ही व्यवस्थित बने रहे। उन्होंने नगरमें बड़े-बड़े प्रदर्शनोंमें भाग लिया और फिर भी भीड़ बराबर व्यवस्थित रही, और मिल-मजदूरोंका व्यवहार बहुत अच्छा और संयत था। है न ऐसी बात?

जी हाँ, बिलकुल। मैंने तो उन्हें ऐसा ही पाया।

अब क्या आपने श्री चैटफील्डसे वस्तुतः ऐसा कहा या उन्हें ऐसा कुछ आभास मिला जिससे उन्हें लगा कि आपने उनसे कहा कि होमरूल लीगने अहमदाबादमें या अन्यत्र ११ तारीखको हुए इस फसादके लिए कोई योजना तैयार कर रखी थी?

मैं तो नहीं समझता, मैंने ऐसा कहा है। और अगर उन्होंने ऐसा कहा हो तो यह मेरे लिए बड़े आश्चर्यकी बात होगी।

क्या आपका विभिन्न प्रान्तोंमें होमरूल लीग आन्दोलनसे वास्ता पड़ा है?

जी हाँ।

आम लोगोंके बीच भी लगातार एक आन्दोलन चल रहा है?

जी हाँ।

क्या आप जानते हैं कि रौलट अधिनियमके विरुद्ध जो सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा गया उसका लोगोंपर बड़ा शमनकारी प्रभाव पड़ा?

मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि यदि सत्याग्रह न किया गया होता तो भारतको जो नजारे देखने पड़े उनसे भी कहीं अधिक भयंकर नजारे उसे देखने पड़ते।

[अंग्रेजीसे]

एविडेंस बिफोर डिसऑर्डर्स इन्क्वायरी कमेटी, खण्ड २

२४५. पत्र : अखबारोंको[1]

साबरमती
जनवरी १०, १९२०

सेवामें
सम्पादक
'क्रॉनिकल'
[बम्बई]

महोदय,

श्री एन्ड्रयूजने मोम्बासासे एक तार भेजा है जिसमें वे कहते हैं :

भारतीयोंकी राजनैतिक स्वतन्त्रताका दमन करनेवाले प्रस्तावित अध्यादेशका पूरा मसविदा इस प्रकार है :

पहली बात, कि विधेयकको 'अवांछनीय व्यक्ति निष्कासन अध्यादेश, १९१९' कहा जाये।

दूसरे, पूर्वी आफ्रिकी संरक्षित प्रदेश (ईस्ट आफ्रिकन प्रोटेक्टरेट) में रहनेवाले किसी भी गैर-वतनी व्यक्तिको, जिसे अधिकृत रूपसे प्राप्त सूचनाके आधारपर सपरिषद् गवर्नर अवांछनीय समझें, उसे गवर्नर हुक्म दे सकते हैं कि वह संरक्षित प्रदेश (प्रोटेक्टरेट) से उस हुक्ममें बताई गई तारीखसे पहले चला जाये।

१. यह **यंग इंडिया**, १४–१–१९२० में भी प्रकाशित हुआ था।

तीसरे, इस हुक्मको न माननेवाले किसी भी व्यक्तिको अपराधी पाये जानेपर अदालत १,५०० रु० जुर्माना या ज्यादासे-ज्यादा छः महीनेकी साधारण अथवा सपरिश्रम कैदकी सजा अथवा जुर्माना तथा सजा दोनों एक साथ दे सकेगी। ऐसी सजासे गवर्नरके अधिकारपर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ेगा कि वह उसी व्यक्ति के विरुद्ध पिछले खण्डके अन्तर्गत और हुक्म न दे सके।

विधान परिषद्की बैठक १९ जनवरीको होगी। इस अध्यादेशका राजनीतिक दुरुपयोग न हो सके, ऐसी रोक-थामका इस अध्यादेशमें सर्वथा अभाव है। आर्थिक आयोगके सामने प्रस्तुत सबूतोंसे भारतीयोंके विरुद्ध नैतिक भ्रष्टाचारके आरोपकी पुष्टि नहीं होती। भारतीय चरित्रकी निर्दोषिता हमने सिद्ध तो कर दी है परन्तु [यहाँके] यूरोपीय लोग काफी गम्भीरतापूर्वक दक्षिण आफ्रिकी नीति अपनानेपर तुले हुए हैं?

इस तारपर किसी टिप्पणीकी जरूरत नहीं है। पूर्वी आफ्रिकामें प्रवासी भारतीयोंके विरुद्ध एक मिला-जुला और संगठित अभियान चलाया जा रहा है। मेरी नम्र रायमें यह प्रस्तावित अध्यादेश नितान्त शरारतपूर्ण है और प्रत्येक भारतीयको उस सरकारी तन्त्रकी कृपापर छोड़ देता है जो भारतीयोंके विरुद्ध आन्दोलनकारी यूरोपीयोंके मातहत है। यह आन्दोलन कितना शरारतपूर्ण और सिद्धान्तविहीन है, यह बात भारतीय प्रवासियोंके खिलाफ लगाये गये नैतिक भ्रष्टाचारके नितान्त मिथ्या आरोपोंसे ही स्पष्ट हो जाती है। भारतीयोंको बिलकुल गुलाम बनानेकी दिशामें इस प्रस्तावित अध्यादेशको मैं पहला निश्चित कानूनी कदम मानता हूँ। भारतीयोंने हाल ही में जानेवाले यूरोपीय प्रवासियोंके साथ बराबरीका दर्जा माँगनेका दुस्साहस किया है। उन्होंने वाणिज्यमें अपने प्रतिद्वन्द्वी यूरोपीयों द्वारा अपनाये गये दर्पपूर्ण रवैयेके विरुद्ध आपत्ति उठानेका साहस किया है। अतएव यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वियोंने प्रशासनको अपने काबूमें कर लिया है। पूर्वी आफ्रिकाकी जैसी स्थिति है उसमें किसी वैसे समझौतेकी गुंजाइश नहीं है जैसा कि दक्षिण आफ्रिकामें हो सकना सम्भव था, और शायद होना जरूरी भी था। दक्षिण आफ्रिकाकी परिस्थिति पूर्वी आफ्रिकी परिस्थितिसे सर्वथा भिन्न थी। पूर्वी आफ्रिकामें भारतीय अन्य सब प्रकारके प्रत्येक प्रवासीके साथ बराबरीकी शर्तोंपर रहनेके अपने स्वाभाविक अधिकारका दावा करते ही हैं, इससे भी आगे, वे अन्य प्रवासियोंके मुकाबले प्राथमिकता भी चाहते हैं। मैं आशा करता हूँ कि उनके इस दावेका भारतमें सभी समर्थन करेंगे, ताकि उनका पूरा राजनीतिक और नागरिक दर्जा सुरक्षित रहे। मैं यह भी आशा करता हूँ कि भारत सरकार अपने संदिग्ध अधिकारका पूरी तरह प्रयोग करेगी और पूर्वी आफ्रिकामें बसे ब्रिटिश भारतीयोंके संरक्षणका कर्त्तव्य निभायेगी।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२–१–१९२०

२४६. कांग्रेस

जलियाँवाले बागकी यात्रा

पिछली बार कांग्रेस [का अधिवेशन] अमृतसरमें हुआ और इस कारण यह [शहर] तीर्थस्थान ही बन गया था। अमृतसर कांग्रेसमें जो हजारों लोग आये थे, उनका पहला काम था जलियाँवाले बागके दर्शन करना। सैकड़ों लोग मुझसे मिलने आते। मैं उनसे पूछता और वे जवाब देते कि "हम लोग आते ही जलियाँवाले बागके दर्शन करने गये थे।" कितने ही वहाँकी धरतीकी मिट्टीको विभूतिकी तरह माथेपर लगाते, कितने ही निर्दोष मनुष्योंके रक्तसे अभिषिक्त उस पवित्र मिट्टीमें से थोड़ी-सी गाँठमें बाँध लेते। इस तरह पूर्व, पश्चिम और दक्षिणसे आये हुए सभी लोग अपने भाइयोंके बलिदानका स्मरण कर धन्य हुए। उन्होंने ऐसा माना कि उनका कांग्रेसमें आना सफल हुआ।

अमृतसरमें दिसम्बर महीनेके अधिकांश भागमें वर्षा होती है। अमृतसर नीची जगहमें है इसलिए वर्षा होनेपर वहाँ पानी भर जाता है। कांग्रेसके दिनोंमें बरसात शुरू हो जानेके कारण बड़ी अड़चन हुई।

अमृतसरवासियोंकी उदारता

कांग्रेसका पण्डाल और ठहरनेके तम्बू एचीसन पार्कमें थे। किन्तु नीची जगह होनेके कारण वहाँ भी पानी भर गया और मेहमानोंकी समुचित व्यवस्था करनेमें बहुत दिक्कत पैदा हो गई। किन्तु अमृतसरवासियोंने तो सभी मेहमानोंको अपना ही माना। इसके लिए हिन्दीमें 'अपनाया' शब्द प्रचलित है, जो एक सुन्दर शब्द है। यदि इसे गुजरातीमें कहा जाये तो कहेंगे कि उन्होंने मेहमानोंको 'अपना कर लिया।' जो-भी किसीको अपने घर ठहरा सकता था, वह उसे ले गया और उसका स्वागत-सत्कार किया। अतः कुछ ऐसा लगा मानों क्या प्रतिनिधि और क्या दर्शक सभी परस्पर सहानुभूतिकी भावनासे ओतप्रोत वहाँ आये हुए हैं। यह कोई ऊपरी दिखावा नहीं था बल्कि हार्दिक प्रेम था। अमृतसरवासियोंकी उदारताका कोई पार नहीं था।

मण्डप और तम्बुओंका खर्च

यह तो हुआ चित्रका सुन्दर पहलू। उसका दूसरा पहलू यह था कि मण्डप और तम्बुओंपर २,२०० रुपयेके लगभग खर्च हुए। यह खर्च जरूरी नहीं था और इतना खर्च करके जनताको कुछ अधिक दिया जा सका हो यह मैं नहीं मानता। मैं तो मानता हूँ कि बिना मण्डपके भी काम चल सकता था। मण्डपके बदले यदि खुले मैदानमें अधिवेशन किया जाये तो अधिक लोग आ सकते हैं और खर्च भी कम होगा। मण्डप धूपसे बचाता है; किन्तु दिसम्बर महीनेकी धूप तेज नहीं होती। फिर धूपसे बचनेका खर्च मण्डपकी अपेक्षा कम ही होता। वर्षाकी जो बात मैंने कही उससे भी मण्डप बनानेकी बातका समर्थन नहीं होता क्योंकि वर्षाके कारण कांग्रेसका अधिवेशन

एक दिनके लिए मुलतवी करना पड़ा था। अतः वर्षासे बचावके लिए छाजनमें जो खर्च हुआ वह अधिक ही हुआ।

जैसा मण्डप वैसा ही तम्बुओंके बारेमें भी हुआ। तम्बुओंपर खर्च करनेकी बजाय शहरके लोगोंसे मिलकर पहलेसे ही प्रबन्ध किया जा सकता था। परन्तु असलमें हम लोगोंको जो आदत पड़ गई है उससे हम मुक्त नहीं हो पाते। अतः कांग्रेस-जैसा विराट जन-सम्मेलन हुआ परन्तु जनतापर उसका पूरा-पूरा प्रभाव नहीं पड़ सका। अमृतसरमें वैशाख सुदी १को जो मेला भरता है उसमें कांग्रेसकी अपेक्षा कहीं अधिक लोग सम्मिलित होते हैं और फिर भी सबकी सुविधा तो हो ही जाती है। उनके लिए कोई बड़ा इन्तजाम नहीं करना पड़ता, पहलेसे कोई बड़ा खर्च भी नहीं करना पड़ता; यह हमारी प्राचीन प्रणाली है। उसमें स्वल्प प्रयत्नसे भी बहुत मिल जाता है। किन्तु हमारी आधुनिक प्रवृत्तियाँ तो महाप्रयास करनेपर स्वल्प परिणाम दे पाती हैं।

व्यवस्थापक समिति

किन्तु कोई यह कह सकता है कि इस शुभ अवसर की बात करते हुए यह मीनमेख क्यों? शिकायत इसीलिए कर रहा हूँ कि हम भविष्यमें इससे कहीं अच्छी व्यवस्था कर सकें। ऐसे ही विचार दूसरोंके मनमें भी उठे हैं। इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेसने एक समिति भी नामजद की है। उस समितिका काम नीचे लिखे अनुसार है:

१. कांग्रेसके संविधानकी जाँच करना और यदि उसमें फेरफार करनेकी जरूरत हो तो उसपर विचार करना।

२. कांग्रेसके जुदा-जुदा विभागोंमें रुपये-पैसेसे सम्बन्धित मदोंकी जाँच-पड़ताल करना और उनपर विचार करना।

३. आगामी वर्षके कांग्रेस-अधिवेशनके सम्बन्धमें विशिष्ट सूचनाएँ देना।

इस समितिमें सर्वश्री केलकर, रंगास्वामी आयंगार, आई० बी० सेन, माननीय विट्ठलभाई पटेल तथा मुझे नामजद किया गया है। समितिको ३० जूनके पहले अपनी रिपोर्ट दे देनी है।

भाषण पढ़ना एक जुल्म

किन्तु अभी तो मुझे एक दूसरी शिकायत भी करनी है। स्वागत समिति और कांग्रेस-अध्यक्षके भाषण इतने लम्बे होते हैं कि उन्हें किसी भी अवसरपर पढ़कर सुनाना जुल्म करने-जैसा है। किन्तु ५,००० लोगोंके सामने लम्बे-लम्बे भाषण पढ़ना तो क्रूरता ही कहलायेगी। तथापि भाषण तो लम्बे ही होते हैं। अनेक विषयोंका विवेचन करनेमें बहुतसे पन्नोंका भर जाना स्वाभाविक ही है। तो फिर क्या किया जाये? मुझे तो लगा कि ये दोनों भाषण हिन्दुस्तानी (उर्दू तथा देवनागरी लिपि)में, अंग्रेजी-में और जिस प्रान्तमें कांग्रेसका अधिवेशन हो उस प्रान्तकी भाषामें छापने चाहिए एवं प्रतिनिधियों तथा दर्शकोंको मण्डपमें आनेसे पहले, द्वारके सामने ही, मिल जाने चाहिए। फिर आध घंटेमें दोनों भाषणोंका सारांश पढ़कर सुना दिया जाये या मौखिक रूपसे कह दिया जाये, यह उचित मालूम होता है।

अध्यक्षोंके भाषण

दोनों ही व्याख्यान मनन करने लायक थे। स्वामी श्री श्रद्धानन्दजीके भाषणमें उनकी धार्मिकताकी छाप थी। हम अंग्रेजोंका अपमान कैसे कर सकते हैं? उन्होंने हमें एन्ड्रयूज, ह्यूम, वेडरबर्न जैसे लोग दिये हैं। इस तरह उन्होंने हमें प्रेमकी झाँकी दिखाई है। पण्डित मोतीलालजीके भाषणमें तीखापन था। उन्होंने पंजाबके दुःखका अनुभव किया है। उनकी आत्मा उससे बहुत दुःखी हुई है; और इसे उन्होंने अपने व्याख्यानमें प्रकट किया। स्वामीजीका भाषण हिन्दीमें होनेके कारण लोगोंने उसे ठीकसे ध्यान देकर सुना। यद्यपि बादमें लोग कुछ थक-से गये थे। मोतीलालजीका भाषण अंग्रेजीमें पढ़े जानेके कारण कोई उसे सुननेको ही तैयार नहीं था। पहले तो बहुत-ही शोर-गुल होता रहा, परन्तु पण्डित मालवीयजीके आग्रहपर कुछ शान्ति हुई। भाषणका बहुत-सा अंश तो बिना पढ़े ही छोड़ देना पड़ा।

प्रस्ताव

सम्राट्का आभार

कांग्रेसके प्रस्ताव बहुत महत्त्वपूर्ण थे। प्रथम प्रस्ताव सम्राट्का आभार माननेसे सम्बन्धित था। उस प्रस्तावपर बहस तो काफी हुई परन्तु आखिरमें वह पास हो गया। साम्राज्यीय घोषणामें जैसी उदारता दिखाई गई है वैसी उससे पहलेकी विज्ञप्ति आदिमें नहीं थी। उसके बाद हमने देखा कि बहुत-से लोग जो केवल सन्देहवश परेशान किये जा रहे थे, उससे छुटकारा पा गये हैं। यह कोई छोटी बात नहीं है। इन सबको कैद करना यदि अन्याय था तो उन्हें मुक्त करनेमें उदारता बरती गई है, इसमें सन्देह नहीं। अतः इस कामके लिए धन्यवाद देना हमारा कर्त्तव्य था।

भूलोंकी स्वीकृति और निन्दा

परन्तु प्रस्तावोंमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव तो हमारी जितनी भूलें थीं उनपर नजर डालना और उनकी निन्दा करना था। इन प्रस्तावोंको मंजूर करनेमें जो आना-कानी हो रही थी, वह समझमें न आने लायक थी। अहमदाबाद, वीरमगाँव, अमृतसर, गुजराँवाला, कसूर आदि स्थानोंमें हमारे अपने ही लोगोंने मकान जलाय, आदमियोंको मार डाला, पुल फूँके, पटरियाँ उखाड़ीं, तार काटे; इसके लिए किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। इसके पीछे सी० आई० डी० वालोंका हाथ था, यदि ऐसा कोई कहे और वह सच हो, तो भी हमारे कितने ही लोग उनकी बातोंमें फँस गये और न करने लायक काम किये। इसकी निन्दा होनी ही चाहिए। जो व्यक्ति अथवा समाज अपने दोषोंको देखनेकी इच्छा नहीं रखता अथवा उन्हें स्वीकार करनेमें डरता है, वह आगे बढ़ ही नहीं सकता। जबतक हम अपने आसपास विद्यमान गन्दगीको नहीं देख पाते तबतक हममें उसे दूर करनेकी शक्ति नहीं आ सकती। गन्दगी जमकर बैठ जाती है। इसके सिवाय जो गलतियाँ हमने की हैं जबतक हम उनकी समुचित निन्दा नहीं करते तबतक दूसरोंके दोष देखने और बतानेका हमें कोई अधिकार ही प्राप्त नहीं होता। हमने सरकारी इमारतों आदिमें आग लगाई। यदि हम इन घटनाओंपर पश्चात्ताप न

करें, प्रायश्चित्त न करें तो हम शुद्ध नहीं हो सकते, जनरल डायर द्वारा किये गये भयंकर अपराधोंको भला-बुरा नहीं कह सकते; और यदि हम अपनी भूलोंको स्वीकार न करें तो सर माइकेल ओ'डायरको पदच्युत करने तथा लॉर्ड चैम्सफोर्डको वापस बुलानेकी माँग भी नहीं कर सकते।

ऐसा भी कहा जाता है कि आप लोग किस हदतक उत्तेजित हो गये थे, यह क्यों नहीं सोचते? इसका उत्तर यह है कि यदि हम इस बातपर सोच-विचार करें तो भी मकान जलाने, निरपराधियोंको मार डालने आदि कामोंकी निन्दा करनेके लिए बाध्य हैं। गुस्सेके चाहे जितने कारण क्यों न हों, पर जो व्यक्ति गुस्सेमें आकर नुकसान नहीं करता वही जीतता है। उसीने नियमका पालन किया, ऐसा माना जायेगा। जो समाज नियमोंका पालन करना नहीं जानता, उसे अन्यायके सामने खड़े होनेका हक ही नहीं। सरकारने मुझे गिरफ्तार किया, इससे लोगोंको गुस्सा चढ़ा; परन्तु चौकियाँ जलानेसे हमें क्या मिला? विद्यार्थियोंके परीक्षाभवन फूंक देनेसे क्या फायदा हुआ? इससे नुकसान हुआ सो तो प्रत्यक्ष ही है। हमें जुर्माना भरना पड़ा, बहुतसे लोग जेल गये और बहुतसे लोगोंको साँसतमें रहकर जीना पड़ा। मेरा तो यह दृढ़ विचार है कि यदि हमने १० अप्रैलवाली भूल न की होती तो हम आज बहुत ऊँचे उठ गये होते और रौलट अधिनियम कभीका रद हो गया होता। लगभग एक हजार निरपराध व्यक्ति जलियाँवाले बागमें मारे गये। ये लोग मारे न जाते और अन्य निर्दोष व्यक्तियोंको जो जेल आदि भोगनी पड़ी वह न भोगनी पड़ती। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टिसे सोचें, हम एक ही निर्णयपर पहुँचेंगे वह यह कि हम अपने लोगों द्वारा की गई मार-काट, आगजनी आदिकी निन्दा करनेके लिए बाध्य थे। स्वराज्य मिलनेपर भी यदि हम इस प्रकारके कार्य करेंगे तो जंगली माने जायेंगे।

संकटपूर्ण स्थिति

तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव सुधार-सम्बन्धी नियमोंके बारेमें है। इस प्रस्तावपर इतना मतभेद हुआ जिससे कांग्रेसकी बैठकमें मतदानकी संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो गई। पूरी कहानी न कहकर अंतमें जो थोड़ा-सा मतभेद रह गया था उसीको समझ लेना पर्याप्त होगा। श्री दास द्वारा पेश किये गये प्रस्तावमें तीन धाराएँ थीं: जिनमें से एकका तात्पर्य यह था कि हम आज भी पूर्ण स्वराज्य पानेके योग्य हैं। दूसरी धारा थी कि मॉण्टेग्यु-सुधार अपूर्ण, असन्तोषप्रद और निराशाजनक हैं एवं तीसरी धारा यह थी, ब्रिटिश सरकारको चाहिए कि वह जल्दी ही जैसे बने वैसे पूर्ण स्वराज्य दे। माननीय पण्डित मालवीयजी, मि० जिन्ना और मुझे ऐसा लगा कि केवल इतना-भर कहकर बैठ रहनेसे जनता हमारे कामको समझ नहीं पायेगी। यदि हम सुधारोंका उपयोग करनेकी इच्छा कर रहे हैं तो फिर उन्हें निराशाजनक नहीं कहना चाहिए और यदि हम उनका उपयोग करना चाहते हैं तो हमें यह बात साफ-साफ कह देनी चाहिए। अतः यदि हम मानें कि श्री मॉण्टेग्युने हिन्दुस्तानके लिए जो सुधार सामने रखे हैं, और जिन्हें स्वीकार करानेके लिए उन्होंने बहुत कोशिश की है तो हमें उनका आभार मानना ही पड़ेगा। मैंने लक्ष्य किया कि सुधारोंका उपयोग करनेको हम सभी प्रस्तुत थे। अतः हमें "निराशाजनक"

शब्दको निकाल देना था तथा श्री मॉण्टग्युका आभार मानना था। आखिरकार "निराशाजनक" विशेषण तो ज्योंका-त्यों रहने दिया गया किन्तु मेरे अधिकांश सुझाव —ऐसी भाषामें जिन्हें दोनों पक्ष स्वीकार कर सकें — सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुए। परन्तु इसके पहले मत-गणनाकी जो योजना की गई वह एक ऐसी बात है जिसके लिए जनताकी प्रशंसा की जानी चाहिए। मण्डपमें दर्शकों सहित कुछ नहीं तो १५,००० मनुष्य एकत्रित थे और चलने-फिरने लायक रास्ता भी मुश्किलसे ही मिल पाता था। इन लोगोंमें मत देनेवालोंकी अपेक्षा मत न देनेवालोंकी संख्या अधिक थी। मत देनेवालोंकी गिनती करनेका काम लगभग असम्भव ही था। कांग्रेसके ३४ वर्षके कार्यकालमें यह पहला अवसर था जब कि दर्शकों और किसानोंके प्रतिनिधियोंको अलग करके मतगणना करनेकी सुन्दर योजना बनाई गई। लगभग पाँच घंटेतक विभिन्न विचार रखनेवाले लोगोंके भाषण हुए। सभी पक्षोंकी ऐसी राय थी कि इस बीच यदि बिना मत लिए ही कोई समाधान हो जाये तो अच्छा हो। इस सम्बन्धमें विचार-विमर्श आरम्भ हुआ। आखिरकार सुलह हो गई और मत लिए बिना श्री मॉण्टेग्युके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए तथा सुधारोंके अनुसार काम करनेका प्रस्ताव पास हो गया।

उस प्रस्तावकी भाषा जो श्री दासके पक्षमें मंजूर हुई थी, मुझे पूरे तौरपर पसन्द नहीं थी। "निराशाजनक" शब्दको रहने देना भी असह्य था। परन्तु जहाँ मूल तत्त्व सुरक्षित हो वहाँ मतभेद उत्पन्न करना मुझे उचित नहीं जान पड़ा एवं पण्डितजी, श्री जिन्ना आदि भी उससे सहमत हो गए। अतः प्रस्तावका बाकी अंश उन्हीं शब्दोंमें पास हुआ जो दोनों पक्षोंको मंजूर था। यदि कांग्रेसने सुधारोंको स्वीकार न किया होता तो मेरी अल्पमतिमें यह हमारे लिए शर्मकी बात होती। यदि सुधारोंपर अमल करनेकी हमारी इच्छा न होती और हममें उनका लाभ न उठानेकी हिम्मत होती तो मुझ जैसे व्यक्तिको कुछ नहीं कहना था। परन्तु जब उन्हें अमलमें लाना हमें मंजूर हो तब इस बातको हमारा खुले आम स्वीकार न करना तथा उपयोगी सुधार करानेवाले व्यक्तियोंका उपकार भी न मानना मुझे अनुचित जान पड़ा। साम्राज्यीय घोषणामें जिन भावोंको व्यक्त किया गया है उन्हें सद्भावनापूर्वक ग्रहण न कर सकना भी मुझे शर्मकी बात लगी। किसी आशंकाके कारण अधिकारियोंसे सहयोग करनेका विचार रखना तो कमजोरीकी निशानी है। जिस समय सहयोगसे देशका भला हो सकता हो ऐसे सभी अवसरोंपर अधिकारियोंसे सहयोग करना चाहिए। उनपर विश्वास करना मर्दानगीकी निशानी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कांग्रेसने संशोधन स्वीकार करके ठीक ही किया है और मुझे आशा है कि हम उनका सदुपयोग करके यदि इन सुधारोंमें उचित परिवर्तन करा सकें तो कुछ-ही वर्षोंमें हम पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।

असभ्यता और अत्युक्ति

इसके उपरान्त लॉर्ड चैम्सफोर्ड आदि अधिकारियोंके सम्बन्धमें प्रस्ताव पास हुए। मुझे ऐसा लगता है कि लॉर्ड चैम्सफोर्ड तथा सर माइकेल ओ'डायरसे सम्बन्धित प्रस्ताव कांग्रेस उप-समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेतक यदि स्थगित रहते तो बहुत अच्छा

होता। किन्तु विशेष कारणवश शासकोंको उनके पदसे हटानेकी माँग करनेका हमें अधिकार है; फिर भी मैं ऐसा मानता हूँ कि उपर्युक्त दोनों प्रस्ताव समयसे पहले ही पास हुए हैं। किन्तु ये प्रस्ताव पास हो चुके हैं अतः इस सम्बन्धमें अधिक टीका-टिप्पणी करनेकी जरूरत नहीं। परन्तु लॉर्ड चैम्सफोर्डको अपदस्थ करने सम्बन्धी प्रस्तावपर जो भाषण हुए वे बहुत ही खेदजनक एवं निन्दनीय थे। लॉर्ड चैम्सफोर्डको ओहदेकी दृष्टिसे अयोग्य मानना एक बात है और उनका अपमान करना, सम्राट्के प्रतिनिधिके प्रति असभ्य एवं अशिष्ट भाषाका प्रयोग करना दूसरी बात है। इससे हमारी प्रतिष्ठा घट जाती है। यदि जनतामें ऐसी भाषाका प्रचलन हो जाये तो हममें विद्यमान नम्रता, सभ्यता तथा कुलीनता आदि गुणोंपर बट्टा लगेगा। मैं यह नहीं मानता कि अत्युक्तिसे जनताको कोई लाभ पहुँचता है। अत्युक्ति तो असत्यका ही एक भोंडा रूप है। असत्यके कारण यदि जनताको कुछ मिलता भी हो तो ऐसे लाभसे इनकार कर देना ही हमारे लिए उचित होगा; क्योंकि अंतमें ऐसी उन्नति अवनतिका कारण बन जाती है।

पथ-प्रदर्शन करनेवाले प्रस्ताव

इसके अतिरिक्त जनताका पथ-प्रदर्शन करनवाले कुछ प्रस्ताव पास हुए वे तो अच्छे ही कहे जायेंगे। कांग्रेसने वर्तमान स्वदेशी आन्दोलनको मान्यता दी एवं चरखे तथा करघेकी प्रवृत्तिको अपने कार्यक्रममें सम्मिलित किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने किसानोंकी हालत जाँचनेकी घोषणा की, खिलाफत आन्दोलनमें मुसलमानोंकी सहायताका प्रस्ताव तथा ऐसे ही अन्य प्रस्ताव पास किये जो हमें आगे बढ़ानेवाले माने जायेंगे और यदि जनता इन प्रस्तावोंपर अमल करे तो उसका परिणाम शुभ ही होगा। जलियाँवाले बागपर जनताका कब्जा होना यह उसके लिए अभिमानकी बात है। इस बागकी कीमत लगभग पाँच लाख रुपये पड़ेगी तथा वहाँ जनताके दुःखको सूचित करनेवाले, हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताको बढ़ानेवाले एवं किसीके प्रति द्वेष या किसी तरहका विरोध प्रकट करनेकी इच्छा किये बिना निरपराधियोंके मृत्युरूपी यज्ञका स्मरण करानेवाले एक स्तम्भका निर्माण कराने और जो स्थान कूड़ेका ढेर होते हुए भी आज बागके नामसे प्रसिद्ध है उसे बागका वास्तविक रूप देनेके लिए लगभग पाँच लाख रुपयेकी जरूरत अवश्य होगी।[1] मुझे आशा है कि "नवजीवन" के पाठक इस कार्यमें पूरी तरहसे योग देंगे और जिससे जलियाँवाला बाग हिन्दुस्तानकी शोभा बढ़ानेवाला, हिन्दू, मुसलमान आदि सभी धर्मोंके लोगोंका तीर्थ-स्थान बन सके, ऐसा करनेमें अपना-अपना हिस्सा अदा करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-१-१९२०

१. "स्वतन्त्रताकी ज्योति" का प्रतीक ४५ फुट ऊँचा एक राष्ट्रीय स्मारक अब उस स्थलपर बना दिया गया है।

२४७. बालकोंकी अत्यधिक मृत्यु-संख्या

श्री कंचनलाल खाँडवालाने बच्चोंकी मृत्यु-संख्याके सम्बन्धमें जो पत्र लिखा है हम उसकी ओर पाठकोंका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित करना चाहते हैं। न्यूजीलैंडमें प्रतिवर्ष औसतन एक हजार बच्चोंमें से ५१ की मृत्यु होती है जब कि बम्बईमें यह संख्या ३२० तथा संयुक्त प्रान्तमें ३५२ है। इस तथ्यपर चाहे जिस ढंगसे विचार करें यह हमारे रोंगटे खड़े करनेवाला है। इसके कारण स्पष्ट हैं किन्तु ऐसे हैं जिनका उपचार किया जा सकता है। इसलिए इनपर सोच-विचार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हानिप्रद कारण बढ़ते जा रहे हैं। इनमें से कुछ-एक निम्नलिखित हैं:

(१) हवा, (२) खुराक, (३) अनमेल और बाल-विवाह, (४) विषयासक्ति, (५) स्वास्थ्यके सम्बन्धमें हमारा अज्ञान और (६) वर्त्तमान असह्य मँहगाई।

इनमें से केवल अन्तिम कारणके लिए ही फिलहाल सरकारको मुख्य रूपसे जिम्मेवार माना जा सकता है। ऐसा भेद करनेका कारण यह है कि हम अपनी बहुत-सी गलतियों और कष्टोंके लिए सरकारको दोष देते रहते हैं। हमें यह कहनेकी आदत ही पड़ गई है कि यदि स्वराज्य मिल जाये तो हमारे सभी दुःख अर्थात् बालकोंकी बढ़ती हुई मृत्यु-संख्याकी समस्या भी तत्काल हल हो सकती है। सामान्यतः इतना तो ठीक ही है कि हमारे देशमें भुखमरी अभी बढ़ती जा रही है और स्वराज्य मिल जानेपर उसे कम करना सम्भव है। तथापि हमारी अधिकांश व्याधियाँ, यदि हम उनका अपने द्वारा सम्भव, आवश्यक और उचित उपचार नहीं करते, तो स्वराज्य मिल जानेके बाद भी ज्योंकी-त्यों बनी रहेंगी। आज हम इसी विषयपर विचार करेंगे।

हम अपने यहाँकी आब-हवाको नहीं बदल सकते। बहुत अच्छी आब-हवावाले मुल्कोंमें न्यूजीलैंड भी एक है। दूसरोंकी तुलनामें हिन्दुस्तानकी आब-हवा निर्बल बना देनेवाली मानी जाती है। भयंकर गर्मीमें शरीरको स्वस्थ और सुगठित बनाना कठिन है। यह तो सभी जानते हैं कि गर्म आब-हवावाले प्रदेशकी अपेक्षा नम आब-हवा शरीरको अधिक नुकसान पहुँचाती है। फिर भी ईश्वरने मनुष्यको इतनी शक्ति दी है कि वह इस प्रकारकी बहुत-सी बाधाओंको पार कर सकता है। सभी लोग ऐसी अड़चनोंको कमो-बेश हल कर ही लेते हैं। जिस हदतक आब-हवा मृत्युके अनुपातको कम करनेमें बाधक है, उस हदतक उपयुक्त उपायोंके द्वारा हम उसके प्रतिकूल प्रभावको नष्ट कर सकते हैं। इसमें हमारी गरीबी सबसे बड़ी बाधा है। और उतनी ही बड़ी दूसरी बाधा बालकोंके पालन-पोषणके सम्बन्धमें हमारा अज्ञान है।

बालकको जैसी खुराक मिलनी चाहिए वैसी हमेशा नहीं मिलती। बालकोंकी खुराकके विषयमें जानकारी प्राप्त करना बहुत ही आसान है। बालकको माँका दूध मिलना चाहिए और जब माँका दूध मिलना बन्द हो जाये तब उसका पालन-पोषण गायके दूधपर ही होना चाहिए। किन्तु इसके बदले बालकके दाँत निकलनेके पहले ही दूधकी बजाय पके हुए अन्नका ही उपयोग होने लगता है। बालकका मेदा

खाद्यान्नको पचा सके इसके पहले ही उसे अन्न मिलने लगता है। इसलिए बालकको रोग घेर लेते हैं, वह कमजोर हो जाता है और प्रायः बेमौत मर जाता है। अनुपयुक्त आहारके कारण भी मुख्यतः हमारी गरीबी और हमारा अज्ञान ही है।

इन दोनों कारणोंसे भी ज्यादा बड़ा कारण अनमेल विवाह और बाल-विवाह है। पन्द्रह वर्षकी लड़की प्रजननके योग्य हो ही नहीं पाती। ऐसी लड़कीकी सन्तानमें साहस या जीवन-शक्ति कम होती है। हमारे बच्चे इतने निर्बल होते हैं कि उनको पालना-पोसना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। इसीलिए उनमें से अधिकतर बच्चे एक वर्षकी उम्रतक पहुँचनेके पहले ही मर जाते हैं। जिस प्रकार बाल-विवाहके कारण अधिकतर बच्चोंकी मृत्यु हो जाती है उसी प्रकार बहुतसे बच्चोंकी मृत्यु अनमेल विवाहका परिणाम है। जो लोग उम्र बीत जानेके बाद विवाह करते हैं उनकी सन्तान यदि जीवित न रहे तो इसमें अचरजकी कोई बात नहीं।

इसके अतिरिक्त अत्यधिक विषयासक्तिके कारण भी बच्चोंकी मृत्यु-संख्या बढ़ती है। पश्चिमी लोगोंने धर्मके कारण नहीं बल्कि अपने शारीरिक सुखके कारण तथा अधिक बच्चे उत्पन्न होंगे तो उनका पालन-पोषण करना कठिन होगा इस वजहसे सन्तानोत्पत्तिपर अंकुश लगा रखा है। हमारे लिए अतिरिक्त विषय-भोगको रोकनेका यह कारण पर्याप्त नहीं होता। किन्तु हम लोग हिन्दुस्तानमें पश्चिमी देशोंकी अपेक्षा अधिक धर्ममय जीवन बितानेका लम्बा-चौड़ा दावा करते हैं लेकिन हम उन धर्मविहित प्रतिबन्धोंको कोई महत्त्व ही नहीं देते अतः बहुतसे माता-पिता धर्म अथवा अर्थका विचार किये बिना विषय-भोगमें फँसकर समयका विचार किये बिना सन्तान उत्पन्न करते रहते हैं। फलस्वरूप जाने-अनजाने रोगी बालक पैदा होते हैं और वे शैशवावस्थामें ही कालका ग्रास बन जाते हैं।

पाँचवाँ कारण है हमारा स्वास्थ्य संबंधी नियमोंके बारेमें घोर अज्ञान। माता-पिता दोनोंमें से किसीको इस विषयका कोई ज्ञान नहीं होता। जिन्हें ज्ञान होता है वे उन [नियमों] पर अमल करनेमें आलस्य करते हैं और जहाँ आलस्य भी नहीं होता वहाँ साधनोंकी कमी होती है। इससे एक ही परिणाम निकलता है: बालकोंकी मृत्यु-संख्या निरन्तर बढ़ती ही जाती है। प्रायः बालकोंकी 'हत्या' का कारण दाई होती है। उसे जच्चाकी तीमारदारीका कोई ज्ञान ही नहीं होता। वह जच्चासे सामान्य नियमोंतक का पालन नहीं करवाती। इसलिए शिशु जन्म से ही बहुत ही विषम परिस्थितियोंमें पलता है और कालका ग्रास बन जाता है। यदि पहले दो महीनोंमें बच्चा बच भी गया तो दाईके समान ही अज्ञानी माता मनमाने ढंगसे उसका पालन-पोषण करती है और यदि [इस तरह] उसे मार नहीं डालती तो उसके स्वास्थ्यको तो निश्चय ही बिगाड़ देती है। अन्तिम कारण है दिन-दिन बढ़ती हुई असह्य मँहगाई। मँहगाईके कारण दूध-घी मिलना दुष्कर हो गया है। खुराकके लिए गेहूँकी आवश्यकता है किन्तु गेहूँ मिलता नहीं। इसलिए माँके दूधमें दिन-दिन पोषक तत्त्वोंकी कमी होती जाती है। और उसके बन्द हो जानेपर, माँ को इस बातकी जानकारी होनेके बावजूद, बच्चेको आवश्यक मात्रामें अच्छा दूध नहीं मिलता। ठण्डके दिनोंमें उसे पूरे कपड़े नहीं मिलते और घर भी सुविधाजनक नहीं होता। इस प्रकार प्रतिकूल

परिस्थितियाँ इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि श्री खाँडवालाने बालकोंकी जो भयंकर मृत्यु-संख्या बताई है, उसे कम करना मुश्किल हो गया है।

फिर भी उसकी रोक-थामका उपाय तो किया ही जाना चाहिए और ये उपाय हैं भी सहज। यदि जनताको दी जा रही शिक्षा ठोस नींवपर आधारित हो तो उसे बालकोंकी परवरिशका ज्ञान आसानीसे मिल जायेगा। इस दरमियान, बालकोंकी परवरिशके नियमोंको समझानेके लिए बहुत-ही सरल भाषामें लिखी हुई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ जनतामें बाँटी जायें। भाषणोंके द्वारा भी माता-पिताको इसका ज्ञान दिया जा सकता है। नम हवासे कुछ हदतक हर व्यक्ति थोड़ीसी कोशिशसे अपना बचाव कर सकता है। घरके आसपास और भीतरकी नमीको अपनी मेहनतसे दूर किया जा सकता है। बालकको दूध मिलना ही चाहिए चाहे उसके लिए अन्य मदोंमें काट-कसर क्यों न करनी पड़े। दूध जैसी परिपूर्ण खुराक दूसरी नहीं है। हर व्यक्ति अपनी वासनाओं-पर अंकुश रखे एवं जब वह इस योग्य हो और उसमें बच्चोंको पालने-पोसनेकी सामर्थ्य हो तभी सन्तानोत्पत्ति करे। ऐसे मुश्किल समयमें सन्तानोत्पत्ति करना एक प्रकार-की बहुत बड़ी हिंसा है, यह मानकर अपनी वासनाओंको जीतनेकी आवश्यकता है। स्वास्थ्य-संबंधी नियमोंको समझना कोई मुश्किल काम नहीं है। मँहगाई एक ऐसा कष्ट है जिसका कोई-न-कोई इलाज किया जा सकता है, ऐसा हम मानते हैं। यदि जनताकी आमदनी बढ़ जाये तो मँहगाईको भी बरदाश्त किया जा सकता है। अत: या तो आमदनी बढ़ेगी या मँहगाई खत्म हो जायेगी, इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है। फिर भी हमारा कर्त्तव्य तो मँहगाई दूर करनेके उपाय करना है। यह अपने-आपमें एक स्वतन्त्र तथा विस्तृत विषय है जिसपर हम फिर कभी विचार करेंगे। हमें आशा है कि सामाजिक कार्योंमें रुचि रखनेवाला हर पाठक बच्चोंकी मृत्युको कम करनेके लिए वह जो उपाय अपना सकता है उन्हें जरूर अपनायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-१-१९२०

२४८. पत्र: न्यायमूर्ति रैंकिनको

[साबरमती आश्रम]
जनवरी ११, १९२०

प्रिय श्री रैंकिन,

सविनय अवज्ञाके सिलसिलेमें मैंने अपने वक्तव्योंके जो अंश[1] देनेको कहा था वे संलग्न कर रहा हूँ। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि ३० मार्चके तुरन्त बाद प्राप्त होनेवाले स्वामी श्रद्धानन्दजीके तार और पत्र मुझे नहीं मिल सके। यदि किसी मुद्देके सम्बन्धमें आप उन्हें बहुत जरूरी सबूत समझते हैं तो मेरा खयाल है कि आप उन तारोंकी नकलें तार-विभागसे पा सकते हैं और सम्भवत: पंजाबमें सी० आई० डी० के

१. ये अंश प्राप्य नहीं हैं।

जरिये डॉ० सत्यपालके पत्रकी एक नकल भी पा सकते हैं। जो सुपरिन्टेन्डेंट मुझे सवाई माधोपुरसे बम्बई ले गया था, उसने मुझे बताया था कि डॉ० सत्यपालका मुझे लिखा गया पत्र उसने देखा था।

हृदयसे आपका,

महादेव देसाईके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखे मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९८८) की फोटो-नकलसे।

२४९. पत्र : एच० विलियमसनको

आश्रम
जनवरी ११, १९२०

श्री एच० विलियमसन
मंत्री
उपद्रव जाँच समिति

प्रिय श्री विलियमसन,

मैं अभीतक अपनी झिझकके कारण लॉर्ड हंटर तथा समितिके अन्य सदस्यों और समितिके समस्त कर्मचारियोंको आश्रम आनेका निमंत्रण देनेसे रुका रहा। पंडित जगतनारायण और साहबजादा सुलतान अहमदखाँने आश्रममें आकर मुझे सम्मानित किया, और मुझे महसूस हुआ कि अपनी झिझकके बावजूद मुझे लॉर्ड हंटर तथा समितिके अन्य सदस्योंसे कहना चाहिए कि यदि वे आयें तो उन्हें आश्रम दिखाकर और उसके बारेमें बताकर मुझे बहुत खुशी होगी। मैं जानता हूँ कि आप सब लोगोंको समयका कितना अभाव है इसलिए मैं आशा करता हूँ कि मेरा निमंत्रण स्वीकार करना आप लोगोंके लिए आवश्यक नहीं है।[1] इसके लिए समय निर्धारित करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्या आप कृपया यह पत्र लॉर्ड हंटर तथा अन्य लोगोंको जिनके लिए यह है, पढ़कर सुना देंगे? कल सोमवारको मैं आश्रममें ढाई बजेतक रहूँगा। तीन बजे मुझे शहरमें एक जगह पहुँचना है।

हृदयसे आपका,

महादेव देसाईके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखे मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९८८) की फोटो-नकलसे।

१. समितिके सदस्य दूसरे ही दिन आश्रम देखने आये थे।

२५०. पत्र : एच० विलियमसनको

आश्रम
जनवरी ११, १९२०

प्रिय श्री विलियमसन,

मैं स्वीकार करना चाहूँगा कि पंडित जगतनारायण ने मुझसे सम्बन्धित बम्बईकी उस छोटी-सी घटनाका जो विवरण मुझे पढ़कर सुनाया था उसने मुझे अबतक उद्विग्न कर रखा है।[1] मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि यदि लॉर्ड हंटर बम्बईमें वहाँकी घटनाओंके बारेमें मुझसे पूछताछ करना चाहें तो मैं गवाही देनेके लिए सहर्ष बम्बई आ जाऊँगा।[2] निश्चय ही मैं अपने विरुद्ध या उस उद्देश्यके विरुद्ध जिसका मैं प्रतिपादन करता हूँ, सभी आरोपोंका उत्तर देनेको उत्सुक हूँ, ताकि मेरी तरफसे प्रयत्नके अभावमें उद्देश्यको हानि न पहुँचे।

हृदयसे आपका,

महादेव देसाईके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखे अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६९८८) की फोटो-नकलसे।

२५१. पत्र : बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको

[साबरमती]
जनवरी ११, १९२०

प्रिय महोदय,

आपके इसी ८ तारीखके पत्रके संदर्भमें मैं कहना चाहता हूँ कि जिन परि-स्थितियोंका आपने उल्लेख किया है उन्हें देखते हुए मैं २८ फरवरीको अदालतमें हाजिर होनेकी कोशिश करूँगा।[3] क्या आप कृपया कैफियत तलबी आदेशकी सुनवाई

१. ९ जनवरीको समिति द्वारा गांधीजीसे पूछताछके दौरान पंडित जगतनारायणने गांधीजीके सामने एक सरकारी रिपोर्टका हवाला दिया। इस रिपोर्टमें बताया गया था कि जब गांधीजी ११ अप्रैलको बम्बईकी पायधुनी नामक बस्तीमें क्रुद्ध भीड़को शान्त करनेका प्रयत्न कर रहे थे तब क्या हुआ था। रिपोर्टमें कहा गया था: "यह बड़ी दिलचस्प बात है कि जब कि गांधी सभाओंमें भाषण देते समय बराबर एक आकर्षक रुग्ण व्यक्तिके रंग-ढंग अपनाते रहे हैं, लेकिन इस अवसरपर जो व्यक्ति सशस्त्र पुलिसकी कमान सँभाले हुए था उसका कहना है कि जब घुड़सवार सैनिक धावा बोल रहे थे उस समय गांधीने बचनेके लिए अपनी गाड़ीसे निकल भागनेमें आश्चर्यजनक चुस्ती और फुर्ती दिखाई।" गांधीजीने इसका खण्डन किया था।

२. समितिकी बैठक १५ जनवरीको बम्बईमें हुई थी लेकिन गांधीजीका बयान नहीं लिया गया था।

३. मुकदमेकी सुनवाई ३ मार्चको हुई थी।

उसी दिनके लिए नियत कर देंगे? मैं समझता हूँ कि प्रकाशक श्री महादेव देसाईसे भी उसी समय पूछताछ हो जायेगी।[1]

आपका विश्वस्त,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखे अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७१२८ (डी)से।

२५२. भाषण : आर्यसमाज-उत्सव, अहमदाबादमें

[जनवरी १२, १९२०]

मुझे खेद है कि समारोह जितने दिनों चलता रहा मैं उन सभी दिनों उसमें शामिल नहीं हो सका। मेरे पुराने शिक्षकने मुझसे कहा, तुम्हें आना ही होगा; और मैं उनके अनुरोधको अस्वीकार न कर सका। लेकिन मैंने सभामें आधे घंटेसे अधिक समयतक रुकनेमें अपनी असमर्थता भी उन्हें बता दी थी; क्योंकि मैंने जिन कुछ कार्योंका जिम्मा लिया है मैं निरन्तर उनको पूरा करनेमें लगा रहता हूँ। इस समाजके कितने ही उत्सवोंमें मैंने अनेक बार भाग लिया है। और हाल ही में मैं आर्य-समाजके अपने गढ़की यात्रा करके आया हूँ। आर्यसमाजके सम्बन्धमें मैंने जो विचार निश्चित किये हैं, इस अवसरपर मुझे वे विचार स्पष्ट रूपसे आपसे कह देने चाहिए क्योंकि तभी मेरा इस सभामें भाग लेना सार्थक सिद्ध होगा।

मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है लेकिन जब आर्यसमाजका पहला उत्सव[2] हुआ था तब मैंने कहा था कि हिन्दुस्तान-भरमें आज जितनी भी धार्मिक संस्थाएँ हैं और उनमें जितने भी धर्मगुरु अग्रस्थानपर विराजते हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वतीको भी उनके साथ रखा जा सकता है; यह मेरी दृढ़ मान्यता है और अनुभवोंके साथ-साथ मेरी यह मान्यता दृढ़से दृढ़तर होती चली गई है। मैं जानता हूँ कि उत्तरमें पंजाबकी ओर आर्यसमाजका बहुत जोर है; उतना अन्य किसी स्थानपर नहीं है। और इस कारण कदाचित् मेरे कथनके आशयको यहाँ ठीक-ठीक न समझा जा सके। लेकिन इतना तो मैं दक्षिण आफ्रिकामें रहते हुए [आर्य] समाजसे सम्बन्धित जिन लेखों, उपदेशों, भाषणों आदिपर मुझे मनन करनेका जो अवसर मिला उसके आधारपर आपको बतला सकता हूँ; अब मैं आपके सामने वे विचार प्रस्तुत करूँगा जिनका मैंने अनुभव किया है।

आर्यसमाजके वर्तमान आन्दोलनमें मुझे विशेष रूपसे दो दोष दिखाई पड़ते हैं। उन दो तत्त्वोंमें से एक है असहिष्णुता। अंग्रेजीमें उसे "इनटॉलरेशन" कहा जाता है।

१. गांधीजी और महादेव देसाईसे कहा गया था कि वे कारण बतायें कि एक सरकारी पत्रको **यंग इंडिया**में प्रकाशित करनेके कारण उनके विरुद्ध अदालतकी मानहानिका मुकदमा क्यों न चलाया जाये।

२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ १८९-९२।

मैं एकदम यह नहीं कह सकता कि यह बात केवल आर्यसमाजमें ही विद्यमान है; लेकिन इतना तो सच है कि आज जो हवा बह रही है उसमें आर्यसमाज बहता जा रहा है।

ऐसा धार्मिक प्रचार, जिससे लोगोंमें असहिष्णुताकी भावना पैदा हो, सच्चा प्रचार नहीं है। और वह अधिक समयतक टिक नहीं सकता। ऐसी किसी भी प्रवृत्तिको, जिससे जनताको नुकसान पहुँचता हो, रोकना धर्म-कार्य है। असहिष्णुतासे किसीको फायदा हुआ हो, ऐसा मेरे देखनेमें नहीं आया। असहिष्णुताकी भावनासे प्रेरित धर्म-प्रचार तो मिशनरियोंका अनुकरण होनेके कारण उसी ढर्रेमें ढल जाता है, और इस तरह मात्र प्रचार करना ही धर्म-कार्य बन जाता है। धर्म-प्रचारका ऐसा स्वरूप मुसलमानों और ईसाइयोंमें दिखाई देता है और आर्यसमाज द्वारा उसी पद्धतिको ग्रहण करनेके कारण उसमें भी वही असहिष्णुताका भाव पैदा हो गया है।

सर अल्फ्रेड लायल अपनी एक पुस्तकमें लिखते हैं कि सच्चा धर्म-प्रचार तो वही है जिसकी जनताको अनुभूतितक न हो। आर्यसमाजका वर्तमान स्वरूप अन्य सम्प्रदायोंके समान एक सम्प्रदायका ही हो गया है। पूछा जा सकता है कि जिससे जनताको पतातक न चले ऐसे ढंगसे चुपचाप धर्मका प्रचार कैसे किया जा सकता है? इसका उत्तर कुदरत देती है।

कुदरतकी लीला देखो, एक वृक्षके बारेमें विचार करो। क्या आप देख सकते हैं, वह किस तरह बढ़ता है, आपके अंगोंका विकास स्वयंमेव होता चला जाता है, इसके लिए आपको कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। ठीक यही बात धर्मके विषयमें भी लागू होती है।

शुद्ध धर्ममें असहिष्णुताको अवकाश नहीं; शुद्ध धर्मके गुण [साम्प्रदायिकता आदि] अन्य स्वरूपोंमें नहीं हैं। हिंसासे हिन्दू-धर्म जितना अलग-थलग रह सका है उतना कोई और धर्म नहीं रह पाया है। द्वेष-भावना भी इस धर्ममें नहीं है। हिन्दू धर्ममें भी तलवारें चली हैं और झगड़े हुए हैं; लेकिन दूसरे धर्मोंमें तो इसकी अति ही हो गई।

मुझे [आर्य] समाजमें जो दूसरा दोष दिखाई दिया, वह जीभपर काबू न रखनेसे सम्बन्धित है। आजकल तलवारकी अपेक्षा जीभका अधिक प्रयोग होता है। कटुवचनसे तलवारके घावकी अपेक्षा अधिक पीड़ा होती है। मैंने अनेक बार देखा है कि अपने प्रवचनोंमें आर्यसमाजी जीभपर काबू नहीं रखते। [यह सत्य है और यह] सबको समझ लेना चाहिए कि हम सत्यको अस्वीकार नहीं कर सकते।

ऋषि-मुनियोंके विचारों और स्वभावपर मनन करें तो आप समझ जायेंगे कि वे केवल शान्तिपूर्वक, धैर्यपूर्वक अथवा सात्विक भावसे उपदेश दिया करते थे। कभी-कभी यदि कटु सत्य कहना ही पड़ता था तो उसे यथासम्भव नरमीके साथ कहा जाता था। समाजियोंको ईसाइयोंकी धर्म-प्रचार पद्धतिका परित्याग कर देना चाहिए। वह अनुकरणीय नहीं है।

मैंने यह-सब जो कहा सो आलोचना करनेके भावसे नहीं वरन् मित्रभावसे कहा है और उसमें भी मैंने केवल अपना अभिप्राय ही व्यक्त किया है।

[गुजरातीसे]

गुजराती, २५-१-१९२०

२५३. पत्र : एडा वेस्टको

जनवरी १३, १९२०

प्रिय देवी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी लिखावट जब देखता हूँ तभी लगता है मानो मैं तुम्हारे साथ हूँ; इस समय यहाँ बहुतसे बच्चे हैं इसलिए मुझे तुम्हारी अनुपस्थिति और भी खल रही है। लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं यहाँ जो-कुछ कर रहा हूँ उसमें तुम मेरे साथ रहकर हाथ नहीं बँटा सकतीं। मेरी चिट्ठी न पानेकी तुम्हारी शिकायत मेरी समझमें नहीं आती। मैंने अभी कुछ ही दिन हुए लाहौरसे तुम्हें पत्र लिखा था। मैं तुम्हें अपने पत्र श्री रुस्तमजीकी मार्फत भेजता रहा हूँ। तुमने अपने किसी भी पत्रमें अपना पता नहीं दिया, और इसलिए ठीक क्या पता लिखना चाहिए सो समझमें नहीं आता।

आशा है श्री एन्ड्रयूजके नेटाल पहुँचनेपर तुम उनसे अवश्य मिलोगी। वे एक बहुत कठिन कामके सिलसिलेमें वहाँ आ रहे हैं। दक्षिण आफ्रिकाके लोग युद्धसे पहले जितने स्वार्थी थे, वे अब उससे कहीं अधिक स्वार्थी हो गये हैं। जिस भारतीयका वहाँ थोड़ा-बहुत व्यापार भी है, उसे वे वहाँ नहीं रहने देना चाहते।

मैं तुम्हारे इस कथनसे सहमत हूँ कि बहुत-सी शादियाँ अकसर विफल सिद्ध होती हैं और निश्चय ही मैंने देखा है कि संयमित अविवाहित जीवन विवाहित जीवनसे अच्छा होता है। विवाहके परिणामस्वरूप मनुष्यकी एकाग्रता जितनी इधर-उधर बँट जाती है, उतनी अन्य किसी चीजसे नहीं। अधिकांश मामलोंमें तो विवाह हमारी कमजोरियोंका परिणाम-मात्र होता है। विवाहित जीवनकी कठिनाइयोंके समाधानके लिए ही मैंने आश्रममें वह नियम लागू किया है, जिसे फीनिक्समें मैंने लागू तो नहीं किया था किन्तु स्वेच्छासे लोगोंको पालन करनेकी सलाह दी थी। यह लिखते समय मुझे कुमारी हॉबहाउस[1]का ज्वलन्त उदाहरण याद आता है। यदि उनपर विवाहित जीवनकी चिन्ताओंका भार होता तो दक्षिण आफ्रिकामें उन्होंने जितना बड़ा काम कर दिखाया उसे कर सकना उनके लिए कदापि सम्भव न होता। मैं अब भी आशा करता हूँ कि तुम मेरे लगभग ४० वर्षके अनुभवपर आधारित मेरे इस निष्कर्षसे सहमत हो सकोगी कि दूसरे धर्मकी सुन्दरताको समझनेके लिए किसीको अपना धर्म छोड़नेकी जरूरत नहीं है और किसी अन्यके धर्मकी सुन्दरताओंकी कद्र करनेसे मनुष्य अच्छा होनेके साथ-साथ अपने धर्ममें ज्यादा दृढ़ होता चलता है। मेरा हिन्दुत्व मुझे ईसाई धर्मकी अच्छी चीजोंको अपनानेसे नहीं रोकता, और न वह मुझे उसकी रूढ़ियोंका अन्धभक्त बनाता है। अब तुम इस कथनको समझ सकोगी कि कुमारी फैरिंग आश्रममें बिना किसी बाधाके ईसाई धर्मके अनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगी। मैं अपेक्षा

१. एमिली हॉबहाउस।

करता हूँ कि समय मिलनेपर तुम हम लोगोंके बीच फिर आओगी। मैं आशा करता हूँ कि हम जिस सुन्दर वातावरणमें रहते हैं, उसके कुमारी फैरिंग द्वारा दिये गये विवरणसे तुम्हारी यहाँ आनेकी इच्छा और बढ़ गई होगी। यदि तुम फैरिंगके अन्तर और बाह्य, दोनोंके बारेमें अपनी राय मुझे सूचित कर सको तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। उस लड़कीमें त्यागका ऐसा प्रबल गुण है कि सचमुच कभी-कभी मैं हैरान हो जाता हूँ; समझ ही नहीं पाता कि आखिर वह चाहती क्या है। तुम शायद इस मामलेमें भी मुझे अपना राज़दाँ बना सकोगी।

नये वर्षकी मंगल-कामनाओं सहित,

हृदयसे तुम्हारा,

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०२७) की फोटो-नकलसे।

२५४. पत्र : कुमारी पीटर्सनको

जनवरी १३, १९२०

प्रिय कुमारी पीटर्सन,

एक लम्बे मौनके बाद आपका पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। यह सुनते ही कि आप चाहती हैं कि कुमारी फैरिंग बड़ा दिन आपके साथ गुजारे, मैंने बिना हिचक कह दिया कि उसे आपकी इच्छाका स्वागत करना चाहिए। मैं इस ईसाई भावनाकी पूरी कद्र करता हूँ कि बड़े दिनके त्योहारपर मित्र और कुटुम्बी इकट्ठे हों और उनका स्नेहमिलन हो। मैं आपके सामने यह बात स्वीकार करना चाहूँगा कि आश्रममें कुमारी फैरिंगकी उपस्थिति हम सबके लिए आत्मोन्नतिकारी है। वह बहुत ही अच्छे स्वभावकी स्नेहशील लड़की है और उसकी बहुत ही ऊँची आकांक्षाएँ हैं। हम सब उससे फिर मिलनेकी बाट जोह रहे हैं। मैं केवल यह चाहता हूँ कि वह यहाँ स्वस्थ रहे और आश्रममें रहकर एक बेहतर और अधिक निष्ठावान ईसाई बन सके। जैसा कि मैंने उसे बार-बार बताया है, उसका आश्रममें रहनेका औचित्य केवल तभी सिद्ध किया जा सकता है जब आश्रमके वातावरणमें उसकी ईसाई भावना न केवल अक्षुण्ण बनी रहे वरन् पहलेसे भी अधिक शुद्ध और परिष्कृत हो जाये। मैं अपने आपको बिलकुल पक्का हिन्दू मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि हिन्दुत्वके सत्यका मुझे काफी सूक्ष्म ज्ञान है, और इससे जो अमूल्य शिक्षा मैंने ग्रहण की है वह यह कि मेरी अभिलाषा यह नहीं होनी चाहिए कि अन्य लोग भी हिन्दू बन जायें, बल्कि यह हो कि वे जिस धर्मको मानते हैं उसका सर्वोत्तम उदाहरण बनें। यह तय मानो कि यहाँ आनेपर तुम्हें पूराका-पूरा दिन मेरे साथ बिताना होगा। भारतकी गर्मीसे आप डरें नहीं। मैं आपके लिए सालके दो सबसे ज्यादा गर्म महीने ठंडी जगहमें बितानेका प्रबन्ध आसानीसे कर सकता हूँ। भारतमें ऐसे कई स्थान हैं। वे पहुँचके बाहर भी नहीं हैं।

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०५२) की फोटो-नकलसे।

२५५. पत्र : सर जॉर्ज बार्न्सको

जनवरी १३, १९२०

प्रिय सर जॉर्ज बार्न्स,

मैं एक तार[1] इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ जो दक्षिण आफ्रिकासे मुझे मिला है। क्रूगर्सडॉर्पके मामलेका[2] जो हवाला है उसे आप शायद आसानीसे समझ सकेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि नये अधिनियम द्वारा जो आंशिक संरक्षण पानेकी कोशिश की गई थी, वह हालके फैसलेसे बेकार हो गई है। फैसलेपर अभी अपील की गई है और यदि हम ऐसा मानकर चलें कि अपीलमें भी हमारे विरुद्ध फैसला हो जाता है तो हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते। जहाँ कानून ही दोषपूर्ण हो वहाँ अदालतें कुछ भी राहत नहीं दे पातीं। इसका सशक्त प्रमाण उस वक्त मिला था जब उच्च न्यायालयके एक फैसलेसे[3] दक्षिण आफ्रिकाका वह प्रचलन छिन्न-भिन्न हो गया था जो भारतीय विवाहोंको कानूनी मानता था। आप जानते हैं कि १९१४ के कानूनने[4] उक्त फैसलेसे होनेवाली हानिका निराकरण किया था। मैं समझता हूँ कि आप इसका ध्यान रखेंगे तथा सर बेंजामिन रॉबर्टसनको हिदायत देंगे कि भारतीयोंके निगम बनाकर या अन्य प्रकारसे अचल सम्पत्ति रखनेके हकमें किसी तरहकी बाधा न पड़े।

तारमें जो दूसरा मुद्दा उठाया गया है वह उस आयोगके सम्बन्धमें है जो नगरपालिकाओंके अधिकारोंमें प्रस्तावित विस्तारपर विचार करनेके लिए बैठ रहा है। निर्वाचित संस्थाओंकी शक्तिके विस्तारसे कोई डरे, यह बात विचित्र अवश्य लगती है परन्तु यहाँ जब शक्ति पानेकी कोशिश ही इसलिए हो रही है कि उन लोगोंका, जिनका कोई प्रतिनिधित्व नहीं है, जीवन बरबाद कर दिया जाये तो ऐसी शक्तिको और बढ़ने देना वास्तवमें अपराध है। अतएव मैं आशा करता हूँ कि सर बेंजामिन रॉबर्टसन इस बातका ध्यान रखेंगे कि दक्षिण आफ्रिकाकी नगरपालिकाओंके मौजूदा अधिकारोंको बढ़ानेका कोई भी कानून बने तो वह उन भारतीयोंके अधिकारोंका पूरा-पूरा संरक्षण करे जिन्हें ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटकी नगरपालिकाओंमें कोई भी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है और केप तथा नेटालमें आंशिक प्रतिनिधित्व ही प्राप्त है।

आपने शायद इस बातपर गौर न किया हो कि पूर्वी आफ्रिकी प्रश्न अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है। मैंने समाचारपत्रोंको एक पत्र लिखा है जिसे मैं संलग्न

१. यह तार उपलब्ध नहीं है।

२. क्रूगर्सडॉर्प नगरपालिका बनाम दादू लिमिटेड। देखिए "पत्र : अखबारोंको", २५-१-१९२० के पूर्व।

३. सर्ले निर्णय, देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट १।

४. भारतीय राहत-अधिनियम, देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट २५।

कर रहा हूँ।[1] आपने शायद उसे देखा होगा। क्या यह सम्भव नहीं कि आप मुझे इस विषयपर प्रकाशनार्थ कुछ सामग्री दें जैसी कि आपने कृपापूर्वक दक्षिण आफ्रिकाके बारेमें दी थी? आशा है कि आपके तारके जवाबमें मेरा तार आपको मिला होगा। कृपया लेडी बार्न्ज़ और कुमारी बार्न्ज़से मेरा यथोचित निवेदन करें।

आप सबको नये वर्षकी शुभकामनाएँ।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०५३)की फोटो-नकलसे।

२५६. पत्र: सी० पी० रामस्वामी अय्यरको

जनवरी १३, १९२०

प्रिय श्री रामस्वामी,

आपके पत्र[2]के लिए धन्यवाद। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि जो संशोधन[3] अन्ततः पास हुआ वह वैसा नहीं है जैसा कि होना चाहिए था, परन्तु समझौतेका सार ही यह होता है कि वह किसी भी पक्षको पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं करता। इसमें प्रत्येक पक्षको कुछ ऐसी चीजका त्याग करना पड़ता है जो उसे प्रिय तो है किन्तु जो सिद्धान्तका अभिन्न अंग नहीं है। मेरा संशोधन[4] निश्चित रूपसे शोभनीय था और श्री मॉण्टेग्युकी महान् सेवाओंके प्रति उचित न्याय करता था। दूसरी ओर श्री पालका संशोधन उग्र था, क्योंकि उसमें 'सुधारोंका प्रयोग' जैसा शब्द-प्रयोग था। जिस संशोधनपर सभी सहमत हुए, वह बीचका रास्ता लेता था और मुझे लगा कि वह काफी है और मात्र इतना ही है कि देशको दिशा-दर्शन दे सके।

१. देखिए "पत्र: अखबारोंको", १०-१-१९२०।

२. इसपर ७ जनवरीकी तारीख दी हुई थी।

३. तात्पर्य कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें पास किये गये सुधार प्रस्तावके संशोधनसे है। सी० पी० रामस्वामी अय्यरने अपने पत्रमें लिखा था: "...अगर आपने अपने प्रभावका उपयोग न किया होता तो कांग्रेसने जितनी हिंसात्मक और गैरजिम्मेदार कार्रवाईकी वह उससे भी अधिक हिंसात्मक और गैरजिम्मेदार कार्रवाई करती। लेकिन कहना पड़ता है कि आपने जो यह संशोधन स्वीकार कर लिया उससे मुझे बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उस संशोधनके बाद तो इस प्रस्तावका कोई मतलब ही नहीं रह जाता। क्या हममें से कोई भी ईमानदारीके साथ यह कह सकता है कि हमें इतना काफी नहीं दिया गया था जिससे हम अपनी स्वशासनकी क्षमताका प्रदर्शन कर सकते और क्या यह कहा जा सकता है कि अगर श्री मॉण्टेग्युने, जिनकी वास्तवमें जायज निन्दा ही की गई है, और लॉर्ड सिन्हाने, जिनका तिरस्कार-उपेक्षा करना आज फैशन-सा हो गया है, बहुत ही कठिन परिस्थितियोंमें भी आग्रहपूर्वक हमारा पक्ष-पोषण न किया होता तो हमें जो-कुछ मिला है, वह न मिल पाता?"

४. देखिए "भाषण: अमृतसर कांग्रेसमें सुधार प्रस्तावपर", १-१-१९२०।

'मद्रास मेल'में प्रकाशित आपका लेख[1] पढ़नेका समय मुझे नहीं मिल पाया है। मैं उसे पढ़ूँगा और आशा है कि कुछ समयके बाद इसके विषयमें आपको लिखूंगा।

हृदयसे आपका,

पेंसिलसे लिखे अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०३४ ए) से।

२५७. पत्र : लछमैयाको

मारिशस[2]

जनवरी १३, १९२०

प्रिय श्री लछमैया,

आपका पत्र मिला। आशा है कि १६ तारीखको मैं बम्बईमें होऊँगा। क्या आप मुझसे श्री रेवाशंकरके बँगलेपर मिल सकेंगे? मैंने विल्बरफोर्सका पत्र पढ़ लिया है, परन्तु आपसे मुझे स्थितिका अधिक सही हाल पता चलेगा। मैं बम्बईमें इतना व्यस्त रहूँगा कि मैं चाहूँगा कि आप मेरा अधिक समय न लें। मुझे ऐसा कहनेके लिए आप क्षमा करेंगे, परन्तु मैं यह इसलिए लिख रहा हूँ ताकि मुझसे आपको क्या-क्या कहना है यह सब आप सोच रखें और अपने विचारोंको इस तरह व्यवस्थित कर सकें कि आप मुझे जो-कुछ भी बताना चाहते हों, वह कुछ मिनटोंमें बता सकें।

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०५१) की फोटो-नकलसे।

२५८. बहिष्कार और स्वदेशी

श्री बैप्टिस्टाने[3] यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि बहिष्कार स्वदेशी ही नहीं बल्कि उससे बढ़कर है। अपने कथनके समर्थनमें उन्होंने कहा है कि एक तो यह अपने देशमें बनी वस्तुओंके प्रयोगके लिए लोगोंको प्रेरित करके स्वदेशीका उद्देश्य पूरा करता है और दूसरे ब्रिटिश व्यवसायियों और उद्योगपतियोंकी आमदनीपर चोट करके एक असर पैदा करता है। श्री बैप्टिस्टाने यह भी कहा है कि बहिष्कारकी मेरी धारणा पूरी तौरपर धार्मिक है इस कारण ब्रिटिश जनताकी समझमें नहीं आती, जब कि बहिष्कारको वह सदासे पूर्णतः संवैधानिक एवं उचित साधन मानती आयी है।

जो लोग बहिष्कार और स्वदेशीको एक ही चीज बतलाते हैं, उन्होंने न तो स्वदेशीका तात्पर्य समझा है और न बहिष्कारका। स्वदेशी एक सनातन सिद्धान्त है,

१. तात्पर्य "द पार्टीज़ ऑफ द फ्यूचर" शीर्षक लेखसे है। श्री अय्यरने गांधीजीसे इसे देख जानेका अनुरोध किया था।

२. मूलमें यह गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें है जो सम्भवतः पत्रकी फाइलकी ओर संकेत करता है।

३. जोसेफ बैप्टिस्टा, राष्ट्रीय नेता जो होमरूल आन्दोलनसे सम्बद्ध थे।

जिसके प्रति असावधानी दिखानेसे मनुष्य जातिको अकथनीय कष्ट भोगने पड़े हैं। स्वदेशीके माने हैं अपने ही देशमें तैयार मालका उत्पादन और वितरण। अपने वर्तमान संकुचित अर्थमें इसका मतलब होगा किसान जनताके लिए काम जुटाकर प्रतिवर्ष साठ करोड़ रुपयोंकी बचत। इसका मतलब देशकी ७२ प्रतिशत जन-संख्याके लिए एक अत्यावश्यक अनुपूरक उद्योग जुटाना भी है। स्वदेशी एक रचनात्मक कार्यक्रम है; जब कि बहिष्कार जान-बूझकर आर्थिक हानि पहुँचाकर ब्रिटिश जनताको विवश करनेका एक अस्थायी काम-चलाऊ साधन है। इसलिए अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिए बहिष्कार तो एक अनुचित दबाव डालना हुआ। बहिष्कारका एक अप्रत्यक्ष परिणाम अपने देशके उत्पादनमें वृद्धि भी हो सकता है, लेकिन तभी जब इसका प्रचार बहुत दिनोंतक होता रहे। परन्तु इससे एक अन्य चिन्ताजनक बात अवश्य पैदा हो जाती है, इसलिए कि बहिष्कारका अर्थ सभी विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार नहीं; केवल ब्रिटिश वस्तुओंका बहिष्कार है। इससे अधिक सम्भावना इसी बातकी है कि अन्य देशों जैसे अमेरिका तथा जापानकी वस्तुओंका प्रचार बढ़ जायेगा। जापानका व्यापार भारतीय बाजारमें जिस तरह अपना प्रभुत्व जमाता जा रहा है, उसे मैं सदा आशंकाकी दृष्टिसे देखता हूँ। बहिष्कार जबतक काफी सर्व-व्यापक न हो, तबतक वह प्रभावकारी नहीं हो सकता, पर स्वदेशीका पालन तो यदि एक व्यक्ति करे तो भी उससे देशको लाभ होगा। केवल क्रोध, रोष और आवेश उत्पन्न करनेवाले साधनोंके सहारे ही बहिष्कार सफल हो सकता है। इससे अनचाहे परिणाम भी उपस्थित हो सकते हैं और दोनों पक्षोंके बीच स्थायी रूपसे अलगाव पैदा हो सकता है। इसपर श्री बैप्टिस्टाका कहना है कि यदि मेरे सदृश कोई व्यक्ति इसकी देखरेख करनेवाला हो तो इससे किसी तरहका राग-द्वेष पैदा होनेकी सम्भावना नहीं हो सकती। पर मैं इस बातको दृढ़तासे कह सकता हूँ कि श्री बैप्टिस्टाकी यह कल्पना निर्मूल है। जिस मनुष्यपर घोरतम अत्याचार किये गये हैं, उसके क्रोध और द्वेषको भड़कानेके लिए जरा-सा बहाना ही काफी होता है। उससे ब्रिटिश वस्तुओंका बहिष्कार करनेको कहना, उसके हृदयमें अन्यायीको सजा देनेका विचार जगाना है। और दण्डकी परिणति क्रोधमें होती ही है।

श्री जहूर अहमदने भी मेरी बातोंकी आलोचना करते हुए लिखा है कि सहयोगसे हाथ खींचने और बहिष्कारमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं। भेद केवल इतना ही है कि इसका प्रयोग स्वतंत्रताके साथ नहीं हो सकता। इसलिए यह कहीं कम प्रभावशाली होता है। यदि मैं किसी पापीके साथ सहयोग करता हूँ तो मैं भी पापाचारमें शामिल होता हूँ। इसलिए जिस समय पापीके पापाचारकी मात्रा बढ़ जाती है उस समय उसके साथ सहयोग बन्द करना आवश्यक हो जाता है। और यदि एक आदमी भी उसके सहयोगसे हाथ खींच लेता है तो उतना असर उसके कामपर अवश्य पड़ता है। पर चूँकि बहिष्कार एक प्रकारका दण्ड है और चूँकि दण्ड कभी भी कर्त्तव्यकी कोटिमें नहीं आ सकता, इसलिए जबतक बहिष्कार अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता तबतक उसपर किया गया प्रयत्न निष्फल ही होता है। मुट्ठी-भर आदमियों द्वारा बहिष्कारका वही फल होगा जो हाथीको सींकसे मारनेका।

मैं इस बातको स्वीकार करता हूँ कि मैं बहिष्कारका बुनियादी रूपसे विरोध करता हूँ और मेरा विरोध धार्मिक धारणापर आधारित है। लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि मैं धर्म-परक नियमोंको राजनैतिक क्षेत्रपर भी लागू करना चाहता हूँ। मैं इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं कि ब्रिटेनके लोग इसे नहीं समझ पायेंगे। दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंको मैंने इस सिद्धान्तको बड़ी आसानीसे समझाया है और उन्होंने समझा है। और न इसे प्रभावशील बनानेके लिए किसी धर्म-परक विचारका पालन करना आवश्यक है। मेरा सिर्फ यह कहना है कि शुद्ध धार्मिकताके सहारे जो काम किया जाये उसे बड़ी आसानीसे समझा और किया जा सकता है। यदि आध्यात्मिकता व्यावहारिकतापूर्ण न हो तो उसका कोई मतलब ही नहीं। यदि हमारे हाथ गन्दे हों तो उनको धो लेनेकी बात समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती, और ऐसा करना भी इतना ही सहज होता है, पर है यह वास्तवमें एक आध्यात्मिक काम ही। स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मस्तिष्कका सिद्धान्त वास्तवमें आत्माका सिद्धान्त है। और जिस प्रकार हम सफाईके विषयमें एक धर्म-परक दृष्टि रखे बिना भी हाथोंकी सफाई करनेकी आवश्यकता समझ सकते हैं, उसी प्रकार हम बहिष्कारकी व्यावहारिक असफलता और कुछ निश्चित परिस्थितियोंमें असहयोगकी व्यावहारिक आवश्यकताको भी, इनका धर्म-परक आधार समझे बिना ही, समझ सकते हैं।

तब क्या बहिष्कार व्यावहारिक है? श्री बैप्टिस्टाने ब्रिटिश मालके बहिष्कारका अनुमोदन किया है। मेरा कथन यह है कि जिस बातमें देशका स्थायी और अमिट कल्याण है यदि उसकी प्रेरणा भी व्यापारियोंको प्रेरित नहीं कर सकती कि वे स्वदेशीका पक्ष ग्रहण करें और इस तरह विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करें, तो ब्रिटिश लोगोंसे न्याय पानेके लिए ब्रिटिश वस्तुओंके बहिष्कारके लिए व्यापारियोंसे अपील करके उनको प्रेरित करनकी आशा व्यर्थ सिद्ध होगी। जब कोई घटना हो चुकी हो तो उसपर बहिष्कार किसी तरहका प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता। यदि उस घटनाके परिणाम-पर बहिष्कारका कोई असर डालना है तो बहिष्कार तात्कालिक होना चाहिए। मेरी धारणा है कि तात्कालिक कार्रवाईके लिए हम पूरी तरह संगठित नहीं हैं। तुरन्त जो संगठन हम खड़ा कर सकते हैं उसके लिए बहिष्कारका इतना बड़ा क्षेत्र सँभालना सम्भव नहीं होगा। इसके अतिरिक्त ब्रिटेनके उद्योगपति दूसरी तरकीबसे भी अपना माल भारतमें भेज सकते हैं। जिस तरह कई वर्ष पहले जर्मनी इंग्लैंडके जरिये अपना माल यहाँ भेजता था, उसी प्रकार ब्रिटेन भी अमेरिका या जापानके जरिये भारतीय बाजारमें अपना माल भज सकता है।

म स्वदेशीका प्रण इसलिए लेता हूँ कि यह एक विकासशील प्रक्रिया है, अर्थात् जितनी आगे बढ़ती जायेगी उतनी ही शक्तिशाली बनती जायेगी। इसका काम छोटेसे-छोटे संगठनके द्वारा भी हो सकता है। यह शासकों या ब्रिटिश जनताके न्याय या अन्यायसे सर्वथा स्वतन्त्र है। अर्थात् इसपर उसका कोई असर नहीं पड़ सकता। यह स्वयं ही अपनेमें पुरस्कार है। "इसमें असफलता और शक्तिके अपव्ययकी सम्भावना नहीं। इस धर्मपर थोड़ा भी आचरण करनेसे मनुष्य एक भारी खतरेसे बच जाता

है।" इसलिए स्वदेशी और बहिष्कार एक ही होना तो दूर, दोनोंमें जमीन-आसमानका अन्तर है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१-१९२०

२५९. कांग्रेसमें सुधार-प्रस्ताव

हमारी एक टिप्पणीमें[1] सुधारोंपर प्रस्तावके बारेमें विचार वैभिन्यका जो सारांश दिया गया है उसपर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। समझौते कभी भी सभी पक्षोंको पूरा सन्तोष नहीं दे पाते। उनकी प्रकृति ही है कि उनसे पूरा सन्तोष नहीं मिलता किन्तु फिर भी वे सबको स्वीकार्य होते हैं। हमारी रायमें तो देशको कांग्रेससे वह मार्गदर्शन मिल गया जो वह उसे दे सकती थी। यदि कांग्रेसको देशकी सेवा करनी है तो उसका अधिकाधिक झुकाव एक दृष्टिकोणके बजाय अनेक दृष्टिकोणोंको प्रतिनिधित्व प्रदान करनेकी ओर होना चाहिए और वह भी न केवल विषय-समितिमें बल्कि सार्वजनिक मंचपर। इस तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता कि देशमें कई दल हैं। गरम और नरम दलके अलावा और भी दल हैं। उदाहरणके लिए गरम कहलानेवाले शिविर-में श्री कस्तूरी रंगा आयंगार, श्री दास और लोकमान्यके दल हैं। निश्चय ही उनका आरम्भ गरम दलके झंडेके नीचे हुआ था। परन्तु जैसे-जैसे उनमें मतभेद बढ़ेंगे, जो कि समयपर अवश्य होगा, तब प्रत्येक दल अपनी बातपर अड़ना शुरू करेगा। माननीय पंडित मालवीयजी गरम दलसे सर्वथा भिन्न प्रकारकी एक विचारधाराका प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार नरम दलमें भी निश्चय ही मतभेद हैं जो समय बीतनेके साथ कम होनेके बजाय बढ़ेंगे और कोई कारण नहीं कि एक सही संविधान द्वारा इन सब विभिन्न मतोंपर शांतिसे और कांग्रेसके मंचकी गरिमाके अनुकूल विचार-विनिमयके बाद जो मत या विचारधारा प्राप्त हो, कांग्रेस उसका प्रतिनिधित्व न करे। कांग्रेसके इति-हासमें पहली बार प्रतिनिधियोंके सामने एक ऐसे विषयपर खुले रूपसे तर्कपूर्ण बहस हुई जो देशके लिए अत्यन्त महत्त्व रखती है और पहली बार कांग्रेसके निर्णयकी ठीक जानकारीके लिए मतदान करानेकी सुविस्तृत तैयारी की गई। हमारी रायमें यह अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। परन्तु इससे अधिक भी हुआ। निस्सन्देह चाहते तो दोनों पक्ष संशोधनपर मत विभाजन करानेका आग्रह कर सकते थे। हम श्रीमती बेसेंट-के इस विचारको स्वीकार नहीं कर सकते कि लोकमान्यने अपने अनुयायियोंसे कहा था कि यदि श्री गांधी अपने संशोधनपर अड़े रहें तो वे उनके पक्षमें मत दें। यदि श्रीमती बेसेंटकी जानकारी सही भी हो तो भी श्री गांधीके लिए आग्रहपूर्वक

१. उक्त टिप्पणियाँ यहाँ नहीं दी गई। इस विषयपर विस्तृत चर्चाके लिए देखिए "कांग्रेस", ११-१-१९२०।

मामलेको मत विभाजनकी स्थितितक ले जाना शायद ही उचित होता। उन्हींके संशोधनके फलस्वरूप श्री पालका संशोधन सामने आया। श्री पालका संशोधन तो एक नीतिपूर्ण कदम था। यदि प्रतिनिधियोंके सामने मूल प्रस्ताव, अर्थात् बिना सहयोग तथा धन्यवादवाले प्रस्ताव एवं श्री गांधीके सधन्यवाद प्रस्तावमें से एकको चुननेका सवाल होता तब मत विभाजन करवाना कर्त्तव्य होता। परन्तु श्री पालका संशोधन प्रतिनिधियोंकी प्रतिक्रिया जाननेके इरादेसे पेश किया गया और वह गरम दलकी इस इच्छाका भी द्योतक था कि जिस हदतक अपनी बात रखते हुए सम्भव हो उस हदतक वे विरोधी संशोधनको मान लेंगे। श्री पालका संशोधन स्वीकार नहीं किया जा सका, क्योंकि उसमें 'प्रयोग' जैसे अशोभनीय शब्दको रखा गया था, अतएव स्वभावतः बीचका रास्ता अख्तियार करते हुए एक तीसरा संशोधन लाना पड़ा। सन्तोष इसी बातका नहीं है कि समझौता हो गया, बल्कि इस बातका भी है कि सभी लोग खुले तौरपर मत विभाजनकी स्थिति बचानेके लिए उत्सुक थे। निश्चय ही, देशके लिए इसका यह अर्थ है कि अधिकारियोंसे कांग्रेस उस हदतक सहयोग करना चाहती है जहाँतक वैसा करना उत्तरदायी सरकारकी शीघ्र स्थापनामें सहायक हो सके, और वह श्री मॉण्टेग्युको सुधारोंके विषयमें किये गये उनके मूल्यवान परिश्रमके लिए धन्यवाद देना चाहती है। यदि मूल संशोधनकी सौम्य भाषा स्वीकार कर ली जाती, यदि धन्यवाद अधिक हार्दिक रूपसे व्यक्त किया गया होता और लॉर्ड सिन्हाको भी दिया गया होता तो हम निश्चय ही इसे अधिक पसन्द करते। परन्तु सहयोग और धन्यवाद प्रकट करनेके सिद्धान्तको तीनों नेताओं द्वारा स्वीकार कर लिये जानेके बाद सभामें मत विभाजन कराना गलत बात होती। हम यह बात स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं कि लोकमान्य तिलकने संशोधन इसीलिए स्वीकार कर लिया क्योंकि वे सर्वश्री मालवीय और गांधीको अपने उपकरणोंकी तरह इस्तेमाल करना चाहते थे और यदि वे उनके हाथमें खिलौना बनना स्वीकार करते तो इसका दोष लोकमान्य तिलकपर न होता, बल्कि जाहिर है कि सर्वश्री मालवीय और गांधी अपनी सिधाईके लिए दोषी होते। क्योंकि जैसे-जैसे दलका संगठन बढ़ता जायेगा हम समझते हैं कि दलके नेताओंके लिए अन्य लोगोंका अपने उपकरणके रूपमें प्रयुक्त करना ही उचित बात समझी जायेगी, बशर्ते कि ऐसे लोग मौजूद हों। इस भयसे कि कहीं हम किसीके हाथका खिलौना न बन जायें, सही मार्ग चुननेमें हिचकनेसे ज्यादा सावधानी अपनी राजनीतिको शुद्ध बनानेमें बरतनी होगी। लोकमान्य तिलक एक निश्चित विचारधाराका प्रतिनिधित्व करते हैं, और उसे छिपाते नहीं। वे मानते हैं कि राजनीतिमें सब-कुछ उचित है। राजनीतिक जीवनकी इसी धारणाको लेकर हमने उनसे मोर्चा लिया है। हमारा विचार है कि यदि हमने पाश्चात्य कूटनीति और तरीकोंको अपनाया तो हमारे देशका राजनीतिक जीवन भ्रष्ट हो जायेगा। हमारा विश्वास है कि सचाई, साफ व्यवहार और उदारतापर दृढ़तासे जमे रहकर ही हम देशके सच्चे हितको आगे बढ़ा सकते हैं, अन्यथा नहीं। परन्तु जिस बुनियादी मतभेदका उल्लेख हमने ऊपर किया है उसके कारण हम यह माननेसे इनकार करते हैं कि संशोधनको स्वीकार करनेमें लोकमान्य तिलकका मंशा अपने विरोधियोंके विचारोंको यथासम्भव मान्य करनेके अलावा कुछ-और भी था। कुल मिलाकर हमारी रायमें

'टाइम्स ऑफ इंडिया'ने स्थितिका जैसा विश्लेषण किया है वही समझौतेके बादकी स्थितिका एकमात्र सच्चा विश्लेषण है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१-१९२०

२६०. पत्र: रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

आश्रम
साबरमती
जनवरी १४, १९२०

प्रिय गुरुदेव,

आजतक मुझे इसका कोई अन्दाज नहीं था कि गुजरात साहित्य सभाका सम्मेलन जिस समय होनेकी आशा थी उस समय नहीं हुआ। सम्मेलनके मुख्य संयोजक डॉक्टर हरिप्रसादने मुझे बताया कि आपके शामिल न हो सकनेके कारणोंमें मुख्य बात यह थी कि आपको बहुत देरसे सूचना दी गई थी, अत: यह निर्णय किया गया कि सम्मेलनको ईस्टरतक के लिए मुल्तवी कर दिया जाये। औचित्यके किसी सिद्धान्तको भंग किये बिना ऐसा किया जा सकता था क्योंकि सम्मेलन कोई ऐसा वार्षिक कार्यक्रम नहीं है जिसका एक नियत समयपर होना अनिवार्य हो। मैं जानता हूँ कि यदि आपका स्वास्थ्य तथा अन्य परिस्थितियाँ अनुकूल रहीं तो आप निमन्त्रण स्वीकार कर लेंगे, और मुझे पूरी आशा है कि गुजरातकी राजधानीको ईस्टरमें आपका स्वागत करनेका गौरव प्राप्त होगा।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजी द्वारा हस्ताक्षरित हस्तलिखित मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ४६२६) की फोटो-नकलसे।

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुरने २ अप्रैलको सम्मेलनमें भाषण दिया।

नहीं होता। कभी-कभी तो वह अपने व्यवहारमें क्षुद्रताका संकेत भी दे सकती है; फिर आजकल वह शरीरसे भी कमजोर हो गई है। इसलिए क्षुद्रताका जवाब महानतासे दे सकनेके लिए तुम्हें ईसाइयत उदारताकी सम्पूर्ण शिक्षाका सहारा लेना होगा। और हमारा व्यवहार सचमुच उदार तो तभी हो सकता है जब हम खुशी-खुशी वैसा करें। मैं कुछ ऐसे बन्धुओंको भी जानता हूँ जो बहुत विवश होकर ही उदारता बरतते हैं। उनकी उदारतामें तो वही भाव होता है जो बलिवेदीपर चढ़नेवाले किसी व्यक्तिका होता है। दु:खमें प्रसन्न रहना, जो अपमान करे उसपर तरस खाना और उसकी इस कमजोरीके लिए उसे और अधिक प्यार करना वास्तविक उदारता है। लेकिन हो सकता है, हम उस स्थितिको प्राप्त न कर सकें। उस हालतमें उचित है कि हम इस दिशामें प्रयोग न करें। इसलिए प्यारी बच्ची अगर तुम्हें ऐसा लगे कि बा तुम्हें बहुत परेशान कर रही है तो मैंने उसके साथ जो निकटता स्थापित करनेको कहा है, वह मत करना। मैं नहीं चाहता कि किसी भी हालतमें तुम अपनी आन्तरिक शांति और प्रसन्नताको खो बैठो। मैं चाहता हूँ तुम अपनी जीवनचर्याको ऐसा बनाओ जिससे आश्रममें तुम्हें अधिक प्रसन्नता, अधिक सुख और सत्यका अधिक अच्छा बोध हो। मैं तो चाहता हूँ, आश्रममें रहनेके फलस्वरूप तुममें ईसाइयतकी और ज्यादा खूबियाँ आयें। कल पूरे दिन और रातको भी मैं तुम्हारे बारेमें ही सोचता रहा। मैं ईश्वरसे यही प्रार्थना करूँगा कि वह तुम्हें शरीर, मन, और भावना हर दृष्टिसे और अधिक स्वस्थ बनाये ताकि तुम उसकी ज्यादा सेवा कर सको।[१]

और मैं चाहता हूँ तुम दीपकसे मेल-जोल बढ़ाओ। वह एक दूसरा बड़ा प्रयोग है। तुम्हें महादेव बतायेगा कि वह कौन है, अधिक लिखनेका समय नहीं है।

यदि तुम चाहो तो इस पत्रको महादेवको भी पढ़वा देना। इसे लिखनेसे पहले मैंने काफी प्रार्थना की थी और यह उसीका परिणाम है। आज बिलकुल सुबह ही मैं तुम्हें उत्साह दिलानेके लिए दो शब्द लिखना चाहता था। बेचारे महादेवके बारेमें भी मेरी ऐसी ही भावना है। उसे तो बड़ा दु:सह भार ढोना है और ईश्वरकी कृपासे उसकी अन्तरात्मा भी इतनी जागरूक है कि उसे कभी कोई ढिलाई नहीं करने देती। लेकिन वह झीखता बहुत है, उसे दैवी तत्त्वकी पर्याप्त अनुभूति नहीं हो पाई है और इसीलिए वह चिन्ता करता है। उसकी मदद करना तथा खुद भी उससे मदद लेना।

अपनी मद्रास-यात्राका अनुभव लिखना और बताना कि तुम्हें वहाँ कैसा लगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियामें सुरक्षित मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे।**

१. २० जनवरीको उतर देते हुए एस्थर फैरिंगने लिखा था कि बा को प्रसन्न करना कठिन काम है। वे मुझे सदैव एक अजनबीके रूपमें देखती हैं और हमारे बीच जो सीमा-रेखा है उसे पार करनेमें मैं अपने आपको भी असमर्थ पाती हूँ।

२६३. हंटर समिति

अहमदाबादमें इस समितिने अपना काम पूरा कर लिया है। समितिके सामने पेश किये गये प्रमाणोंसे इतना तो सिद्ध हो गया है कि पहले जनताने भूल की, सरकारने नहीं। सरकारने श्री गांधीको गिरफ्तार किया, इस बातको हमें छोड़ देना चाहिए। क्योंकि यदि सरकार किसीको गिरफ्तार करती है और गिरफ्तार व्यक्ति जनतामें लोकप्रिय हो एवं जनताकी यह धारणा हो कि सरकारको उस व्यक्तिको गिरफ्तार नहीं करना चाहिए तो सरकारका काम ही नहीं चल सकता। यह ठीक है कि ऐसे व्यक्तिको गिरफ्तार करनेके लिए सरकारके पास पर्याप्त कारण होने चाहिए। यह भी ठीक ही है कि ऐसे व्यक्तिको गिरफ्तार करनेके पहले सरकारको शान्ति बनाये रखनेकी पूरी व्यवस्था कर लेनी चाहिए। किन्तु सरकारने अमुक व्यक्तिको पकड़ लिया इस कारण जनताको आगजनी और खून-खराबी करनेका अधिकार नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त स्थानीय पुलिसने ११ अप्रैलको ऐसा कोई काम नहीं किया था जिसकी वजहसे लोगोंको आगजनी और खून-खराबी करनेका कोई भी बहाना मिलता।

इस प्रकार प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो गया है कि लोगोंने आग लगाकर और खून-खराबी करके भयंकर भूल की है और अहमदाबादको नुकसान पहुँचाया है।

यह भी हमारे सुननेमें आया है कि इस हुल्लड़बाजीके कारण ही सरकारने श्री गांधीको छोड़ा है। किन्तु तारीखोंपर नजर डालनेसे यह बात गलत सिद्ध होती है। क्योंकि जिस समय श्री गांधी छूटे उस समय अहमदाबादमें खून-खराबी नहीं हो रही थी। श्री गांधी ११ अप्रैलकी दोपहरको छूटे थे। उन्हें बम्बईमें रिहा कर देनेका निर्णय तो १० की साँझ को ही हो गया था। तबतक अहमदाबादमें कुछ नहीं हुआ था।

किन्तु यह तो हम जानते ही हैं कि आगजनी और खून-खराबीकी वजहसे बहुत अधिक नुकसान हुआ है। बहुतसे लोगोंको जेलकी सजा भुगतनी पड़ी, अहमदाबादपर भारी सामूहिक जुर्माना किया गया और इस शहरके लज्जित होनेका प्रसंग आया।

सरकारने हुल्लड़बाजीको दबानेके लिए जिन उपायोंसे काम लिया उनकी आलोचना अथवा टीका-टिप्पणी तो किसी हदतक धृष्टता ही मानी जायेगी। पंजाबसे तुलना करनेपर सरकारने यहाँ इतनी अधिक सहनशीलताका परिचय दिया है कि हमारे लिए उसकी छोटी-मोटी भूलोंपर किसी तरहकी टीका करना उचित नहीं होगा। फिर भी जब हम गुण-दोषोंका विवेचन करने बैठे हैं तो उन्हें गिनाये बिना भी नहीं रहा जा सकता। मार्शल लॉ लगानेकी कोई जरूरत नहीं थी और मार्शल लॉ की रूसे जो हुक्म निकाला गया था उसकी भी जरूरत नहीं थी। इसकी वजहसे निरपराध लोग मारे गये। नडियाद और बारेजडीपर गलत और एकतरफा सामूहिक जुर्माना किया गया। सरकारकी ये प्रत्यक्ष भूलें हैं। हंटर समिति कुछ हदतक इन भूलोंको सुधार लेनेका साधन है।

सत्याग्रहके सम्बन्धमें समितिके सदस्यों और श्री गांधीके बीच जो बहस हुई वह जानने योग्य है। इसलिए जहाँतक सम्भव होगा उसे हम ज्योंका-त्यों उद्धृत करनेका प्रयत्न करेंगे। सत्याग्रह खून-खराबीको रोकनेवाला एवं जनताके अधिकारोंकी रक्षा करनेवाला उपाय है, यह बात इस बहसमें भली-भाँति बताई गई है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-१-१९२०

२६४. पत्र : कप्तान अजमतुल्ला खाँको

[दिल्ली
जनवरी १८, १९२०][1]

प्रिय कप्तान अजमतुल्ला खाँ,

मैं अपने वादेको भूला नहीं हूँ। मैं सब कागजात[2] देख गया हूँ और अब अपना निर्णय[3] देनेको तैयार हूँ। इन कागजोंको देखनेपर मैं जिस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ वह आपके खिलाफ जाता है और चूंकि इस सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेका मेरे पास और कोई साधन नहीं है, इसलिए मैं चाहूँगा कि अगर आप मुझसे मेरा निष्कर्ष बदलवानेके लिए कोई बात कहना चाहते हों तो अवश्य कहें। आपका उत्तर पाते ही यदि आपकी कही किसी बातके कारण दूसरे पक्षसे पूछताछ करनेकी जरूरत न पड़ी तो मैं अपना फैसला आपके पास भेजनेके लिए तैयार रहूँगा। २० तारीखको मैं इलाहाबादमें रहूँगा। वहाँसे २१ को चलूँगा और लाहौर २३ को पहुँचूँगा। वहाँ कुछ दिन ठहरूँगा। इलाहाबादमें मेरा पता होगा — मार्फत माननीय पंडित मोतीलाल नेहरू, और लाहौरमें भुजंग रोड।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७०५६) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रकी प्राप्तिके आधारपर यह तारीख दी गई है।

२. ये कागजात कप्तान अजमतुल्ला खाँ और पाटण पिंजरापोलके बीच चल रहे झगड़ेसे सम्बन्धित थे। देखिए "पत्र : मोतीचन्द ऐंड देवीदास सॉलिसिटर्सको", २६-१-१९२०।

३. यह निर्णय २६ जनवरीको भेज दिया गया था। निर्णयके पाठके लिए देखिए "फैसला", २६-१-१९२०।

२६५. पत्र : जे० एल० मैफीको

दिल्ली
जनवरी १८, १९२०

श्री जे० एल० मैफी, सी० आई० ई०
परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयके निजी सचिव

मैं यहाँ खिलाफत शिष्टमण्डलके सिलसिलेमें आया हुआ हूँ और उसका एक सदस्य हूँ। शिष्टमण्डल परमश्रेष्ठ वाइसरायसे कल मुलाकात करने जा रहा है। मुझे जब इसमें शामिल होनेको निमन्त्रित किया गया, उससे पहलेतक मैंने परमश्रेष्ठकी सेवामें पेश किया जानेवाला वक्तव्य[1] नहीं पढ़ा था। मामलेको जिस ढंगसे प्रस्तुत किया गया है वह मुझे अच्छा नहीं लगा। वह बहुत ही अस्पष्ट और बड़े साधारण ढंगसे तैयार किया गया है। आजके जैसे संकटके समयमें उसे बहुत मर्यादापूर्ण, संक्षिप्त, सटीक और अधिकसे-अधिक युक्तिपूर्ण होना चाहिए था। उसमें सिर्फ आवश्यक तथ्योंका ही जिक्र होना चाहिए था, और मामलेको कूटनीतिके धरातलसे नहीं बल्कि ऊँचेसे-ऊँचे धरातलसे प्रस्तुत करना चाहिए था। लेकिन अब देखता हूँ कि पूरे वक्तव्यको फिरसे लिखने और इस तरह परमश्रेष्ठका और अधिक समय लेनेका अवसर नहीं रहा। इसलिए मैंने सुझाव दिया कि इस बातका एक मोटा अन्दाज देनेके लिए तो एक यथातथ्य वक्तव्य होना ही चाहिए कि कमसे-कम क्या-कुछ प्राप्त होनेसे मुसलमान संतुष्ट हो सकेंगे। अब उन लोगोंने ऐसा पूरक-पत्र तैयार कर लिया है, और उसे उक्त वक्तव्यके साथ परिशिष्टके रूपमें संलग्न कर दिया गया है। मुझे आशा है कि परमश्रेष्ठको इस अतिरिक्त अंशपर कोई आपत्ति न होगी। साथमें वह वक्तव्य और अतिरिक्त अंश, दोनों भेज रहा हूँ। मुझे खेद है कि यह अच्छी तरह नहीं लिखा गया है। आज किसी समय इसकी नई नकल भेजनेकी आशा करता हूँ, परन्तु समय बचानेके खयालसे मैं इस बीच जैसी प्रति मेरे पास है, वैसी ही भेज रहा हूँ।

आशा है आप स्वस्थ व प्रसन्न होंगे।

अखबारोंमें यह समाचार पढ़कर दुःख हुआ कि लेडी चैम्सफोर्ड कलकत्तेमें बीमार हैं। मुझे आशा है कि वे अब बिलकुल अच्छी हो गई होंगी।[2]

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया : होम, पोलिटिकल : फरवरी १९२० : सं० ४१३-४१६ ए।

१. देखिए परिशिष्ट ११।

२. इस पत्रका उत्तर श्री मैफीने इस प्रकार दिया था : "आपका इसी माहकी १८ तारीखका पत्र मिला। बात इतनी आगे बढ़ गई है कि अब निवेदनमें और-कुछ जोड़ना सम्भव नहीं है। यदि इजाजत दें तो कहूँ कि खिलाफत सम्मेलन द्वारा तैयार किये गये वक्तव्यकी आपने जो कड़ी आलोचना

२६६. लोकमान्य तिलकके पत्रपर टिप्पणी[1]

[दिल्ली
जनवरी १८, १९२० के बाद]

लोकमान्यके साथ धर्म-ग्रन्थोंकी व्याख्याके विषयमें विवाद करनेमें स्वभावतः ही मुझे बड़ा अटपटा लगता है। परन्तु कुछ मामले ऐसे होते हैं, जिनमें या जिनके बारेमें अन्तःकरणकी आवाज किसी भी व्याख्यासे बढ़कर होती है। लोकमान्यके बताये हुए दोनों सूत्रोंमें मुझे तो कोई विरोध नहीं दीखता। बौद्ध सूत्र एक सनातन सिद्धान्त पेश करता है। 'भगवद्गीता' का सूत्र मुझे बताता है कि घृणाको प्रेमसे और असत्यको सत्यसे जीतनेका सिद्धान्त किस तरह अमलमें लाया जा सकता है और लाया जाना चाहिए। यदि यह सच हो कि दूसरोंके साथ हम जैसा बर्ताव करते हैं प्रभु वैसा ही हमारे साथ करते हैं, तो फिर सख्त सजासे बचनेके लिए हमें क्रोधका बदला क्रोधसे नहीं, परन्तु क्रोधके बदले नम्रताका ही व्यवहार करना चाहिए। यह नियम वैरागियोंके लिए नहीं, बल्कि खास तौरपर संसारियोंके लिए ही है। लोकमान्यके प्रति मेरे मनमें आदर है, फिर भी मैं कहता हूँ कि यह सोचना मानसिक निष्क्रियताका द्योतक है कि संसार साधुओंके लिए नहीं है। पुरुषार्थ सब धर्मोंका सार है; और पुरुषार्थ साधु — या कहिये हर मायनेमें सज्जन — बननेके उत्कट प्रयासके सिवा और कुछ भी नहीं है।

अन्तमें, जब मैंने लोकमान्यके मतानुसार 'राजनीतिमें सब-कुछ चलता है' वाक्य लिखा, तब उनका अनेक बार कहा हुआ 'शठं प्रति शाठ्यम्' वाक्य मेरे दिमागमें घूम रहा था। मेरे खयालसे तो वह एक बुरी नीति पेश करता है। मैं यह आशा नहीं छोड़ सकता कि कुशाग्र बुद्धि लोकमान्य खुद ही इस सूत्रका खण्डन करनेके लिए एकाध दार्शनिक ग्रन्थ लिखकर किसी दिन भारतको चकित करेंगे। जो भी हो 'शठं

की है उससे मैं सहमत नहीं हूँ। उसमें सब बातें पूर्णरूपसे आ गई हैं और मेरा खयाल है कि ऐसे अवसरपर उन्होंने वक्तव्यमें अपने 'दावों' का विवरण शामिल न करके बुद्धिमत्ताका कार्य किया है।"

१. यह टिप्पणी लोकमान्य तिलकके १८ जनवरी, १९२० को पूनासे लिखे एक पत्रके उत्तरमें लिखी गई थी। पत्र इस प्रकार था: "पिछले अंकमें सुधार-प्रस्ताव (रिफॉर्मस् रेज़ोल्युशन) सम्बन्धी आपका लेख देखकर मुझे दुःख हुआ। आपने उसमें मेरे विचार इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं जैसे मैं मानता हूँ कि 'राजनीतिमें सब-कुछ चलता है'। मैं आपको प्रस्तुत पत्र यह बतलानेके लिए लिख रहा हूँ कि उक्त लेख मेरे विचारोंका सही प्रतिनिधित्व नहीं करता। राजनीति सांसारिक प्राणियोंका क्षेत्र है, साधुओंका नहीं; और मैं बुद्धके उपदेश 'अक्कोधेन जिने कोधं' के बदले श्रीकृष्णके उपदेश 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' — पर अमल करना ज्यादा पसन्द करता हूँ। इससे दोनोंका अन्तर स्पष्ट हो जाता है और साथ ही 'जैसेसे-तैसा सहयोग' की मेरी उक्तिका भी। दोनों ही तरीके समानरूपसे ईमानदारीके और औचित्यपूर्ण हैं। दोनोंके बीच मौजूद अन्तरकी अधिक व्याख्या मेरी पुस्तक **गीता रहस्य**में मिल जायेगी।" उल्लिखित लेखके लिए देखिए "कांग्रेसमें सुधार-प्रस्ताव", १४-१-१९२०।

प्रति शाठ्यम्' में निहित सिद्धान्तके मुकाबले में अपना तीस वर्षका अनुभव रखता हूँ। सही नीति तो 'शठं प्रत्यपि सत्यम्' ही है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-१-१९२०

२६७. अपील : मद्रासके नाम

मैं यहाँ मद्रास शब्दका प्रयोग उसके लोक-विदित अर्थमें करता हूँ जिसका तात्पर्य होता है समस्त मद्रास प्रेसीडेन्सीके सभी द्राविड़ी भाषाएँ बोलनेवाले लोग।

मैं देखता हूँ कि श्रीमती बेसेंटको कांग्रेसकी समस्त कार्रवाई मुख्यत: हिन्दुस्तानीमें होनेसे निराशा हुई और इसलिए उन्होंने यह आश्चर्यजनक निष्कर्ष निकाल लिया कि वह राष्ट्रीय सभाके बजाय प्रान्तीय सभा हो गई है। मैं श्रीमती बेसेंटके प्रति और भारतके प्रति उनकी सेवाओंके लिए बहुत ऊँचा आदर-भाव रखता हूँ; भारतको स्वराज्य [होमरूल] देनेके विचारको लोकप्रिय बनानेमें जितनी सफलता उनको मिली है उतनी किसी दूसरे व्यक्तिको नहीं मिली। हममें से योग्यतम व्यक्ति भी, आयुमें उनसे बहुत कम होनेपर भी, भारतकी सेवाके लिए किये गये उनके उद्योग, उत्साह और संगठनके मामलेमें उनका मुकाबला नहीं कर सकते। उन्होंने अपनी प्रौढ़ावस्थाका सर्वोत्तम भाग भारतकी सेवामें खपाया है। भारतमें लोकमान्य तिलकके बाद लोकप्रियतामें उन्होंने जो दूसरा स्थान प्राप्त किया है वह अपने कामके बलपर ही। परन्तु इस समय उनके विचार शिक्षित भारतीयोंके एक बड़े तबकेको अस्वीकार्य होनेसे वे लोगोंमें कुछ अप्रिय हो गई हैं। और मुझे उनके इस विचारसे कि हिन्दुस्तानीके व्यवहारसे कांग्रेस प्रान्तीय हो जाती है, सार्वजनिक रूपसे मतभेद प्रकट करनेमें दुःख होता है। मेरी विनीत रायमें उनका यह निर्णय एक गम्भीर भूल है। और मेरा कर्त्तव्य मुझे इसकी ओर उनका ध्यान खींचनेके लिए विवश करता है। मैंने १९१५ से कांग्रेसके एकके सिवा समस्त अधिवेशनोंमें भाग लिया है। मैंने उसके कार्य-संचालनके लिए अंग्रेजीकी तुलनामें हिन्दुस्तानीकी उपयोगितापर विचार करनेके उद्देश्यसे इन अधिवेशनोंका विशेष रूपसे अध्ययन किया है। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हजारों दर्शकोंसे बात की है और शायद किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जिनमें श्रीमती बेसेंट और लोकमान्य तिलक भी सम्मिलित हैं, की अपेक्षा अधिक विस्तृत क्षेत्रमें और अधिक बड़ी संख्यामें लोगोंसे, जिनमें शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही हैं — भेंट की है। और मैंने सोच-विचारके बाद यही निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दुस्तानीके सिवा — जो हिन्दी और उर्दूसे मिलकर बनी है — कोई भी दूसरी भाषा सम्भवत: विचार-विनिमय या राष्ट्रीय कार्यके संचालनके लिए राष्ट्रीय माध्यम नहीं बन सकती। मेरी विचारपूर्ण सम्मति यह भी है, जो विस्तृत अनुभवपर आधारित है, कि कांग्रेसकी लगभग समस्त कार्रवाई पिछले दो

सालोंके सिवा अबतक अंग्रेजीमें किये जानेके कारण राष्ट्रको सचमुच काफी हानि पहुँची है। मैं यह तथ्य भी बताना चाहता हूँ कि मद्रास प्रेसीडेन्सीके अतिरिक्त अन्य सभी प्रान्तोंके राष्ट्रीय कांग्रेसके दर्शकों और प्रतिनिधियोंमें से अधिकांश अंग्रेजीकी अपेक्षा हिन्दुस्तानी ही अधिक समझ सके हैं। इसलिए इसका एक बड़ा ही विचित्र-सा परिणाम यह हुआ है कि इन समस्त वर्षोंमें कांग्रेस जैसी महती संस्था केवल देखनेमें ही राष्ट्रीय रही है, किन्तु वह अपने वास्तविक शैक्षणिक महत्त्वके कारण कभी राष्ट्रीय नहीं रही। संसारके किसी भी अन्य देशमें यदि ऐसी कोई सभा होती जो साल-दर-साल लोकप्रिय बनती गई होती तो वह चौंतीस वर्षके अपने जीवनमें इतना राजनीतिक शिक्षण दे चुकी होती जो घर-घरमें प्रवेश कर जाता क्योंकि उसने विविध प्रश्नोंपर लोगोंके सामने उनकी अपनी भाषामें बारीकीसे विचार किया होता। इसलिए कांग्रेसके पिछले सभी अधिवेशनोंकी खामियाँ जो भी हों, उनका रूप निश्चय ही पहलेके सभी अधिवेशनोंसे ज्यादा राष्ट्रीय रहा है, क्योंकि उसके अधिकांश प्रतिनिधि और दर्शक उसकी कार्रवाईको समझ सके हैं। श्रोतागण श्रीमती बेसेंटके भाषणसे ऊब गये थे। इसका कारण यह नहीं था कि वे उनके प्रति उदासीन या अशिष्ट थे, बल्कि वे उनके भाषणको समझ नहीं पाये थे, यद्यपि वह रोचक और योग्यतापूर्ण था। ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय चेतना बढ़ेगी और लोगोंकी राजनीतिक ज्ञान और शिक्षणकी भूख तेज होगी, जो अवश्यम्भावी है, त्यों-त्यों वक्ताओंके लिए, चाहे वे कितने ही योग्य और लोकप्रिय हों, यदि वे अंग्रेजीमें भाषण देंगे तो सामान्य लोगोंकी सभाओंमें श्रोताओंका ध्यान आकर्षित किये रहना अधिकाधिक कठिन होता जायेगा और यह ठीक भी है। इसलिए मैं मद्रास प्रेसीडेंसीके लोगोंसे अपील करता हूँ कि वे समान-सेवियोंके लिए हिन्दुस्तानी सीखनेकी राष्ट्रीय आवश्यकता समझें। मद्राससे बाहरके श्रोता बिना किसी कठिनाईके न्यूनाधिक हिन्दुस्तानी समझ सकते हैं। दयानन्द सरस्वती उत्तर भारतसे बाहर अपनी हिन्दुस्तानीकी वक्तृत्व-कलासे श्रोताओंको मुग्ध कर देते थे। उनके भाषणोंको मामूली लोग भी बिना किसी कठिनाईके समझ सकते थे। इसका अर्थ यह है कि पैंतीस करोड़में से केवल तीन करोड़ अस्सी लाखसे कुछ ही अधिक लोग, जो मद्रास प्रेसीडेंसीमें रहते हैं, हिन्दुस्तानीमें बोलनेवाले वक्ताकी बात नहीं समझ सकते। मैंने मुस्लिम आबादीको इसमें से निकाल दिया है, क्योंकि सभी जानते हैं कि मद्रास प्रेसीडेंसीके मुसलमान हिन्दुस्तानी समझते हैं। इसलिए प्रश्न यह है: इस प्रेसीडेंसीके तीन करोड़ अस्सी लाख लोगोंका क्या कर्त्तव्य है? क्या भारत उनके कारण अंग्रेजी सीखे? या वे सत्ताईस करोड़ सत्तर लाख भारतीयोंके लिए हिन्दुस्तानी सीखें? स्वर्गीय न्यायमूर्ति कृष्णस्वामी, जिनकी सहज दृष्टि अचूक थी, यह मानते थे कि भारतके विभिन्न भागोंके बीच विचारोंके आदान-प्रदानका एकमात्र सम्भावित माध्यम हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। मैं नहीं जानता कि इस समय किसी भी व्यक्तिने इस स्थापनापर गम्भीरतासे कोई आपत्ति उठाई है। हजारों लाखों लोग अंग्रेजीको अपनी सामान्य भाषा नहीं बना सकते; और यदि यह सम्भव भी हो तो यह अत्यन्त अवांछनीय है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उच्च ज्ञान और तकनीकी ज्ञान अंग्रेजीके माध्यमसे प्राप्त किया जानेसे जन-

साधारणतक इस तरह नहीं पहुँच सकता जिस तरह वह उच्च वर्गोंमें प्रचलित होनेपर किसी देशी भाषाके माध्यमसे पहुँचता। उदाहरणार्थ श्री जगदीशचन्द्र बसुकी कृतियोंका बँगलासे गुजरातीमें अनुवाद करना, हक्सलेकी[1] कृतियोंको अंग्रेजीसे गुजरातीमें अनुवाद करनेकी अपेक्षा अधिक आसान है। मद्रासी लोग शेष भारतके लिए हिन्दुस्तानी सीखें इस कथनका क्या अर्थ है? इसका अर्थ केवल यह है कि मद्रासके वे समाजसेवी जो मद्रास प्रेसीडेंसीसे बाहर जाकर काम करना और राष्ट्रीय सभा-सम्मेलनोंमें भाग लेना चाहते हैं, उनको एक वर्ष एक घंटा रोज हिन्दुस्तानी सीखनेमें लगाना चाहिये। ऐसा प्रयत्न करनेसे कई हजार मद्रासी सालके अन्ततक कमसे-कम कांग्रेस अधिवेशनोंकी कार्रवाईका रुख समझने लायक हिन्दुस्तानी सीख लेंगे। प्रेसीडेंसीमें कई स्थानोंपर हिन्दी-प्रचार कार्यालय हैं, जिनमें हिन्दुस्तानी सीखनेके इच्छुक लोगोंको निःशुल्क हिन्दुस्तानी सिखाई जाती है।

मैं श्रीमती बेसेंटसे, जो अब भी समय-समयपर "न्यू इंडिया" में हिन्दुस्तानी सीखनेके बारेमें लिखती रहती हैं, अनुरोध करता हूँ कि वे मेरी इस अपीलका समर्थन करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१-१९२०

२६८. भाषण : मेरठकी सभामें[2]

जनवरी २२, १९२०

मेरठके नागरिकों और स्वयंसेवकों द्वारा किये गये अपने हार्दिक स्वागतके लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके अनन्तर गांधीजीने कहा कि आज भारतके सामने जितनी समस्याएँ मौजूद हैं उनमें खिलाफतकी समस्या सबसे अधिक महत्त्व रखती है, क्योंकि वह हमारे मुसलमान भाइयोंकी समस्या है। मेरे अंग्रेज और हिन्दू मित्र मुझसे पूछा करते हैं कि आप-जैसे कट्टर हिन्दूको खिलाफतके मसलेमें इतनी अधिक दिलचस्पी क्यों है। उन सबको मेरा यही उत्तर हुआ करता है कि मैं और मेरे हिन्दू भाई भारतमें बसनेवाले सात करोड़ मुसलमान भाइयोंके साथ शान्ति और प्रेमसे रहना चाहते हैं। जबतक खिलाफतका मसला मुसलमानोंकी न्याय-विषयक धारणाओंके अनुसार हल नहीं हो जाता तबतक भारतमें शान्ति नहीं हो सकती। सरकार कुछ समयके लिए असन्तोषको

१. प्रो० टॉमस हेनरी हक्सले (१८२५-१८९५); सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा लेखक।

२. एक सार्वजनिक सभामें गांधीजीको खिलाफत कमेटी तथा मेरठके नागरिकोंकी ओरसे मानपत्र दिये गये। खान बहादुर शेख वहीदुद्दीनने सभाकी अध्यक्षता की। गांधीजी हिन्दीमें बोले। उनका मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

दबा सकती है परन्तु जिनकी भावनाओंको गहरी चोट पहुँची है, वे सदा शान्तिके साथ नहीं रह सकते।

मैं अपने मुसलमान भाइयोंके साथ यह कहना चाहता हूँ कि इस प्रश्नके समाधानके लिए सत्याग्रहसे अधिक कारगर कोई और उपाय नहीं है। आप शरीर-बल द्वारा खिलाफतके प्रश्नको कभी हल नहीं कर सकते। लेकिन अगर आप सत्याग्रहको अपना लें तो आप स्वयं ही देखेंगे कि सफलताकी कितनी बड़ी सम्भावनाएँ हैं। यदि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय अपनी रक्षाके लिए हथियार उठा लेते तो उल्टे वे स्वयं ही उन हथियारोंके शिकार बन सकते थे। परन्तु वे धैर्यपूर्वक अपने व्रतपर डटे रहे।

खिलाफतकी समस्याके बाद भारतकी स्वतंत्रताका सवाल लें तो वह सदासे स्वदेशी अपनानेकी बातसे सम्बद्ध रहा है। भारतकी गुलामी उसी दिनसे शुरू हुई जिस दिन उसने अपनी देशी चीजोंका उपयोग छोड़ दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनीका लक्ष्य कभी भी प्रदेशोंको जीतना न था। उसके उद्देश्य विशुद्ध रूपसे व्यावसायिक थे। परन्तु हम सब जालमें फँस गये। हम लोग लंकाशायर और मैनचेस्टरमें तैयार की गई चीजोंका इस्तेमाल करते हैं। यदि हम लोग भारतको स्वतन्त्र करना चाहते हैं, तो हम सुधारोंके बलपर वैसा नहीं कर सकते, इंग्लैंडमें बनाये गये नियमोपनियमोंके बलपर नहीं कर सकते; यह तो हम स्वदेशी वस्तुओंका उपयोग करके ही कर सकते हैं।

हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नके बारेमें उन्होंने श्रोतृ-समुदायसे यह बात स्मरण रखनेको कहा कि पाखण्ड करने और चिकनी-चुपड़ी बातें कहनेसे सच्ची एकता प्राप्त नहीं हो सकती। उन्होंने कहा कि आप दूसरे लोगोंको तो धोखा दे सकते हैं, परन्तु ईश्वरको नहीं। यदि हिन्दू लोग चिकनी-चुपड़ी बातें कहकर मुसलमानोंको गोवध बन्द करनेपर राजी करना चाहते हों या इसी तरह मुसलमान खिलाफतके प्रश्नपर हिन्दुओंका सहयोग प्राप्त करनेकी सोचते हों तो बहुत सम्भव है कि उन्हें निराशा ही हाथ लगे। ये तो अस्थायी वस्तुएँ हैं। जहाँतक आप लोगोंका अपना-अपना धर्म अनुमति दे वहाँतक आपको एक-दूसरेके हितके लिए अपने प्राण भी न्यौछावर करनेको तैयार रहना चाहिए।

भाषण समाप्त करनेसे पहले उन्होंने एक बार फिर मेरठके भाइयों और बहनोंको धन्यवाद दिया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, १२–२–१९२०

२६९. भेंट : एस० डब्ल्यू० क्लैम्जको

[मेरठ
जनवरी २२, १९२०]

श्री गांधी, क्या आप बतायेंगे कि पश्चिमके देश पूर्वके देशों और खासकर भारतके सर्वतोमुखी विकासमें किस प्रकार सहायक हो सकते हैं? श्री गांधीने इस प्रश्नका उत्तर सीधा न देकर घुमा-फिराकर दिया :

अभी तो भारत ऐसी स्थितिमें है जब उसे बहुत-सी सीखी हुई बातें भूलनी हैं; क्योंकि उसने ऐसा बहुत-कुछ सीख रखा है जो बेकार है और जिसका कोई लाभ नहीं है। पश्चिमी दुनिया और विशेषकर आपके देशको देखकर मैंने दो महत्त्वपूर्ण बातें सीखीं हैं। पहली है सफाई और दूसरी स्फूर्ति। मेरा पक्का विश्वास है कि मेरे देशके लोग जबतक सफाई रखना नहीं सीखते तबतक उनका आत्मिक विकास नहीं हो सकता। आपके देशके लोगोंमें इतनी अधिक स्फूर्ति है कि आश्चर्य होता है। वैसे बहुत हदतक इस स्फूर्तिका उपयोग उन्होंने सांसारिक समृद्धि प्राप्त करनेके लिए किया है। अगर भारतीयोंमें भी उतनी ही स्फूर्ति हो तो सही दिशा देनेपर वह उनके लिए बहुत बड़ा वरदान होगी।

श्री गांधी, क्या आप यह बतानेकी कृपा करेंगे कि भारतमें जो चतुर्दिक राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है उसको ध्यानमें रखते हुए ईसाइयत किस प्रकार सबसे अच्छी तरह इसकी सेवा कर सकती है? उन्होंने उत्तर दिया :

हमें जिस चीजकी सबसे ज्यादा जरूरत है, वह है 'सहानुभूति'। एक दृष्टान्त देता हूँ। उस समय मैं दक्षिण आफ्रिकामें था और वहाँ मुझे कुछ पाताल-तोड़ कुएँ खोदने थे। स्वच्छ जल-स्रोतकी खोजमें मुझे बहुत गहरी खुदाई करनी पड़ी थी। हमारे देशभाइयोंके बारेमें जानकारी हासिल करनेके लिए दूसरे देशोंसे आनेवाले बहुत सारे लोग सिर्फ सतहको खरोंच कर रह जाते हैं। अगर वे सहानुभूतिके सहारे जरा गहरे उतरकर देखें तो उन्हें वहाँ जीवनका एक स्वच्छ और निर्मल प्रवाह दिखाई देगा।

और श्री गांधी, क्या आप यह बतानेकी कृपा करेंगे कि किस पुस्तक या व्यक्तिने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया है?

उन्होंने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया कि वे जो-कुछ मिल जाय सब पढ़ते जानेवाले पाठक नहीं हैं, बल्कि वे बहुत-सी उत्तम ढंगकी चीजें छाँटकर पढ़ा करते हैं। उन्होंने जिस क्रमसे पुस्तकोंकी चर्चा की वह इस प्रकार था — 'बाइबिल', रस्किनकी कृतियाँ, टॉल्स्टॉयकी कृतियाँ। 'बाइबिल' के सम्बन्धमें बोलते हुए उन्होंने कहा :

ऐसे बहुतसे अवसर आये हैं जब मुझे यह नहीं सूझता था कि कौन-सा रास्ता अपनाऊँ। लेकिन मैं 'बाइबिल' और विशेषकर 'न्यू टैस्टामेंट' की शरणमें गया हूँ और उसके सन्देशसे मैंने शक्ति प्राप्त की है।

मैं यह जाननेको उत्सुक था कि हमारा मेरठ स्नातक संघ, जिसमें नगरके सुसंस्कृतसे-सुसंस्कृत शिक्षित व्यक्ति शामिल हैं, इस नगरके कल्याणके लिए किस प्रकार काम कर सकता है। मेरे प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने बस एक बात कही—

मेहतर बनकर। और मेहतर कहनेमें मेरा मतलब इस शब्दके जितने भी अर्थ होते हैं, सबसे है। अगर इस संघके सदस्यगण बाहर निकलकर नगरको वास्तविक रूप से तथा नैतिक रूपसे भी स्वच्छ बनानेमें हाथ बँटायें तो यह बहुत बड़ा काम होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५–२–१९२०

२७०. पत्र : मगनलाल गांधीको

लाहौर

मंगलवार [जनवरी २३, १९२० के बाद][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हें पत्र लिखनेका समय कहाँसे निकालूँ? फिर भी तुम्हारे पत्रकी राह तो देखता ही हूँ। वहाँ कातने और बुननेकी जो स्थिति है, उसके सम्बन्धमें लिखना। क्या तुमने कांतिलालको सरलादेवीके[2] पास भेजनेकी बात कही थी। क्या यह सम्भव है? यदि हाँ तो उसे लड़कोंको पढ़ानेके लिए भेज देना। दीपकसे कहना कि सरलादेवीको पत्र लिखे।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७७९) से।

सौजन्य : राधाबन चौधरी

१. यह और अगला पत्र अमृतसर कांग्रेसके बाद लिखे गये जान पड़ते हैं। अधिवेशनके बाद गांधीजी अहमदाबाद वापस आ गये थे और जनवरी २३ को लाहौर पहुँचे थे। सरलादेवी अमृतसर कांग्रेसके कुछ समय बाद अपने पुत्र दीपकको साबरमती आश्रममें छोड़ गई थीं।

२. सरलादेवी चौधरानी।

२७१. पत्र : मगनलाल गांधीको

[लाहौर
जनवरी २३, १९२० के बाद]

चि० मगनलाल,

मेरे मनमें हमेशा यह खयाल बना रहता है कि तुम्हें तो बीमार नहीं ही पड़ना चाहिए। फिर भी अगर पड़ोगे तो सहन कर लूँगा। बीमार न पड़नेकी चिन्तासे भी मनुष्य बीमार पड़ जाया करता है। जब स्वास्थ्य एक सीमातक बिगड़ जाता है तब वह पहले-जैसा नहीं बन पाता। तुम चार-छः महीने अकेले ही किसी स्थानपर रह सको, यह तो मैं चाहता ही हूँ। इस प्रकार आश्रमसे दूर रहनेका अवकाश जबरदस्ती निकाल सको तो मैं उसे उचित मानूँगा। आश्रमको तुम्हें इस दर्जेतक पहुँचा ही देना चाहिए जिससे समय-समयपर तुम उसके भारसे मुक्त रह सको। लेकिन इस सबको एक ऊपरी व्यक्तिकी सलाह मात्र समझना।[1] करना तो अपने मनकी ही। मैं चाहता हूँ कि तुम शरीर, मन और हृदयसे स्वस्थ रहो।

एस्थर और दीपककी पूरी देख-भाल रखना। महादेवसे तो मिले ही होगे। बा, और तुम जैसे लोगोंको तो मैं लिख सकता हूँ। मैं तुम्हारी एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें कल्पना करता हूँ जो दूसरोंकी फिक्र करनेमें अपनी खुदकी बीमारीको भूल जा सकता है। मथुरादास और देवदास खूब सेवा कर रहे हैं। देवदास बहुत आगे बढ़ गया है। सरलादेवी हर तरहसे मेरे ऊपर प्रेम बरसा रही हैं। समय मिलनेपर उन्हें पत्र लिखना कि दीपकके बारेमें चिन्ता न करें।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८१) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१. मूल गुजराती पत्रमें यह कहावत है "सेठकी सलाह द्वारतक" जिसका भाव है कि मालिककी हाँ में हाँ मिला दो फिर करो अपने मन की।

२७२. पत्र : नरहरि परीखको

लाहौर

[जनवरी २३, १९२० के बाद][1]

भाईश्री नरहरि,

इसके साथ ही दीपकके लिए भी पत्र है। इसे पढ़नेके बाद उसे देना; वह इसे समझ पाया कि नहीं, यह देखना। सरलादेवीने तीसरी बार दीपकको अपनेसे दूर भेजा है। उनकी वृद्ध माताजी भी इससे प्रसन्न नहीं हैं। पंडितजी[2] भी इससे खुश हुए हैं, ऐसा नहीं कह सकता। लेकिन सरलादेवी जो करती हैं उसपर वे कोई आपत्ति नहीं करते। उनकी बड़ी इच्छा है कि यह बालक वहाँ रहकर चरित्रवान् तथा विद्वान् बने। इसमें हमसे जितनी बन पड़े उतनी सहायता करनी चाहिए। उसके संस्कृत या बँगला पढ़नेका विशेष प्रबन्ध करना। यदि मणीन्द्र बँगला पढ़ायेगा तो लड़का सहज ही सीख सकेगा। क्या वह सरलादेवीको बँगलामें एक सुन्दर पत्र न लिखना चाहेगा? अथवा यदि वह चाहे तो कभी अंग्रेजी तथा कभी बँगलामें पत्र लिख सकता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११८८५) की फोटो-नकलसे।

२७३. पत्र : बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको

लाहौर

जनवरी २४, १९२०

महोदय,

आपका इस माहकी — तारीखका कृपा पत्र[3] प्राप्त हुआ।

श्री महादेव देसाई और मेरे विरुद्ध आज्ञाकी सुनवाईके लिए अगली ३ मार्च मुझे अनुकूल पड़ेगी।[4]

आपका विश्वस्त,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रजी मसविदे (एस० एन० ७०६३) की फोटो-नकलसे।

१. ऐसा लगता है कि गांधीजीने यह पत्र २३-१-१९२० को लाहौर पहुँचनेके तुरन्त बाद लिखा था।

२. पंडित रामभजदत्त चौधरी।

३. लगता है यह पत्र गांधीजीके ४ जनवरी वाले पत्रके उत्तरमें था।

४. २७ फरवरीको गांधीजीने पंजीयकको फिर पत्र लिखा और अपना तथा महादेव देसाईका वक्तव्य साथमें भेजा था। कैफियत तलबी आदेश की सुनवाई ३ मार्चको हुई और इसमें गांधीजी तथा महादेव देसाई उपस्थित हुए। न्यायाधीशोंने उन्हें अदालतकी मानहानिका अपराधी करार दिया किन्तु कड़ी भर्त्सनाके साथ आगेके लिए चेतावनी देकर बरी कर दिया।

२७४. पत्र : एस० अली हुसनको

२, मुजंग रोड
लाहौर
जनवरी २४, १९२०

प्रिय श्री हुसैन,

आपका पत्र[१] पाकर बड़ी खुशी हुई। वह जानकारी जिसका उपयोग मैंने सभामें किया, मुझे मेरठमें प्राप्त हुई थी। जो लोग मुझे मोटर द्वारा मुजफ्फरनगर ले गये थे उन्होंने ही वह सूचना मुझे मोटरमें दी थी। अगर आप उनके कथनको सत्य नहीं मानते तो मैं चाहूँगा कि आपका क्या कहना है, सो सूचित करें।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७०६८) की फोटो-नकलसे।

२७५. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर
जनवरी २४, १९२०

रानी बिटिया,

कल लाहौर आनेपर तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत खुशी हुई।

मुझे हर्ष है कि तुमने अपना हृदय खोलकर रखा है। मैत्री और स्नेहकी यही सच्ची कसौटी है। तुम जब दिलकी बात साफ-साफ बताती हो तब मुझे अपनी मदद कर सकने योग्य बनाती हो। मुझे इसका कोई अंदाज नहीं था कि तुमने बा की क्षुद्रताको पहले ही भाँप लिया था। मैंने तो चूँकि तुम्हें उसके निकट सम्पर्कमें आनेको कहा था इसलिए यों ही आगाह-भर कर दिया था। देखता हूँ मेरी चेतावनी तुम्हें ठीक समयपर मिल गई। ईश्वर तुम्हें ठीक समयपर ठीक काम करनेकी बुद्धि और

१. इसपर २३ तारीख पड़ी थी और वह इस प्रकार था: "आपके व्यस्त समयमें बाधा देनेके लिए क्षमा चाहता हूँ। पर चूँकि आपके पिछली रातके भाषणके सम्बन्धमें यहाँ कुछ विरोध पैदा हो गया है, मुझे आशा है इन कुछ क्षणोंके कष्टके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। मैं यह जानना चाहता हूँ कि मुहर्रमके मामलेके सम्बन्धमें आपको क्या जानकारी मिली है और साथ ही यह कि वह आपको किसने दी। उक्त सूचना आपको कब मिली थी — जब आप यहाँ कुछ समयके लिए रुके थे तब या यहाँ पहुँचनेके पूर्व?" देखिए "भाषण: मेरठमें", २२-१-१९२०।

साहस देगा। केवल एक बात याद रखो कि अपनी त्यागकी भावनावश तुम उस हदतक मत जाना जिसके कारण तुम्हारे मनमें स्वयं अपने और अपने आसपासके वातावरणके प्रति कटुता और निराशा पैदा हो जाये। यह एक ऐसा प्रलोभन है जिसका खतरा सभी कार्यकर्त्ताओंको होता है। वे आत्म-बलिदान करते चले जाते हैं और आखिर प्रतिदानके अभावमें वे हर चीज, हर व्यक्तिसे विरक्त हो जाते हैं। सच्चा त्याग वही होता है जब हम प्रतिदानकी अपेक्षा न करें। इस 'सैक्रिफ़ाइस' शब्दके मूल अर्थको समझ लेना उचित होगा। जैसा कि शायद तुम्हें मालूम होगा इसका अर्थ है 'पवित्रीकरण'। जब हम झुँझला उठते हैं या नाराज होते हैं तब हम न तो अपनेको और न ही औरोंको पवित्र बनाते हैं। बहुधा एक नैसर्गिक मुस्कानमें अधिक सैक्रिफ़ाइस – पवित्रीकरण – होता है बनिस्बत तथाकथित ठोस सैक्रिफ़ाइसके। इन पंक्तियोंको लिखते समय मुझे मेरी और मैग्डेलेनके[1] दृष्टांत याद आते हैं। दोनों ही अच्छी थीं परन्तु बिना किसी दिखावेके केवल अपने स्वामीकी सेवामें उपस्थित रही वह शायद दूसरीकी अपेक्षा अधिक आत्मबलिदानी (सेल्फ सैक्रिफाइसिंग) थी। और तुम्हारे साथ भी ऐसा ही हो। बा का या किसी भी अन्य व्यक्तिका मन जीतनेके लिए अपनी आत्मापर अधिक बोझ न डालो। जैसे ही तुम्हें लगे कि उसके साथ तुम्हारी नहीं निभ सकती, तुरन्त अपने लिए अलग रसोईका प्रबंध अवश्य कर लो। ऐसा करके घनिष्ठ हुए बिना भी तुम उसकी सेवा तो कर ही सकती हो। वहाँ ऐसा कुछ मत करो जिससे तुम्हारी आत्मा या शरीरको थकान हो।

कृपया जिस किसी सुविधाकी तुम्हें जरूरत हो, चाहे खानेकी या अन्य प्रकारकी, वह माँग लिया करो। मगनलाल, इमाम साहब या किसीसे भी, जिससे तुम्हारी अधिक घनिष्ठता हो मदद माँग लिया करो।

हाँ, दीपक ठीक वैसा ही है जैसा तुमने उसके बारेमें लिखा है। मैं चाहूँगा कि तुम प्रेमपूर्वक उसको उसके दायित्वका ज्ञान करा दो और उसे अपनी पढ़ाईपर ध्यान देनेके लिए समझाओ। उसके पत्र-लेखनको जाँचती रहो। देखो कि वह अपनी माँको प्रतिदिन विस्तृत सफाईके साथ पत्र लिखे।

मेरा हृदय इस दुःखमें[2] तुम्हारे साथ है। डेन्मार्कमें अपने भाईके निकट होनेकी तुम्हारी इच्छाको मैं समझ सकता हूँ। परन्तु तुमने एक भिन्न रास्ता चुना है – ऐसा रास्ता जिसमें केवल किसी एककी ही सेवा करनेकी गुंजाइश नहीं है। ईश्वर तुम्हें इस कार्यको सम्पन्न करनेकी शक्ति दे।

महादेवके[3] बारेमें मैं तुमसे सहमत हूँ। वह अकारण ही अपने स्वास्थ्यके लिए चिंतित है। लोग उसका मूल्य उसके शरीरके कारण नहीं बल्कि उसकी आत्मशक्तिके

१. गांधीजीने भूलसे "मार्था"की जगह मैग्डेलेन लिख दिया।

२. एस्थरने लिखा था कि उसका भाई क्षय रोगसे पीड़ित है।

३. महादेवभाईने एस्थर फैरिंगसे कहा था कि इस तरह बीमार रहनेके कारण "मुझे आश्रममें रहनेका कोई अधिकार नहीं है।"

कारण करते हैं। उसकी बीमारीमें उसकी सेवा करना मित्रोंके लिए सौभाग्यकी बात होगी।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियामें सुरक्षित मूल अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे।**

२७६. तार : श्यामलाल नेहरूको

[लाहौर
जनवरी २४, १९२०]

पंजाबसे बाहर जाना सम्भव नहीं; मेरी ओरसे क्षमा माँग लें।[1]

गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७४४०) की फोटो-नकलसे।

२७७. पत्र : अखबारोंको[2]

[जनवरी २५, १९२० के पूर्व]

[दक्षिण आफ्रिका] संघके प्रधान मन्त्रीकी सेवामें प्रस्तुत स्मृतिपत्रमें, क्रूगर्सडॉर्प नगरनिगम बनाम दादू लिमिटेडके जिस मुकदमेका उल्लेख किया गया है, उसके सम्बन्धमें ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अस्वातने मुझे एक तार भेजा है। उसे नीचे विस्तृत रूपमें दिया जा रहा है:

> अदालतने हस्तान्तरण अस्वीकृत कर दिये हैं। उसका निष्कर्ष यह था कि अचल सम्पत्ति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भारतीय कम्पनियाँ खोलना अवैध है। उसने इस प्रकारके हस्तान्तरणको यह कहते हुए कानूनी फरेब घोषित किया कि विधानका उपहास नहीं किया जा सकता (खण्ड १३०)। स्वर्ण-कानूनका मंशा यूरोपीयों और रंगदार लोगोंके अन्धाधुन्ध मेल-जोलको रोकना था। फिर, पाँचे-

१. यह तार श्यामलाल नेहरूके निम्नलिखित तारके उत्तरमें भेजा गया था: "आराके बैरिस्टर के० पी० सिंह चाहते हैं मैं आपको यह संदेश भेजूँ कि शाहाबादके उपद्रवियोंकी रिहाईके लिए आम सभा २५ तारीखको होगी, हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए आपकी उपस्थिति अपेक्षित। न आनेपर घोर निराशा होगी।"

२. २५ जनवरी, १९२० के **नवजीवन**में इसका गुजराती अनुवाद भी छपा था।

फस्ट्रमर्ममें वहाँ १९१२ के अध्यादेश ९ के अन्तर्गत दिये गये फैसलेमें मजिस्ट्रेटने परिषद्के इस विचारका समर्थन किया है कि एशियाइयोंकी उपस्थिति खीझ उत्पन्न करनेवाली है और यूरोपीय व्यवसायके मार्गमें बाधा डालती है, और इसी आधार-पर उन्होंने भारतीयोंको अवांछित माना है। दोनों निर्णयोंका परिणाम भारतीय समाजकी बर्बादी है। अपीलें दर्ज करा दी गई हैं। स्थानीय सरकार द्वारा नियुक्त आयोगके समक्ष बयान देनेवाले यूरोपीय लोग भारतीय प्रश्नका विशेष अध्ययन कर रहे हैं और नगरनिगमोंके लिए पूर्ण स्वायत्त शासनकी हिमायत कर रहे हैं। उपयुक्त अधिकारियोंसे अविलम्ब निवेदन कीजिए। संघ अनुरोध करता है कि सारे भारतमें सभाएँ की जायें। नया कानून संख्या ३७ पुरानी कम्पनियों और व्यापारियों तकको संरक्षण प्रदान नहीं करता। स्थिति बड़ी संकटपूर्ण है। समाजकी रक्षाके निमित्त मुस्तैदीसे काम करना आवश्यक है।

जिन लोगोंने दक्षिण आफ्रिकी प्रश्नका तनिक भी अध्ययन किया होगा, वे इस तारको पढ़कर विचलित हुए बिना नहीं रह सकते। क्योंकि जैसा श्री अस्वात कहते हैं, नये कानूनसे जो थोड़ा-बहुत मिलनेकी बात कही जाती है, यह सब उसपर भी पानी फेर देता है। दादू लिमिटेड क्रूगर्सडॉर्पकी बहुत पुरानी भारतीय पेढ़ी है। उस नगरमें इसकी बहुत ज्यादा जमीन है, और तारका अर्थ यह है कि कम्पनीके नाम जमीनोंके जो हस्तान्तरण दर्ज हैं वे अवैध हैं, क्योंकि ऐसा जान पड़ता है कि अदालतका विचार यह है कि ये हस्तान्तरण कानूनके साथ धोखेबाजी है और विधानका उपहास नहीं किया जा सकता। इस निर्णयके औचित्य तथा जिन दलीलोंपर यह आधारित है, उनके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं कहना चाहता।

ऐसी कम्पनियोंके नाम लाखों रुपयोंकी जमीन पंजीकृत है जिनमें भारतीयोंका प्रमुख स्थान है। यदि यह निर्णय कायम रहता है तो इसमें से प्रत्येक कम्पनीके हाथोंसे वे जमीनें छिन जायेंगी जिनपर इनका वर्षोंसे दखल रहा है और जिन्हें इन्होंने कानूनी सलाह लेकर खुले तौरपर खरीदा था, और जिनका भूमि-पंजीयन कार्यालयमें पंजीयन भी हो चुका है। पंजीयकोंको इन सारी परिस्थितियोंकी पूरी जानकारी है, और अभी पिछले वर्ष ही, जब इस निर्योग्यता लगानेवाले नये कानूनको दक्षिण आफ्रिकी संघकी विधान-परिषद्ने पास किया था, हमसे कहा गया था कि इस तरह जिन जमीनोंपर ३१ जुलाईसे पहले स्वामित्व प्राप्त किया जा चुका है, उनपर इस कानूनका कोई असर नहीं होगा, और इस विधानका औचित्य ठहराते हुए हमें संघ विधान सभाके सभी वक्ताओंने बताया था कि यह कानून अभी मौजूदा कम्पनियों और रेहननामोंको संरक्षण प्रदान करेगा। इसलिए यह निर्णय हमारी आँखें खोलनेवाला सिद्ध हुआ है। और मैं कहूँगा कि अगर मान भी लिया जाये कि निर्णय ठीक है, तब भी उसके कारण स्पष्टतः विधान-सभाका अभिप्राय विफल हो जाता है और भारतीय उन अधिकारोंसे वंचित हो जाते हैं जिनका उपयोग वे वर्षोंसे सर्वथा निर्विघ्न रूपसे करते आये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि इस आसन्न संकटको जैसे भी हो टाला जाये — भले ही इसके लिए,

जैसा कि १९१४ में भारतीय विवाहोंको कानूनी मान्यता दिलानेके लिए किया गया था, कोई नया कानून ही क्यों न बनाना पड़े।

तारमें उठाया गया दूसरा मुद्दा मजिस्ट्रेट द्वारा दिये गये फैसलेसे सम्बन्धित है और उसका मतलब यह है कि भारतीयोंको भारतीय होनेके नाते अवांछित घोषित किया जा सकता है — और सो कुछ अस्वच्छता या अनैतिकता आदिके कारण नहीं बल्कि इस कारणसे कि वे यूरोपीय व्यापारियोंकी स्पर्धामें आते हैं और उससे इन व्यापारियोंकी हानि होती है। अगर यह सिद्धान्त कायम रहता है तब तो दक्षिण आफ्रिकामें कोई भी किसी तरहका व्यापार नहीं कर सकता।

तारमें तीसरी बात, दक्षिण आफ्रिकामें नगरपालिकाओंकी सत्तामें वृद्धि करनेके लिए आयोगने जो सुझाव दिया है, उससे सम्बन्धित है। सामान्यतः तो नगरपालिकाकी सत्तामें वृद्धि होनेकी बात सबको अच्छी लगती है, लेकिन दक्षिण आफ्रिकामें तथा साम्राज्यके अन्य संस्थानोंमें ऐसी वृद्धि होनेका अर्थ इस विषयमें जो हुआ है उसे देखते हुए, यह हुआ कि नगरपालिकाको, इन संस्थानोंके पराधीन और मताधिकारसे वंचित वर्गोंपर अत्याचार करनेकी सत्ता सौंपना। इससे जिन लोगोंको मताधिकार प्राप्त न हो उन लोगोंके लिए नगरपालिकाकी सारी सत्ता सुखकर न होकर दुःखदायक साबित होगी। ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटमें भारतीयोंको राजनैतिक अथवा नगरपालिका सम्बन्धी मताधिकार बिलकुल प्राप्त नहीं हैं। नेटाल और केपमें कुछ हदतक वे मताधिकारका उपभोग करते हैं, लेकिन वह इतना ज्यादा नहीं है कि जिससे नगरपालिकाओंकी कार्यवाहीपर अपना प्रभाव डाल सकें अथवा उनसे अपने मनोनुकूल बात करवा सकें।[1]

सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन शीघ्र ही दक्षिण आफ्रिकाके लिए प्रस्थान करनेवाले हैं। वहाँ भारतीयोंको उनका पूरा दर्जा दिलानेकी बात तो अलग रही, अगर वे उन्हें संतोषके लायक ऐसा दर्जा भी दिलाना चाहेंगे जिससे वे उन प्रतिबन्धोंके अलावा, जो सभीपर सिद्धान्ततः और व्यवहारतः भी सामान्य रूपसे लागू होते हैं, अन्य सभी प्रतिबन्धोंसे मुक्त रहकर भूस्वामित्व और व्यापार आदि करनेका अधिकार प्राप्तकर रह सकें, तो इतनेमें ही उनकी कूटनीतिक प्रतिभा और न्यायके प्रति उनके दायित्व-भावकी पूरी कसौटी हो जायेगी। आशा तो यही की जा सकती है कि भारत सरकार संघ सरकारसे स्पष्ट बात करेगी और जनता तथा अखबार उसके हाथ मजबूत करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, २७–२–१९२०

१. यह अनुच्छेद अंग्रेजी सूत्रमें उपलब्ध नहीं है, इसलिए इसका उक्त अनुवाद मूल लेखके गुजराती अनुवादसे किया गया है जो २५ जनवरी, १९२० के **नवजीवन**में प्रकाशित किया गया था।

२७८. पटरीसे उतरे

मुझे हमेशा प्रिय-अप्रिय पत्र प्राप्त होते रहते है। मैंने जबसे सम्पादन-काय सँभाला तबसे और भी ज्यादा पत्र आने लगे हैं। उनमें से अधिकांश मैं प्रकाशित नहीं कर सकता, वे प्रकाशनके योग्य नहीं होते। लेकिन किसी-किसी पत्रको प्रकाशित करनेसे लाभ होनेकी सम्भावना होती है। ऐसा एक पत्र मुझे अभी-अभी प्राप्त हुआ है, मैं उसे नीचे मूल रूपमें ही प्रकाशित कर रहा हूँ।[1]

यह पत्र लिखनेवाला एक परिश्रमी युवक है। उसमें देशभक्तिकी आग है, लेकिन जैसे वक्र आँखके कारण सब कुछ वक्र दिखाई देता है उसी तरह अपने हृदयकी कटुताके कारण इन भाईको मेरी सब बातें उलटी ही दिखाई देती हैं। मेरे प्रति तो एक समय उनके मनमें प्रेम-भाव ही था। लेकिन अंग्रेजोंके प्रति उनकी कटु-भावनाने तथा अंग्रेजोंके प्रति मेरी निस्पृह भावनाके कारण, ये भाई जो मेरे कार्योंको अच्छा मानते थे अथवा जिनके सम्बन्धमें तटस्थ रहते थे वे कार्य भी उन्हें [अब] बुरे जान पड़ते हैं। इतना ही नहीं वरन् मैंने अपने जिन कार्योंको सबसे श्रेष्ठ माना है मेरे उन कार्योंमें भी वे मेरी मूर्खताको सिद्ध करनेमें समर्थ हो सके हैं।

यह कोई अपवाद नहीं है। ऐसा अनुभव मुझे दक्षिण आफ्रिकामें हुआ था और यहाँ भी यदा-कदा होता ही रहता है। मनुष्यकी ऐसी दशा कैसे हो जाती है? इसका उत्तर 'भगवद्गीता' में इन सुन्दर शब्दोंमें दिया गया है "विषयोंका ध्यान करनेसे मनुष्यके मनमें उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्तिसे काम, कामसे क्रोध, क्रोधसे मोह, मोहसे स्मृतिभ्रम, स्मृतिभ्रमसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे विनाश होता है।"[2] यह उत्तरोत्तर गतिका चित्रण है। विषय-ध्यानके कारण सब कोई इस अन्तिम गतिको प्राप्त नहीं होते, क्योंकि सभी अपना विवेक पूर्णतया नहीं खो बैठते।

प्रस्तुत प्रसंगमें विषय है "नौकरशाही" के प्रति उपर्युक्त पत्र-लेखककी अरुचि। उससे उनके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ, उस क्रोधावेशमें वे सारासारकी विवेक-बुद्धि खो बैठे हैं और पहले कहे गये वचनोंका भी उन्हें कोई ध्यान नहीं रहा।

ऐसी दशासे हम सब मुक्त रह सकें तो रहना चाहिए — यही चेतावनी देनेके लिए मैंने उपर्युक्त पत्रको प्रकाशित किया है।

"नौकरशाही" अथवा अन्य किसी प्रकारकी "शाही" के सब कार्य हमें पसन्द आयें यह जरूरी नहीं है। मुझे उसके बहुत सारे कार्य नापसन्द हैं लेकिन इससे मेरे मनमें उसके प्रति असन्तोषका भाव उत्पन्न नहीं होता और इसी कारण जिस बारीकीसे

१. इसे यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। पत्र-लेखकने दलील दी थी कि गांधीजीने भारतमें जो भी कार्य आरम्भ किये थे, उन्हें पूरा करनेमें वे पूर्णतः असफल रहे हैं इसलिए "अब वे राजनैतिक कार्य करनेके सर्वथा अयोग्य हैं।"

२. **भगवद्गीता,** अध्याय २, ६२–६३।

में उसके दोष बता सकता हूँ उतना शायद अन्य लोग न बता सकें, ऐसी मेरी मान्यता है। मैंने चार वर्षोंमें ही जिस दृढ़ताके साथ "नौकरशाही" का मुकाबला किया है उतना अन्य लोगोंने कम ही किया होगा। लेकिन मेरे मनमें क्रोध नहीं था इससे मैंने विवेक नहीं खोया।

यही दोष इस क्रोधी भाईको मुझमें दिखाई दिया है। आइये अब जरा उनके पत्रपर विचार करें। उनके सब आरोपोंमें अर्ध सत्य है और अर्ध सत्यको मैं डेढ़ [गुना] असत्य कहता हूँ क्योंकि वह दोनोंको भ्रममें डालता है। अर्ध सत्य बोलनेवाला उसकी पूर्णताकी ओर नहीं देखता एवं सुननेवाला इस अर्ध सत्यको ही पूरा सत्य मान लेता है। यह सच है कि खेड़ा जिलेके लोगों द्वारा लगानका अधिकांश भाग चुका दिये जानेपर उसे ऐच्छिक घोषित कर दिया गया, लेकिन खेड़ा जिलेके लोगों द्वारा किया गया यह कार्य, अर्ध कार्य था। सरकारको अपनी "ना" को "हाँ" में बदलना पड़ा, उसमें निहित यह शेष भाग महत्त्वपूर्ण था। मैं मानता हूँ और मेरे साथ ही खेड़ाके हजारों स्त्री-पुरुष भी यह मानते हैं कि लोगोंमें जो जागृति आई, फिर अन्तमें ही सही, सरकारको हारकर हमारे हकमें निर्णय करना पड़ा — यह उसके महत्त्वपूर्ण परिणाम थे। सत्याग्रहमें व्यक्तिगत स्वार्थको अवकाश नहीं, यह बात यदि यह पत्र-लेखक जानते होते तो उन्होंने जो आरोप लगाये हैं वे न लगाये होते।

वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध मैंने एक आन्दोलन चलाया है, यह पत्र-लेखककी भ्रान्ति है; अस्पृश्यता वर्णाश्रमका एक अंग है, यह [बात] अर्ध सत्य है। मैं वर्णाश्रमको मानता हूँ, ऐसा मैं अनेक बार कह चुका हूँ। लेकिन भंगी आदिका स्पर्श न करना पाप है, यह बताकर मैंने दृढ़तापूर्वक वर्णाश्रम धर्मको अस्पृश्यताके दोषसे मुक्त करवानेका जो प्रयत्न किया है वह हिन्दू-धर्मके प्रति मेरी निर्मल सेवा है। ऐसा करके मैंने हिन्दुओं-का मन दुखाया है, यह भी अर्ध सत्य है। इसके पीछे मेरा उद्देश्य यही है कि इससे हिन्दुओंकी भावनाओंको कभी ठेस न पहुँचे। सत्याचरणका प्रचलन करते हुए मन दुखी हो तो उसे दुखाना ही धर्म है। उस उत्तरदायित्वसे मैं अथवा कोई अन्य व्यक्ति भी कैसे मुक्त हो सकते हैं।

लोकमान्य तिलककी दलीलके विरुद्ध मैंने सेनामें भरती-अभियान शुरू किया, यह अर्ध सत्य है। मेरी इस प्रवृत्तिके वे विरोधी नहीं थे, अपितु उनका अभिप्राय यह था कि अगर [हमें] समानाधिकार मिल सकें तो वह प्रवृत्ति अधिक सुचारु ढंगसे चल सकेगी। इस तरह लोकमान्यके मूल विचारोंमें तथा पत्र-लेखक द्वारा अभिव्यक्त किये गये उनके विचारोंमें बहुत अन्तर है। मैं अहिंसाका पालन करनेवाला, भरती-अभि-यानके लिए कैसे निकल पड़ा; यह प्रश्न तो अनेक लोगोंके मनमें उठा था और इसका उत्तर मैं दे ही चुका हूँ। इस समय अधिक विस्तारमें न जाकर सामान्य दृष्टिसे देखने-पर मेरे इस कार्यको अच्छा कहा गया है, तथापि इस भाईको यह ठीक नहीं लगा। रौलट विधेयकके सम्बन्धमें तो अर्ध सत्य स्पष्ट ही है। लेकिन क्रोधीको कैसे समझाया जाये कि जो व्यक्ति मारे गये हैं, जिन्होंने मकान जला दिये हैं उनके दोषोंके लिये मैं उत्तरदायी नहीं हूँ।

सुधारों आदिके विषयमें जो अर्ध सत्य है उनपर टीका करना मैं अनुचित समझता हूँ। जो क्रोधी स्वभावके हैं उन्हें मैं उपर्युक्त पत्रपर मनन करनेकी सलाह देता हूँ और चाहता हूँ कि वे लोग भी ऐसे भ्रमोंका शिकार न बनें। मेरे ऊपर भले ही उपर्युक्त आक्षेप किये जायें। खेड़ा जिला आदिके सम्बन्धमें की गई सेवाओंको भले ही मान्यता प्रदान न की जाये। इन सबके विषयमें मतभेद हो सकते हैं लेकिन हमें क्रोधके बहावमें बह नहीं जाना चाहिए। जिस पुरुषके कार्योंको एक बार हमने भली-भाँति सोच-समझकर अच्छा माना था उसी पुरुषके दूसरे कार्य बुरे लगनेपर हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसके उन सभी कार्योंको बुरा न मानें जिन्हें कभी हमने अच्छा माना था।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५–१–१९२०

२७९. पत्र : ठाकोरको

लाहौर
जनवरी २५, १९२०

प्रिय श्री ठाकोर,

आपके इंग्लैंडके कामके बारेमें मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकता कि आप जो भी जानकारी दें, बिलकुल सही होनी चाहिए और जो भी माँग करें वह मर्यादित हो, लेकिन साथ ही माँगनेके ढंगमें दृढ़ता होनी चाहिए। दोनोंमें से किसी भी मामलेमें असंयम बरतनेसे आपका पक्ष कमजोर होगा। मैं आपको कोई कागज भेजनेमें असमर्थ हूँ, क्योंकि मेरे पास यहाँ कुछ नहीं है। मैं यह मान लेता हूँ कि आप श्री पोलकसे मिलकर उनका परामर्श-निर्देश प्राप्त करेंगे। मैं आपकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ।

हृदयसे आपका,

पेंसिलसे लिखे अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०२७ (ई) से।

२८०. पत्र : एस्थर फैरिंगको

रविवार [जनवरी २५] १९२०[1]

रानी बिटिया,

नरहरिने मुझे बताया है कि तुम आजकल इमाम साहबके साथ रह रही हो। मुझे खुशी है कि तुम वहाँ निश्चय ही किसी भी और जगहकी अपेक्षा अधिक घर-जैसा महसूस करोगी, क्योंकि कमसे-कम तुम्हारे पास कोई ऐसा तो रहेगा जो बराबर तुमसे अंग्रेजीमें बात करेगा। और फिर तुम अपना संतुलित स्नेह फातिमाको दे सकती हो और उसका शुभ परिणाम भी तत्काल ही होगा।

यदि तुमने अपना स्वास्थ्य और मनकी शांति गँवा दी तो मुझे हार्दिक दुःख होगा। 'बुराईका प्रतिरोध न करो' इस कथनका जो अर्थ ऊपरसे दिखाई देता है, उससे कहीं अधिक गहरा है। उदाहरणके लिए बामें जो बुराई है उसका प्रतिरोध नहीं करना चाहिए; तुम्हें या फर्ज करो मुझको इसके बारेमें खीझना या व्यग्र नहीं होना चाहिए और अपने आपसे यह नहीं कहना चाहिए कि 'यह स्त्री सत्यको क्यों नहीं देखती, या मेरे स्नेहका प्रतिदान क्यों नहीं देती।' जिस प्रकार एक तेंदुआ अपने [खालके] धब्बे नहीं बदल सकता उसी तरह वह अपने स्वभावके प्रतिकूल नहीं जा सकती। यदि तुम या मैं प्यार करते हैं, तो हम अपने स्वभावके अनुसार कार्य करते हैं। यदि वह बदलेमें स्नेह नहीं करती तो वह अपने स्वभावके अनुसार आचरण करती है। और यदि हम इसकी चिन्ता करते हैं तो हम 'बुराईका प्रतिरोध' करते हैं। क्या तुम मुझसे सहमत हो? मुझे लगता है कि इस आदेशका यही गहरा अर्थ है और इस-लिए मैं चाहूँगा कि प्रत्येकके साथ व्यवहारमें तुम अपनी समवृत्ति बनाये रखो। दूसरी बात यह कि तुम्हें अपने शारीरिक आरामके लिए जिस किसी चीजकी जरूरत हो उससे शरीरको वंचित न करो। यदि और किसीसे नहीं तो मुझसे कहो।

चूँकि मैं तुम्हारे बारेमें चिन्तित रहता हूँ, मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे रोज पत्र लिखो।

स्नेह और मंगलकामनाओं सहित,

तुम्हारा,
बापू

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियामें सुरक्षित हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे**।

१. पत्रकी यह तारीख महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीमें दी गई है।

२८१. पत्र : नारायण दामोदर सावरकरको

लाहौर
जनवरी २५, १९२०

प्रिय डॉ० सावरकर,

आपका पत्र प्राप्त हुआ।[1] आपको परामर्श देना कठिन कार्य है। तथापि मेरा सुझाव है कि आप एक संक्षिप्त याचिका तैयार करें जिसमें तथ्योंको इस प्रकार प्रस्तुत करें ताकि यह बात बिलकुल स्पष्ट रूपसे उभर आये कि आपके भाई साहबने जो अपराध किया था उसका स्वरूप बिलकुल राजनीतिक था। मैं यह सुझाव इसलिए दे रहा हूँ कि तब जनताका ध्यान उस ओर केन्द्रित करना सम्भव हो जायेगा। इस बीच, जैसा कि मैं अपने एक पहले पत्रमें[2] आपसे कह चुका हूँ, मैं अपने ढंगसे इस मामलेमें कदम उठा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०४३) की फोटो-नकलसे।

२८२. पत्र : आसफ अलीको

जनवरी २५, १९२०

प्रिय श्री आसफ अली,

आपकी बीमारीका समाचार सुनकर मुझे दुःख हुआ। मुझे आशा है कि आप पूरी तरह स्वस्थ भले न हुए हों फिर भी पहलेसे अच्छे हो गये होंगे।

मैं आपके दो टूक पत्रके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

गो-वध विषयक प्रस्तावके सम्बन्धमें कोई गलतफहमी न होने पाय इसके लिए मैं निश्चय ही सारे आवश्यक कदम उठाऊँगा। मैं आपसे इस बातमें पूरी तरह सहमत हूँ कि इस प्रश्नपर मुसलमानोंके रुखके बारेमें झूठी आशाएँ पैदा नहीं की जानी चाहिए,

१. डॉ० सावरकरने अपने १८ जनवरीके पत्रमें लिखा था: "...कल मुझे भारत सरकार द्वारा सूचित किया गया कि रिहा किये जानेवाले लोगोंमें सावरकर बन्धु शामिल नहीं हैं।...कृपया मुझे बतायें कि इस मामलेमें क्या करना चाहिए। वे (मेरे दोनों भाई) अण्डमानमें दस वर्षसे ऊपर कठिन सजा भोग चुके हैं, और उनका स्वास्थ्य बिलकुल चौपट हो चुका है। उनका वजन ११८ पौंडसे घटकर ९५–१०० पौंड रह गया है।...यदि भारतकी किसी अच्छी आबहवा वाली जेलमें भी उनका तबादला कर दिया जाये तो गनीमत हो। मुझे आशा है आप सूचित करेंगे कि आप इस मामलेमें क्या करने जा रहे हैं।" सावरकर बन्धुओंको आजीवन कालेपानीकी सजा हुई थी। अन्ततः उन्हें १९३७में रिहा कर दिया गया था।

२. यह पत्र प्राप्त नहीं है।

और हमारी [हिन्दुओंकी] ओरसे मुसलमानोंमें किसी भी तरहके प्रचारको टालना चाहिए।

मुझे इस बातकी भी खुशी है कि आपने नैतिक प्रश्नको भी उठाया है और उसपर विशुद्ध शास्त्र-सम्मत धार्मिक आधारपर नहीं बल्कि उदार और मानवीयताके आधारपर विचार व्यक्त किये हैं। तथापि मैं शास्त्र-सम्मत धार्मिक आधारपर कहूँगा कि जब दो महान् जातियाँ साथ-साथ रहती हैं उस समय एक जातिकी धार्मिक भावनाकी यह माँग होती है कि वह दूसरी जातिकी धार्मिक प्रथाओंका बशर्ते कि वे सर्वसामान्य दृष्टिसे अनैतिक न हों, सच्चे मनसे खयाल रखें। उदाहरणके लिए, गैर-मुसलमान मक्का जायें, इसमें मुझे कुछ गलत नहीं लगता। लेकिन गैर-मुसलमानोंको आप मक्कामें प्रवेश करनेसे रोकें तो इसमें अनैतिक कुछ नहीं है। और चूँकि निषेधकी यह भावना पिछले १,३०० वर्षोंसे बराबर चली आ रही हैं, अतः मैं उसका समर्थन करता हूँ।

ऐसा ही मुसलमानोंके लिए गो-वधके मामलेमें भी हो सकता है।

जहाँतक उदार मानवीय आधारका सवाल है, चूँकि आपके विचार मेरे विचारसे बहुत भिन्न हैं, अतः हमें शायद एक-दूसरेसे असहमत ही रहना होगा। मैं मानता हूँ कि ईश्वरने निम्नवर्गके प्राणियोंकी रचना इसलिए नहीं की है कि मनुष्य उनका अपनी इच्छानुसार उपयोग करे। मनुष्य भोगके द्वारा नहीं बल्कि संयम द्वारा ही श्रेष्ठतम स्थितिको प्राप्त होता है। यदि मैं वनस्पतियोंको खाकर स्वस्थ रहते हुए जी सकता हूँ तो मुझे किसी प्राणीकी हत्याका कोई अधिकार नहीं है। कुछ प्राणियोंकी हत्या करना मुझे आवश्यक प्रतीत होता है, केवल इस कारण सभी प्रकारके प्राणियोंकी हत्या करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। अतः यदि मैं बकरी, मछली और मुर्गी (जो कोई भी ईमानदारीसे काफी मानेगा) खाकर भली भाँति जी सकता हूँ, तो मेरे लिए भोजनके हेतु गायकी हत्या करना पाप है। और ऐसा ही कोई तर्क था जिसके कारण प्राचीन कालके ऋषियोंने गायको पवित्र माना, विशेष रूपसे तब जब उन्होंने देखा कि गाय राष्ट्रीय जीवनमें सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक् पूँजी है। और जबतक मेरी पूजा गायको उसके स्रष्टाके साथ बराबरीका दर्जा न देती हो तबतक गाय जैसे उपयोगी जानवरकी पूजा करना मुझे गलत, अनैतिक या पाप नहीं जान पड़ता। मैं इस विचारका (जिसपर इस्लाममें बहुत बल दिया गया है) बहुत बड़ा प्रशंसक हूँ कि विशेष पूजा केवल उसीकी होनी चाहिए जो हम सबका रचयिता है। किन्तु मैं गऊकी पूजा और गो-वध, इन दो प्रश्नोंको मिलाना नहीं चाहता। यदि आप यह बात मानते हैं कि मनुष्य जितना ही संयम रखता है, मनुष्यके नाते वह उतना ही श्रेष्ठ होता है, तो आपको यह माननेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि नैतिक आधारपर गो-वधका समर्थन नहीं किया जा सकता।

मैं आपसे सहमत हूँ कि जहाँतक गो-वधके आर्थिक पहलूकी बात है, यूरोपीयोंके लिए होनेवाला गो-वध सबसे पहले आता है। जबतक सार्वजनिक बूचड़खानोंमें प्रतिदिन होनेवाली गो-हत्याके प्रश्नपर हिन्दू गूँगे बने रहते हैं तबतक मेरी रायमें बकरीदके

दिन मुसलमानों द्वारा होनेवाले गो-वधके खिलाफ शोर मचाना बहुत शोभनीय नहीं है। यह तो तिलको ताड़ और पर्वतको राई मानने जैसी बात हुई।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०६४) की फोटो-नकलसे।

२८३. पत्र : मदनपल्लीके एक सज्जनको

लाहौर
जनवरी २५, १९२०

प्रिय श्री . . . . .[१]

सत्याग्रहके सिद्धान्तको तार्किक और आध्यात्मिक दृष्टिसे पूरी तरह विकसित कर पानेके पहले भी मैं निष्क्रिय प्रतिरोध, जिस रूपमें वह पश्चिममें समझा और व्यवहृत किया जाता है, और सत्याग्रहके बीच अन्तर करता था, मैंने कई बार निष्क्रिय प्रतिरोध और सत्याग्रह शब्दोंका प्रयोग एक दूसरेके पर्यायके रूपमें किया है; किन्तु सत्याग्रहका सिद्धान्त धीरे-धीरे विकसित होता गया, और अब तो प्रतिरोध शब्दकी तरह ही उसका पर्यायवाची नहीं रहा। कारण जैसा कि इंग्लैंडमें महिला मताधिकार आन्दोलनमें हुआ, निष्क्रिय प्रतिरोधमें हिंसाका स्थान है, और सर्वसामान्य रूपसे उसे कमजोरोंका अस्त्र माना गया है। फिर निष्क्रिय प्रतिरोधमें प्रत्येक परिस्थितिमें सत्यका पूर्ण रूपसे पालन करना भी कोई आवश्यक शर्त नहीं है। अतः वह इन तीन बुनियादी बातोंमें सत्याग्रहसे भिन्न है; सत्याग्रह शक्तिवान लोगोंका अस्त्र है; इसमें किन्हीं भी परिस्थितियोंमें हिंसाके लिए कोई गुंजाइश नहीं है; और यह बराबर सत्यपर आग्रह रखता है। मैं समझता हूँ कि दोनोंके बीच जो अन्तर है उसे मैंने बिलकुल स्पष्ट कर दिया है।

हृदयसे आपका,

मदनपल्ली (पी० ओ०)

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०७१) की फोटो-नकलसे।

१. प्रापकका नाम अस्पष्ट होनेके कारण पढ़ा नहीं जा सका।

२८४. पत्र : नरहरि परीखको

[जनवरी २५, १९२० के बाद][1]

भाई नरहरि,

तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला। तुम न लिखते तो मुझे बहुत दुःख होता। कुमारी फैरिंगके भोजनकी व्यवस्था इमाम साहबके यहाँ करनी पड़ी; ठीक ही हुआ। बा के सम्बन्धमें मैं उसे पहले ही लिख चुका हूँ। बा ने बहुत सारे कार्योंमें बाधा डाली है। हम भगवान्से प्रार्थना करें कि वह कुमारी फैरिंगके मामलेमें बाधा न डालेगी। बा के इस दोषको निकालनेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। तुम जैसे महादेवकी सेवा करते हो वैसे ही कुमारी फैरिंगकी भी करना। तुम्हारे पत्रको मैंने चि० मगनलालके पास भेजा है। तुम भी यही मानना कि ऐसा करके मैंने बुद्धिमानी की है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११८८३) की फोटो-नकलसे।

२८५. पत्र : जे० बी० पेटिटको

[लाहौर
जनवरी २६, १९२०][2]

प्रिय श्री पेटिट,

मैंने तो मान लिया था कि श्रीमती कुँवरबाई सोराबजीके जो करीब ९०० रुपये थे, आपने उन्हें दे दिये होंगे। लेकिन अभी उनका एक पोस्टकार्ड मिला है, जिससे मालूम होता है कि उन्हें तो अभी कुछ नहीं मिला है। उन्हें जितनी जल्दी हो सके, पैसे भेज दें।[3] बेचारी बहुत कष्टमें जान पड़ती हैं। आजकल वे श्री पालोंजीके यहाँ हैं।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०७२) की फोटो-नकलसे।

१. यहाँ एस्थर फैरिंग द्वारा इमाम साहबके घर भोजन करनेका उल्लेख होनेसे स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजीने यह पत्र लगभग उसी समय लिखा था जिस समय एस्थर फैरिंगको ।

२. पेटिटने ४ फरवरी, १९२० को गांधीजीको जो पत्र लिखा उसमें इस पत्रके उक्त तारीखको लिखे होनेका उल्लेख है ।

३. पेटिटने उत्तर दिया था कि श्रीमती सोराबजीको ९२५ रुपये ५ आने भेज दिये गये हैं ।

२८६. फैसला

जनवरी २६, १९२०

दोनों पक्षों द्वारा चुने गये एकमात्र निर्णायककी हैसियतसे मैं फैसला देता हूँ कि प्रतिवादी पक्ष वादियोंको १७ जून, १९१८से ७½ प्रतिशत साधारण वार्षिक ब्याजके साथ-साथ ८,००० (आठ हजार रुपये) अदा करे। अगर उक्त रकम अदा न की जाये तो मैं यह भी फैसला देता हूँ कि अभियोग पत्रमें उल्लिखित तमस्सुकमें जिस जायदादका जिक्र है वह फैसलेमें कही गई रकमकी वसूलीके लिए बेच दी जाये। आगे मैं यह फैसला देता हूँ कि दोनों ही पक्ष आज तकका अपना अदालती खर्च खुद उठायें लेकिन अगर उसे वसूल करनेमें कोई खर्च पड़े तो वह प्रतिवादी अदा करे।

२६ जनवरी, १९२०को लाहौरमें दिया गया।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०५६) की फोटो-नकलसे।

२८७. पत्र : कप्तान अजमतुल्ला खाँको

[जनवरी २६, १९२०]

प्रिय कप्तान अजमतुल्ला खाँ,

इस पत्रके साथ मैं आपके मामलेमें दिया गया अपना निर्णय[1] संलग्न कर रहा हूँ। मैंने इसकी नकल मुद्दईके वकीलको भेज दी है।

हृदयसे आपका,

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०५६) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए अगला शीर्षक।

२८८. पत्र : मोतीचन्द ऐंड देवीदास, सॉलिसिटर्सको

जनवरी २६, १९२०

मोतीचन्द ऐंड देवीदास
सॉलिसिटर्स
बम्बई

महोदय,

पाटण पिंजरापोल बनाम कप्तान अजमतुल्ला खाँ तथा अन्य लोगोंका जो मामला फैसलेके लिए मुझे सौंपा गया था, उसके सम्बन्धमें अपना फैसला[1] मैं साथमें भेज रहा हूँ। इसकी नकल मैंने कप्तान अजमतुल्ला खाँको भेज दी है। मुझे नहीं मालूम कि इसपर कोई स्टैम्प भी लगाना है या नहीं। अगर लगाना हो तो आप ही लगा दें और अगर फिर उसपर मेरे हस्ताक्षर आदिकी जरूरत हो तो आप फैसलेको विधिवत् स्टैम्प लगाकर वापस भेज दें — मैं स्टैम्पपर हस्ताक्षर आदि कर दूँगा।

हस्तलिखित अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०५६) की फोटो-नकलसे।

२८९. पत्र : एस्थर फैरिंगको

लाहौर
जनवरी २६, १९२०

रानी बिटिया,

तुम्हारा छोटासा पत्र मिला। आशा है कि तुम्हें मेरे पत्र नियमित रूपसे मिलते रहे हैं। मैंने शायद ही किसी दिन न लिखा हो। आज मैं तुम्हें स्नेह भरा पत्र नहीं भेज सकता, क्योंकि डाक जानेमें अब कुछ ही मिनट बचे हैं।

दीपककी प्रगति कैसी है? कृपया दीपकसे कहना कि उसने सरलादेवीको पिछले ४ चार दिनोंसे पत्र नहीं लिखा है। उसे नियमित रूपसे पत्र लिखना चाहिए।

कृपया देखो कि वह कमसे-कम एक पोस्टकार्ड रोज लिखे।

तुम्हारा,
बापू

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियामें सुरक्षित हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे**।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२९०. पंजाबकी चिट्ठी – ९

लाहौर

माघ सुदी ६ [जनवरी २७, १९२०]

दिल्ली

पंजाबका दौरा करनेके लिए मैं यहाँ फिर आ पहुँचा हूँ। अतः 'नवजीवन' के पाठकोंको पंजाबसे पत्र लिखनेका अवसर फिर प्राप्त हुआ है।

पंजाब पहुँचनेके पहले मुझे दिल्ली आदि कुछ स्थानोंमें रुकना पड़ा; पहले दो शब्द उनके विषयमें कहूँगा।

मुझे आशा तो यह थी कि मैं बम्बई जाकर मित्रोंसे मिलकर, स्वदेशी सभा और सत्याग्रह सभाका काम देख-सुनकर, चरखा चलानेवाली बहनों और भाइयोंसे भेंट करनेके बाद, प्रयाग होते हुए लाहौर जाऊँगा।

किन्तु ईश्वरने या यों कहिए कि खिलाफत कमेटीने कुछ दूसरा ही निर्णय किया। हाजी-उल-मुल्क हकीम अजमलखाँ साहबने तार दिया कि खिलाफतके सम्बन्धमें वाइसराय महोदयके पास जो शिष्टमण्डल जानेवाला है उसमें मुझे भी शामिल होना है। इस शिष्टमण्डलकी खबर समाचारपत्रोंमें आ चुकी है। इसलिए उसके विषयमें मैं कुछ नहीं कहूँगा। शिष्टमण्डलमें हिन्दुओंके शामिल होनेसे उसका महत्त्व, उसकी शोभा विशेष हो गई थी। अली भाई [मुस्लिम] जन-समाजकी प्रीति अपने किन गुणोंके कारण प्राप्त कर सके हैं यह मैं देख सका। उनकी मीठी वाणी, हरएक काम करनेमें उनकी तत्परता, स्नेही स्वभाव, सबके प्रति सहानुभूति और कर्मठता — ये ऐसे गुण हैं जिनसे हर एकका मन जीता जा सकता है। अली भाइयोंको देखकर मुसलमान भाइयोंका मन तृप्त हो जाता है। वे मुसलमान भाइयोंकी आँखें हैं और इस समय तो अपने प्रेमसे उन्होंने हिन्दुओंका मन भी हर लिया है।

कानपुर

दिल्लीसे मुझे प्रयाग तो जाना ही था। वहाँ पंडित मोतीलालसे मिलकर वापस लौट रहा था तभी मुझपर कानपुर जानेके लिए जोर डाला गया। कानपुरके नागरिकों-का आग्रह था कि वहाँ मुझे मात्र कुछ घन्टे ही रुकना होगा। स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन करके मैं दूसरी गाड़ीसे वहाँसे विदा ले सकूँगा। मैं उन्हें निराश नहीं कर सका।

प्रयागसे दिल्ली जाते हुए कानपुर रास्तेमें पड़ता है और प्रयाग मेल गाड़ीसे केवल चार घन्टेका रास्ता है। कानपुर बम्बईकी तरह ही व्यापारका और कपड़ा-मिलोंका केन्द्र है। वहाँकी जलवायु भी बहुत अच्छी है। इस नगरमें स्वदेशी भण्डार

खोलनेका यह पहला ही प्रयत्न है और उसमें मुख्य हाथ हसरत मोहानी साहबका है। इस भण्डारके उद्घाटनके समय हजारों आदमी एकत्र हुए थे, उनके उत्साहकी सीमा नहीं थी।

एक दुःखद घटना

मेरे वहाँ पहुँचनेके पहले अली भाई भी पहुँच चुके थे। उनके सम्मानमें एक बहुत बड़ा जलूस निकाला गया था। उनकी गाड़ीका घोड़ा भड़का और लातें मारने लगा। भीड़ बहुत ज्यादा थी। गाड़ीके पास ही अब्दुल हफीज़ नामका एक हृष्ट-पुष्ट युवक खड़ा हुआ था। पिछले कुछ दिनोंसे वह सार्वजनिक सेवाका काम करने लगा था। घोड़ेकी लातसे उसकी छातीपर चोट लगी और वह गिर पड़ा। जिसके मरनेकी कभी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी ऐसा वह युवक क्षण-मात्रमें चल बसा। अली भाई तुरन्त गाड़ीसे उतरे। उन्होंने एक खाट मँगवाई। उसके ऊपर युवकका शव रखा गया और दोनों भाइयोंने उसमें अपना कंधा दिया। कुछ दूरतक वे स्वयं उसकी इस शव-यात्रामें गये। बादमें कन्धा बदलनेपर अपने कामपर गये। जो जलूस खुशीका था वह इस घटनाके बाद शोकका हो गया और शवके साथ गया। सारा दिन शोककी इस छायासे मलिन हो गया।

इस घटनाको घटित हुए चार घन्टे हुए होंगे कि इतनेमें मैं पहुँचा। मुझे यह दुःखद संवाद स्टेशनपर ही मिल गया था। मैंने माँग की कि मेरे लिए आयोजित जलूस स्थगित कर दिया जाये, मुझे सीधे भण्डार ले जाया जाये, और उद्घाटनकी क्रिया पूरी करानेके बाद वहाँ ले जाया जाये जहाँ अब्दुल हफीज़का शव है। नगरके नेताओंने मेरा अनुरोध स्वीकार किया। भण्डारका उद्घाटन करनेके बाद हम कुछ लोग भाई अब्दुल हफीज़का शव देखनेके लिए जा पहुँचे। दृश्य अत्यन्त हृदय-द्रावक था। उसकी हृष्ट-पुष्ट देह और सुन्दर चेहरा देखकर मुझे गहरा दुःख हुआ। आसपास खड़े हुए मुसलमान भाइयोंकी हिम्मतसे मैंने धैर्य धारण किया। वहाँ मैंने कोई रोनाधोना नहीं देखा। मानो घोर निद्रामें सोये हुए किसी भाईके आसपास बातचीत हो रही हो इस प्रकार वे लोग निर्भयतापूर्वक बातचीत कर रहे थे और मुझे सुना रहे थे कि युवककी मृत्यु कैसे हुई। इस दृश्यसे मैं बहुत प्रभावित हुआ। ऐसे अवसरपर हिन्दुओंमें कितना रोना-धोना होता है इस बातकी याद आई। मनमें विचार आया कितना अच्छा होता यदि हम इस पापसे बचते। यदि हम मृत्युका डर छोड़ दें तो अनेक अच्छे कार्य कर सकते हैं। जिस धर्मके अनुयायियोंमें मृत्युका भय कमसे-कम होना चाहिए उन्हींमें वह सबसे ज्यादा है। यह विचार कई बार मेरे मनमें आया है और उससे बड़ी लज्जाका अनुभव हुआ है। आत्मा अमर है, देह क्षणभंगुर है, कोई कार्य ऐसा नहीं जिसका परिणाम न होता हो — बचपनसे यह सब हम सीखते हैं। तो फिर मृत्युका भय क्यों होना चाहिए? अब्दुल हफीज़का एकमात्र पुत्र मेरे पास खड़ा हुआ था; वह भी निर्भयतापूर्वक बात कर रहा था। भगवान् अब्दुल हफीज़की आत्माको शान्ति प्रदान करे।

मेरठ

शामकी गाड़ीसे मैंने कानपुर छोड़ा। दूसरे दिन सुबह यानी तारीख २२को सुबह मैं मेरठ पहुँचा। जी० आई० पी० लाइनसे लाहौर जाते हुए मेरठ रास्तेमें पड़ता है। मैंने वहाँ कुछ घन्टे बितानेका वचन दिया था। मेरठवासियोंने बड़ी तैयारी कर रखी थी। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच वहाँ मेरे प्रति प्रेम-प्रदर्शनकी होड़-सी चल रही थी। अली भाई वहाँ कुछ ही दिन पहले गये थे। उन्हें एक हिन्दू सज्जनके घर ठहराया गया था। मुझे मेरठके प्रसिद्ध मुसलमान बैरिस्टर भाई इस्माइलखाँके घर ठहराया गया। स्वागत-समारोहमें ७५० स्वयंसेवक उपस्थित थे जिनमें कई प्रतिष्ठित परिवारोंके लोग थे। घोड़ोंपर सवार स्वयंसेवकोंका दल भी था। तीन मील लम्बे रास्तेपर झण्डोंसे सजाये हुए खम्भे लगाकर रस्सी बाँधी गई थी। जलूस रस्सियोंके भीतर-भीतर चल रहा था और बाहर दर्शक समुदाय था। जलूसमें बाजे, ऊँट-गाड़ियाँ, घुड़सवार, फैन्सी ड्रेसवाले आदि थे। मेरा अनुमान है कि वह एक मील लम्बा तो रहा होगा। आसपासके गाँवोंसे हजारों लोग आये थे। किन्तु व्यवस्था बहुत सुन्दर थी। मुझे नगरपालिका, खिलाफत कमेटी, साधारण जनसमाज, हिन्दू स्त्रियों और मुसलमान स्त्रियोंकी ओरसे मानपत्र दिये गये। स्त्रियोंकी एक अलग सभा आयोजित की गई थी। उनका हर्ष और उत्साह छलका पड़ रहा था। लगभग हजार स्त्रियाँ आई होंगी। मैं तो बहुत असमंजसमें पड़ गया। यह सारा प्रेम यदि मैं स्वीकार करूँ तो उसे पचाऊँगा कैसे? मैंने तो सब वहीं कृष्णार्पण कर दिया।

खिलाफतके सम्बन्धमें मेरी स्पष्टवादिता मुसलमान भाइयोंको बहुत प्रिय लगी है। जबतक उनकी बातको न्यायका आधार प्राप्त है और वे किसी प्रकारकी हिंसा किये बिना लड़ते रहते हैं तबतक मैं उनके लिए अपने प्राण अर्पित करूँगा किन्तु यदि वे कोई अनुचित माँग करते हैं तो मैं उन्हींके खिलाफ सत्याग्रह करूँगा — मेरे ये वाक्य उनको पसन्द आये हैं। मेरे इस कथनसे वे शक्ति और प्रेरणा ग्रहण कर सके हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनोंको सत्यके आग्रहकी बात, फिर चाहे वे उसका पालन करें या न करें, पसन्द आई है। और इसलिए वे मेरे ऊपर प्रेमकी वर्षा कर रहे हैं। सत्यका मेरा आग्रह जिस समय उनके खिलाफ होगा तब वे मेरा तिरस्कार भी करेंगे। जो प्रेम करता है उसे तिरस्कार करनेका अधिकार है ही।

मुजफ्फरनगर

मेरठसे मुझे रातोंरात मोटरमें मुजफ्फरनगर ले जाया गया। यहाँ हिन्दू-मुसलमानोंके बीच कुछ मनोमालिन्य हो गया था। मुझे वहाँ उसे मिटानेके लिए ही ले जाया गया था। मोटर रातको ९ बजे पहुँची। लोग उत्साहसे पागल हो गये थे। कोई किसीकी बात सुन ही नहीं रहा था। घुड़सवार तो यहाँ भी थे किन्तु मेरठ जैसी सुव्यवस्था नहीं थी। लोगोंने मोटरको घेर लिया। लोगोंने मुझे उसमें से बड़ी मुश्किलसे निकालकर घोड़ागाड़ीमें बिठाया। लोगोंका हर्षनाद सहन करनेकी शक्ति मुझमें बिलकुल नहीं रह गई थी। सच तो यह है कि मैंने अपने कानोंमें रुईके फाहे ठूँस रखे थे। एक भाईके पाँवमें चोट लगी। मुझे अब्दुल हफीज़की याद आई। जिस भाईको चोट आ गई

थी उसे मैंने गाड़ीमें बिठा लिया। लोगोंसे दूर होनेकी प्रार्थना की। कौन किसकी सुनता? तब मैंने अपना शस्त्र बाहर निकाला। मैंने कहा कि यदि लोग दूर नहीं होंगे और गाड़ी चलाई जायेगी तो मैं नीचे कूद पड़ूँगा। मैं यह नहीं सह सकता कि किसीको भी चोट लगे। मेरे इस चमत्कारपूर्ण शस्त्रका बिजली-जैसा प्रभाव हुआ। लोग शान्त हुए, घबराये और हट गये; मैंने तुरन्त गाड़ी चलानेको कहा। अब तो नियंत्रण मेरे हाथमें आ गया था। इसमें काफी समय गया। रास्तेमें लोगोंने दीपावली कर रखी थी। उसमें से निकलते-निकलते समय बीत गया। अभी सभा होनी बाकी थी। मेरी गाड़ीका समय हो गया था। दूसरे दिन सुबह तो लाहौर पहुँचना ही था। लेकिन लोग समझ गये थे कि अब किसी प्रकारका शोर-गुल करना या मेरे आसपास भीड़ करना ठीक नहीं होगा। रातको ११ बजे मण्डपपर पहुँचे। वहाँ सभामें अपने-आप अद्भुत व्यवस्था हो गई थी। चार हजार या उससे भी ज्यादा लोग रहे होंगे। मेरा गला कुछ बैठ गया था। किन्तु लोगोंने ऐसी शान्ति रखी कि सब लोग दूरतक मेरी आवाज सुन सके। अपने भाषणमें मैंने कहा कि यदि हम लाखों लोगोंमें काम करना चाहते हैं तो हमें व्यवस्था करना सीखना चाहिए। फिर स्थानिक झगड़ेकी चर्चा करते हुए उन्हें एक-दूसरेकी बात सहन करने और झगड़ा शान्त करनेकी सलाह दी। और फिर लोगोंने वहाँसे विदा ली। इस तरह भाग-दौड़ करते हुए इन दोनों शहरोंके दर्शन करके तारीख २३ की सुबह मैं लाहौर पहुँच गया।

कैसा चमत्कार!

अपने स्वामीसे वियुक्त श्रीमती सरलादेवी जहाँ पहले सिंहनीकी भाँति अकेली रहती थीं, वहाँ इस बार मैंने पति-पत्नी दोनोंको देखा। पंडित रामभजदत्त चौधरीको जेलसे निकले काफी समय हो चुका था। सरलादेवीके चेहरेपर मैंने अनोखा ही तेज देखा। या शायद मैं अन्याय कर रहा हूँ। क्योंकि वियोग-कालमें भी सरलादेवीने अपना तेज खोया नहीं था। फिर भी उस समयके और इस समयके तेजका भेद तो मैं देख सकता था। या ऐसा कहूँ कि मुझे उसका आभास हो रहा था। इतना तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि सरलादेवीके घर रहते हुए मुझे पहले जो आघात पहुँचा था चौधरीजीके आनेके बाद अब वह दूर हो गया है।

खिलाफतके बारेमें चर्चा

यहाँ पहुँचते ही मुझे एक सलाह-मशविरेमें भाग लेना था। ऐसा तय हुआ था कि मैं लाहौरमें २३ तारीखको अली भाइयों और अन्य प्रमुख इस्लामी नेताओंसे भेंट करूँगा। इसलिए वे भी किसी दूसरी ट्रेनसे वहाँ आ पहुँचे और सारा दिन उनकी माँगोंका मसविदा बनानेमें बीता। सरलादेवीज़ीका घर धर्मशाला-जैसा हो गया है। इन सुविख्यात मुस्लिम नेताओंका आतिथ्य-सत्कार सरलादेवी एक सगी बहनकी तरह कर रही थीं। इस तरह मसविदा बनाते-बनाते और सत्कारका सुख लेते-लेते रात हो गई तथा अली भाइयोंके जानेका समय आ गया। "जिस समय तुम सत्याग्रह करो उस समय मुझे बुलाना; यदि तुमने सत्याग्रह नहीं किया तो फिर मैं तुम्हारे साथ नहीं हूँ"

इन शब्दोंको सुनते हुए और यह प्रतिज्ञा लेते हुए अली भाई तथा हसरत मोहानी साहब वहाँसे विदा हुए। अली भाइयों और मोहानी साहबको रात-दिन यही एक लगन है: खिलाफतके सवालपर किस प्रकार न्याय प्राप्त किया जाये? अली भाइयोंको सत्याग्रहपर पूरी श्रद्धा नहीं है। हसरत मोहानी साहब मुझसे यह कहते हुए गये कि "सत्याग्रह हमेशा चल सकता है या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता। लेकिन मैं मानता हूँ कि इस कार्यके लिए आजके जमानेमें सत्याग्रह जैसा दूसरा हथियार नहीं है। इसलिए मैं उसका प्रचार करूँगा।"

हसरत मोहानीको 'यह हमारा मैड [पागल] मुल्ला' कहते हुए अली भाइयोंने अपने गले लगाया और विदा हुए। इस व्यक्तिको न मानकी इच्छा है न अपमानकी चिन्ता। गर्मी, सर्दी, दिन और रातका भेद किये बिना वे तो बस निरन्तर अपने कार्यमें ही मगन रहते हैं। मुसलमान समाजके पास ये तीन रत्न हैं और मुझे लगता है कि इन तीनोंमें मोहानी साहब सर्वश्रेष्ठ हैं। [अपने कार्यमें] तन्मयताकी दृष्टिसे हिन्दुओंमें भी उनसे बढ़कर शायद ही कोई हो, ज्यादा तो हैं ही नहीं और ये तीनों जैसे पक्के मुसलमान हैं वैसे ही पक्के भारतीय भी हैं। खिलाफतके फैसलेका और हिन्दुस्तानकी भावी शान्तिका आधार अधिकांशतः इन तीनोंकी समझदारीपर निर्भर है। मैं देख रहा हूँ कि उन्हें जो रास्ता सही मालूम होगा उसपर चलते हुए उनमें से कोई भी डरेगा नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १–२–१९२०

२९१. खिलाफत

आज खिलाफतका प्रश्न अर्थात् टर्कीके साथ सन्धिकी शर्तोंका प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण बन गया है। हम लोग वाइसराय महोदयके अतिशय कृतज्ञ हैं कि असाधारण देर हो जाने तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके प्रधान अधिकारियोंसे मिलनेकी तैयारीमें विशेष व्यस्त रहनेपर भी उन्होंने संयुक्त शिष्टमण्डलसे बातचीत की।[1] जिस परम सौजन्यसे उन्होंने शिष्टमण्डलका स्वागत किया तथा उनके उत्तरमें जो सौजन्य था उसके लिए भी हमें उनका आभारी होना चाहिए। सौजन्य सदा महत्त्वपूर्ण रहता है और उसका जितना महत्त्व इस अवसरपर है उतना कभी नहीं रहा होगा, पर इस संकटकालीन स्थितिमें केवल सौजन्यसे ही काम नहीं चल सकता। सत्य यह है, चिकनी-चुपड़ी बातोंसे पेट नहीं भरता। यह बात इस अवसरपर सबसे अधिक लागू होती है। उस सौजन्यकी ओटमें टर्कीको दण्ड देनेका निश्चय झलक रहा था। पर यह एक ऐसी बात है जिसे कोई मुसलमान सहन करनेके लिए तैयार नहीं है। युद्धसे जो परिणाम निकला है उसका श्रेय मुसलमान सैनिकोंको भी उतना ही है जितना कि अन्य सैनिकोंको। जिस समय टर्कीने मध्य यूरोपके देशों (जर्मनी आदि) का साथ देनेका निश्चय किया उस समय उन्हीं

१. शिष्टमण्डल १९ जनवरीको वाइसरायसे मिला था।

भारतीय मुसलमान सैनिकोंको प्रसन्न करनेके लिए श्री एस्क्विथने[1] कहा था कि ब्रिटिश सरकार टर्कीपर हमलेका विचार नहीं रखती और टर्कीकी कमेटीके दुष्कृत्योंके लिए वह सुलतानको दण्ड देनेका विचार भी न करेगी। वाइसरायके उत्तरको इस वचनकी कसौटीपर कसनेसे वह केवल असन्तोषजनक और निराशापूर्ण ही नहीं बल्कि सचाई और न्यायसे रहित भी है।

ब्रिटिश साम्राज्य किससे बना है? इसमें ईसाइयोंका जितना हक है उतना ही हिन्दू और मुसलमानोंका है। धार्मिक तटस्थता उसका गुण नहीं है, या गुण है तो उसका कारण यह है कि वह ऐसा करनेके लिए बाध्य है। इसके अतिरिक्त कोई भी ऐसा उपाय नहीं जिससे यह शक्तिशाली साम्राज्य कायम रह सके। इसलिए मुसलमानोंके स्वत्वोंकी रक्षाका भार ब्रिटिश मन्त्रियोंके ऊपर उतना ही है जितना अन्य किसीके स्वत्वोंकी रक्षाका। मुसलमानोंकी ओरसे दिये गये उत्तरमें प्रयुक्त शब्दोंमें कहें तो ब्रिटिश मन्त्रियोंको इस प्रश्नको अपना समझकर उठाना होगा। यदि मुसलमानोंकी बात न सुनी गई और उनके मन्तव्योंकी हार हुई तो फिर वाइसरायका शान्ति-परिषद्में मुसलमानोंके मन्तव्योंको भेजना न भेजना, उनपर जोर देना और न देना बराबर रहा। इससे लाभ क्या हुआ? इससे मुसलमानोंको यह सोचनेका पूरा हक है कि ब्रिटेनने उनके प्रति अपना कर्त्तव्य नहीं निबाहा है। वाइसरायका मत इस उत्तरकी पुष्टि करता है। वाइसरायने अपने उत्तरमें — जो उन्होंने शिष्टमण्डलके सदस्योंको दिया था, कहा था — यदि टर्कीने मध्य यूरोपके देशों, जर्मनी आदिका साथ देनेकी भूल की है तो उसके लिए उसे कष्ट भोगना ही चाहिए। यह कहकर वाइसराय महोदय ब्रिटिश मन्त्रियोंकी ही रायको दोहरा रहे हैं। मुसलमानोंकी तरफसे दिये गये उत्तरका समर्थन करते हुए उनके साथ हम भी आशा प्रकट करते हैं कि यदि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलने कोई भूल की हो तो वह उसे सुधार लेगा और टर्कीके प्रश्नका इस प्रकार निपटारा करेगा जिससे मुसलमानोंका मन शान्त हो जाये।

मुसलमानोंकी माँगें क्या हैं? मुसलमान लोग चाहते हैं कि खलीफाका पद सुरक्षित रखा जाये और अरब तथा अन्य पवित्र मुस्लिम स्थानोंपर खलीफाका नियन्त्रण सुरक्षित रखा जाये; साथ ही टर्की राज्यके अन्तर्गत मुसलमानोंके अतिरिक्त जो जातियाँ निवास करती हैं उनके हितोंकी रक्षाका पूरा और समुचित प्रबन्ध कर दिया जाये तथा यदि अरबके निवासी स्वतन्त्र होना चाहें तो उन्हें स्वायत्त-शासन दे दिया जाये। मुसलमानोंकी माँग इससे बढ़कर न्यायपूर्ण ढंगसे पेश नहीं की जा सकती थी। इस माँगके साथ न्याय है; ब्रिटिश मन्त्रियोंकी घोषणाएँ हैं और समस्त हिन्दुओं तथा मुसलमानोंका सर्वसम्मत मत इसका समर्थन करता है। जिस हकके पीछे इतना प्रबल समर्थन है उसे स्वीकार न करना या उसमें बड़ी कमी करना निरा पागलपन होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८–१–१९२०

1. हर्बर्ट हेनरी एस्क्विथ (१८५२–१९२८); उदारदलीय राजनीतिज्ञ; इंग्लैंडके प्रधान मंत्री, १९०८–१९१६।

२९२. पत्र : फातिमा सुलतानाको[1]

[जनवरी २८, १९२० के बाद]

प्रिय महोदया,

आपके कागजात मुझे अहमदाबादसे यहाँ भेज दिये गये हैं। मैं उनको पढ़ गया हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि मैं इस मामलेमें आपकी मदद नहीं कर सकूँगा।

सब कागजात इस पत्रके साथ रजिस्ट्री द्वारा भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखी मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०७७) से।

२९३. पत्र : वी० टी० आगाशेको

लाहौर
जनवरी २९, १९२०

श्री वी० टी० आगाशे
पूना सिटी

प्रिय महोदय,

आपकी याचिका मैं पढ़ गया हूँ।

(१) क्या पेंशन पानेवाले यूरोपीयोंको बढ़ोतरी मिली है?

(२) क्या इंग्लैंडके सभी पेंशनयाफ्ता लोगोंकी पेंशन बढ़ाई गई है?

(३) क्या यहाँके पेंशनयाफ्ता लोग कुछ अन्य काम करके अपनी आमदनी बढ़ानेमें सक्षम नहीं हैं और क्या ज्यादातर लोग ऐसा नहीं कर रहे हैं?

ऊपरसे देखनेपर तो पेंशनयाफ्ता लोगोंका मामला ऐसा नहीं लगता जिसमें इन लोगोंको सार्वजनिक कोषसे अनिवार्यतः राहत मिलनी ही चाहिए।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७०८०) की फोटो-नकलसे।

१. यह शहजादी सुलतानाके २८ जनवरी, १९२० के पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। शहजादीने गांधीजीसे प्रार्थना की थी कि सरकारसे मेरे लिए कृपया या तो कुछ जमीन या गुजर-बसरका माहवारी खर्चा दिला दीजिए जिससे कि मैं अपने जीवनके शेष दिवस शान्तिपूर्वक व्यतीत कर सकूँ।

२९४. पत्र: सर जॉर्ज बार्न्ज़को

लाहौर
जनवरी २९, १९२०

प्रिय सर जॉर्ज बार्न्ज़,

पूर्व आफ्रिकाकी स्थितिसे सम्बन्धित आपके इसी २१ तारीखके पत्र[1] तथा उसमें दिये गये सहानुभूतिपूर्ण आश्वासनोंके लिए धन्यवाद। लेकिन मैं उक्त पत्रके एक वाक्यकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। प्रस्तावित "अवांछित व्यक्ति अध्यादेश" के सम्बन्धमें आप कहते हैं, "किसी सरकारके, जिस देशमें उसका राज्य है, उस देशसे 'अवांछित' व्यक्तियोंको निकाल बाहर करनेके अधिकारपर कोई शंका नहीं की जा सकती।" एक सैद्धान्तिक मान्यताके रूपमें तो आपका उक्त कथन सर्वथा निर्दोष है, लेकिन पूर्व आफ्रिकाके मामलेमें यह देखते हुए कि यह कानून भारतीयोंको ध्यानमें रखते हुए बनाया गया है और 'अवांछित' शब्दको कृत्रिम अर्थोंमें ही लिया गया है, मैं ऐसा मानता हूँ कि प्रस्तावित कानून तथा उसके उपयोगके प्रति अपना विरोध प्रकट करना न केवल भारत सरकारकी अधिकार-सीमाके भीतरकी बात है बल्कि उसका यह कर्त्तव्य भी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-२-१९२०

२९५. पत्र: एस्थर फैरिंगको

जनवरी २९, १९२०

रानी बिटिया,

मैंने दो दिन तुम्हें पत्र लिखे बिना गुजारे परन्तु तुम्हारे बारेमें सोचे या बात किये बिना नहीं। तुम्हारा स्वास्थ्य जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। तुम शायद चपाती हजम न कर सको। तब तुम्हें साधारण पावरोटी लेनी चाहिए। वह तुम्हारे लिए अनसूयाबेन लाएगी। इसके बारेमें इमाम साहबको बताओ। सुबहके समय तुम दूधके साथ कुछ फल, और पावरोटी व नाश्तेमें दही-चावल तथा सिर्फ उबली हुई थोड़ी-सी सब्जियाँ ले सकती हो। शायद दाल तुम्हें माफिक न पड़े। इसलिए थोड़ी-सी पावरोटी, थोड़ा चावल, थोड़ी-सी सब्जी और दही तुम्हारा नाश्ता हो सकता है। शामको भी यही रहेगा।

१. स्पष्ट ही यह पत्र गांधीजीके १३ जनवरी, १९२० के पत्रके उत्तरमें लिखा गया होगा।

और थोड़ेसे ताजे फल, एक संतरा दोपहरमें; यह तुम्हारे लिए ठीक है या कुछ और यह तुम्हीं अंतिम रूपसे तय करोगी। लेकिन तुम्हें अपना शरीर स्वस्थ अवश्य बना लेना है, वैसे ही जैसे कि किसी कारीगरका प्रथम कर्त्तव्य यह है कि अपने औजारोंको सही हालतमें रखे। भगवान्‌ने हमें एक औजारकी तरह यह शरीर इसलिए दिया है कि इसका प्रयोग सुचारु रूपसे उसकी सेवामें किया जाये — इसलिए नहीं दिया कि इससे लाड़-प्यार किया जाये, और न इसलिए कि इसे बहुत सहेजकर रुईके फाहेमें रखा जाये। लेकिन इसलिए भी नहीं दिया है कि इसका दुरुपयोग किया जाये या लापरवाहीसे इसे खराब कर दिया जाये। यह एक अप्रिय उपदेश है परन्तु नितांत आवश्यक भी है।

सस्नेह,

तुम्हारा,

बापू

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियामें सुरक्षित हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे**।

२९६. पत्र: एस्थर फैरिंगको

शुक्रवार [जनवरी ३०, १९२०]

रानी बिटिया,

आज तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। मैं ऐसे बहुत सारे लोगोंसे घिरा हुआ हूँ जिन्हें मेरी जरूरत है। इसलिए स्नेहभरा पत्र नहीं लिख पाऊँगा। अतएव मैं तुम्हें अपना समस्त स्नेह और मंगल कामनाएँ भेज रहा हूँ।

तुम्हारा,

बापू

[पुनश्च:]

यदि लिख सको तो मुझे एक आनन्दप्रद और उल्लासपूर्ण पत्र लिखो।

मो० क० गां०

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियामें सुरक्षित हस्तलिखित मूल अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल तथा **माई डियर चाइल्डसे**।

मन्त्रिगण जो कुछ देनेको वचनबद्ध हैं हम उससे अधिक कुछ नहीं माँग रहे हैं, इसलिए जब इंग्लैंडवालोंको हमारे शिष्टमण्डल द्वारा यह पता चलेगा कि ब्रिटिश सम्मान दाँवपर लगा हुआ है तब शीघ्र ही इंग्लैंड भी हमारे पक्षमें हो जायेगा। ईश्वर शिष्टमण्डलका मार्गदर्शन करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११–२–१९२०

२९९. पत्र: नरहरि परीखको

[जनवरी ३१, १९२० को या उसके आसपास][1]

भाईश्री नरहरि,

तुम्हारा पत्र मिला। लगता है कि महादेवने काफी कष्ट भोगा, इसलिये अब उसे छुटकारा मिलना ही चाहिए। बहुधा टाईफाइडके बाद मनुष्यका स्वास्थ्य सुधर जाता है यदि बादमें उसकी सार-सँभाल अच्छी तरहसे की जाये तो। लेकिन ऐसा भी है कि बहुतसे लोग हमेशाके लिए कमजोर भी रह जाते हैं जैसे कि सुन्दरम्। उसने बीमारीके बाद स्वादके चक्करमें पड़कर अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ लिया। तुमने मुझे पत्र लिखा सो अच्छा किया। तुम्हारा आश्रमवासियोंको न बतानेका निश्चय भी उचित है। जबतक हममें अपने विरुद्ध टीका सुननेकी सहनशक्ति नहीं है तबतक हमें टीका करनेका कोई अधिकार नहीं। इसलिए मगनलाल भले ही तुमपर आरोप लगाये तथापि तुम मौन रहो यही तुम्हारा व्रत है। लेकिन तुम उस अवस्थासे निकलनेका प्रयत्न करो, यह आवश्यक है। दूसरा व्यक्ति हमारा तिरस्कार करेगा इस बातका डर रखे बिना हमें उनके दोषोंकी ओर उसका ध्यान खींचना ही चाहिए जिन्हें वह स्वयं नहीं देख पाता। जिसके बिस्तरपर हमें साँप जाता दिखाई दे उसे यह जानते हुए भी कि जगानेपर वह हमें लात मारेगा; हमें जगाना ही चाहिए। दूसरे तटस्थ व्यक्तिके द्वारा वैसा करनेका मौका हमें हमेशा नहीं मिलता। इन सब छोटे दीख पड़नेवाले प्रसंगोंमें ही हम अपनी परीक्षा कर सकते हैं। इस बीच तुम्हें जो कहना हो सो मेरी मार्फत ही कहना।

धार्मिक शिक्षाके सम्बन्धमें मैं आनन्दशंकर भाईको लिखकर देखता हूँ।

कुमारी फैरिंग लीलावतीबेनके यहाँ गई हैं, यह सुनकर मैं थोड़ा चिन्तित हूँ। कुमारी फैरिंग बहुत भोली महिला है। बिना सोचे-समझे सबका विश्वास कर लेती है। लीलावतीबेन उसके भोलेपनका लाभ उठायेगी। इसलिए क्या हुआ? क्यों गई? यह सब मुझे जरा विस्तारसे लिखना। उसपर यदि कोई कुदृष्टि डालेगा तो यह हमारे लिए

१. गांधीजीने इसी तारीखको आनन्दशंकर ध्रुवको भी पत्र लिखा था जैसा कि इस पत्रमें उन्होंने उसका उल्लेख किया है।

बहुत शर्मकी बात होगी। इसकी चर्चा न करना। मैंने मगनलालको [इस आशयका] संकेत दिया है और तुम्हें भी दे रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११८८८) की फोटो-नकलसे।

३००. पत्र : श्रीमती ब्राउनको

लाहौर
जनवरी ३१, १९२०

प्रिय श्रीमती ब्राउन,

आपके कृपा-पत्रके लिए धन्यवाद। मैं अभी-अभी लाहौर पहुँचा हूँ। अब पोस्टरका अनुवाद करवा रहा हूँ और आवश्यक जाँच-पड़ताल भी करूँगा। आपका पत्र पढ़कर तो मुझे लगता है कि आपको जमीन मिल गई है लेकिन आप बेकार ही लोगोंकी भावनाको ठेस नहीं पहुँचाना चाहतीं। यह भी लगता है कि गलतफहमीको रोकना चाहती हैं और अगर सम्भव हो तो उन लोगोंको तबाहीसे भी बचाना चाहती हैं जिन्होंने, कहा जाता है कि तथ्योंको तोड़-मरोड़कर पेश किया था।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७०८३) की फोटो-नकलसे।

३०१. पत्र : आनन्दशंकर ध्रुवको

जनवरी ३१, १९२०

सुज्ञ भाई,

धर्म-शिक्षाकी पुस्तकोंके सम्बन्धमें मुझे जो पत्र प्राप्त हुआ है उसे मैं इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। क्या आप इस विषयमें कुछ कर सकेंगे? क्या 'बाइबिल स्टोरी' आदि पुस्तकोंके ढंगकी 'महाभारत', 'रामायण' आदिपर आधारित किताबें प्रकाशित नहीं की जा सकतीं? धनका . . .[1] खानेमें ही खर्च किया जाया करेगा। . . .[2] भीख माँग-माँगकर धन एकत्रित करना सम्भव हो जायेगा। परन्तु उसकी झंझटमें मैं आपको नहीं डालना चाहता। आपके पास समय है? [इस प्रकारकी पुस्तकें] लिखनेकी ओर

१ व २. साधन-सूत्रमें कुछ शब्द गायब हैं।

क्या आपकी रुचि हो सकेगी? मैं कोरे विद्वानों द्वारा लिखी हुई पुस्तकें नहीं चाहता। मुझे आपके सिवाय ऐसा अन्य कोई व्यक्ति नजर नहीं आता जिसमें विद्वत्ता और चरित्र दोनोंका सम्मिश्रण हो। इसीलिए आपकी शरण आया हूँ। इस तरहकी माँग मुझसे पहली ही बार नहीं की गई है। कुछ ऐसा चाहता हूँ कि पुस्तकको पढ़ते ही बालक समझ जायें कि हिन्दू धर्म क्या है।

आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है, यह समाचार मुझे मिलता रहता है।

अंग्रेजी चरखेकी तसवीर मिल गई। उसे भेजनेके विचारमें जो प्रेम समाया हुआ है, वह तसवीरकी अपेक्षा अधिक प्रिय लगा।

'नवजीवन' के लिए यथावकाश कुछ-न-कुछ लिखकर भेजेंगे ही। काशीजीका वर्णन, [हिन्दू] विश्वविद्यालयका परिचय इत्यादि। आपके काशीजी जानेसे पंडितजीको[1] बहुत संतोष हुआ है——पंडितजीने इस आशयके उद्‌गार मुझसे अनेक बार व्यक्त किये हैं। उन्हें सुनकर मुझे गर्वका अनुभव हुआ।

प्रोफेसर आनन्दशंकर ध्रुव
काशी

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७०८४) की फोटो-नकलसे।

१. पंडित मदनमोहन मालवीय।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

जी० एस० अरुण्डेलका पत्र

सैंकिंड लाइन बीच
मद्रास
जुलाई २६, १९१९

प्रिय श्री गांधी,

चूँकि अब आपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन अस्थायी रूपसे स्थगित कर दिया है, इसलिए आपसे हार्दिक अनुरोध करना चाहता हूँ कि आप अपना थोड़ा-सा ध्यान और शक्ति लन्दनमें हमारे कई प्रमुखतम नेताओं द्वारा भारतको पर्याप्त मात्रामें राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलानेके लिए किये जा रहे प्रयत्नोंको मजबूत बनानेमें लगायें।

मैं इस बातको भलीभाँति जानता हूँ कि विधि-पुस्तकमें से रौलट अधिनियमको निकलवाना आप अपना पहला काम मानते हैं। मैं इस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ; इसके खिलाफ लगातार आन्दोलन करते रहना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रेस अधिनियमके खिलाफ आन्दोलन करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। लेकिन चूँकि अभी आपने सविनय अवज्ञाको, जो कि संवैधानिक आन्दोलनका एक तरीका है, स्थगित कर दिया है, तब क्या हम सबका मिलकर निम्नलिखित उद्देश्योंसे एक बड़ा और सार्वजनिक आन्दोलन चलाना उचित नहीं होगा:

(१) भारतीय सुधार विधेयकमें संशोधन कराना।

(२) रौलट अधिनियम और प्रेस अधिनियमको रद करना।

(३) भारतीय नागरिकोंके उन अधिकारोंको संरक्षित करानेका आग्रह करना जो मूलत: मद्रास प्रान्तीय सम्मेलनमें तैयार किये गये अधिकारोंके घोषणापत्रमें दिये गये हैं और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके १९१८ के अगस्त-सितम्बरमें बम्बईमें हुए विशेष अधिवेशनोंमें स्वीकार किये जा चुके हैं।

मेरा सुझाव यह नहीं है कि इस उद्देश्यके विभिन्न पहलुओंको, जिस क्रममें मैंने रखा है उसी क्रममें रहने दिया जाये; लेकिन मैं यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि मेरी समझमें एकता भारतकी सबसे बड़ी आवश्यकता है और हम भरसक प्रयत्न करके उस एकताको स्थापित करने और कायम रखनेके लिए बाध्य हैं।

इस समय सेवा करनेके दो मार्ग हैं — एक सत्याग्रहीका मार्ग और दूसरा उनका मार्ग जो भारतीय सुधार विधेयकमें संशोधन करानेके प्रयत्नमें हैं। क्या हम फिलहाल

एक नहीं हो सकते या कमसे-कम ऐसा कोई काम नहीं ढूँढ़ सकते जिसे सब मिलकर कर सकें?

मैं भली प्रकार जानता हूँ, आपके कुछ अनुयायियोंका विश्वास है कि भारतीय सुधार विधेयकसे कुछ भी भला होनेवाला नहीं है। लेकिन क्या उसका उपयोग आगे बढ़नेके लिए करना सम्भव नहीं है? क्या हमें उन अनेक नेताओंके जो हमारी राष्ट्रीय विधान सभाओं और आन्दोलनका प्रतिनिधित्व करते हैं और जो इस समय लन्दनमें इस विधेयकको उस देशके अनुकूल बनानेका जबरदस्त प्रयत्न कर रहे हैं जिसे लाभ पहुँचाना उसका उद्देश्य है, हाथ मजबूत करना उचित नहीं है।

मैं भारतकी सेवा करनेके लिए बहुत उत्सुक हूँ और इस बातके लिए अत्यन्त व्यग्र हूँ कि कोई छोटेसे-छोटा भी अवसर हाथसे नहीं जाने देना चाहिए। इसीलिए मुझे इन बातोंको आपके सामने रखनेमें जरा भी संकोच नहीं होता। यदि हम इस नाजुक दौरमें भारतको एक बना सकें और समान लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए जोरदार प्रयत्न कर सकें तो यह भारतकी महानताका एक ज्वलन्त प्रमाण होगा। मैं जानता हूँ कि यह आपकी सहायता, आपके मार्गदर्शन और आपकी प्रेरणासे ही हो सकता है। एक दिन बातचीतमें सर शंकरन् नायरने मुझसे उन जरूरी संशोधनोंकी चर्चा की थी जिनके बाद भारतीय सुधार विधेयक वस्तुत: स्वीकार करने योग्य बन सकता है; और उनके विचार-से उक्त संशोधन कराना सम्भव है। श्री मॉण्टेग्युसे श्रीमती बेसेंटने एक लम्बी भेंट की और बादमें मुझे लिखा कि संशोधन करानेके लिए वातावरण स्पष्टत: आशापूर्ण है। क्या भारतमें हम इस दिशामें भी अपनी शक्तिका उपयोग नहीं कर सकते? क्या कमसे-कम कुछ महीनेके लिए एक महान् आन्दोलन नहीं चलाया जा सकता? आप स्वयं भी उसके एक प्रमुख नेता रहेंगे।

एक सामान्य व्यक्तिके रूपमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि अपने नेताओंमें इतनी कम एकता देखकर हमें निराशा होती है। हमारी इच्छा है कि हम सब पूरे मनसे मिलकर कार्य करें। क्या भारतकी भलाईके लिए हमारा संगठित होकर कार्य करना जरूरी नहीं है? क्या दोनों गर्हित अधिनियमोंकी समाप्तिके लिए व भारतीय सुधार विधेयकके संशोधन और अधिकारोंकी घोषणाके लिए एक संयुक्त आन्दोलनके आधारपर यह संगठित कार्रवाई नहीं हो सकती? यह एक उत्तम और प्रेरणादायक कार्यक्रम है। मेरा विश्वास है कि एक भी देशभक्त भारतीय ऐसा नहीं होगा जो इसपर दृढ़ नहीं रहेगा। आपके सविनय अवज्ञा आन्दोलनको स्थायी रूपसे स्थगित कर देनेसे हम लोगोंके लिए बिना किसी हिचकके एक साथ कार्य करना सम्भव होना चाहिए और मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप यह सोचें कि क्या हम कमसे-कम इस समय एक होकर आगे नहीं बढ़ सकते।

सम्मानपूर्वक,

आपका सच्चा प्रशंसक,
जॉर्ज अरुण्डेल

पुनश्च : वस्तुतः आप इस पत्रका जैसा उचित समझें उपयोग कर सकते हैं --चाहें तो प्रकाशित भी कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-८-१९१९

परिशिष्ट २

मुहम्मद अब्दुल अज़ीज़का पत्र

प्रिय श्री गांधी,

पिछले दो महीनेमें भारतके विभिन्न प्रान्तोंके असंदिग्ध रूपसे प्रभावशाली और सम्माननीय जन-नेताओंने खुले तौरपर और निजी पत्रोंमें इस देशके नामपर, जिससे आपको इतना प्रेम है और इस देशके लोगोंके नामपर, जिनकी सेवा करना आप अपने जीवनका सबसे बड़ा अधिकार मानते हैं, आपसे सविनय अवज्ञाका विचार स्थगित करने और फिर उसे हमेशाके लिए छोड़ देनेका अनुरोध किया है। मेरा विचार था कि आप इन हार्दिक और आदरपूर्ण विरोधोंसे प्रभावित होकर आत्म-पीड़नके द्वारा कानूनकी अवज्ञा करनेका विचार अन्तमें हमेशाके लिए त्याग देनेको मजबूर हो जायेंगे। भारतपर ब्रिटेनका आधिपत्य होनेके बाद इस देशके राजनैतिक इतिहासमें रौलट अधिनियमके विरुद्ध संघर्ष करनेके लिए आपने पहली बार आत्म-पीड़नको शस्त्रके रूपमें प्रयुक्त किया है। किन्तु ऐसा लगता है कि यद्यपि आपने फिलहाल व्यापक कार्यक्रमके रूपमें सविनय अवज्ञाका विचार छोड़ दिया है, फिर भी आप स्वयं उसपर अमल करके एक उदाहरण प्रस्तुत करनेपर तुले हैं और यह बिलकुल भूल रहे हैं कि आम लोगोंको इस सिद्धान्तपर अमल करनेकी प्रेरणा देनेके लिए आपका उदाहरण सर्वाधिक शक्तिशाली और महानतम साधन सिद्ध होगा। आप भी यह कहते हैं कि आम लोग उसपर अमल करनेकी योग्यता नहीं रखते। मुझे डर है कि आपने अपनी जिस "हिमाचल-जैसी भूल" को अत्यन्त निःसंकोच भावसे स्वीकार किया था, वह आपपर अब भी हावी है और उसके प्रभावसे आप पूरी तरह मुक्त नहीं हुए हैं। यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि आप-जैसा समझदार व सूक्ष्म निर्णय करनेवाला व्यक्ति ऐसे मार्गपर क्यों अड़ा हुआ है जिसके कारण इस देशके लोगोंको बड़ेसे-बड़े व्यक्तिगत और सार्वजनिक कष्ट झेलने पड़े हैं। इस प्रकारके कष्टोंका इस देशके इतिहासमें दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। आप कहते हैं, आप नहीं चाहते कि अन्य लोग सविनय अवज्ञापर अमल करें, क्योंकि वे इसके योग्य नहीं हैं। किन्तु आप स्वयं इसका अनुसरण करेंगे क्योंकि आप ही इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त और प्रशिक्षित व्यक्ति हैं। साधारण व्यक्तिके मनपर इसका क्या असर पड़ेगा? जब वह देखेगा कि ऋषि और गुरु मानकर जिसकी वह प्रशंसा करता और जिसे प्यार करता है, वह आगमें कूद पड़ा है तथा वह स्वयं उस आगसे बाहर खड़ा है, तो उसका उन्माद और आवेश पहलेसे भी अधिक बढ़ जायेगा। तब क्या

वह भी उस जलती आगमें नहीं कूद पड़ेगा और तब क्या एक पतले-दुबले शरीरके ईंधनसे प्रज्वलित वह एक ही शिखा भयानक दावानलका रूप नहीं ले लेगी? आप एक सच्चे देशभक्त और अपनी मातृभूमिकी सेवामें लगे हुए निष्ठावान कार्यकर्त्ता हैं इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इसपर विचार करें और ६ अप्रैलके उस दुर्भाग्यपूर्ण दिनके बाद जो-कुछ हुआ है, उसे याद करके अपने आपसे पूछें कि क्या आप फिरसे समाजकी बुनियादको हिला देनेवाली एक आम उथल-पुथलके लिए जिम्मेदार बनेंगे। आप जिस मार्गका अनुसरण करना चाहते हैं उससे आम उथल-पुथल अवश्यम्भावी है।

मैं आपसे इस मसलेके एक और पहलूपर विचार करनेके लिए कहूँगा। मैं उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्तकी राजधानी पेशावरका रहनेवाला हूँ। जो पेशावर अब तक सर्वाधिक शान्त और क्षोभहीन रहा है मैंने उसके बाजारों और गलियोंमें व्याप्त उत्तेजना अपनी आँखोंसे देखी है। क्या आप मेरे इस कथनपर विश्वास करेंगे कि जिन लोगोंने इस उन्मादपूर्ण नितांत अराजकताका संगठन किया, वे आप द्वारा की गई सविनय अवज्ञाकी व्याख्याके आध्यात्मिक दर्शनको जरा भी नहीं समझते। साथ ही उन्हें उस रौलट अधिनियमकी जरा भी कल्पना या भीति नहीं है, जिससे शेष देश इतना विक्षुब्ध है। मेरे इस कथनसे कि सीमा प्रान्तके लोगोंको रौलट अधिनियमकी कोई कल्पना या भीति नहीं है, आपको और इस पत्रके कुछ पाठकोंको भारी आश्चर्य हो सकता है। लेकिन मैं अपनी बातको सीमा प्रान्तमें व्याप्त जीवनकी स्थितियोंके संक्षिप्त उल्लेखसे पुष्ट करूँगा। हम सीमा प्रान्तके लोगोंपर सीमा प्रान्त अपराध विनियम (फ्रंटियर क्राइम्स रेग्युलेशन) लागू होता है। उसकी धाराएँ उक्त रौलट अधिनियमकी धाराओंकी अपेक्षा इतनी अधिक कठोर और निर्दयतापूर्ण हैं कि उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। जाहिर है कि जो लोग ऐसे कानूनोंके अन्तर्गत रहते हैं और यद्यपि मैं मानता हूँ कि वे शान्तिपूर्ण ढंगसे रहते हैं, फिर भी उन्हें एक ऐसे विधानके सम्बन्धमें कोई बड़ी भीति या किसी तरहकी गम्भीर संवैधानिक आपत्ति नहीं हो सकती, जो अपेक्षाकृत अधिक नरम है और जो उनपर लागू नहीं हो सकता। तब रौलट अधिनियमपर इन लोगोंको पागलपनका यह प्रदर्शन क्यों करना चाहिए? कटु सत्य यह है कि यहाँ ऐसे स्वार्थी और देशभक्तिहीन लोगोंकी कमी नहीं है, जिन्होंने अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए उस समयकी अशान्तिका दुरुपयोग किया और दूर बैठे उन लोगोंकी आँखोंमें जो इस बातको नहीं जानते थे कि सीमा प्रान्तमें इस आन्दोलनको सम्भव बनानेवाली व्यापक और छिपी शक्तियाँ हैं धूल झोंकनेके लिए एक नकली आन्दोलन खड़ा कर दिया। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि सीमा प्रान्तमें ६ अप्रैलसे पहले किसी राजनीतिक मामलेपर रोष प्रकट करनेके लिए कभी कोई सभा नहीं हुई। दरअसल जब २० वर्ष पहले स्वयं सीमा प्रान्तको पंजाबसे अलग किया गया था तब और उसके बाद कभी किसीने विरोधमें अँगुलीतक नहीं उठाई, जब कि उसी समय बंगाल बंग-भंगपर क्रोधमें तमतमा रहा था। रौलट अधिनियमके बारेमें भी ६ अप्रैलसे पहले इस शान्त और क्षोभहीन सीमा प्रान्तमें कोई

विरोध प्रकट नहीं किया गया था। लेकिन फिर भी अचानक ६ अप्रैलको ऐसा लगा कि पेशावर एक ऐसे कानूनके खिलाफ चलाये गये अत्यन्त हिंसक आन्दोलनमें पड़ गया, जो सम्भवतः वहाँके लोगोंको छू भी नहीं सकता। अराजकताकी यह स्थिति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और निर्बाध रूपसे एक महीनेतक चलती रही। यदि मैं उन सभी छिपी और स्वार्थी शक्तियोंका, जो प्रत्यक्षतः शान्तिका दिखावा करके अपना स्वार्थ साधनेमें लगी थीं, पर्दा फाश करनेकी कोशिश करूँ, तो मैं एक खतरनाक मार्गका अनुसरण करूँगा। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि आप इस कहानीसे सबक लें और यह स्वीकार करें कि सविनय अवज्ञाके बारेमें जैसा आप उपदेश देते हैं, उसका कानूनोंके खुले और निर्लज्ज ढंगसे उल्लंघन करनेके सिवा और कोई अर्थ लगाना या समझाना लोगोंकी सामर्थ्यके बाहर है। यही कानून हमारे देशमें आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं और इनसे ही भारतमें भविष्यके उदयकी आशा सम्भव हुई है। सम्भावना है कि हम भविष्यमें स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकें और यह प्राचीन देश उन स्वशासी राज्योंके साथ, जो ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत राष्ट्र संघका निर्माण करते हैं, नितान्त समानताके आधारपर भागीदार हो जाये। अन्तमें, मेरा विश्वास है कि आप मेरी विनम्र प्रार्थनापर गम्भीरतासे विचार करेंगे और जल्दी ही सविनय अवज्ञा आन्दोलनको पूरी तरह और हमेशाके लिए छोड़ देनेकी घोषणा करेंगे।

सचमुच आपका,
मु० अब्दुल अज़ीज़
बैरिस्टर, पेशावर

[अंग्रेजीसे]
पायनियर, २७–७–१९१९

परिशिष्ट ३

लाला लाजपतरायका पत्र

टेलीफोन : ग्रीले ६१७५
१,४०० ब्राडवे
न्यूयॉर्क
जून २०, १९१९

प्रिय महात्माजी,

हमारी मातृभूमिके उत्थानके लिए आप जिस महान् आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे हैं, मुझे खेद है कि मैं उसमें उन परिस्थितियोंके कारण जो मेरे नियन्त्रणमें नहीं हैं, भाग लेनेमें असमर्थ हूँ। फिर भी मैं बताना चाहता हूँ कि आपने जो शानदार रुख अपनाया है, उसकी और आपकी उच्च देशभक्तिकी मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ।

मैं अभी भारतसे दूर हूँ और इस अवधिमें मैंने बहुत-कुछ सीखा है, बहुत-कुछ भुलाया है। मेरे लिए यह अवसर ऐसा नहीं है कि मैं अपनी निष्ठाको पूर्ण रूपसे

अभिव्यक्त करूँ। लेकिन इतना मैं कहना चाहता हूँ कि यद्यपि मैं आपके सोचनेकी प्रक्रियासे पूरी तरह सहमत नहीं हूँ, फिर भी हमें क्या करना चाहिए, इस बारेमें आपके विचारोंसे काफी हदतक सहमत हूँ। भारतमें बल-प्रयोगसे क्रान्ति करनेके प्रयत्नोंकी निरर्थकताके बारेमें जितना विश्वास मुझे अब है, उतना पहले कभी नहीं था। मेरी रायमें आतंकवाद व्यर्थ ही नहीं बल्कि पापमय भी है। सब तरहके खुले कार्यपर प्रतिबन्ध लगाने और उसके लिए दण्ड देनेकी सरकारकी इच्छाको देखते हुए गुप्त प्रचार और गुप्त समितियोंका कुछ औचित्य हो सकता है; लेकिन आगे चलकर उनकी परिणति उनमें भाग लेनेवालोंके नैतिक पतनमें होती है। मेरा विश्वास है कि जो राष्ट्र स्वतन्त्रताके लिए कष्ट सहनेको तैयार नहीं, वह न तो उसका अधिकारी है और न उसे प्राप्त ही कर सकता है। जब मैं ऐसा कहता हूँ तब मेरा आशय स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए कष्ट सहनेसे है, उसके अभावके कारण कष्ट सहनेसे नहीं है। भारतमें लोग स्वतन्त्रताके अभावमें बहुत कष्ट सहते हैं, लेकिन स्वतन्त्रताके लिए पर्याप्त कष्ट नहीं सहते। हमने अबतक स्वतन्त्रताके अधिकारी बननेके लिए कोई विशेष कार्य भी नहीं किया है और लोगोंको यह समझानेके लिए कि स्वतन्त्रता क्या है और भी कम कार्य किया गया है। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए हमने अबतक जो त्याग किये हैं या कष्ट सहे हैं; वे सफलता पानेकी दृष्टिसे सर्वथा नगण्य हैं।

इसलिए आपके प्रचारके आम उद्देश्योंसे मेरी पूरी सहानुभूति है। शायद मैं सत्याग्रही बननेकी पूर्ण प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर न कर पाऊँ। लेकिन जब मैं भारत लौटूँगा, विशुद्ध स्वदेशीकी प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर कर दूँगा।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस देशमें रहनेवाले अधिकांश भारतीय युवकोंके हृदयोंमें आपके लिए बहुत सम्मानका भाव है। उनमें से एक युवकने, जो कभी हरदयालके पक्के अनुयायी थे, मुझे इस प्रकार लिखा है:

> हमें इस समय महात्मा गांधी जैसे नेताओंकी ही जरूरत है। हम सशस्त्र प्रतिरोध नहीं चाहते। हम निष्क्रिय प्रतिरोध भी नहीं चाहते। हम कोई अधिक ऊँचा उपाय चाहते हैं, और वह उपाय वही है जिसकी वकालत महात्माजी कर रहे हैं। मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि हरदयालने जिन तरीकोंकी वकालत की है, वे दुनियाके हर भागके लिए उपयुक्त और विवेकयुक्त नहीं कहे जा सकते। हम हत्या, आगजनी और आतंकवादसे बचना चाहते हैं। भूतकालमें हमारे आन्दोलनकी बुनियाद रक्तपातपर रखी गई थी; अब हम उससे ऊब चुके हैं। लेकिन अब उसकी बुनियाद न्याय और व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर रखी जानी चाहिए, जिससे वह भविष्यमें ठोस बनी रहे। हरदयाल अपने विचारोंके कारण नीचे गिर गये हैं। मुझे आशंका है कि उनका प्रभाव हमारे उन कुछ नौजवानोंपर पड़ सकता है, जिन्होंने उनका अन्धानुसरण किया है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे नेता ऊँचे उठनेके बजाय नीचे गिर रहे हैं। इस समय भारतको गांधी-जैसे नेताओंकी सख्त जरूरत है। वे अपने सिद्धान्तोंके पक्के हैं और उनके सिद्धान्तोंको संसारके प्रायः हर भागमें लागू किया जा सकता है।

मैं कितना चाहता हूँ कि मैं अपने देशवासियोंके कष्टोंमें हिस्सा बँटानेको वहाँ होता। उनके लिए मेरा दिल रोता है, लेकिन इस बातपर और भी ज्यादा रोता है कि मुझे सेवा करने और कष्ट सहनेके अवसरसे वंचित कर दिया गया है।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १३–८–१९१९

परिशिष्ट ४

खेड़ाके मामलेपर टिप्पणी

खेड़ा आन्दोलन सन् १९१७–१८ के लिए लगानकी माँग लेकर आरम्भ हुआ था। इससे पहले जिलेमें लगानकी स्थिति बहुत अच्छी थी। जिन तीन ताल्लुकोंमें १९१७–१८ में फसल खराब हुई थी उनमें पिछले वर्षोंका बकाया लगान बिलकुल नहीं था। १९१७ में देरसे हुई भारी वर्षासे जिलेके कुछ भागोंमें खरीफकी कुछ फसलों और खास तौरपर बाजरेकी फसलको खासा नुकसान पहुँचा था। लेकिन दूसरी ओर चावलकी फसल और बादमें बोई जानेवाली दूसरी फसलें असाधारण रूपसे अच्छी हुई थीं। लगान मुल्तवी करने और माफ करनेके बम्बई प्रान्तके नियमोंका, जिन्हें भारत सरकारने १९०७ में स्वीकृत किया था, मूलभूत सिद्धान्त यह है कि बड़े संकटोंमें एक दूसरेसे लगे क्षेत्रोंको एक मानकर कार्रवाई की जाये, परन्तु निपटारेके लिए अलग-अलग क्षेत्रकी हालतोंकी जाँच-पड़ताल न की जाये, राहत देनेके लिए हमेशा पहले लगान मुल्तवी किया जाये, माफ न किया जाये, और लगान वसूली निम्नलिखित अनुपातसे मुल्तवी की जाये : यदि फसल सामान्य फसलकी[1] एक-तिहाई या उससे कम हुई हो तो पूरा लगान मुल्तवी कर दिया जाये, यदि फसल सामान्य फसलकी तिहाईसे ज्यादा और आधीसे कम हुई हो तो आधा लगान मुल्तवी किया जाये और दूसरी हालतोंमें लगान वसूली मुल्तवी न की जाये। इन नियमोंके अनुसार कलक्टरने (जो स्वयं हिन्दुस्तानी था) स्थानीय जाँच-पड़तालके बाद तीन ताल्लुकोंके १०४ गाँवोंमें विभिन्न मात्रामें लगानकी वसूली मुल्तवी की। जितने लगानकी वसूली मुल्तवी की गई, वह उन ताल्लुकोंके कुल लगानका २० प्रतिशत और पूरे जिलेके लगानका ७.४ प्रतिशत था। लगान-वसूलीकी मुल्तवी करनेका औपचारिक आदेश जारी होनेसे कुछ पहले बम्बईके दो वकीलोंके नेतृत्वमें एक शिष्टमण्डलने १५ दिसम्बर, १९१७ को कलक्टरसे मुलाकात की थी। शिष्टमण्डलने उनसे यह कहते हुए कि सभी फसलें प्रायः पूरी तरह खराब हो गई हैं, माँग की कि अधिकांश मामलोंमें लगान तत्काल माफ कर दिया जाये और बाकी मामलोंमें पूरे लगानकी वसूली मुल्तवी कर दी जाये। इसपर कलक्टरने बताया कि उनकी पहली

१. बृहत्तर बम्बई प्रान्तमें फसल रुपयेमें बारह आने हो तो उसे सामान्य माना जाता है।

माँग तो नियम-विरुद्ध है, लेकिन वचन दिया कि वसूली मुल्तवी करनेके मामले-पर विचार किया जायेगा। इसीके परिणामस्वरूप उन्होंने उपर्युक्त आदेश निकाले थे। इसके बाद यह मामला गुजरात सभाने अपने हाथमें ले लिया। सभाका प्रधान कार्यालय खेड़ा जिलेके बिलकुल बाहर अहमदाबादमें है। उन्होंने स्थानीय अधिकारियोंकी उपेक्षा करके याचिकाएँ और तार सीधे स्थानीय सरकारको भेजे और फसलकी स्वतन्त्र जाँच करनेकी माँग की; यह था उनके कार्य-संचालनका ढंग। लगभग जनवरी-के शुरूमें उन्होंने खेड़ाके ग्रामीणोंको एक गश्ती-पत्र भेजा जिसमें कहा गया था कि बम्बई सरकारसे कोई जवाब नहीं मिला। इसलिए जिन किसानोंकी फसल पूरीकी-पूरी मारी गई है या जिनकी फसल सामान्य फसलसे तिहाईसे ज्यादा नहीं हुई है, वे लगान अदा न करें। इसपर स्थानीय सरकारने १६ जनवरी, १९१८ को अपनी पहली प्रेस विज्ञप्ति जारी की और उसमें तथ्य सामने रखते हुए लगान अदा करनेके विधिवत् आदेशको न मानकर लगान चुकानेसे इनकार करनेके किसी भी प्रयत्नके विरुद्ध किसानोंको चेतावनी दी।

२. श्री गांधीने खरीफकी विवादास्पद फसल कट जाने और खेतोंसे उठ जानेके बाद फरवरीके महीनेमें इस मामलेमें दिलचस्पी लेनी शुरू की। किन्तु उनका मत था कि इस वर्ष फसल कितनी हुई है और साधारण फसलके वर्षमें वह कितनी होती है, किसानोंसे यह पूछकर विश्वसनीय तथ्य प्राप्त किये जा सकते हैं। उनका यह भी ख्याल था कि किसी गाँवकी औसत फसलका निर्धारण करनेके लिए रबीकी ही नहीं; कपासकी फसलको भी नहीं गिनना चाहिए। उन्होंने इन आवेदनोंपर स्वयं कमिश्नर और कलक्टरसे विचार-विमर्श किया। श्री गांधीने स्वयं जिन गाँवोंकी जाँच-पड़ताल की थी कलक्टरने उन्हींके आसपासके गाँवोंकी फसलके अनुमानोंकी फिर जाँच की। श्री गांधीको इस जाँचमें उपस्थित होनेका न्यौता दिया गया और एक बार वे उपस्थित भी हुए। यह निर्णय किया गया कि पहलेके दिये गये आदेशमें हेरफेर करनेका कोई आधार नहीं है और इसकी सूचना श्री गांधीको २० मार्च, १९१८ को दे दी गई।

३. उसके दूसरे दिन गुजरात सभाने श्री गांधीकी अध्यक्षतामें एक प्रस्ताव पास किया कि सत्याग्रहका सहारा लिया जाये। श्री गांधी २२ मार्चको सत्याग्रह आरम्भ करनेके लिए चल पड़े। उन्होंने खेड़ा जिलेके किसानोंकी एक बड़ी सभा करके सलाह दी कि यदि उनको पक्का विश्वास है कि फसल सामान्य फसलके मुकाबले एक तिहाईसे कम हुई है तो उन्हें लगान देनेसे इनकार करके सत्याग्रह करना चाहिए और सरकार जिस तरह चाहे उसे लगान वसूल करने देना चाहिए। कहा जाता है सभामें इस आशय-की एक प्रतिज्ञापर "छोटे-बड़े" कोई २०० किसानोंने हस्ताक्षर किये। यह अभियान मार्च और अप्रैलमें जारी रखा गया। अखबारोंकी खबरोंके अनुसार उस प्रतिज्ञापर २१ अप्रैलतक २,३३७ किसानोंके हस्ताक्षर हो चुके थे। उसपर होनेवाले हस्ताक्षरोंकी यही ज्यादासे-ज्यादा संख्या है।

४. इस बीच जिलेमें बड़े पैमानेपर लगान वसूल किया जा रहा था। १२ अप्रैलको नडियादमें एक भाषणमें कमिश्नरने घोषित किया कि कमसे-कम ८० प्रतिशत

लगान पहले ही चुकता कर दिया गया है; १० अप्रैलको कलक्टरने रिपोर्ट दी थी कि श्री गांधीके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले कुछ लोगोंने लगान देना पहले ही शुरू कर दिया है और श्री गांधी समझौतेके लिए तैयार जान पड़ते हैं। २४ अप्रैलको कमिश्नरने कलक्टरको बताया कि वाइसरायके इस आदेशसे कि राष्ट्रीय संकटकी इस घड़ीमें घरेलू मतभेद खत्म करने और राजनीतिक प्रचार बन्द करनेके जो-जो प्रयत्न सम्भव हों वे सब किये जाने चाहिए, विगत कुछ दिनोंसे स्थिति बहुत-कुछ बदल गई है (उस समय जर्मनीका जबरदस्त आक्रमण अपनी चरम सीमापर था)। उनके लेखे इस परिस्थितिमें सरकारका कर्त्तव्य था कि वह ऐसी रियायतें जिनसे राज्यके आवश्यक अधिकार भंग न होते हों, लोगोंको दे। (फिर भी) उद्देश्य यह होना चाहिए कि लगानका सब बकाया जल्दी और पूरा-पूरा वसूल किया जाये। उसने सब पूर्व आदेशोंको रद करते हुए ये निर्देश दिये :

(१) बम्बई भूमि-लगान कानूनके अनुच्छेद १५० (ख) के अन्तर्गत जमीन कुर्क करके बकाया लगान वसूल करना बन्द किया जाये।

(२) यदि किसान पूरा लगान दे देता है तो उससे "चौथाई" जुर्माना अर्थात् ऐसा जुर्माना जो अवशिष्ट लगानके चौथे भागसे ज्यादा न हो और जो बम्बई भूमि लगान कानूनके खण्ड १४८ के अन्तर्गत लिया जा सकता है, लेनेके लिए जोर न दिया जाये।

(३) सभी हालतोंमें यदि हो सके तो चुकता न करनेवालेकी चल-सम्पत्ति कुर्क करके लगान वसूल किया जाये (कानूनका खण्ड १५० ग)

(४) यदि जमीन कुर्क की जा चुकी है और किसानने अपना बकाया चुका दिया है तो चालू राजस्व-वर्षमें वह जमीन उसे किसी भी समय लौटा दी जानी चाहिए।

उसने यह भी कहा कि जो लोग वास्तवमें लगान चुकानेकी स्थितिमें नहीं हैं, उनपर लगान चुकानेके लिए दबाव न डाला जाये, बल्कि बकायाको अगले वर्षके हिसाबमें शामिल कर दिया जाये।

५. अगले दिन (२५ अप्रैलको) बम्बई सरकारकी दूसरी प्रेस-विज्ञप्ति जारी की गई। उसमें कहा गया था कि लगानका अधिकांश भाग चुकाया जा चुका है, जो बचा है, वह ऐसे लोगोंपर बकाया है, जो लगान दे तो सकते हैं, लेकिन उन्हें लगान न देनेके लिए बरगलाया गया है। इन हालतोंमें बम्बई सरकार श्री गांधीकी स्वतन्त्र जाँच करानेकी प्रार्थनाको स्वीकार नहीं कर सकती। उसने इस बातपर जोर दिया कि लगानकी मुल्तवी और माफीकी माँग अधिकारके रूपमें नहीं की जा सकती; यह तो राहत देनेके लिए, रियायतके तौरपर किया जाता है। उसने यह भी घोषणा की कि उसके सारे तखमीने और आँकड़े जिनपर लगान वसूलीका निर्णय आधारित है निरीक्षणके लिए खुले हैं।

६. कलक्टरने कमिश्नरके आदेश यथासमय मामलतदारोंको भेज दिये थे, लेकिन लगता है कि जो लगान नहीं दे सकते थे, उनपर दबाव डालना बन्द करनेमें

मामलतदारोंको कुछ हिचक हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि कलक्टरने २२ मई, १९१८ को उन्हें फिर वही आदेश भेजा, लेकिन तबतक कुल लगानका ९३ प्रतिशत वसूल हो चुका था। आदेशकी इस पुनरावृत्तिका असर हुआ और नडियादके मामलतदारने श्री गांधीजीसे भेंट करनेके बाद ३ जूनको उत्तरसंडा गाँवके लोगोंको सूचित करनेके लिए गाँवके कार्यकर्त्ताओंको यह आदेश भेजा कि जो दे सकते हैं, वे लोग तत्काल लगान अदा कर दें। लेकिन "उन लोगोंपर जो दरअसल गरीब हैं और जिनकी गरीबी साबित हो चुकी है, लगानकी वसूलीके लिए दबाव नहीं डाला जायेगा और उनका लगान अगले सालके लिए मुल्तवी कर दिया जायेगा।" आदेश गाँवके लोगोंको पढ़कर सुना दिया गया और तब श्री गांधीने लोगोंसे लगान अदा करनेका जोरदार अनुरोध किया। इसके बाद जल्दी ही आन्दोलन खत्म हो गया। कलक्टर और गांधीजीके बीच फिर भी जिनकी जमीनें पहले ही जब्त कर ली गई थीं उन लोगोंपर कलक्टर द्वारा किये गये चौथाई जुर्मानेके बारेमें पत्र-व्यवहार होता रहा। इस सवालके बारेमें भी पत्र-व्यवहार किया गया कि जिन लोगोंको इस वर्ष लगान चुकता करनेके लिए अन्ततः बहुत गरीब करार दिया गया है, उनका लगान "मुल्तवी" माना जायेगा या "अनधिकृत बकाया"। इस प्रश्नपर कलक्टरका खयाल था कि इस बारेमें सचमुच गलतफहमी हुई है और उनकी सिफारिशपर सरकारने अनमने होकर बकाया लगानको मुल्तवी लगान मान लिया। जुलाईके अन्ततक कुल लगानका ९८.५ प्रतिशत वसूल हो चुका था।

७. इस आन्दोलनके औचित्यके प्रश्नको समझनेके लिए यह ध्यानमें रखना जरूरी है कि भारतमें ब्रिटिश शासनके कई वर्षोंकी अवधिके लिए लगान नियत करनेकी प्रणाली जान-बूझकर अपनाई गई थी। समय-समयपर लगान नियत करनेके पीछे सिद्धान्त यह है, "उसे इस प्रकार निश्चित किया गया है कि सामान्य रूपसे उतने परिवर्तनकी गुंजाइश, मौसमके परिवर्तनोंका जितना अनुमान लगान-निर्धारक अधिकारी लगा सकते थे, रख ली गई थी। किन्तु चाहे फसल बुरी हो या अच्छी, सिद्धान्ततः लगान हर साल चुकता होना ही चाहिए।" (भारत सरकारके राजस्व व कृषि विभागके २५ मार्च, १९०५ के प्रस्तावका अनुच्छेद ५)। इसलिए भारत सरकारने यह स्वीकार करते हुए भी कि व्यवहारके समय लगान वसूलीमें हेरफेरकी गुंजाइश होना जरूरी है, यह भी कहा कि इस प्रस्तावमें जिस प्रणालीका अनुमोदन किया गया है उसमें लगान वसूली करते समय किसी प्रकारकी ढील-ढाल या असावधानी नहीं होनी चाहिए। वह यह भी नहीं चाहती कि लगानको मुल्तवी और माफ करनेकी प्रस्तावित प्रणाली, "राजस्व प्रशासन-का नित्य अंग" ही बन जाये। इसे रियायती कार्रवाईके रूपमें मान्यता दी गई थी न कि अधिकारके रूपमें। यह रियायत केवल अपवादस्वरूप ऐसे कठिन संकटोंके लिए थी, जिनमें बन्दोबस्तके अनुसार किये गये करारमें ढिलाई करना मुनासिब और जरूरी लगे। यह भी कहा गया कि "किसानसे यह उम्मीद करना कि वह बुरी और अच्छी फसलोंके साधारण उतार-चढ़ावको बरदाश्त कर लेगा, ठीक और उचित ही है।" उक्त सिद्धान्त बम्बई नियमोंकी भूमिकामें दुहराये गये हैं। बम्बईके नियमोंमें से पहला नियम कलक्टरको यह अधिकार देता है (ध्यान रहे, निर्देश नहीं देता) कि जब स्थानीय जाँच-पड़तालसे

उसे निश्चय हो जाये कि किसी इलाकेमें वर्षाके अभाव या किसी अन्य कारणसे फसल पूरी तरह या अंशतः खराब हो गई या मारी गई है और इसलिए वहाँ लगान वसूली मुल्तवी करना जरूरी होगा तो वह ऊपर (अनुच्छेद १ में) बताई गई दरोंपर वैयक्तिक परिस्थितियोंपर विचार किये बिना सब किसानोंका लगान मुल्तवी कर सकता है। इन दरोंका उपयोग कैसे करना चाहिए, यह भारत सरकारके २५ मार्च, १९०५ के प्रस्तावके अनुच्छेद १० में दिया गया है। सरकारने आँख मूँदकर इस फार्मूलेका पालन करना ठीक नहीं माना; लेकिन यह राय जाहिर की है कि राहत देनेके बारे-में सामान्य मार्गदर्शनके लिए गणितके आधारपर कोई प्रामाणिक तालिका बनाई जानी चाहिए। खेड़ाके आन्दोलनने इन सिद्धान्तोंकी उपेक्षा की; यह सच है कि श्री गांधीने मई-के आरम्भमें स्वीकार किया था कि "लगान रियायतके रूपमें मुल्तवी किया जाता है, कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारके रूपमें नहीं।" लेकिन उन्होंने स्पष्ट रूपसे यह नहीं माना है कि दोनोंमें यह मूलभूत अन्तर इस कारण नहीं है कि सरकार निरंकुशता-पूर्वक लोगोंको अधिकार देनेसे इनकार करती है, बल्कि इसका कारण यह सीधी-सादी बात है कि निश्चित लगानकी तत्कालीन प्रणालीके अन्तर्गत किसान एक अवधिके लिए किये गये बन्दोबस्तको मानकर कुछ वर्षोंतक बुरी फसल होनेपर भी उतना ही लगान देनेका वायदा करता है, जितना वह अच्छी फसल होनेपर देता है। इस प्रकार वे निम्नलिखित रूपसे आन्दोलनका समर्थन करते हैं: "प्रशासनिक आदेशोंके बारेमें जहाँ-कहीं स्थानीय अधिकारियों और किसानोंमें तीव्र मतभेद होते हैं, वहाँ मतभेदोंके मुद्दे एक निष्पक्ष जाँच समितिको सौंपे जाते हैं और सौंपे जाने चाहिए।" वे यहाँतक कहते हैं कि जब कमिश्नरका राहतके परिमाणके सवालपर लोगोंसे मतभेद हो, तब लोगोंको सन्तुष्ट करना कमिश्नरका कर्त्तव्य है। इससे लगता है कि श्री गांधी-ने जो यह बात स्वीकार की थी कि लगान मुल्तवी करना रियायत है, वह तत्त्वतः इनकार करना ही है। इसके अलावा श्री गांधीका यह आग्रह भी अनुचित है कि नियमों में बताई गई लगान मुल्तवीकी दरपर कड़ाईसे कायम रहना चाहिए। वे अपने २९ मार्च, १९१८ के पत्रमें लिखते हैं: "राजस्व नियमोंके अन्तर्गत यदि फसल चार आने भर (अर्थात् सामान्य फसलकी एक तिहाई) है तो किसान इस बातके हकदार हैं कि उस वर्ष उनका पूरा लगान मुल्तवी किया जाना चाहिए।" वे किसी चीजके "हकदार" नहीं हैं; और जिस तालिकाके अनुसार राहत देनेकी अपील की गई है, वह अपने आपमें कोई निरपेक्ष व्यवस्था नहीं है, बल्कि कलक्टरके लिए सामान्य तौरपर पथप्रदर्शकके रूपमें है। जैसा कि भारत सरकारने २५ मार्च, १९०५ के अपने प्रस्तावके अनुच्छेद ९ में कहा है, "इसका मतलब जरूरी तौरपर यह नहीं है कि आधीसे ज्यादा फसल खराब होनेपर हमेशा राहत दी जानी चाहिए, क्योंकि यह (राहत) उससे पहलेकी फसलकी दशा और सम्बन्धित फसल (जिसके लिए राहत माँगी जा रही है) के महत्त्वपर निर्भर करती है।" यह एक दूसरा मुद्दा था, जिसकी आन्दोलनमें लगातार उपेक्षा की गई। इस प्रश्नके अतिरिक्त कि किसानोंको कुछ हालतोंमें लगान मुल्तवी करवानेका अधिकार है या नहीं सरकार आन्दोलनकारियोंके इस तर्कको नहीं मान सकती कि किसानोंको फसल-

की क्षतिके सम्बन्धमें कलक्टरके अनुमानको; जिसके आधारपर लगान मुल्तवी करनेके आदेश जारी किये जाते हैं, चुनौती देनेका, अपनी इच्छानुसार उनमें परिवर्तन कराने या निष्पक्ष जाँचकी माँग करनेका अधिकार है। फसलोंका अनुमान लगानेकी जिम्मेदारी कलक्टरपर रहनी चाहिए। असलमें यह माननेका कोई कारण ही नहीं है कि खेड़ामें फसलके अनुमान इतनी लापरवाहीसे लगाये गये थे कि उनके विरुद्ध संगठित आपत्ति करना उचित था। बल्कि राजस्व-वर्षमें और जब सत्याग्रह पूरे जोरपर था तब भी लगानकी वास्तविक वसूलीमें जो प्रगति हुई उससे तो इसके विपरीत निष्कर्ष ही निकाला जा सकता है। इसके आँकड़े अनुच्छेद ४ और ६ में पहले ही दिये जा चुके हैं।

८. अभी यह विचार करना बाकी है कि आन्दोलन असलमें कितना सफल रहा। गुजरात सभाको अपनी २१ मार्च, १९१८ की बैठकमें अपनी उस सलाहको, जो उसने गश्तीपत्रके रूपमें जनवरीके आरम्भमें पहले प्रचारित की थी, फिर एक प्रस्तावकी शकलमें रखना पड़ा। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शुरू-शुरूमें कमसे-कम श्री गांधीके हस्तक्षेपसे पहले, आन्दोलन कोई बहुत प्रभावोत्पादक नहीं था। इसके अलावा घरेलू मतभेद समाप्त करनेके लिए वाइसराय महोदयकी अपील निकलने तक स्थानीय सरकार तथा उसके स्थानीय अधिकारियोंने अबतक अपनाये गये अपने कड़े रुखमें किसी तरहकी नरमी नहीं दिखाई। जिस सीमातक नरमी दिखाई गई, वह उपर्युक्त अनुच्छेद ४ में बता दी गई है। मुख्यतः इतनी ही नरमी दिखाई गई कि लगान वसूलीके लिए स्वीकार्य कठोर तरीकोंकी जगह नरम तरीके अख्तियार किये गये। यह किसी भी तरह श्री गांधीकी माँगोंके सामने झुकना नहीं था। कमिश्नरका यह निर्देश कि उन किसानोंपर जो वास्तवमें लगान चुकानेकी स्थितिमें नहीं हैं, कोई दबाव न डाला जाये, सामान्य संकटके समय लगान मुल्तवी करनेके किसी खास नियमके अन्तर्गत नहीं आता; तथापि यह बम्बई अहातेमें की जानेवाली लगान वसूलीकी परम्पराके अनुसार था; बादमें बकायेको इस "अनधिकृत बकाया" से "मुल्तवी लगान"में तबदील करना (देखिए ऊपर अनुच्छेद ६) केवल एक असाधारण रियायत थी। फिर भी आन्दोलन जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए कृतसंकल्प था, यह रियायत उसका एक छोटा-सा अंशमात्र थी। आन्दोलनका मुख्य उद्देश्य यह था कि या तो फसलके नुकसानका अनुमान लगानेके लिए निष्पक्ष जाँच कराई जाये या सरकार किसानों द्वारा लगाये गये अनुमानको ठीक मान ले और उसके आधारपर लगान मुल्तवी किया जाये। इनमें से कोई भी माँग स्वीकार नहीं की गई; यहाँतक कि उपर्युक्त रियायत जिन खास मामलोंमें दी गई, उनके बारेमें भी यह निर्णय सरकारी अधिकारियोंने ही किया कि कौन किसान इतने गरीब हैं कि लगान चुकता नहीं कर सकते या कौन ऐसे हैं कि कर सकते हैं। और इसका पता लगानेके लिए कदम उठानेसे पहले ही कि कौन चुकता करने योग्य है, कौन नहीं श्री गांधी अपना आन्दोलन समाप्त करनेके लिए राजी हो गये और उन्होंने कानून माननेसे इनकार करनेवाले अल्पसंख्यकोंसे लगान जमा करवानेमें सक्रिय भाग लिया। यह सच है कि यहाँ भी मालूम पड़ता है, श्री गांधी पहले गलतफहमीके शिकार हो गये थे; क्योंकि कहते हैं, ३ जूनको उत्तरसंडाकी सभामें आन्दोलन खत्म करनेकी घोषणा करते हुए उन्होंने किसानोंसे

कहा कि "सरकारने यह फैसला उनपर छोड़ दिया है, कि कौन किसान लगान न दे।" लेकिन यह वक्तव्य अधिकृत नहीं था और १ जुलाई, १९१८ को कमिश्नरने निश्चित रूपसे यह घोषणा की कि "जिन लोगोंको यह रियायत मिलेगी, वे अत्यन्त गरीब किसान होंगे और वे कलक्टर और उनके मातहत अधिकारियों द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति होंगे, किसी बाहरी व्यक्ति या संस्था द्वारा निर्दिष्ट नहीं।"

९. उपर्युक्त बातोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि खेड़ाके आन्दोलनके लिए कोई उचित कारण नहीं था और उसका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-८-१९१९

परिशिष्ट ५

"पैनसिलवेनियन" का पत्र

प्रिय श्री गांधी,

जन-साधारणकी भलाईके लिए आपने जो काम किया है, उसकी ओर ऐसे अनेक लोगोंका ध्यान गया है जिनके बारेमें आप कुछ भी नहीं जानते। फिर भी सभी अच्छे कामोंकी प्रशंसा तो होती ही है। आपने कुछ बहुत ऊँचे आदर्श चुने हैं, कुछ भूलें भी की हैं। आपके कार्योंमें जो अत्यन्त प्रशंसनीय काम हैं उनकी पृष्ठभूमिमें ये भूलें और भी अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। मैं जिस महान् गणतन्त्रका नागरिक हूँ, वहाँ आप कभी नहीं गये हैं। यदि मैं कुछ बातें जिनपर मैं विचार करता हूँ, गंभीरतापूर्वक विचारार्थ आपके सामने रखूँ तो आप कृपया मुझे क्षमा करेंगे। सविनय अवज्ञा आन्दोलनको फिलहाल स्थगित कर देनेके बारेमें आपने हालमें ही जो पत्र प्रकाशित कराया वह सामयिक है। वह वास्तवमें बहुत दूरदर्शितापूर्ण हैं, किन्तु माफ कीजिए, उस पत्रमें रौलट विधेयकोंकी बहुत खिलाफत की गई है। चाहे कुछ भी क्यों न हो, रौलट विधेयक वापस लिये जाने चाहिए — यही इसका आशय है। ठीक है न?

गांधीजी, मैंने ज्यादातर यही देखा है कि जब कोई आदमी किसी बातका विरोध इस प्रकार करता है, जिस प्रकार आप कर रहे हैं, तो वह अपने उद्देश्यको ही नष्ट कर देता है। यदि आप सरकार हों और कोई आदमी आपसे कहे कि वह आपकी एक बातको छोड़ बाकी सब बातें माननेके लिए तैयार है तो आप उससे कहेंगे कि वह उस एक बातको भी मान ले। तब यदि वह कहे कि वह उसे नहीं मानेगा तो आप कहेंगे कि उसे वह माननी ही होगी। गांधीजी, आप जानते हैं कि आदमी बना ही इस तरहका है। मैं आपको एक सुझाव देनेका दुःसाहस कर रहा हूँ, मगर मैं जानता हूँ कि आप उसे पसन्द नहीं करेंगे। सुझाव यह है कि आप रौलट विधेयकोंके खिलाफ अपने संघर्षको बन्द कर दें। अन्ततः इससे अधिक प्रगति होगी।

ईसाई लोगोंमें प्रचलित एक किस्सा आपको सुनाता हूँ। इंग्लैंडके एक देहाती गिरजेमें प्रार्थना करनेके लिए आनेवालोंमें से कुछ लोग चुपकेसे एक बाजा अपने साथ ले आये। गिरजेमें उपस्थित अन्य लोगोंको यह बात बहुत बुरी लगी, वास्तवमें वह उन्हें बहुत खटकी। ऐसा लगा मानो आसपासके सभी लोगोंकी बाजेसे सम्बन्धित विवादमें दिलचस्पी पैदा हो गई है। तभी बाजा लानेवालोंमें से एकने क्षमा-याचना करते हुए कहा: "मुझे पता नहीं था कि बाजा लानेसे आप इतने नाराज होंगे, इसलिए मैं इसे बाहर ले जानेके लिए बिलकुल तैयार हूँ।" इसके जवाबमें विरोधी पक्षके प्रमुख पादरीने उठकर कहा: "अगर आप अपनी भूल इस तरह महसूस कर रहे हैं, तो मैंने उसको यहाँ रखनेपर जो आपत्ति की है उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक वापस लिये लेता हूँ।" अभी कुछ दिन पहले एक मित्रने मुझसे सवाल किया कि क्या हमारा महान् गणराज्य भी ऐसी निर्दयता दिखायेगा, जैसी पंजाबमें अभियुक्तोंके साथ बरती जा रही है। मैंने उसे यह जवाब दिया — "संयुक्त राज्य अमेरिकामें मेरा एक मित्र है। पेशेके लिहाजसे वह दन्त-चिकित्सक है। लड़ाईके दिनोंमें एक दिन वह बहुत बोल रहा था और सरकारकी आलोचना कर रहा था। उसे अदालतमें पेश होनेके लिए कहा गया। वहाँ उसे ३,००० रु० जुर्मानेकी सजा दी गई। जहाँतक मुझे पता चला है उसने वह जुर्माना दे दिया और तबसे वह बहुत नहीं बोलता। जहाँतक मैं जानता हूँ, उसके दोस्त महसूस करते हैं कि उसने अन्तमें बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया।

गांधीजी, मैं यह मानता हूँ कि सविनय अवज्ञा बहुत अच्छा, बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण तरीका है और आपको तथा आपके मित्रोंको उसे जारी रखना चाहिए। किन्तु मेरा पहला विनम्र सुझाव यह है कि आप उसमें जरा-सा संशोधन कर लें। वह उपाय इतना अच्छा है कि उसे छोड़ना नहीं चाहिए। उसमें भलाई करनेकी इतनी क्षमता है कि उसे चुपचाप एक तरफ नहीं रख दिया जा सकता। लेकिन मैं चाहूँगा कि उसमें संशोधन हो। उसका वर्तमान रूप ऐसा है कि उसमें बुराई पैदा करनेकी क्षमता भी बहुत है। आप उसमें संशोधन कर लें। बुराईको निकालकर उसमें अच्छाई ज्यादा भर दें। यह उपाय आपको कैसा लगेगा? उसके दो बड़े हिस्से कर दें, एक विधि-सम्बन्धी और दूसरा निषेध-सम्बन्धी। आरम्भ निषेधसे करें जो, आप जानते हैं, सदा ही अत्यन्त प्रभावकारी होता है। अब हम विचार करते हैं।

१. बुराईका प्रतिरोध

१. आप झूठ बोलनेका सदा विरोध करें। सत्याग्रहमें ऐसे लोगोंको शामिल करें जो कभी झूठ न बोलें। इस प्रकार और लोगोंको भी ऐसा करनेकी प्रेरणा दें। सत्याग्रही प्रतिज्ञा करें कि वे किसी भी दशामें झूठ नहीं बोलेंगे। आप उन्हें सिखाएँ कि मनमें झूठ भरकर स्वतन्त्र रहनेसे सच बोलकर जेल जाना बेहतर है।

२. आप सभी प्रकारकी घूसखोरीका विरोध करें। आप सत्याग्रहियोंसे यह वादा करवायें कि उन्हें घूसखोरीके विरुद्ध इतनी दृढ़तासे मोर्चा लेना चाहिए कि वे घूस लेने और देनेवाले हर बदमाशकी पोल खोल देना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। सत्याग्रहियोंको यह भी सिखाएँ कि अपना कर्त्तव्य पूरा करनेसे पहले घूस देनेके लिए मजबूर करनेवाले

व्यक्तिसे यह कह दें कि वे उसकी पोल खोल देंगे। भले ही घूस देनेवाले अर्थात् घूस देनेके लिए मजबूर होनेवाले व्यक्तिको जेल ही जाना पड़े। कानूनके सामने घूस लेनेवाले और देनेवाले दोनों ही समान हैं। यदि बीसियों सत्याग्रही, लोगोंको इस प्रकार सचेत करते रहेंगे तो हम सबके जीवन-कालमें एक नैतिक क्रान्ति आ जायेगी। यह शर्मनाक बुराई इतनी बढ़ गई है कि इसकी ओरसे आप आँखें नहीं मूँद सकते।

३. आप धार्मिक भिक्षा-वृत्तिका विरोध करें। गांधीजी, धर्मके नामपर ३० लाख भिखारी देशका अन्न खाते हैं और बदलेमें उसे कुछ नहीं देते। यह विचार ही मुझे घृणास्पद लगता है। आप इसका विरोध करते रहे हैं, यह बहुत अच्छी बात है। हम यहाँ सहमत हैं। जबतक लोग इन्हें भीख देते रहेंगे तबतक ये माँगते रहेंगे। आप सत्याग्रहियोंको उदार दानी बनायें, लेकिन वे ऐसे लोगोंको दान न दें जो हट्टे-कट्टे होनेपर भी किसी तरहका काम करनेसे इनकार करते हैं। इससे स्थितिको सुधरनेमें अत्यधिक सहायता मिलेगी।

४. आप दासताका विरोध करें। गांधीजी, यदि इस समय भारतमें कोई ऐसा व्यक्ति है जो जनमत तैयार कर सकता है, तो वह आप ही हैं। यदि आप लोगोंको यह महसूस करा सकें कि पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंको इतनी कम मजदूरीपर नौकर रखना शर्मनाक है जिससे कि वे हमेशा गुलामीकी हालतमें बने रहें, तो यह बहुत ही अच्छी बात होगी। क्या आपने कभी सुना है कि एक युवा व्यक्ति अपने विवाहके लिए अपने मालिकसे ५० रुपये उधार लेता है और एक टिकट लगे कागजपर मजदूरी करके कर्ज चुकानेका लिखित वादा करता है, जब कि मजदूरीमें उसे खाना और सालमें १० रुपये मिलते हैं। मैंने ऐसे कई किस्से सुने हैं, लेकिन वे किस्से मेरे अपने देशके नहीं हैं। मैं इसको गुलामी ही कहूँगा। किसी भी सत्याग्रहीको ऐसा कृत्य करके अपराधी नहीं बनना चाहिए। नौकरके साथ दयापूर्ण व्यवहार हो तो भी यह उस बेचारेके लिए दयालुतासे भरी एक किस्मकी गुलामी ही है।

५. आप शराबके व्यापारका विरोध करें। यह एक जघन्य व्यापार है और भले लोग इस बुराईके खिलाफ लड़नेमें अपना समय और धन अच्छी तरह खर्च कर सकते हैं। इस लड़ाईमें मेरे देशने मार्ग दिखाया है। गांधीजी, क्या आप जानते हैं कि अमेरिकामें इस संघर्षमें विजय कैसे मिली? ४०–५० वर्ष पहले ही बड़ी संख्यामें अच्छे लोगोंने शराबबन्दीके सवालसे खिलवाड़ करना छोड़कर काम करनेका फैसला किया। उन्होंने सभाएँ कीं, भाषण दिये तथा पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंसे मद्य-त्यागकी प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करवाये। स्कूलोंके भवनोंमें शराब न पीनेवालों और शराब पीनेवालोंकी तस्वीरें टँगवाईं; स्कूलोंमें पढ़ाई जानेवाली पुस्तकोंमें मद्य-त्यागसे सम्बन्धित पाठ शामिल करवाये और इस बारेमें सब अखबारोंमें जानकारी छपवाई। गांधीजी, कुछ वर्षों बाद ये स्कूली बच्चे स्त्री और पुरुष बन गये। इन लोगोंके मनोंमें पक्का विश्वास था कि यह बहुत बड़ी बुराई है। इन्हीं लोगोंने इस बुराईको मेरे देशसे निकाल बाहर किया है। इन स्त्री-पुरुषोंने इस महान् गणराज्यको शराबके बदनाम व्यापारसे मुक्त कराया है। लेकिन इस बारेमें अन्तिम कानून बननेसे पहले वे बार-बार हारे, फिर भी हारनेके

कारण कांग्रेसके किसी भी सदस्यने अपने पदसे कभी इस्तीफा नहीं दिया। अधिक नहीं; वे अपने विचारोंपर दृढ़ रहे और फिर मतदाताओंको सन्तुष्ट करनेके लिए तैयारी करते रहे। अपने उद्देश्यमें असफल होनेपर त्यागपत्र देने, उदास होने और समस्यासे भागनेके तरीकेको अमरीकी लोग काम करनेका ठीक तरीका नहीं समझते।

जैसा कि मैं समझता हूँ, सत्याग्रहको विधि-सम्बन्धी और निषेध-सम्बन्धी दो भागोंमें बाँटनेसे बुराईका प्रतिरोध पहले आता है, यह मैं ऊपर बता चुका हूँ।

२. नागरिक सहायता

१. आप स्वदेशी उद्योगोंका सुझाव पहले ही दे चुके हैं। यदि लोग अपनी जरूरतका ज्यादातर कपड़ा खुद बुन लें, तो यह बहुत ही अच्छा होगा। यदि किसान जिस प्रकार अनाज गाहकर भूसेसे गेहूँ अलग करते हैं, उसी प्रकार अपनी कपास स्वयं ओट लें, तो यह बहुत अच्छा होगा। यदि यह काम पूरे उत्साहसे किया जाये तो विदेशी मालके खिलाफ आवाज उठानेकी जरूरत ही नहीं होगी। ८० प्रतिशत लोग उन्हीं चीजोंको खरीदेंगे जो सबसे ज्यादा सस्ती होंगी। आप चीजोंका उत्पादन करें और जीत आपकी होगी। खेड़ामें, जहाँ आपने कुछ समय बिताया है, कितने गाँवोंमें बढ़ई हैं, कितने गाँवोंमें लुहार हैं, 'शिपी'[१] हैं? गाँवोंमें ज्यादातर तो किसान और खेत-मजदूर ही हैं।

२. किसी भी देशकी तरक्कीके लिए अच्छी सड़कें जरूरी होती हैं। लेकिन क्या इस मामलेमें भी हम सरकारको दोष दें? मैं ऐसा नहीं करूँगा। आप उन लोगोंको सत्याग्रही बनायें जो अच्छी सड़कों और स्वस्थ गाँवोंके हिमायती हों। आप हर किसान-को सत्याग्रही बनायें, उससे कहें कि वह जब भी सड़कपर अपनी बैलगाड़ीमें जाये, हर बार अपने साथ कुल्हाड़ी, कुदाली या फावड़ा ले जाये और यह प्रतिज्ञा करे कि वह हर फेरेमें एक बार रुकेगा और उसे जहाँ सड़क बहुत ज्यादा खराब मिलेगी उसे ठीक कर देगा। मेरे विचारमें शहरोंके भले लोग इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले किसानोंको औजार खरीद देनेके उद्देश्यसे धन एकत्र करेंगे। गांधीजी, कुछ प्रयत्न करिये। आप जरा कल्पना तो करें कि बरसातमें देहाती रास्तोंकी क्या हालत होती है!

शिक्षा

३. गांधीजी, आप सबके लिए प्राथमिक शिक्षाकी व्यवस्था करें। लेकिन इस बारेमें भी वही बात है। लोग कहते हैं कि सरकार कानून बना दे। सरकारको इस तरह परेशान क्यों किया जाये? आप जनताके आदमी हैं, जनतासे कहें। आप छात्रोंसे प्रतिज्ञा करायें कि छुट्टियोंमें हर छात्र एक-एक निरक्षर व्यक्तिको पढ़ना सिखायेगा। प्रत्येक छात्रको, जबतक उसके पिताके घरमें नियुक्त एक भी व्यक्ति अनपढ़ है, शर्म महसूस करनी चाहिए और मंजूर करना चाहिए कि अपने देशके सामान्य कल्याणके प्रति उसकी दिलचस्पी नहीं है। लेकिन लोगोंका तो यह कहना है कि अपढ़ व्यक्ति ही अच्छा नौकर होता है। खराबी यहीं है; सर लिंकनका कहना है कि कोई देश

१. दर्जी।

आधा स्वतन्त्र और आधा गुलाम नहीं रह सकता। मैं लिंकनकी बातका पूरा समर्थन करता हूँ। मैं सबकी स्वतन्त्रताका हामी हूँ। मैं चाहता हूँ कि पुस्तकोंमें निहित ज्ञानका भण्डार एक अदनासे अदना नौकरके लिए भी खुला रहना चाहिए।

४. आप [छात्रोंको] उच्च शिक्षा विदेशोंमें दिलायें। आप जानते हैं कि जापान एक प्राचीन देश है। उसके कितने ही वर्तमान नेताओंकी शिक्षा विदेशोंमें हुई है। कहा जाता है कि अमरीकाकी शिक्षण संस्थाओंमें इस समय १,२०० जापानी छात्र पढ़ रहे हैं। चीन भी एक प्राचीन देश है। गांधीजी, क्या आप जानते हैं कि (क्षतिपूर्ति निधि द्वारा) एक प्रतियोगी परीक्षाके माध्यमसे हर वर्ष ५० हाईस्कूल-पास सर्वोत्कृष्ट चीनी छात्र चुने जाते हैं और उन्हें इस स्पष्ट वादेके साथ अमरीका भेजा जाता है कि वे वहाँ ७ वर्ष-तक पढ़ेंगे और उसके बाद लौटकर चीन आयेंगे। इस प्रकार भेजे जानेवाले इन युवक-युवतियोंमें से प्रत्येकको हर साल पूरे खर्चके लिए ढाई हजार रुपया दिया जाता है और उनसे अमेरिका आने-जानेका भाड़ा नहीं लिया जाता। मुझे यह व्यवस्था अच्छी मालूम देती है। इसका मतलब यह हुआ कि अमरीकी संस्थाओंमें हर समय ७५० चीनी छात्र पढ़ते हैं और प्रथम स्थान पानेके लिए अमरीकी युवकों और युवतियोंसे प्रतिस्पर्धा करते हैं। वहाँ उनका स्वागत किया जाता है। वे जो चाहते हैं, वह पढ़ते हैं और अमरीकाके पास जो सर्वोत्कृष्ट आदर्श हैं उन्हें लेकर वे स्वदेश लौटते हैं। गांधीजी, क्या आपको यह सब ठीक जँचता है? मैंने एक बार सुना था कि आपके देशके सूरत शहरमें एक बोहरा-निधि है, जिसमें ५० लाख रुपये जमा हैं और बिना किसी उद्देश्यके। इस प्रकार भारतमें काफी मात्रामें धन व्यर्थ पड़ा है। मान लें कि ५० लाख रुपयेसे, जिसपर ५ प्रतिशत ब्याज मिल सकता है, युवकों और युवतियोंको विदेशी कॉलेजोंमें पढ़नेके लिए भेजा जाये। प्रत्येकको यदि ढाई हजार रुपये प्रतिवर्ष दिये जायें, तो १०० छात्र-छात्रायें दुनियाके विश्वविद्यालयोंमें उनका मर्म जान लेनेके लिए वहाँ व्यस्त रह सकते हैं। गांधीजी, क्या यह बात आपको जँचती है? जब मैं इस बारेमें सोचता हूँ तो मुझे दुःख होता है। मुझे दुःख होता है कि बेकार पड़े इन करोड़ों रुपयोंके बदले हमें कुछ भी नहीं मिल पाता; बिलकुल ही कुछ नहीं। हमारे प्रतिभाशाली युवक और युवतियाँ थोड़ा-सा आगे बढ़नेके लिए अकसर भाग्यसे संघर्ष करते रहते हैं और यह धन यों ही पड़ा रहता है। इस प्रस्तावित योजनाकी सफलताके लिए कुछ बातें जरूरी होंगी, जैसे छात्रों और छात्राओंका चुनाव प्रतियोगितामूलक परीक्षा द्वारा किया जाये और उन्हें वे जिस बाहरी देशमें जाकर पढ़ना चाहें, भेज दिया जाये। अलबत्ता पढ़ाईके बाद उनका स्वदेश लौटना आवश्यक रहे।

५. गांधीजी, इस अनुच्छेदको लिखते हुए मैं गद्‌गद् हूँ, मैं आपको अब्राहम लिंकनकी एक बात सुना रहा हूँ। जब उन्होंने वकालत शुरू की तो उन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि वे तबतक किसी भी मुकदमेकी पैरवी नहीं करेंगे जबतक कि उन्हें विश्वास नहीं हो जाता कि वह सच्चा है और लिंकन — अमरीकियोंको किसी अन्य व्यक्तिका नाम उतना प्रिय नहीं जितना कि लिंकनका — अपने इस मौलिक निर्णयसे कभी विचलित नहीं हुए। इस उदाहरणमें वकील-समाजके लिए एक सुझाव

निहित है। आप सब वकीलोंको सत्याग्रही बनायें ताकि उन्हें यह महसूस हो कि किसी मुकदमेको सम्मानपूर्वक लड़ना और हार जाना जर्मन तरीकेसे जीत जानेसे कहीं बेहतर है। लिंकनने कहा था: मेरा जीतना जरूरी नहीं है, सचाईपर दृढ़ रहना जरूरी है।

६. जब अटलांटाका अपना प्रसिद्ध भाषण देते समय बुकर टी० वाशिंगटन अपनी लोकप्रियताकी चरम सीमापर थे। श्रोताओंमें विरोधी और समर्थक दोनों थे और दोनों पक्षोंको परिणाम क्या होगा इसका निश्चय नहीं था। उन्होंने जो बातें कहीं उनमें एक यह भी थी: "विशुद्ध सामाजिक बातोंमें हम अँगुलियोंकी तरह पृथक हो सकते हैं किन्तु आपसी प्रगतिके सब आवश्यक मामलोंमें हाथकी तरह एक हो सकते हैं।" उनका यह कहना था कि उस विशाल सभा-भवनमें भारी संख्यामें उपस्थित श्रोता, जिनमें उच्च-वर्गके लोग भी थे, खड़े हो गये और उन्मत्त होकर हर्षध्वनि करने लगे। 'अंटलांटा कांस्टीट्यूशन' के सम्पादकने, जो 'न्यूयॉर्क वर्ल्ड' के संवाददाता श्री जेम्स क्रीलमैनके पास बैठे थे, मुड़कर उनसे कहा: "यह भाषण एक नैतिक क्रान्तिका आरम्भ है।" गांधीजी, इसमें सूत्र रूपमें सब कुछ आ गया है। यदि आप अपनी सारी शक्ति एक नैतिक क्रान्ति उत्पन्न करनेमें लगा दें तो आपको नैतिक और राजनैतिक दोनों क्षेत्रोंमें प्रत्यक्ष प्रगतिको देखनेका अवसर मिलेगा। यदि आप अपनी शक्ति राजनीतिक क्रान्तिमें खर्च करेंगे तो आपको दोनोंमें से एक भी देखनेको नहीं मिलेगी। मुझे तो ऐसा ही लगता है।

७. आप सत्याग्रहमें यह बात भी शामिल करें कि जितना हम समाजसे लें उससे अधिक उसे दें। यह देशके प्रति प्रेमके लिए, मानवताके प्रति प्रेमके लिए या ईश्वरके प्रति प्रेमके लिए किया जा सकता है। मैं फर्ग्युसन कॉलेजके एक योग्य प्राध्यापकका उदाहरण देता हूँ। उन्हें योग्यताके विचारसे आज ८०० रुपये प्रति मास वेतन मिलना चाहिए लेकिन वे १५० रुपये प्रति मास लेते हैं। मैं समझता हूँ कि वे नैतिक क्रान्तिकी दिशामें तेजीसे बढ़ रहे हैं। मैं स्वयं ५० से अधिक ऐसे सत्पुरुषोंको जानता हूँ जो बाजार-दरकी अपेक्षा कहीं कम वेतन ले रहे हैं। वे आम लोगोंकी भलाईके लिए यह त्याग कर रहे हैं। इसमें आध्यात्मिक नेतृत्वके लिए एक संकेत निहित है। यह आचरण आम आचरणसे भिन्न है, प्रचलित आचरणसे भी बहुत भिन्न है। साधारण जन जितना मिल सकता है उतना ले लेता है और फिर उससे ज्यादाकी माँग करता है। भारत दुनियाको आध्यात्मिक जीवनकी, दूसरोंकी भलाईके लिए त्यागकी कुछ बातें बता सकता है; लेकिन यह कार्य सविनय अवज्ञाके किसी भी तरीकेसे सिद्ध नहीं हो सकता। यह पहले बुराईके प्रतिरोधसे और दूसरे नागरिक सहायताके तरीकेसे सिद्ध हो सकता है, इसका मतलब है ऐसी नैतिक क्रान्तिसे सिद्ध हो सकता है जिसमें सविनय अवज्ञाका धोखा और प्रचार नहीं होता बल्कि जो विश्वासी और दूरदर्शी लोगोंके लिए एक बड़ी चुनौती है। गांधीजी, मेरा विश्वास है कि आप ही ऐसे व्यक्ति हैं जिसमें श्रद्धा और दूरदर्शिता दोनों हैं; इसलिए मैंने आपको ये बातें लिखी हैं।

में समझता हूँ कि मैं बहुत-कुछ लिख चुका हूँ, इसलिए सोचता हूँ कि अब मुझे यह पत्र समाप्त कर देना चाहिए।

हृदयसे आपका,
पैनसिलवेनियन

[अंग्रेजीसे]
टाइम्स ऑफ इंडिया, १३–८–१९१९

परिशिष्ट ६

रौलट याचिका

सेवामें
परममाननीय भारत मन्त्री

महामहिम सम्राट्के निम्नलिखित हस्ताक्षरकर्त्ता
भारतीय प्रजाजनोंका विनम्र स्मरणपत्र

नम्रतापूर्वक और सादर इस प्रकार निवेदन करते हैं:

(१) हालमें ब्रिटिश लोकसभा (हाउस ऑफ कामन्स) में एक प्रश्नका उत्तर देते हुए आपकी इस घोषणाको आपके आवेदनकर्त्ताओंने बड़े खेदके साथ सुना कि आप अराजकतापूर्ण और विद्रोह सम्बन्धी अपराधोंके अधिनियमपर जो १९१९ का अधिनियम ११ कहलाता है (सामान्य तौरपर जो रौलट अधिनियमके नामसे प्रसिद्ध है) महामहिमको अस्वीकृति प्रदान करनेकी सलाह नहीं देंगे।

(२) आपके आवेदनकर्त्ता निवेदन करते हैं कि उक्त अधिनियममें ऐसी व्यवस्थाएँ हैं जो महामहिमकी भारतीय प्रजाकी स्वतन्त्रताके अत्यन्त प्रतिकूल हैं; इनमें कुछ ऐसी भी व्यवस्थाएँ हैं जो भारतीय कार्यकारिणीको वस्तुत: ऐसे अनियन्त्रित अधिकार देती हैं जिससे वह अपनी मर्जीसे महामहिमकी भारतीय प्रजाको देशकी सामान्य अदालतोंमें सुनवाईके हकसे वंचित कर सकती हैं; उसमें कुछ ऐसी भी व्यवस्थाएँ हैं जो उक्त अधिनियमके अन्तर्गत मुकदमा चलानेके लिए रखे गये अपराधियोंको उन बहुत-सी सुविधाओंसे वंचित करती हैं जो सभ्य न्याय-प्रणालीने उनकी बेगुनाहीके संरक्षणार्थ अत्यन्त आवश्यक मानी हैं।

(३) आपके आवेदनकर्त्ता आगे निवेदन करते हैं कि उपर्युक्त तथा अन्य ऐसी आपत्तियोंके कारण जो उक्त अधिनियमके सिद्धान्त और उसकी व्यवस्थाओंपर उठाई जा सकती हैं, उसे भारतमें सर्वत्र अस्वीकार किया गया है और इसका विरोध किया गया है और फलस्वरूप एक ऐसा प्रबल और विशाल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है जैसा भारतमें पहले कभी देखा अथवा सुना नहीं गया।

(४) आपके आवेदनकर्त्ता महसूस करते हैं कि यदि उक्त अधिनियम भारतीय विधान संहितामें बना रहा तो वह भारतके जनमतका खुला और जान-बूझकर किया गया विरोध ही होगा और तब भारतमें उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाके लिए किये गये संवैधानिक सुधारोंका कोई महत्त्व और अर्थ नहीं रहेगा।

(५) अतएव आपके आवेदनकर्त्ता निवेदन करते हैं कि उपर्युक्त परिस्थितियोंके अन्तर्गत आप कृपया अपने निर्णयपर पुनर्विचार करेंगे और महामहिमको सलाह देंगे कि वे आपके जरिये उक्त अधिनियमपर अपनी अस्वीकृति व्यक्त करें।

(६) और इस कृपापूर्ण कामके लिए आपके आवेदनकर्त्ता सदैव कर्त्तव्यबद्ध होकर दुआ देंगे।

आपके अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक,

क्रम-संख्या	हस्ताक्षर	निवासस्थान

स्वयंसेवकके हस्ताक्षर

[अंग्रेजीसे]

नवजीवनका परिशिष्ट, १३–११–१९१९

परिशिष्ट ७

हंटर समितिके सचिवका मालवीयजीको पत्र

श्री स्टोक्सने पं० मदनमोहन मालवीयके पत्रका उत्तर देते हुए लिखा है: लॉर्ड हंटरकी समितिका खयाल है कि स्थानीय सरकारके निर्णयपर पुनर्विचार करना उसके क्षेत्रमें नहीं आता। यदि समितिको अपनी जाँचके दौरान ऐसा लगा कि उन लोगोंमें से, जो अब हिरासतमें हैं, किसीकी गवाहीसे दंगोंके कारणों या उनको दबानेके लिए की गई कार्रवाईपर प्रकाश पड़ सकता है तो उसको समितिके सम्मुख बुलाया जायेगा और उस अवस्थामें, समितिको सन्देह नहीं है कि पंजाब सरकार उस व्यक्तिको समितिके सामने उपस्थित करनेमें कोई बाधा नहीं डालेगी। समितिका कहना है: "वास्तवमें माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नरके निजी सचिवके पत्रसे जिसकी एक नकल आपके पत्रके साथ संलग्न है, जान पड़ता है कि इस बारेमें आपको आश्वासन दे दिया गया है और साथ ही यह वचन भी दे दिया गया है कि हिरासतमें रखे गये लोगों और समितिको सौंपी गई जाँचके सम्बन्धमें नियुक्त वकीलके बीच परामर्शकी पूरी सुविधाएँ दी जायेंगी। हंटर समिति भी यही अपेक्षा रखती है कि इस सम्बन्धमें सरकार सब उचित सुविधाएँ देगी। लॉर्ड हंटरने भी पंजाब सरकारको निजी तौरपर सुझाव दिया है कि ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए। लॉर्ड हंटरकी समिति अनुभव करती है कि उसके लिए इससे अधिक करनेका कोई अन्य सुझाव देना उचित नहीं हो सकता। यदि कांग्रेसकी

उप-समिति अब भी यह अनुभव करती है कि वह जाँचमें सहयोग नहीं दे सकती और उसे पूरी जाँचके इस अवसरको छोड़नेके अपने पूर्व निर्णयपर कायम रहना चाहिए तो मेरा निवेदन है कि लॉर्ड हंटरकी समितिको, जो पूरी जाँच करना चाहती है, इस निर्णयसे सहमत होते हुए बड़ा खेद होगा।"

[अंग्रेजीसे]

लीडर, १९-११-१९१९

परिशिष्ट ८

कांग्रेस जाँच समितिका पंजाबके सम्बन्धमें वक्तव्य

लाहौर

नवम्बर १७, १९१९

अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी पंजाब जाँच उप-समितिने निम्नलिखित वक्तव्य जारी किया है:

यह जरूरी है कि जनताको उन घटनाओंका श्रृंखलाबद्ध हवाला मिले जिनके कारण कांग्रेस उप-समितिको लॉर्ड हंटरकी समितिसे अपना सहयोग वापस लेनेका निर्णय करना पड़ा है। स्मरण रहे कि पंजाबकी दु:खद घटनाओंके बाद दस दिनके अन्दर अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी २०-२१ अप्रैलको बम्बईमें बैठक हुई। उस बैठकमें उसने हिंसाके सभी कार्योंकी निन्दा की; वहाँ सरकारसे यह भी आग्रह किया कि वह दमन नीति तुरन्त खत्म करके स्थितिपर सहानुभूतिपूर्वक और समझौतेकी दृष्टिसे विचार करे। कांग्रेस समिति द्वारा पास किये गये एक प्रस्तावके अनुसार पिछली २८ अप्रैलको एक आवेदनपत्र प्रधान मन्त्री तथा भारत मन्त्रीको भेजा गया जिसमें समितिने महामहिमकी सरकारसे अत्यन्त आग्रहपूर्वक अनुरोध किया था कि वह हस्तक्षेप करके दमनके तरीकोंको समाप्त करे तथा असन्तोषके कारणों और आम उपद्रवोंके दमन करनेमें अधिकारियों द्वारा की गई ज्यादतियोंके आरोपोंकी जाँचके लिए अधिकारियों और गैर-सरकारी व्यक्तियोंका एक आयोग नियुक्त करनेका आदेश दे।

मईके अन्तिम सप्ताहमें श्री मॉण्टेग्युने लोक सभामें घोषणा की कि महामहिमकी सरकार और वाइसरायने उपर्युक्त जाँचकी आवश्यकताको स्वीकार किया है। इसके तुरन्त बाद, अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी एक दूसरी बैठक पिछली ८ जूनको इलाहाबादमें हुई जिसमें उस समयकी स्थितिपर विचार किया गया। उसने अन्य प्रस्तावोंके साथ निम्नलिखित प्रस्ताव भी पास किया। समितिको यह जानकर सन्तोष है कि वाइसराय और श्री मॉण्टेग्युने अशांतिके कारणों और अधिकारियों द्वारा किये गये अत्यधिक और गैर-कानूनी बल-प्रयोगके विरुद्ध शिकायतोंकी जाँच करना, इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए, स्वीकार किया है कि भारत सरकार और पंजाब सरकारकी नीतिका

इस अशान्ति और शिकायतोंसे अटूट सम्बन्ध है और इस मामलेकी अवश्य जाँच-पड़ताल होनी चाहिए। यह समिति महामहिमकी सरकारसे गम्भीरतापूर्वक अनुरोध करती है कि वह एक संसदीय-समिति या ऐसे व्यक्तियोंका आयोग बनाये जिनका उपर्युक्त नीतिके बनाने, उसके बारेमें स्वीकृति देने या उसपर अमल करनेसे कुछ भी सम्बन्ध न हो। समिति अन्य मामलोंके अलावा निम्नलिखित बातोंको भी जाँचके क्षेत्रमें शामिल करनेका आग्रह करती है: (१) हालके उपद्रवोंके विरुद्ध की जानेवाली कार्रवाईके सम्बन्धमें भारत सरकार और पंजाब सरकारकी नीति; (२) पंजाबमें सर माइकेल ओ'डायरका कार्यकाल जिसमें भारतीय सेना और श्रमदलमें भरती करनेके तरीकोंका, युद्धकोष जमा करनेका, फौजी कानूनके अमलका और अधिकारियों द्वारा अतिशय तथा गैर-कानूनी बलप्रयोगका विशेष ध्यान रखा जाये; (३) दिल्ली तथा अन्य स्थानोंमें होनेवाली हालकी घटनाएँ। समिति यह भी आग्रह करती है कि यह बात न्याय और किसी भी अच्छी सरकारके हितके लिए आवश्यक है कि जाँच शीघ्र ही शुरू हो। उसी बैठकमें समितिने एक उप-समिति नियुक्त की। (क) उस उप-समितिके निम्नलिखित कार्य निश्चित किये गये; जैसा भी वह निश्चय करे उसके अनुसार पंजाब और अन्य स्थानोंमें घटी घटनाओं-की एक एजेंसी द्वारा जाँचका प्रबन्ध करना, (ख) इस सिलसिलेमें भारत या इंग्लैंडमें कानून या अन्य प्रकारकी जरूरी कार्रवाई करना और (ग) इस कामके लिए जनतासे चन्दा करके कोष संग्रह करना। उप-समितिमें शामिल होनेवाले लोगोंके नाम नीचे दिये जाते है: पण्डित मदनमोहन मालवीय, पदेन अध्यक्ष; सर रासबिहारी घोष, पंडित मोतीलाल नेहरू, सैयद हसन इमाम, श्री बी० चक्रवर्ती, श्री चित्तरंजन दास, श्री कस्तूरी रंगा आयंगार, श्री उमर सोबानी और पंडित गोरखनाथ मिश्र, पदेन सचिव। इन्हें अन्य लोगोंको सदस्य विनियुक्त करनेका अधिकार होगा। उप-समितिने १६ अक्तू-बर, १९१९ को अपनी बैठकमें निम्नलिखित सदस्योंको विनियुक्त किया — श्री गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री गणपत राय, शेख उमर बख्श, बख्शी टेकचन्द, श्री गोकुलचन्द नारंग, श्री संतानम्, बदरुल इस्लाम अली खाँ और लाला गिरधारीलाल।

फौजी कानून हटनेके तुरन्त बाद हम लोग जिन्होंने नीचे हस्ताक्षर किये हैं पंजाब गये और विगत २५ जूनको अपनी जाँच-पड़ताल शुरू की। कहनेकी जरूरत नहीं कि हर कदमपर हमें उन जन-नेताओंकी मददकी जरूरत महसूस हुई जो अपने-अपने नगरों-के जन-जीवनमें प्रमुख स्थान रखते थे और जिनमें से किसीने भी उपद्रवोंके बाद हुई महत्त्वपूर्ण घटनाओंमें भाग नहीं लिया था। हमने पाया कि बहुत-से लोग जो यह जानते थे कि क्या हुआ, पुलिसके कल्पित या वास्तविक भयसे गवाही देनेके लिए आगे नहीं आते थे। जब हम अपनी जाँचके काममें लगे हुए थे, हंटर समितिकी नियुक्ति-की घोषणा हुई और हमने जाँचके लिए गवाही इकट्ठा करनेके अपने प्रयत्न दूने कर दिये। परन्तु जैसे-जैसे हम आगे बढ़े, हमें अधिकाधिक महसूस होने लगा कि कुछ बहुमूल्य गवाही एकत्र करनेके सम्बन्धमें मार्ग-प्रदर्शन तथा सहायताके लिए पंजाबके मुख्य नेताओंकी उपस्थिति जरूरी है, ताकि वे उन लोगोंको जो अब भी डरके मारे

आगे नहीं आते, हिम्मत बँधायें और इसका लाभ बतायें। यह भी बतायें कि सरकार चाहती है कि जाँच निष्पक्ष हो, इसलिए वे चाहते हैं कि हंटर समितिको सच्ची बातें पूरी तरह बता दी जायें।

हमने यह भी इच्छा व्यक्त की थी कि समितिको मार्शल लॉ आयोग और 'समरी' अदालतों द्वारा दी गई सजाओंपर पुनर्विचारका अधिकार दिया जाये; क्योंकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस आयोग एवं इन अदालतोंके फैसलोंमें ऐसा अन्याय हुआ है जिसका बहुत दिनोंतक और स्थायी प्रभाव भी बना रह सकता है। किन्तु भारत सरकारने हंटर समितिका अधिकार क्षेत्र सीमित कर दिया और उक्त सजाओंपर पुनर्विचारके लिए विशेष न्यायाधीशोंकी नियुक्ति की। नियुक्त किये गये दोनों न्यायाधीश पंजाबके थे। गलत हो या सही, जनताने यह कार्य पंजाबके न्यायाधीशोंको सौंपनेपर आपत्ति की। (हम समझते हैं कि यह सही ज्यादा है, गलत कम)। इसलिए ऐसा न्यायाधिकरण बनाया जाना जरूरी था जिसमें जनताको विश्वास हो और इसलिए कमसे-कम एक न्यायाधीश पंजाबके बाहरका होना चाहिए। न्यायाधिकरणको यह अधिकार भी दिया जाना चाहिए कि जहाँ लेखा अपर्याप्त पाया जाये या जहाँ प्रारम्भिक सुनवाईमें कामकी गवाही दर्ज न की गई हो, वहाँ नये सिरेसे गवाही ली जा सके। हमें थोड़ी-सी यह आशंका भी थी कि हमारे वकीलोंको शायद समितिके सामने जानेकी अनुमति न मिले और यदि मिले भी तो शायद उन्हें जिरह करनेका हक न दिया जाये। हम यहाँ थोड़ेमें कह दें कि हमारी इच्छा जल्दी जाँच करवाकर कटुतासे बचनेकी थी। इसीलिए हमने अपनी यह महत्त्वपूर्ण आपत्ति वापस ले ली कि एक ऐसा शाही आयोग जाँच करे जिसकी नियुक्ति स्वतन्त्र रूपसे भारत सरकार द्वारा की गई हो।

अक्तूबरके आरम्भमें हमने लिखकर भारत सरकारको यह सूचित किया था कि हमारी उप-समितिने हंटर समितिके समक्ष लोगोंका मामला रखनेके लिए वकीलोंकी व्यवस्था की है। हमने यह भी जानना चाहा कि समितिके जाँचके मुद्दे क्या होंगे और वह जाँचकी कौन-सी पद्धति अपनायेगी। भारत सरकारने हमसे कार्यपद्धतिकी जानकारीके लिए हंटर समितिसे पूछताछ करनेके लिए कहा। इसलिए हमने लॉर्ड हंटरकी समितिको अपने वकीलके जरिये बयान देने और दूसरे पक्षके गवाहोंसे जिरह करनेकी अनुमतिके लिए लिखा।

उसी पत्रमें हमने हंटर समितिको सूचित किया कि पंजाबकी हालकी घटनाओंकी सही और निष्पक्ष जाँचके लिए हम यह भी उतना ही जरूरी समझते हैं कि जेलकी सजा भुगतनेवाले पंजाबके नेताओंको जाँचकी अवधितक पैरोल या जमानतपर रिहा कर देना चाहिए। फिर भी हमने सोचा कि इस मामलेके उचित प्राधिकारी पंजाब सरकार और उपनिवेश मन्त्री हैं; अतः उन्हें ही इस बारेमें लिखा जाये। इस बातको दृष्टिमें रखते हुए बहुत दिन पहले विगत १२ सितम्बरको भारतीय विधान परिषद्की एक बैठकमें हममें से एकने भारत सरकार और पंजाब सरकारसे अनुरोध किया था कि वह व्यक्तिगत जमानत या धन या दोनों तरहकी जमानतोंपर, जिसे भी पंजाबके

माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नर पर्याप्त समझें, पंजाबके नेताओंको रिहा कर दें ताकि वे समिति-के सामने बयान दे सकें और ठीक तरहसे लोगोंका पक्ष रखवा सकें। गत मासकी २७ तारीखको भारत मन्त्रीको एक तार भेजा गया जिसमें प्रार्थना की गई थी कि जब लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने सबूत देनेका समय आये तब वकीलको अदालतमें जानेका अधिकार दिया जाये और जाँचके लिए पंजाबके नेताओंको रिहा किया जाये। उपर्युक्त तीनों मुद्दोंके बारेमें पंजाब सरकारको भी लिखा गया था।

काफी समय तक पत्र-व्यवहार हुआ और वकीलको अदालतमें जाने और जिरह करनेका अधिकार दे दिया गया और कांग्रेस उप-समितिको भी स्वीकृति दे दी गई। पटना उच्च न्यायालयके न्यायाधीश श्री मल्लिकको दो पुनर्विचारक न्यायाधीशोंमें से एक नियुक्त किया गया। हमारे पास ऐसा विश्वास करनेका कारण है कि पूर्वोल्लिखित परिस्थितियोंमें न्यायाधीशोंको नये सिरेसे गवाही दर्ज करनेका हक भी दिया गया। परन्तु उतनी ही महत्त्वपूर्ण, तीसरी माँग पूरी नहीं की गई। पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नरने प्रमुख नेताओंको समुचित जमानतपर रिहा कर देनेकी हमारी प्रार्थना यह कहकर अस्वीकार कर दी: "इस सुझावके सम्बन्धमें कि मामलेको सन्तोषजनक ढंगसे पेश करनेके लिए उपद्रवोंके लिए सजा पाये हुए कुछ कैदी जेलसे रिहा कर दिये जायें, मेरा कहना है कि उसे मानना सम्भव नहीं होगा। फिर भी यदि समिति किसी कैदीका बयान सुनना चाहेगी तो इसकी उचित व्यवस्था कर दी जायेगी और यदि समिति यह आवश्यक समझे कि जाँचमें लगे वकीलको जाँचके सिलसिलेमें सलाह-मशविरेके लिए कैदियोंसे भेंट करनी चाहिए तो इसके लिए भी उसे उचित सुविधाएँ दी जायेंगी।" हमने इस उत्तरको अत्यन्त असन्तोषजनक समझा। हम इस गलतीको ठीक करवानेके लिए लॉर्ड हंटरकी समितिके पास गये। हम सब लोग लॉर्ड महोदयकी समितिके प्रस्तावित कार्यके लिए दक्षिण आफ्रिकाकी १९१३ की सॉलोमन समितिका पूर्व-दृष्टान्त दुहरानेवाले थे, किन्तु हमारा सुझाव अस्वीकार कर दिया गया। उसके बाद श्री गांधीने लेफ्टिनेंट गवर्नरसे भेंट की। माननीय लेफ्टिनेंट गवर्नर प्रमुख नेताओंको उस दिन या उन दिनों जब कि उन्हें लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने गवाही देनी हो, पैरोलपर रिहाईकी अनुमति देनेके लिए तैयार थे और वे यह भी चाहते थे कि वकील जेलमें उन सभी कैदियोंसे मिलें जिन्हें समितिके सामने गवाही देनी थी। किन्तु यह स्पष्ट था कि पूर्व स्थितिसे आगे जाकर माननीय लॉर्ड महोदय द्वारा नेताओंकी रिहाईकी माँग तो सिद्धान्त रूपसे स्वीकार की जा रही थी किन्तु उस माँगका महत्त्वपूर्ण और सबसे व्यावहारिक भाग अस्वीकार कर दिया गया था।

हम प्रमुख नेताओंको रिहा करवाकर और उन्हें समितिके कमरेमें उपस्थित करवाकर अपने वकीलके लिए गवाहोंसे जिरह करनेमें मूल्यवान सहायता प्राप्त करना चाहते थे। जो लोग कानूनके बारेमें थोड़ा-सा भी जानते हैं वे इस कथनके सारको आसानीसे समझ जायेंगे कि मुकदमेकी सुनवाईके समय सम्बन्धित व्यक्तिकी उपस्थिति, यदि वह समझदार हो तो, बहुत सहायक होती है। अभियुक्तके अभावमें कोई मुकदमा नहीं हो सकता। लॉर्ड हंटरकी समिति एक तरहसे इन नेताओंपर, सम्राट्के विरुद्ध

लड़ाई छेड़नेकी दृष्टिसे राजनीतिक षड्यन्त्र करनेवाले लोगोंके रूपमें अभियोग चला रही है। उन्हें सरकारने तथाकथित विद्रोहके लिए जिम्मेदार ठहराया है। हमारा विचार है कि जबतक कमसे-कम प्रमुख कैदी समितिके सामने उपस्थित नहीं होते तब-तक वह उस मुकदमेमें जो उसके सामने है, न्याय नहीं कर सकती। यहाँपर यह उल्लेख कर दिया जाये कि हमने दिल्लीमें कहा था, लॉर्ड हंटरकी समितिको एक सरकारी गवाहोंकी सूची और उनके छपे हुए बयान दे दिये जायें, ताकि उप-समितिका वकील गवाहोंके साथ बारीकीसे जिरह कर सके, किन्तु यह माँग स्वीकार नहीं की गई। इस तरह यह सम्भव नहीं रहा कि हमारा वकील जेलमें पहले ही कैदियोंसे मिलकर इनके निर्देश प्राप्त कर ले। लॉर्ड हंटरके उपर्युक्त पत्रका मेरे कुछ साथियोंने जो अर्थ समझा, उन्होंने उसके आधारपर यह सोचा कि जो कैदी जाँचसे सम्बन्धित घटनाओंके साथ मुख्य रूपसे सम्बद्ध थे, उन्हें कैदियोंकी तरह हिरासतमें समितिके सामने आनेकी अनुमति दी जायेगी और तब वे गवाहोंसे जिरह करते समय वकीलको मदद दे सकेंगे; किन्तु हम बिना तसदीक़ किये किसी बातको पक्का नहीं मान लेना चाहते थे; इसलिए श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने कृपापूर्वक लेफ्टिनेंट गवर्नरके पास जाकर मुद्देको निश्चित रूपसे साफ करवानेकी जिम्मेवारी ली। उन्होंने लौटकर हमें बताया कि माननीय महोदय कैदियों-को गवाहके अलावा, अन्य रूपमें समितिके सामने उपस्थित नहीं होने देंगे और वह भी केवल उस दिन या उन दिनों जब कि वास्तवमें उस कामके लिए उनकी जरूरत हो। तब कांग्रेस उप-समितिके सामने इसके सिवा और कोई चारा नहीं रहा कि वह लॉर्ड हंटरकी समितिकी कार्रवाइयोंमें भाग न लेनेके अपने घोषणा-पत्रपर स्थिर रहे।

कांग्रेस उप-समिति अत्यधिक व्यग्रताके साथ सोच-विचार करनेके बाद इस निर्णय-पर पहुँची है। उसने इसके जो-जो परिणाम हो सकते हैं सभीपर विचार किया और सोचा कि यदि उसे अपने प्रति किये गये विश्वासको निभाना है, यदि उसे राष्ट्रीय सम्मान तथा पंजाबके महान् नेताओंके सम्मानकी रक्षा करनी है, यदि वह सचाई और निर्दोषताको स्थापित देखना चाहती है तो वह एक ऐसी जाँचसे वास्ता नहीं रख सकती जिसमें जनताके पक्षको इस प्रकार भारी अड़चनोंका सामना करना पड़ता हो। स्मरण रहे कि अधिकारी भी उसी प्रकार अभियुक्त हैं जिस प्रकार नेतागण। परन्तु सरकारी अधिकारी न केवल लॉर्ड हंटरकी समितिके सामने उपस्थित होनेके लिए स्वतन्त्र हैं वरन् सरकारी वकीलको निर्देश भी दे सकते हैं। कांग्रेस समितिने लॉर्ड हंटरको जो पत्र लिखा है उसके शब्दोंमें कहें तो उससे एक ऐसे काममें हाथ बँटानेकी आशा नहीं की जा सकती जिसके अन्तर्गत सरकारी अधिकारी, जिनके कामोंपर विचार हो रहा है, समितिके सामने आनेके लिए स्वतन्त्र हों और जनताके प्रतिनिधियोंको हिरासती कैदियोंके रूपमें भी सामने आनेकी अनुमति नहीं दी गई है जब कि उनके कार्योंपर भी उसी प्रकार विचार हो रहा है। अब हम यह सूचित करना चाहते हैं कि हमने कौन-सी रचनात्मक प्रणाली अपनानेका विचार किया है। हम इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि गवाही इकट्ठा करनेका अपना काम हम निश्चित रूपसे जारी रखें। हमारे पास पहलेसे ही अत्यन्त मूल्यवान गवाहियाँ हैं। यह आवश्यक है कि उनमें वृद्धि की

जाये और उनकी जाँच की जाये। इसलिए कांग्रेस समितिने श्री गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री चितरंजन दास, बड़ौदा उच्च न्यायालयके भूतपूर्व न्यायाधीश श्री अब्बास तैयबजी और श्री फजलुल हकको आयुक्तोंके रूपमें नियुक्त किया है; बैरिस्टर श्री सन्तानम् कार्य-मन्त्री होंगे। समिति आशा करती है कि वह जनताके सामने शीघ्र ही घटनाओंका पूरा-पूरा और सही विवरण रख सकेगी। नीचे प्रथम हस्ताक्षर करनेवाले व्यक्तिने किसी भी प्रकार गलतफहमीसे बचनेके लिए जान-बूझकर स्वयं आयुक्त बननेसे अपनेको रोका है। वह सादर निवेदन करता है कि समितिका अध्यक्ष होनेके नाते उसे समितिके समग्र कामकी देखभाल करनेकी स्वतन्त्रता तो रहेगी ही।

मदनमोहन मालवीय,
अध्यक्ष
मोतीलाल नेहरू,
उपाध्यक्ष

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, १९-११-१९१९

परिशिष्ट ९

ई० कैंडलरका पत्र

लाहौर
दिसम्बर १२, १९१९

प्रिय श्री गांधी,

लाहौर कॉलेजके एक हिन्दू प्रोफेसरसे जो मेरे बहुत पुराने मित्र हैं, कल बातचीत करते समय मुझे मालूम हुआ कि (२९ नवम्बर, १९१९के) 'हक'में मेरा जो लेख प्रकाशित हुआ है वह भारतीय शिष्टाचार और परम्पराको देखते हुए जान-बूझकर चोट पहुँचानेवाला प्रतीत हो सकता है, उसमें मैंने आपकी बेटीके विवाहकी सम्भावना किसी मुसलमानके साथ हो सकनेकी बात की है। वह उन्हें कुरुचिपूर्ण लगा। मैं नहीं जानता आपके बाल-बच्चे हैं या नहीं; किन्तु आप शायद यह मान लेंगे कि यह व्यक्तिगत मुद्देका तो प्रश्न था ही नहीं और यदि रहा भी हो तो केवल आपके मन्तव्यकी हद-तक ही था। जब मैंने यह लेख लिखा था, तब मुझे इसका कोई आभास नहीं था कि किसी अत्यन्त रूढ़िवादी व्यक्तिके सिवा कोई और भी बेटी या पत्नीके उल्लेखको अभद्र और चोट पहुँचानेवाला मानेगा। यदि उस अंशसे आपका कुछ भी व्यक्तिगत अपमान हुआ हो तो मैं विनती करता हूँ कि आप मुझे क्षमा कर दें। आप मेरे इस कथनपर विश्वास करें कि मुझे जितना दुःख यह जानकर होता है कि मैंने न चाहते हुए भी किसीको चोट पहुँचाई है उतना और किसी बातसे नहीं होगा; और खास करके 'हक'में जिसे

मैं हर तरहके अनौचित्य या कुरुचिसे अछूता रखना चाहता हूँ। मुझे आपको यह बतानेकी जरूरत नहीं कि लेखका राजनीतिक उद्देश्य इन प्रश्नोंको साफ-साफ आपके सामने रखना था। क्या आप ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन सरकारको इस खयालसे परेशानीमें डालनेके लिए चला रहे हैं कि तुर्कोंके लिए शर्तोंमें सुधार हो? क्या तुर्कोंके दावे सचमुचमें आपको इतने प्रिय हैं कि आप उनके लिए अपने देशकी शान्ति भंग करेंगे और सो भी ग्लैडस्टन, मॉर्ले, ब्राइस-जैसे व्यक्तियोंके निर्णयके रहते हुए? मेरा विश्वास है कि इन व्यक्तियोंकी रायकी आप कद्र करते हैं और इनके तटस्थ होनेमें आपको सन्देह नहीं है। इन्होंने इस आन्दोलनसे बहुत पहले तुर्कों द्वारा अधीन जातियोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारकी यह कहकर निन्दा की थी कि यह आधुनिक सभ्यतासे बिलकुल बेमेल है। उन्होंने अपने जीवनका बड़ा भाग उसका प्रतिकार करनेमें लगा दिया था। यदि आप चाहें तो इस पत्रका निजी या सार्वजनिक रूपसे, जैसा उचित समझें, उपयोग कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,
एडमंड कैंडलर

[अंग्रेजीसे]
न्यू इंडिया, १८–१२–१९१९

परिशिष्ट १०

जनरल स्मट्सका शिष्टमण्डलको उत्तर

मन्त्रीने अपने उत्तरमें कहा कि वे संघमें सभीके लिए उचित व्यवहार और न्याय चाहते हैं। भारतीय समाजको भी समझना चाहिए कि भारतीय समाजकी प्रगतिको कम करनेके लिए एक आन्दोलन बड़ी दृढ़ताके साथ चलाया जा रहा है और उसे प्रबल समर्थन प्राप्त है। यह सलाह देना समाजके हितमें नहीं है कि पिछले मामलोंको कुरेदकर उन्हें प्रस्तावित आयोगकी जाँचके मुद्दोंमें शामिल कर दिया जाये। इसलिए बेहतर होगा कि केवल व्यापारके मामलेपर एकबारगी हमेशाके लिए पूरी तरह विचार किया जाये। चूँकि भारतीय अचल सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिए उत्सुक नहीं हैं, इसलिए उस मामलेको अलग कर देना चाहिए। उन्होंने यह भी संकेत दिया कि भारतीय समाजके हितोंके संरक्षण और उसकी मददके लिए सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन आ रहे हैं। इसलिए सर बेंजामिन और आयोग दोनोंको यथासम्भव मदद देना स्वयं भारतीयोंके हितमें होगा। उन्होंने यह कहकर अपना कथन समाप्त किया कि वे भारतीय सरकारके साथ और जो लोग संघमें बस गये हैं उनके साथ बहुत ही अच्छे सम्बन्ध रखनेके लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। वे अपनी सरकारके अधीन यह प्रयत्न करेंगे कि सबके साथ न्यायोचित व्यवहार हो। उन्हें किसी अन्य शिष्टमण्डलसे मिलनेकी जल्दी थी; इस कारण वे जितना समय शिष्टमण्डलको देना चाहते थे उतना नहीं दे सके; तथापि

वे तथ्योंको नहीं भूलेंगे। आयोगके कारण शायद दो वर्षोंतक दूसरा आन्दोलन शुरू नहीं होगा, और हमें सुविधा होगी कि हम देखें कि क्या किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१२-१९१९

परिशिष्ट ११

खिलाफत शिष्टमण्डलका वाइसरायको ज्ञापन[१]

[दिल्ली
जनवरी १९, १९२०]

उस अल्लाहके नामके साथ जो रहमान और रहीम है

भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल परमश्रेष्ठ, परममाननीय बैरन चैम्सफोर्ड पी० सी०, जी० एम० एस० आई०, जी० सी० एम० जी०, जी० एम० आई० ई० को समर्पित।

परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन है कि:

हाल ही में अमृतसरमें आयोजित महत्त्वपूर्ण खिलाफत सम्मेलन द्वारा अधिकृत खिलाफत शिष्टमण्डलके हम सदस्यगण एक बहुत अहम मामलेमें आपकी सरकारकी सहानुभूति और अधिकसे-अधिक सहायता प्राप्त करनेकी दृष्टिसे सेवामें उपस्थित हुए हैं। यकीन है कि आपकी सहानुभूति और सहायतासे हम वंचित नहीं रहेंगे। खिलाफत सम्मेलनने कई बार यह प्रस्तावित किया है कि एक शिष्टमण्डल जल्दी ही इंग्लैंड भेजा जाये और वह महामहिम सम्राट् तथा उनके मंत्रियोंके सम्मुख जिन कर्त्तव्योंके पालनके लिए प्रत्येक मुसलमान धर्मकी रूसे बाध्य है उनके तथा खिलाफत और उससे सम्बन्धित सवालोंपर भारतके मुसलमानोंकी संयुक्त इच्छाओंके बारेमें एक स्पष्ट और विस्तृत वक्तव्य रखे, जैसे अरब प्रायद्वीपके सभी हिस्सोंपर मुस्लिम नियन्त्रण, धार्मिक स्थानोंपर खलीफाके अधिकार और ऑटोमन (तुर्क) साम्राज्यकी अखंडतासे सम्बन्धित सवाल। मुसलमानोंकी यह इच्छा किसी भी समय स्वाभाविक और सराहनीय मानी जाती, लेकिन आज जो गम्भीर स्थिति है वह तेजीसे एक खतरेका ही रूप लेती जा रही है; यह देखते हुए जरूरी हो गया है कि इस इच्छाको तत्काल व्यक्त किया जाये

१. इस ज्ञापनपर, जिसे डॉ० एम० ए० अंसारीने पढ़ा था, हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंमें निम्नलिखित महानुभाव भी थे: गांधीजी, हकीम अजमलखाँ, शौकत अलीखाँ, मुहम्मद अलीखाँ, मौलाना अब्दुल बारी, मौ० अबुल कलाम आजाद, मौ० हसरत मोहानी, सैयद जहीर अहमद, अ० भा० मुस्लिम लीगके मन्त्री, डॉ० सैफुद्दीन किचलू, पण्डित रामभजदत्त चौधरी, स्वामी श्रद्धानन्द, पंडित मदनमोहन मालवीय, पण्डित मोतीलाल नेहरू, सैयद हसन इमाम, मुहम्मद अली जिन्ना और श्री फजलुल हक।

और उसपर जोर दिया जाये। इसी कारण हमारा यह प्रातिनिधिक शिष्टमण्डल आदर-पूर्वक आपकी अनुमतिसे इसे आपके सम्मुख व्यक्त करनेके लिए आनेपर बाध्य हुआ है। एक लम्बे युद्धके बाद, जिसमें दुनियाके प्रायः सभी सभ्य देश इस या उस ओरसे लड़े और जिसमें विजय प्राप्त करनेके लिए उन्होंने अपना खून बहाने और धन खर्च करनेमें पड़ोसियोंसे होड़ लगा दी थी और जिसकी भयंकरता और विभीषिका अभूतपूर्व थी, उसका जिन लोगोंपर अप्रत्यक्षरूपसे ही सही लेकिन फिर भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा; उनका उसकी समाप्तिपर लड़ाईकी भारी थकान महसूस करना और मानवोंके महत्त्वपूर्ण मसलोंको तलवारसे हल करनेके पुराने तरीकेसे अत्यधिक घृणा करना स्वाभाविक है। सारी दुनियाके द्वारा एक स्वरसे जल्दीसे-जल्दी स्थायी शान्तिकी स्थापनाकी माँग भी उतनी ही स्वाभाविक है। लेकिन युद्ध बन्द हुए एक वर्षसे ज्यादा हो गया है और जर्मनीको भी शान्ति-सन्धिपर हस्ताक्षर किये ६ महीनेसे ज्यादा हो गये, फिर भी अभी शान्ति मानव-जातिसे कोसों दूर है। हमारे महाद्वीप, एशियाकी यह आशंका भी निराधार नहीं है कि इसके परिणामस्वरूप ऐसी घटनाएँ घटेंगी जिनके बारेमें अभी कोई भी अन्दाज लगाना असम्भव है। लगता है कि दुनिया फिर किसी गम्भीर संकटकी ओर अग्रसर हो रही है। यद्यपि किसी हदतक निश्चित रूपसे, यह बताना सम्भव नहीं है कि जो तूफान साफ उठता दिखाई दे रहा है, उसकी लपेटमें कौन-कौनसे देश और कौन-कौनसी जातियाँ आयेंगी, लेकिन यह कहनेके लिए किसी पैनी दृष्टिकी जरूरत नहीं है कि जब यह तूफान उठेगा तो इस्लामी जगत् उससे अछूता नहीं बचेगा। किसीके प्रति असम्मानकी भावना रखे बिना हम यह कहना चाहते हैं कि इस अवसरपर इस संयुक्त साम्राज्यके केन्द्रीय अधिकारियोंको इस बातका पता रहना बहुत जरूरी है कि विश्व-भरमें फैले हुए इस साम्राज्यके दूरस्थ भागोंमें क्या-कुछ हो रहा है। हम साम्राज्यके राजनीतिज्ञोंसे कमसे-कम यह आशा तो रख ही सकते हैं कि अन्तिम समझौता करते समय वे ७ करोड़ मुसलमानोंके अत्यन्त अनिवार्य धार्मिक कर्त्तव्यों और उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भावनाओं तथा उनके २० करोड़ अन्य देशवासियोंकी उनके प्रति उतनी ही गहरी सहानुभूतिको ध्यानमें रखेंगे। किसी-न-किसी कारणसे लड़ाईके दिनोंमें ये भावनाएँ और सहानुभूति काफी जोरदार ढंगसे व्यक्त नहीं की जा सकीं। उन धार्मिक कर्त्तव्योंकी, जिनका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं, अभिव्यक्ति भी उतनी स्पष्टताके साथ जोर देकर नहीं की गई जो एक धर्मके अनुयायियों द्वारा दूसरे विदेशी धर्मको माननेवाले शासकोंको अपना धार्मिक सिद्धान्त समझा सकनेके लिए अनिवार्य है। और इस बातका हमें इतना अफसोस है कि जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भारतीय मुसलमान जिन कारणोंसे विचलित हुए हैं उनपर लम्बी चर्चा करनेका न तो यह कोई समय है और न स्थान ही। यह समय और स्थान उन सिद्धान्तोंकी व्याख्या करनेके लिए भी उपयुक्त नहीं है जिन्हें मुसलमान अपनी मुक्तिके लिए अनिवार्य मानते हैं। यहाँ यह कहना काफी होगा कि एक वर्षसे अधिक समय पूर्व जब युद्ध-विराम हुआ था तबसे अबतक उन्होंने अपने धर्मके उन मूलभूत सिद्धान्तोंकी व्याख्या

करनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी है। वे इस तथ्यसे भी, जो दिन-प्रतिदिन साफ होता जा रहा है, अनभिज्ञ नहीं हैं कि आपकी सरकार, विभिन्न स्थानीय सरकारें और अवकाश ग्रहण करनेसे पूर्व भारतमें जिम्मेदार पदोंपर रहे हुए अंग्रेज अधिकारी धीरे-धीरे यह समझ गये हैं और दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक समझते जाते हैं कि टर्कीके खलीफाके साथ किये जानेवाले समझौतेमें भारतके मुसलमानों और उनके साथियोंकी गहरी दिलचस्पी है। हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि साथ ही श्रीमान्‌की सरकार और परममाननीय विदेश मंत्रीने भारतमें शान्ति और सुशासन तथा सीमाओंपर शांति बनाये रखनेकी अपनी जिम्मेदारीको अनुभव करते हुए, ब्रिटिश सरकारसे इस बारेमें प्रार्थना की है। लेकिन ब्रिटिश सरकार स्थानकी दूरी और राजनीतिक एवं धार्मिक वातावरणकी दृष्टिसे हमसे इतनी अधिक विलग है कि प्रत्यक्षतः हमारी आवाज या यहाँकी सरकारकी प्रार्थनाका ब्रिटिश सरकारके मन्त्रियोंके मत, दृष्टिकोण और पूर्वनिर्मित विचारोंपर कोई खास असर नहीं पड़ा। यदि इस बातको सिद्ध करनेके लिए प्रमाणोंकी जरूरत हो तो मन्त्रियोंके कुछ वक्तव्योंका हवाला दिया जा सकता है। वक्तव्योंसे लगता है कि वे विश्वहित और महत्त्वके मामलोंका निबटारा करनेकी जिद कुछ इस तरह करते हैं मानो यह मामला केवल या मुख्यतः महामहिम सम्राट्‌के ब्रिटेनमें जन्मे और ईसाई धर्मके माननेवाले एक छोटेसे प्रजावर्गसे ही ताल्लुक रखता हो। शेष प्रजाजनोंसे वे यह अपेक्षा रखते जान पड़ते हैं कि वे उनके आदेशोंके आगे जो संकुचित हैं और साम्राज्य-हितकी नीतिसे बहुत दूर हैं, स्वेच्छासे झुकें भले ही नहीं, चुपचाप बरदाश्त तो कर ही लेंगे। क्या हमें यह कहनेकी जरूरत है कि जनताके एक छोटेसे प्रजा-वर्ग और एक धर्म-विशेषको ही ध्यानमें रखकर किए जानेवाले समझौतेसे जो स्थिति उत्पन्न होगी उसके बारेमें लगाया गया अनुमान बिलकुल गलत और घातक सिद्ध होगा। यद्यपि हमें इस बातकी गम्भीर आशंका है कि इस अनुमानके खतरनाक परिणाम निकलेंगे और यद्यपि हम उन्हें समय रहते रोकनेके लिए और भी अधिक चिन्तित हैं, तथापि हम इस निष्कर्षपर पहुँचनेके लिए मजबूर हुए हैं कि साम्राज्यके अधिकारियोंको उन खतरोंके विरुद्ध एक सामयिक चेतावनी देनेकी आखिरी कोशिश अवश्य की जानी चाहिए, जो हमें साफ-साफ दिखाई पड़ते हैं। साथ ही उनसे यह विनम्र प्रार्थना भी करनी चाहिए कि वे ऐसे किसी समझौतेके दुष्परिणामोंको, जिसे दुनियाके मुसलमानोंपर उनके धर्मके स्पष्ट निर्देशोंके विपरीत और मानवजातिके इतने बड़े भागकी संयुक्त इच्छाके विरुद्ध थोपनेका प्रयास किया जा रहा है, घटित न होने दें। ऐसे गम्भीर मामलोंके बारेमें जल-स्थलके मार्गसे सात हजार मीलकी दूरीपर स्थित देशके साथ तारोंके जरिए विचार-विनिमय करनेकी स्वाभाविक कठिनाई तथा अपने हालके अनुभवके कारण विवश होकर हमने निश्चय किया है कि हम आपकी सहायतासे अपना एक शिष्टमण्डल जल्दीसे-जल्दी इंग्लैंड ले जायें और महामहिम सम्राट् और उनके मन्त्रियोंके सामने अपनी यह नम्र किन्तु स्पष्ट प्रार्थना स्वयं रखें और चूँकि हमें बार-बार यह बात याद रखनेके लिए कहा जाता है कि मित्र राष्ट्रों और साथी राष्ट्रोंके बीच ब्रिटेनकी स्थिति चाहे जैसी हो, वह ऐसे किसी समझौतेकी व्यवस्था

करनेमें किसी खयालसे उनके हितों और उनकी इच्छाओंका त्याग न करेगा; इसलिए हम विश्वास करते हैं कि हमें मित्र-राष्ट्रों और साथी राष्ट्रों और उनकी सरकारोंको यह समझानेका मौका दिया जायेगा कि मुसलमानोंके कर्त्तव्य क्या हैं, कितने अनिवार्य हैं और मुसलमानोंकी आकांक्षाओंका सही रूप और क्षेत्र क्या है। संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपतिने भावी शान्ति सन्धिकी जो स्पष्ट शर्तें रखी थीं और जिनके आधार-पर टर्कीके खलीफाने युद्ध-विराम समझौता किया था, उन्हें तथा ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री द्वारा कुस्तुनतुनियाँ, थ्रेस और तुर्कोंकी मातृभूमिके सम्बन्धमें किये गए स्पष्ट वायदोंको यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं है। हम आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि ब्रिटेन, उसके मित्र और साथी राष्ट्रोंको, अपने वचनोंको पूरा न करनेके परिणामस्वरूप जो नैतिक हानि उठानी पड़ेगी, उसकी पूर्ति उसके किसी वास्तविक या कल्पित, सम्भावित, प्रादेशिक अथवा राजनीतिक लाभसे नहीं हो सकती और अब पीछे अनुत्तरदायी लोग उन वचनोंकी जो चतुराई-भरी व्याख्या कर रहे हैं, वह जिम्मेदार अधिकारियोंके लिए किसी भी तरह सहायक सिद्ध न होगी। आपके पूर्वाधिकारीने टर्कीसे युद्ध आरम्भ होनेपर ब्रिटिश सरकारके जिस वचनकी घोषणा की थी, दुःखकी बात है कि वह भ्रम ही सिद्ध हुआ; परिणामस्वरूप साम्राज्यकी नैतिक प्रतिष्ठाको लगनेवाला यह धक्का और भी जोरसे महसूस किया जायेगा।

इन गम्भीर वचनोंको पूरा न किया जानेकी आशंका और सर्वत्र पोषित इन भावनाओंकी लगभग पूर्ण अवहेलनासे भारतके मुसलमान आज जो इतने उद्विग्न हैं, इसका कारण यह नहीं है कि उनका एकमात्र सहारा ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंके वचन ही हों। फिर वे ऐसी उम्मीद भी नहीं करते कि इतने व्यापक और जटिल परिणामोंसे युक्त कोई समझौता उनकी इच्छाओं और हितोंकी दृष्टिसे ही किया जा सकता है। भारतके मुसलमानोंका कार्य तबतक पूरा नहीं होता जबतक वे उन लोगोंको जिन्होंने उनकी धार्मिक स्वतन्त्रताकी पूरी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है, यह साफ-साफ नहीं बता सकते कि महामहिम सम्राट्की सरकार और मित्र-राष्ट्र प्रत्यक्षतः खिलाफत और सम्बन्धित प्रश्नोंके सम्बन्धमें समझौतेकी जो रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं, इससे वे अत्यन्त चिन्तित हैं। इस प्रकारके समझौतेको कोई भी मुसलमान अपनी मुक्तिकी आशा खोये बिना स्वीकार नहीं कर सकता, न उससे सहमत हो सकता है। यह एक प्रधान कारण है, जिसकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। और यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि ऐसे किसी समझौतेको उस्मानी साम्राज्य (टर्की)के तुर्कोंसे मनवाया भी जा सके तो भी वह हर सच्चे मुसलमानको पूर्णतः अस्वीकार्य ही रहेगा।

खिलाफतको लौकिक एवम् आध्यात्मिक दोनों ही रूपोंमें बनाये रखना इस्लाम धर्मका केवल अंग ही नहीं बल्कि सार है। जो धर्म सांसारिक और आध्यात्मिक बातोंमें — चर्च और सरकारमें छिन्न-भिन्न और निर्जीव बना देनेवाले अन्तरको बरदाश्त करते हैं, इस्लामकी उनके साथ तुलना करनेसे कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। उससे तो जो मामले बिलकुल स्पष्ट हैं वे और भी अस्पष्ट हो जायेंगे। लौकिक शक्ति तो

खिलाफतकी संस्थाका सार ही है और मुसलमान उसके स्वरूपमें परिवर्तन या खलीफाके साम्राज्यका उच्छेद कभी स्वीकार नहीं कर सकते। अरब प्रायद्वीपका प्रश्न भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है। इसके किसी भी भागपर किसी तरहका गैर-मुस्लिम नियन्त्रण सहन नहीं किया जा सकता। यह प्रश्न भी स्पष्टतः मुसलमानोंकी भावनाका प्रश्न नहीं बल्कि इस्लाम धर्मका प्रश्न है। इसी प्रकार इस्लामने अपने तीर्थ-स्थानोंको पवित्र घोषित कर दिया है और उसकी व्याख्या भी कर दी है। इस्लाम-धर्मके अनुसार दूसरे धर्मके वे लोग जो इसके विषयमें कुछ नहीं जानते इस मामलेकी और ऐसे ही अन्य मामलोंकी व्याख्या करनेके अधिकारी नहीं हैं। मुसलमानोंका आग्रह है, और उसके पीछे पूरा कारण है, कि इस्लामके पवित्र स्थानोंका संरक्षक केवल खलीफा ही रह सकता है। जहाँतक खलीफाके राज्यकी अखंडताका सवाल है, हमें इस बातपर दुःख है कि अरबके मुसलमानोंके कुछ वर्ग इस्लामी कानूनोंकी स्पष्ट अवहेलना करके दुनियाके शेष मुसलमानोंके समवेत समुदायसे अलग हो गये हैं। लेकिन यह बात शेष मुसलमानोंके खिलाफ एक तर्कके रूपमें नहीं रखी जा सकती; बल्कि यह एक और कारण है जो उन्हें सचाईकी घोषणा करनेके लिए बाध्य करता है। और इस खुदाई ऐलानके अनुसार कि सब मुसलमान आपसमें भाई-भाई हैं और इस खुदाई हुक्मके अनुसार कि भाइयोंमें आपसमें मेल कराया जाये, भारतके मुसलमानोंका फर्ज है कि वे उन सब गलतफहमियोंको, जो आज देखनेमें आ रही हैं, मिटानेका प्रयास करें और तनावके उन कारणोंको दूर करें जो अरबोंको अजामसे और तुर्कोंको ताजिकसे पृथक कर सकते हैं। इस्लामी भाईचारेका तर्कसम्मत अर्थ यह निकलता है कि सब मुसलमान दुनियाके हर कोनेके अपने मुसलमान भाइयोंके दुःख और कष्टोंमें हिस्सा बटाएँ और इस बातका ध्यान रख कि ऐसे व्यापक सिद्धान्त, जैसे यह आत्मनिर्णयका सिद्धान्त है, मुसलमानोंपर भी उतने ही लागू किये जायें, जितने ईसाइयोंपर। और एशियाइयोंपर भी उसी प्रकार लागू किये जायें, जैसे यूरोपियोंपर। यह सही है कि यूरोप और ईसाई जगत्‌का बड़ा हिस्सा टर्कीके तुर्कोंपर धार्मिक अन्याय और राजनीतिक अविवेकका आरोप लगाता है, लेकिन यह भी कहा जा सकता है कि जो लोग ऐसे आरोप लगाते हैं, वे स्वयं भी पुराने तअस्सुबों और बादमें उत्पन्न कटुतासे मुक्त नहीं हैं। हमें विश्वास है कि इतिहास समय आनेपर उस कठिन परिस्थितिको पूरी तरह ध्यानमें रखकर अपना फैसला देगा, जिसमें उस्मानी साम्राज्यके तुर्क सदियोंसे रहते आ रहे हैं और तब इस्लामकी बुनियादी सहिष्णुता और तुर्कोंकी मूलभूत दयालुता प्रमाणित होगी। पूरे ब्रिटिश शासन-कालके इतिहासमें भारतके मुसलमानोंकी अपने सम्राट्‌के प्रति वफादारी, एक स्थायी निधिके रूपमें स्वीकृत और घोषित की गई है। यह अन्य जातियोंकी वफादारीसे कम नहीं है। यह भी स्वीकार किया गया है कि उनकी धार्मिक स्वतन्त्रताको पूरी तरह बनाये रखनेपर ही यह वफादारी निर्भर है, और यही मुख्यतः इसका आधार है। यदि सरकारको मुसलमानोंकी और वास्तवमें भारतके हर सम्प्रदायकी वफादारीके इस पहलूकी याद दिलानेकी कभी आवश्यकता नहीं पड़ी है, तो उसका कारण यही है कि हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि अबतक ऐसा कोई सवाल ही पैदा नहीं

हुआ, जिससे हमें लगा हो कि उसे सम्भवतः भुलाया जायेगा या उसकी उपेक्षा की जायेगी। लेकिन अब चूँकि मित्र-राष्ट्रों और साथी देशोंकी नीति और इस्लामके निर्देश एक-दूसरेके विरुद्ध जाते दिखाई देते हैं, इसलिए हम सादर यह कहना चाहते हैं कि न्याय और उपयुक्तता दोनोंका तकाजा है कि जिस व्यवस्थामें मानव द्वारा परिवर्तन नहीं किया जा सकता और जिस व्यवस्थामें इस्लामके विगत तेरह शताब्दियोंके जीवन-कालमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ, वह अपरिवर्तित ही रहेगा। और जिस व्यवस्थामें परिवर्तन हो सकता है तथा परिस्थितियाँ और वातावरणके बदलनेके साथ ही जो परिवर्तनीय है, उस व्यवस्थामें जरूरी होनेपर परिवर्तन किया जाना चाहिए। साम्राज्यके हितार्थ मुसलमानोंकी प्यारीसे-प्यारी भावनाकी भी बलि दी जा सकती है, फिर भी हम सविनय निवेदन करते हैं कि सच्चे साम्राज्यवादमें साम्राज्यके हर सदस्यकी इच्छाओं और भावनाओंका समान ध्यान रखा जाना चाहिए। लेकिन इस्लामी कानून इतने सुनिश्चित और अनिवार्य हैं कि जिस प्रकार वे स्वयं मुसलमानोंकी लौकिक आकांक्षाओं-की पूर्तिके लिए उनको थोड़ा भी कम-ज्यादा नहीं किया जा सकता, वैसे ही मित्र राष्ट्रों एवं साथी राष्ट्रों द्वारा उनमें अपने सुभीतेके अनुसार बाल-भर भी फर्क नहीं किया जा सकता। ये अल्लाह द्वारा निश्चित की गई सीमाएँ हैं, जिनका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। लेकिन मुसलमान अपने धार्मिक कर्त्तव्योंके बारेमें दृढ़ रुख अपनाते हुए आपकी सेवामें सादर निवेदन करना चाहते हैं कि साम्राज्यका सच्चा हित और इस्लामी हिदायतें एक ही रास्तेकी ओर संकेत करती हैं। युद्ध भले ही समाप्त हो गया हो, लेकिन शान्ति अभी दूर और संदिग्ध है और साम्राज्यके अधिकारियोंसे हमारी विनती है कि वे मुसलमानोंकी मैत्री और भारतकी वफादारीका मूल्य कम न आँकें। प्रसन्नता-की बात है कि भारतके मुसलमान और गैर-मुसलमान एक हो गये हैं और कन्धेसे-कन्धा भिड़ाकर खड़े हैं। इसलिए ऐसे समझौतेसे जो दोनोंको ही अमान्य हो, शान्तिकी स्थापना नहीं हो सकती; क्योंकि उससे न्याय और सन्तोषकी भावना पैदा नहीं होगी। मुक्तिकी आशा रखने और इसके लिए दुआ माँगनेवाला कोई भी मुसलमान चैनसे नहीं बैठेगा, वह तो इस्लामकी हिदायतोंपर चलकर ही मुक्तिकी आकांक्षा करेगा; चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न निकले। इसके विपरीत यदि भारतका हृदय राष्ट्र-मण्डलके सदस्यके रूपमें उसकी स्वशासनकी योग्यताको स्वीकार करके जीत लिया गया और मुसलमानोंको उनकी इस्लामी जिम्मेदारियों और कर्त्तव्योंको उचित ढंगसे स्वीकार करके खुश कर लिया गया, तो आधी दुनियाके मुसलमानोंकी भावनाएँ ब्रिटेनके साथ होंगी और दुनियाकी कोई ताकत उसे उन अधिकारोंसे वंचित करनेका साहस नहीं कर सकती जो उसके और उसके साम्राज्यके हैं। जो संकट इसी समय इतना बड़ा दिखाई दे रहा है, क्रोधमें एक भी प्रहार किये बिना और व्यर्थकी लड़ाईमें खूनकी एक बूँद भी बहाये बिना विलीन हो जायेगा। तब दुनिया सच्चे अर्थोंमें लोकतन्त्रके ही नहीं, ईश्वर और सत्यके पक्षमें होगी। इसी भावनाके साथ हम आपकी सहायतासे अपने शिष्टमण्डलको ब्रिटेन, मित्र देशों और साथी देशोंमें भी भेजना चाहते हैं। हमें यह भी विश्वास है कि यदि हमारे शिष्टमण्डलको एक बार अपनी सफलताका भरोसा हो

जायेगा तो फिर वह उतने ही उत्साहसे इस्लामी दुनियाको आश्वस्त करने और जो क्रोध या दु:खके वशीभूत होकर अपने समान हितोंके बारेमें गलतफहमियाँ होनेके कारण अलग हो गये हैं, उनको खुश करनेमें जुट जायेगा। इन गलतफहमियोंको दूर करके विश्वशान्तिकी स्थापना करनेके लिए सभी लोग बहुत उत्सुक हैं। हम चाहते हैं कि उस कृपालु ईश्वरकी दयासे हम और आपकी सरकार इस सम्भावनापूर्ण और पवित्र उद्देश्यको पूरा कर सकें।

हम हैं आपके अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक आदि,

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, २४-१-१९२०

'हिन्दू': मद्रासससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

इंडिया ऑफिस ज्यूडीशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: भूतपूर्व इंडिया ऑफिसके पुस्तकालयमें सुरक्षित भारतीय मामलोंसे सम्बन्धित कागजात और प्रलेख जिनका सम्बन्ध भारत मन्त्री से था।

एविडेंस बिफोर डिसऑर्डर्ज़ इन्क्वायरी कमेटी, १९१९-२० : प्रकाशक : सुपरिंटेंडेंट, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, १९२०।

बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स: जहाँ गृह-विभाग तथा बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्सके कागजात सुरक्षित हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३४ वें अधिवेशनकी रिपोर्ट, दिसम्बर १९१९।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती): मथुरादास त्रिकमजी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'महात्मा गांधी': रामचन्द्र वर्मा; गांधी निधि पुस्तक भण्डार, कालबादेवी, बम्बई, १९१९।

'महादेवभाईनी डायरी'—खण्ड ५, (गुजराती): नरहरि द्वा० परीख; नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, १९५१।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी): एलिस एम० बार्न्ज़ द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'सच्ची शिक्षा': मो० क० गांधी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, दिसम्बर १९६२।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(अगस्त, १९१९ से जनवरी, १९२०)

अगस्त १: गांधीजी कालोलकी हथकरघा फैक्टरी देखने गये। स्वदेशीपर भाषण दिया।

अगस्त २: स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा मार्शल लॉके पीड़ितोंकी सहायतार्थ डेढ़ लाख रुपये इकट्ठा करनेकी अपील; गांधीजीने 'यंग इंडिया' में इसका समर्थन किया।

अगस्त ४: गांधीजीने बम्बईमें 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको भेंट देते हुए कहा कि यदि सरकार रौलट कानून रद नहीं करेगी तो मैं सत्याग्रह पुनः आरम्भ कर दूँगा।

अगस्त ५: बम्बईमें अमृतलाल सुन्दरजीकी स्मृतिमें आयोजित गुजरातियोंकी सभाकी अध्यक्षता।

अगस्त ६: अहमदाबादके जिला जज द्वारा सत्याग्रह शपथ लेनेवाले वकीलोंके विरुद्ध की गई कार्रवाईकी गांधीजीने 'यंग इंडिया' में 'धृष्टतापूर्ण' कहकर उसकी भर्त्सना की।

अगस्त ८: पूनामें डेकन सभाकी बैठकमें ट्रान्सवालके भारतीय विरोधी कानूनों और गुजराती बन्धु समाजमें स्वदेशीपर भाषण।

अगस्त १४: गोधरामें स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन; कलक्टर तथा स्थानीय नेताओंसे बेगारके विषयमें बातचीत; स्टुअर्ट पुस्तकालय देखने गये। सार्वजनिक सभा और महिलाओंकी सभामें स्वदेशीपर भाषण।

अगस्त १५: विशाल सार्वजनिक सभामें सरकारसे पंजाबकी स्थितिकी निष्पक्ष जाँच करनेकी माँग; लोगोंसे सहायता-कोषमें धन देनेका अनुरोध।

अगस्त १९: बम्बईमें सत्याग्रहियोंकी सभामें घोषणा की कि 'यंग इंडिया' के गुजराती संस्करणका प्रकाशन भी शुरू किया जायेगा। उसी सभामें सरकारको प्रार्थनापत्र आदि देनेके पश्चात् पुनः सत्याग्रह प्रारम्भ किये जानेकी बात कही।

अगस्त २२: एस्थर फैरिंगको देशसे निर्वासित करनेके प्रस्तावके विरोधमें लॉर्ड विलिंग्डनको पत्र; उन्हें आश्रममें आनेकी अनुमति देनेका अनुरोध।

अगस्त २५: कॉवीको लिखे पत्रमें स्वदेशी सम्बन्धी विचार और तर्क प्रस्तुत किये तथा आन्दोलनके लिए बम्बईके गवर्नरका समर्थन और प्रोत्साहन प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की।

अगस्त २७: मौलाना अब्दुल बारीको पत्र लिखा कि अली बन्धुओंकी रिहाईकी माँग असामयिक है।

अगस्त २८: सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें एक शिष्टमण्डलने ट्रान्सवाल व्यापारिक अधिनियमका विरोध करनेके लिए मॉण्टेग्युसे भेंट की।

अगस्त ३१: दाहोदमें महिलाओंकी सभामें स्वदेशीपर भाषण; बुनकरोंकी सभामें जातिभेद त्याग देनेका आग्रह।

सितम्बर ३ : वाइसराय द्वारा पंजाबके दंगोंकी जाँचके लिए आयोगकी नियुक्तिकी घोषणा; साथ ही दक्षिण आफ्रिका तथा फीजीके लिए भी आयोग नियुक्त।

सितम्बर ६ : गांधीजीने बम्बईकी सत्याग्रह समिति और स्वदेशी सभाकी बैठकोंमें भाग लिया।

सितम्बर ७ : गिरगाँव, बम्बईमें गुजरात स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन; स्वदेशी सभाकी बैठकमें भाग लिया।

गुजराती 'नवजीवन' का प्रथम अंक निकला।

सितम्बर ८ : भारत सरकार द्वारा बम्बई और मद्रास सरकारको तार कि "गांधीजीके विरुद्ध वर्तमान आदेश ढीले कर दिये जायें और लॉर्ड हंटरके आगमनके समय उनपर से सभी प्रतिबन्ध हटा लिये जायें।"

सितम्बर १२ : बम्बई सरकारने मद्रास सरकारको विश्वस्त रूपसे सूचना दी कि गांधीजीपर लगे प्रतिबन्धोंको ढीला करनेके सम्बन्धमें वह केन्द्रीय सरकारसे सहमत है।

सितम्बर १७ : गांधीजी अहमदाबादसे बम्बईके लिए रवाना।

सितम्बर १८ : बम्बईकी सार्वजनिक सभामें खिलाफतपर भाषण। सरकारी कर्मचारियों-के संरक्षणके लिए दण्डविमुक्ति विधेयक शाही परिषद्में पेश; मालवीयजीने उसका विरोध किया।

सितम्बर २१ : गांधीजीने अहमदाबादमें अछूतोंके स्कूलका उद्घाटन किया। गांधीजीकी ५१वीं वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें मद्रास और वर्धामें सार्वजनिक सभाओंका आयोजन। वर्धाके नागरिकों द्वारा गांधीजीको थैली भेंट। दण्डविमुक्ति विधेयक पास कर दिया गया।

सितम्बर २५ : गांधीजीने राजकोटमें रेवाशंकर जगजीवनके निवासस्थानपर आयोजित सभामें स्वदेशीपर भाषण दिया। दोपहरको वणिक भोजनशालामें महिलाओंकी सभामें भाषण। कनॉट हालमें समाज-सेवापर भाषण।

सितम्बर २६ : अछूतोंके स्कूल देखने गये।

सितम्बर २७ : सौराष्ट्रकी गोंडल रियासतमें स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन। महिलाओं और पुरुषोंकी पृथक सभाओंमें स्वदेशीपर भाषण।

सितम्बर २८ : मोटी मारडमें काठियावाड़ पाटीदार परिषद्की अध्यक्षता। धोराजीमें हिन्दू-मुस्लिम एकतापर भाषण; 'अन्त्यज वास' में आयोजित सभामें भाषण।

सितम्बर २९ : अहमदाबाद लौटने पर बम्बई सरकारको तार देकर 'नवजीवन' के प्रकाशकों द्वारा प्रेस ऐक्टके तथाकथित उल्लंघनकी क्षमा-याचना वापस ले ली।

अक्तूबर १ : एनी बेसेंटकी ७३वीं वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें बम्बईके एक्सेल्सियर थियेटरमें आयोजित सभामें भाषण। कालबादेवी शुद्ध स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन।

भारत सरकारने पंजाब, दिल्ली और मद्रासकी सरकारोंको १५ अक्तूबरसे गांधीजीपर लगाये गये प्रतिबन्ध हटा देनेका आदेश दिया।

अक्तूबर २: गांधीजीने भगिनी समाजके वनिता विश्राम हालमें आयोजित स्वागत समारोहमें भाग लिया। उन्हें २०,१०० रुपयोंकी थैली भेंट की गई।

शामको मुस्लिम विद्यार्थियोंकी सभामें भाषण।

अक्तूबर ४: मद्रासके गवर्नरको तार दिया कि कुमारी फैरिंगको जल्दी ही साबरमती आश्रम आनेकी अनुमति दी जाये।

अक्तूबर ६: मद्रास गवर्नरके निजी सचिवका गांधीजीको पत्र कि कुमारी फैरिंग सामान्य ढंगसे अनुमतिके लिए प्रार्थना करें तो अनुमति देनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

अक्तूबर ७: 'यंग इंडिया'का कार्यालय अहमदाबाद ले जानेका समाचार। बम्बईके गवर्नरका गांधीजीको पत्र जिसमें उन्होंने स्वदेशी आन्दोलनका समर्थन किया था।

अक्तूबर ८: बड़ौदाकी माणिकराव व्यायामशालामें कसरतपर अपने विचार प्रकट किये; प्रदर्शन देखा।

गांधीजीके सम्पादकत्वमें 'यंग इंडिया'का प्रथम अंक निकला।

अक्तूबर ९: बड़ौदाके महाराजा थियेटरमें भाषण; स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन; ब्रुश फैक्टरी और अछूतोंका स्कूल देखने गये। न्याय मन्दिरमें महिलाओंकी सभामें गये।

अक्तूबर १०: अमरेलीमें कताई कक्षाका उद्घाटन।

अक्तूबर ११: गांधीजी रातको भावनगर पहुँचे।

अक्तूबर १२: उनके सम्मानमें जलूस निकाला गया। वस्त्र व्यापारी संघने मानपत्र भेंट किया।

गांधीजीका स्वदेशीपर भाषण। अछूतोंका स्कूल देखने गये। महिलाओंकी सभामें खाली समयमें कताई करनेका समर्थन किया।

अहमदाबादके लिए रवाना।

अक्तूबर १३: गुजरात कॉलेजमें आनन्दशंकर ध्रुवके विदाई-समारोहकी अध्यक्षता; बादमें प्रधानाचार्य रॉबर्ट्सनकी अध्यक्षतामें आयोजित सभामें भाषण।

अक्तूबर १५: गांधीजीपर अप्रैल ९, १९१९ से लगाया गया पंजाबमें प्रवेश सम्बन्धी प्रतिबन्ध उठा लिया गया।

बम्बई उच्च न्यायालयने सत्याग्रह शपथ लेनेवाले वकीलोंको चेतावनी दी।

अक्तूबर १७: गांधीजी पंजाबके लिए रवाना।

भारतमें खिलाफत दिवस मनाया गया।

अक्तूबर १८: बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयक द्वारा गांधीजीके नाम सम्मन जारी: इसमें अक्तूबर २०को अदालतमें उपस्थित होने और जिला जजके निजी पत्रके प्रकाशनके विषयमें स्पष्टीकरण देनेको कहा गया।

अक्तूबर २०: गांधीजीने बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको तार दिया कि पंजाब यात्राके कारण वे २० अक्तूबरको अदालतमें उपस्थित हो सकनेमें असमर्थ हैं।

अक्तूबर २२: साबरमती आश्रमसे बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको निजी पत्रके प्रकाशनके सम्बन्धमें स्पष्टीकरण भेजा।

मद्रास गवर्नरको कुमारी फैरिंगके आश्रममें आ जानेकी सूचना दी।

आनन्दशंकर ध्रुवके अभिनन्दन-समारोहमें भाग लिया।

अहमदाबादसे बड़ौदा होते हुए लाहौरके लिए रवाना।

अक्तूबर २४: लाहौरके नागरिकों द्वारा स्टेशनपर गांधीजीका उत्साहपूर्ण स्वागत।

भारत सरकारके गृह विभागने बम्बई सरकारके न्याय विभागको सूचना दी कि उसका गांधीजी पर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध लगानेका कोई इरादा नहीं है।

अक्तूबर २७: गांधीजीकी लेफ्टिनेंट सर एडवर्ड मैकलेगन और डिप्टी कमिश्नरसे भेंट।

अक्तूबर २८: पंडित रामभजदत्त चौधरीके निवास-स्थानपर विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण।

पंजाब जाँच समितिकी सभामें भाग लेनेके लिए सी० एफ० एन्ड्रयूजके साथ दिल्लीके लिए रवाना।

भारत सरकारने मद्रास प्रान्तके मुख्य सचिवको सूचित किया कि १५ अक्तूबर १९१९से गांधीजी पर लगाये गये प्रतिबन्ध उठा लिये गये हैं और वे भी ऐसा ही करें।

अक्तूबर २९: गांधीजीने पंजाब जाँच समितिकी बैठकमें भाग लिया। लॉर्ड हंटर तथा अन्य अधिकारियोंसे भेंट।

स्वामी श्रद्धानन्दकी अध्यक्षतामें हुई सार्वजनिक सभामें भाषण।

अक्तूबर ३१: साबरमती आश्रमको तार दिया कि "जबतक खिलाफतके प्रश्नका सन्तोषजनक निपटारा नहीं होता तबतक शान्तिके लिए कोई समारोह न किया जाये।"

बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकने गांधीजीका स्पष्टीकरण असन्तोषजनक माना और क्षमा-याचनाके प्रकाशनकी माँग की।

नवम्बर १: गांधीजीकी दक्षिण आफ्रिकी आयोगके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट।

पटौदी हाउसमें दिल्लीके शहीदोंकी स्मृतिमें आयोजित सभामें भाषण; अव्यवस्थाके कारण सभा विसर्जित।

नवम्बर २: दिल्लीके शहीदोंकी स्मृतिमें दुबारा सभा आयोजित। गांधीजीका भाषण।

नवम्बर ३: पंजाब जाँच समितिके प्रथम खुले अधिवेशनका आयोजन।

गांधीजी द्वारा मार्शल लॉके मामलोंमें गवाही लेनेका समाचार।

नवम्बर ४: अमृतसरके स्वर्ण-मन्दिरमें सरोपा भेंट।

महिलाओंकी सभामें स्वदेशीपर भाषण; जलियाँवाला बाग और खालसा कालेज देखने गये।

एन्ड्रयूजके साथ लाहौरके लिए रवाना।

नवम्बर ७: वकीलकी राय मिलनै तक अवकाश देनेके लिए बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको तार।

नवम्बर ११: मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास और एन्ड्रयूजके साथ सलाह-मशविरा।

मालवीयजीको जेलमें हरकृष्णलालसे मिलनेकी अनुमति नहीं दी गई।
उपद्रव जाँच समितिका लाहौरमें आगमन।

नवम्बर १५ : दक्षिण आफ्रिका जानेसे पहले एन्ड्रयूजको विदाई देनेके लिए आयोजित सभामें भाषण।

नवम्बर २० : गुजराँवाला गये। गुरुकुलकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

नवम्बर २१ : गुजराँवालामें गवाहोंके वक्तव्य दर्ज किये। महिलाओंकी सभामें भाषण।

नवम्बर २३ : खिलाफत सम्मेलनमें भाषण; सभामें केवल मुसलमान उपस्थित थे। मुहम्मद अली जिन्नाने न आ पानेके लिए खेद प्रकट किया।

नवम्बर २४ : खिलाफत कांग्रेसमें हिन्दू मुसलमानोंके संयुक्त अधिवेशनकी अध्यक्षता; हिन्दीमें भाषण; प्रस्ताव पास किया गया कि जबतक खिलाफतका प्रश्न हल नहीं हो जाता भारतीय शान्ति समारोहोंमें भाग नहीं लेंगे।
शान्ति समारोहोंका विरोध करनेके लिए सलाहकार समितिका गठन। गांधीजीका एक पैसा ५०१ रुपयेमें नीलाम किया गया।

नवम्बर २६ : गांधीजी निजामाबाद और कसूर गये और भाषण दिये।

नवम्बर २९ : अकालगढ़ गये।

नवम्बर ३० : रामनगर गये।

दिसम्बर १ : हाफिजाबादमें वक्तव्य दर्ज किये।

दिसम्बर २ : हाफिजाबादमें विद्यार्थियों और महिलाओंकी सभामें भाषण।

दिसम्बर ३ : शामको साँगला हिल पहुँचे, गवाहियाँ लीं। लाहौरके लिए रवाना।
हाउस ऑफ कॉमन्समें भारतीय सुधार विधेयकपर बहस।

दिसम्बर ५ : शेखूपुराकी सभामें गांधीजीने हिन्दू-मुस्लिम एकतापर भाषण दिया।
भारतीय सुधार विधेयकका हाउस ऑफ कॉमन्समें तीसरा वाचन।

दिसम्बर ६ : गांधीजी चुड़खाना जानेके लिए शेखूपुरासे रवाना हुए; रेलवे स्टेशनपर भीड़ द्वारा रोक लिये जानेपर व्यवस्थाकी आवश्यकतापर भाषण।

दिसम्बर ७ : शामको लायलपुर गये। गवाहियाँ लीं।

दिसम्बर ८ : दोपहरको महिलाओंकी और शामको सार्वजनिक सभामें भाषण।
भारतीय सुधार विधेयकका लॉर्ड सभामें प्रथम वाचन।

दिसम्बर ९ : गांधीजी लाहौर पहुँचे।

दिसम्बर ११ : सभा मंडलके समारोहमें भाषण।
बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको पत्र कि "मैं सच्चे दिलसे अपने कार्यके लिए क्षमा-याचना नहीं कर सकता।"
पंजीयक द्वारा अदालतमें अर्जी कि "जजके निजी पत्रको प्रकाशित करनेके कारण गांधीजी और महादेव देसाईपर अदालतकी मानहानिका मुकदमा क्यों न चलाया जाये।"

दिसम्बर २४ : मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार विधेयकको शाही स्वीकृति दे दी गई। शाही घोषणा द्वारा राजनीतिक कैदियोंको क्षमा-प्रदान।

दिसम्बर २८ : अमृतसरमें शोरके कारण गांधीजीको मानव-दया सम्मेलनकी सभाको विसर्जित करना पड़ा।

दिसम्बर २९ : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अधिवेशनमें भाग लिया।

दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी कठिनाइयोंपर प्रस्ताव पेश किया।

वन्देमातरम् हॉलमें ऑल इंडिया मुस्लिम लीगके अधिवेशनमें भाग लिया।

दिसम्बर ३० : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अधिवेशनमें पंजाब और गुजरातके दंगोंपर प्रस्ताव पेश किया।

दिसम्बर ३१ : कांग्रेसके अधिवेशनमें भाग लिया।

१९२०

जनवरी १ : कांग्रेसके अधिवेशनमें स्वराज्य प्रस्तावका समर्थन किया परन्तु साथही-साथ १९१९के सुधार विधेयकको अपनानेका भी आग्रह किया।

जनवरी ४ : साबरमतीसे बम्बई उच्च न्यायालयके पंजीयकको पत्र लिखकर अदालतकी मानहानिके मुकदमेकी सुनवाईको कुछ समयके लिए स्थगित करनेका अनुरोध किया।

जनवरी ५ : उपद्रव जाँच समितिको लिखित वक्तव्य दिया और सूचित किया कि वे मौखिक बयान देनेके लिए तैयार हैं।

जनवरी ९ : अहमदाबादमें उपद्रव जाँच समितिके सामने पेश हुए।

जनवरी ११ : लॉर्ड हंटर और उपद्रव जाँच समितिके सदस्योंको साबरमती आश्रममें आनेके लिए आमन्त्रित किया।

जनवरी १२ : आर्यसमाजमें भाषण; जलालपुर जट्टनमें अभिनन्दनपत्र भेंट किया गया। उपस्थित जनसमूहके समक्ष भाषण।

मोटरसे सरगोधाके लिए रवाना।

लॉर्ड हंटर और उपद्रव जाँच समितिके अन्य सदस्य आश्रम देखने आये।

जनवरी १५ : खिलाफत शिष्टमण्डलके सिलसिलेमें अहमदाबादसे दिल्ली रवाना।

जनवरी १६ : गांधीजी दिल्ली पहुँच गये।

जनवरी १८ : मौलाना अबुल कलाम आजादसे प्रथम भेंट।

जनवरी १९ : खिलाफत शिष्टमण्डलके सदस्यके रूपमें वाइसरायसे भेंट।

जनवरी २० : इलाहाबादमें मोतीलाल नेहरूसे भेंट।

जनवरी २१ : कानपुरमें स्वदेशी भण्डारका उद्घाटन।

जनवरी २२ : सुबह मेरठ पहुँचे। स्वागत-समारोहके पश्चात् सार्वजनिक सभामें भाषण। जलूस निकाला गया और आम जनता, नगरपालिका तथा खिलाफत समितिकी ओरसे मानपत्र भेंट।

पंजाबके दंगोंके सम्बन्धमें कांग्रेस जाँच समितिके कार्यपर महिलाओंकी सभामें भाषण।

लाहौर जाते हुए मुजफ्फरपुरमें भाषण।

जनवरी २३ : लाहौर पहुँचे।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

ए

ओ

क

घ

च

य

र

ल

व

श

स